☐ सम्पादकमण्डल
अनुयोगप्रवर्त्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
श्री रतनमुनि
पण्डित श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल

☐ प्रबन्धसम्पादक
श्रीचन्द सुराणा 'सरस'

☐ सम्प्रेरक
मुनि श्री विनयकुमार 'भीम'
श्री महेन्द्रमुनि 'दिनकर'

☐ अर्थसहयोगी
श्रीमान् पद्मश्री सेठ मोहनमलजी चोरड़िया

☐ प्रकाशनतिथि
वीरनिर्वाण संवत् २५१२
वि. सं. २०४३
ई. सन् १९८६

☐ प्रकाशक
श्री आगमप्रकाशन-समिति
जैनस्थानक, पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
पिन—३०५९०१

☐ मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यंत्रालय,
केसरगंज, अजमेर—३०५००१

☐ मूल्य [illegible]

Published at the Holy Remembrance occasion
of
Rev. Guru Sri Joravarmalji Maharaj

Sixth Upanga

JAMBUDDĪVAPANNNATTISUTTAM

[Original Text, Hindi Version, Notes, Annotations and Appendices etc.]

Inspiring Soul
Up-pravartaka Shasansevi (Late) Swami Sri Brijlalji Maharaj

Convener & Founder Editor
(Late) Yuvacharya Sri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

Translator & Annotator
Dr. Chhaganlal Shastri
M.A., Ph. D.

Chief Editor
Pt. Shobhachandra Bharill

Publishers
Sri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj.)

Jinagam Granthmala Publication No. 26

- **Board of Editors**

  Anuyoga-pravartaka Muni Shri Kanhaiyalal 'Kamal'
  Sri Devendra Muni Shastri
  Sri Ratan Muni
  Pt. Shobhachandra Bharill

- **Managing Editor**

  Srichand Surana 'Saras'

- **Promotor**

  Munisri Vinayakumar 'Bhima'
  Sri Mahendramuni 'Dinakar'

- **Financial Assistance**

  Padmashri Seth Mohanmalji Choradia

- **Date of Publication**

  Vir-nirvana Samvat 2512
  Vikram Samvat 2043; July, 1986

- **Publisher**

  Sri Agam Prakashan Samiti,
  Jain Sthanak, Pipaliya Bazar, Beawar (Raj.) [India]
  Pin 305 901

- **Printer**

  Satish Chandra Shukla
  Vedic Yantralaya
  Kesarganj, Ajmer

- **Price** : Rs. 45 [illegible]

समर्पण

श्रुतोक्त आचार्य-सम्पदाओं से समन्वित,

पंजाब-अंचल के श्रमणसंघ के प्रभावशाली नायक,

जिनशासनप्रभावक, आगमवेत्ता, परम यशस्वी,

स्वर्गीय पूज्य आचार्य श्री काशीरामजी म.

को श्रद्धा एवं भक्ति के साथ

समर्पित

प्रकाशकीय

आगमप्रेमी पाठकों के करकमलों में ग्रन्थमाला के २६ वें अंक के रूप में जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र प्रस्तुत किया जा रहा है। इस आगम का प्रधान प्रतिपाद्य विषय इसके नाम से ही स्पष्ट है। इसमें जम्बूद्वीप आदि से सम्बद्ध भौगोलिक वर्णन विस्तारपूर्वक दिया गया है। साथ ही इस क्षेत्र से सम्बद्ध अन्यान्य विषयों पर भी विशद प्रकाश डाला गया है। भरत चक्रवर्ती के भरतक्षेत्र के विजय अभियान का जैसा विशद वर्णन प्रस्तुत आगम में चित्रित किया गया है, वह असाधारण है और जिज्ञासु जनों को अवश्य पठनीय है। संक्षेप में प्रस्तुत आगम अनेकानेक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण विषयों का बोध कराने वाला है।

इस आगम का सम्पादन और अनुवाद प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. छगनलालजी शास्त्री, एम. ए., पी-एच.डी. ने किया है।

व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र (चतुर्थ खण्ड) की भाँति प्रस्तुत जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र भी आगमप्रकाशन-समिति के पूर्व अध्यक्ष स्वर्गीय समाजनायक, धर्मनिष्ठ, श्रेष्ठिवर्य माननीय श्री मोहनमलजी सा. चोरडिया, मद्रास के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है। अतिशय खेद का विषय है कि हम आपकी मौजूदगी में ही आपके सहयोग से इन आगमों को प्रकाशित न कर पाए, तथापि आशा करते हैं कि इन प्रकाशनों से उनकी स्वर्गस्थ आत्मा को अवश्य परितोष प्राप्त होगा।

प्रस्तुत आगम के अनुवाद का परमविदुषी अध्यात्मसाधिका महासती श्री उमरावकुंवरजी म. ने अवलोकन करके जो अमूल्य सहकार प्रदान किया है, उसके लिए हम अत्यन्त आभारी हैं। स्वास्थ्य अनुकूल न होते हुए भी और अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वों को वहन करते हुए भी आपने अवलोकन के लिए समय दिया है, यह आपकी महती श्रुतभक्ति का जीता-जागता निदर्शन है।

साहित्यवाचस्पति विद्वद्वर्य श्री देवेन्द्र मुनिजी म. शास्त्री का प्रस्तावना-लेखन के रूप में प्रारंभ से ही हमें अतिशय महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त रहा है। जैसा कि हम पहले भी निवेदन कर चुके हैं, आपका यह सहयोग विना अन्तराल—लगातार द्रुत गति से आगमप्रकाशन के इस पावन कार्य में सहायक रहा है। मुनिश्री गहरी रुचि के साथ विस्तारपूर्वक जो प्रस्तावनाएँ लिख रहे हैं, उनसे इस प्रकाशन के गौरव में वृद्धि हुई है। आपका आभार मानने के लिए शब्द पर्याप्त नहीं हैं। भविष्य में भी आपका ऐसा सहयोग प्राप्त होता रहेगा, ऐसा पूर्ण विश्वास है।

अन्त में हम उन सभी अर्थसहायक महानुभावों और विद्वज्जनों के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करना अपना कर्त्तव्य मानते हैं, जिनसे विभिन्न रूपों में समिति को सहयोग प्राप्त हो रहा है।

निवेदक

रतनचंद मोदी	**सायरमल चोरडिया**	**चांदमल विनायकिया**
कार्यवाहक अध्यक्ष	प्रधानमंत्री	मंत्री

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

सम्पादकीय

प्ररणा के अमृत-निर्झर : स्व. युवाचार्यश्री

परमाराध्य, प्रातःस्मरणीय, पण्डितरत्न प्रबुद्ध ज्ञानयोगी स्व. युवाचार्यप्रवर श्री मिश्रीमलजी म. सा. 'मधुकर' द्वारा अपने परम श्रद्धास्पद गुरुदेव परम पूज्य श्री जोरावरमलजी म. सा. की पुण्यस्मृति में आयोजित जैन आगमों के सम्पादन, अनुवाद, विवेचन के साथ प्रकाशन का उपक्रम निश्चय ही उनकी श्रुतसेवा का एक ऐसा अनुपम उदाहरण है, जो उन्हें युग-युग पर्यन्त जैनजगत् में, अध्यात्मजगत् में सादर, सश्रद्ध स्मरणीय बनाये रखेगा। युवाचार्यश्री मधुकर मुनिजी संस्कृत, प्राकृत, जैन आगम, दर्शन, साहित्य तथा भारतीय वाङ्मय के प्रगाढ़ विद्वान् थे, अद्भुत विद्याव्यासंगी थे, अनुपम गुणग्राही थे, विद्वानों के अनन्य अनुरागी थे। अध्ययन, चिन्तन एवं मनन उनके जीवन के चिरसहचर थे। केवल प्रेरणा या निर्देशन देने तक ही उनका यह आगमिक कार्य परिसीमित नहीं था। इस नीत साहित्यिक कार्य का संयोजन तथा आगमों के प्रधान सम्पादक का दायित्व उन्होंने स्वीकार किया। वे केवल शोभा या सज्जा के प्रधान सम्पादक नहीं थे, सही माने में वे प्रधान सम्पादक थे। जो भी आगम प्रकाशनार्थ तैयार होता, उसका वे आद्योपान्त समीक्षणपूर्वक अध्ययन करते। जो ज्ञापनीय होता, ज्ञापित करते।

आगम : अंग-उपांग

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति छठा उपांग है। जैन आगमों का अंग, उपांग आदि के रूप में जो विभाजन हुआ है, उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

विद्वानों द्वारा श्रुतपुरुष की कल्पना की गई। जैसे किसी पुरुष का शरीर अनेक अंगों का समवाय है, उसी की ज्यों श्रुतपुरुष के भी अंग कल्पित किये गये। कहा गया—श्रुतपुरुष के दो चरण, दो जंघाए, दो उरू, दो गात्रार्ध-शरीर के आगे का भाग, शरीर के पीछे का भाग, दो भुजाएं, गर्दन एवं मस्तक, यों कुल मिलाकर २+२+२+२+२+१+१=१२ अंग होते हैं। इनमें श्रुतपुरुष के अंगों में जो प्रविष्ट हैं, सन्निविष्ट हैं, अंगत्वेन विद्यमान हैं, वे आगम श्रुतपुरुष-अंग रूप में अभिहित हैं, अंग आगम हैं।

इस परिभाषा के अनुसार निम्नांकित द्वादश आगम श्रुतपुरुष के अंग हैं—

१. आचार, २. सूत्रकृत, ३. स्थान, ४. समवाय, ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति, ६. ज्ञातृधर्मकथा, ७. उपासकदशा, ८. अन्तकृद्दशा, ९. अनुत्तरौपपातिकदशा, १०. प्रश्नव्याकरण, ११. विपाक तथा १२. दृष्टिवाद।

ये वे आगम हैं जिनके विषय में ऐसी मान्यता है कि अर्थरूप में ये तीर्थंकर-प्ररूपित हैं, शब्दरूप में गणधर-ग्रथित हैं, यों इनका स्रोत तत्त्वतः सीधा तीर्थंकर-संबद्ध है।

जैसा पहले इंगित किया गया है, जिन आगमों के सन्दर्भ में श्रोताओं का, पाठकों का तीर्थंकर-प्ररूपित के साथ गणधर-ग्रथित शाब्दिक माध्यम द्वारा सीधा सम्बन्ध बनता है, वे अंगप्रविष्ट कहे जाते हैं, उनके अतिरिक्त

आगम अंगबाह्य कहे जाते हैं। यद्यपि अंगबाह्यों के कथ्य अंगों के अनुरूप होते हैं विरुद्ध नहीं होते, किन्तु प्रवाह-परम्परया वे तीर्थंकर-भाषित से सीधे सम्बद्ध नहीं हैं, स्थविररचित हैं। इन अंगबाह्यों में बारह ऐसे हैं, जिनकी उपांग संज्ञा है। वे इस प्रकार हैं—

१. औपपातिक, २. राजप्रश्नीय, ३. जीवाभिगम, ४. प्रज्ञापना, ५. सूर्यप्रज्ञप्ति, ६. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ७. चन्द्रप्रज्ञप्ति, ८. निरयावलिका अथवा कल्पिका, ९. कल्पावतंसिका, १०. पुष्पिका, ११. पुष्पचूला तथा १२. वृष्णिदशा।

प्रत्येक अंग का एक उपांग होता है। अंग और उपांग में आनुरूप्य हो, यह वांछनीय है। इसके अनुसार अंग-आगमों तथा उपांग-आगमों में विषय-सादृश्य होना चाहिए। उपांग एक प्रकार से अंगों के पूरक होने चाहिए, किन्तु अंगों एवं उपांगों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर प्रतीत होता है, ऐसी स्थिति नहीं है। उनमें विषयवस्तु, विवेचन, विश्लेषण आदि की पारस्परिक संगति नहीं है। उदाहरणार्थ आचारांग प्रथम अंग है, औपपातिक प्रथम उपांग है। अंगोपांगात्मक दृष्टि से यह अपेक्षित है, विषयाकलन, प्रतिपादन आदि के रूप में उनमें साम्य हो, औपपातिक आचारांग का पूरक हो, किन्तु ऐसा नहीं है। यही स्थिति लगभग प्रत्येक अंग एवं उपांग के बीच है। यों उपांग-परिकल्पना में तत्त्वतः वैसा कोई आधार प्राप्त नहीं होता, जिससे इसका सार्थक्य फलित हो।

वेद : अंग-उपांग

वेदों के रहस्य, आशय, तद्गत तत्त्व-दर्शन सम्यक् स्वायत्तता करने—अभिज्ञात करने की दृष्टि से वहाँ अंगों एवं उपांगों का उपपादन है। वेद-पुरुष की कल्पना की गई है। कहा गया है—

छन्द—वेद के पाद—चरण या पैर हैं, कल्प—याज्ञिक विधि-विधानों, प्रयोगों के प्रतिपादक ग्रन्थ उसके हाथ हैं, ज्योतिष—नेत्र हैं, निरुक्त—व्युत्पत्ति शास्त्र कान हैं, शिक्षा—वैदिक मंत्रों के शुद्ध उच्चारण, उदात्त-अनुदात्त स्वरित के रूप में स्वर प्रयोग, सन्धि प्रयोग आदि के निरूपक ग्रन्थ घ्राण-नासिका हैं, व्याकरण—उसका मुख है। अंग सहित वेदों का अध्ययन करने से अध्येता ब्रह्मलोक में महिमान्वित होता है।

कहने का अभिप्राय है, इन विषयों के सम्यक् अध्ययन के बिना वेद का अर्थ, रहस्य, आशय अधिगत नहीं हो सकता।

वेदों के आशय को विशेष स्पष्ट और सुगम करने हेतु अंगों के साथ-साथ वेद के उपांगों की भी कल्पना की गई। पुराण, न्याय, मीमांसा तथा धर्मशास्त्रों का वेदों के उपांगों के रूप में स्वीकरण हुआ है।

उपवेद

वैदिक वाङ्मय में ऐसा उपलब्ध है, वहाँ ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद के समकक्ष चार उपवेद भी स्वीकार किये गये हैं। वे क्रमशः आयुर्वेद, गान्धर्ववेद—संगीतशास्त्र, धनुर्वेद—आयुधविद्या तथा अर्थशास्त्र—राजनीतिविज्ञान के रूप में हैं।

विषय-साम्य की दृष्टि से वेदों एवं उपवेदों पर यदि चिन्तन किया जाए तो सामवेद के साथ गान्धर्ववेद का तो यत्किंचित् सांगत्य सिद्ध होता है, किन्तु ऋग्वेद के साथ आयुर्वेद, यजुर्वेद के साथ धनुर्वेद तथा अथर्ववेद के साथ अर्थशास्त्र की कोई ऐसी संगति प्रतीत नहीं होती, जिससे इनका "उप" उपसर्ग से गम्यमान सामीप्य सिद्ध हो सके। दूरान्वित सायुज्य-स्थापना का प्रयास, जो यत्र-तत्र किया जाता रहा है, केवल कष्ट-कल्पना है।

कल्पना के लिए केवल इतना ही अवकाश है, आयुर्वेद, धनुर्वेद तथा अर्थशास्त्र का वेद से सम्बन्ध जोड़ने में महिमांकन मानते हुए ऐसा किया गया हो, ताकि वेद-संपृक्त समादर के ये भी कुछ भागी हो सकें।

जैन मनीषियों का भी स्यात् कुछ ऐसा ही झुकाव बना हो, जिससे वेदों के साथ उपवेदों की ज्यों उनको अंगों के साथ उपांगों की परिकल्पना सूझी हो। कल्पना-सौष्ठव, सज्जा-सौष्ठव से अधिक इसमें विशेष सारवत्ता परिदृष्ट नहीं होती। हाँ, स्थविरकृत अंगबाह्यों में से इन बारह को उपांग-श्रेणी में ले लिये जाने से औरों की अपेक्षा इनका महत्त्व समझा जाता है, सामान्यतः इनका अंगों से अन्य अंगबाह्यों की अपेक्षा कुछ अधिक सामीप्य मान लिया जाता है पर वस्तुतः वैसी स्थिति है नहीं। क्योंकि सभी अंग-बाह्यों का प्रामाण्य उनके अंगानुगत होने से है अतः अंगानुगति की दृष्टि से अंगबाह्यों में बहुत तारतम्य नहीं आता। अनुसंधित्सुओं के लिए निश्चय ही यह गवेषणा का विषय है।

अनुयोग

अनुयोग शब्द व्याख्याक्रम, विषयगत भेद तथा विश्लेषण-विवेचन आदि की दृष्टि से विभाग या वर्गीकरण के अर्थ में है। आर्यरक्षितसूरि ने इस अपेक्षा से आगमों का चार भागों या अनुयोगों में विभाजन किया, जो इस प्रकार है—

१. चरणकरणानुयोग—इसमें आत्मा के मूलगुण—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, संयम, आचार, व्रत, ब्रह्मचर्य, कषाय-निग्रह, तप, वैयावृत्त्य आदि तथा उत्तरगुण—पिण्डविशुद्धि, समिति, गुप्ति, भावना, प्रतिमा, इन्द्रिय-निग्रह, अभिग्रह, प्रतिलेखन आदि का वर्णन है।

बत्तीस आगमों (अंगप्रविष्ट एवं अंगबाह्य) में से आचारांग, प्रश्नव्याकरण—ये दो अंगसूत्र; दशवैकालिक—यह एक मूलसूत्र, निशीथ, व्यवहार, बृहत्कल्प तथा दशाश्रुतस्कन्ध—ये चार छेदसूत्र तथा आवश्यक—यों कुल आठ सूत्रों का इस अनुयोग में समावेश होता है।

२. धर्मकथानुयोग—इसमें दया, अनुकम्पा, दान, शील, क्षान्ति, ऋजुता, मृदुता आदि धर्म के अंगों का विश्लेषण है, जिसके माध्यम मुख्य रूप से छोटे, बड़े कथानक हैं।

धर्मकथानुयोग में ज्ञातृधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरौपपातिकदशा एवं विपाक—ये पांच अंगसूत्र, औपपातिक, राजप्रश्नीय, निरयावली, कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका एवं वृष्णिदशा—ये सात उपांगसूत्र तथा उत्तराध्ययन—एक मूलसूत्र—यों कुल तेरह सूत्र समाविष्ट हैं।

३. गणितानुयोग—इसमें मुख्यतया गणित-सम्बद्ध, गणिताधृत वर्णन हैं।

इस अनुयोग में सूर्यप्रज्ञप्ति; जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति तथा चन्द्रप्रज्ञप्ति—इन तीन उपांगसूत्रों का समावेश है।

४. द्रव्यानुयोग—इसमें जीव, अजीव, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, आस्रव, संव, निर्जरा, पुण्य, पाप, बन्ध, मोक्ष आदि का सूक्ष्म, गहन विवेचन है।

द्रव्यानुयोग में सूत्रकृत, स्थान, समवाय तथा व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती)—ये चार अंगसूत्र, जीवाभिगम, प्रज्ञापना—ये दो उपांग सूत्र तथा नन्दी एवं अनुयोग—ये दो मूलसूत्र—कुल आठ सूत्र समाविष्ट हैं।

बारहवें अंग दृष्टिवाद में द्रव्यानुयोग का अत्यन्त गहन, सूक्ष्म, विस्तृत विवेचन है, जो आज प्राप्य नहीं है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि छठा अंग ज्ञातृधर्मकथा धर्मकथानुयोग में आता है, जबकि छठा उपांग जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति गणितानुयोग में आता है। विषय की दृष्टि से इनमें कोई संगति नहीं है। किन्तु परम्परया दोनों को समकक्ष अंगोपांग के रूप में स्वीकार किया जाता है।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र सात वक्षस्कारों में विभक्त है, जिनमें कुल १८१ सूत्र हैं। वक्षस्कार यहाँ प्रकरण के अर्थ में प्रयुक्त है। वास्तव में इस शब्द का अर्थ प्रकरण नहीं है। जम्बूद्वीप में इस नाम के प्रमुख पर्वत हैं, जो वहाँ के वर्णनक्रम के केन्द्रवर्ती हैं। जैन भूगोल के अन्तर्गत उनका अनेक दृष्टियों से बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतएव वे यहाँ प्रकरण के अर्थ में उद्दिष्ट हैं।

प्रस्तुत आगम में जम्बूद्वीप का स्वरूप, विस्तार, प्राकार, जैन कालचक्र—अवसर्पिणी-सुषमसुषमा, सुषमा, सुषमदुःषमा, दुःषमसुषमा, दुःषमा, दुःषमदुःषमा, उत्सर्पिणी-दुःषमदुःषमा, दुःषमा, दुःषमसुषमा, सुषमदुःषमा, सुषमा, सुषमसुषमा, चौदह कुलकर, प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभ, बहत्तर कलाएं नारियों के लिए विशेषतः चौसठ कलाएं, बहुविधशिल्प, प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् भरत, षट्खण्डविजय, चुल्लहिमवान्, महाहिमवान्, वैताढ्य, निषध, गन्धमादन यमक, कंचनगिरि, माल्यवन्त मेरु, नीलवन्त, रुक्मी, शिखरी आदि पर्वत, भरत, हैमवत, हरिवर्ष, महाविदेह, उत्तरकुरु, रम्यक, हैरण्यवत, ऐरवत आदि क्षेत्र, बत्तीस विजय, गंगा, सिन्धु, शीता, शीतोदा, रूप्यकूला, सुवर्णकूला, रक्तवती, रक्ता आदि नदियां, पर्वतों, क्षेत्रों आदि के अधिष्ठातृदेव, तीर्थंकराभिषेक, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारे आदि ज्योतिष्क देव, अयन, संवत्सर, मास, पक्ष, दिवस आदि एतत्सम्बद्ध अनेक विषयों का बड़ा विशद वर्णन हुआ है।

चक्रवर्ती भरत द्वारा षट्खण्डविजय आदि के अन्तर्गत अनेक प्रसंग ऐसे हैं, जहाँ प्राकृत के भाषात्मक लालित्य की सुन्दर अभिव्यंजना है। कई प्रसंग तो ऐसे हैं, जहाँ उत्कृष्ट गद्य की काव्यात्मक छटा का अच्छा निखार परिदृश्यमान है। बड़े-बड़े लम्बे वाक्य हैं, किन्तु परिश्रान्तिकर नहीं हैं, प्रोत्साहक हैं।

जैसी कि प्राचीन शास्त्रों की, विशेषतः श्रमण-संस्कृतिपरक वाङ्मय की पद्धति है, पुनरावृत्ति बहुत होती है। यहाँ ज्ञातव्य है, काव्यात्मक सृजन में पुनरावृत्ति निःसन्देह जो आपाततः बड़ी दुःसह लगती है, अनुपादेय है, परित्याज्य है, किन्तु जन-जन को उपदिष्ट करने हेतु प्रवृत्त शास्त्रीय वाङ्मय में वह इसलिए प्रयुक्त है कि एक ही बात बार बार कहने से, दुहराने से श्रोताओं को उसे हृदयंगम कर पाने में अनुकूलता, सुविधा होती है।

संपादन : अनुवाद : विवेचन

शुद्धतम पाठ संकलित एवं प्रस्तुत किया जा सके, एतदर्थ मैंने जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र की तीन प्रतियाँ प्राप्त कीं, जो निम्नांकित हैं—

१. आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित, संस्कृतवृत्ति सहित जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति।

२. परम पूज्य श्री अमोलकऋषिजी म. द्वारा कृत हिन्दी अनुवाद सहित जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति।

३. जैनसिद्धान्ताचार्य मुनिश्री घासीलालजी म. द्वारा प्रणीत टीका सहित जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति तीनों भाग।

पाठ-संपादन हेतु तीनों प्रतियों को आद्योपान्त मिलाना आवश्यक था, जो किशनगढ़-मदनगंज में चालू किया गया। तीनों प्रतियाँ मिलाने हेतु इस कार्य में कम से कम तीन व्यक्ति अपेक्षित होते। जब स्मरण करता हूँ

तो हृदय श्रद्धा-विभोर हो उठता है, परम पूज्य स्व. युवाचार्यप्रवर श्री मधुकरमुनिजी म. कभी-कभी स्वयं पाठ मिलाने हेतु फर्श पर आसन बिछाकर विराज जाते। हमारे साथ पाठ-मेलन में लग जाते। समस्त भारतवर्ष के श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के युवाचार्य के महिमामय पद पर संप्रतिष्ठ होते हुए भी कल्पनातीत निरभिमानिता, सरलता एवं सौम्यता संवलित जीवन का संवहन निःसन्देह उनकी अनुपम ऊर्ध्वमुखी चेतना का परिज्ञापक था।

आगमिक कार्य परम श्रद्धेय युवाचार्यप्रवर को अत्यन्त प्रिय था। यह कहना अतिरंजित नहीं होगा, यह उन्हें प्राणप्रिय था। उनकी रग-रग में आगमों के प्रति अगाध निष्ठा थी। वे चाहते थे, यह महान् कार्य अत्यन्त सुन्दर तथा उत्कृष्ट रूप में संपन्न हो। स्मरण आते ही हृदय शोकाकुल हो जाता है, आगम-कार्य की सम्यक् निष्पद्यमान सम्पन्नता को देखने वे हमारे बीच नहीं रहे। कराल काल ने असमय में ही उन्हें हमसे इस प्रकार छीन लिया, जिसकी तिलमात्र भी कल्पना नहीं थी। काश ! आज वे विद्यमान होते, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति का सुसंपन्न कार्य देखते, उनके हर्ष का पार नहीं रहता, किन्तु बड़ा दुःख है, हमारे लिए वह सब अब मात्र स्मृतिशेष रह गया है।

अपने यहाँ भारतवर्ष में मुद्रण-शुद्धि को बहुत महत्त्व नहीं दिया जाता। जर्मनी, इंग्लैण्ड, फ्रान्स आदि पाश्चात्य देशों में ऐसा नहीं है। वहाँ मुद्रण सर्वथा शुद्ध हो, इस ओर बहुत ध्यान दिया जाता है। परिणामस्वरूप यूरोप में छपी पुस्तकें, चाहे इण्डोलोजी पर ही क्यों न हों, अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध होती हैं। हमारे यहाँ छपी पुस्तकों में मुद्रण सम्बन्धी अशुद्धियाँ बहुत रह जाती हैं। पाठ-मेलनार्थ परिगृहीत जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति की उक्त तीनों ही प्रतियाँ इसका अपवाद नहीं हैं। हाँ, आगमोदय समिति की प्रति अन्य दो प्रतियाँ की अपेक्षा अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध मुद्रित है। इन तीनों प्रतियों के आधार पर पाठ संपादित किया। पाठ सर्वथा शुद्ध रूप में उपस्थापित किया जा सके, इसका पूरा ध्यान रखा।

पाठ-संपादन में 'जाव' का प्रसंग बड़ा जटिल होता है। 'जाव' दो प्रकार की सूचनाएं देता है। कहीं वह 'तक' का द्योतक होता है, कहीं अपने स्थान पर जोड़े जाने योग्य पाठ की मांग करता है। 'जाव' द्वारा वांछित, अपेक्षित पाठ श्रमपूर्वक खोज खोजकर यथावत् रूप में यथास्थान सन्निविष्ट करने का प्रयत्न किया।

पाठ संपादित हो जाने पर अनुवाद-विवेचन का कार्य हाथ में लिया। ऐसे वर्णन-प्रधान, गणित-प्रधान आगम का अधुनातन प्रवाहपूर्ण शैली में अनुवाद एक कठिन कार्य है, किन्तु मैं उत्साहपूर्वक लगा रहा। मुझे यह प्रकट करते आत्मपरितोष है कि महान् मनीषी, विद्वद्वरेण्य युवाचार्यप्रवर के अनुग्रह एवं आशीर्वाद से आज वह सम्यक् सम्पन्न है। अनुवाद इस प्रकार सरल, प्रांजल एवं सुबोध्य शैली में किया गया है, जिससे पाठक को पढ़ते समय जरा भी विच्छिन्नता या व्यवधान की प्रतीति न हो, वह धारानुबद्ध रूप में पढ़ता रह सके। साथ ही साथ मूल प्राकृत के माध्यम से आगम पढ़ने वाले छात्रों को दृष्टि में रख अनुवाद करते समय यह ध्यान रखा गया है कि मूल का कोई भी शब्द अनुदित होने से छूट न पाए। इससे विद्यार्थियों को मूलानुग्राही अध्ययन में सुविधा होगी। शाब्दिक दृष्ट्या अस्पष्ट प्रतीत होने वाले आशय को स्पष्ट करने का अनुवाद में पूरा प्रयत्न रहा है। जहाँ अपेक्षित लगा, उन प्रसंगों का विशद विवेचन किया है। यों संपादन, अनुवाद एवं विवेचन तीनों अपेक्षाओं से विनम्र प्रयास रहा है कि यह आगम पाठकों के लिए, विद्यार्थियों के लिए अतीव उपयोगी सिद्ध हो।

संपादन, अनुवाद एवं विवेचन में जिन आचार्यों, विद्वानों तथा लेखकों की कृतियों से प्रेरणा मिली, साहाय्य प्राप्त हुआ, उन सबका मैं सादर आभारी हूँ।

परम श्रद्धास्पद, प्रातःस्मरणीय, विद्वद्वरेण्य स्व. युवाचार्यप्रवर श्री मिश्रीमलजी म. 'मधुकर' की प्रेरणा एवं पुण्य-प्रतापस्वरूप आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर द्वारा स्वीकृत, संचालित, निष्पादित श्रुत-संस्कृति का यह महान् यज्ञ जन-जन के लिए कल्याणकारी, मंगलकारी सिद्ध हो, मेरी यही अन्तर्भावना है।

सरदारशहर
(राजस्थान)-३३१४०३

—डॉ. छगनलाल शास्त्री

प्रस्तुत आगम-प्रकाशन के विशिष्ट अर्थसहयोगी

श्रेष्ठिप्रवर, श्रावकवर्य

पद्मश्री मोहनमलजी सा. चोरड़िया

[संक्षिप्त जीवन-परिचय]

'मानव जन्म से नहीं अपितु अपने कर्म से महान् वनता है।' यह उक्ति स्व. महामना सेठ श्रीमान् मोहनमलजी सा. चोरड़िया के सम्बन्ध में एकदम खरी उतरती है। आपने तन, मन और धन से देश, समाज व धर्म की सेवा में जो महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, वह जैन समाज के ही नहीं, वल्कि मानव-समाज के इतिहास में एक स्वर्ण-पृष्ठ के रूप में अमर रहेगा। मद्रास शहर की प्रत्येक धार्मिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक गतिविधि से आप गहराई से जुड़े हुए थे और प्रत्येक क्षेत्र में आप हर सम्भव सहयोग देते थे। आपका मार्गदर्शन एवं सहयोग प्राप्त करने के लिए आपके सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति संतुष्ट होकर ही लौटता था।

आपका जन्म २८ अगस्त १९०२ में नोखा ग्राम (राजस्थान) में सेठ श्रीमान् सिरेमलजी चोरड़िया के पुत्र रूप में हुआ। सन् १९१७ में आप श्रीमान् सोहनलालजी के गोद आये और उसी वर्ष आपका विवाह हरसोलाव निवासी श्रीमान् वादलचन्दजी वाफणा की सुपुत्री सद्गुणसम्पन्ना श्रीमती नैनीकँवरवाई के साथ हुआ। तदनन्तर आप मद्रास पधारे।

श्रीमान् रतनचन्दजी, पारसमलजी, सरदारमलजी, रणजीतमलजी एवं सम्पतमलजी आपके सुपुत्र हैं। अनेक पौत्र-पौत्री एवं प्रपौत्र-प्रपौत्रियों से भरे-पूरे सुखी परिवार से आप सम्पन्न थे।

वचपन में ही आपके माता-पिता द्वारा प्रदत्त धार्मिक संस्कारों के फलस्वरूप आपमें सरलता, सहजता, सौम्यता, उदारता, सहिष्णुता, नम्रता, विनयशीलता आदि अनेक मानवोचित सद्गुण स्वाभाविक रूप से विद्यमान थे। आपका हृदय सागर-सा विशाल था, जिसमें मानवमात्र के लिये ही नहीं, अपितु प्राणीमात्र के कल्याण की भावना निहित थी। आपकी प्रेरणा, मार्गदर्शन एवं सुयोग्य नेतृत्व में जनकल्याण एवं समाजकल्याण के अनेकों कार्य सम्पन्न हुए, जिनमें आपने तन, मन, धन से पूर्ण सहयोग दिया। उनकी एक झलक यहाँ प्रस्तुत है।

१. योगदान : शिक्षा के क्षेत्र में

समाज में व्याप्त शैक्षणिक अभाव को दूर करने एवं समाज में धार्मिक और व्यावहारिक शिक्षण का प्रचार-प्रसार करने की आपकी तीव्र अभिलाषा थी। परिणामस्वरूप सन् १९२६ में श्री श्वेताम्वर स्थानकवासी जैन पाठशाला का शुभारम्भ हुआ। तदुपरान्त व्यावहारिक शिक्षण के प्रचार हेतु जहाँ श्री जैन हिन्दी प्राईमरी स्कूल, अमोलकचन्द गेलड़ा जैन हाई स्कूल, ताराचन्द गेलड़ा जैन हाई स्कूल, श्री गणेशीवाई गेलड़ा जैन गर्ल्स हाई स्कूल, मांगीचन्द भण्डारी जैन हाई स्कूल, वोर्डिंग होम एवं जैन महिला विद्यालय आदि शिक्षण संस्थाओं की स्थापना हुई, वहाँ आध्यात्मिक एवं धार्मिक ज्ञान के प्रसार हेतु श्री दक्षिण भारत जैन स्वाध्याय संघ का शुभारम्भ हुआ।

अगरचन्द मानमल जैन कॉलेज की स्थापना द्वारा शिक्षाक्षेत्र में आपने जो अनुपम एवं महान् योगदान दिया है, वह सदैव चिरस्मरणीय रहेगा। इसके अलावा कुछ ही माह पूर्व मद्रास विश्वविद्यालय में जैन सिद्धांतों पर विशेष शोध हेतु स्वतन्त्र विभाग की स्थापना कराने में भी आपने अपना सक्रिय योगदान दिया।

इस तरह आपने व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान-ज्योति जलाकर, शिक्षा के अभाव को दूर करने की अपनी भावना को साकार/मूर्त्त रूप दिया।

२. योगदान : चिकित्सा के क्षेत्र में

चिकित्साक्षेत्र में भी आप अपनी अमूल्य सेवाएँ अर्पित करने में कभी पीछे नहीं रहे। सन् १९२७ में आपने नोखा एवं कुचेरा में निःशुल्क आयुर्वेदिक औषधालय की स्थापना की। सन् १९४० में कुचेरा औषधालय को विशाल धनराशि के साथ राजस्थान सरकार को समर्पित कर दिया, जो वर्तमान में **'सेठ सोहनलाल चोरड़िया सरकारी औषधालय'** के नाम से जनसेवा का उल्लेखनीय कार्य कर रहा है। इस सेवाकार्य के उपलक्ष में राजस्थान सरकार ने आपको 'पालकी शिरोमोर' की पदवी से अलंकृत किया।

अल्प व्यय में चिकित्सा की सुविधा उपलब्ध कराने हेतु मद्रास में **श्री जैन मेडीकल रिलीफ सोसायटी** की स्थापना में सक्रिय योगदान दिया। इसके तत्त्वावधान में सम्प्रति १८ औषधालय, प्रसूतिगृह आदि सुचारु रूप से कार्य कर रहे हैं।

कुछ समय पूर्व ही आपने अपनी धर्मपत्नी के नाम से प्रसूतिगृह एवं शिशुकल्याणगृह की स्थापना हेतु पाँच लाख रुपये की राशि दान की। समय-समय पर आपने नेत्रचिकित्सा-शिविर आदि आयोजित करवाकर सराहनीय कार्य किया।

इस तरह चिकित्साक्षेत्र में और भी अनेक कार्य करके आपने जनता की दुःखमुक्ति हेतु यथाशक्ति प्रयास किया।

३. योगदान : जीवदया के क्षेत्र में

आपके हृदय में मानवजगत् के साथ ही पशुजगत् के प्रति भी करुणा का अजस्र स्रोत बहता रहता था। पशुओं के दुःख को भी आपने सदैव अपना दुःख समझा। अतः उनके दुःख और उन पर होने वाले अत्याचार-निवारण में सहयोग देने हेतु **'भगवान् महावीर अहिंसा प्रचार संघ'** की स्थापना कर एक व्यवस्थित कार्य शुरू किया। इस संस्था के माध्यम से जीवों को अभयदान देने एवं अहिंसा-प्रचार का कार्य बड़े सुन्दर ढंग से चल रहा है। आपकी उल्लिखित सेवाओं को देखते हुए यदि आपको 'प्राणीमात्र के हितचिन्तक' कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

४. योगदान : धार्मिक क्षेत्र में

आपके रोम-रोम में धार्मिकता व्याप्त थी। आप प्रत्येक धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधि में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करते थे। जीवन के अन्तिम समय तक आपने जैन श्रीसंघ मद्रास के संघपति के रूप में अविस्मरणीय सेवाएँ दीं। कई वर्षों तक अ. भा. श्वे. स्था. जैन कॉन्फ्रेंस के अध्यक्ष पद पर रहकर उसके कार्यभार को बड़ी दक्षता के साथ संभाला।

आप अखिल भारतीय जैन समाज के सुप्रतिष्ठित अग्रगण्य नेताओं में से एक थे। आप निष्पक्ष एवं

सम्प्रदायवाद से परे एक निराले व्यक्तित्व के धनी थे। इसीलिए समग्र सन्त एवं श्रावकसमाज आपको एक दृढ़धर्मी श्रावक के रूप में जानता व आदर देता था।

आप जैन शास्त्रों एवं तत्त्वों/सिद्धांतों के ज्ञाता थे। आप सन्त सतियों का चातुर्मास कराने में सदैव अग्रणी रहते थे और उनकी सेवा का लाभ बराबर लेते रहते थे। इस तरह धार्मिक क्षेत्र में आपका अपूर्व योगदान रहा।

इसी तरह नेत्रहीन, अपंग, रोगग्रस्त, क्षुधापीड़ित, आर्थिक स्थिति से कमजोर बन्धुओं को समय-समय पर जाति-पाँति के भेदभाव से रहित होकर अर्थ-सहयोग प्रदान किया।

इस प्रकार शिक्षणक्षेत्र में, चिकित्साक्षेत्र में, जीवदया के क्षेत्र में, धार्मिकक्षेत्र में एवं मानव-सहायता आदि हर सेवा के कार्य में तन-मन-धन से आपने यथासम्भव सहयोग दिया।

ऐसे महान् समाजसेवी, मानवता के प्रतीक को खोकर भारत का सम्पूर्ण मानवसमाज दुःख की अनुभूति कर रहा है।

आप चिरस्मरणीय बनें, जन-जन आपके आदर्श जीवन से प्रेरणा प्राप्त करे, आपकी आत्मा चिरशांति को प्राप्त करे; हम यही कामना करते हैं।*

—मन्त्री

* श्रीमान् भँवरलालजी सा. गोठी, मद्रास के सौजन्य से।

प्रस्तावना

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति : एक समीक्षात्मक अध्ययन

भारतीय दर्शन में जैनदर्शन का एक विशिष्ट और मौलिक स्थान है। इस दर्शन में आत्मा, परमात्मा, जीव-जगत्, बन्ध-मुक्ति, लोक-परलोक प्रभृति विषयों पर बहुत गहराई से चिन्तन हुआ है। विषय की तलछट तक पहुँच कर जो तथ्य उजागर किये गए हैं, वे आधुनिक युग में भी मानव के लिये पथप्रदर्शक हैं। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भौतिक जगत् में नित्य नये अनुसन्धान कर विश्व को चमत्कृत किया है। साथ ही जन-जन के अन्तर्मानस में भय का सञ्चार भी किया है। भले ही विनाश की दिशा में भारतीय चिन्तकों का चिन्तन पाश्चात्य चिन्तकों की प्रतिस्पर्द्धा में पीछे रहा हो पर जीवननिर्माणकारी तथ्यों की अन्वेषणा में उनका चिन्तन बहुत आगे है। जैनदर्शन के पुरस्कर्ता तीर्थंकर रहे हैं। उन्होंने उग्र साधना कर कर्म-मल को नष्ट किया, राग-द्वेष से मुक्त बने, केवलज्ञान-केवलदर्शन के दिव्य आलोक से उनका जीवन जगमगाने लगा। तब उन्होंने देखा कि जन-जीवन दुःख से आक्रान्त है, भय की विभीषिका से संत्रस्त है, अतः जन-जन के कल्याण के लिये पावन प्रवचन प्रदान किया। उस पावन प्रवचन का शाब्दिक दृष्टि से संकलन उनके प्रधान शिष्य गणधरों ने किया और फिर उसको आधारभूत मानकर स्थविरों ने भी संकलन किया। वह संकलन जैन पारिभाषिक शब्दावली में आगम के रूप में विश्रुत है। आगम जैनविद्या का अक्षय कोष है।

आगम की प्राचीन संज्ञा 'श्रुत' भी रही है। प्राकृतभाषा में श्रुत को 'सुत्त' कहा है। मूर्धन्य मनीषियों ने 'सुत्त' शब्द के तीन अर्थ किये हैं—

सुत्त—सुप्त अर्थात् सोया हुआ।
सुत्त—सूत्र अर्थात् डोरा या परस्पर अनुबन्धक।
सुत्त—श्रुत अर्थात् सुना हुआ।

हम लाक्षणिक दृष्टि से चिन्तन करें तो प्रथम और द्वितीय अर्थ श्रुत के विषय में पूर्ण रूप से घटित होते हैं, पर तृतीय अर्थ तो अभिधा से ही स्पष्ट है, सहज बुद्धिगम्य है। हम पूर्व ही बता चुके हैं कि श्रुतज्ञान रूपी महागंगा का निर्मल प्रवाह तीर्थंकरों की विमल-वाणी के रूप में प्रवाहित हुआ और गणधर व स्थविरों ने सूत्रबद्ध कर उस प्रवाह को स्थिरत्व प्रदान किया। इस महासत्य को वैदिक दृष्टि से कहना चाहें तो इस रूप में कह सकते हैं—परम कल्याणकारी तीर्थंकर रूपी शिव के जटा-जूट रूप ज्ञानकेन्द्र से आगम की विराट् गंगा का प्रवाह प्रवाहित हुआ और गणधर रूपी भगीरथ ने उस श्रुत-गंगा को अनेक प्रवाहों में प्रवाहित किया।

श्रुति, स्मृति और श्रुत इन शब्दों पर जब हम गहराई से अनुचिन्तन करते हैं तो ज्ञात होता है कि अतीत काल में ज्ञान का निर्मल प्रवाह गुरु और शिष्य की मौखिक ज्ञान-धारा के रूप में प्रवाहित था। लेखन-

कला का पूर्ण विकास भगवान् ऋषभदेव के युग में हो चुका था पर श्रुत-ज्ञान का लेखन नहीं हुआ। चिरकाल तक वह ज्ञानधारा मौखिक रूप में ही चलती रही। यही कारण है कि आगम साहित्य की उत्थानिका में **'सुयं में आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं'** अर्थात् आयुष्मन् ! मैंने सुना है, भगवान् ने ऐसा कहा है, शब्दावली उट्टंकित की गई है। इसी प्रकार **'तस्स णं अयमट्ठे पण्णत्ते'** अर्थात् भगवान् ने इसका यह अर्थ कहा है, शब्दावली का प्रयोग है। आगमसाहित्य में यत्र-तत्र इस प्रकार की शब्दावलियां प्रयुक्त हुई हैं, इससे यह स्पष्ट है कि आगम के अर्थ के प्ररूपक तीर्थंकर हैं, पर सूत्र की रचना या अभिव्यक्ति की जो शैली है, वह गणधरों की या स्थविरों की है। गणधर या स्थविर अपनी कमनीय कल्पना का सम्मिश्रण उसमें नहीं करते, वे तो केवल भाव को भाषा के परिधान से समलंकृत करते हैं। नन्दीसूत्र में कहा गया है कि जैनागम तीर्थंकर-प्रणीत हैं, इसका तात्पर्य केवल इतना ही है कि अर्थात्मक आगम के प्रणेता तीर्थंकर हैं। तीर्थंकर की वीतरागता और सर्वार्थसाक्षात्कारिता के कारण ही आगम प्रमाण माने गये हैं।

आचार्य देववाचक ने आगमसाहित्य को अंग और अंगबाह्य, इन दो भागों में विभक्त किया है। अंगों की सूत्ररचना करने वाले गणधर हैं तो अंगबाह्य की सूत्ररचना स्थविर भगवन्तों के द्वारा की गई है। स्थविर सम्पूर्ण श्रुत-ज्ञानी चतुर्दशपूर्वी या दशपूर्वी—दो प्रकार के होते हैं। अंग स्वतः प्रमाण रूप हैं, पर अंगबाह्य परतः प्रमाण रूप होते हैं। दश पूर्वधर नियमतः सम्यग्दर्शी होते हैं। उनके द्वारा रचित ग्रन्थों में अंग-विरोधी तथ्य नहीं होते, अतः वे आगम प्रमाण रूप माने जाते हैं। अंगबाह्य आगमों की सूची में जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति का कालिक श्रुत की सूची में आठवां स्थान है। जब आगमसाहित्य का अंग, उपांग, मूल और छेद रूप में वर्गीकरण हुआ तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति का उपांग में पाँचवाँ स्थान रहा और इसे भगवती (व्याख्याप्रज्ञप्ति) सूत्र का उपांग माना गया है। भगवतीसूत्र के साथ प्रस्तुत उपांग का क्या सम्बन्ध है ? इसे किस कारण भगवती का उपांग कहा गया है ? यह शोधार्थियों के लिये चिन्तनीय प्रश्न है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में एक अध्ययन है और सात वक्षस्कार हैं। यह आगम पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध इन दो भागों में विभक्त है। पूर्वार्द्ध में चार वक्षस्कार हैं तो उत्तरार्द्ध में तीन वक्षस्कार हैं। वक्षस्कार शब्द यहाँ पर प्रकरण के अर्थ में व्यवहृत हुआ है, पर वस्तुतः जम्बूद्वीप में इस नाम के प्रमुख पर्वत हैं, जिनका जैन भूगोल में अनेक दृष्टियों से महत्त्व प्रतिपादित है। जम्बूद्वीप से सम्बद्ध विवेचन के सन्दर्भ में ग्रन्थकार प्रकरण का अवबोध कराने के लिए ही वक्षस्कार शब्द का प्रयोग करते हैं। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के मूल पाठ का श्लोक-प्रमाण ४१४६ है। १७८ गद्य सूत्र हैं और ५२ पद्य सूत्र हैं। जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग दूसरे में जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति को ६ ठा उपांग लिखा है। जब आगमों का वर्गीकरण अनुयोग की दृष्टि से किया गया तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति को गणितानुयोग में सम्मिलित किया गया, पर गणितानुयोग के साथ ही उसमें धर्मकथानुयोग आदि भी हैं।

मिथिला : एक परिचय

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति का प्रारम्भ मिथिला नगरी के वर्णन से हुआ है, जहाँ पर श्रमण भगवान् महावीर अपने अन्तेवासियों के साथ पधारे हुए हैं। उस समय वहाँ का अधिपति राजा जितशत्रु था। बृहत्कल्पभाष्य[1] में साढ़े पच्चीस आर्य क्षेत्रों का वर्णन है। उसमें मिथिला का भी वर्णन है। मिथिला विदेह जनपद की राजधानी थी।[2] विदेह राज्य की सीमा उत्तर में हिमालय, दक्षिण में गंगा, पश्चिम में गंडकी और पूर्व में महीनदी तक

१. बृहत्कल्पभाष्य १. ३२७५-८९

२. (क) महाभारत वनपर्व २५४
   (ख) महावस्तु III, १७२
   (ग) दिव्यावदान पृ. ४२४

थी। जातक की दृष्टि से इस राष्ट्र का विस्तार ३०० योजन था[3] उसमें सोलह सहस्र गांव थे[4]। यह देश और राजधानी दोनों का ही नाम था। आधुनिक शोध के अनुसार यह नेपाल की सीमा पर स्थित था। वर्तमान में जो जनकपुर नामक एक कस्बा है, वही प्राचीन युग की मिथिला होनी चाहिए। इसके उत्तर में मुजफ्फरपुर और दरभंगा जिला मिलते है[5]। बील ने विख्यात डी. सेंट मार्टिन को उद्धृत किया है, जिन्होंने चैन-सु-ना नाम (Chen-su-na) को जनकपुरी से सम्बन्धित माना है[6]। रामायण के अनुसार राजा जनक के समय राजर्षि विश्वामित्र को अयोध्या से मिथिला पहुँचने में चार दिन का समय लगा था। वे विश्राम के के लिए विशाला में रुके थे[7]। रीज डेविड्स के अभिमतानुसार मिथिला वैशाली से लगभग ३५ मील पश्चिमोत्तर में अवस्थित थी, वह सात लीग और विदेह राज्य ३०० लीग विस्तृत था[8]। जातक के अनुसार यह अंग की राजधानी चम्पा से ६० योजन की दूरी पर थी[9]। विदेह का नामकरण विदेघ माधव के नाम पर हुआ है जिसने शतपथब्राह्मण[10] के अनुसार यहाँ उपनिवेश स्थापित किया था। पपञ्चसूदनी,[11] धम्मपद अट्ठकथा[12] के अनुसार विदेह का नाम सिनेरु पर्वत के पूर्व में स्थित एशिया के पूर्वी उपमहाद्वीप पुब्बविदेह के प्राचीन आप्रवासियों या आगन्तुकों से ग्रहण किया है। महाभारतकार[13] ने इस क्षेत्र को भद्राश्ववर्ष कहा है।

भविष्यपुराण की दृष्टि से निमि के पुत्र मिथि ने मिथिला नगर का निर्माण कराया था। प्रस्तुत नगर के संस्थापक होने से वे जनक के नाम से विश्रुत हुए।[14] मिथि के आधार पर मिथिला का नामकरण हुआ और वहाँ के राजाओं को मैथिल कहा गया।[15] जातक के अनुसार मिथिला के चार द्वार थे और प्रत्येक द्वार पर एक-एक बाजार था।[16] इन बाजारों में पशुधन के साथ हीरे-पन्ने, माणिक-मोती, सोना-चांदी

---

३. सुरुचि जातक (सं. ४८९) भाग ४, पृ. ५२१-५२२
४. जातक (सं. ४०६) भाग ४, पृष्ठ २७
५. (क) लाहा, ज्यॉग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृ. ३१
   (ख) कनिंघम, ऐंश्येंट ज्यॉग्रेफी ऑव इंडिया, एस. एन. मजुमदार संस्करण पृ. ७१८
   (ग) कनिंघम, आर्क्यालॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, XVI, ३४
६. बील, बुद्धिस्ट रिकार्ड्स ऑव द वेस्टर्न वर्ल्ड, II, पृ. ७८, टिप्पणी
७. रामायण, बंगवासी संस्करण, १-३
८. (क) जातक III. ३६५ (ख) जातक, IV, पृ.३१६
९. जातक VI. पृ. ३२
१०. शतपथब्राह्मण I, IV, १
११. पपञ्चसूदनी, सिंहली संस्करण, I. पृ. ४८४
१२. धम्मपद अट्ठकथा, सिंहली संस्करण, II. पृ. ४८२
१३. महाभारत, भीष्मपर्व, ६, १२, १३, ७, १३; ६, ३१
१४. भागवतपुराण, IX. १३।१३
१५. (क) वायुपुराण ८९।६।२३
   (ख) ब्रह्माण्डपुराण, III. ६४।६।२४
   (ग) विष्णुपुराण, IV. ५।१४
१६. जातक VI. पृ. ३३०

प्रभृति बहुमूल्य वस्तुओं का भी प्रधानता से विक्रय किया जाता था।[१७] वास्तुकला की दृष्टि से यह नगर बहुत ही भव्य बसा हुआ था। प्राकारों, फाटकों, कंगूरेदार दुर्ग और प्राचीरों सहित शिल्पियों ने कमनीय कल्पना से इसे अभिकल्पित किया था। चारों ओर इसमें पारगामी सड़कें थीं। यह नगर सुन्दर सरोवर और उद्यानप्रधान था। यहां के निवासी सुखी और समृद्ध थे।[१८] रामायण की दृष्टि से मिथिला बहुत ही स्वच्छ और मनोरम नगर था।[१९] इसके सन्निकट एक निर्जन जंगल था। महाभारत[२०] की दृष्टि से यह नगर बहुत ही सुरक्षित था। यहां के निवासी पूर्ण स्वस्थ थे तथा प्रतिदिन उत्सवों में भाग लिया करते थे।

जातक की दृष्टि से विदेह राजाओं में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी।[२१] वाराणसी के राजा ने यह निर्णय लिया था कि वह अपनी पुत्री का विवाह ऐसे राजकुमार से करेगा जो एकपत्नीव्रत का पालन करेगा। मिथिला के राजकुमार सुरुचि के साथ वार्ता चल रही थी। एकपत्नीव्रत की बात सुनकर वहां के मन्त्रियों ने कहा कि मिथिला का विस्तार सात योजन है, समूचे राष्ट्र का विस्तार ३०० योजन है, हमारा राज्य बहुत बड़ा है। ऐसे राज्य के राजा के अन्तःपुर में १६,००० रानियां अवश्य होनी चाहिये।[२२]

महाभारत के अनुसार मिथिला का राजा जनक वस्तुतः विदेह था। वह मिथिला नगरी को आग से जलते हुए तथा अपने राजप्रासादों को झुलसते हुए देखकर भी कह रहा था कि मेरा कुछ भी नहीं जल रहा है।[२३]

रामायण में मिथिला को जनकपुरी कहा है। विविधतीर्थकल्प में इस देश को तिरहुत्ति कहा है[२४] और मिथिला को जगती (प्राकृत में जगयी) कहा है।[२५] इसके सन्निकट ही महाराजा जनक के भ्राता कनक थे, उनके नाम से कनकपुर बसा था।[२६] कल्पसूत्र के अनुसार मिथिला से जैन श्रमणों की एक शाखा मैथिलिया निकली।[२७] श्रमण भगवान् महावीर ने मिथिला में छह चातुर्मास बिताये थे और अनेक बार उनके चरणारविन्दों से वह धरती पावन हुई थी।[२८] आठवें गणधर अकम्पित की यह जन्मभूमि थी।[२९] प्रत्येकबुद्ध

---

१७. बील, रोमांटिक लीजेंड ऑव शाक्य बुद्ध, पृ. ३०

१८. (क) जातक VI. ४६
 (ख) महाभारत, III. २०६, ६-९

१९. ग्रिफ़िथ द्वारा अनुदित रामायण, अध्याय XLIII, पृ. ६८

२०. महाभारत, वनपर्व २०६, ६-९

२१. जातक IV. ३१६ एवं आगे

२२. जातक IV. ४८९, पृ. ५२१-५२२

२३. महाभारत XII, १७, १८-१९; २१९, ५०
 तुलना कीजिए—उत्तराध्ययन के ९ वें अध्ययन से,
 देखिए—उत्तराध्ययन की प्रस्तावना। (आ. प्र. समिति, ब्यावर)

२४. संपइकाले तिरहुत्ति देसोत्ति भण्णई। —विविधतीर्थकल्प, पृ. ३२

२५. विविधतीर्थकल्प, पृ. ३२

२६. विविधतीर्थकल्प, पृ. ३२

२७. कल्पसूत्र २१३, पृ. १९८ —श्रीदेवेन्द्रमुनि द्वारा सम्पादित

२८. कल्पसूत्र १२१, पृ १७८

२९. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ६४४

नमि को कंकण की ध्वनि सुनकर यहीं पर वैराग्य उद्बुद्ध हुआ था।[30] चतुर्थ निह्नव अश्वमित्र ने वीर-निर्वाण के २२० वर्ष पश्चात् सामुच्छेदिकवाद का यहीं से प्रवर्तन किया था।[31] दशपूर्वधारी आर्य महागिरि का मुख्य रूप से विहार क्षेत्र भी मिथिला रहा है।[32] बाणगंगा और गंडक दो नदियाँ प्राचीन काल में इस नगर के बाहर बहती थीं।[33] स्थानांगसूत्र में दस राजधानियों का जो उल्लेख है, उसमें मिथिला भी एक है। जातक के अनुसार मिथिला के राजा मखादेव ने अपने सर पर एक पके बाल को देखा तो उसे संसार की नश्वरता का अनुभव हुआ। वे संसार को छोड़कर त्यागी बने और आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि प्राप्त की।[34] तथागत बुद्ध भी अनेक बार मिथिला पहुँचे थे। उन्होंने वहाँ मखादेव और ब्रह्मायुसुत्तों का प्रवचन दिया था।[35] थेरथेरी-गाथा के अनुसार वासिट्ठी नामक एक थेरी ने तथागत बुद्ध का उपदेश सुना और बौद्ध धर्म में प्रव्रजित हुए।[36] बौद्ध युग में मिथिला के राजा सुमित्र ने धर्म के अभ्यास में अपने-आपको तल्लीन किया था।[37] मिथिला विज्ञों की जन्मभूमि रही है। मिथिला के तर्कशास्त्री प्रसिद्ध रहे हैं। ईस्वी सन् की नवमी सदी के प्रकाण्ड पण्डित मण्डन मिश्र वहीं के थे। उनकी धर्मपत्नी ने शंकराचार्य को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। महान् नैयायिक वाचस्पति मिश्र की यह जन्मभूमि थी। मैथिली कवि विद्यापति यहाँ के राजदरबार में रहते थे। कितने ही विद्वान् सीतामढ़ी के पास मुहिला नामक स्थान को प्राचीन मिथिला का अपभ्रंश मानते हैं।[38]

जम्बूद्वीप

गणधर गौतम भगवान् महावीर के प्रधान अन्तेवासी थे। वे महान् जिज्ञासु थे। उनके अन्तर्मानस में यह प्रश्न उद्बुद्ध हुआ कि जम्बूद्वीप कहाँ है? कितना बड़ा है? उसका संस्थान कैसा है? उसका आकार/स्वरूप कैसा है? समाधान करते हुए भगवान् महावीर ने कहा—वह सभी द्वीप-समुद्रों में आभ्यन्तर है। वह तिर्यक्लोक के मध्य में स्थित है, सबसे छोटा है, गोल है। अपने गोलाकार में यह एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा है। इसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन तीन कोस एक सौ अट्ठाईस धनुष और साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक है। इसके चारों ओर एक वज्रमय दीवार है। उस दीवार में एक जालीदार गवाक्ष भी है और एक महान् पद्मवरवेदिका है। पद्मवरवेदिका के बाहर एक विशाल वन-खण्ड है। जम्बूद्वीप के विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित—ये चार द्वार हैं। जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र कहाँ है? उसका स्वरूप क्या है? दक्षिणार्द्ध भरत और उत्तरार्द्ध भरत वैताढ्य नामक पर्वत से किस प्रकार विभक्त हुआ है? वैताढ्य पर्वत कहाँ है? वैताढ्य पर्वत पर विद्याधर श्रेणियाँ किस प्रकार हैं? वैताढ्य पर्वत के कितने कूट/शिखर हैं? सिद्धायतन कूट कहाँ है? दक्षिणार्द्ध भरतकूट कहाँ है? ऋषभकूट पर्वत कहाँ है? आदि का विस्तृत वर्णन प्रथम वक्षस्कार में किया गया है। जिज्ञासुगण इसका अध्ययन करें तो उन्हें बहुत कुछ अभिनव सामग्री जानने को मिलेगी।

---

३०. उत्तराध्ययन सुखबोधावृत्ति, पत्र १३६-१४३
३१. विशेषावश्यकभाष्य, गाथा १३१
३२. आवश्यक निर्युक्ति, गाथा ७८२
३३. विविधतीर्थकल्प पृ. ३२
३४. जातक I. १३७-१३८
३५. मज्झिमनिकाय II, ७४ और आगे १३३
३६. थेरथेरी गाथा, प्रकाशक—पालि टेक्सट्स सोसायटी १३६-१३७
३७. बील, रोमांटिक लीजेंड आव द शाक्य बुद्ध, पृ. ३०
३८. दी एन्शियण्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, पृ. ७१८

प्रस्तुत आगम में जिन प्रश्नों पर चिन्तन किया गया है, उन्हीं पर अंग साहित्य में भी विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। स्थानांग, समवायांग और भगवती में अनेक स्थलों पर विविध दृष्टियों से लिखा गया है। इसी प्रकार परवर्ती श्वेताम्बर साहित्य में भी बहुत ही विस्तार से चर्चा की गई है, तो दिगम्बर परम्परा के तिलोयपण्णत्ति आदि ग्रन्थों में भी विस्तार से निरूपण किया गया है। यह वर्णन केवल जैन परम्परा के ग्रन्थों में ही नहीं, भारत की प्राचीन वैदिक परम्परा और बौद्ध परम्परा के ग्रन्थों में भी इस सम्वन्ध में यत्र-तत्र निरूपण किया गया है। भारतीय मनीषियों के अन्तर्मानस में जम्बूद्वीप से प्रति गहरी आस्था और अप्रतिम सम्मान रहा है। जिसके कारण ही विवाह, नामकरण, गृहप्रवेश प्रभृति मांगलिक कार्यों के प्रारम्भ में मंगल कलश स्थापन के समय यह मन्त्र दोहराया जाता है—

जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे····प्रदेशे····नगरे····संवत्सरे····शुभमासे····

वैदिक दृष्टि से जम्बूद्वीप

ऋग्वेद में ब्रह्माण्ड के आकार, आयु आदि के सबम्न्ध में स्फुट वर्णन है पर जम्बूद्वीप के सम्बन्ध में वहाँ चर्चा नहीं हुई है। यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद, आरण्यक आदि में जम्बूद्वीप के सम्बन्ध में कुछ उल्लेख मिलते हैं पर जम्बूद्वीप का व्यवस्थित विवेचन वैदिक पुराण—वायुपुराण, विष्णुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, गरुडपुराण, मत्स्यपुराण, मार्कण्ड़ेयपुराण और अग्निपुराण प्रभृति पुराणों में विस्तार से प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवत, रामायण और महाभारत प्रभृति महाकाव्यों में भी जम्बूद्वीप की चर्चा है। वायुपुराण में सम्पूर्ण पृथ्वी को जम्बूद्वीप, भद्राश्व, केतुमाल, उत्तर-कुरु इन चार द्वीपों में विभक्त किया है।[३९] योगदर्शन व्यासभाव्य में लोक की संख्या सात बताई गई है।[४०] लिखा है—प्रथम लोक का नाम भूलोक है। भूलोक भी सात द्वीपों में विभक्त है। भूलोक के मध्य में सुमेरु पर्वत है। सुमेरु पर्वत के दक्षिण-पूर्व में जम्बू नाम का वृक्ष है। जिसके कारण लवणसमुद्र से वेष्टित द्वीप का नाम जम्बूद्वीप पड़ा। मेरु से उत्तर की ओर नील, श्वेत, शृंगवान नामक तीन पर्वत हैं। प्रत्येक पर्वत का विस्तार दो दो हजार योजन है। इन पर्वतों के बीच में रमणक, हिरण्मय और उत्तर कुरु ये तीन क्षेत्र हैं और सभी का अपना-अपना क्षेत्र विस्तार नौ-नौ योजन है। मेरु से दक्षिण में निषध, हेमकूट और हिम नामक तीन पर्वत हैं। इन पर्वतों के मध्य में हरिवर्ष, किंपुरुष और भारत ये तीन क्षेत्र हैं। मेरु से पूर्व में माल्यवान पर्वत है। माल्यवान पर्वत से समुद्र पर्यन्त भद्राश्व नामक क्षेत्र है। मेरु से पश्चिम में गंधमादन पर्वत है। गंधमादन पर्वत से समुद्रपर्यन्त केतुमाल नामक क्षेत्र है। मेरु के अधोभाग में इलावृत्त क्षेत्र है। जिसका विस्तार पचास हजार योजन है। इस प्रकार जम्बूद्वीप के नौ क्षेत्र हैं। जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन है।

इसी तरह श्रीमद्भागवत[४१] में भी प्रियव्रत के समय पृथ्वी सात द्वीपों में विभक्त हुई। वे द्वीप थे—१. कुशद्वीप २. क्रौंचद्वीप ३. शाकद्वीप ४. जम्बूद्वीप ५. लक्षद्वीप ६. शाल्मलद्वीप ७. पुष्करद्वीप। कमल पत्र के समान गोलाकार इस जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन है। इसमें आठ पर्वतों से विभक्त नौ क्षेत्र हैं। जम्बूद्वीप से सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नामक नदियां चारों दिशाओं से बहती हुई समुद्र में

---

३९. वायुपुराण, अध्याय ३४

४०. जम्बूद्वीप परिशीलन, अनुपम जैन, प्र. दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, मेरठ

४१. श्रीमद्भागवत ५।१।३२-३३

प॰ंचती हैं। विष्णुपुराण[42] में भी जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर ये सात द्वीप बतलाये है। ये सभी चूड़ी के समान गोलाकार हैं। इन सात द्वीपों के मध्य में जम्बूद्वीप है, जो एक लाख योजन विस्तृत है। इसी तरह गरुड़पुराण[43] और अग्निपुराण[44] में भी सात द्वीपों का उल्लेख है और सभी में यह बताया है कि अन्य छह द्वीप इसे वलयाकार में घेरे हुए हैं।[45] इन द्वीपों का विस्तार क्रमश: दुगना-दुगना होता चला गया है। इन सात द्वीपों को सात सागर एकान्तर क्रम से घेरे हुए हैं। लवणसागर, इक्षुसागर, सुरासागर, घृतसागर, दधिसागर, क्षीरसागर और जलसागर—ये इन सात सागरों के क्रमश: नाम हैं।[46]

बौद्धदृष्टि से जम्बूद्वीप

वैदिक परम्परा की तरह बौद्ध परम्परा में भी जम्बूद्वीप की चर्चा प्राप्त होती है। आचार्य वसुबन्धु ने अभिधर्मकोष में इस पर चर्चा करते हुए लिखा है कि जम्बूद्वीप, पूर्व विदेह, गोदानीय और उत्तर कुरु ये चार महाद्वीप हैं। मेरु पर्वत के दक्षिण की ओर जम्बूद्वीप स्थित है। इसका आकार शकट के सदृश है। इसके तीन पार्श्व दो हजार योजन के हैं। इस द्वीप में उत्तर की ओर जाकर कीड़े की आकृति के तीन कीटाद्रि पर्वत हैं। उनके उत्तर में पुन: तीन कीटाद्रि हैं। अन्त में हिमपर्वत है। इस पर्वत के उत्तर में अनवतप्त सरोवर है जिससे गंगा, सिन्धु, वक्षु और सीता ये चार नदियां निकली। यह सरोवर पचास योजन चौड़ा है। इसके सन्निकट जम्बू वृक्ष है, जिसके नाम से यह जम्बूद्वीप कहलाता है। जम्बूद्वीप के मानवों का प्रमाण ३½ या ४ हाथ है। उनकी आयु दस वर्ष से लेकर अमित आयु कल्पानुसार घटती या बढ़ती रहती है।[47]

जैन दृष्टि से जम्बूद्वीप

प्रस्तुत आगम में जम्बूद्वीप का आकार गोल बताया है और उसके लिए कहा गया है कि तेल में तले हुए पूए जैसा गोल, रथ के पहिये जैसा गोल, कमल की कर्णिका जैसा गोल और प्रतिपूर्ण चन्द्र जैसा गोल है। भगवती,[48] जीवाजीवाभिगम,[49] ज्ञानार्णव,[50] त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित,[51] लोकप्रकाश,[52] आराधना-

---

४२. विष्णुपुराण २।२।५
४३. गरुडपुराण १।५४।४
४४. अग्निपुराण १०८।१
४५. (क) अग्निपुराण १०८।३,२
(ख) विष्णुपुराण २।२।७,६
(ग) गरुडपुराण १।५४।३
(घ) श्रीमद्भागवत ५।१।३२-३३
४६. (क) गरुडपुराण १।५४।५
(ख) विष्णुपुराण २।२।६
(ग) अग्निपुराण १०८।२
४७. अभिधर्मकोष ३, ४५-८७
४८. भगवतीसूत्र ११।१०।८
४९, खरकांडे किंसंठिए पण्णत्ते ? गोयमा ! झल्लरीसंठिए पण्णत्ते। —जीवाजीवाभिगम सू. ३।१।७४
५०. मध्ये स्याज्झल्लरीनिभ:। —ज्ञानार्णव ३३।८
५१. मध्येतो झल्लरीनिभ:। —त्रिषष्टिशलाका पु. च. २।३।४७९
५२ एतावान्मध्यलोक: स्यादाकृत्या झल्लरीनिभ:। —लोकप्रकाश १२।४५

समुच्चय,[५३] आदिपुराण[५४] में पृथ्वी का आकार झल्लरी (झालर या चूड़ी) के आकार के समान गोल बताया गया है। प्रशमरतिप्रकरण[५५] आदि में पृथ्वी का आकार स्थाली के सदृश भी बताया गया है। पृथ्वी की परिधि भी वृत्ताकार है, इसलिए जीवाजीवाभिगम में परिवेष्टित करने वाले घनोदधि प्रभृति वायुओं को वलयाकार माना है।[५६] तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ में पृथ्वी (जम्बूद्वीप) की उपमा खड़े हुए मृदंग के ऊर्ध्व भाग (सपाट गोल) से दी गई है।[५७] दिगम्बर परम्परा के जम्बूद्दीवपण्णत्ति[५८] ग्रंथ में जम्बूद्वीप के आकार का वर्णन करते हुए उसे सूर्यमण्डल की तरह वृत्त बताया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि जैन साहित्य में पृथ्वी नारंगी के समान गोल न होकर चपटी प्रतिपादित है। जैन परम्परा ने ही नहीं वायुपुराण, पद्मपुराण, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, भागवतपुराण प्रभृति पुराणों में भी पृथ्वी को समतल आकार, पुष्कर पत्र समाकार चित्रित किया है। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से पृथ्वी नारंगी की तरह गोल है। भारतीय मनीषियों द्वारा निरूपित पृथ्वी का आकार और वैज्ञानिकसम्मत पृथ्वी के आकार में अन्तर है। इस अन्तर को मिटाने के लिए अनेक मनीषीगण प्रयत्न कर रहे हैं। यह प्रयत्न दो प्रकार से चल रहा है। कुछ चिन्तकों का यह अभिमत है कि प्राचीन वाङ्मय में आये हुए इन शब्दों की व्याख्या इस प्रकार की जाये जिससे आधुनिक विज्ञान के हम सन्निकट हो सकें तो दूसरे मनीषियों का अभिमत है कि विज्ञान का जो मत है वह सदोष है, निर्बल है; प्राचीन महामनीषियों का कथन ही पूर्ण सही है।

प्रथम वर्ग के चिन्तकों का कथन है कि पृथ्वी के लिये आगम-साहित्य में झल्लरी या स्थाली की उपमा दी गई है। वर्तमान में हमने झल्लरी शब्द को झालर मानकर और स्थाली शब्द को थाली मानकर पृथ्वी को वृत्त अथवा चपटी माना है। झल्लरी का एक अर्थ झांझ नामक वाद्य भी है और स्थाली का अर्थ भोजन पकाने वाली हँडिया भी है। पर आधुनिक युग में यह अर्थ प्रचलित नहीं है। यदि हम झांझ और हँडिया अर्थ मान लें तो पृथ्वी का आकार गोल सिद्ध हो जाता है।[५९] जो आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से भी संगत है। स्थानांगसूत्र में झल्लरी शब्द झांझ नामक वाद्य के अर्थ में व्यवहृत हुआ है।[६०]

दूसरी मान्यता वाले चिन्तकों का अभिमत है कि विज्ञान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें सतत अनुसन्धान और गवेषणा होती रहती है। विज्ञान ने जो पहले सिद्धान्त संस्थापित किये थे आज वे सिद्धान्त नवीन प्रयोगों और अनुसन्धानों से खण्डित हो चुके हैं। कुछ आधुनिक वैज्ञानिकों ने 'पृथ्वी गोल है' इस मान्यता का खण्डन किया है।[६१] लंदन में 'फ्लेट अर्थ सोसायटी' नामक संस्था इस सम्बन्ध में जागरूकता से इस तथ्य को कि पृथ्वी

---

५३. आराधनासमुच्चय—५८
५४. आदिपुराण—४।४१
५५. स्थालमिव तिर्यग्लोकम्। —प्रशमरति, २११
५६. घनोदहिवलए—वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए। —जीवाजीवाभिगम ३।१।७६
५७. मज्झिमलोयायारो उब्भिय-मुरअद्धसारिच्छो। —तिलोयपण्णत्ति १।१३७
५८. जम्बुद्दीवपण्णत्ति १।२०
५९. तुलसीप्रज्ञा, लाडनूं, अप्रेल-जून १९७५, पृ. १०६, ले. युवाचार्य महाप्रज्ञजी
६०. मज्झिमं पुण झल्लरी। —स्थानांग ७।४२
६१. Research Article—A criticism upon modern views of our earth by Sri Gyan Chand Jain (Appeared in Pt. Sri Kailash Chandra Shastri Felicitation Volume PP. 446-450)

चपटी है, उजागर करने का प्रयास कर रही है, तो भारत में श्री अभयसागर जी महाराज व आर्यिका ज्ञानमती जी दत्तचित्त होकर उसे चपटी सिद्ध करने में संलग्न हैं। उन्होंने अनेक पुस्तकें भी इस सम्बन्ध में प्रकाशित की हैं। अतः जिज्ञासु वर्ग उनके अध्ययन से बहुत कुछ नये तथ्य ज्ञात कर सकेगा।

द्वितीय वक्षस्कार : एक चिन्तन

द्वितीय वक्षस्कार में गणधर गौतम की जिज्ञासा पर भगवान् महावीर ने कहा कि भरत क्षेत्र में काल दो प्रकार का है और वह अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नाम से विश्रुत है। दोनों का कालमान बीस कोडाकोडी सागरोपम है। सागर या सागरोपम मानव को ज्ञात समस्त संख्याओं से अधिक काल वाले कालखण्ड की उपमा द्वारा प्रदर्शित परिमाण है। वैदिक दृष्टि से चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षों का एक कल्प होता है। इस कल्प में एक हजार चतुर्युग होते हैं। पुराणों में इतना काल ब्रह्मा के एक दिन या रात्रि के बराबर माना है। जैन दृष्टि से अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के छह-छह उपविभाग होते हैं। वे इस प्रकार हैं—

अवसर्पिणी

क्रम	काल विस्तार
१. सुषमा-सुषमा	चार कोटाकोटि सागर
२. सुषमा	तीन कोटाकोटि सागर
३. सुषमा-दुःषमा	दो कोटाकोटि सागर
४. दुःषमा-सुषमा	एक कोटाकोटि सागर में ४२००० वर्ष न्यून
५. दुःषमा	२१००० वर्ष
६. दुःषमा-दुःषमा	२१००० वर्ष

उत्सर्पिणी

क्रम	काल विस्तार
१. दुःषमा-दुःषमा	२१००० वर्ष
२. दुःषमा	२१००० वर्ष
३. दुःषमा-सुषमा	एक कोटाकोटि सागर में ४२००० वर्ष न्यून
४. सुषमा-दुःषमा	दो कोटाकोटि सागर
५. सुषमा	तीन कोटाकोटि सागर
६. सुषमा-सुषमा	चार कोटाकोटि सागर

अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नामक इन दोनों का काल बीस कोडाकोडी सागरोपम है। यह भरत-क्षेत्र और ऐरावतक्षेत्र में रहट-घट न्याय[६२] से अथवा शुक्ल-कृष्ण पक्ष[६३] के समान एकान्तर क्रम से सदा चलता रहता है। आगमकार ने अवसर्पिणी काल के सुषमा-सुषमा नामक प्रथम आरे का विस्तार से निरूपण किया है। उस काल में मानव का जीवन अत्यन्त सुखी था। उस पर प्रकृति देवी की अपार कृपा थी। उसकी इच्छाएं स्वल्प थीं और वे स्वल्प इच्छाएं कल्पवृक्षों के माध्यम से पूर्ण हो जाती थीं। चारों ओर सुख का सागर ठाठें मार रहा था। वे मानव पूर्ण स्वस्थ और प्रसन्न थे। उस युग में पृथ्वी सर्वरसा थी।

६२. अवसप्पिणि उस्सप्पिणि कालच्चिय रहटघटियणाए।
होंति अणताणंता भरहेरावद खिदिम्मि पुढं॥ —तिलोयपण्णति ४।१६१४

६३. यथा शुक्लं च कृष्णं च पक्षद्वयमनन्तरम्।
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योरेवं क्रम समुद्भवः॥ —पद्मपुराण ३।७३

मानव तीन दिन में एक बार आहार करता था और वह आहार उन्हें उन वृक्षों से ही प्राप्त होता था। मानव वृक्षों के नीचे निवास करता था। वे घटादार और छायादार वृक्ष भव्य भवन के सदृश ही प्रतीत होते थे। न तो उस युग में असि थी, न मसि और न ही कृषि थी। मानव पादचारी था, स्वेच्छा से इधर-उधर परिभ्रमण कर प्राकृतिक सौन्दर्य-सुषमा के अपार आनन्द को पाकर आह्लादित था। उस युग के मानवों की आयु तीन पल्योपम की थी। जीवन की सांध्यवेला में छह माह अवशेष रहने पर एक पुत्र और पुत्री समुत्पन्न होते थे। उनपचास दिन वे उसकी सार-सम्भाल करते और अन्त में छींक और उवासी / जम्हाई के साथ आयु पूर्ण करते। इसी तरह से द्वितीय आरक और तृतीय आरक के दो भागों तक भोगभूमि—अकर्मभूमि काल कहलाता है। क्योंकि इन कालखण्डों में समुत्पन्न होने वाले मानव आदि प्राणियों का जीवन भोगप्रधान रहता है। केवल प्रकृतिप्रदत्त पदार्थों का उपभोग करना ही इनका लक्ष्य होता है। कषाय मन्द होने से उनके जीवन में संक्लेश नहीं होता। भोगभूमि काल को आधुनिक शब्दावली में कहा जाय तो वह 'स्टेट ऑफ नेचर' अर्थात् प्राकृतिक दशा के नाम से पुकारा जायेगा। भोगभूमि के लोग समस्त संस्कारों से शून्य होने पर भी स्वाभाविक रूप से ही सुसंस्कृत होते हैं। घर-द्वार, ग्राम-नगर, राज्य और परिवार नहीं होता और न उनके द्वारा निर्मित नियम ही होते हैं। प्रकृति ही उनकी नियामक होती है। छह ऋतुओं का चक्र भी उस समय नहीं होता। केवल एक ऋतु ही होती है। उस युग के मानवों का वर्ण स्वर्ण सदृश होता है। अन्य रंग वाले मानवों का पूर्ण अभाव होता है। प्रथम आरक से द्वितीय आरक में पूर्वापेक्षया वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि प्राकृतिक गुणों में शनैः शनैः हीनता आती चली जाती है। द्वितीय आरक में मानव की आयु तीन पल्योपम से कम होती-होती दो पल्योपम की हो जाती है। उसी तरह से तृतीय आरे में भी ह्रास होता चला जाता है। धीरे-धीरे यह ह्रासोन्मुख अवस्था अधिक प्रबल हो जाती है, तब मानव के जीवन में अशान्ति का प्रादुर्भाव होता है। आवश्यकताएँ बढ़ती हैं। उन आवश्यकताओं की पूर्ति प्रकृति से पूर्णतया नहीं हो पाती। तब एक युगान्तरकारी प्राकृतिक एवं जैविक परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन से अनभिज्ञ मानव भयभीत बन जाता है। उन मानवों को पथ प्रदर्शित करने के लिये ऐसे व्यक्ति आते हैं जो जैन पारिभाषिक शब्दावली में 'कुलकर' की अभिधा से अभिहित किये जाते हैं और वैदिकपरम्परा में वे 'मनु' की संज्ञा से पुकारे गये हैं।

अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी शब्द का प्रयोग जैसा जैनसाहित्य में हुआ है वैसा ही प्रयोग विष्णुपुराण में भी हुआ है। वहाँ लिखा है—हे द्विज! जम्बूद्वीपस्थ अन्य सात क्षेत्रों में भारतवर्ष के समान न काल की अवसर्पिणी अवस्था है और न उत्सर्पिणी अवस्था ही है।[६४] इसी तरह विष्णुपुराण, अग्निपुराण और मार्कण्डेय-पुराण में कर्मभूमि और भोगभूमि का उल्लेख हुआ है। विष्णुपुराण में लिखा है कि समुद्र के उत्तर और हिमाद्रि के दक्षिण में भारतवर्ष है। इसका विस्तार नौ हजार योजन विस्तृत है। यह स्वर्ग और मोक्ष जाने वाले पुरुषों की कर्मभूमि है। इसी स्थान से मानव स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त करता है। यहीं से नरक और तिर्यञ्च गति में भी जाते हैं।[६५] भारतभूमि के अतिरिक्त अन्य भूमियाँ भोगभूमि हैं।[६६] अग्निपुराण में भारत-वर्ष को कर्मभूमि कहा है।[६७] मार्कण्डेयपुराण में भी भोगभूमि और कर्मभूमि की चर्चा है।[६८]

---

६४. अपसर्पिणी न तेषां वै न चोत्सर्पिणी द्विज ! ।
नत्वेषाऽस्ति युगावस्था तेषु स्थानेषु सप्तसु ॥ —विष्णुपुराण द्वि. अ. अ. ४, श्लोक १३

६५. विष्णुपुराण, द्वितीयांश, तृतीय अध्याय, श्लोक १ से ५

६६. अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने ! ।
यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्या भोगभूमयः ॥

६७. अग्निपुराण, अध्याय ११८, श्लोक २

६८. मार्कण्डेयपुराण, अध्याय ५५, श्लोक २०-२१

कुलकर : एक चिन्तन

भोगभूमि के अन्तिम चरण में घोर प्राकृतिक परिवर्तन होता है। इससे पूर्व भोगभूमि में मानव का जीवन प्रशान्त था पर जब प्रकृति में परिवर्तन हुआ तो भोले-भाले मानव विस्मित हो उठे। उन्होंने सर्वप्रथम सूर्य का चमचमाता आलोक देखा और चन्द्रमा की चारु चन्द्रिका को छिटकते हुए निहारा। वे सोचने लगे कि ये ज्योतिपिण्ड क्या हैं ? इसके पूर्व भी सूर्य और चन्द्र थे पर कल्पवृक्षों के दिव्य आलोक के कारण मानवों का ध्यान उधर गया नहीं था। अब कल्पवृक्षों का आलोक क्षीण हो गया तो सूर्य और चन्द्र की प्रभा प्रकट हो गई। उससे आतंकित मानवों को प्रतिश्रुति कुलकर ने कहा कि इन ज्योतियों से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। ये ज्योतिपिण्ड तुम्हारा कुछ भी बाल बांका नहीं करेंगे। ये ज्योतियाँ ही दिन और रात की अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं। प्रतिश्रुति के इन आश्वासन-वचनों से जनमानस प्रतिश्रुत (आश्वस्त) हुआ और उन्होंने प्रतिश्रुति का अभिवादन किया।[६९] काल के प्रवाह से तेजांग नामक कल्पवृक्षों का तेज प्रतिपल-प्रतिक्षण क्षीण हो रहा था, जिससे अनन्त आकाश में तारागण टिमटिमाते हुए दिखलाई देने लगे। सर्वप्रथम मानवों ने अन्धकार को निहारा। अन्धकार को निहार कर वे भयभीत हुए। उस समय सन्मति नामक कुलकर ने उन मानवों को आश्वस्त किया कि आप न घबरायें। तेजांग कल्पवृक्ष के तेज के कारण आपको पहले तारागण दिखालाई नहीं देते थे। आज उनका प्रकाश क्षीण हो गया है जिससे टिमटिमाते हुए तारागण दिखलाई दे रहे हैं। आप घबराइये नहीं, ये आपको कुछ भी क्षति नहीं पहुँचाएंगे। अतः उन मानवों ने सन्मति का अभिनन्दन किया। कल्पवृक्षों की शक्ति धीरे-धीरे मन्द और मन्दतर होती जा रही थी जिससे मानवों की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पा रही थी। अतः वे उन कल्पवृक्षों पर अधिकार करने लगे थे। कल्पवृक्षों की संख्या भी पहले से बहुत अधिक कम हो गई थी, जिससे परस्पर विवाद और संघर्ष की स्थिति पैदा हो गई थी। क्षेमंकर और क्षेमन्धर कुलकरों ने कल्पवृक्षों की सीमा निर्धारित कर इस बढ़ते हुए विवाद को उपशान्त किया था।[७०] आवश्यकनिर्युक्ति[७१] के अनुसार एक युगल वन में परिभ्रमण कर रहा था, सामने से एक हाथी, जिसका रंग श्वेत था, जो बहुत ही बलिष्ठ था, वह आ रहा था। हाथी ने उस युगल को निहारा तो उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया। उस ज्ञान से उसने यह जाना कि हम पूर्व भव में पश्चिम महाविदेह में मानव थे। हम दोनों मित्र थे। यह सरल था पर मैं बहुत ही कुटिल था। कुटिलता के कारण मैं मरकर हाथी बना और यह मानव बना। सन्निकट पहुँचने पर उसने सूंड उठाकर उसका आलिंगन किया और उसे उठाकर अपनी पीठ पर बिठा लिया। जब अन्य युगलों ने यह चीज देखी तो उन्हें भी आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा—यह व्यक्ति हम से अधिक शक्तिशाली है, अतः इसे हमें अपना मुखिया बना लेना चाहिए। विमल कान्ति वाले हाथी पर आरूढ़ होने के कारण उसका नाम विमलवाहन विश्रुत हुआ। नीतिज्ञ विमलवाहन कुलकर ने देखा कि यौगलिकों में कल्पवृक्षों को लेकर परस्पर संघर्ष है। उस संघर्ष को मिटाने के लिए कल्पवृक्षों का विभाजन किया। तिलोयपण्णत्ति[७२] के अनुसार उस युग में हिमतुषार का प्रकोप हुआ था। प्रकृति के परिवर्तन के कारण सूर्य का आलोक मन्द था, जिसके कारण वाष्पावरण चारों ओर हो गया। सूर्य की तप्त किरणें उस वाष्प का भेदन न कर सकीं और

---

६९. तिलोयपण्णत्ति, ४/४२५ से ४२९

७०. तिलोयपण्णत्ति, ४/४३९ से ४५६

७१. (क) आवश्यकनिर्युक्ति, पृ. १५३
    (ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र, १/२/१४२-१४७

७२. तिलोयपण्णत्ति, ४/४७५-४८१

वह वाष्प हिम और तुषार के रूप में बदल गया। चन्द्राभ नामक कुलकर ने मानवों को आश्वस्त करते हुए कहा कि सूर्य की किरणें ही इस हिम की औषध हैं।[७३] हिमवाष्प अन्त में बादलों के रूप में परिणत होकर बरसने लगा। भोगभूमि के मानवों ने प्रथम बार वर्षा देखी। वर्षा से ही कल-कल, छल-छल करते नदी-नाले प्रवाहित होने लगे। यह भोगभूमि और कर्मभूमि के सन्धिकाल की बात है। इन महान् प्राकृतिक परिवर्तनों का प्रवाह प्राकृतिक पर्यावरण में रहने वाले जीवों पर आत्यंतिक रूप से हुआ। इन प्रवाहों के फलस्वरूप बाह्य रहन-सहन में भी अन्तर आया।

तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ में लिखा है कि सातवें कुलकर तक माता-पिता अपनी संतान का मुख-दर्शन किये बिना ही मृत्यु को वरण कर लेते थे।[७४] किन्तु आठवें कुलकर के समय शिशु-युग्म के जन्म लेने के पश्चात् उनके माता-पिता की मृत्यु नहीं हुई। वे सन्तति का मुख देखना मृत्यु का वरण मानते थे। आठवें कुलकर ने बताया कि यह तुम्हारी ही सन्तान है। भयभीत होने की आवश्यकता नहीं, सन्तान का मुख निहारो और उसके बाद जब भी मृत्यु आये, हर्ष से उसे स्वीकार करो। लोग बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कुलकर का अभिवादन किया। यशस्वी नामक कुलकर ने शिशुओं के नामकरण की प्रथा प्रारम्भ की और अभिचन्द्र नामक दसवें कुलकर ने बालकों के मनोरंजनार्थ खेल-खिलौनों का आविष्कार किया।[७५] तेरहवें कुलकर ने जरायु को पृथक् करने का उपदेश दिया और कहा कि जन्मजात शिशु का जरायु हटा दो जिससे शिशु को किसी प्रकार का कोई खतरा नहीं होगा। चौदहवें कुलकर ने सन्तान की नाभि-नाल को पृथक् करने का सन्देश दिया। इस प्रकार इन कुलकरों ने समय-समय पर मानवों को योग्य मार्गदर्शन देकर उनके जीवन को व्यवस्थित किया। प्रस्तुत आगम में तो कुलकरों के नाम और उनके द्वारा की गई दण्डनीति, हकारनीति, मकारनीति और धिक्कारनीति का ही निरूपण है। उपर्युक्त जो विवरण हमने दिया है, वह दिगम्बरपरम्परा के तिलोयपण्णत्ति, जिनसेनरचित महापुराण तथा हरिवंशपुराण प्रभृति ग्रन्थों में आया है।

स्थानांगसूत्र की वृत्ति में आचार्य अभयदेव[७६] ने लिखा है कि कुल की व्यवस्था का सञ्चालन करने वाला जो प्रकृष्ट प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति होता था, वह कुलकर कहलाता था। आचार्य जिनसेन ने कुलकर की परिभाषा करते हुए लिखा है कि प्रजा के जीवन-उपायों के ज्ञाता मनु और आर्य मनुष्यों को कुल की तरह एक रहने का जिन्होंने उपदेश दिया, वे कुलकर कहलाये। युग की आदि में होने से वे युगादि पुरुष भी कहलाये।[७७]

तृतीय आरे के एक पल्योपम का आठवाँ भाग जब अवशेष रहता है, उस समय भरतक्षेत्र में कुलकर पैदा होते हैं। पउमचरियं,[७८] हरिवंशपुराण[७९] और सिद्धान्तसंग्रह[८०] में चौदह कुलकरों के नाम मिलते हैं— १. सुमति २. प्रतिश्रुति ३. सीमङ्कर ४. सीमन्धर ५. क्षेमंकर ६. क्षेमंधर ७. विमलवाहन ८. चक्षुष्मान्

---

७३. तिलोयपण्णत्ति ४।४७५-४८१

७४. गब्भादो जुगलेसुं णिक्कतेसुं मरंति तक्कालं ॥ —तिलोयपण्णत्ति ४/३७५-३७६

७५. तिलोयपण्णत्ति, ४/४६५-४७३

७६. स्थानांगवृत्ति, ७६७।५१८।१

७७. महापुराण, आदिपुराण, ६।२११।२१२

७८. पउमचरियं, ३ । ५०-५५

७९. हरिवंशपुराण, सर्ग ७, श्लोक १२४-१७०

८०. सिद्धान्तसंग्रह, पृष्ठ १८

९. यशस्वी १०. अभिचन्द्र ११. चन्द्राभ १२. प्रसेनजित् १३. मरुदेव १४. नाभि। आचार्य जिनसेन ने संख्या की दृष्टि से चौदह कुलकर माने हैं, किन्तु पहले प्रतिश्रुति, दूसरे सन्मति, तीसरे क्षेमंकृत, चौथे क्षेमंधर, पाँचवें सीमंकर और छठे सीमंधर, इस प्रकार कुछ व्युत्क्रम से संख्या दी है। विमलवाहन से आगे के नाम दोनों ग्रन्थों में (पउमचरियं और महापुराण में) समान मिलते हैं। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[८१] में इन चौदह नामों के साथ ऋषभ को जोड़कर पन्द्रह कुलकर बताये हैं। इस तरह अपेक्षादृष्टि से कुलकरों की संख्या में मतभेद हुआ है। चौदह कुलकरों में पहले के छह और ग्यारहवां चन्द्राभ के अतिरिक्त सात कुलकरों के नाम स्थानांग आदि के अनुसार ही हैं। जिन ग्रन्थों में छह कुलकरों के नाम नहीं दिये गये हैं, उसके पीछे हमारी दृष्टि से वे केवल पथ-प्रदर्शक रहे होंगे, उन्होंने दण्ड-व्यवस्था का निर्माण नहीं किया था, इसलिये उन्हें गौण मानकर केवल सात ही कुलकरों का उल्लेख किया गया है।

भगवान् ऋषभदेव प्रथम सम्राट् हुए और उन्होंने यौगलिक स्थिति को समाप्त कर कर्मभूमि का प्रारम्भ किया था। इसलिये उन्हें कुलकर न माना हो। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में उन्हें कुलकर लिखा है। सम्भव है मानव समूह के मार्गदर्शक नेता अर्थ में कुलकर शब्द व्यवहृत हुआ हो। कितने ही आचार्य इस संख्याभेद को वाचना-भेद मानते हैं।[८२]

कुलकर के स्थान पर वैदिकपरम्परा के ग्रन्थों में मनु का उल्लेख हुआ है। आदिपुराण[८३] और महापुराण[८४] में कुलकरों के स्थान पर मनु शब्द आया है। स्थानांग आदि की भांति मनुस्मृति[८५] में भी सात महातेजस्वी मनुओं का उल्लेख है। उनके नाम इस प्रकार हैं—१. स्वयंभू २. स्वारोचिष् ३. उत्तम ४. तामस ५. रैवत ६. चाक्षुष ७. वैवस्वत।

अन्यत्र चौदह मनुओं के भी नाम प्राप्त होते हैं।[८६] वे इस प्रकार हैं—१. स्वायम्भुव २. स्वारोचिष् ३. औत्तमि ४. तापस ५. रैवत ६. चाक्षुष ७. वैवस्वत ८. सावर्णि ९. दक्षसावर्णि १०. ब्रह्मसावर्णि ११. धर्म-सावर्णि १२. रुद्रसावर्णि १३. रौच्यदेवसावर्णि १४. इन्द्रसावर्णि।

मत्स्यपुराण,[८७] मार्कण्डेयपुराण, दैवी भागवत और विष्णुपुराण प्रभृति ग्रन्थों में भी स्वायम्भुव आदि चौदह मनुओं के नाम प्राप्त हैं। वे इस प्रकार हैं—१. स्वायम्भुव २. स्वारोचिष् ३. औत्तमि ४. तापस ५. रैवत ६. चाक्षुष ७. वैवस्वत ८. सावर्णि ९. रौच्य १०. भौत्य ११. मेरुसावर्णि १२. ऋभु १३. ऋतुधामा १४. विश्वक्सेन।

मार्कण्डेयपुराण[८८] में वैवस्वत के पश्चात् पांचवां सावर्णि, रौच्य और भौत्य आदि सात मनु और माने हैं।

---

८१. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, व. २, सूत्र २९
८२. ऋषभदेव : एक परिशीलन, पृष्ठ १२०
८३. आदिपुराण, ३ । १५
८४. महापुराण, ३ । २२९, पृष्ठ ६६
८५. मनुस्मृति, १ । ६१-६३
८६. (क) मोन्योर-मोन्योर विलियम : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी, पृ. ७८४
(ख) रघुवंश १ । ११
८७. मत्स्यपुराण, अध्याय ९ से २१
८८. मार्कण्डेयपुराण

श्रीमद्भागवत[८९] में उपर्युक्त सात नाम वे ही हैं, आठवें नाम से आगे के नाम पृथक् हैं। वे नाम इस प्रकार हैं—८. सावर्णि ९. दक्षसावर्णि १०. ब्रह्मसावर्णि ११. धर्मसावर्णि १२. रुद्रसावर्णि १३. देवसावर्णि १४. इन्द्रसावर्णि।

मनु को मानव जाति का पिता व पथ-प्रदर्शक व्यक्ति माना है। पुराणों के अनुसार मनु को मानव जाति का गुरु तथा प्रत्येक मन्वन्तर में स्थित कहा है। वह जाति के कर्त्तव्य का ज्ञाता था। वह मननशील और मेधावी व्यक्ति रहा है। वह व्यक्ति विशेष का नाम नहीं, किन्तु उपाधिवाचक है। यों मनु शब्द का प्रयोग ऋग्वेद,[९०] अथर्ववेद,[९१] तैत्तिरीयसंहिता,[९२] शतपथब्राह्मण,[९३] जैमिनीय उपनिषद्[९४] में हुआ है, वहाँ मनु को ऐतिहासिक व्यक्ति माना गया है। भगवद्गीता[९५] में भी मनुओं का उल्लेख है।

चतुर्दश मनुओं का कालप्रमाण सहस्र युग माना गया है।[९६]

कुलकरों के समय हकार, मकार और धिक्कार ये तीन नीतियाँ प्रचलित हुई। ज्यों-ज्यों काल व्यतीत होता चला गया त्यों-त्यों मानव के अन्तर्मानस में परिवर्तन होता गया और अधिकाधिक कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई।

भगवान् ऋषभदेव

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में भगवान् ऋषभदेव को पन्द्रहवाँ कुलकर माना है तो साथ ही उन्हें प्रथम तीर्थङ्कर, प्रथम राजा, प्रथम केवली, प्रथम धर्मचक्रवर्ती आदि भी लिखा है। भगवान् ऋषभदेव का जाज्वल्यवान व्यक्तित्व और कृतित्व अत्यन्त प्रेरणादायी है। वे ऐसे विशिष्ट महापुरुष हैं, जिनके चरणों में जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीनों भारतीय धाराओं ने अपनी अनन्त आस्था के सुमन समर्पित किये हैं। स्वयं मूल आगमकार ने उनकी जीवनगाथा बहुत ही संक्षेप में दी है। वे बीस लाख पूर्व तक कुमार अवस्था में रहे। तिरेसठ लाख पूर्व तक उन्होंने राज्य का संचालन किया। एक लाख पूर्व तक उन्होंने संयम-साधना कर तीर्थङ्कर जीवन व्यतीत किया। उन्होंने गृहस्थाश्रम में प्रजा के हित के लिये कलाओं का निर्माण किया। बहत्तर कलाएं पुरुषों के लिये तथा चौंसठ कलाएं स्त्रियों के लिये प्रतिपादित कीं।[९७] साथ ही सौ शिल्प भी बताये। आदिपुराण ग्रन्थ में दिगम्बर आचार्य जिनसेन[९८] ने ऋषभदेव के समय प्रचलित छह आजीविकाओं का उल्लेख किया है—१. असि—सैनिकवृत्ति,

---

८९. श्रीमद्भागवत, ८। ५ अ

९०. ऋग्वेद, १। ८०, १६; ८। ६३, १; १०, १००। ५

९१. अथर्ववेद, १४। २, ४१

९२. तैत्तिरीयसंहिता, १। ५, १, ३; ७। ५, १५, ३; ६, ७, १; ३, ३, २, १; ५। ४, १०, ५; ६। ६, ६, १; का. सं. ८१५

९३. शतपथब्राह्मण, १। १, ४। १४

९४. जैमिनीय उपनिषद्, ३। १५, २

९५. भगवद्गीता, १०। ६

९६. (क) भागवत स्क. ८, अ. १४
(ख) हिन्दी विश्वकोष, १६ वां भाग, पृ. ६४८-६५५

९७. कल्पसूत्र १९५

९८. आदिपुराण १। १७८

२. मसि—लिपिविद्या, ३. कृषि—खेती का काम, ४. विद्या—अध्यापन या शास्त्रोपदेश का कार्य, ५. वाणिज्य—व्यापार-व्यवसाय, ६. शिल्प—कलाकौशल ।

उस समय के मानवों को 'षट्कर्मजीवानाम्' कहा गया है।[९९] महापुराण के अनुसार आजीविका को व्यवस्थित रूप देने के लिये ऋषभदेव ने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन तीन वर्णों की स्थापना की।[१००] आवश्यकनिर्युक्ति,[१०१] आवश्यकचूर्णि,[१०२] त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित[१०३] के अनुसार ब्राह्मणवर्ण की स्थापना ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत ने की। ऋग्वेदसंहिता[१०४] में वर्णों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विस्तार से निरूपण है। वहाँ पर ब्राह्मण को मुख, क्षत्रिय को बाहु, वैश्य को उर और शूद्र को पैर बताया है। यह लाक्षणिक वर्णन समाजरूप विराट् शरीर के रूप में चित्रित किया गया है। श्रीमद्भागवत[१०५] आदि में भी इस सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है।

प्रस्तुत आगम में जब भगवान् ऋषभदेव प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं, तब वे चार मुष्ठि लोच करते हैं, जबकि अन्य सभी तीर्थंकरों के वर्णन में पंचमुष्ठि लोच का उल्लेख है। टीकाकार ने विषय को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि जिस समय भगवान् ऋषभदेव लोच कर रहे थे, उस समय स्वर्ण के समान चमचमाती हुई केशराशि को निहार कर इन्द्र ने भगवान् ऋषभदेव से प्रार्थना की, जिससे भगवान् ऋषभदेव ने इन्द्र की प्रार्थना से एक मुष्ठि केश इसी तरह रहने दिये।[१०६] केश रखने से वे केशी या केसरियाजी के नाम से विश्रुत हुए। पद्मपुराण[१०७]. हरिवंशपुराण[१०८] में ऋषभदेव की जटाओं का उल्लेख है। ऋग्वेद[१०९] में ऋषभ की स्तुति केशी के रूप में की गई। वहाँ बताया है कि केशी अग्नि, जल, स्वर्ग और पृथ्वी को धारण करता है और केशी विश्व के समस्त तत्त्वों का दर्शन कराता है और वह प्रकाशमान ज्ञानज्योति है।

भगवान् ऋषभदेव ने चार हजार उग्र, भोग, राजन्य और क्षत्रिय वंश के व्यक्तियों के साथ दीक्षा ग्रहण की। पर उन चार हजार व्यक्तियों को दीक्षा स्वयं भगवान् ने दी, ऐसा उल्लेख नहीं है। आवश्यकनिर्युक्तिकार[११०] ने इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट किया है कि उन चार हजार व्यक्तियों ने भगवान् ऋषभदेव का अनुसरण किया। भगवान् की देखादेखी उन चार हजार व्यक्तियों ने स्वयं केशलुञ्चन आदि क्रियाएं की थीं। प्रस्तुत आगम में यह भी उल्लेख नहीं है कि भगवान् ऋषभदेव ने दीक्षा के पश्चात् कब आहार ग्रहण किया? समवायांग में

---

९९. आदिपुराण ३९।१४३
१००. महापुराण १८३।१६।३६२
१०१. आवश्यकनिर्युक्ति पृ. २३५।१
१०२. आवश्यकचूर्णि २१२-२१४
१०३. त्रिषष्टी. १ । ६
१०४. ऋग्वेदसंहिता १०।९०; ११,१२
१०५. श्रीमद्भागवत ११।१७।१३, द्वितीय भाग पृ. ८०९
१०६. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्षस्कार २, सूत्र ३०
१०७. पद्मपुराण ३।२८८
१०८. हरिवंशपुराण ९।२०४
१०९. ऋग्वेद १०।१३६।१
११०. आवश्यकनिर्युक्ति गाथा ३३७

यह स्पष्ट उल्लेख है कि 'संवच्छरेण भिक्खा लद्धा उसहेण लोगनाहेण।'[१११] इससे यह स्पष्ट है कि भगवान् ऋषभदेव को दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् एक वर्ष से अधिक समय व्यतीत होने पर भिक्षा मिली थी। किस तिथि को भिक्षा प्राप्त हुई थी, इसका उल्लेख 'वसुदेवहिण्डी'[११२] और हरिवंशपुराण[११३] में नहीं हुआ है। वहाँ पर केवल संवत्सर का ही उल्लेख है। पर खरतरगच्छवृहद्गुर्वावली[११४], त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित[११५] और महाकवि पुष्पदन्त[११६] के महापुराण में यह स्पष्ट उल्लेख है कि अक्षय तृतीया के दिन पारणा हुआ। श्वेताम्बर ग्रन्थों के अनुसार ऋषभदेव ने बेले का तप धारण किया था और दिगम्बर ग्रन्थों के अनुसार उन्होंने छह महीनों का तप धारण किया था, पर भिक्षा देने की विधि से लोग अपरिचित थे। अतः अपने-आप ही आचीर्ण तप उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया और एक वर्ष से अधिक अवधि व्यतीत होने पर उनका पारणा हुआ। श्रेयांसकुमार ने उन्हें इक्षुरस प्रदान किया।

तृतीय आरे के तीन वर्ष साढ़े आठ मास शेष रहने पर भगवान् ऋषभदेव दस हजार श्रमणों के साथ अष्टापद पर्वत पर आरूढ हुए और उन्होंने अजर-अमर पद को प्राप्त किया,[११७] जिसे जैनपरिभाषा में निर्वाण या परिनिर्वाण कहा गया है। शिवपुराण में अष्टापद पर्वत के स्थान पर कैलाशपर्वत का उल्लेख है।[११८] जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति,[११९] कल्पसूत्र,[१२०] त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित[१२१] के अनुसार ऋषभदेव की निर्वाणतिथि माघ कृष्णा त्रयोदशी है। तिलोयपण्णत्ति[१२२] एवं महापुराण[१२३] के अनुसार माघ कृष्णा चतुर्दशी है। विज्ञों का मानना है कि भगवान् ऋषभदेव की स्मृति में श्रमणों ने उस दिन उपवास रखा और वे रातभर धर्मजागरण करते रहे। इस-लिये वह रात्रि शिवरात्रि के रूप में जानी गई। ईशान संहिता[१२४] में उल्लेख है कि माघ कृष्णा चतुर्दशी की महानिशा में कोटिसूर्य-प्रभोपम भगवान् आदिदेव शिवगति प्राप्त हो जाने से शिव—इस लिंग से प्रकट हुए। जो निर्वाण के पूर्व आदिदेव थे, वे शिवपद प्राप्त हो जाने से शिव कहलाने लगे।

---

१११. समवायांगसूत्र १५७
११२. भयवं पियामहो निराहारो....पडिलाहेइ सामिं खोयरसेणं।
११३. हरिवंशपुराण, सर्ग ९, श्लोक १८०-१९१
११४. श्री युगादिदेव पारणकपवित्रितायां वैशाखशुक्लपक्षतृतीयायां स्वपदे महाविस्तरेण स्थापिताः।
११५. त्रिषष्टिशलाका पु. च. १।३।३०१
११६. महापुराण, संधि ९, पृ. १४८-१४९
११७. आवश्यकचूर्णि, २२१
११८. शिवपुराण, ५९
११९. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ४८।९१
१२०. कल्पसूत्र, १९९।५९
१२१. त्रिषष्टि श. पु. च. १।६
१२२. माघस्स किण्हि चोद्दसि पुव्वण्हे णिययजम्मणक्खत्ते अट्ठावयम्मि उसहो अजुदेण समं गओज्जोमि।
—तिलोयपण्णत्ति
१२३. महापुराण ३७।३
१२४. माघे कृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि। शिवलिंगतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः। तत्कालव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते तिथिः। —ईशानसंहिता

डॉ० राधाकृष्णन, डॉ० जीवर, प्रोफेसर विरूपाक्ष आदि अनेक विद्वानों ने इस सत्य तथ्य को स्वीकार किया है कि वेदों में भगवान् ऋषभदेव का उल्लेख है। वैदिक महर्षिगण भक्ति-भावना से विभोर होकर प्रभु की स्तुति करते हुए कहते हैं—हे आत्मदृष्टा प्रभु ! परमसुख को प्राप्त करने के लिये हम आपकी शरण में आना चाहते हैं। ऋग्वेद,[१२५] यजुर्वेद[१२६] और अथर्ववेद[१२७] में ऋषभदेव के प्रति अनन्त आस्था व्यक्त की गई है और विविध प्रतीकों के द्वारा ऋषभदेव की स्तुति की गई है। कहीं पर जाज्वल्यमान अग्नि[१२८] के रूप में, कहीं पर परमेश्वर[१२९] के रूप में, कहीं शिव[१३०] के रूप में, कहीं हिरण्यगर्भ[१३१] के रूप में, कहीं ब्रह्मा[१३२] के रूप में, कहीं विष्णु[१३३] के रूप में, कहीं वातरसना श्रमण[१३४] के रूप में, कहीं केशी[१३५] के रूप में स्तुति प्राप्त है।

श्रीमद्भागवत[१३६] में ऋषभदेव का बहुत विस्तार से वर्णन है। उनके माता-पिता के नाम, सुपुत्रों का उल्लेख, उनकी ज्ञानसाधना, धार्मिक और सामाजिक नीतियों का प्रवर्तन और भरत के अनासक्त योग को चित्रित किया गया है तथा अन्य पुराणों में भी ऋषभदेव के जीवनप्रसंग अथवा उनके नाम का उल्लेख हुआ है। बौद्ध-परम्परा के महनीय ग्रन्थ धम्मपद[१३७] में भी ऋषभ और महावीर का एक साथ उल्लेख हुआ है। उसमें ऋषभ को सर्वश्रेष्ठ और धीर प्रतिपादित किया है। अन्य मनीषियों ने उन्हें आदिपुरुष मानकर उनका वर्णन किया है।

---

१२५. ऋग्वेद, १०।१६६।१

१२६. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाति मृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

१२७. अथर्ववेद, कारिका, १९।४२।४

१२८. अथर्ववेद, ९।४।३, ७, १८

१२९. अथर्ववेद, ९।४।७

१३०. प्रभासपुराण, ४९

१३१. (क) ऋग्वेद १०।१२१।१
 (ख) तैत्तिरीयारण्यक भाष्य सायणाचार्य ५।५।१।२
 (ग) महाभारत, शान्तिपर्व ३४९
 (घ) महापुराण, १२।९५

१३२. ऋषभदेवः एक परिशीलन, द्वि. संस्क., पृ. ४९

१३३. सहस्रनाम ब्रह्मशतकम्, श्लोक १००-१०२

१३४. (क) ऋग्वेद, १०।१३६।२
 (ख) तैत्तिरियारण्यक, २।७।१, पृ. १३७
 (ग) बृहदारण्यकोपनिषद्, ४।३।२२
 (घ) एन्शियण्ट इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड बाय मैगस्थनीज एण्ड एरियन, कलकता, १९१६, पृ. ९७-९८

१३५. (क) पद्मपुराण, ३।२८८
 (ख) हरिवंशपुराण ९।२०४
 (ग) ऋग्वेद १०।१३६।१

१३६. श्रीमद्भागवत, १।३।१३; २।७।१०; ५।३।२०; ५।४।५; ५।४।८; ५।४।९-१३; ५।४।२०; ५।५।१६; ५।५।१९; ५।५।२८; ५।१४।४२-४४; ५।१५।१

१३७. उसभं पवरं वीरं महेसिं विजिताविनं। अनेजं नहातकं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ —धम्मपद ४२२

विस्तारभय से यह सभी वर्णन यहाँ न देकर जिज्ञासुओं को प्रेरित करते हैं कि वे लेखक का 'ऋषभदेव : एक परिशीलन' ग्रन्थ तथा धर्मकथानुयोग की प्रस्तावना का अवलोकन करें।

अन्य आरक वर्णन

भगवान् ऋषभदेव के पश्चात् दुष्षमसुषमा नामक आरक में तेईस अन्य तीर्थंकर होते हैं और साथ ही उस काल में ग्यारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव और नौ वासुदेव आदि श्लाघनीय पुरुष भी समुत्पन्न होते हैं। पर उनका वर्णन प्रस्तुत आगम में नहीं आया है। संक्षेप में ही इन आरकों का वर्णन किया गया है। छठे आरक का वर्णन कुछ विस्तार से हुआ है। छठे आरक में प्रकृति के प्रकोप से जन-जीवन अत्यन्त दुःखी हो जायेगा। सर्वत्र हाहाकार मच जायेगा। मानव के अन्तर्मानस में स्नेह-सद्भावना के अभाव में छल-छद्म का प्राधान्य होगा। उनका जीवन अमर्यादित होगा तथा उनका शरीर विविध व्याधियों से संत्रस्त होगा। गंगा और सिन्धु जो महानदियाँ हैं, वे नदियाँ भी सूख जायेंगी। रथचक्रों की दूरी के समान पानी का विस्तार रहेगा तथा रथचक्र की परिधि से केन्द्र की जितनी दूरी होती है, उतनी पानी की गहराई होगी। पानी में मत्स्य और कच्छप जैसे जीव विपुल मात्रा में होंगे। मानव इन नदियों के सन्निकट वैताढ्य पर्वत में रहे हुए बिलों में रहेगा। सूर्योदय और सूर्यास्त के समय बिलों से निकलकर वे मछलियाँ और कछुए पकड़ेंगे और उनका आहार करेंगे। इस प्रकार इक्कीस हजार वर्ष तक मानव जाति विविध कष्टों को सहन करेगी और वहाँ से आयु पूर्ण कर वे जीव नरक और तिर्यञ्च गति में उत्पन्न होंगे। अवसर्पिणी काल समाप्त होने पर उत्सर्पिणी काल का प्रारम्भ होगा। उत्सर्पिणी काल का प्रथम आरक अवसर्पिणी काल के छठे आरक के समान ही होगा और द्वितीय आरक पंचम आरक के सदृश होगा। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि में धीरे-धीरे पुनः सरसता की अभिवृद्धि होगी। क्षीरजल, घृतजल और अमृतजल की वृष्टि होगी, जिससे प्रकृति में सर्वत्र सुखद परिवर्तन होगा। चारों ओर हरियाली लहलहाने लगेगी। शीतल मन्द सुगन्ध पवन ठुमक-ठुमक कर चलने लगेगा। बिलवासी मानव बिलों से बाहर निकल आयेंगे और प्रसन्न होकर यह प्रतिज्ञा ग्रहण करेंगे कि हम भविष्य में मांसाहार नहीं करेंगे और जो मांसाहार करेगा उनकी छाया से भी हम दूर रहेंगे। उत्सर्पिणी के तृतीय आरक में तेईस तीर्थंकर, ग्यारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव, नौ बलदेव आदि उत्पन्न होंगे। चतुर्थ आरक के प्रथम चरण में चौबीसवें तीर्थंकर समुत्पन्न होंगे और एक चक्रवर्ती भी। अवसर्पिणी काल में जहाँ उत्तरोत्तर ह्रास होता है, वहाँ उत्सर्पिणी काल में उत्तरोत्तर विकास होता है। जीवन में अधिकाधिक सुख-शान्ति का सागर ठाठें मारने लगता है। चतुर्थ आरक के द्वितीय चरण से पुनः यौगलिक काल प्रारम्भ हो जाता है। कर्मभूमि से मानव का प्रस्थान भोगभूमि की ओर होता है। इस प्रकार द्वितीय वक्षस्कार में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल का निरूपण हुआ है। यह निरूपण ज्ञानवर्द्धन के साथ ही साधक के अन्तर्मानस में यह भावना भी उत्पन्न करता है कि मैं इस कालचक्र में अनन्त काल से विविध योनियों में परिभ्रमण कर रहा हूँ। अब मुझे ऐसा उपक्रम करना चाहिये जिससे सदा के लिये इस चक्र से मुक्त हो जाऊँ।

विनीता

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के तृतीय वक्षस्कार में सर्वप्रथम विनीता नगरी का वर्णन है। उस विनीता नगरी की अवस्थिति भरतक्षेत्र स्थित वैताढ्य पर्वत के दक्षिण के ११४ $\frac{११}{१९}$ योजन तथा लवणसमुद्र के उत्तर में ११४ $\frac{११}{१९}$ योजन की दूरी पर, गंगा महानदी के पश्चिम में और सिन्धु महानदी के पूर्व में दक्षिणार्द्ध भरत के मध्यवर्ती तीसरे भाग के ठीक बीच में है। विनीता का ही अपर नाम अयोध्या है। जैनसाहित्य की दृष्टि से यह नगर

सबसे प्राचीन है। यहाँ के निवासी विनीत स्वभाव के थे। एतदर्थ भगवान् ऋषभदेव ने इस नगरी का नाम विनीता रखा।[१३८] यहाँ और पांच तीर्थंकरों ने दीक्षा ग्रहण की।

आवश्यकनिर्युक्ति के अनुसार यहाँ दो तीर्थङ्कर—ऋषभदेव (प्रथम) और अभिनन्दन (चतुर्थ) ने जन्म ग्रहण किया।[१३९] अन्य ग्रन्थों के अनुसार ऋषभदेव, अजितनाथ, अभिनन्दन, सुमति, अनन्त और अचलभानु की जन्मस्थली और दीक्षास्थली रही है। राम, लक्ष्मण आदि बलदेव-वासुदेवों की भी जन्मभूमि रही है। अचल गणधर ने भी यहाँ जन्म ग्रहण किया था। आवश्यकमलयगिरिवृत्ति[१४०] के अनुसार अयोध्या के निवासियों ने विविध कलाओं में कुशलता प्राप्त की थी इसलिये अयोध्या को 'कौशला' भी कहते हैं। अयोध्या में जन्म लेने के कारण भगवान् ऋषभदेव कौशलीय कहलाये थे। रामायण काल में अयोध्या बहुत ही समृद्ध नगरी थी। वास्तुकला की दृष्टि से यह महानगरी बहुत ही सुन्दर बसी हुई थी। इस नगर में कम्बोजीय अश्व और शक्तिशाली हाथी थे।[१४१] महाभारत में इस नगरी को पुण्यलक्षणा या शुभलक्षणों वाली चित्रित किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण[१४२] आदि में इसे एक गाँव के रूप में चित्रित किया है। आवश्यकनिर्युक्ति में इस नगरी का दूसरा नाम साकेत और इक्ष्वाकु भूमि भी लिखा है।[१४३] विविध तीर्थकल्प में रामपुरी और कौशल ये दो नाम और भी दिये हैं।[१४४] भागवतपुराण में अयोध्या का उल्लेख एक नगर के रूप में किया है।[१४५] स्कन्ध पुराण के अनुसार अयोध्या मत्स्याकार बसी हुई थी।[१४६] उसके अनुसार उसका विस्तार पूर्व-पश्चिम में एक योजन, सरयू से दक्षिण में तथा तमसा से उत्तर में एक-एक योजन है। कितने ही विज्ञों का यह अभिमत रहा कि साकेत और अयोध्या—ये दोनों नगर एक ही थे। पर रिज़ डेविड्स ने यह सिद्ध किया कि ये दोनों नगर पृथक्-पृथक् थे और तथागत बुद्ध के समय अयोध्या और साकेत ये दोनों नगर थे।[१४७] हिन्दुओं के सात तीर्थों में अयोध्या का भी एक नाम है।

चीनी यात्री फाह्यान जब अयोध्या पहुँचा तो उसने वहाँ पर बौद्धों और ब्राह्मणों में सौहार्द्र का अभाव देखा।[१४८] दूसरा चीनी यात्री ह्वेनसांग जो सातवीं शताब्दी ईस्वी में भारत आया था, उसने छह सौ 'ली' से भी अधिक यात्रा की थी। वह अयोध्या पहुँचा था। उसने अयोध्या को ही साकेत लिखा है। उस समय अयोध्या वैभवसम्पन्न थी। फलों से बगीचे लदे हुए थे। वहाँ के निवासी सभ्य और शिष्ट थे। उस समय वहाँ पर सौ से भी अधिक बौद्ध विहार थे और तीन हजार (३०००) से भी अधिक भिक्षु वहाँ पर रहते थे। वे भिक्षु

१३८. आवस्सक कामेंट्री, पृ. २४४

१३९. आवश्यकनिर्युक्ति ३८२

१४०. आवश्यकमलयगिरिवृत्ति, पृ. २१४

१४१. रामायण पृष्ठ ३०९, श्लोक २२ से २४

१४२. (क) ऐतरेय ब्राह्मण VII, ३ और आगे
     (ख) सांख्यायनसूत्र XV, १७ से २५

१४३. आवश्यकनिर्युक्ति ३८२

१४४. विविध तीर्थकल्प पृ. २४

१४५. भागवतपुराण IX ८।१९

१४६. स्कन्धपुराण अ. १, ६४, ६४

१४७. वि. च. लाहा, ज्यॉग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृ. ५

१४८. लेग्गे, ट्रैवल्स ऑव फाह्यान, पृ. ५४-५५

महायान और हीनयान के अनुयायी थे। वहाँ पर एक प्राचीन विहार था, जहाँ पर वसुबन्धु नामक एक महा-मनीषी भिक्षु था। वह बाहर से आने वाले राजकुमारों और भिक्षुओं को बौद्ध धर्म और दर्शन का अध्ययन कराता था। अनेक ग्रन्थों की रचना भी उन्होंने की थी। वसुबन्धु महायान को मानने वाले थे और उसी के मण्डन में उनके ग्रन्थ लिखे हुए हैं। तिरासी वर्ष की उम्र में उनका देहान्त हुआ था।[१४९] अयोध्या में अनेक वरिष्ठ राजा हुए हैं। समय-समय पर राज्यों का परिवर्तन भी होता रहा। यह मर्यादा पुरुषोत्तम राम और राजा सगर की भी राजधानी रही।[१५०] कनिंघम के अनुसार इस नगर का विस्तार बारह योजन अथवा सौ मील का था, जो लगभग २४ मील तक बगीचों और उपवनों से घिरा था।[१५१] कनिंघम के अनुसार प्राचीन अवध आधुनिक फैजाबाद से चार मील की दूरी पर स्थित है।[१५२] विविधतीर्थकल्प के अनुसार अयोध्या बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी थी।[१५३] जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के अनुसार साक्षात् स्वर्ग के सदृश थी। वहाँ के निवासियों का जीवन बहुत ही सुखी/समृद्ध था।

भरत चक्रवर्ती

सम्राट् भरत चक्रवर्ती का जन्म विनीता नगरी में ही हुआ था। वे भगवान् ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र थे। उनकी बाह्य आकृति जितनी मनमोहक थी, उतना ही उनका आन्तरिक जीवन भी चित्ताकर्षक था। स्वभाव से वे करुणाशील थे, मर्यादाओं के पालक थे, प्रजावत्सल थे। राज्य-ऋद्धि का उपभोग करते हुए भी वे पुण्डरीक कमल की तरह निर्लेप थे। वे गन्धहस्ती की तरह थे। विरोधी राजारूपी हाथी एक क्षण भी उनके सामने टिक नहीं पाते थे। जो व्यक्ति मर्यादाओं का अतिक्रमण करता उसके लिये वे काल के सदृश थे। उनके राज्य में दुर्भिक्ष और महामारी का अभाव था।

एक दिन सम्राट् अपने राजदरबार में बैठा हुआ था। उस समय आयुधशाला के अधिकारी ने आकर सूचना दी कि आयुधशाला में चक्ररत्न पैदा हुआ है। आवश्यकनिर्युक्ति,[१५४] आवश्यकचूर्णि,[१५५] त्रिषष्टि-शलाकापुरुष चरित[१५६] और चउप्पन्नमहापुरिसचरियं[१५७] के अनुसार राजसभा में यमक और शमक बहुत ही शीघ्रता से प्रवेश करते हैं। यमक सुभट ने नमस्कार कर निवेदन किया कि भगवान् ऋषभदेव को एक हजार वर्ष की साधना के बाद केवलज्ञान की उपलब्धि हुई है। वे पुरिमताल नगर के बाहर शकटानन्द उद्यान में विराजित हैं। उसी समय शमक नामक सुभट ने कहा—स्वामी! आयुधशाला में चक्ररत्न पैदा हुआ है, वह आपकी दिग्विजय का सूचक है। आप चलकर उसकी अर्चना करें। दिगम्बरपरम्परा के आचार्य जिनसेन ने उपर्युक्त दो सूचनाओं के अतिरिक्त तृतीय, पुत्र की सूचना का भी उल्लेख किया है।[१५८] ये सभी सूचनाएं एक

---

१४९. वाटर्स, आन युवान च्वाङ्, I, ३५४-९

१५०. हिस्टारिकिल ज्योग्राफी ऑफ ऐंसियण्ट इंडिया, पृ. ७६

१५१. कनिंघम, ऐंसियट ज्योग्राफी आफ इंडिया, पृ. ४५९-४६०

१५२. " " " " " पृ. ३४१

१५३. विविधतीर्थकल्प, अध्याय ३४

१५४. आवश्यकनिर्युक्ति, ३४२

१५५. आवश्यकचूर्णि, १८१

१५६. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित १।३।५११-५१३

१५७. चउप्पन्नमहापुरिसचरियं, शीलाङ्क

१५८. महापुराण २४।२।५७३

साथ मिलने से भरत एक क्षण असमंजस में पड़ गये।[159] वे सोचने लगे कि मुझे प्रथम कौनसा कार्य करना चाहिये? पहले चक्ररत्न की अर्चना करनी चाहिये या पुत्रोत्सव मनाना चाहिये या प्रभु की उपासना करनी चाहिये? दूसरे ही क्षण उनकी प्रत्युत्पन्न मेधा ने उत्तर दिया कि केवलज्ञान का उत्पन्न होना धर्मसाधना का फल है, पुत्र उत्पन्न होना काम का फल है और देदीप्यमान चक्र का उत्पन्न होना अर्थ का फल है।[160] इन तीन पुरुषार्थों में प्रथम पुरुषार्थ धर्म है, इसलिये मुझे सर्वप्रथम भगवान् ऋषभदेव की उपासना करनी चाहिये। चक्ररत्न और पुत्ररत्न तो इसी जीवन को सुखी बनाता है पर भगवान् का दर्शन तो इस लोक और परलोक दोनों को ही सुखी बनाने वाला है। अतः मुझे सर्वप्रथम उन्हीं के दर्शन करना है।[161] प्रस्तुत आगम में केवल चक्ररत्न का ही उल्लेख हुआ है, अन्य दो घटनाओं का उल्लेख नहीं है। अतः भरत ने चक्ररत्न का अभिवादन किया और अष्ट दिवसीय महोत्सव किया।

चक्रवर्ती सम्राट् बनने के लिये चक्ररत्न अनिवार्य साधन है। यह चक्ररत्न देवाधिष्ठित होता है। एक हजार देव इस चक्ररत्न की सेवा करते हैं। यों चक्रवर्ती के पास चौदह रत्न होते हैं। यहाँ पर रत्न का अर्थ अपनी-अपनी जातियों की सर्वोत्कृष्ट वस्तुएं हैं।[162] चौदह रत्नों में सात रत्न एकेन्द्रिय और सात रत्न पंचेन्द्रिय होते हैं। आचार्य अभयदेव ने स्थानांगवृत्ति में लिखा है कि चक्र आदि सात रत्न पृथ्वीकाय के जीवों के शरीर से बने हुए होते हैं, अतः उन्हें एकेन्द्रिय कहा जाता है। आचार्य नेमिचन्द्र ने प्रवचनसारोद्धार ग्रन्थ में इन सात रत्नों का प्रमाण इस प्रकार दिया है।[163] चक्र, छत्र और दण्ड ये तीनों व्याम तुल्य हैं।[164] तिरछे फैलाये हुए दोनों हाथों की अंगुलियों के अन्तराल जितने बड़े होते हैं। चर्मरत्न दो हाथ लम्बा होता है। असिरत्न बत्तीस अंगुल, मणिरत्न चार अंगुल लम्बा और दो अंगुल चौड़ा होता है। कागिणीरत्न की लम्बाई चार अंगुल होती है। जिस युग में जिस चक्रवर्ती की जितनी अवगाहना होती है, उस चक्रवर्ती के अंगुल का यह प्रमाण है।

चक्रवर्ती की आयुधशाला में चक्ररत्न, छत्ररत्न, दण्डरत्न और असिरत्न उत्पन्न होते हैं। चक्रवर्ती के श्रीघर में चर्मरत्न, मणिरत्न और कागिणीरत्न उत्पन्न होते हैं। चक्रवर्ती की राजधानी विनीता में सेनापति, गृहपति, वर्द्धकि और पुरोहित ये चार पुरुषरत्न होते हैं। वैताढ्यगिरि की उपत्यका में अश्व और हस्ती रत्न उत्पन्न होते हैं। उत्तर दिशा की विद्याधर श्रेणी में स्त्रीरत्न उत्पन्न होता है।[165]

आचार्य नेमिचन्द्र ने चौदह रत्नों की व्याख्या इस प्रकार की है[166]—

१. सेनापति—यह सेना का नायक होता है। गंगा और सिन्धु नदी के पार वाले देशों को यह अपनी भुजा के बल से जीतता है।

---

१५९. (क) त्रिषष्टिशलाकापुरुष च. १।३।५१४
(ख) महापुराण २४।२।५७३

१६०. महापुराण २४।६।५७३

१६१. महापुराण २४।९।५७३

१६२. रत्नानि स्वजातीयमध्ये समुत्कर्षवन्ति वस्तूनीति—समवायाङ्ग वृत्ति, पृ. २७

१६३. प्रवचनसारोद्धार गाथा १२१६-१२१७

१६४. चक्रं छत्रं....पुंसस्तिर्यग्हस्तद्वयांगुलयोरंतरालम्। —प्रवचनसारोद्धारवृत्ति, पत्र ३५१

१६५. भरहस्स णं रन्नो....उत्तरिल्लाए विज्जाहरसेढीए समुप्पन्ने। —आवश्यकचूर्णि पृ. २०८

१६६. प्रवचनसारोद्धारवृत्ति, पत्र ३५०-३५१

२. गृहपति—यह चक्रवर्ती के घर की समुचित व्यवस्था करता है। जितने भी धान्य, फल और शाक-सब्जियाँ हैं, उनका यह निष्पादन करता है।

३. पुरोहित—गृहों को उपशान्ति के लिये उपक्रम करता है।

४. हस्ती—यह बहुत ही पराक्रमी होता है और इसकी गति बहुत वेगवती होती है।

५. अश्व—यह बहुत ही शक्तिसम्पन्न और अत्यन्त वेगवान् होता है।

६. वर्द्धकि—यह भवन आदि का निर्माण करता है। जब चक्रवर्ती दिग्विजय के लिये तमिस्रा गुफा में से जाते हैं उस समय उन्मग्नजला और निमग्नजला इन दो नदियों को पार करने के लिये सेतु का निर्माण करता है, जिन पर से चक्रवर्ती की सेना नदी पार करती है।

७. स्त्री—यह कामजन्य सुख को देने वाली होती है।

८. चक्र—यह सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों में श्रेष्ठ होता है तथा दुर्दम शत्रु पर भी वियज दिलवाने में पूर्ण समर्थ होता है।

९. छत्र—यह छत्र विशेष प्रकार की धातुओं से अलंकृत और कई तरह के चिह्नों से मंडित होता है, जो चक्रवर्ती के हाथों का स्पर्श पाकर बारह योजन लम्बा-चौड़ा हो जाता है। जिससे धूप, हवा और वर्षा से बचाव होता है।

१०. चर्म—बारह योजन लम्बे-चौड़े छत्र के नीचे प्रातःकाल शालि आदि जो बीज बोये जाते हैं, वे मध्याह्न में पककर तैयार हो जाते हैं। यह है—चर्मरत्न की विशेषता। दूसरी विशेषता यह है कि दिग्विजय के समय नदियों को पार कराने के लिए यह रत्न नौका के रूप में बन जाता है और म्लेच्छ नरेशों के द्वारा जलवृष्टि कराने पर यह रत्न सेना की सुरक्षा करता है।

११. मणि—यह रत्न वैडूर्यमय तीन कोने और छह अंश वाला होता है। यह छत्र और चर्म इन दो रत्नों के बीच स्थित होता है। चक्रवर्ती की सेना, जो बारह योजन में फैली हुई होती है, उस सम्पूर्ण सेना को इसका दिव्य प्रकाश प्राप्त होता है। जब चक्रवर्ती तमिस्रा गुहा और खण्डप्रपात गुहा में प्रवेश करते हैं तब हस्तीरत्न के सिर के दाहिनी ओर इस मणि को बांध दिया जाता है। तब बारह योजन तक तीनों दिशाओं में, दोनों पार्श्वों में इसका प्रकाश फैलता है। इस मणि को हाथ या सिर पर बांधने से देव, मनुष्य और तिर्यञ्च सवन्धी सभी प्रकार के उपद्रव शान्त हो जाते हैं, रोग मिट जाते हैं। इसको सिर प या किसी अंग-उपांग पर धारण करने से किसी भी प्रकार के शस्त्र अस्त्र का प्रभाव नहीं होता। इस रत्न को कलाई पर बांधने से यौवन स्थिर रहता है, केशऔर नाखून न घटते हैं और न बढ़ते हैं।

१२. कागिणी—यह रत्न आठ सौवर्णिक प्रमाण का होता है। यह चारों ओर से सम और विष नष्ट करने में पूर्ण समर्थ होता है। सूर्य, चन्द्र और अग्नि जिस अंधकार को नष्ट करने में समर्थ नहीं होते, उउ तमिस्र गुहा में यह रध्न अन्धकार को नष्ट कर देता है। चक्रवर्ती इस रत्न से तमिस्र गुहा में उनपचास मण्डल बनाते हैं। एक-एक मण्डल का प्रकाश एक-एक योजन तक फैलता है। यह रत्न चक्रवर्ती के स्कन्धावार में स्थापित रहता है। इसका दिव्य प्रकाश रात को भी दिन बना देता है। इस रत्न के प्रभाव से ही चक्रवर्ती द्वितीय अर्द्ध भरत को जीतने के लिये अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ तमिस्र गुहा में प्रवेश करते हैं और इसी रत्न से चक्रवर्ती ऋषभकूट पर्वत पर अपना नाम अंकित करते हैं।

१३. असि (खड्ग)—संग्रामभूमि में इस रत्न की शक्ति अप्रतिहत होती है। अपनी तीक्ष्ण धार से यह रत्न शत्रुओं को नष्ट कर डालता है।

१४. दण्ड—यह रत्न-वज्रमय होता है। इसकी पांचों लताएं रत्नमय होती हैं। शत्रुदल को नष्ट करने में समर्थ होता है। यह विषम मार्ग को सम बनाता है। चक्रवर्ती के स्कन्धावार में जहाँ कहीं भी विषमता होती है उसको यह रत्न सम करता है। चक्रवर्ती के सभी मनोरथों को पूर्ण करता है। वैताढ्य पर्वत की दोनों गुफाओं के द्वार खोलकर उत्तर भरत की ओर चक्रवर्ती को पहुँचाता है। दिगम्बरपरम्परा की दृष्टि से ऋषभाचल पर्वत पर नाम लिखने का कार्य भी यह रत्न करता है।

प्रत्येक रत्न के एक-एक हजार देव रक्षक होते हैं। चौदह रत्नों के चौदह हजार देवता रक्षक थे।

बौद्ध ग्रन्थ मज्झिमनिकाय [१६७] में चक्रवर्ती के सात रत्नों का उल्लेख है। वह इस प्रकार हैं—

१. चक्ररत्न—यह रत्न सम्पूर्ण आकार से परिपूर्ण हजार अरों वाला, सनैमिक और सनाभिक होता है। जब यह रत्न उत्पन्न होता है तब मूर्धाभिषिक्त राजा चक्रवर्ती कहलाने लगता है। जब वह राजा उस चक्ररत्न को कहता है—पवत्ततु भवं चक्करतनं, अभिविजिनातु भवं चक्करतनं ति। तब चक्रवर्ती राजा के आदेश से वह चारों दिशाओं में प्रवर्तित होता है। जहाँ पर भी वह चक्ररत्न रुक जाता है, वहीं पर चक्रवर्ती राजा अपनी सेना के साथ पड़ाव डाल देता है। उस दिशा में जितने भी राजागण होते हैं, वे चक्रवर्ती राजा का अनुशासन स्वीकार कर लेते हैं। वह चक्ररत्न चारों दिशाओं में प्रवर्तित होता है और सभी राजा चक्रवर्ती के अनुगामी बन जाते हैं। यह चक्ररत्न समुद्रपर्यन्त पृथ्वी पर विजय-वैजयन्ती फहरा कर पुनः राजधानी लौट आता है और चक्रवर्ती के अन्तःपुर के द्वार के मध्य अवस्थित हो जाता है।

२. हस्तीरत्न—इसका वर्ण श्वेत होता है। इसकी ऊँचाई सात हाथ होती है। यह महान् ऋद्धिसम्पन्न होता है। इसका नाम उपोसथ होता है। पूर्वाह्न के समय चक्रवर्ती इस पर आरूढ होकर समुद्रपर्यन्त परिभ्रमण कर राजधानी में आकर प्रातरास लेते हैं। यह इसकी अतिशीघ्रगामिता का निदर्शन है।

३. अश्वरत्न—वर्ण की दृष्टि से यह पूर्ण रूप से श्वेत होता है। इसकी गति पवन-वेग की तरह होती है। इसका नाम वलाहक है। पूर्वाह्न के समय चक्रवर्ती सम्राट् इस पर आरूढ होकर समुद्रपर्यन्त घूमकर पुनः राजधानी में आकर कलेवा कर लेता है।

४. मणिरत्न—यह शुभ और गतिमान वैडूर्यमणि और सुपरिकर्मित होता है। चक्रवर्ती इस मणिरत्न को ध्वजा के अग्रभाग में आरोपित करता है और अपनी सेना के साथ रात्रि के गहन अन्धकार में प्रयाण करता है। इस मणि का इतना अधिक प्रकाश फैलता है कि लोगों को रात्रि में भी दिन का भ्रम हो जाता है।

५. स्त्रीरत्न—वह स्त्री बहुत ही सुन्दर, दर्शनीय, प्रासादिक, सुन्दर वर्ण वाली, न अति दीर्घ, न अति ह्रस्व, न अधिक मोटी, न अधिक दुबली, न अत्यन्त काली और न अत्यन्त गोरी अपितु स्वर्ण कान्तियुक्त दिव्य वर्ण वाली होती थी। उसका स्पर्श तूल और कपास के स्पर्श के समान अतिमृदु होता था। उस स्त्रीरत्न का शरीर शीतकाल में उष्ण और ग्रीष्मकाल में शीतल होता था। उसके शरीर से चन्दन की मधुर-मधुर सुगन्ध फूटती थी। उसके मुँह से उत्पल की गन्ध आती थी। चक्रवर्ती के सोकर उठने से पूर्व वह उठती थी और चक्रवर्ती के सोने के

---

१६७. मज्झिम निकाय III २९/२/१४ पृ० २४२-२४६ (नालंदा संस्करण)

बाद सोती थी। वह सदा-सर्वदा चक्रवर्ती के मन के अनुकूल प्रवृत्ति करती थी। मन से भी चक्रवर्ती की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करती थी। फिर तन से तो करने का प्रश्न ही नहीं था।

६. गृहपतिरत्न—गृहपति के कर्मविपाकज दिव्य चक्षु उत्पन्न होते थे। वह चक्रवर्ती की निधियों को उनके अधिष्ठाताओं के साथ अथवा अधिष्ठाताओं से रहित देखता है। चक्रवर्ती उस गृहपति रत्न के साथ नौका में आरूढ होकर मध्यगंगा के बीच में जाकर कहता है—हे गृहपति! मुझे हिरण्य-सुवर्ण चाहिये। तब गृहपति रत्न दोनों हाथों को गंगा के पानी के प्रवाह में डालकर हिरण्य-सुवर्ण से भरे कलश को बाहर निकाल कर चक्रवर्ती के सामने रखता है और चक्रवर्ती सम्राट् से पूछता है—इतना ही पर्याप्त है या और ले कर आऊँ?

७. परिनायक-रत्न—यह महामनीषी होता है। अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा से चक्रवर्ती के समस्त क्रियाकलापों में परामर्श प्रदान करता है।

वैदिक साहित्य में भी चक्रवर्ती सम्राट् के चौदह रत्न बताये हैं। वे इस प्रकार हैं—१. हाथी २. घोड़ा ३. रथ ४. स्त्री ५. बाण ६. भण्डार ७. माला ८. वस्त्र ९. वृक्ष १०. शक्ति ११. पाश १२. मणि १३. छत्र और १४. विमान।

गंगा महानदी

सम्राट् भरत षट्खण्ड पर विजय-वैजयन्ती फहराने के लिये विनीता से प्रस्थित होते हैं और गंगा महानदी के दक्षिणी किनारे से होते हुए पूर्व दिशा में मागध दिशा की ओर चलते हैं। गंगा भारतवर्ष की बड़ी नदी है। स्कन्धपुराण,[१६८] अमरकोश,[१६९] आदि में गंगा को देवताओं की नदी कहा है। जैन साहित्य में गंगा को देवाधिष्ठित नदी माना है।[१७०] गंगा का विराट रूप भी उसको देवत्व की प्रसिद्धि का कारण रहा है। योगिनीतंत्र ग्रन्थ[१७१] में गंगा के विष्णुपदी, जाह्नवी: मंदाकिनी और भागीरथी आदि विविध नाम मिलते हैं। महाभारत और भागवतपुराण इसके अलखनन्दा[१७२] तथा भागवतपुराण में ही दूसरे स्थान पर द्युनदी[१७३] नाम प्राप्त है। रघुवंश[१७४] में भागीरथी और जाह्नवी ये दो नाम गंगा के लिये मिलते हैं। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के अनुसार गंगा का उद्गमस्थल पद्महृद है।[१७५] पालिग्रन्थों में अनोतत्त झील के दक्षिणी मुख को गंगा का स्रोत बतलाया गया है।[१७६] आधुनिक भूगोलवेत्ताओं की दृष्टि से भागीरथी सर्वप्रथम गढ़वाल क्षेत्र में गंगोत्री के समीप दृग्गोचर होती

---

१६८. स्कन्धपुराण, काशी खण्ड, गंगा सहस्रनाम, अध्याय २९
१६९. अमरकोश १। १०। ३१
१७०. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्षस्कार ४
१७१. योगिनीतंत्र २, ३ पृ. १२२ और आगे; २, ७, ८ पृ. १८६ और आगे
१७२. (क) महाभारत, आदिपर्व १७०।२२
(ख) श्रीमद्भागवतपुराण ४।६।२४; ११।२९।४२
१७३. श्रीमद्भागवतपुराण ३।५।१; १०।७५।८
१७४. रघुवंश ७।३६; ८।९५; १०।२६
१७५. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्षस्कार ४
१७६. प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल, लाहा, पृ. ५३

है। स्थानांग,[१७७] समवायांग,[१७८] जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति,[१७९] निशीथ[१८०] और वृहत्कल्प[१८१] में गंगा को एक महानदी के रूप में चित्रित किया गया है। स्थानांग,[१८२] निशीथ[१८३] और वृहत्कल्प[१८४] में गंगा को महार्णव भी लिखा है। आचार्य अभयदेव ने स्थानांगवृत्ति[१८५] में महार्णव शब्द को उपमावाचक मानकर उसका अर्थ किया है कि विशाल जलराशि के कारण वह विराट् समुद्र की तरह थी। पुराणकाल में भी गंगा को समुद्ररूपिणी कहा है।[१८६]

वैदिक दृष्टि से गंगा में नौ सौ नदियां मिलती हैं।[१८७] जैन दृष्टि से चौदह हजार नदियाँ गंगा में मिलती हैं,[१८८] जिनमें यमुना, सरयू, कोशी, मही आदि बड़ी नदियाँ भी हैं। प्राचीन काल में गंगा नदी का प्रवाह बहुत विशाल था। समुद्र में प्रवेश करते समय गंगा का पाट साढ़े बासठ योजन चौड़ा था,[१८९] और वह पाँच कोस गहरी थी।[१९०] वर्तमान में गंगा प्राचीन युग की तरह विशाल और गहरी नहीं है। गंगा नदी में से और उसकी सहायक नदियों में से अनेक विराटकाय नहरें निकल चुकी हैं, तथापि वह अपनी विराटता के लिये विश्रुत है। वैज्ञानिक सर्वेक्षण के अनुसार गंगा १५५७ मील के लम्बे मार्ग को पार कर बंग सागर में गिरती है। यमुना, गोमती, सरयू, रामगंगा, गंडकी, कोशी और ब्रह्मपुत्र आदि अनेक नदियों को अपने में मिलाकर वर्षाकालीन बाढ़ से गंगा महानदी अठारह लाख घन फुट पानी का प्रस्राव प्रति सैकण्ड करती है।[१९१] बौद्धों के अनुसार पाँच बड़ी नदियों में से गंगा एक महानदी है।

दिग्विजय यात्रा में सम्राट् भरत चक्ररत्न का अनुसरण करते हुए मागध तीर्थ में पहुँचे। वहाँ से उन्होंने लवणसमुद्र में प्रवेश किया और बाण छोड़ा। नामांकित बाण बारह योजन की दूरी पर मागधतीर्थाधिपति देव के वहाँ पर गिरा। पहले वह क्रुद्ध हुआ पर भरत चक्रवर्ती नाम पढ़कर वह उपहार लेकर पहुँचा। इस तरह चक्ररत्न के पीछे चलकर वरदाम तीर्थ के कुमार देव को अधीन किया। उसके बाद प्रभासकुमार देव, सिन्धुदेवी, वैताढ्यगिरि कुमार, कृतमालदेव आदि को अधीन करते हुए भरत सम्राट् ने षट्खण्ड पर विजय-वैजयन्ती फहराई।

---

१७७. स्थानाङ्ग ५।३
१७८. समवायाङ्ग २४ वां समवाय
१७९. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्षस्कार ४
१८०. निशीथसूत्र १२।४२
१८१. वृहत्कल्पसूत्र ४।३२
१८२. स्थानाङ्ग ५।२।१
१८३. निशीथ १२।४२
१८४. वृहत्कल्प ४।३२
१८५. (क) स्थानाङ्गवृत्ति ५।२।१ (ख) वृहत्कलपभाष्य टीका ५६१६
१८६. स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, अध्याय २९
१८७. हारीत १।७
१८८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्षस्कार ४
१८९. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्षस्कार ४
१९०. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्षस्कार ४
१९१. हिन्दी विश्वकोश, नागरी प्रचारिणी सभा, गंगा शब्द

नवनिधियां

सम्राट् भरत के पास चौदह रत्नों के साथ ही नवनिधियां[१९२] भी थीं, जिनसे उन्हें मनोवांछित वस्तुएं प्राप्त होती थीं। निधि का अर्थ खजाना है। भरत महाराज को ये नवनिधियां, जहाँ गंगा महानदी समुद्र में मिलती है, वहाँ पर प्राप्त हुईं। आचार्य अभयदेव[१९३] के अनुसार चक्रवर्ती को अपने राज्य के लिये उपयोगी सभी वस्तुओं की प्राप्ति इन नौ निधियों से होती है। इसलिये इन्हें नवनिधान के रूप में गिना है। वे नवनिधियां इस प्रकार हैं—

१. नैसर्पनिधि—यह निधि ग्राम, नगर, द्रोणमुख आदि स्थानों के निर्माण में सहायक होती है।

२. पांडुकनिधि—मान, उन्मान और प्रमाण आदि का ज्ञान कराती है तथा धान्य और बीजों को उत्पन्न करती है।

३. पिंगलनिधि—यह निधि मानव और तिर्यञ्चों के सभी प्रकार के आभूषणों के निर्माण की विधि का ज्ञान कराने वाली है और साथ ही योग्य आभरण भी प्रदान करती है।

४. सर्वरत्ननिधि—इस निधि से वज्र, वैडूर्य, मरकत, माणिक्य, पद्मराग, पुष्पराज प्रभृति बहुमूल्य रत्न प्राप्त होते हैं।

५. महापद्मनिधि—यह निधि सभी प्रकार की शुद्ध एवं रंगीन वस्तुओं की उत्पादिका है। किन्हीं-किन्हीं ग्रन्थों में इसका नाम पद्मनिधि भी मिलता है।

६. कालनिधि—वर्तमान, भूत, भविष्य, कृषिकर्म, कला, व्याकरणशास्त्र प्रभृति का यह निधि ज्ञान कराती है।

७. महाकालनिधि—सोना, चांदी, मुक्ता, प्रवाल, लोहा प्रभृति की खानें उत्पन्न करने में सहायक होती है।

८. माणवकनिधि—कवच, ढाल, तलवार आदि विविध प्रकार के दिव्य आयुध, युद्धनीति, दण्डनीति आदि की जानकारी कराने वाली।

९. शंखनिधि—विविध प्रकार के काव्य, वाद्य, नाटक आदि की विधि का ज्ञान कराने वाली होती है।

ये सभी निधियाँ अविनाशी होती हैं। दिग्विजय से लौटते हुए गंगा के पश्चिम तट पर अट्ठम तप के पश्चात् चक्रवर्ती सम्राट को यह प्राप्त होती हैं। प्रत्येक निधि एक-एक हजार यक्षों से अधिष्ठित होती है। इनकी ऊँचाई आठ योजन, चौड़ाई नौ योजन तथा लम्बाई दस योजन होती है। इनका आकार संदूक के समान होता है। ये सभी निधियाँ स्वर्ण और रत्नों से परिपूर्ण होती हैं। चन्द्र और सूर्य के चिह्नों से चिह्नित होती हैं तथा पल्योपम

---

१९२. (क) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १।४
(ख) स्थानांगसूत्र ९।१९
(ग) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, भरतचक्रवर्ती अधिकार, वक्षस्कार ३
(घ) हरिवंशपुराण, सर्ग ११
(ङ) माघनन्दी विरचित शास्त्रसारसमुच्चय, सूत्र १८, पृ. ५४

१९३. स्थानांगवृत्ति, पत्र २२६

की आयु वाले नागकुमार जाति के देव इनके अधिष्ठायक होते हैं।[१९४] हरिवंशपुराण के अनुसार ये नौ निधियाँ कामवृष्टि नामक गृहपतिरत्न के अधीन थीं और चक्रवर्ती के सभी मनोरथों को पूर्ण करती थीं।[१९५]

हिन्दूधर्मशास्त्रों में इन नवनिधियों के नाम इस प्रकार मिलते हैं—१. महापद्म, २. पद्म, ३. शंख, ४. मकर, ५. कच्छप, ६. मुकुन्द, ७. कुन्द, ८. नील और ९. खर्व। ये निधियाँ कुबेर का खजाना भी कही जाती हैं।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में बहुत ही विस्तार के साथ दिग्विजय का वर्णन है, जो भरत के महत्त्व को उजागर करता है। भरत चक्रवर्ती के नाम से ही प्रस्तुत देश का नामकरण भारतवर्ष हुआ है। वसुदेवहिण्डी[१९६] में भी इसका स्पष्ट उल्लेख हुआ है। वायुपुराण[१९७] ब्रह्माण्डपुराण,[१९८] आदिपुराण[१९९] वराहपुराण,[२००] वायुपुराण[२०१] लिंगपुराण,[२०२] स्कन्दपुराण,[२०३] मार्कण्डेयपुराण[२०४] श्रीमद्भागवत पुराण,[२०५] आग्नेय-पुराण,[२०६] विष्णुपुराण,[२०७] कूर्मपुराण,[२०८] शिवपुराण,[२०९] नारदपुराण[२१०] आदि ग्रन्थों से भी स्पष्ट है कि प्रस्तुत देश का नामकरण भगवान् ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम से ही हुआ। पाश्चात्य विद्वान् श्री जे० स्टीवेन्सन[२११] तथा प्रसिद्ध इतिहासज्ञ गंगाप्रसाद एम० ए०[२१२] और रामधारीसिंह दिनकर[२१३] का भी यही मन्तव्य है। कतिपय विद्वानों ने दुष्यन्त-तनय भरत के नाम के आधार पर 'भारत' नाम का होना लिखा है, वह सर्वथा असंगत एवं भ्रमपूर्ण है। ऋषभपुत्र चक्रवर्ती भरत के विराट् कर्तृत्व और व्यक्तित्व की तुलना में दुष्यन्तपुत्र भरत का व्यक्तित्व-कृतित्व नगण्य है। सर्वप्रथम चक्रवर्ती भरत ने ही एकच्छत्र साम्राज्य की स्थापना करके भारत को एकरूपता प्रदान की थी।

---

१९४. त्रिषष्टिशलाका पु. च. १।४।५७४-५८७
१९५. हरिवंशपुराण-जिनसेन ११।१२३
१९६. वसुदेवहिण्डी, प्रथमखण्ड पृ० १८६
१९७. वायुपुराण ४५।७५
१९८. ब्रह्माण्डपुराण, पर्व २।१४
१९९. आदिपुराण, पर्व १५।१५८-१५९
२००. वराहपुराण ७४।४९
२०१. वायुमहापुराण ३३।५२
२०२. लिंगपुराण ४३।२३
२०३. स्कन्दपुराण, कौमार खण्ड ३७।५७
२०४. मार्कण्डेयपुराण ५०।४१
२०५. श्रीमद्भागवतपुराण ५।४
२०६. आग्नेयपुराण १०७।१२
२०७. विष्णुपुराण, अंश २, अ. १।२८-२९।३२
२०८. कूर्मपुराण ४१।३८
२०९. शिवपुराण ५२।८५
२१०. नारदपुराण ४८।५
२११. Brahmanical Puranas....took to name 'Bharatvarsha'—Kalpasutra Introd. P. XVI
२१२. प्राचीन भारत पृष्ठ ५
२१३. संस्कृति के चार अध्याय पृ. १३९

आवश्यकनिर्युक्ति, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित और महापुराण में सम्राट् भरत के अन्य अनेक प्रसंग भी हैं, जिनका उल्लेख जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में नहीं हुआ है। उन ग्रन्थों में आए हुए कुछ प्रेरक प्रसंग प्रबुद्ध पाठकों की जानकारी हेतु हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

अनासक्त भरत

सम्राट् भरत ने देखा—मेरे ९९ भ्राता संयम-साधना के कठोर कंटकाकीर्ण मार्ग पर बढ़ चुके हैं पर मैं अभी भी संसार के दलदल में फंसा हूं। उनके अन्तर्मानस में वैराग्य का पयोधि उछालें मारने लगा। वे राज्यश्री का उपभोग करते हुए भी अनासक्त हो गए। एक बार भगवान् ऋषभदेव विनीता नगरी में पधारे। पावन प्रवचन चल रहा था। एक जिज्ञासु ने प्रवचन के बीच ही प्रश्न किया—भगवन् ! भरत चक्रवर्ती मरकर कहाँ जाएंगे ? उत्तर में भगवान् ने कहा—मोक्ष में। उत्तर सुनकर प्रश्नकर्ता का स्वर धीरे से फूट पड़ा—भगवान् के मन में पुत्र के प्रति मोह और पक्षपात है। वे शब्द सम्राट् भरत के कर्णकुहरों में गिरे। भरत चिन्तन करने लगे कि मेरे कारण इस व्यक्ति ने भगवान् पर आक्षेप किया है। भगवान् के वचनों पर इसे श्रद्धा नहीं है। मुझे ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे यह भगवान् के वचनों के प्रति श्रद्धालु बने।

दूसरे दिन तेल का कटोरा उस प्रश्नकर्ता के हाथ में थमाते हुए भरत ने कहा—तुम विनीता के सभी बाजारों में परिभ्रमण करो पर एक बूंद भी नीचे न गिरने पाए। बूंद नीचे गिरने पर तुम्हें फांसी के फन्दे पर झूलना पड़ेगा। उस दिन विशेष रूप से बाजारों को सजाया गया था। स्थान-स्थान पर नृत्य, संगीत और नाटकों का आयोजन था। जब वह पुनः लौटकर भरत के पास पहुँचा तो भरत ने पूछा—तुमने क्या-क्या वस्तुएं देखी हैं ? तुम्हें संगीत की स्वरलहरियां कैसी लगीं ? उसने निवेदन किया कि वहाँ मैं नृत्य, संगीत, नाटक कैसे देख सकता था ? भरत ने कहा—आँखों के सामने नृत्य हो रहे थे पर तुम देख न सके। कानों में स्वरलहरियां गिर रहीं थीं पर तुम सुन न सके। क्योंकि तुम्हारे अन्तर्मानस में मृत्यु का भय लगा हुआ था। वैसे ही मैं राज्यश्री का उपभोग करते हुए भी अनासक्त हूं। मेरा मन सभी से उपरत है। वह समझ गया कि यह उपक्रम सम्राट् भरत ने क्यों किया ? उसे भगवान् ऋषभदेव के वचन पर पूर्ण श्रद्धा हो गई। यह थी भरत के जीवन में अनासक्ति जिससे उन्होंने 'राजेश्वरी सो नरकेश्वरी' की उक्ति को मिथ्या सिद्ध कर दिया।

बाहुबली से युद्ध

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में सम्राट् भरत षट्खण्ड पर अपनी विजयश्री लहरा कर विनीता लौटे और वहाँ वे आनन्द से राज्यश्री का उपभोग करने लगे। बाहुबली के साथ युद्ध का वर्णन नहीं है पर आवश्यकनिर्युक्ति,[२१४] आवश्यक-चूर्णि,[२१५] त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित[२१६] प्रभृति ग्रन्थों में भरत के द्वारा बाहुबली को यह संदेश प्रेषित किया गया कि या तो तुम मेरी अधीनता स्वीकार करो, नहीं तो युद्ध के लिये सन्नद्ध हो जाओ। क्योंकि जब तक बाहुबली उनकी अधीनता स्वीकार नहीं करते तब तक पूर्ण विजय नहीं थी। ९८ भ्राता तो प्रथम संदेश से ही राज्य छोड़कर प्रव्रजित हो चुके थे, उन्होंने भरत की अधीनता स्वीकार करने के स्थान पर धर्म की शरण लेना अधिक उचित समझा था। पर बाहुबली भरत के संदेश से तिलमिला उठे और उन्होंने दूत को यह संदेश दिया कि मेरे ९८ भ्राताओं का राज्य छीन कर भी भरत संतुष्ट नहीं हुए ? वह मेरे राज्य को भी पाने के लिये ललक रहे हैं ! उन्हें

२१४. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ३२-३५

२१५. आवश्यकचूर्णि, पृ. २१०

२१६. त्रिषष्टिशलाका पु. च. पर्व १, सर्ग ५, श्लोक ७२३-७२४

अपनी शक्ति का गर्व है। वह सभी को दबाकर अपने अधीन रखना चाहते है। यह शक्ति का सदुपयोग नहीं, दुरुपयोग है। हमारे पूज्य पिताश्री ने जो सुव्यवस्था स्थापित की थी, उसका यह स्पष्ट अतिक्रमण है। मैं इस अन्याय को सहन नहीं कर सकता। मैं बता दूंगा कि आक्रमण करना कितना अहितकर है।

दूत ने जब बाहुबली का संदेश सम्राट् भरत को दिया तो वे असमंजस में पड़ गये, क्योंकि चक्ररत्न नगर में प्रवेश नहीं कर रहा था और जब तक चक्ररत्न नगर में प्रवेश नहीं करता है तब तक चक्रवर्तित्व के लिये जो इतना कठिन श्रम किया था, वह सब निष्फल हो जाता। दूसरी ओर लोकापवाद और भाई का प्रेम भी युद्ध न करने के लिये उत्प्रेरित कर रहा था। चक्रवर्तित्व के लिये मन मार कर भाई से युद्ध करने के लिये भरत प्रस्थित हुए। उन्होंने बहली देश की सीमा पर सेना का पड़ाव डाला। बाहुबली भी अपनी विराट् सेना के साथ रणक्षेत्र में पहुँच गये। कुछ समय तक दोनों सेनाओं में युद्ध होता रहा। युद्ध में जनसंहार होगा, यह सोचकर बाहुबली ने सम्राट् भरत के सामने द्वन्द्वयुद्ध का प्रस्ताव रखा। सम्राट् भरत ने उस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया। दृष्टियुद्ध, वाक्युद्ध, मुष्टियुद्ध और दण्डयुद्ध के द्वारा दोनों का बल परीक्षण करने का निर्णय लिया गया। सर्वप्रथम दृष्टियुद्ध हुआ। इस युद्ध में दोनों ही वीर अनिमेष होकर एक दूसरे के सामने खड़े हो गये और अपलक नेत्रों से एक दूसरे को निहारते रहे। अन्त में संध्या के समय भरत के मुख पर सूर्य आ जाने से उनकी पलकें बन्द हो गईं। प्रथम दृष्टि-युद्ध में बाहुबली विजयी हुए।

दृष्टियुद्ध के बाद वाग्युद्ध प्रारंभ हुआ। दोनों ही वीरों ने पुनः पुनः सिंहनाद किया। भरत का स्वर धीरे-धीरे मन्द होता चला गया व बाहुबली का स्वर धीरे-धीरे उदात्त बनता चला गया। इस युद्ध में भी भरत बाहुबली से पराजित हो गये। दोनों युद्धों में पराजित होने से भरत खिन्न थे। उन्होंने मुष्टियुद्ध प्रारम्भ किया। भरत ने क्रुद्ध होकर बाहुबली के वक्षस्थल पर मुष्टिका प्रहार किया, जिससे बाहुबली कुछ क्षणों के लिये मूर्च्छित हो गए। जब उनकी मूर्च्छा दूर हुई तो बाहुबली ने भरत को उठाकर गेंद की तरह आकाश में उछाल दिया। बाहुबली का मन अनुताप से भर गया कि कहीं भाई जमीन पर गिर गया तो मर जायेगा। उन्होंने गिरने से पूर्व ही भरत को भुजाओं में पकड़ लिया और भरत के प्राणों की रक्षा की। भरत लज्जित थे। उन्होंने बाहुबली के सिर पर मुष्टिका-प्रहार किया पर बाहुबली पर कोई असर नहीं हुआ। जब बाहुबली ने मुष्टिका-प्रहार किया तो भरत मूर्च्छित होकर जमीन पर लुढ़क पड़े। मूर्च्छा दूर होने पर भरत ने दंड से बाहुबली के मस्तक पर प्रहार किया। दण्ड-प्रहार से बाहुबली की आँखें बन्द हो गईं और वे घुटनों तक जमीन में धंस गये। बाहुबली पुनः शक्ति को बटोर कर बाहर निकले। भरत पर उन्होंने प्रहार किया तो भरत गले तक जमीन में धंस गये। सभी युद्धों में भरत पराजित हो गये थे। उनके मन में यह प्रश्न कौंधने लगा कि चक्रवर्ती सम्राट मैं हूँ या बाहुबली है?[२१७] भरत इस संकल्प-विकल्प में उलझे हुए थे कि उसी समय यक्ष राजाओं ने भरत के हाथ में चक्ररत्न थमा दिया। मर्यादा को विस्मृत कर बाहुबली के शिरोच्छेदन करने हेतु भरत ने अपना अन्तिम शस्त्र बाहुबली पर चला दिया। सारे दर्शक देखते रह गये कि अब बाहुबली नहीं बच पायेंगे। बाहुबली का खून भी खौल उठा, वे उछल कर चक्र रत्न को पकड़ना चाहते थे पर चक्ररत्न बाहुबली की प्रदक्षिणा कर पुनः भरत के पास लौट गया। वह बाहुबली का बाल भी बांका नहीं कर सका।[२१८] भरत अपने कृत्य पर लज्जित थे।[२१९]

---

२१७. (क) आवश्यकभाष्य, गाथा ३३
(ख) आवश्यकचूर्णि २१०

२१८. त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित १।५।७२२-७२३

२१९. त्रिषष्टि. १।५।७४६

बाहुबली का क्रोध चरम सीमा पर पहुँच गया था। उन्होंने सम्राट् भरत और चक्र को नष्ट करने के मुट्ठी उठाई तो सभी के स्वर फूट पड़े—सम्राट् भरत ने भूल की है पर आप न करें। छोटे भाई के द्वारा बड़े भाई की हत्या अनुचित ही नहीं अत्यन्त अनुचित है। आप महान् पिता के पुत्र हैं; अतः क्षमा करें। बाहुबली का क्रोध शान्त हो गया। उनका हाथ भरत पर न पड़कर स्वयं के सिर पर आ गया। वे केशलुञ्चन कर श्रमण बन गये।[220]

प्रस्तुत वर्णन कवियों ने बहुत ही विस्तार से चित्रित किया है। इस चित्रण में बाहुबली के व्यक्तित्व की विशेषता का वर्णन हुआ है। पर मूल आगम में इस सम्बन्ध में किञ्चिन्मात्र भी संकेत नहीं है और न ९९ भ्राताओं के प्रव्रजित होने का ही उल्लेख है। उन्होंने किस निमित्त से दीक्षा ग्रहण की, इस सम्बन्ध में भी शास्त्रकार मौन हैं।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में वर्णन है कि भरत आदर्शघर में जाते हैं। वहाँ अपने दिव्य रूप को निहारते हैं। शुभ अध्यवसायों के कारण उन्हें केवलज्ञान व केवलदर्शन प्राप्त हो गया। उन्होंने केवलज्ञान/केवलदर्शन होने के पश्चात् सभी वस्त्राभूषणों को हटाया और स्वयं पञ्चमुष्टि लोच कर श्रमण बने।[221] परन्तु आवश्यकनिर्युक्ति[222] आदि में यह वर्णन दूसरे रूप में प्राप्त है। एक बार भरत आदर्शभवन में गए। उस समय उनकी अंगुली से अंगूठी नीचे गिर पड़ी। अंगूठी रहित अंगुली शोभाहीन प्रतीत हुई। वे सोचने लगे कि अचेतन पदार्थों से मेरी शोभा है! मेरा वास्तविक स्वरूप क्या है? मैं जड़ पदार्थों की सुन्दरता को अपनी सुन्दरता मान बैठा हूँ। इस प्रकार चिन्तन करते हुए उन्होंने मुकुट, कुण्डल आदि समस्त आभूषण उतार दिये। सारा शरीर शोभाहीन प्रतीत होने लगा। वे चिन्तन करने लगे कि कृत्रिम सौन्दर्य चिर नहीं है, आत्मसौन्दर्य ही स्थायी है। भावना का वेग बढ़ा और वे कर्ममल को नष्ट कर केवलज्ञानी बन गये।

दिगम्बर आचार्य जिनसेन[223] ने सम्राट् भरत की विरक्ति का कारण अन्य रूप से प्रस्तुत किया है। उन्होंने लिखा है कि एक बार सम्राट् भरत दर्पण में अपना मुख निहार रहे थे कि सहसा उनकी दृष्टि अपने सिर पर आए हुए श्वेत केश पर टिक गई। उसे निहारते-निहारते ही संसार से विरक्ति हुई। उन्होंने संयम ग्रहण किया और कुछ समय के पश्चात् ही उनमें मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान प्रकट हुआ।

श्रीमद्भागवत[224] में सम्राट् भरत का जीवन कुछ अन्य रूप से मिलता है। राजर्षि भरत सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य भोगकर वन में चले गये। वहाँ पर उन्होंने तपस्या कर भगवान् की उपासना की और तीन जन्मों में भगवत्स्थिति को प्राप्त हुए।

आवश्यकचूर्णि और महापुराण में यह भी वर्णन है कि क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों की स्थापना भगवान् ऋषभदेव ने की और ब्राह्मण वर्ण की स्थापना सम्राट् भरत ने की। आवश्यकचूर्णि के अनुसार जब

---

२२०. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित १।५।७४०-७४२
२२१. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्षस्कार ३
२२२. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ४३६
(ख) आवश्यकचूर्णि पृष्ठ २२७
२२३. महापुराण ४७।३९२-३९३
२२४. श्रीमद्भागवत ११।२।१८।७११

सम्राट् भरत के ९८ लघु भ्राता प्रव्रजित हो गए तब भरत के अन्तर्मानस में यह विचार उद्बुद्ध हुआ कि मेरे पास यह विराट् वैभव है, यह वैभव अपने स्वजनों के भी काम नहीं आया तो निरर्थक है। भरत ने अपने भाइयों को पहले भोग के लिये निमंत्रण दिया। जब उन्होंने यह स्वीकार नहीं किया तो पाँच सौ गाड़ियों में भोजन की सामग्री लेकर जहाँ भगवान् ऋषभदेव विचर रहे थे वहाँ पहुँचे और वह भोजनसामग्री ग्रहण करने के लिये प्रार्थना की। भगवान् ऋषभदेव ने कहा कि श्रमणों के लिये बना हुआ आहार श्रमण ग्रहण नहीं कर सकते और साथ ही यह राजपिण्ड है अतः श्रमण ले नहीं सकते। भरत सोचने लगे कि मेरी कोई भी वस्तु काम नहीं आयेगी। उस समय भरत को चिन्तित देखकर शक्रेन्द्र ने कहा कि आप जो आहार आदि लाये हैं, यह वृद्ध और गुणाधिक श्रावकों को समर्पित करें। भरत को सुझाव पसन्द आया और वह प्रतिदिन गुणज्ञ श्रावकों को आहार देने लगा। भरत ने कहा—आप अपनी आजीविका की चिन्ता से मुक्त बनें। शास्त्रों का स्वाध्याय करें तथा मुझे 'वर्द्धते भयं, माहण माहण' का उपदेश दें। अर्थात् भय बढ़ रहा है, हिंसा मत करो, हिंसा मत करो। भोजन करने वालों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। जो श्रावक नहीं थे, वे भी आने लगे। भरत ने उन श्रावकों की परीक्षा की और कागिणीरत्न से उन्हें चिह्नित किया। 'माहण-माहण' की शिक्षा देने से वे ब्राह्मण (माहण-ब्राह्मण) कहलाए देव, गुरु और धर्म के प्रतीक के रूप में तीन रेखाएं की गई थीं। वे ही रेखाएं आगे चलकर यज्ञोपवीत में परिणत हो गईं।[२२५]

महापुराण के अनुसार ब्राह्मणवर्ण की उत्पत्ति इस प्रकार है—सम्राट् भरत षट्खण्ड को जीत कर जब आये तो उन्होंने सोचा कि बौद्धिक वर्ग, जो अपनी आजीविका की चिन्ता में लगा हुआ है, उसे आजीविका की चिन्ता से मुक्त किया जाय तो वह जनजीवन को योग्य मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है। उन्होंने योग्य व्यक्तियों के परीक्षण के लिये एक उपाय किया। भरत स्वयं आवास में चले गये। मार्ग में हरी घास थी। जिन लोगों में विवेक का अभाव था वे हरी घास पर चलकर भरत के पास पहुँच गये पर कुछ लोग, जिनके मानस में जीवों के प्रति अनुकम्पा थी, वे मार्ग में घास होने के कारण भरत के पास उनके आवास पर नहीं गए, प्रतीक्षाघर में ही बैठे रहे। भरत ने जब उनसे पूछा कि आप मेरे पास क्यों नहीं आए ? उन्होंने बताया कि जीवों की विराधना कर हम कैसे आते ? सम्राट् भरत ने उनका सम्मान किया और 'माहण' अर्थात् ब्राह्मण की संज्ञा से सम्बोधित किया।

भरत के जीवन से सम्बन्धित अन्य कई प्रसंग अन्यान्य ग्रन्थों में आए हैं, पर विस्तार भय से हम उन्हें यहाँ नहीं दे रहे हैं। वस्तुतः सम्राट् भरत का जीवन एक आदर्श जीवन था, जो युग-युग तक मानवसमाज को पावन प्रेरणा प्रदान करता रहेगा।

चतुर्थ वक्षस्कार

चतुर्थ वक्षस्कार में चुल्ल हिमवन्त पर्वत का वर्णन है। इस पर्वत के ऊपर बीचों-बीच पद्म नाम का एक सरोवर है। इस सरोवर का विस्तार से वर्णन किया गया है। गंगा नदी, सिन्धु नदी, रोहितांशा नदी प्रभृति नदियों का भी वर्णन है। प्राचीन साहित्य, चाहे वह वैदिक परम्परा का रहा हो या बौद्ध परम्परा का, उनमें इन नदियों का वर्णन विस्तार के साथ मिलता है। ऋग्वेद में २१ नदियों का वर्णन है। उनमें गंगा और सिन्धु को प्रमुखता दी है। ऋग्वेद के नदीसूक्त में गंगा, सिन्धु को देवताओं के समान रथ पर चलती हुई कहा गया है।[२२६] उनमें देवत्व की प्रतिष्ठा भी की गई है।[२२७] विसुद्धिमग्ग में गंगा, यमुना, सरयू, सरस्वती, अचिरवती, माही

---

२२५. आवश्यकचूर्णि पृ. २१३-२१४

२२६. सुखं रथं युयुजे। —ऋग्वेद १०-७५-९

२२७. ऋग्वेद ६, ८

और महानदी ये सात नाम मिलते हैं। किन्तु सिन्धु का नाम नहीं आया है। जबकि अन्य स्थानों पर सप्त सिन्धव में सिन्धु का नाम प्रमुख है।[२२८] मेगस्थनीज और अन्य ग्रेकोलैटिन लेखकों की दृष्टि से सिन्धु नदी एक अद्वितीय नदी थी। गंगा के अतिरिक्त अन्य कोई नदी उसके समान नहीं थी। ऋग्वेद में कहा है कि सिन्धु नदी का प्रवाह सबसे तेज है।[२२९] यह पृथ्वी की प्रतापशील चट्टानों पर से प्रवाहित होती थी और गतिशील सरिताओं में सबसे अग्रणी थी। ऋग्वेद के नदीस्तुतिसूक्त में सिन्धु की अनेक सहायक नदियों का वर्णन है।[२३०]

चुल्ल हिमवन्त पर्वत पर ग्यारह शिखर हैं। उन शिखरों का भी विस्तार से निरूपण किया है। हैमवत क्षेत्र का और उसमें शब्दापाती नामक वृत्तवैताढ्य पर्वत का भी वर्णन है। महाहिमवन्त नामक पर्वत का वर्णन करते हुए बतलाया गया है कि उस पर्वत पर एक महापद्म नामक सरोवर है। उस सरोवर का भी निरूपण हुआ है। हरिवर्ष, निषध पर्वत और उस पर्वत पर तिगिंछ नामक एक सुन्दर सरोवर है। महाविदेह क्षेत्र का भी वर्णन है। जहाँ पर सदा सर्वदा तीर्थंकर प्रभु विराजते हैं, उनकी पावन प्रवचन धारा सतत प्रवहमान रहती है। महाविदेह क्षेत्र में से हर समय जीव मोक्ष में जा सकता है। इसके बीचों-बीच मेरु पर्वत है। जिससे महाविदेह क्षेत्र के दो विभाग हो गये हैं—एक पूर्व महाविदेह और एक पश्चिम महाविदेह। पूर्व महाविदेह के मध्य में शीता नदी और पश्चिम महाविदेह के मध्य में शीतोदा नदी आ जाने से एक-एक विभाग के दो-दो उपविभाग हो गये हैं। इस प्रकार महाविदेह क्षेत्र के चार विभाग हैं। इन चारों विभागों में आठ-आठ विजय हैं, अतः महाविदेह क्षेत्र में ८×४=३२ विजय हैं। गन्धमादन पर्वत, उत्तर कुरु में यमक नामक पर्वत, जम्बूवृक्ष, महाविदेह क्षेत्र में माल्यवन्त पर्वत, कच्छ नामक विजय, चित्रकूट नामक अन्य विजय, देवकुरु, मेरुपर्वत, नन्दनवन, सौमनस वन आदि वनों के वर्णनों के साथ नील पर्वत, रम्यक हिरण्यवत और ऐरावत आदि क्षेत्रों का भी इस वक्षस्कार में बहुत विस्तार से वर्णन किया है। यह वक्षस्कार अन्य वक्षस्कारों की अपेक्षा बड़ा है। यह वर्णन मूल पाठ में सविस्तार दिया गया है। अतः प्रबुद्ध पाठक इसका स्वाध्याय कर अपने अनुभवों में वृद्धि करें। जैन दृष्टि से जम्बूद्वीप में नदी, पर्वत और क्षेत्र आदि कहाँ-कहाँ पर हैं इसका दिग्दर्शन इस वक्षस्कार में हुआ है।

पांचवां वक्षस्कार

पाँचवें वक्षस्कार में जिनजन्माभिषेक का वर्णन है। तीर्थंकरों का हर एक महत्त्वपूर्ण कार्य कल्याणक कहलाता है। स्थानांग, कल्पसूत्र आदि में तीर्थंकरों के पञ्च कल्याणकों का उल्लेख है। इनमें प्रमुख कल्याणक जन्मकल्याण है। तीर्थंकरों का जन्मोत्सव मनाने के लिये ५६ महत्तरिका दिशाकुमारियाँ और ६४ इन्द्र आते हैं। सर्वप्रथम अधोलोक में अवस्थित भोगंकरा आदि आठ दिशाकुमारियाँ सपरिवार आकर तीर्थंकर की माता को नमन करती हैं और यह नम्र निवेदन करती हैं कि हम जन्मोत्सव मनाने के लिये आई हैं। आप भयभीत न बनें। वे धूल और दुरभि गन्ध को दूर कर एक योजन तक सम्पूर्ण वातावरण को परम सुगन्धमय बनाती हैं और गीत गाती हुई तीर्थंकर की माँ के चारों ओर खड़ी हो जाती हैं।

तत्पश्चात् ऊर्ध्वलोक में रहने वाली मेघंकरा आदि दिक्कुमारियाँ सुगन्धित जल की वृष्टि करती हैं और दिव्य धूप से एक योजन के परिमण्डल को देवों के आगमन योग्य बना देती हैं। मंगल गीत गाती हुए तीर्थंकर की

---

२२८. गङ्गा यमुना चैव गोदा चैव सरस्वती।
नर्मदा सिन्धु कावेरी जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

२२९. ऋग्वेद १०, ७५

२३०. वि० च० लाहा, रीवर्स ऑव इंडिया, पृ. ९-१०

माँ के सन्निकट खड़ी हो जाती हैं, उसके पश्चात् रुचककूट पर रहने वाली नन्दुत्तरा आदि दिक्कुमारियाँ हाथों में दर्पण लेकर आती हैं। दक्षिण के रुचक पर्वत पर रहने वाली समाहारा आदि दिक्कुमारियाँ अपने हाथों में झारियां लिये हुए, पश्चिम दिशा के रुचक पर्वत पर रहने वाली इला देवी आदि दिक्कुमारियाँ पंखे लिये हुए, उत्तरकुरु पर्वत पर रहने वाली अलम्बूषा आदि दिक्कुमारियाँ चामर लिये हुए मंगलगीत गाती हुई तीर्थंकर की माँ के सामने खड़ी हो जाती हैं। विदिशा के रुचक पर्वत पर रहने वाली चित्रा, चित्रकनका, सतेरा और सुदामिनी देवियां चारों दिशाओं में प्रज्वलित दीपक लिये खड़ी होती हैं। उसी प्रकार मध्य रुचक पर्वत पर रहने वाली रूपा, रूपांशा, सुरूपा और रूपकावती ये चारों महत्तरिका दिशाकुमारियाँ नाभि-नाल को काटती हैं और उसे गड्ढे में गाड़ देती हैं। रत्नों से उस गड्ढे को भरकर उस पर पीठिका निर्माण करती हैं। पूर्व, उत्तर व दक्षिण इन तीन दिशाओं में, तीन कदलीघर और एक-एक चतुःसाल और उसके मध्य भाग में सिंहासन बनाती हैं। मध्य रुचक पर्वत पर रहने वाली रूपा आदि दिक्कुमारियाँ दक्षिण दिशा के कदली गृह में तीर्थंकर को माता के साथ सिंहासन पर लाकर बिठाती हैं। शतपाक, सहस्रपाक तैल का मर्दन करती हैं और सुगन्धित द्रव्यों से पीठी करती हैं। वहाँ से उन्हें पूर्व दिशा के कदलीगृह में ले जाती हैं। गन्धोदक, पुष्पोदक और शुद्धोदक से स्नान कराती हैं। वहाँ से उत्तर दिशा के कदलीगृह के सिंहासन पर बिठाकर गोशीर्ष चन्दन से हवन और भूतिकर्म निष्पन्न कर रक्षा पोटली बांधती हैं और मणिरत्नों से कर्णमूल के पास शब्द करती हुई चिरायु होने का आशीर्वाद देती हैं। वहाँ से तीर्थंकर की माता को तीर्थंकर के साथ जन्मगृह में ले जाती हैं और उन्हें शय्या पर बिठाकर मंगलगीत गाती हैं।

उसके पश्चात् आभियोगिक देवों के साथ सौधर्मेन्द्र आता है और तीर्थंकर की माँ को नमस्कार कर उन्हें अवस्वापिनी निद्रा में सुला देता है। तीर्थंकर का दूसरा रूप बनाकर तीर्थंकर की माता के पास आता है और स्वयं वैक्रिय शक्ति से अपने पाँच रूप बनाता है। एक रूप से तीर्थंकर को उठाता है, दूसरे रूप से छत्र धारण करता है और दो रूप इधर-उधर दोनों पार्श्व में चामर बींजते हैं। पाँचवाँ शक्ररूप हाथ में वज्र लिये हुए आगे चलता है। चारों प्रकार के देवगण दिव्य ध्वनियों से वातावरण को मुखरित करते हुए द्रुतगति से मेरु पर्वत के पण्डक वन में पहुँचते हैं और अभिषेक-सिंहासन पर भगवान् को बिठाते हैं। ६४ इन्द्र तीर्थंकर की पर्युपासना करने लगते हैं।

अच्युतेन्द्र आभियोगिक देवों को आदेश देता है। महर्घ्य महाभिषेक के योग्य १००८ स्वर्ण कलश, रजतमय, मणिमय, स्वर्ण और रूप्यमय, स्वर्ण-मणिमय, स्वर्ण-रजत-मणिमय, मृतिकामय, चन्दन के कलश, लोटे, थाल, सुप्रतिष्ठिका, चित्रक, रत्नकरण्डक, पंखे, एक हजार प्रकार के धूप, सभी प्रकार के फूल आदि विविध प्रकार की सामग्री लेकर उपस्थित हों। जब वे उपस्थित हो जाते हैं तो उन कलशों में क्षीरोदक, पुष्करोदक, भरत, ऐरवत क्षेत्र के मागधादि तीर्थों के जल, गंगा आदि महानदियों के जल से पूर्ण करके उन कलशों पर क्षीरसागर के सहस्रदल कमलों के ढक्कन लगाकर सुदर्शन, भद्रसाल, नन्दन आदि वनों के पुष्प, गोशीर्ष चन्दन और श्रेष्ठतम ओषधियाँ लेकर अभिषेक करने को तैयार होते हैं।

अच्युतेन्द्र चन्दन-चर्चित कलशों से तीर्थंकर का महाभिषेक करते हैं। चारों ओर पुष्पवृष्टि होती है। अन्य ६३ इन्द्र भी अभिषेक करते हैं। शक्रेन्द्र चारों दिशाओं में चार श्वेत वृषभों की विकुर्वणा कर उनके शृंगों से आठ-आठ जलधाराएं बहाकर अभिषेक करते हैं। उसके पश्चात् शक्र पुनः तीर्थंकर को माता के पास ले जाता है और माता के सिरहाने क्षोमयुगल तथा कुण्डलयुगल रखकर तीर्थंकर के दूसरे बनावटी रूप को माता के पास से हटाकर माता की निद्रा का संहरण करता है। कुबेर आदि को आदेश देकर विराट् निधि तीर्थंकर के महल में प्रस्थापित करवाते हैं और यह आदेश देते हैं कि तीर्थंकर और उनकी माता का यदि कोई अशुभ चिन्तवन करेगा

तो उसे कठोर दण्ड दिया जायेगा। वहाँ से सभी इन्द्र नन्दीश्वर द्वीप जाकर अष्टाह्निका महोत्सव मनाते हैं और तीर्थंकर के माता-पिता भी जन्मोत्सव मनाते हैं।

बौद्ध साहित्य में

तीर्थंकर के जन्मोत्सव का वर्णन जैसा जैन आगमसाहित्य में आया है, उससे कतिपय अंशों में मिलता-जुलता बौद्ध परम्परा में भी तथागत बुद्ध के जन्मोत्सव का वर्णन मिलता है।[२३१]

छठा वक्षस्कार

छठे वक्षस्कार में जम्बूद्वीपगत पदार्थ संग्रह का वर्णन है। जम्बूद्वीप के प्रदेशों का लवणसमुद्र से स्पर्श और जीवों का जन्म, जम्बूद्वीप में भरत, ऐरवत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवास, रम्यकवास और महाविदेह इनका प्रमाण, वर्षधर पर्वत, चित्रकूट, विचित्रकूट, यमक पर्वत, कंचन पर्वत, वक्षस्कार पर्वत, दीर्घ वैताढ्य पर्वत, वर्षधरकूट, वक्षस्कारकूट, वैताढ्यकूट, मन्दरकूट, मागध तीर्थ, वरदाम तीर्थ, प्रभास तीर्थ, विद्याधर श्रेणिया चक्रवर्ती विजय, राजधानियाँ, तमिस्रगुफा, खंडप्रपातगुफा, नदियों और महानदियों का विस्तार से मूल आगम में वर्णन प्राप्त है। पाठक गण उसका पारायण कर अपने ज्ञान में अभिवृद्धि करें।

सातवां वक्षस्कार

सातवें वक्षस्कार में ज्योतिष्कों का वर्णन है। जम्बूद्वीप में दो चन्द्र, दो सूर्य, छप्पन नक्षत्र, १७६ महाग्रह प्रकाश करते हैं। उसके पश्चात् सूर्य मण्डलों की संख्या आदि का निरूपण है। सूर्य की गति, दिन और रात्रि का मान, सूर्य के आतप का क्षेत्र, पृथ्वी, सूर्य आदि की दूरी, सूर्य का ऊर्ध्व और तिर्यक् ताप, चन्द्रमण्डलों की संख्या, एक मुहूर्त में चन्द्र की गति, नक्षत्र मण्डल एवं सूर्य के उदय-अस्त विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

संवत्सर पाँच प्रकार के हैं—नक्षत्र, युग, प्रमाण, लक्षण और शनैश्चर। नक्षत्र संवत्सर के बारह भेद बताये हैं। युगसंवत्सर, प्रमाणसंवत्सर और लक्षणसंवत्सर के पांच-पांच भेद हैं। शनैश्चर संवत्सर के २८ भेद हैं। प्रत्येक संवत्सर के १२ महीने होते हैं। उनके लौकिक और लोकोत्तर नाम बताये हैं। एक महीने के दो पक्ष, एक पक्ष के १५ दिन व १५ रात्रि और १५ तिथियों के नाम, मास, पक्ष, करण, योग, नक्षत्र, पोरुषीप्रमाण आदि का विस्तार से विवेचन किया गया है।

चन्द्र का परिवार, मंडल में गति करने वाले नक्षत्र, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में चन्द्रविमान को वहन करने वाले देव, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा के विमानों को वहन करने वाले देव, ज्योतिष्क देवों की शीघ्र गति, उनमें अल्प और महाऋद्धि वाले देव, जम्बूद्वीप में एक तारे से दूसरे तारे का अन्तर, चन्द्र की चार अग्रमहिषियाँ, परिवार, वैक्रियशक्ति, स्थिति आदि का वर्णन है।

जम्बूद्वीप में जघन्य, उत्कृष्ट तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, निधि, निधियों का परिभोग, पंचेन्द्रिय रत्न तथा उनका परिभोग, एकेन्द्रिय रत्न, जम्बूद्वीप का आयाम, विष्कंभ, परिधि, ऊँचाई, पूर्ण परिमाण, शाश्वत अशाश्वत कथन की अपेक्षा, जम्बूद्वीप में पाँच स्थावर कायो में अनन्त बार उत्पत्ति, जम्बूद्वीप नाम का कारण आदि बताया गया है।

व्याख्यासाहित्य

जैन भूगोल तथा प्रागैतिहासिककालीन भारत के अध्ययन की दृष्टि से जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति का अनूठा महत्त्व है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति पर कोई भी निर्युक्ति प्राप्त नहीं है और न भाष्य ही लिखा गया है। किन्तु एक चूर्णि अवश्य

२३१. आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन, प्र. भा., मुनि नगराज

लिखी गई है।[२३२] उस चूर्णि के लेखक कौन थे और उसका प्रकाशन कहाँ से हुआ, यह मुझे ज्ञात नहीं हो सका है। आचार्य मलयगिरि ने भी जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति पर एक टीका लिखी थी, वह भी अप्राप्य है।[२३३] संवत् १६३९ में हीरविजयसूरि ने इस पर टीका लिखी, उसके पश्चात् वि. संवत् १६४५ में पुण्यसागर ने तथा विक्रम संवत् १६६० में शान्तिचन्द्रगणी ने प्रमेयरत्नमंजूषा नामक टीकाग्रन्थ लिखा। यह टीकाग्रन्थ सन् १८८५ में धनपतसिंह कलकत्ता तथा सन् १९२० में देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फंड, बम्बई से प्रकाशित हुआ। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति का हिन्दी अनुवाद विक्रम संवत् २४४६ में हैदराबाद से प्रकाशित हुआ था। जिसके अनुवादक आचार्य अमोलकऋषि जी म. थे। आचार्य घासीलाल जी म. ने भी सरल संस्कृत में टीका लिखी और हिन्दी तथा गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है।

प्रस्तुत संस्करण

चिरकाल से प्रस्तुत आगम पर विशुद्ध अनुवाद की अपेक्षा थी। परम प्रसन्नता है कि स्वर्गीय युवाचार्य श्री मधुकरमुनि जी महाराज ने आगम प्रकाशन योजना प्रस्तुत की और आगम प्रकाशन समिति ब्यावर ने यह उत्तरदायित्व ग्रहण किया। अनेक मनीषी प्रवरों के सहयोग से स्वल्पावधि में अनेक आगमों का शानदार प्रकाशन हुआ। पर परिताप है कि युवाचार्य श्रीमधुकर मुनि जी का आकस्मिक स्वर्गवास हो गया। उनके स्वर्गवास से प्रस्तुत योजना में महान् विक्षेप उपस्थित हुआ है। सम्पादकमण्डल और प्रकाशनसमिति ने यह निर्णय लिया कि युवाचार्यश्री की प्रस्तुत कल्पना को हम मनीषियों के सहयोग से मूर्त्त रूप देंगे। युवाचार्यश्री के जीवनकाल में ही जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के अनुवाद, विवेचन और सम्पादकत्व का उत्तरदायित्व भारतीय तत्त्वविद्या के गम्भीर अध्येता, भाषाशास्त्री, डा. श्री छगनलाल जी शास्त्री को युवाचार्यश्री के द्वारा सौंपा गया था। डा. छगनलाल जी शास्त्री जिस कार्य को हाथ में लेते हैं, उस कार्य को वे बहुत ही तन्मयता के साथ सम्पन्न करते हैं। विषय की तलछट तक पहुँचकर विषय को बहुत ही सुन्दर, सरस शब्दावली में प्रस्तुत करना उनका अपना स्वभाव है।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति आगम का मूल पाठ शुद्ध है और अनुवाद इतना सुन्दर हुआ है कि पढ़ते-पढ़ते पाठक को विषय सहज ही हृदयगम हो जाता है। अनुवाद की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह प्रवाहपूर्ण है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति का अनुवाद करना कोई सरल कार्य नहीं किन्तु डा. शास्त्री जी ने इतना बढ़िया अनुवाद कर विज्ञों को यह बता दिया है कि एकनिष्ठा के साथ किये गये कार्य में सफलता देवी स्वयं चरण चूमती है। डा. शास्त्रीजी ने विवेचन बहुत ही कम स्थलों पर किया है। लगता है, उनका दार्शनिक मानस प्रागैतिहासिक भूगोल के वर्णन में न रमा। क्योंकि प्रस्तुत आगम में जो वर्णन है, वह श्रद्धायुग का वर्णन है। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से प्राचीन भूगोल को सिद्ध करना जरा टेढ़ी खीर है। क्योंकि जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में जिन क्षेत्रों का वर्णन आया है, जिन पर्वतों और नदियों का उल्लेख हुआ है, वे वर्तमान में कहाँ हैं ? उनकी अवस्थिति कहाँ है ? आदि कह पाना सम्भव नहीं है। सम्भव है इसी दृष्टि से शास्त्रीजी ने अपनी लेखनी इस पर नहीं चलाई है। श्वेताम्बर परम्परा अनुसार जम्बूद्वीप, मेरु पर्वत, सूर्य, चन्द्र आदि के सम्बन्ध में आगमतत्त्वदिवाकर, स्नेहमूर्ति श्री अभयसागर जी महाराज दत्तचित्त होकर लगे हुए हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में काफी चिन्तन किया है और अनेक विचारकों से भी इस सम्बन्ध में लिखवाने का प्रयास किया है। इसी तरह दिगम्बर परम्परा में भी आर्यिका ज्ञानमती जी प्रयास कर रही हैं।

---

२३२. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग III. पृष्ठ २८९

२३३. वही, भाग III. पृष्ठ ४१७

हम आध्यात्मिक दृष्टि से चिन्तन करें तो यह भौगोलिक वर्णन हमें लोकबोधिभावना के मर्म को समझने में बहुत ही सहायक है, जिसे जानने पर हम उस स्थल को जान लेते हैं, जहाँ हम जन्म-जन्मान्तर से और बहुविध स्खलनों के कारण उस मुख्य केन्द्र पर अपनी पहुँच नहीं बना पा रहे हैं जो हमारा अन्तिम लक्ष्य है। हम अज्ञान-वश भटक रहे हैं। यह भटकना अन्तहीन और निरुद्देश्य है, यदि आत्मा पुरुषार्थ करता है तो वह इस दुष्चक्र को काट सकता है। भूगोल की यह सबसे बड़ी उपयोगिता है—इसके माध्यम से आत्मा इस अन्तहीन व्यूह को समझ सकता है। हम जहाँ पर रहते हैं या जो हमारी अनन्तकाल से जानी-अनजानी यात्राओं का बिन्दु रहा है, उसे हम जानें कि वह कैसा है? कितना बड़ा है? उसमें कहाँ पर क्या-क्या है? कितना हम अपने चर्म-चक्षुओं से निहारते हैं? क्या वही सत्य है या उसके अतिरिक्त भी और कुछ ज्ञेय है? इस प्रकार के अनेक प्रश्न हमारे मन और मस्तिष्क में उद्‌बुद्ध होते हैं और वे प्रश्न ऐसा समाधान चाहते हैं जो असंदिग्ध हो, ठोस हो और सत्य पर आधृत हो। प्रस्तुत आगम में केवल जम्बूद्वीप का ही वर्णन है। जम्बूद्वीप तो इस संसार में जितने द्वीप हैं उन सबसे छोटा द्वीप है। अन्य द्वीप इस द्वीप से कई गुना बड़े हैं। जिसमें यह आत्मा कोल्हू के बैल की तरह आँखों पर मोह की पट्टी बाँधे घूम रहा है। हमारे मनीषियों ने भूगोल का जो वर्णन किया है उसका यही आशय है कि इस मंच पर यह जीव अनवरत अभिनय करता रहा है। अभिनय करने पर भी न उसे मंच का पता है और न नेपथ्य का ही। जब तप से, जप से अन्तर्नेत्र खुलते हैं तब उसे ज्ञान के दर्पण में सारे दृश्य स्पष्ट दिखलाई देने लगते हैं कि हम कहाँ-कहाँ भटकते रहे और जहाँ भटकते रहे उसका स्वरूप यह है। वहाँ क्या हम अकेले ही थे या अन्य भी थे? इस प्रकार के विविध प्रश्न जीवन-दर्शन के सम्बन्ध में उद्‌बुद्ध होते हैं। जैन भूगोल मानचित्रों का कोई संग्रहालय नहीं है और न वह रंग-रेखाओं, कोणों—भुजाओं का ज्यामितिक दृश्य ही है। सर्वज्ञ सर्वदर्शी महापुरुषों के द्वारा कथित होने से हम उसे काल्पनिक भी नहीं मान सकते। जो वस्तुस्वरूप को नहीं जानते और वस्तुस्वरूप को जानने के लिये प्रबल पुरुषार्थ भी नहीं करते, उनके लिये भले ही यह वर्णन काल्पनिक हो, किन्तु जो राग-द्वेष, माया-मोह आदि से परे होकर आत्मचिन्तन करते हैं, उनके लिये यह विज्ञान मोक्षप्राप्ति के लिये जीवनदर्शन है, एक रास्ता है, पगडंडी है।[२३४]

जैन भूगोल का परिज्ञान इसलिये आवश्यक है कि आत्मा को अपनी विगत/आगत/अनागत यात्रा का ज्ञान हो जाये और उसे यह भी परिज्ञान हो जाये कि इस विराट् विश्व में उसका असली स्थान कहाँ है? उसका अपना गन्तव्य क्या है? वस्तुतः जैन भूगोल अपने घर की स्थितिबोध का शास्त्र है। उसे भूगोल न कहकर जीवनदर्शन कहना अधिक यथार्थ है। वर्तमान में जो भूगोल पढ़ाया जाता है, वह विद्यार्थी को भौतिकता की ओर ले जाता है। वह केवल ससीम की व्याख्या करता है। वह असीम की व्याख्या करने में असमर्थ है। उसमें स्वरूपबोध का ज्ञान नहीं है जबकि महामनीषियों द्वारा प्रतिपादित भूगोल में अनन्तता रही हुई है, जो हमें बाहर से भीतर की ओर झांकने को उत्प्रेरित करती है।

जो भी आस्तिक दर्शन हैं जिन्हें आत्मा के अस्तित्व पर विश्वास है, वे यह मानते हैं कि आत्मा कर्म के कारण इस विराट विश्व में परिभ्रमण कर रहा है। हमारी जो यात्रा चल रही है, उसका नियामक तत्त्व कर्म है। वह हमें कभी स्वर्गलोक की यात्रा कराता है तो कभी नरकलोक की, कभी तिर्यञ्चलोक की तो कभी मानव लोक की। उस यात्रा का परिज्ञान करना या कराना ही जैन भूगोल का उद्देश्य रहा है। आत्मा शाश्वत है, कर्म भी शाश्वत है और धार्मिक भूगोल भी शाश्वत है। क्योंकि आत्मा का वह परिभ्रमण स्थान है। जो आत्मा और कर्म-सिद्धान्त को नहीं जानता वह धार्मिक भूगोल को भी नहीं जान सकता। आज कहीं पर अतिवृष्टि का प्रकोप है,

२३४. तीर्थंकर, जैन भूगोल विशेषाङ्क—डॉ. नेमीचन्द जैन इन्दौर

कहीं पर अल्पवृष्टि है, कही पर अनावृष्टि है, कहीं पर भूकम्प आ रहे हैं तो कहीं पर समुद्री तूफान और कहीं पर धरती लावा उगल रही है, कहीं दुर्घटनाएं हैं। इन सभी का मूल कारण क्या है, इसका उत्तर विज्ञान के पास नहीं है। केवल इन्द्रियगम्य ज्ञान से इन प्रश्नों का समाधान नहीं हो सकता। इन प्रश्नों का समाधान होता है—महामनीषियों के चिन्तन से, जो हमें धरोहर के रूप में प्राप्त है। जिस पर इन्द्रियगम्य ज्ञान ससीम होने से असीम संबंधी प्रश्नों का समाधान उसके पास नहीं है। इन्द्रियगम्य ज्ञान विश्वसनीय इसलिये माना जाता है कि वह हमें साफ-साफ दिखलाई देता है। आध्यात्मिक ज्ञान असीम होने के कारण उस ज्ञान को प्राप्त करने के लिये आत्मिक क्षमता का पूर्ण विकास करना होता है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति का वर्णन इस दृष्टि से भी बहुत ही उपयोगी है।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति की प्रस्तावना मैंने बहुत ही संक्षेप में लिखी है। अनेक ऐसे बिन्दु जिनकी विस्तार से चर्चा की जा सकती थी, उन बिन्दुओं पर समयाभाव के कारण चर्चा नहीं कर सका हूँ। मैं सोचता हूँ कि मूल आगम में वह चर्चा बहुत ही विस्तार से आई है अतः जिज्ञासु पाठक मूल आगम का पारायण करें, उनको बहुत कुछ नवीन चिन्तन-सामग्री प्राप्त होगी। पाठक को प्रस्तुत अनुवाद मूल आगम की तरह ही रसप्रद लगेगा। मैं डॉ. शास्त्री महोदय को साधुवाद प्रदान करूंगा कि उन्होंने कठिन श्रम कर भारती के भण्डार में अनमोल उपहार समर्पित किया है, वह युग-युग तक जन-जन के जीवन को आलोक प्रदान करेगा। महामहिम विश्वसन्त अध्यात्म-योगी उपाध्यायप्रवर पूज्य गुरुदेव श्रीपुष्करमुनि जी महाराज, जो स्वर्गीय युवाचार्य मधुकर मुनि जी के परम स्नेही-साथी रहे हैं, उनके मार्गदर्शन और आशीर्वाद के कारण ही मैं प्रस्तावना की कुछ पंक्तियां लिख सका हूँ।

सुज्ञेषु किं बहुना !

ज्ञानपंचमी/१७-११-८५
जैनस्थानक
वीरनगर
दिल्ली—७

—देवेन्द्रमुनि

अनुक्रमणिका

प्रथम वक्षस्कार

द्वितीय वक्षस्कार

तृतीय वक्षस्कार

चतुर्थ वक्षस्कार

पंचम वक्षस्कार

षष्ठ वक्षस्कार

सप्तम वक्षस्कार

जंबुद्दीवपण्णत्तिसुत्तं

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र

प्रथम वक्षस्कार

सन्दर्भ

१. णमो अरिहंताणं। तेणं कालेणं तेणं समएणं मिहिला णामं णयरी होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धा, वण्णओ। तीसे णं मिहिलाए णयरीए वहिया उत्तर-पुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं माणिभद्दे णामं चेइए होत्था, वण्णओ। जियसत्तू राया, धारिणी देवी, वण्णओ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे, परिसा निग्गया, धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया।

[१] उस काल—वर्तमान अवसर्पिणीकाल के चौथे आरे के अन्त में, उस समय—जब भगवान् महावीर विद्यमान थे, मिथिला नामक नगरी थी। (जैसा कि प्रथम उपांग औपपातिक आदि अन्य आगमों में नगरी का वर्णन आया है,) वह वैभव, सुरक्षा, समृद्धि आदि विशेषताओं से युक्त थी।

मिथिला नगरी के वाहर उत्तर-पूर्व दिशा-भाग में—ईशान कोण में माणिभद्र नामक चैत्य—यक्षायतन था (जिसका अन्य आगमों में वर्णन है)।

जितशत्रु मिथिला का राजा था। धारिणी उसकी पटरानी थी (जिनका औपपातिक आदि आगमों में वर्णन आया है)।

तब भगवान् महावीर वहाँ समवसृत हुए—पधारे। (भगवान के दर्शन हेतु) लोग अपने-अपने स्थानों से रवाना हुए, जहाँ भगवान् विराजित थे, आये। भगवान् ने धर्म-देशना दी। (धर्म-देशना सुनकर) लोग वापस लौट गये।

विवेचन—यहाँ काल और समय—ये दो शब्द आये हैं। साधारणतया ये पर्यायवाची हैं। जैन पारिभाषिक दृष्टि से इनमें अन्तर भी है। काल वर्तना-लक्षण सामान्य समय का वाचक है और समय काल के सूक्ष्मतम—सबसे छोटे भाग का सूचक है। पर, यहाँ इन दोनों का इस भेद-मूलक अर्थ के साथ प्रयोग नहीं हुआ है। जैन आगमों की वर्णन-शैली की यह विशेषता है, वहाँ एक ही बात प्रायः अनेक पर्यायवाची, समानार्थक या मिलते-जुलते अर्थ वाले शब्दों द्वारा कही जाती है। भाव को स्पष्ट रूप में प्रकट करने में इससे सहायता मिलती है। पाठकों के सामने किसी घटना, वृत्त या स्थिति का एक वहुत साफ शब्द-चित्र उपस्थित हो जाता है। यहाँ काल का अभिप्राय वर्तमान अवसर्पिणी के चौथे आरे के अन्त से है तथा समय उस युग या काल का सूचक है, जब भगवान् महावीर विद्यमान थे।

यहाँ मिथिला नगरी तथा माणिभद्र चैत्य का उल्लेख हुआ है। दोनों के आगे 'वण्णओ' शब्द आया है। जैन आगमों में नगर, गाँव, उद्यान आदि सामान्य विषयों के वर्णन का एक स्वीकृत रूप

है। उदाहरणार्थ नगरी के वर्णन का जो सामान्य-क्रम है, वह सभी नगरियों के लिए काम में आ जाता है। उद्यान आदि के साथ भी ऐसा ही है।

लिखे जाने से पूर्व जैन आगम मौखिक परम्परा से याद रखे जाते थे। याद रखने में सुविधा की दृष्टि से सम्भवतः यह शैली अपनाई गई हो। वैसे नगर, उद्यान आदि लगभग सदृश होते ही हैं।

इस सूत्र में संकेतित चैत्य शब्द कुछ विवादास्पद है। चैत्य शब्द अनेकार्थवादी है। सुप्रसिद्ध जैनाचार्य पूज्य श्री जयमलजी म. ने चैत्य शब्द के एक सौ बारह अर्थों की गवेषणा की है।[1]

चैत्य शब्द के सन्दर्भ में भाषावैज्ञानिकों का ऐसा अनुमान है कि किसी मृत व्यक्ति के जलाने के स्थान पर उसकी स्मृति में एक वृक्ष लगाने की प्राचीनकाल में परम्परा रही है। भारतवर्ष से बाहर भी ऐसा होता रहा है। चिति या चिता के स्थान पर लगाये जाने के कारण वह वृक्ष 'चैत्य' कहा जाने लगा हो। आगे चलकर यह परम्परा कुछ बदल गई। वृक्ष के स्थान पर स्मारक के रूप में मकान बनाया जाने लगा। उस मकान में किसी लौकिक देव या यक्ष आदि की प्रतिमा स्थापित की जाने लगी। यों उसने एक देवस्थान या मन्दिर का रूप ले लिया। वह चैत्य कहा जाने लगा। ऐसा होते-होते चैत्य शब्द सामान्य मन्दिरवाची भी हो गया।

२. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई णामं अणगारे गोअमगोत्तेणं सत्तुस्सेहे, सम-चउरंस-संठाण-संठिए, वइर-रिसहणाराय-संघयणे, कणग-पुलग-निघस-पम्हगोरे, उग्गतवे, दित्ततवे, तत्ततवे, महातवे, ओराले, घोरे, घोरगुणे, घोरतवस्सी, घोर-बंभचेरवासी, उच्छूढ-सरीरे, संखित्त-विउल-तेउ-लेस्से तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, वंदइ, णंमसइ, वंदित्ता, णमंसित्ता एवं वयासी।

[२] उसी समय की बात है, भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी—शिष्य इन्द्रभूति नामक अनगार—श्रमण, जो गौतम गोत्र में उत्पन्न थे, जिनकी देह की ऊँचाई सात हाथ थी, समचतुरस्र संस्थानसंस्थित—देह के चारों अंशों की सुसंगत, अंगों के परस्पर समानुपाती, सन्तुलित और समन्वित रचना-युक्त शरीर के धारक थे, जो वज्र-ऋषभ-नाराच-संहनन—सुदृढ़ अस्थिबंधमय विशिष्ट देह-रचना युक्त थे, कसौटी पर अंकित स्वर्ण-रेखा की आभा लिए हुए कमल के समान जो गौरवर्ण थे, जो उग्र तपस्वी थे, दीप्त तपस्वी—कर्मों को भस्मसात् करने में अग्नि के समान प्रदीप्त तप करने वाले थे, तप्त-तपस्वी—जिनकी देह पर तपश्चर्या की तीव्र झलक थी, जो महातपस्वी, प्रबल, घोर, घोर-गुण, घोर-तपस्वी, घोर-ब्रह्मचारी, उत्क्षिप्त-शरीर एवं संक्षिप्त-विपुल-तेजोलेश्य थे।

वे भगवान् के पास आये, तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, वंदन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार कर यों बोले (जो आगे के सूत्र में द्रष्टव्य है)।

जम्बूद्वीप की अवस्थिति

३. कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे, १, केमहालए णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे २, किंसंठिए णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे ३, किमायारभावपडोयारे णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे ४, पण्णत्ते ?

---

१. देखें औपपातिक सूत्र—(श्री आगमप्रकाशन समिति, व्यावर), पृष्ठ ६-७

गोयमा ! अयं णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतराए १, सव्वखुड्डाए २, वट्टे, तेल्लापूयसंठाणसंठिए वट्टे, रहचक्कवालसंठाणसंठिए वट्टे, पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिए वट्टे, पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए वट्टे ३, एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलस सहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचिविसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।

[३] भगवन् ! यह जम्बूद्वीप कहाँ है ? कितना बड़ा है ? उसका संस्थान कैसा है ? उसका आकार-स्वरूप कैसा है ?

गौतम ! यह जम्बूद्वीप सब द्वीप समुद्रों में आभ्यन्तर है—समग्र तिर्यक् लोक के मध्य में स्थित है, सबसे छोटा है, गोल है, तेल में तले पूए जैसा गोल है, रथ के पहिए जैसा गोल है, कमल की कर्णिका जैसा गोल है, प्रतिपूर्ण चन्द्र जैसा गोल है । अपने गोल आकार में यह एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा है । इसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन तीन कोस एक सौ अट्ठाईस धनुष और साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक है ।

जम्बूद्वीप की जगती : प्राचीर

४. से णं एगाए वइरामईए जगईए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते । सा णं जगई अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले बारस जोअणाइं विक्खंभेणं, मज्झे अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं, उवरिं चत्तारि जोअणाइं विक्खंभेणं, मूले विच्छिन्ना, मज्झे संखित्ता, उवरिं तणुया गोपुच्छसंठाणसंठिया, सव्ववइरामई, अच्छा, सण्हा, लण्हा, घट्ठा, मट्ठा, णीरया, णिम्मला, णिप्पंका, णिक्कंकडच्छाया, सप्पभा, समिरीया, सउज्जोया, पासादीया, दरिसणिज्जा, अभिरूवा, पडिरूवा । सा णं जगई एगेणं महंतगवक्खकडएणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता ।

से णं गवक्खकडए अद्धजोअणं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं, सव्वरयणामए, अच्छे, (सण्हे, लण्हे, घट्ठे, मट्ठे, णीरए, णिम्मले, णिप्पंके, णिक्कंकडच्छाए, सप्पभे, समिरीए, सउज्जोए, पासादीए, दरिसणिज्जे, अभिरूवे,) पडिरूवे ।

तीसे णं जगईए उप्पिं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महई एगा पउमवरवेइया पण्णत्ता—अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं, जगईसमिया परिक्खेवेणं, सव्वरयणामई, अच्छा जाव[1] पडिरूवा । तीसे णं पउमवरवेइयाए अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—वइरामया णेमा एवं जहा जीवाभिगमे जाव अट्ठो जाव धुवा णियया सासया, (अक्खया, अव्वया, अवट्ठिया,) णिच्चा ।

[४] वह (जम्बूद्वीप) एक वज्रमय जगती (दीवार) द्वारा सब ओर से वेष्टित है । वह जगती आठ योजन ऊंची है । मूल में बारह योजन चौड़ी, बीच में आठ योजन चौड़ी और ऊपर चार योजन चौड़ी है । मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त—संकड़ी तथा ऊपर तनुक—पतली है । उसका आकार गाय की पूंछ जैसा है । वह सर्व रत्नमय, स्वच्छ, सुकोमल, चिकनी, घुटी हुई-सी—घिसी हुई-सी, तरासी हुई-सी, रज-रहित, मैल-रहित, कर्दम-रहित तथा अव्याहत प्रकाश वाली है । वह प्रभा,

१. देखें सूत्र यही

कान्ति तथा उद्योत से युक्त है, चित्त को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय—देखने योग्य, अभिरूप—मनोज्ञ—मन को अपने में रमा लेने वाली तथा प्रतिरूप—मन में बस जाने वाली है।

उस जगती के चारों ओर एक जालीदार गवाक्ष है। वह आधा योजन ऊंचा तथा पाँच सौ धनुष चौड़ा है। सर्व-रत्नमय, स्वच्छ, (सुकोमल, चिकना, घुटा हुआ-सा—घिसा हुआ-सा, तरासा हुआ-सा, रज-रहित, मैल-रहित, कर्दम-रहित तथा अव्याहत प्रकाश से युक्त है। वह प्रभा, कान्ति एवं उद्योत युक्त है, चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप और) प्रतिरूप है।

उस जगती के बीचोंबीच एक महती पद्मवरवेदिका है। वह आधा योजन ऊँची और पाँच सौ धनुष चौड़ी है। उसकी परिधि जगती जितनी है। वह स्वच्छ एवं सुन्दर है। पद्मवरवेदिका का वर्णन जैसा जीवाभिगमसूत्र में आया है, वैसा ही यहाँ समझ लेना चाहिए। वह ध्रुव, नियत, शाश्वत (अक्षय, अव्यय, अवस्थित) तथा नित्य है।

वन-खण्ड : भूमिभाग

५. तीसे णं जगईए उप्पिं बाहिं पउमवरवेइयाए एत्थ णं महं एगे वणसंडे पण्णत्ते। देसूणाइं दो जोअणाइं विक्खंभेणं, जगईसमए परिक्खेवेणं वणसंडवण्णओ णेयव्वो।

[५] उस जगती के ऊपर तथा पद्मवरवेदिका के बाहर एक विशाल वन-खण्ड है। वह कुछ कम दो योजन चौड़ा है। उसकी परिधि जगती के तुल्य है। उसका वर्णन अन्य आगमों से जान लेना चाहिए।

६. तस्स णं वणसंडस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते। से जहाणामए आलिंग-पुक्खरेइ वा, (मुइंगपुक्खरेइ वा, सरतलेइ वा, करतलेइ वा, चंदमंडलेइ वा, सूरमंडलेइ वा, आयंस-मंडलेइ वा, उरब्भचम्मेइ वा, वसहचम्मेइ वा, वराहचम्मेइ वा, सीहचम्मेइ वा, वग्घचम्मेइ वा, छगलचम्मेइ वा, दीवियचम्मेइ वा, अणेगसंकु-कीलगसहस्सवितते आवत्त-पच्चावत्तसेढिपसेढि-सोत्थिय-सोवत्थिय- पूसमाण-वद्धमाणग- मच्छंडक-मगरंडक- जारमार- फुल्लावलिपउमपत्त-सागरतरंग-वासंती-पउमलयभत्तिचित्तेहिं सच्छाएहिं, सप्पभेहिं, समिरीइएहिं, सउज्जोएहिं) णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहिं, तणेहिं उवसोभिए, तं जहा—किण्हेहिं एवं वण्णो, गंधो, रसो, फासो, सद्दो, पुक्खरिणीओ, पव्वयगा, घरगा, मंडवगा, पुढविसिलावट्टया गोयमा! णेयव्वा।

तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसयंति, सयंति, चिट्ठंति, णिसीअंति, तुअट्टंति, रमंति, ललंति, कीलंति, मेहंति, पुरापोराणाणं सुपरक्कंताणं, सुभाणं, कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं कल्लाणफलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

तीसे णं जगईए उप्पिं अंतो पउमवरवेइआए एत्थ णं एगे महं वणसंडे पण्णत्ते, देसूणाइं दो जोअणाइं विक्खंभेणं, वेदियासमए परिक्खेवेणं, किण्हे, (किण्होभासे, नीले, नीलोभासे, हरिए, हरिओभासे, सीए सीओभासे, णिद्धे, णिद्धोभासे, तिव्वे, तिव्वोभासे, किण्हे, किण्हच्छाए, नीले, नीलच्छाए, हरिए, हरियच्छाए, सीए, सीयच्छाए, णिद्धे, णिद्धच्छाए, तिव्वे, तिव्वच्छाए, घणकडि-अकडिच्छाए, रम्मे, महामेहणिकुरंबभूए, तणविहूणे णेअव्वो।

[६] उस वन-खंड में एक अत्यन्त समतल, रमणीय भूमिभाग है। वह आलिंग-पुष्कर—मुरज या ढोलक के ऊपरी भाग—चर्म-पुट (मृदंग का ऊपरी भाग), जलपूर्ण सरोवर के ऊपरी भाग, हथेली, चन्द्र-मंडल, सूर्य-मंडल. दर्पण-मंडल, शंकु सदृश बड़े-बड़े कीले ठोक कर, खींचकर चारों ओर से समान किये गये भेड़, वैल, सूअर, शेर, बाघ, बकरे और चीते के चर्म जैसा समतल और सुन्दर है। वह भूमिभाग अनेकविध आवर्त, प्रत्यावर्त, श्रेणि, प्रश्रेणि, स्वस्तिक, पुष्यमाणव, शराव-संपुट, मत्स्य के अंडे, मकर के अंडे, जार, मार, पुष्पावलि, कमल-पत्र, सागर-तरंग, वासन्तीलता, पद्मलता के चित्रांकन से राजित, आभायुक्त, प्रभायुक्त, शोभायुक्त, उद्योतयुक्त, वहुविध पंचरंगी मणियों से, तृणों से सुशोभित है। कृष्ण आदि उनके अपने-अपने विशेष वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श तथा शब्द हैं। वहाँ पुष्करिणी, पर्वत, मंडप, पृथ्वी-शिलापट्ट हैं।

वहाँ अनेक वानव्यन्तर देव एवं देवियां आश्रय लेते हैं, शयन करते हैं, खड़े होते हैं, बैठते हैं, त्वग्वर्तन करते हैं—देह को दायें-बायें घुमाते हैं—मोड़ते हैं, रमण करते हैं, मनोरंजन करते हैं, क्रीडा करते हैं, सुरत-क्रिया करते हैं। यों वे अपने पूर्व आचरित शुभ, कल्याणकर—पुण्यात्मक कर्मों के फल-स्वरूप विशेष सुखों का उपभोग करते रहते हैं।

उस जगती के ऊपर पद्मवरवेदिका-मणिमय पद्मरचित उत्तम वेदिका के भीतर एक विशाल वन-खंड है। वह कुछ कम दो योजन चौड़ा है। उसकी परिधि वेदिका जितनी है। वह कृष्ण, (कृष्ण-आभामय, नील, नील-आभामय, हरित, हरित-आभामय, शीतल, शीतल-आभामय, स्निग्ध, स्निग्ध-आभामय, तीव्र, तीव्र-आभामय, कृष्ण, कृष्ण-छायामय, नील, नील-छायामय, हरित, हरित-छायामय, शीतल, शीतल-छायामय, स्निग्ध, स्निग्ध-छायामय, तीव्र, तीव्र-छायामय, वृक्षों की शाखा-प्रशाखाओं के परस्पर मिले होने से सघन छायामय, रम्य एवं विशाल मेघ-समुदाय जैसा भव्य तथा) तृणों के शब्द से रहित है—प्रशान्त है।

जम्बूद्वीप के द्वार

७. जंबुद्दीवस्स णं भंते ! दीवस्स कइ दारा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिए।

[७] भगवन् ! जम्बूद्वीप के कितने द्वार हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप के चार द्वार हैं—१. विजय, २. वैजयन्त, ३. जयन्त तथा ४. अपराजित।

८. कहि णं भंते ! जंबुद्दीवस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं वीइवइत्ता जंबुद्दीवदीवपुरत्थिमपेरंते लवणसमुद्दपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीआए महाणईए उप्पि एत्थ णं जंबुद्दीवस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते, अट्ठ जोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं, तावइयं चेव पवेसेणं, सेए वरकणगथूभियाए, जाव दारस्स वण्णओ जाव रायहाणी।

[८] भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप का विजय नामक द्वार कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप स्थित मन्दर पर्वत की पूर्व दिशा में ४५ हजार योजन आगे जाने पर जम्बूद्वीप के पूर्व के अंत में तथा लवणसमुद्र के पूर्वार्ध के पश्चिम में सीता महानदी पर जम्बूद्वीप का

विजय नामक द्वार कहा गया है। वह आठ योजन ऊँचा तथा चार योजन चौड़ा है। उसका प्रवेश—प्रवेशमार्ग भी चौड़ाई जितना ही—चार योजन का है। वह द्वार श्वेत—सफेद वर्ण का है। उसकी स्तूपिका—शिखर, उत्तम स्वर्ण की बनी है। द्वार एवं राजधानी का जीवाभिगम सूत्र में जैसा वर्णन आया है, वैसा ही यहाँ समझना चाहिए।

९. जंबुद्दीवस्स णं भंते ! दीवस्स दारस्स य दारस्स य केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! अउणासीइं जोअणसहस्साइं बावण्णं च जोअणाइं देसूणं च अद्धजोअणं दारस्स य २ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते—

अउणासीइ सहस्सा बावण्णं चेव जोअणा हुंति ।
ऊणं च अद्धजोअणं दारंतरं जंबुदीवस्स ॥

[९] भगवन् ! जम्बूद्वीप के एक द्वार से दूसरे द्वार का अबाधित—अव्यवहित अन्तर कितना है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप के एक द्वार से दूसरे द्वार का अबाधित—अव्यवहित—अन्तर उनासी हजार बावन योजन तथा कुछ कम आधे योजन का है।

जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र का स्थान : स्वरूप

१०. कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे भरहे णामं वासे पण्णत्ते ?

गोयमा ! चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, दाहिणलवणसमुद्दस्स उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे भरहे णामं वासे पण्णत्ते—खाणुबहुले, कंटकबहुले, विसमबहुले, दुग्गबहुले, पव्वयबहुले, पवायबहुले, उज्झरबहुले, णिज्झरबहुले, खड्डाबहुले, दरीबहुले, णईबहुले, दहबहुले, रुक्खबहुले, गुच्छबहुले, गुम्मबहुले, लयाबहुले, वल्लीबहुले, अडवीबहुले, सावयबहुले, तणबहुले, तक्करबहुले, डिम्बबहुले, डमरबहुले, दुब्भिक्खबहुले, दुक्कालबहुले, पासंडबहुले, किवणबहुले, वणीमगबहुले, ईतिबहुले, मारिबहुले, कुवुट्ठिबहुले, अणावुट्ठिबहुले, रायबहुले, रोगबहुले, संकिलेसबहुले, अभिक्खणं अभिक्खणं संखोहबहुले। पाईणपडीणायए, उदीणदाहिणवित्थिण्णे, उत्तरओ पलिअंकसंठाणसंठिए, दाहिणओ धणुपिट्ठसंठिए, तिधा लवणसमुद्दं पुट्ठे, गंगासिंधूहिं महाणईहिं वेअड्ढेण य पव्वएण छब्भागपविभत्ते, जंबुद्दीवदीवणउयसयभागे पंचछव्वीसे जोअणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खंभेणं।

भरहस्स णं वासस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं वेअड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते, जे णं भरहं वासं दुहा विभयमाणे २ चिट्ठइ, तं जहा—दाहिणड्ढभरहं च उत्तरड्ढभरहं च।

[१०] भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरत नामक वर्ष—क्षेत्र कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! चुल्ल हिमवंत—लघु हिमवंत पर्वत के दक्षिण में, दक्षिणवर्ती लवण समुद्र के उत्तर में, पूर्ववर्ती लवण समुद्र के पश्चिम में, पश्चिमवर्ती लवण समुद्र के पूर्व में यह जम्बूद्वीपान्तर्वर्ती भरत क्षेत्र है।

इसमें स्थाणुओं की—सूखे ठूंठों की, काँटों की—बेर, बबूल आदि काँटेदार वृक्षों की, ऊँची-नीची भूमि की, दुर्गम स्थानों की, पर्वतों की, प्रपातों की—गिरने के स्थानों की—ऐसे स्थानों की जहाँ से मरणेच्छु व्यक्ति झम्पापात करते हैं, अवझरों की—जल-प्रपातों की, निर्झरों की, गड्ढों की, गुफाओं की, नदियों की, द्रहों की, वृक्षों की, गुच्छों की, गुल्मों की, लताओं की, विस्तीर्ण वेलों की, वनों की, वनैले हिंसक पशुओं की, तृणों की, तस्करों की—चोरों की, डिम्बों की—स्वदेशोत्थ विप्लवों की, डमरों की—पर-शत्रुराजकृत उपद्रवों की, दुर्भिक्ष की, दुष्काल की—धान्य आदि की महंगाई की, पाखण्ड की—विविध मतवादी जनों द्वारा उत्थापित मिथ्यावादों की, कृपणों की, याचकों की, ईति की—फसलों को नष्ट करने वाले चूहों, टिड्डियों आदि की, मारी की, मारक रोगों की, कुवृष्टि की—किसानों द्वारा अवाञ्छित—हानिप्रद वर्षा की, अनावृष्टि की, प्रजोत्पीडक राजाओं की, रोगों की, संक्लेशों की, क्षणक्षणवर्ती संक्षोभों की—चैतसिक अनवस्थितता की बहुलता है—अधिकता है—अधिकांशत: ऐसी स्थितियाँ हैं।

वह भरतक्षेत्र पूर्व-पश्चिम में लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है। उत्तर में पर्यंक-संस्थान-संस्थित है—पलंग के आकार जैसा है, दक्षिण में धनुपृष्ठ-संस्थान-संस्थित है—प्रत्यंचा चढ़ाये धनुष के पिछले भाग जैसा है। यह तीन ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श किये हुए है। गंगा महानदी, सिन्धु महानदी तथा वैताढ्य पर्वत से इस भरत क्षेत्र के छह विभाग हो गये हैं, जो छह खंड कहलाते हैं। इस जम्बूद्वीप के १९० भाग करने पर भरत क्षेत्र उसका एक भाग होता है अर्थात् यह जम्बूद्वीप का १९० वां हिस्सा है। इस प्रकार यह ५२६$\frac{६}{१९}$ योजन चौड़ा है।

भरत क्षेत्र के ठीक बीच में वैताढ्य नामक पर्वत बतलाया गया है, जो भरतक्षेत्र को दो भागों में विभक्त करता हुआ स्थित है। वे दो भाग दक्षिणार्ध भरत तथा उत्तरार्ध भरत हैं।

जम्बूद्वीप में दक्षिणार्ध भरत का स्थान : स्वरूप

११. कहि णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे दाहिणद्धे भरहे णामं वासे पण्णत्ते?

गोयमा! वेअड्ढस्स पव्वयस्स दाहिणेणं, दाहिणलवणसमुद्दस्स उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणद्धभरहे णामं वासे पण्णत्ते—पाईणपडीणायए, उदीणदाहिणविच्छिण्णे, अद्धचंदसंठाणसंठिए, तिहा लवणसमुद्दं पुट्ठे, गंगासिधूहि महाणईहिं तिभागपविभत्ते। दोण्णि अट्ठतीसे जोअणसए तिण्णि अ एगूणवीसइभागे जोयणस्स विक्खंभेणं। तस्स जीवा उत्तरेणं पाईणपडीणायया, दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा। णव जोयणसहस्साइं सत्त य अडयाले जोयणसए दुवालस य एगूणवीसइभाए जोयणस्स आयामेणं, तीसे धणुपुट्ठे दाहिणेणं णव जोयणसहस्साइं सत्तछावट्ठे जोयणसए इक्कं च एगूणवीसइभागे जोयणस्स किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

दाहिणद्धभरहस्स णं भंते! वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते?

गोयमा! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहा णामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव[1] णाणाविहपञ्चवण्णेहिं मणीहिं तणेहिं उवसोभिए, तं जहा—कित्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिं चेव।

---

१. देखें सूत्र संख्या ६

दाहिणद्धभरहे णं भंते ! वासे मणुयाणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! ते णं मणुआ बहुसंघयणा, बहुसंठाणा, बहुउच्चत्तपज्जवा, बहुआउपज्जवा, बहूइं वासाइं आउं पालेंति, पालित्ता अप्पेगइया णिरयगामी, अप्पेगइया तिरियगामी, अप्पेगइया मणुयगामी, अप्पेगइया देवगामी, अप्पेगइया सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति ।

[११] भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में दक्षिणार्ध भरत नामक क्षेत्र कहाँ कहा गया है ?

गौतम ! वैताढ्य पर्वत के दक्षिण में, दक्षिण-लवणसमुद्र के उत्तर में, पूर्व-लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिम-लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बू नामक द्वीप के अन्तर्गत दक्षिणार्ध भरत नामक क्षेत्र कहा गया है ।

वह पूर्व-पश्चिम में लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है । यह अर्द्ध-चन्द्र-संस्थान-संस्थित है—आकार में अर्द्ध चन्द्र के सदृश है । वह तीन ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श किये हुए है । गंगा महानदी और सिन्धु महानदी से वह तीन भागों में विभक्त हो गया है । वह २३८ $\frac{३}{१९}$ योजन चौड़ा है । उसकी जीवा—धनुष की प्रत्यंचा जैसी सीधी सर्वान्तिम-प्रदेश-पंक्ति उत्तर में पूर्व-पश्चिम लम्बी है । वह दो ओर से लवण-समुद्र का स्पर्श किये हुए है । अपनी पश्चिमी कोटि से—किनारे से वह पश्चिम-लवण-समुद्र का स्पर्श किये हुए है तथा पूर्वी कोटि से पूर्व-लवणसमुद्र का स्पर्श किये हुए है । दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र की जीवा ९७४८ $\frac{१२}{१९}$ योजन लम्बी है । उसका धनुष्य-पृष्ठ—पीठिका—दक्षिणार्ध भरत के जीवोपमित भाग का पृष्ठ भाग—पीछे का हिस्सा दक्षिण में ९७६६ $\frac{१}{१९}$ योजन से कुछ अधिक है । यह परिधि की अपेक्षा से वर्णन है ।

भगवन् ! दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा है ?

गौतम ! उसका अति समतल रमणीय भूमिभाग है । वह मुरज के ऊपरी भाग आदि की ज्यों समतल है । वह अनेकविध कृत्रिम, अकृत्रिम पंचरंगी मणियों तथा तृणों से सुशोभित है ।

भगवन् ! दक्षिणार्ध भरत में मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा है ?

गौतम ! दक्षिणार्ध भरत में मनुष्यों का संहनन, संस्थान, ऊँचाई, आयुष्य वहुत प्रकार का है । वे वहुत वर्षों का आयुष्य भोगते हैं । आयुष्य भोगकर उनमें से कई नरकगति में, कई तिर्यञ्चगति में, कई मनुष्यगति में तथा कई देवगति में जाते हैं, कई सिद्ध, वुद्ध, मुक्त एवं परिनिर्वृत्त होते हैं एवं समस्त दुःखों का अन्त करते हैं ।

विवेचन—दसवें सूत्र में भरत क्षेत्र की स्थाणु-वहुलता, कंटक-वहुलता, विषमता आदि का जो उल्लेख हुआ है, वह समग्र क्षेत्र के सामान्य वर्णन की दृष्टि से है । यहाँ रमणीय भूमिभाग का जो वर्णन है, वह स्थान-विशेष की दृष्टि से है । शुभाशुभात्मकतामूलक द्विविध स्थितियों की विद्यमानता से एक ही क्षेत्र में स्थान-भेद से द्विविधता हो सकती है, जो विसंगत नहीं है । अप्रिय और अमनोज्ञ स्थानों के अतिरिक्त पुण्यशाली जनों के पुण्यभोगोपयोगी प्रिय और मनोज्ञ स्थानों का अस्तित्व संभावित ही है ।

प्रस्तुत सूत्र में दक्षिणार्ध भरत के मनुष्यों के नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, देवगति तथा मोक्ष-प्राप्ति का जो वर्णन हुआ है, वह नानाविध जीवों को लेकर आरक-विशेष की अपेक्षा से है ।

वैताढ्य पर्वत

१२. कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे २ भरहे वासे वेयड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! उत्तरद्धभरहवासस्स दाहिणेणं, दाहिणभरहवासस्स उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेण एत्थ णं जंबुद्दीवे २ भरहे वासे वेअड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते—पाईणपडीणायए, उदीणदाहिणवित्थिण्णे, दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, पणवीसं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, छस्सकोसाइं जोअणाइं उव्वेहेणं, पण्णासं जोअणाइं विक्खंभेणं, तस्स वाहा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं चत्तारि अट्ठासीए जोयणसए सोलस य एगूणवीसइभागे जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं पण्णत्ता। तस्स जीवा उत्तरेणं पाईणपडीणायया, दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा, दस जोयणसहस्साइं सत्त य वीसे जोअणसए दुवालस य एगूणवीसइभागे जोअणस्स आयामेणं, तीसे धणुपुट्ठे दाहिणेणं दस जोअणसहस्साइं सत्त य तेआले जोयणसए पण्णरस य एगूणवीसइभागे जोयणस्स परिक्खेवेणं, रुअगसंठाणसंठिए, सव्वरययामए, अच्छे, सण्हे, लट्ठे, घट्ठे, मट्ठे, णीरए, णिम्मले, णिप्पंके, णिक्कंकडच्छाए, सप्पभे, समिरीए, पासाईए, दरिसणिज्जे, अभिरूवे, पडिरूवे।

उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहि अ वणसंडेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। ताओ णं पउमवरवेइयाओ अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंचधणुसयाइं विक्खंभेणं, पव्वयसमियाओ आयामेणं वण्णओ भाणियव्वो। ते णं वणसंडा देसूणाइं जोअणाइं विक्खंभेणं, पउमवरवेइयासमगा आयामेणं, किण्हा, किण्होभासा जाव[1] वण्णओ।

[१२] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरतक्षेत्र में वैताढ्य नामक पर्वत कहाँ कहा गया है ?

गौतम ! उत्तरार्ध भरतक्षेत्र के दक्षिण में, दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र के उत्तर में, पूर्व-लवण समुद्र के पश्चिम में, पश्चिम-लवणससुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरतक्षेत्र में वैताढ्य पर्वत कहा गया है। वह पूर्व-पश्चिम में लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है। वह दो ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श किये हुए है। अपने पूर्वी किनारे से पूर्व-लवणसमुद्र का तथा पश्चिमी किनारे से पश्चिम-लवण-समुद्र का स्पर्श किये हुए है। वह पच्चीस योजन ऊंचा है और सवा छह योजन जमीन में गहरा है।[2] वह पचास योजन लम्बा है। इसकी वाहा—दक्षिणोत्तरायत वक्र आकाश-प्रदेशपंक्ति पूर्व-पश्चिम में ४८८$\frac{१६}{१९}$" योजन की है। उत्तर में वैताढ्य पर्वत की जीवा पूर्व तथा पश्चिम—दो ओर से लवण-समुद्र का स्पर्श किये हुए है। वह पूर्वी किनारे से पूर्व-लवणसमुद्र का तथा पश्चिमी किनारे से पश्चिम-लवणसमुद्र का स्पर्श किये हुए है। जीवा १०७२०$\frac{१२}{१९}$ योजन लम्बी है। दक्षिण में उसकी धनुष्य-पीठिका की परिधि १०७४३$\frac{१५}{१९}$ योजन की है।

---

१. देखें सूत्र संख्या ६

२. समयक्षेत्रवर्ती जो भी पर्वत हैं, मेरु के अतिरिक्त उन सबकी जमीन में गहराई अपनी ऊंचाई से चतुर्थांश है।

वैताढ्य पर्वत रुचक-संस्थान-संस्थित है—उसका आकार रुचक—ग्रीवा के आभरण-विशेष जैसा है। वह सर्वथा रजतमय है। वह स्वच्छ, सुकोमल, चिकना, घुटा हुआ-सा—घिसा हुआ-सा, तराशा हुआ सा, रज-रहित, मैल-रहित, कर्दम-रहित तथा कंकड़-रहित है। वह प्रभा, कान्ति एवं उद्योत से युक्त है, चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है।

वह अपने दोनों पार्श्वभागों में—दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं—मणिमय पद्म-रचित उत्तम वेदिकाओं तथा वन-खंडों से सम्पूर्णतः घिरा है। वे पद्मवरवेदिकाएँ आधा योजन ऊँची तथा पाँच सौ धनुष चौड़ी हैं, पर्वत जितनी ही लम्बी हैं। पूर्वोक्त के अनुसार उनका वर्णन समझ लेना चाहिए। वे वन-खंड कुछ कम दो योजन चौड़े हैं, कृष्ण वर्ण तथा कृष्ण आभा से युक्त हैं। इनका वर्णन पूर्ववत् जान लेना चाहिए।

१३. वेयड्ढस्स णं पव्वयस्स पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं दो गुहाओ पण्णत्ताओ—उत्तरदाहिणाययाओ, पाईणपडीणवित्थिण्णाओ, पण्णासं जोअणाइं आयामेणं, दुवालस जोअणाइं विक्खंभेणं, अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, वइरामयकवाडोहाडिआओ, जमलजुअलकवाडघणदुप्पवेसाओ, णिच्चंधयारतिमिस्साओ, ववगयगहचंदसूरणक्खत्तजोइसपहाओ जाव[1] पडिरूवाओ, तं जहा—तमिसगुहा चेव खंडप्पवायगुहा चेव। तत्थ णं दो देवा महिड्ढीया, महज्जुईआ, महाबला, महायसा, महासोक्खा, महाणुभागा, पलिओवमट्ठिईया परिवसंति, तं जहा—कयमालए चेव णट्टमालए चेव।

तेसि णं वणसंडाणं बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ। वेअड्ढस्स पव्वयस्स उभओ पासिं दस दस जोअणाइं उड्ढं उप्पइत्ता एत्थ णं दुवे विज्जाहरसेढीओ पण्णत्ताओ—पाईणपडीणाययाओ, उदीणदाहिणवित्थिण्णाओ, दस दस जोअणाइं विक्खंभेणं, पव्वयसमियाओ आयामेणं, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं, दोहिं वणसंडेहिं संपरिक्खित्ताओ, ताओ णं पउमवरवेइयाओ अद्धजोअणं उड्ढं उच्चत्तेणं, पञ्च धणुसयाइं विक्खंभेणं, पव्वयसमियाओ आयामेणं, वण्णओ णेयव्वो, वणसंडावि पउमवरवेइयासमगा आयामेणं, वण्णओ।

[१३] वैताढ्य पर्वत के पूर्व-पश्चिम में दो गुफाएं कही गई हैं। वे उत्तर-दक्षिण लम्बी हैं तथा पूर्व-पश्चिम चौड़ी हैं। उनकी लम्बाई पचास योजन, चौड़ाई बारह योजन तथा ऊंचाई आठ योजन है। उनके वज्ररत्नमय—हीरकमय कपाट हैं, दो-दो भागों के रूप में निर्मित, समस्थित कपाट इतने सघन-निश्छिद्र या निविड हैं, जिससे गुफाओं में प्रवेश करना दुःशक्य है। उन दोनों गुफाओं में सदा अँधेरा रहता है। वे ग्रह, चन्द्र, सूर्य तथा नक्षत्रों के प्रकाश से रहित हैं, अभिरूप एवं प्रतिरूप हैं। उन गुफाओं के नाम तमिस्रगुफा तथा खंडप्रपातगुफा हैं।

वहाँ कृतमालक तथा नृत्यमालक—दो देव निवास करते हैं। वे महान् ऐश्वर्यशाली, द्युतिमान्, बलवान्, यशस्वी, सुखी तथा भाग्यशाली हैं। पल्योपमस्थितिक हैं—एक पल्योपम की स्थिति या आयुष्य वाले हैं।

उन वनखंडों के भूमिभाग बहुत समतल और सुन्दर हैं। वैताढ्य पर्वत के दोनों पार्श्व में—दोनों ओर दश-दश योजन की ऊंचाई पर दो विद्याधर श्रेणियाँ—आवास-पंक्तियाँ हैं। वे पूर्व-पश्चिम

१. देखें सूत्र संख्या ४

लम्बी तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ी हैं। उनकी चौड़ाई दश-दश योजन तथा लम्बाई पर्वत जितनी ही है। वे दोनों पार्श्व में दो-दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो-दो वनखण्डों से परिवेष्टित हैं। वे पद्मवर-वेदिकाएं ऊँचाई में आधा योजन, चौड़ाई में पाँच सौ धनुष तथा लम्बाई में पर्वत-जितनी ही हैं। वनखंड भी लम्बाई में वेदिकाओं जितने ही हैं। उनका वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

१४. विज्जाहरसेढीणं भंते ! भूमीणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव[1] णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहिं, तणेहिं उवसोभिए, तं जहा—कित्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिं चेव। तत्थ णं दाहिणिल्लाए विज्जाहरसेढीए गगणवल्लभपामोक्खा पण्णासं विज्जाहरणगरावासा पण्णत्ता, उत्तरिल्लाए विज्जाहरसेढीए रहनेउरचक्कवालपामोक्खा सट्ठिं विज्जाहरणगरावासा पण्णत्ता, एवामेव सपुव्वावरेणं दाहिणिल्लाए, उत्तरिल्लाए विज्जाहरसेढीए एगं दसुत्तरं विज्जाहरणगरावाससयं भवतीतिमक्खायं, ते विज्जाहरणगरा रिद्धत्थिमियसमिद्धा, पमुइयजणजाणवया, (आइण्णजणमणूसा, हलसयसहस्ससंकिट्ठविकिट्ठलट्ठपण्णत्तसेउसीमा, कुक्कुडसंडेयगामपउरा, उच्छुजवसालिकलिया, गोमहिसगवेलगप्पभूया, आयारवंतचेइयजुवइविविहसण्णिविट्ठबहुला, उक्कोडियगायगंठिभेयगभडतक्कर-खंडरक्खरहिया, खेमा, णिरुवद्दवा, सुभिक्खा, वीसत्थसुहावासा, अणेगकोडिकुडुंबियाइण्णणिव्वुयसुहा, णडणट्टगजल्लमल्लमुट्ठियवेलंबगकहगपवगलासग-आइक्खगमंखलंखतूणइल्लतुंबवीणिय-अणेगतालायरा-णुचरिया, आरामुज्जाणअगडतलागदीहियवप्पिणगुणोववेया, नंदणवणसन्निभप्पगासा, उव्विद्धविउल-गंभीरखायफलिहा, चक्कगयभुसुंढिओरोहसयग्घिजमलकवाडघणदुप्पवेसा, धणुकुडिलवंकपागार-परिक्खित्ता, कविसीसगवट्टरइयसंठियविरायमाणा, अट्टालयचरियदारगोपुरतोरणसमुण्णयसुविभत्तराय-मग्गा, छेयायरियरइयदढफलिहइंदकीला, विवणिवणिछित्तसिप्पियाइण्णणिव्वुयसुहा, सिंघाडगतिग-चउक्कचच्चरपणियावणविविहवत्थुपरिमंडिया, सुरम्मा, नरवइपविइण्णमहिवइपहा, अणेगवरतुरग-मत्तकुंजररहपहकरसीयसंदमाणी आइण्णजाणजुग्गा, विमउलणवणलिणिसोभियजला, पंडुरवरभवण-सण्णिमहिया, उत्ताणणयणपेच्छणिज्जा, पासादीया, दरिसणिज्जा, अभिरूवा) पडिरूवा। तेसु णं विज्जाहरणगरेसु विज्जाहररायाणो परिवसंति महयाहिमवंतमलयमंदरमहिंदसारा रायवण्णओ भाणिअव्वो।

[१४] भगवन् ! विद्याधर-श्रेणियों की भूमि का आकार-स्वरूप कैसा है ?

गौतम ! उनका भूमिभाग बड़ा समतल रमणीय है। वह मुरज के ऊपरी भाग आदि की ज्यों समतल है। वह बहुत प्रकार की कृत्रिम, अकृत्रिम मणियों तथा तृणों से सुशोभित है। दक्षिणवर्ती विद्याधरश्रेणि में गगनवल्लभ आदि पचास विद्याधर-नगर हैं—राजधानियाँ हैं। उत्तरवर्ती विद्याधर श्रेणि में रथनूपुरचक्रवाल आदि साठ नगर हैं—राजधानियाँ हैं। इस प्रकार दक्षिणवर्ती एवं उत्तरवर्ती—दोनों विद्याधर-श्रेणियों के नगरों की—राजधानियों की संख्या एक सौ दश है। वे

---

१. देखें सूत्र संख्या ६

विद्याधर-नगर वैभवशाली, सुरक्षित एवं समृद्ध हैं। (वहाँ के निवासी तथा अन्य भागों से आयें हुए व्यक्ति वहाँ आमोद-प्रमोद के प्रचुर साधन होने से प्रमुदित रहते हैं। लोगों की वहाँ घनी आबादी है। सैंकड़ों, हजारों हलों से जुती उसकी समीपवर्ती भूमि सहजतया सुन्दर मार्ग-सीमा-सी लगती है। वहाँ मुर्गों और युवा सांडों के बहुत समूह हैं। उसके आसपास की भूमि ईख, जौ और धान के पौधों से लहराती है। वहाँ गायों, भैंसों की प्रचुरता है। वहाँ शिल्पकला युक्त चैत्य और युवतियों के विविध सन्निवेशों—पण्य-तरुणियों के पाड़ों—टोलों का बाहुल्य है। वह रिश्वतखोरों, गिरहकटों, बटमारों, चोरों, खण्डरक्षकों—चुंगी वसूल करने वालों से रहित, सुख-शान्तिमय एवं उपद्रवशून्य है। वहाँ भिक्षुकों को भिक्षा सुखपूर्वक प्राप्त होती है, इसलिए वहाँ निवास करने में सब सुख मानते हैं, आश्वस्त हैं। अनेक श्रेणी के कौटुम्बिक—पारिवारिक लोगों की घनी बस्ती होते हुए भी वह शान्तिमय है। नट—नाटक दिखाने वाले, नर्तक—नाचने वाले, जल्ल—कलाबाज—रस्सी आदि पर चढ़कर कला दिखाने वाले, मल्ल—पहलवान, मौष्टिक—मुक्केबाज, विडम्बक—विदूषक—मसखरे, कथक—कथा कहने वाले, प्लवक—उछलने या नदी आदि में तैरने का प्रदर्शन करने वाले, लासक—वीररस की गाथाएं या रास गाने वाले, आख्यायक—शुभ-अशुभ बताने वाले, लंख—बाँस के सिरे पर खेल दिखाने वाले, मंख—चित्रपट दिखाकर आजीविका चलाने वाले, तूणइल्ल—तूण नामक तन्तु-वाद्य बजाकर आजीविका कमाने वाले, तुंबवीणिक—तुंब-वीणा या पूंगी बजाने वाले, तालाचर—ताली बजाकर मनोविनोद करने वाले आदि अनेक जनों से वह सेवित है। आराम—क्रीडा वाटिका, उद्यान—बगीचे, कुए, तालाब, बावड़ी, जल के छोटे-छोटे बाँध—इनसे युक्त हैं। नन्दनवन सी लगती है। वह ऊँची, विस्तीर्ण और गहरी खाई से युक्त है, चक्र, गदा, भुसुंडि—पत्थर फेंकने का एक विशेष अस्त्र—गोफिया, अवरोध—अन्तर-प्राकार—शत्रु सेना को रोकने के लिए परकोटे जैसा भीतरी सुदृढ़ आवरक साधन, शतघ्नी—महायष्टि या महाशिला, जिसके गिराये जाने पर सैंकड़ों व्यक्ति दब-कुचल कर मर जाएं और द्वार के छिद्र-रहित कपाट-युगल के कारण जहाँ प्रवेश कर पाना दुष्कर हो। धनुष जैसे टेढ़े परकोटे से वह घिरी हुई है। उस परकोटे पर गोल आकार के बने हुए कपिशीर्षकों—कंगूरों—भीतर से शत्रु-सैन्य को देखने आदि हेतु निर्मित बन्दर के मस्तक के आकार के छेदों—से वह सुशोभित हैं। उसके राजमार्ग, अट्टालक—परकोटे ऊपर निर्मित आश्रय-स्थानों—गुमटियों, चरिका—परकोटे के मध्य बने हुए आठ हाथ चौड़े मार्गों, परकोटे में बने हुए छोटे द्वारों—बारियों, गोपुरों—नगर-द्वारों, तोरणों से सुशोभित और सुविभक्त है। उसकी अर्गला और इन्द्रकील—गोपुर के किवाड़ों के आगे जुड़े हुए नुकीले भाले जैसी कीलें, सुयोग्य शिल्पाचार्यों—निपुण शिल्पियों द्वारा निर्मित हैं। विपणि—हाट-मार्ग, वणिक्-क्षेत्र—व्यापारक्षेत्र, बाजार आदि के कारण तथा बहुत से शिल्पियों, कारीगरों के आवासित होने के कारण वह सुख-सुविधा पूर्ण है। तिकोने स्थानों, तिराहों, चौराहों, चत्वरों—जहाँ चार से अधिक रास्ते मिलते हों ऐसे स्थानों, बर्तन आदि की दूकानों तथा अनेक प्रकार की वस्तुओं से परिमंडित—सुशोभित और रमणीय है। राजा की सवारी निकलते रहने के कारण उसके राजमार्गों पर भीड़ लगी रहती है। वहाँ अनेक उत्तम घोड़े, मदोन्मत्त हाथी, रथ-समूह, शिविका—पर्देदार पालखियां, स्यन्दमानिका—पुरुष-प्रमाण पालखियां, यान—गाड़ियां तथा युग्य—पुरातनकालीन गोल्लदेश में सुप्रसिद्ध दो हाथ लम्बे-चौड़े डोली जैसे यान—इनका जमघट लगा रहता है। वहाँ खिले हुए कमलों से शोभित जल-जलाशय हैं। सफेदी किए हुए उत्तम भवनों से वह सुशोभित, अत्यधिक सुन्दरता के कारण निर्निमेष नेत्रों से प्रेक्षणीय, चित्त

को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप—मनोज्ञ—मन को अपने में रमा लेने वाले तथा प्रतिरूप—मन में बस जाने वाले हैं।

उन विद्याधरनगरों में विद्याधर राजा निवास करते हैं। वे महाहिमवान् पर्वत के सदृश महत्ता तथा मलय, मेरु एवं महेन्द्र संज्ञक पर्वतों के सदृश प्रधानता या विशिष्टता लिये हुए हैं।

१५. विज्जाहरसेढीणं भंते ! मणुआणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! ते णं मणुआ बहुसंघयणा, बहुसंठाणा, बहुउच्चत्तपज्जवा, बहुआउपज्जवा, (बहूइं वासाइं आउं पालेंति, पालित्ता अप्पेगइया णिरयगामी, अप्पेगइया तिरियगामी, अप्पेगइआ मणुयगामी, अप्पेगइआ देवगामी, अप्पेगइआ सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति) सव्वदुक्खाणमंतं करेंति। तासि णं विज्जाहरसेढीणं बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ वेअड्ढस्स पव्वयस्स उभओ पासिं दस दस जोअणाइं उड्ढं उप्पइत्ता एत्थ णं दुवे अभिओगसेढीओ पण्णत्ताओ—पाईणपडीणाययाओ, उदीणदाहिणवित्थिण्णाओ, दस दस जोअणाइं विक्खंभेणं, पव्वयसमियाओ आयामेणं, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहिं वणसंडेहिं संपरिक्खित्ताओ वण्णओ दोण्हवि पव्वयसमियाओ आयामेणं।

[१५] भगवन् ! विद्याधरश्रेणियों के मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा है ?

गौतम ! वहाँ के मनुष्यों का संहनन, संस्थान, ऊँचाई एवं आयुष्य बहुत प्रकार का है। (वे बहुत वर्षों का आयुष्य भोगते हैं। उनमें कई नरकगति में, कई तिर्यञ्चगति में, कई मनुष्यगति में तथा कई देवगति में जाते हैं। कई सिद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं परिनिर्वृत होते हैं,) सब दुःखों का अंत करते हैं।

उन विद्याधर-श्रेणियों के भूमिभाग से वैताढ्य पर्वत के दोनों ओर दश-दश योजन ऊपर दो आभियोग्य-श्रेणियां—आभियोगिक देवों—शक्र, लोकपाल आदि के आज्ञापालक देवों—व्यन्तर देव-विशेषों की आवास-पंक्तियां हैं। वे पूर्व-पश्चिम लम्बी तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ी हैं। उनकी चौड़ाई दश-दश योजन तथा लम्बाई पर्वत जितनी है। वे दोनों श्रेणियां अपने दोनों ओर दो-दो पद्मवर-वेदिकाओं एवं दो-दो वनखण्डों से परिवेष्टित हैं। लम्बाई में दोनों पर्वत-जितनी हैं। वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

१६. अभिओगसेढीणं भंते ! केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव[1] तणेहिं उवसोभिए वण्णाइं जाव तणाणं सद्दोत्ति। तासि णं अभिओगसेढीणं तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ अ आसयंति, सयंति, (चिट्ठंति, णीसीअंति, तुअट्टंति, रमंति, ललंति, कीलंति, मेहंति पुरापोराणाणं सुपरक्कंताणं, सुभाणं, कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं कल्लाण—) फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणा विहरंति। तासु णं आभिओगसेढीसु सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमजमवरुणवेसमणकाइआणं आभिओगाणं देवाणं बहवे भवणा पण्णत्ता। ते णं भवणा बाहिं वट्टा, अंतो चउरंसा वण्णओ।

तत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स, देवरण्णो सोमजमवरुणवेसमणकाइआ बहवे आभिओगा देवा महिड्ढिआ, महज्जुईआ, (महाबला, महायसा,) महासोक्खा पलिओवमट्ठिइया परिवसंति।

---

१. देखें सूत्र संख्या ६

तासि णं आभिओगसेढीणं बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ वेयड्ढस्स पव्वयस्स उभओ पासिं पंच २ जोयणाइं उड्ढं उप्पइत्ता, एत्थ णं वेयड्ढस्स पव्वयस्स सिहरतले पण्णत्ते— पाईणपोडयायए, उदोणदाहिणवित्थिण्णे, दस जोअणाइं विक्खंभेणं, पव्वयसमगे आयामेणं, से णं इक्काए पउमवरवेइयाए, इक्केणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, पमाणं वण्णगो दोण्हंपि।

[१६] भगवन् ! आभियोग्य-श्रेणियों का आकार-स्वरूप कैसा है ?

गौतम ! उनका बड़ा समतल, रमणीय भूमिभाग है। मणियों एवं तृणों से उपशोभित है। मणियों के वर्ण, तृणों के शब्द आदि अन्यत्र विस्तार से वर्णित हैं।[1]

वहाँ बहुत से देव, देवियां आश्रय लेते हैं, शयन करते हैं, (खड़े होते हैं, बैठते हैं, त्वग्वर्तन करते हैं—देह को दायें-बायें घुमाते हैं,—मोड़ते हैं, रमण करते हैं, मनोरंजन करते हैं, क्रीड़ा करते हैं, सुरत-क्रिया करते हैं। यों वे अपने पूर्व-आचरित शुभ, कल्याणकर—पुण्यात्मक कर्मों के फलस्वरूप) विशेष सुखों का उपभोग करते हैं।

उन अभियोग्य-श्रेणियों में देवराज, देवेन्द्र शक्र के सोम—पूर्व दिक्पाल, यम—दक्षिण दिक्पाल, वरुण—पश्चिम दिक्पाल तथा वैश्रमण—उत्तर दिक्पाल आदि आभियोगिक देवों के बहुत से भवन हैं। वे भवन बाहर से गोल तथा भीतर से चौरस हैं। भवनों का वर्णन अन्यत्र द्रष्टव्य है[2]।

वहाँ देवराज, देवेन्द्र शक्र के अत्यन्त ऋद्धिसम्पन्न, द्युतिमान्, (बलवान्, यशस्वी) तथा सौख्य-सम्पन्न सोम, यम, वरुण एवं वैश्रमण संज्ञक आभियोगिक देव निवास करते हैं।

उन आभियोग्य-श्रेणियों के अति समतल, रमणीय भूमिभाग से वैताढ्य पर्वत के दोनों पार्श्व में—दोनों ओर पाँच-पाँच योजन ऊँचे जाने पर वैताढ्य पर्वत का शिखर-तल है। वह पूर्व-पश्चिम लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ा है। उसकी चोड़ाई दश योजन है, लम्बाई पर्वत-जितनी है। वह एक पद्मवरवेदिका से तथा एक वनखंड से चारों ओर परिवेष्टित है। उन दोनों का वर्णन पूर्ववत् है।

१७. वेयड्ढस्स णं भंते ! पव्वयस्स सिहरतलस्स केरिसए आगारभावपडोआरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते। से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव[3] णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए (तत्थ तत्थ तहिं तहिं देसे) वावीओ, पुक्खरिणीओ, (तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे) वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसयंति जाव भुंजमाणा विहरंति।

[१७] भगवन् ! वैताढ्य पर्वत के शिखर-तल का आकार-स्वरूप कैसा है ?

गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल तथा रमणीय है। वह मृदंग के ऊपर के भाग जैसा

---

१. देखें राजप्रश्नीय सूत्र ३१-४० तथा १३८-१४२

२. प्रज्ञापना सूत्र २-४६।

३. देखें सूत्र संख्या ६

समतल है, बहुविध पंचरंगी मणियों से उपशोभित है। वहाँ स्थान-स्थान पर बावड़ियां एवं सरोवर हैं। वहाँ अनेक वानव्यन्तर देव, देवियां निवास करते हैं, पूर्व-आचीर्ण पुण्यों का फलभोग करते हैं।

१८. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे भारहे वासे वेअड्ढपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?

गोयमा ! णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—सिद्धायणकूडे १. दाहिणड्ढभरहकूडे २. खंडप्पवायगुहाकूडे ३. मणिभद्दकूडे ४. वेअड्ढकूडे ५. पुण्णभद्दकूडे ६. तिमिसगुहाकूडे ७. उत्तरड्ढभरहकूडे ८. वेसमणकूडे ९।

[१८] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरतक्षेत्र में वैताढ्य पर्वत के कितने कूट—शिखर या चोटियाँ हैं ?

गौतम ! वैताढ्य पर्वत के नौ कूट हैं। वे इस प्रकार हैं— १. सिद्धायतनकूट, २. दक्षिणार्धभरतकूट, ३. खण्डप्रपातगुहाकूट, ४. मणिभद्रकूट, ५. वैताढ्यकूट, ६. पूर्णभद्रकूट, ७. तमिस्रगुहाकूट, ८. उत्तरार्धभरतकूट, ९. वैश्रमणकूट।

सिद्धायतनकूट

१९. कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वेअड्ढपव्वए सिद्धायणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, दाहिणद्धभरहकूडस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वेअड्ढे पव्वए सिद्धायणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते—छ सक्कोसाइं जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले छ सक्कोसाइं विक्खंभेणं, मज्झे देसूणाइं पंच जोअणाइं विक्खंभेणं, उवरि साइरेगाइं तिण्णि जोअणाइं विक्खंभेणं, मूले देसूणाइं बावीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं, मज्झे देसूणाइं पण्णरस जोअणाइं परिक्खेवेणं, उवरिं साइरेगाइं णव जोअणाइं परिक्खेवेणं, मूले वित्थिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं तणुए, गोपुच्छसंठाणसंठिए, सव्वरयणामए, अच्छे, सण्हे जाव[1] पडिरूवे। से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिखित्ते, पमाणं वण्णओ दोण्हंपि, सिद्धायणकूडस्स णं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव[2] वाणमंतरा देवा य जाव[3] विहरंति।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे एत्थ णं महं एगे सिद्धायणे पण्णत्ते, कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, देसूणं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं, अणेगखंभसयसन्निविट्ठे, अब्भुग्गयसुकयवइरवेइआ-तोरण-वररइअसालभंजिअ-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-लट्ठ-संठिअ - पसत्थ - वेरुलिअ - विमलखंभे, णाणामणिरयणखचिअउज्जलबहुसमसुविभत्तभूमिभागे, ईहामिग-उसभ-तुरग-णर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय (णागलय-असोअलय-चंपगलय-चूयलय-वासंतियलय-अइमुत्तयलय-कुंदलय-सामलय-) पउमलयभत्तिचित्ते, कंचणमणिरयण-थूभियाए, णाणाविहपंच०

---

१. देखें सूत्र-संख्या ४

२. देखें सूत्र-संख्या ६

३. देखें सूत्र-संख्या १२

वण्णओ, घंटापडागपरिमंडिअग्गसिहरे, धवले, मरीइकवयं विणिम्मुअंते, लाउल्लोइअमहिए, (गोसीस-सरसरत्तचंदण-दद्दरदिन्नपंचंगुलितले, उवचियचंदणकलसे, चंदणघड-सुकयतोरणपडिदुवार-देसभागे, आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावे, पंचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयार-कलिए, कालागुरुपवरकुंदरुक्क-तुरुक्क-धूव-मघमघंतगंधुद्धुयाभिरामे, सुगंधवरगंधिए, गंधवट्टिभूए)।

तस्स णं सिद्धाययणस्स तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता। ते णं दारा पंच धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं विक्खंभेणं, तावइयं चेव पवेसेणं, सेअवरकणगथूभिआगा दारवण्णओ जाव वणमाला।

तस्स णं सिद्धाययणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव[1] तस्स णं सिद्धाययणस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे देवच्छंदए पण्णत्ते—पंचधणुसयाइं आयामविक्खंभेणं, साइरेगाइं पंच धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, सव्वरयणामए। एत्थ णं अट्ठसयं जिणपडिमाणं जिणुस्सहेप्पमाणमित्ताणं संनिक्खित्तं चिट्ठइ, एवं (तासि णं जिणपडिमाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—तवणिज्जमया हत्थतलपायतला, अंकामयाइं णक्खाइं अंतोलोहियक्खपडिसेगाइं, कणगामया पाया, कणगामया गुप्फा, कणगामईओ जंघाओ, कणगामया जाणू, कणगामया ऊरू, कणगामईओ गायलट्ठीओ रिट्ठामए मंसू, तवणिज्जमईओ णाभीहो, रिट्ठामइओ रोमराईओ, तवणिज्जमया चुच्चुआ, तवणिज्जमया सिरिवच्छा, कणगमईओ बाहाओ, कणगामईओ गीवाओ, सिलप्पवालमया उट्ठा, फलिहामया दंता, तवणिज्जमईओ जीहाओ, तवणिज्जमईआ तालुआ, कणगमईओ णासिगाओ अंतोलोहिअक्खपडिसेगाओ, अंकामयाइं अच्छीणि अंतोलोहिअक्खपडिसेगाइं, पुलगामईओ दिट्ठीओ, रिट्ठामईओ तारगाओ, रिट्ठामयाइं अच्छिपत्ताइं, रिट्ठामईओ भमुहाओ, कणगामया कवोला, कणगामया सवणा, कणगामईओ णिडालपट्टियाओ, वइरामईओ सीसघडीओ, तवणिज्जमईओ केसंतकेसभूमिओ, रिट्ठामया उवरिमुद्धया।

तासि णं जिणपडिमाणं पिट्ठओ पत्तेयं २ छत्तधारपडिमा पण्णत्ता। ताओ णं छत्तधार-पडिमाओ हिमरययकुंदिदुप्पगासाइं सकोरंटमल्लदामाइं, धवलाइं आयवत्ताइं सलीलं ओहारेमाणीओ चिट्ठंति।

तासि णं जिणपडिमाणं उभओ पासिं पत्तेअं २ दो दो चामरधारपडिमाओ पण्णत्ताओ। ताओ णं चामरधारपडिमाओ चंदप्पहवइरवेरुलियणाणामणिकणगरयणखइअमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्त-दंडाओ, चिल्लियाओ, संखंककुंददगरयमयमहिअफेणपुंजसन्निकासाओ, सुहुमरययदीहवालाओ, धवलाओ चामराओ सलीलं धारेमाणीओ चिट्ठंति।

तासि णं जिणपडिमाणं पुरओ दो दो णागपडिमाओ, दो दो जक्खपडिमाओ, दो दो भूअपडिमाओ, दो दो कुंडधारपडिमाओ विणओणयाओ, पायवडियाओ, पंजलिउडाओ, सन्निक्खित्ताओ चिट्ठंति—सव्वरयणामईओ, अच्छाओ, सण्हाओ, लण्हाओ, घट्ठाओ, मट्ठाओ, नीरयाओ, निप्पंकाओ जाव पडिरूवाओ।

---

१. देखें सूत्र संख्या ६

तत्थ णं जिणपडिमाणं पुरओ अट्ठसयं घंटाणं, अट्ठसयं चंदणकलसाणं, एवं भिंगाराणं, आयंसगाणं, थालाणं, पाईणं, सुपइट्ठगाणं, मणोगुलिआणं, वातकरगाणं, चित्ताणं रयणकरंडगाणं, हयकंठाणं जाव उसभकंठाणं, पुप्फचंगेरीणं जाव लोमहत्थचंगेरीणं, पुप्फपडलगाणं जाव लोमहत्थ-पडलगाणं) धूवकडुच्छुगा।

[१९] भगवन्! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरतक्षेत्र में वैताढ्य पर्वत पर सिद्धायतनकूट कहाँ है?

गौतम! पूर्व लवण समुद्र के पश्चिम में, दक्षिणार्ध भरतकूट के पूर्व में, जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरतक्षेत्र में वैताढ्य पर्वत पर सिद्धायतन कूट नामक कूट है। वह छह योजन एक कोस ऊँचा, मूल में छह योजन एक कोस चौड़ा, मध्य में कुछ कम पाँच योजन चौड़ा तथा ऊपर कुछ अधिक तीन योजन चौड़ा है। मूल में उसकी परिधि कुछ कम बाईस योजन की, मध्य में कुछ कम पन्द्रह योजन की तथा ऊपर कुछ अधिक नौ योजन की है। वह मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त—संकुचित या संकड़ा तथा ऊपर पतला है। वह गोपुच्छ-संस्थान-संस्थित है—गाय के पूंछ के आकार जैसा है। वह सर्व-रत्नमय, स्वच्छ, सुकोमल तथा सुन्दर है। वह एक पद्मवरवेदिका एवं एक वनखंड से सब ओर से परिवेष्टित है। दोनों का परिमाण पूर्ववत् है।

सिद्धायतन कूट के ऊपर अति समतल तथा रमणीय भूमिभाग है। वह मृदंग के ऊपरी भाग जैसा समतल है। वहाँ वानव्यन्तर देव और देवियां विहार करते हैं। उस अति समतल, रमणीय भूमि-भाग के ठीक बीच में एक बड़ा सिद्धायतन है। वह एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा और कुछ कम एक कोस ऊँचा है। वह अभ्युन्नत—ऊँची, सुकृत—सुरचित वेदिकाओं, तोरणों तथा सुन्दर पुत्तलि-काओं से सुशोभित है। उसके उज्ज्वल स्तम्भ चिकने, विशिष्ट, सुन्दर आकार युक्त उत्तम वैडूर्य मणियों से निर्मित हैं। उसका भूमिभाग विविध प्रकार की मणियों और रत्नों से खचित है, उज्ज्वल है, अत्यन्त समतल तथा सुविभक्त है। उसमें ईहामृग—भेड़िया, वृषभ—वैल, तुरग—घोड़ा, मनुष्य, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, कस्तूरी-मृग, शरभ—अष्टापद, चँवर, हाथी, वनलता, (नागलता, अशोकलता, चंपक-लता, आम्रलता, वासन्तिकलता, अतिमुक्तकलता, कुंदलता, श्यामलता) तथा पद्मलता के चित्र अंकित हैं। उसकी स्तूपिका—शिरोभाग स्वर्ण, मणि और रत्नों से निर्मित है। जैसा कि अन्यत्र वर्णन है, वह सिद्धायतन अनेक प्रकार की पंचरंगी मणियों से विभूषित है। उसके शिखरों पर अनेक प्रकार की पंचरंगी ध्वजाएँ तथा घंटे लगे हैं। वह सफेद रंग का है। वह इतना चमकीला है कि उससे किरणें प्रस्फुटित होती हैं। (वहाँ की भूमि गोबर आदि से लिपी है। उसकी दीवारें खड़िया, कलई आदि से पुती हैं। उसकी दीवारों पर गोशीर्ष चन्दन तथा सरस—आर्द्र लाल चन्दन के पाँचों अंगुलियों और हथेली सहित हाथ की छापें लगी हैं। वहाँ चन्दन-कलश—चन्दन से चर्चित मंगल-घट रखे हैं। उसका प्रत्येक द्वार-भाग चन्दन-कलशों और तोरणों से सजा है। जमीन से ऊपर तक के भाग को छूती हुई वड़ी-बड़ी, गोल तथा लम्बी अनेक पुष्पमालाएँ वहाँ लटकती हैं। पाँचों रंगों के सरस—ताजे फूलों के ढेर के ढेर वहाँ चढ़ाये हुए हैं, जिनसे वह वड़ा सुन्दर प्रतीत होता है। काले अगर, उत्तम कुन्दरुक, लोबान तथा धूप की गमगमाती महक से वहाँ का वातावरण बड़ा मनोज्ञ है, उत्कृष्ट सौरभमय है। सुगन्धित धुएँ की प्रचुरता से वहाँ गोल-गोल धूममय छल्ले से वन रहे हैं।)

उस सिद्धायतन की तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं। वे द्वार पांच सौ धनुष ऊँचे और ढाई सौ धनुष चौड़े हैं। उनका उतना ही प्रवेश-परिमाण है। उनकी स्तूपिकाएँ श्वेत-उत्तम-स्वर्णनिर्मित हैं। द्वार[1] अन्यत्र वर्णित हैं।

उस सिद्धायतन के अन्तर्गत बहुल समतल, सुन्दर भूमिभाग है, जो मृदंग आदि के ऊपरी भाग के सदृश: समतल है। उस सिद्धायतन के बहुत समतल और सुन्दर भूमिभाग के ठीक बीच में देवच्छन्दक—देवासन-विशेष है।

वह पाँच सौ धनुष लम्बा, पाँच सौ धनुष चौड़ा और कुछ अधिक पाँच सौ धनुष ऊँचा है, सर्व रत्नमय है। यहाँ जिनोत्सेध परिमाण—तीर्थंकरों की दैहिक ऊँचाई जितनी ऊँची एक सौ आठ जिन-प्रतिमाएँ हैं। उन जिन-प्रतिमाओं की हथेलियाँ और पगथलियाँ तपनीय—स्वर्ण निर्मित हैं। उनके नख अन्त:खचित लोहिताक्ष—लाल रत्नों से युक्त अंक रत्नों द्वारा बने हैं, उनके चरण, गुल्फ—टखने, जँघाएँ, जानू—घुटने, उरु तथा उनकी देह-लताएँ कनकमय—स्वर्ण-निर्मित हैं, श्मश्रु रिष्टरत्न निर्मित है, नाभि तपनीयमय है, रोमराजि—केशपंक्ति रिष्टरत्नमय है, चूचक—स्तन के अग्रभाग एवं श्रीवत्स—वक्ष:स्थल पर बने चिह्न-विशेष तपनीयमय हैं, भुजाएँ, ग्रीवाएँ कनकमय हैं, ओष्ठ प्रवाल—मूंगे से बने हैं, दाँत स्फटिक निर्मित हैं, जिह्वा और तालु तपनीयमय हैं, नासिका कनकमय है। उनके नेत्र अन्त:खचित लोहिताक्ष रत्नमय अंक-रत्नों से बने हैं, तदनुरूप पलकें हैं, नेत्रों की कनीनिकाएँ, अक्षिपत्र—नेत्रों के पर्दे तथा भौंहें रिष्ट-रत्नमय हैं, कपोल—गाल, श्रवण—कान तथा ललाट कनकमय हैं, शीर्ष-घटी—खोपड़ी वज्ररत्नमय है—हीरकमय है, केशान्त तथा केशभूमि—मस्तक की चाँद तपनीयमय है, ऊपरी मूर्धा—मस्तक के ऊपरी भाग रिष्टरत्नमय हैं।

जिन-प्रतिमाओं में से प्रत्येक के पीछे दो-दो छत्रधारक प्रतिमाएँ हैं। वे छत्रधारक प्रतिमाएँ हिम—बर्फ, रजत—चाँदी, कुंद तथा चन्द्रमा के समान उज्ज्वल, कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त, सफेद छत्र लिए हुए आनन्दोल्लास की मुद्रा में स्थित हैं।

उन जिन-प्रतिमाओं के दोनों तरफ दो-दो चँवरधारक प्रतिमाएँ हैं। वे चँवरधारक प्रतिमाएँ चंद्रकांत, हीरक, वैडूर्य तथा नाना प्रकार की मणियों, स्वर्ण एवं रत्नों से खचित, बहुमूल्य तपनीय सदृश उज्ज्वल, चित्रित दंडों सहित—हत्थों से युक्त, देदीप्यमान, शंख, अंक-रत्न, कुन्द, जल-कण, रजत, मथित अमृत के झाग की ज्यों श्वेत, चाँदी जैसे उजले, महीन, लम्बे बालों से युक्त धवल चँवरों को सोल्लास धारण करने की मुद्रा में या भावभंगी में स्थित हैं।

उन जिन-प्रतिमाओं के आगे दो-दो नाग-प्रतिमाएँ, दो-दो यक्ष-प्रतिमाएँ, दो-दो भूत-प्रतिमाएँ तथा दो-दो आज्ञाधार-प्रतिमाएँ संस्थित हैं, जो विनयावनत, चरणाभिनत—चरणों में झुकी हुई और हाथ जोड़े हुए हैं। वे सर्व रत्नमय, स्वच्छ, सुकोमल, चिकनी, घुटी हुई-सी—घिसी हुई-सी, तरासी हुई सी, रजरहित, कर्दमरहित तथा सुन्दर हैं।

उन जिन-प्रतिमाओं के आगे एक सौ आठ घंटे, एक सौ आठ चन्दन-कलश—मांगल्य-घट, उसी प्रकार एक सौ आठ भृंगार—झारियाँ, दर्पण, थाल, पात्रियाँ—छोटे पात्र, सुप्रतिष्ठान, मनोगु-

---

१. देखें राजप्रश्नीय सूत्र १२१-१२३

लिका—विशिष्ट पीठिका, वातकरक, चित्रकरक, रत्न-करंडक, अश्वकंठ, वृषभकंठ, पुष्प-चंगेरिका—फूलों की डलिया, मयूरपिच्छ-चंगेरिका, पुष्प-पटल, मयूरपिच्छ-पटल तथा) धूपदान रखे हैं।

दक्षिणार्ध भरतकूट

२०. कहि णं भंते ! वेअड्ढे पव्वए दाहिणड्ढभरहकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

गोयमा ! खंडप्पवायकूडस्स पुरत्थिमेणं, सिद्धाययणकूडस्स पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं वेअड्ढपव्वए दाहिणड्ढभरहकूडे णामं कूडे पण्णत्ते—सिद्धाययणकूडप्पमाणसरिसे (छ सक्कोसाइं जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले छ सक्कोसाइं जोअणाइं विक्खंभेणं, मज्झे देसूणाइं पंच जोअणाइं विक्खंभेणं, उवरि साइरेगाइं तिण्णि जोअणाइं विक्खंभेणं, मूले देसूणाइं बावीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं, मज्झे देसूणाइं पण्णरस जोअणाइं परिक्खेवेणं, उवरिं साइरेगाइं णव जोअणाइं परिक्खेवेणं, मूले विच्छिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं तणुए गोपुच्छसंठाणसंठिए, सव्वरयणामए, अच्छे सण्हे जाव पडिरूवे।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, पमाणं वण्णओ दोण्हंपि। दाहिणड्ढभरहकूडस्स णं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंग-पुक्खरेइ वा जाव वाणमंतरा देवा य जाव विहरंति।)

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे पासायवडिंसए पण्णत्ते—कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, अब्भुग्गयमूसियपहसिए जाव[1] पासाईए ४।

तस्स णं पासायवडंसगस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगा मणिपेढिआ पण्णत्ता—पंच धणुसयाइं आयाम-विक्खंभेणं, अड्ढाइज्जाहिं धणुसयाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमई। तीसे णं मणिपेढिआए उप्पिं सिंहासणं पण्णत्तं, सपरिवारं भाणियव्वं।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—दाहिणड्ढभरहकूडे २ ?

गोयमा ! दाहिणड्ढभरहकूडे णं दाहिणड्ढभरहे णामं देवे महिड्ढीए, (महज्जुईए, महब्बले, महायसे, महासोक्खे, महाणुभागे) पलिओवमट्ठिईए परिवसइ। से णं तत्थ चउण्हं सामाणिअसाहस्सीणं, चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाहिवईणं, सोलसण्हं आयारक्खदेवसाहस्सीणं दाहिणड्ढभरहकूडस्स दाहिणड्ढाए रायहाणीए अण्णेसिं बहूणं देवाण य देवीण य जाव[2] विहरइ।

कहि णं भंते ! दाहिणड्ढभरहकूडस्स देवस्स दाहिणड्ढा णामं रायहाणी पण्णत्ता ?

गोयमा ! मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं तिरियमसंखेज्जदीवसमुद्दे वीईवइत्ता, अण्णंमि जंबुद्दीवे दीवे दक्खिणेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ ण दाहिणड्ढभरहकूडस्स देवस्स दाहिणड्ढभरहा णामं रायहाणी भाणिअव्वा जहा विजयस्स देवस्स, एवं सव्वकूडा णेयव्वा (—सिद्धाययणकूडे, दाहिणड्ढभरहकूडे, खंडप्पवायगुहाकूडे, मणिभद्दकूडे, वेअड्ढकूडे, पुण्णभद्दकडे,

१. देखें सूत्र संख्या ४
२. देखें सूत्र संख्या १२

तिमिसगुहाकूडे, उत्तरड्डभरहकूडे,) वेसमणकूडे परोप्परं पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं, इमेसिं वण्णावासे गाहा—

मज्झे वेअड्ढस्स उ कणगमया तिण्णि होंति कूडा उ।
सेसा पव्वयकूडा सव्वे रयणामया होंति ॥

मणिभद्दकूडे १, वेअड्ढकूडे २, पुण्णभद्दकूडे ३—एए तिण्णि कूडा कणगामया, सेसा छप्पि रयणमया दोण्हं विसरिसणामया देवा कयमालए चेव णट्टमालए चेव, सेसाणं छण्हं सरिसणामया-जण्णामया य कूडा तन्नामा खलु हवंति ते देवा। पलिओवमट्ठिईया हवंति पत्तेयं पत्तेयं। रायहाणीओ जबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तिरिअं असंखेज्जदीवसमुद्दे वीईवइत्ता अण्णंमि जंबुद्दीवे दीवे बारस जोअणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं रायहाणीओ भाणिअव्वाओ विजयरायहाणीसरिसयाओ।

[२०] भगवन् ! वैताढ्य पर्वत का दक्षिणार्ध भरतकूट नामक कूट कहाँ है ?

गौतम ! खण्डप्रपातकूट के पूर्व में तथा सिद्धायतनकूट के पश्चिम में वैताढ्य पर्वत का दक्षिणार्ध भरतकूट है। उसका परिमाण आदि वर्णन सिद्धायतनकूट के बराबर है। (—वह छह योजन एक कोस ऊँचा, मूल में छह योजन एक कोस चौड़ा, मध्य में कुछ कम पांच योजन चौड़ा तथा ऊपर कुछ अधिक तीन योजन चौड़ा है। मूल में उसकी परिधि कुछ कम बाईस योजन की, मध्य में कुछ कम पन्द्रह योजन की तथा ऊपर कुछ अधिक नौ योजन की है। वह मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त—संकुचित या संकड़ा तथा ऊपर पतला है। वह गोपुच्छसंस्थानसंस्थित है—गाय के पूंछ के आकार-जैसा है। वह सर्व रत्नमय, स्वच्छ, सुकोमल तथा सुन्दर है।

वह एक पद्मवरवेदिका एवं एक वनखंड से सब ओर से परिवेष्टित है। दोनों का परिमाण पूर्ववत् है। दक्षिणार्ध भरतकूट के ऊपर अति समतल तथा रमणीय भूमिभाग है। वह मुरज या ढोलक के ऊपरी भाग जैसा समतल है। वहाँ वाणव्यन्तर देव और देवियां विहार करते हैं।)

दक्षिणार्ध भरतकूट के अति समतल, सुन्दर भूमिभाग में एक उत्तम प्रासाद है। वह एक कोस ऊँचा और आधा कोस चौड़ा है। अपने से निकलती प्रभामय किरणों से वह हँसता-सा प्रतीत होता है, बड़ा सुन्दर है। उस प्रासाद के ठीक बीच में एक विशाल मणिपीठिका है। वह पाँच सौ धनुष लम्बी-चौड़ी तथा अढाई सौ धनुष मोटी है, सर्वरत्नमय है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक सिंहासन है। उसका विस्तृत वर्णन अन्यत्र द्रष्टव्य है।

भगवन् ! उसका नाम दक्षिणार्ध भरतकूट किस कारण पड़ा ?

गौतम ! दक्षिणार्ध भरतकूट पर अत्यन्त ऋद्धिशाली, (द्युतिमान्, बलवान्, यशस्वी, सुख-सम्पन्न एवं सौभाग्यशाली) एक पल्योपमस्थितिक देव रहता है। उसके चार हजार सामानिक देव, अपने परिवार से परिवृत चार अग्रमहिषियाँ, तीन परिषद्, सात सेनाएँ, सात सेनापति तथा सोलह हजार आत्मरक्षक देव हैं। दक्षिणार्ध भरतकूट की दक्षिणार्धा नामक राजधानी है, जहाँ वह अपने इस देव-परिवार का तथा बहुत से अन्य देवों और देवियों का आधिपत्य करता हुआ सुखपूर्वक निवास करता है, विहार करता है—सुख भोगता है।

भगवन ! दक्षिणार्ध भरतकूट नामक देव की दक्षिणार्धा नामक राजधानी कहाँ है ?

गौतम ! मन्दर पर्वत के दक्षिण में तिरछे असंख्यात द्वीप और समुद्र लाँघकर जाने पर अन्य जम्बूद्वीप है। वहाँ दक्षिण दिशा में बारह सौ योजन नीचे जाने पर दक्षिणार्ध भरतकूट देव की दक्षिणार्धभरता नामक राजधानी है। उसका वर्णन विजयदेव की राजधानी के सदृश जानना चाहिए। (दक्षिणार्धभरतकूट, खंडप्रपातकूट, मणिभद्रकूट, वैताढ्यकूट, पूर्णभद्रकूट, तिमिसगुहाकूट, उत्तरार्धभरतकूट,) वैश्रमणकूट तक—इन सबका वर्णन सिद्धायतनकूट जैसा है। ये क्रमशः पूर्व से पश्चिम की ओर हैं। इनके वर्णन की एक गाथा है—

वैताढ्य पर्वत के मध्य में तीन कूट स्वर्णमय हैं, बाकी के सभी पर्वतकूट रत्नमय हैं।

मणिभद्रकूट, वैताढ्यकूट एवं पूर्णभद्रकूट—ये तीन कूट स्वर्णमय हैं तथा बाकी के छह कूट रत्नमय हैं। दो पर कृत्यमालक तथा नृत्यमालक नामक दो विसदृश नामों वाले देव रहते हैं। बाकी के छह कूटों पर कूटसदृश नाम के देव रहते हैं। कूटों के जो-जो नाम हैं, उन्हीं नामों के देव वहाँ हैं। उनमें से प्रत्येक पल्योपमस्थितिक है। मन्दर पर्वत के दक्षिण में तिरछे असंख्येय द्वीप समुद्रों को लांघते हुए अन्य जम्बूद्वीप में बारह हजार योजन नीचे जाने पर उनकी राजधानियां हैं। उनका वर्णन विजया राजधानी जैसा समझ लेना चाहिए।

२१. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ वेअड्ढे पव्वए ?

गोयमा ! वेअड्ढे णं पव्वए भरहं वासं दुहा विभयमाणे २ चिट्ठइ, तंजहा—दाहिणड्ढभरहं च उत्तरड्ढभरहं च। वेअड्ढगिरिकुमारे अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव[1] पलिओवमट्ठिइए परिवसइ। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—वेअड्ढे पव्वए २।

अदुत्तरं च णं गोयमा ! वेअड्ढस्स पव्वयस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते, जं ण कयाइ ण आसि, ण कयाइ ण अत्थि, ण कयाइ ण भविस्सइ, भुविं च, भवइ अ, भविस्सइ अ, धुवे, णिअए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, णिच्चे।

[२१] भगवन् ! वैताढ्य पर्वत को 'वैताढ्य पर्वत' क्यों कहते हैं ?

गौतम ! वैताढ्य पर्वत भरत क्षेत्र को दक्षिणार्ध भरत तथा उत्तरार्ध भरत नामक दो भागों में विभक्त करता हुआ स्थित है। उस पर वैताढ्यगिरिकुमार नामक परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम-स्थितिक देव निवास करता है। इन कारणों से वह वैताढ्य पर्वत कहा जाता है।

गौतम ! इसके अतिरिक्त वैताढ्य पर्वत का नाम शाश्वत है। यह नाम कभी नहीं था, ऐसा नहीं है, यह कभी नहीं है, ऐसा भी नहीं है और यह कभी नहीं होगा, ऐसा भी नहीं है। यह था, यह है, यह होगा, यह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित एवं नित्य है।

जम्बूद्वीप में उत्तरार्ध भरत का स्थान : स्वरूप

२२. कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे उत्तरड्ढभरहे णामं वासे पण्णत्ते ?

गोयमा ! चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, वेअड्ढस्स पव्वयस्स उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे उत्तरड्ढभरहे

१. देखें सूत्र संख्या १४

णामं वासे पण्णत्ते—पाईणपडीणायए, उदीणदाहिणविच्छिण्णे, पलिअंकसंठिए, दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, पच्चत्थिमिल्लाए (कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं) पुट्ठे, गंगासिंधूहिं महाणईहिं तिभागपविभत्ते, दोण्णि अट्ठतीसे जोअणसए तिण्णि अ एगूणवीसइभागे जोअणस्स विक्खंभेणं।

तस्स बाहा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं अट्ठारस बाणउए जोअणसए सत्त य एगूणवीसइभागे जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं।

तस्स जीवा उत्तरेणं पाईणपडीणायया, दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा, तहेव (पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा,) चोद्दस जोअणसहस्साइं चत्तारि अ एक्कहत्तरे जोअणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोअणस्स किंचिविसेसूणे आयामेणं पण्णत्ता।

तीसे धणुपिट्ठे दाहिणेणं चोद्दस जोअणसहस्साइं पंच अट्ठावीसे जोअणसए एक्कारस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं।

उत्तरड्ढभरहस्स णं भंते ! वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव[1] कित्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिं चेव।

उत्तरड्ढभरहे णं भंते ! वासे मणुआणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! ते णं मणुआ बहुसंघयणा, (बहुसंठाणा, बहुउच्चत्तपज्जवा, बहुआउपज्जवा, बहूइं वासाइं आउं पालेंति, पालित्ता अप्पेगइया णिरयगामी, अप्पेगइया तिरियगामी, अप्पेगइया मणुयगामी, अप्पेगइया देवगामी, अप्पेगइया) सिज्झंति (बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति) सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।

[२२] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत उत्तरार्ध भरत नामक क्षेत्र कहाँ है ?

गौतम ! चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, वैताढ्य पर्वत के उत्तर में, पूर्व-लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिम-लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत उत्तरार्ध भरत नामक क्षेत्र है। वह पूर्व-पश्चिम लम्बा और उत्तर-दक्षिण चौड़ा है, पर्यंक-संस्थान-संस्थित है—आकार में पलंग जैसा है। वह दोनों तरफ लवण-समुद्र का स्पर्श किये हुए है। अपने पूर्वी किनारे से पूर्वी लवणसमुद्र का (तथा पश्चिमी किनारे से पश्चिमी लवणसमुद्र का) स्पर्श किये हुए है। वह गंगा महानदी तथा सिन्धु महानदी द्वारा तीन भागों में विभक्त है। वह २३८$\frac{३}{१९}$ योजन चौड़ा है।

उसकी बाहा—भुजाकार क्षेत्र विशेष पूर्व-पश्चिम में १८९२$\frac{७॥}{१९}$ योजन लम्बा है।

उसकी जीवा उत्तर में पूर्व-पश्चिम लम्बी है, लवणसमुद्र का दोनों ओर से स्पर्श किये हुए है।

१. देखें सूत्र संख्या ६

(अपने पूर्वी किनारे से पूर्वी लवणसमुद्र का स्पर्श किये हुए है तथा पश्चिमी किनारे से पश्चिमी लवणसमुद्र का स्पर्श किये हुए है)। इसकी लम्बाई कुछ कम १४४७१$\frac{३}{१९}$ योजन है।

उसकी धनुष्य-पीठिका दक्षिण में १४५२८$\frac{११}{१९}$ योजन है। यह प्रतिपादन परिक्षेप-परिधि की अपेक्षा से है।

भगवन्! उत्तरार्ध भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा है?

गौतम! उसका भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय है। वह मुरज या ढोलक के ऊपरी भाग जैसा समतल है, कृत्रिम तथा अकृत्रिम मणियों से सुशोभित है।

भगवन्! उत्तरार्ध भरत में मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा है?

गौतम! उत्तरार्ध भरत में मनुष्यों का संहनन, (संस्थान, ऊँचाई, आयुष्य बहुत प्रकार का है। वे बहुत वर्षों का आयुष्य भोगते हैं। आयुष्य भोगकर कई नरकगति में, कई तिर्यंचगति में, कई मनुष्यगति में, कई देवगति में जाते हैं, कई) सिद्ध, (बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत्त) होते हैं, समस्त दुःखों का अन्त करते हैं।

ऋषभकूट

२३. कहि णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे उत्तरड्ढभरहे वासे उसभकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते?

गोयमा! गंगाकुंडस्स पच्चत्थिमेणं, सिंधुकुंडस्स पुरत्थिमेणं, चुल्लहिमवंतस्स वासहर-पव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे उत्तरड्ढभरहे वासे उसहकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते—अट्ठ जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दो जोअणाइं उव्वेहेणं, मूले अट्ठ जोअणाइं विक्खंभेणं, मज्झे छ जोअणाइं विक्खंभेणं, उवरिं चत्तारि जोअणाइं विक्खंभेणं, मूले साइरेगाइं पणवीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं, मज्झे साइरेगाइं अट्ठारस जोअणाइं परिक्खेवेणं, उवरिं साइरेगाइं दुवालस जोअणाइं परिक्खेवेणं[1]। मूले विच्छिण्णे, मज्झे संक्खित्ते, उप्पिं तणुए, गोपुच्छसंठाणसंठिए, सव्वजंबूणयामए, अच्छे, सण्हे, जाव[2] पडिरूवे।

से णं एगाए पउमवरवेइआए तहेव (एगेण य वणसंडेण सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। उसहकूडस्स णं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते। से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव वाणमंतरा जाव विहरंति। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे महं एगे भवणे पण्णत्ते) कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, देसऊणं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं, अट्ठो तहेव, उप्पलाणि, पउमाणि (सहस्सपत्ताइं, सयसहस्सपत्ताइं—उसहकूडप्पभाइं, उसहकूडवण्णाइं)। उसभे अ एत्थ देवे महिड्ढीए जाव[3] दाहिणेणं रायहाणी तहेव मंदरस्स पव्वयस्स जहा विजयस्स अविसेसियं।

---

१. पाठान्तरम्—मूले वारस जोअणाइं विक्खंभेणं, मज्झे अट्ठ जोअणाइं विक्खंभेणं, उप्पिं चत्तारि जोअणाइं विक्खंभेणं, मूले साइरेगाइं सत्ततीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं, मज्झे साइरेगाइं पणवीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं, उप्पिं साइरेगाइं वारस जोअणाइं परिक्खेवेणं।

२. देखें सूत्र संख्या ४

३. देखें सूत्र संख्या १४

[२३] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत उत्तरार्ध भरतक्षेत्र में ऋषभकूट नामक पर्वत कहाँ है ?

गौतम ! हिमवान् पर्वत के जिस स्थान से गंगा महानदी निकलती है, उसके पश्चिम में, जिस स्थान से सिन्धु महानदी निकलती है, उसके पूर्व में, चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत के दक्षिणी नितम्ब—मेखला—सन्निकटस्थ प्रदेश में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत उत्तरार्ध भरतक्षेत्र में ऋषभकूट नामक पर्वत है। वह आठ योजन ऊँचा, दो योजन गहरा, मूल में आठ योजन चौड़ा, बीच में छह योजन चौड़ा तथा ऊपर चार योजन चौड़ा है। मूल में कुछ अधिक पच्चीस योजन परिधियुक्त, मध्य में कुछ अधिक अठारह योजन परिधियुक्त तथा ऊपर कुछ अधिक बारह योजन परिधि युक्त है। मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त—संकड़ा तथा ऊपर तनुक—पतला है। वह गोपुच्छ-संस्थान-संस्थित—आकार में गाय की पूँछ जैसा है, सम्पूर्णतः जम्बूनद-स्वर्णमय—जम्बूनद जातीय स्वर्ण से निर्मित है, स्वच्छ, सुकोमल एवं सुन्दर है। वह एक पद्मवरवेदिका (तथा एक वनखण्ड द्वारा चारों ओर से परिवेष्टित है। ऋषभकूट के ऊपर एक बहुत समतल रमणीय भूमिभाग है। वह मुरज के ऊपरी भाग जैसा समतल है। वहाँ वाणव्यन्तर देव और देवियाँ विहार करते हैं। उस बहुत समतल तथा रमणीय भूमिभाग के ठीक बीच में एक विशाल भवन है)। वह भवन एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा, कुछ कम एक कोस ऊँचा है। भवन का वर्णन वैसा ही जानना चाहिए जैसा अन्यत्र किया गया है। वहाँ उत्पल,पद्म (सहस्रपत्र, शत-सहस्रपत्र आदि हैं)। ऋषभकूट के अनुरूप उनकी अपनी प्रभा है, उनके वर्ण हैं। वहाँ परम समृद्धिशाली ऋषभ नामक देव का निवास है, उसकी राजधानी है, जिसका वर्णन सामान्यतया मन्दर पर्वत गत विजय-राजधानी जैसा समझना चाहिए। □□

द्वितीय वक्षस्कार

भरतक्षेत्र : काल-वर्तन

२४. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे भारहे वासे कतिविहे काले पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे काले पण्णत्ते, तं जहा—ओसप्पिणिकाले अ उस्सप्पिणिकाले अ।

ओसप्पिणिकाले णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—सुसमसुसमाकाले १, सुसमाकाले २, सुसमदुस्समाकाले ३, दुस्समसुसमाकाले ४, दुस्समाकाले ५, दुस्समदुस्समाकाले ६।

उस्सप्पिणिकाले णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! छव्विहे पण्णत्ते, तंजहा—दुस्समदुस्समाकाले १, (दुस्समाकाले २, दुस्समसुसमाकाले ३, सुसमदुस्समाकाले ४, सुसमाकाले ५, सुसमसुसमाकाले ६।)

एगमेगस्स णं भंते ! मुहुत्तस्स केवइया उस्सासद्धा विआहिआ ?

गोयमा ! असंखिज्जाणं समयाणं समुदयसमिइसमागमेणं सा एगा आवलिअत्ति वुच्चइ, संखिज्जाओ आवलिआओ ऊसासो, संखिज्जाओ आवलिआओ नीसासो,

हट्ठस्स अणवगल्लस्स, णिरुवकिट्ठस्स जंतुणो।
एगे ऊसासनीसासे, एस पाणुत्ति वुच्चई ॥१॥
सत्त पाणूइं से थोवे, सत्त थोवाइं से लवे।
लवाणं सत्तहत्तरीए, एस मुहुत्तेत्ति आहिए ॥२॥
तिण्णि सहस्सा सत्त य, सयाइं तेवत्तरिं च ऊसासा।
एस मुहुत्तो भणिओ, सव्वेहिं अणंतनाणीहिं ॥३॥

एएणं मुहुत्तप्पमाणेणं तीसं मुहुत्ता अहोरत्तो, पण्णरस अहोरत्ता पक्खो, दो पक्खा मासो, दो मासा उऊ, तिण्णि उऊ अयणे, दो अयणा संवच्छरे, पंचसंवच्छरिए जुगे, वीसं जुगाइं वाससए, दस वाससयाइं वाससहस्से, सयं वाससहस्साणं वाससयसहस्से, चउरासीइं वाससयसहस्साइं से एगे पुव्वंगे, चउरासीइ पुव्वंगसयसहस्साइं से एगे पुव्वे, एवं बिगुणं बिगुणं णेअव्वं; तुडिअंगे, तुडिए, अडडंगे, अडडे, अववंगे, अववे, हुहुअंगे, हुहुए, उप्पलंगे, उप्पले, पउमंगे, पउमे, णलिणंगे, णलिणे, अत्थणिउरंगे, अत्थणिउरे, अजुअंगे, अजुए, नजुअंगे, नजुए, पजुअंगे, पजुए, चूलिअंगे, चूलिए, सीसपहेलिअंगे, सीसपहेलिए, जाव चउरासीइं सीसपहेलिअंगसयसहस्साइं सा एगा सीसपहेलिया। एताव ताव गणिए, एताव ताव गणिअस्स विसए, तेणं परं ओवमिए।

[२४] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरतक्षेत्र में कितने प्रकार का काल कहा गया है ?

गौतम ! दो प्रकार का काल कहा गया है—अवसर्पिणी काल तथा उत्सर्पिणी काल।

भगवन् ! अवसर्पिणी काल कितने प्रकार का है ?

गौतम ! अवसर्पिणी काल छह प्रकार का है—जैसे १. सुषम-सुषमाकाल, २. सुषमाकाल, ३. सुषम-दुःषमाकाल, ४. दुःषम-सुषमाकाल, ५. दुःषमाकाल, ६. दुःषम-दुःषमाकाल।

भगवन् ! उत्सर्पिणी काल कितने प्रकार का है ?

गौतम ! छह प्रकार का है—जैसे १. दुःषम-दुःषमाकाल, (२. दुःषमाकाल, ३. दुःषम-सुषमाकाल, ४. सुषम-दुःषमाकाल, ५. सुषमाकाल, ६. सुषम-सुषमाकाल)।

भगवन् ! एक मुहूर्त्त में कितने उच्छ्वास-निःश्वास कहे गए हैं ?

गौतम ! असंख्यात समयों के समुदाय रूप सम्मिलित काल को आवलिका कहा गया है। संख्यात आवलिकाओं का एक उच्छ्वास तथा संख्यात आवलिकाओं का एक निःश्वास होता है।

हृष्ट-पुष्ट, अग्लान, नीरोग प्राणी का—मनुष्य का एक उच्छ्वास-निःश्वास प्राण कहा जाता है। सात प्राणों का एक स्तोक होता है। सात स्तोकों का एक लव होता है। सत्तहत्तर लवों का एक मुहूर्त होता है। यों तीन हजार सात सौ तिहत्तर उच्छ्वास-निःश्वास का एक मुहूर्त होता है। ऐसा अनन्त ज्ञानियों ने—सर्वज्ञों ने बतलाया है।

इस मुहूर्तप्रमाण से तीस मुहूर्त्तों का एक अहोरात्र—दिन-रात; पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष, दो पक्षों का एक मास, दो मासों की एक ऋतु, तीन ऋतुओं का एक अयन, दो अयनों का एक संवत्सर—वर्ष, पांच वर्षों का एक युग, बीस युगों का एक वर्ष-शतक—शताब्द या शताब्दी, दश वर्षशतकों का एक वर्ष-सहस्र—एक हजार वर्ष, सौ वर्षसहस्रों का एक लाख वर्ष, चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वांग, चौरासी लाख पूर्वांगों का एक पूर्व होता है अर्थात्—८४०००००×८४००००० = ७०५६०००००००००० वर्षों का एक पूर्व होता है। चौरासी लाख पूर्वों का एक त्रुटितांग, चौरासी लाख त्रुटितांगों का एक त्रुटित, चौरासी लाख त्रुटितों का एक अडडांग, चौरासी लाख अडडांगों का एक अडड, चौरासी लाख अडडों का एक अववांग, चौरासी लाख अववांगों का एक अवव, चौरासी लाख अववों का एक हुहुकांग, चौरासी लाख हुहुकांगों का एक हुहुक, चौरासी लाख हुहुकों का एक उत्पलांग, चौरासी लाख उत्पलांगों का एक उत्पल, चौरासी लाख उत्पलों का एक पद्मांग, चौरासी लाख पद्मांगों का एक पद्म, चौरासी लाख पद्मों का एक नलिनांग, चौरासी लाख नलिनांगों का एक नलिन, चौरासी लाख नलिनों का एक अर्थनिपुरांग, चौरासी लाख अर्थनिपुरांगों का एक अर्थ-निपुर, चौरासी लाख अर्थनिपुरों का एक अयुतांग, चौरासी लाख अयुतांगों का एक अयुत, चौरासी लाख अयुतों का एक नयुतांग, चौरासी लाख नयुतांगों का एक नयुत, चौरासी लाख नयुतों का एक प्रयुतांग, चौरासी लाख प्रयुतांगों का एक प्रयुत, चौरासी लाख प्रयुतों का एक चूलिकांग, चौरासी लाख चूलिकांगों की एक चूलिका, चौरासी लाख चूलिकाओं का एक शीर्षप्रहेलिकांग तथा चौरासी लाख शीर्षप्रहेलिकांगों की एक शीर्षप्रहेलिका होती है। यहाँ तक अर्थात् समय से लेकर शीर्षप्रहेलिका तक काल का गणित है। यहाँ तक ही गणित का विषय है। यहाँ से आगे औपमिक-उपमा-आधृत काल है।

काल का विवेचन : विस्तार

२५. से किं तं उवमिए ?

उवमिए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—पलिओवमे श्र सागरोवमे अ ।

से किं तं पलिश्रोवमे ?

पलिश्रोवमस्स परूवणं करिस्सामि—परमाणू दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—सुहुमे अ वावहारिए श्र, अणंताणं सुहुमपरमाणुपुग्गलाणं समुदयसमिइसमागमेणं वावहारिए परमाणू णिप्फज्जइ, तत्थ णो सत्थं कमइ—

सत्थेण सुतिक्खेणवि, छेत्तुं भित्तुं च जं किर ण सक्का ।
तं परमाणुं सिद्धा, वयंति आइं पमाणाणं ॥१॥

वावहारिअपरमाणूणं समुदयसमिइसमागमेणं सा एगा उस्सण्हसण्हिआइ वा, सण्हिसण्हिआइ वा, उद्धरेणूइ वा, तसरेणूइ वा, रहरेणूइ वा, वालग्गेइ वा, लिक्खाइ वा, जूआइ वा, जवमज्झेइ वा, उस्सेहंगुले इ वा, अट्ठ उस्सण्हसण्हिआओ सा एगा सण्हसण्हिया, अट्ठ सण्हसण्हिश्राश्रो सा एगा उद्धरेणू, अट्ठ उद्धरेणूओ सा एगा तसरेणू, अट्ठ तसरेणूओ सा एगा रहरेणू, अट्ठ रहरेणूओ से एगे देवकुरुत्तरकुराण मणुस्साणं वालग्गे, अट्ठ देवकुरुत्तरकुराण मणुस्साणं वालग्गा, से एगे हरिवासरम्मय-वासाण मणुस्साणं वालग्गे, एवं हेमवयहेरण्णवयाण मणुस्साणं, अट्ठ पुव्वविदेहअवरविदेहाणं मणुस्साणं वालग्गा सा एगा लिक्खा, श्रट्ठ लिक्खाश्रो सा एगा जूआ, अट्ठ जूआओ से एगे जवमज्झे, अट्ठ जवमज्झा से एगे अंगुले । एएणं अंगुलप्पमाणेणं छ श्रंगुलाइं पाओ, बारस अंगुलाइं विहत्थी, चउवीसं अंगुलाइं रयणी, अडयालीसं श्रंगुलाइं कुच्छी, छण्णउइ अंगुलाइं से एगे अक्खेइ वा, दंडेइ वा, धणूइ वा, जुगेइ वा, मुसलेइ वा, णालिआइ वा । एएणं धणुप्पमाणेणं दो धणुसहस्साइं गाउअं, चत्तारि गाउआइं जोअणं ।

एएणं जोअणप्पमाणेणं जे पल्ले, जोअणं आयामविक्खंभेणं, जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, से णं पल्ले एगाहिअबेहियतेहिश्र उक्कोसेणं सत्तरत्तपरूढाणं संभट्ठे, सण्णिचिए, भरिए वालग्गकोडीणं । ते णं वालग्गा णो कुत्थेज्जा, णो परिविद्धंसेज्जा, णो श्रग्गी डहेज्जा, णो वाए हरेज्जा, णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा । तओ णं वाससए २ एगमेगं वालग्गं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे, णीरए, णिल्लेवे, णिट्ठिए भवइ से तं पलिओवमे ।

एएसिं पल्लाणं, कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिश्रा ।
तं सागरोवमस्स उ, एगस्स भवे परीमाणं ॥१॥

एएणं सागरोवमप्पमाणेणं चत्तारिसागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमसुसमा १, तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमा २, दो सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमदुस्समा ३, एगा सागरोवमकोडाकोडी बायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिश्रो कालो दुस्समसुसमा ४, एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दुस्समा ५, एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दुस्समदुस्समा ६, पुणरवि

उस्सप्पिणीए एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दुस्समदुस्समा १ एवं पडिलोमं णेयव्वं (एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दुस्समदुस्समा १, एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दुस्समा २, एगा सागरोवम-कोडाकोडी बायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिओ कालो दुस्समसुसमा ३, दो सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमदुस्समा ४, तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमा ५) चत्तारि सागरोवम-कोडाकोडीओ कालो सुसमसुसमा ६, दससागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणी, दससागरोवम-कोडाकोडीओ कालो उस्सप्पिणी, वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणी-उस्सप्पिणी।

[२५] भगवन् ! औपमिक काल का क्या स्वरूप है,—वह कितने प्रकार का है ?

गौतम ! औपमिक काल दो प्रकार का है—पल्योपम तथा सागरोपम।

भगवन् ! पल्योपम का क्या स्वरूप है ?

गौतम ! पल्योपम की प्ररूपणा करूँगा—(इस सन्दर्भ में ज्ञातव्य है—) परमाणु दो प्रकार का है—(१) सूक्ष्म परमाणु तथा (२) व्यावहारिक परमाणु। अनन्त सूक्ष्म परमाणु-पुद्गलों के एक-भावापन्न समुदाय से व्यावहारिक परमाणु निष्पन्न होता है। उसे (व्यावहारिक परमाणु को) शस्त्र काट नहीं सकता।

कोई भी व्यक्ति उसे तेज शस्त्र द्वारा भी छिन्न-भिन्न नहीं कर सकता। ऐसा सर्वज्ञों ने कहा है। वह (व्यावहारिक परमाणु) सभी प्रमाणों का आदि कारण है।

अनन्त व्यावहारिक परमाणुओं के समुदय-संयोग से एक उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका होती है। आठ उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकाओं की एक श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका होती है। आठ श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकाओं का एक उर्ध्वरेणु होता है। आठ ऊर्ध्वरेणुओं का एक त्रसरेणु होता है। आठ त्रसरेणुओं का एक रथरेणु (रथ के चलते समय उड़ने वाले रज-कण) होता है। आठ रथरेणुओं का देवकुरु तथा उत्तरकुरु निवासी मनुष्यों का एक बालाग्र होता है। इन आठ बालाग्रों का हरिवर्ष तथा रम्यकवर्ष के निवासी मनुष्यों का एक बालाग्र होता है। इन आठ बालाग्रों का हैमवत तथा हैरण्यवत निवासी मनुष्यों का एक बालाग्र होता है। इन आठ बालाग्रों का पूर्वविदेह एवं अपरविदेह के निवासी मनुष्यों का एक बालाग्र होता है। इन आठ बालाग्रों की एक लीख होती है। आठ लीखों की एक जूं होती है। आठ जूओं का एक यवमध्य होता है। आठ यवमध्यों का एक अंगुल होता है। छः अंगुलों का एक पाद—पादमध्य-तल होता है। बारह अंगुलों की एक वितस्ति होती है। चौवीस अंगुलों की एक रत्नि—हाथ होता है। अड़तालीस अंगुलों की एक कुक्षि होती है। छियानवे अंगुलों का एक अक्ष—आखा—शकट का भाग-विशेष होता है। इसी तरह छियानवे अंगुलों का एक दंड, धनुष, जुआ, मूसल तथा नलिका—एक प्रकार की यष्टि होती है। दो हजार धनुषों का एक गव्यूत—कोस होता है। चार गव्यूतों का एक योजन होता है।

इस योजन-परिमाण से एक योजन लम्बा, एक योजन चौड़ा, एक योजन ऊँचा तथा इससे तीन गुनी परिधि युक्त पल्य—धान्य रखने के कोठे जैसा हो। देवकुरु तथा उत्तरकुरु में एक दिन, दो दिन, तीन दिन, अधिकाधिक सात दिन-रात के जन्मे यौगलिक के प्ररूढ बालाग्रों से उस पल्य को इतने सघन, ठोस, निचित, निविड रूप में भरा जाए कि वे बालाग्र न खराब हों, न विध्वस्त हों, न उन्हें

अग्नि जला सके, न वायु उड़ा सके, न वे सड़ें-गलें—दुर्गन्धित हों। फिर सौ-सौ वर्ष के बाद एक-एक बालाग्र निकाले जाते रहने पर जब वह पल्य बिल्कुल रीता हो जाए, रजरहित—धूलकण-सदृश बालाग्रों से रहित हो जाए, निर्लिप्त हो जाए—बालाग्र कहीं जरा भी चिपके न रह जाएं, सर्वथा रिक्त हो जाए, तब तक का समय एक पल्योपम कहा जाता है।

ऐसे कोड़ाकोड़ी पल्योपम का दस गुना एक सागरोपम का परिमाण है।

ऐसे सागरोपम परिमाण से सुषमसुषमा का काल चार कोड़ा-कोड़ी सागरोपम, सुषमा का काल तीन कोड़ा-कोड़ी सागरोपम, सुषमदु:षमा का काल दो कोड़ा-कोड़ी सागरोपम, दु:षमसुषमा का काल बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपम, दु:षमा का काल इक्कीस हजार वर्ष तथा दु:षमदु:षमा का काल इक्कीस हजार वर्ष है। यह अवसर्पिणी काल के छह आरों का परिमाण है। उत्सर्पिणी काल का परिमाण इससे प्रतिलोम—उलटा—(दु:षमदु:षमा का काल इक्कीस हजार वर्ष, दु:षमा का काल इक्कीस हजार वर्ष, दु:षमसुषमा का काल बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपम, सुषमदु:षमा का काल दो कोड़ा-कोड़ी सागरोपम, सुषमा का काल तीन कोड़ा-कोड़ी सागरोपम तथा) सुषमसुषमा का काल चार कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है।

इस प्रकार अवसर्पिणी का काल दस सागरोपम कोड़ा-कोड़ी है तथा उत्सर्पिणी का काल भी दस सागरोपम कोड़ा-कोड़ी है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी—दोनों का काल बीस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है।

अवसर्पिणी : सुषमसुषमा

२६. जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे भरहे वासे इमीसे ओस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए उत्तमकट्ठपत्ताए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे होत्था?

गोयमा! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव[1] णाणामणिपंचवण्णेहिं तणेहि य मणीहि य उवसोभिए, तंजहा—किण्हेहिं, (णीलेहिं, लोहिएहिं, हलिद्देहिं,) सुक्किल्लेहिं। एवं वण्णो, गंधो, रसो, फासो, सद्दो अ तणाण य मणीण य भाणिअव्वो जाव तत्थ णं बहवे मणुस्सा मणुस्सीओ अ आसयंति, सयंति, चिट्ठंति, णिसीअंति, तुअट्टंति, हसंति, रमंति, ललंति।

तीसे णं समाए भरहे वासे बहवे उद्दाला कुद्दाला मुद्दाला कयमाला णट्टमाला दंतमाला नागमाला सिंगमाला संखमाला सेअमाला णामं दुमगणा पण्णत्ता, कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला, मूलमंतो, कंदमंतो, (खंधमंतो, तयामंतो, सालमंतो, पवालमंतो, पत्तमंतो, पुप्फमंतो, फलमंतो,) बीअमंतो; पत्तेहि अ पुप्फेहि अ फलेहि अ उच्छण्णपडिच्छण्णा, सिरीए अईव २ उवसोभेमाणा चिट्ठंति।

तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ बहवे भेरुतालवणाइं हेरुतालवणाइं मेरुतालवणाइं

---

१. देखें सूत्र संख्या ६।

पभयालवणाइं सालवणाइं सरलवणाइं सत्तिवण्णवणाइं पूअफलिवणाइं खज्जूरीवणाइं णालिएरी-वणाइं कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूलाइं जाव[1] चिट्ठंति ।

तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ बहवे सेरिआगुम्मा णोमालिआगुम्मा कोरंटयगुम्मा बंधुजीवगगुम्मा मणोज्जगुम्मा बीअगुम्मा बाणगुम्मा कणइरगुम्मा कुज्जयगुम्मा सिंदुवारगुम्मा मोग्गरगुम्मा जूहिआगुम्मा मल्लिआगुम्मा वासंतिआगुम्मा वत्थुलगुम्मा कत्थुलगुम्मा सेवालगुम्मा अगत्थिगुम्मा मगदंतिआगुम्मा चंपकगुम्मा जाइगुम्मा णवणीइआगुम्मा कुंदगुम्मा महाजाइगुम्मा रम्मा महामेहणिकुरंबभूआ दसद्धवण्णं कुसुमं कुसुमेंति; जे णं भरहे वासे बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं वायविधुअग्गसाला मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिअं करेंति ।

तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ तहिं तहिं बहुईओ पउमलयाओ (णागलयाओ असोअलयाओ चंपगलयाओ चूयलयाओ वणलयाओ वासंतियलयाओ अइमुत्तयलयाओ कुंदलयाओ) सामलयाओ णिच्चं कुसुमिआओ, (णिच्चं माइयाओ, णिच्चं लवइयाओ, णिच्चं थवइयाओ, णिच्चं गुलइयाओ, णिच्चं गोच्छियाओ, णिच्चं जमलियाओ, णिच्चं जुवलियाओ, णिच्चं विणमियाओ, णिच्चं पणमियाओ, णिच्चं कुसुमियमाइयलवइयथवइयगुलइयगोच्छियजमलियजुवलियविणमिय-पणमिय-सुविभत्तपिंडमंजरिवडिंसयधराओ) लयावण्णओ ।

तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ तहिं तहिं बहुईओ वणराईओ पण्णत्ताओ—किण्हाओ, किण्होभासाओ जाव[2] मणोहराओ, रयमत्तगछप्पयकोरंग-भिंगारग-कोंडलग-जीवंजीवग-नंदीमुह-कविल-पिंगलक्खग-कारंडव-चक्कवायग-कलहंस-हंस-सारस-अणेगसउणगण-मिहुणविअरिआओ, सद्दुण्ण-इयमहुरसरणाइआओ, संपिंडिअदरियभमरमहुयरिपहकरपरिलिंतमत्तछप्पयकुसुमासवलोलमहुरगुमगु-मंतगुंजंतदेसभागाओ, अब्भिंतरपुप्फ-फलाओ, बाहिरपत्तोच्छण्णाओ, पत्तेहि य पुप्फेहि य ओच्छन्न-वलिच्छत्ताओ, साउफलाओ, निरोययाओ, अकंटयाओ, णाणाविहगुच्छगुम्ममंडवगसोहियाओ, विचित्तसुहकेउभूयाओ, वावी-पुक्खरिणी-दीहियासुनिवेसियरम्मजालहरयाओ, पिंडिम-णीहारिमसुगंधि-सुहसुरभिमणहरं च महयागंधद्धाणिं मुयंताओ, सव्वोउयपुप्फफलसमिद्धाओ, सुरम्माओ पासाईयाओ, दरिसणिज्जाओ, अभिरूवाओ, पडिरूवाओ ।

[२९] जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल के सुषमसुषमा नामक प्रथम आरे में, जब वह अपने उत्कर्ष की पराकाष्ठा में था, भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप-अवस्थिति—सब किस प्रकार का था ?

गौतम ! उसका भूमिभाग बड़ा समतल तथा रमणीय था । मुरज के ऊपरी भाग की ज्यों वह समतल था । नाना प्रकार की काली, (नीली, लाल, हल्दी के रंग की—पीली तथा) सफेद

१. देखें सूत्र यही

२. देखें सूत्र संख्या ६

मणियों एवं तृणों से वह उपशोभित था। तृणों एवं मणियों के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श तथा शब्द अन्यत्र वर्णित के अनुसार कथनीय हैं। वहाँ वहुत से मनुष्य, स्त्रियां आश्रय लेते, शयन करते, खड़े होते, वैठते, त्वग्वर्त्तन करते—देह को दायें-वायें घुमाते—मोड़ते, हँसते, रमण करते, मनोरंजन करते थे।

उस समय भरतक्षेत्र में उद्दाल, कुद्दाल, मुद्दाल, कृत्तमाल, नृत्तमाल, दन्तमाल, नागमाल, शृंगमाल, शंखमाल तथा श्वेतमाल नामक वृक्ष थे, ऐसा कहा गया है। उनकी जड़ें डाभ तथा दूसरे प्रकार के तृणों से विशुद्ध—रहित थीं। वे उत्तम मूल—जड़ों के ऊपरी भाग, कंद—भीतरी भाग, जहाँ से जड़ें फूटती हैं, स्कन्ध—तने, त्वचा—छाल, शाखा, प्रवाल—अंकुरित होते पत्ते, पत्र, पुष्प, फल तथा वीज से सम्पन्न थे। वे पत्तों, फूलों और फलों से ढके रहते तथा अतीव कान्ति से सुशोभित थे।

उस समय भरतक्षेत्र में जहाँ-तहाँ वहुत से भेरुताल वृक्षों के वन, हेरुताल वृक्षों के वन, मेरुताल वृक्षों के वन, प्रभताल वृक्षों के वन, साल वृक्षों के वन, सरल वृक्षों के वन, सप्तपर्ण वृक्षों के वन, सुपारी के वृक्षों के वन, खजूर के वृक्षों के वन, नारियल के वृक्षों के वन थे। उनकी जड़ें डाभ तथा दूसरे प्रकार के तृणों से विशुद्ध—रहित थीं।

उस समय भरतक्षेत्र में जहाँ-तहाँ अनेक सेरिका-गुल्म, नवमालिका-गुल्म, कोरंटक-गुल्म, वन्धुजीवक-गुल्म, मनोऽवद्य-गुल्म, वीज-गुल्म, वाण-गुल्म, कर्णिकार-गुल्म, कुब्जक-गुल्म, सिंदुवार-गुल्म, मुद्गर-गुल्म, यूथिका-गुल्म, मल्लिका-गुल्म, वासंतिका-गुल्म, वस्तुल-गुल्म, कस्तुल-गुल्म, शैवाल-गुल्म, अगस्ति-गुल्म, मगदंतिका-गुल्म, चंपक-गुल्म, जाती-गुल्म, नवनीतिका-गुल्म, कुन्द-गुल्म, महाजाती-गुल्म थे। वे रमणीय, वादलों की घटाओं जैसे गहरे, पंचरंगे फूलों से युक्त थे। वायु से प्रकंपित अपनी शाखाओं के अग्रभाग से गिरे हुए फूलों से वे भरतक्षेत्र के अति समतल, रमणीय भूमिभाग को सुरभित वना देते थे।

भरतक्षेत्र में उस समय जहाँ-तहाँ अनेक पद्मलताएँ, (नागलताएँ, अशोकलताएँ, चंपकलताएँ, आम्रलताएँ, वनलताएँ, वासंतिकलताएँ, अतिमुक्तकलताएँ, कुन्दलताएँ) तथा श्यामलताएँ थीं। वे लताएँ सव ऋतुओं में फूलती थीं, (मंजरियों, पत्तों, फूलों के गुच्छों, गुल्मों तथा पत्तों के गुच्छों से युक्त रहती थीं। वे सदा समश्रेणिक एवं युगल रूप में अवस्थित थीं। वे पुष्प, फल आदि के भार से सदा विनमित—वहुत झुकी हुई, प्रणमित—विशेष रूप से अभिनत—नमी हुई थीं। यों ये विविध प्रकार से अपनी विशेषताएँ लिए हुए अपनी सुन्दर लुम्बियों तथा मंजरियों के रूप में मानो शिरोभूपण—कलंगियाँ धारण किये रहती थीं।

उस समय भरतक्षेत्र में जहाँ-तहाँ वहुत सी वनराजियाँ—वनपंक्तियाँ थीं। वे कृष्ण, कृष्ण आभा-युक्त इत्यादि अनेकविध विशेषताओं से विभूषित थीं, मनोहर थीं। पुष्प-पराग के सौरभ से मत्त भ्रमर, कोरंक, भृंगारक, कुंडलक, चकोर, नन्दीमुख, कपिल, पिंगलाक्षक, करंडक, चक्रवाक, वतक, हंस आदि अनेक पक्षियों के जोड़े उनमें विचरण करते थे। वे वनराजियाँ पक्षियों के मधुर शब्दों से सदा प्रतिध्वनित रहती थीं। उन वनराजियों के प्रदेश कुसुमों का आसव पीने को उत्सुक, मधुर गुंजन करते हुए भ्रमरियों के समूह से परिवृत, दृप्त, मत्त भ्रमरों की मधुर ध्वनि से मुखरित थे। वे वनराजियाँ भीतर की ओर फलों से तथा वाहर की ओर पुष्पों से आच्छन्न थीं। वहाँ के फल स्वादिष्ट होते थे। वहाँ का वातावरण नीरोग था—स्वास्थ्यप्रद था। वे काँटों से रहित थीं। वे तरह-तरह के

फूलों के गुच्छों, लताओं के गुल्मों तथा मंडपों से शोभित थीं। मानो वे उनकी अनेक प्रकार की सुन्दर ध्वजाएँ हों। वावड़ियाँ—चतुष्कोण जलाशय, पुष्करिणी—गोलाकार जलाशय, दीर्घिका—सीधे लम्बे जलाशय—इन सब के ऊपर सुन्दर जालगृह—गवाक्ष—झरोखे बने थे। वे वनराजियाँ ऐसी तृप्तिप्रद सुगन्ध छोड़ती थीं, जो बाहर निकलकर पुंजीभूत होकर बहुत दूर फैल जाती थीं, बड़ी मनोहर थीं। उन वनराजियों में सब ऋतुओं में खिलने वाले फूल तथा फलने वाले फल प्रचुर मात्रा में पैदा होते थे। वे सुरम्य, चित्त को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय, अभिरूप—मनोज्ञ—मन को अपने में रमा लेने वाली तथा प्रतिरूप—मन में बस जाने वाली थीं।

द्रुमगण

२७. तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ तहिं तहिं मत्तंगा णामं दुमगणा पण्णत्ता, जहा से चंदप्पभा—(मणिसिलाग-वरसीधु-वरवारुणि-सुजायपत्तपुप्फफलचोअणिज्जा, ससारबहुदव्वजुत्तिसंभार-कालसंधि-आसवा, महुमेरग-रिट्ठाभदुद्धजातिपसन्नतल्लगसाउ-खज्जूरिमुद्दिआसारकाविसायण-सुपक्क-खोअरसवरसुरा, वण्ण-गंध-रस-फरिस-जुत्ता, बलवीरिअपरिणामा मज्जविही बहुप्पगारा, तहेव ते मत्तंगा वि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणयाए मज्जविहीए उववेया, फलेहिं पुण्णा वीसंदंति कुसविकुस-विसुद्धरुक्खमूला,) छण्णपडिच्छण्णा चिट्ठंति, एवं जाव (तीसे णं समाए तत्थ तत्थ बहवे) अणिगणा णामं दुमगणा पण्णत्ता।

[२७] उस समय भरतक्षेत्र में जहाँ-तहाँ मत्तांग नामक कल्पवृक्ष-समूह थे। वे चन्द्रप्रभा, (मणिशिलिका, उत्तम मदिरा, उत्तम वारुणी, उत्तम वर्ण, गन्ध, रस तथा स्पर्श युक्त, बलवीर्यप्रद सुपरिपक्व पत्तों, फूलों और फलों के रस एवं बहुत से अन्य पुष्टिप्रद पदार्थों के संयोग से निष्पन्न आसव, मधु—मद्यविशेष, मेरक—मद्यविशेष, रिष्टाभारिष्ट रत्न के वर्ण की सुरा या जामुन के फलों से निष्पन्न सुरा, दुग्ध जाति-प्रसन्ना—आस्वाद में दूध के सदृश सुरा-विशेष, तल्लक—सुरा-विशेष, शतायु—सुरा-विशेष, खजूर के सार से निष्पन्न आसवविशेष, द्राक्षा के सार से निष्पन्न आसवविशेष, कपिशायन—मद्य-विशेष, पकाए हुए गन्ने के रस से निष्पन्न उत्तम सुरा, और भी बहुत प्रकार के मद्य प्रचुर मात्रा में, तथाविध क्षेत्र, सामग्री के अनुरूप प्रस्तुत करने वाले फलों से परिपूर्ण थे। उनसे ये सब मद्य, सुराएँ चूती थीं। उनकी जड़ें डाभ तथा दूसरे प्रकार के तृणों से विशुद्ध—रहित थीं। वे वृक्ष खूब छाए हुए और फैले हुए रहते थे।) इसी प्रकार यावत् (उस समय सर्वविध भोगोपभोग सामग्रीप्रद अनग्नपर्यन्त दस प्रकार के) अनेक कल्पवृक्ष थे।

विवेचन—दस प्रकार के कल्पवृक्षों में से प्रथम मत्तांग और दसवें अनग्न का मूल पाठ में साक्षात् उल्लेख हुआ है। मध्य के आठ कल्पवृक्ष 'जाव' शब्द से गृहीत किये गये हैं। सब के नाम-काम इस प्रकार हैं—

१. मत्तांग—मादक रस प्रदान करने वाले,
२. भृत्तांग—विविध प्रकार के भाजन—पात्र-बरतन देने वाले,
३. त्रुटितांग—नानाविध वाद्य देने वाले,
४. दीपशिखा—प्रकाशप्रदायक,

५. जोतिषिक—उद्योतकारक,
६. चित्रांग—माला आदि प्रदायक,
७. चित्ररस—विविध प्रकार का रस देने वाले,
८. मण्यंग—आभूषण प्रदान करने वाले,
९. गेहाकार—विविध प्रकार के गृह—निवासस्थानप्रदाता,
१०. अनग्न—वस्त्रों की आवश्यकतापूर्त्ति करने वाले।

मनुष्यों का आकार-स्वरूप

२८. तीसे णं भंते ! समाए भरहे वासे मणुआण केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! ते णं मणुआ सुपइट्ठियकुम्मचारुचलणा, (रत्तुप्पलपत्तमउअसुकुमालकोमलतला, णगणगरमगरसागरचक्कंकवरंकलक्खणंकिअचलणा, अणुपुव्वसुसाहयंगुलीया, उण्णयतणुतंबणिद्धणक्खा, संठिअसुसिलिट्ठगूढगुप्फा, एणीकुरुविंदावत्तवट्टाणुपुव्वजंघा, समुग्गनिमग्गगूढजाणू, गयससण-सुजाय-सण्णिभोरू, वरवारणमत्ततुल्लविक्कमविलासिअगई, पमुइअवरतुरगसीहवरवट्टिअकडी, वरतुरगसुजाय-गुज्झदेसा, आइण्णहयव्वनिरुवलेवा, साहयसोणंदमुसलदप्पण-णिगरिअवरकणगच्छरुसरिसवरवइर-वलिअ-मज्झा, झसविहगसुजाय-पीणकुच्छी, झसोअरा, सुइकरणा, गंगावत्तपयाहिणावत्ततरंगभंगुर-विकिरणतरुणबोहिअआकोसायंतपउमगंभीरविअडणाभा, उज्जुअ-समसंहिअजच्च-तणु-कसिण-णिद्ध-आदेज्ज-लडह-सूमाल-मउअ-रमणिज्ज-रोमराई, संणयपासा, संगयपासा, सुंदरपासा, सुजायपासा, मिअमाइअ-पीणरइअ-पासा, अकरंडुअकणगरुअगणिम्मल-सुजाय-णिरुवहय-देहधारी, पसत्थवत्तीस-लक्खणधरा, कणगसिलायलुज्जल-पसत्थ-समतल-उवइअ-विच्छि(त्थि)ण्ण-पिहुलवच्छा, सिरिवच्छंकिय-वच्छा, जुअसण्णिभपीणरइअ-पीवरपउट्ठसंठियसुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-घण-थिरसुबद्धसंधिपुरवर-वरफलिह-वट्टिअ-भुजा, भुजगीसर-विउल-भोगआयाणफलिहउच्छूढ-दीहबाहू, रत्ततलोवइअमउअमंसलसुजाय-पसत्थलक्खणअच्छिद्दजालपाणी, पीवरकोमलवरंगुलीआ, आयंब-तलिण-सुइ-रुइल-णिद्धणक्खा, चंदपाणिलेहा, सूरपाणिलेहा, संखपाणिलेहा, चक्कपाणिलेहा, दिसासोवत्थियपाणिलेहा, चंद-सूर-संख-चक्क-दिसासोवत्थियपाणिलेहा, अणेग-वर-लक्खणुत्तम-पसत्थ-सुरइअ-पाणिलेहा, वरमहिस-वराहसीह-सद्दूलउसहणागवर-पडिपुण्णविपुलखंधा, चउरंगुल-सुप्पमाण-कंबुवरसरिस-गीवा, मंसलसंठिअ-पसत्थ-सद्दूलविपुलहणुआ, अवट्ठिअ-सुविभत्तचित्तमंसू, ओअविअसिलप्पवाल-बिंबफल-सण्णिभाधरोट्ठा, पंडुरससि-सगलविमल-णिम्मल-संख-गोखीर-फेणकुंददगरय-मुणालिआधवल-दंतसेढी, अखंडदंता, अफुडि-अदंता, अविरलदंता, सुणिद्धदंता, सुजायदंता, एगदंतसेढीव अणेगदंता, हुअवह-णिद्धंतधोअतत्ततवणिज्ज-रत्ततलतालुजीहा, गरुलायत-उज्जु-तुंग-णासा, अवदालिअ-पोंडरीकणयणा, कोआसियधवलपत्तलच्छा, आणामिअ-चाव-रुइलकिण्हब्भराइसंठियसंगयआयय-सुजायतणुकसिणणिद्धभुमआ, अल्लीणपमाण-जुत्तसवणा, सुस्सवणा, पीणमंसलकवोलदेसभागा, णिव्वण-सम-लट्ठमट्ठ-चंदद्धसम-णिलाडा, उडुवइ-पडिपुण्ण-सोमवयणा, घण-णिचिअसुबद्ध-लक्खणुण्णयकूडागारणिभपिंडिअग्गसिरा, छत्तागारुत्तमंगदेसा, दाडिमपुप्फ-पगास-तवणिज्जसरिस-णिम्मल-सुजाय-केसंतभूमी, सामलिबोंड-घण-णिचिअच्छोडिअ-

मिउविसय-पसत्थसुहुमलक्खण-सुगंध-सुंदरभुअमोअग-भिंग-णीलकज्जल-पहट्ठ-भमरगण-णिद्धिणिकुरंब-णिचिअ-पयाहिणावत्तमुद्धसिरया,) पासादीया, (दरिसणिज्जा, अभिरूवा,) पडिरूवा।

तीसे णं भंते ! समाए भरहे वासे मणुईणं केरिसए आगारभावपडोआरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! ताओ णं मणुईओ सुजायसव्वंग-सुंदरीओ, पहाणमहिलागुणेहिं जुत्ता, अइक्कंत-विसप्प-माणमउया, सुकुमाल-कुम्मसंठिअविसिट्ठचलणा, उज्जुमउअपीवरसुसाहयंगुलीओ, अब्भुण्णय-रइअ-तलिण-तंब-सूइ-णिद्धणक्खा, रोमरहिअ-वट्ट-लट्ठ-संठिअअजहण्ण-पसत्थलक्खणअकोप्पजंघजु-अलाओ, सुणिम्मिअसुगूढजाणुमंसलसुबद्धसंधीओ, कयलीखंभाइरेक-संठिअ-णिव्वण-सुकुमाल-मउअ-मंसल-अविरल-समसंहिअ-सुजाय-वट्ट-पीवरणिरंतरोरुओ, अट्ठावयवीइयपट्ठसंठिअपसत्थविच्छिण्णपिहु-लसोणीओ वयणायामप्पमाणदुगुणिअविसाल-मंसलसुबद्धजहणवरधारिणीओ, वज्जविराइअप्पसत्थ-लक्खण-निरोदरतिवलिअवलिअतणुणयमज्झिमाओ, उज्जुअसमसहिअजच्चतणुकसिणणिद्धआइज्ज-लडहसुजायसुविभत्त-कंतसोभंतरुइलरमणिज्जरोमराईओ, गंगावत्तपयाहिणावत्ततरंगभंगुररविकिरण-तरुणबोहिअआकोसायंतपउमगंभीर-विअडणाभीओ, अणुब्भडपसत्थपीणकुच्छीओ, सण्णयपासाओ, संगयपासाओ, सुजायपासाओ, मिअमाइअपीणरइअपासाओ, अकरंडुअकणगरुअगणिम्मलसुजायणि-रुवहयगायलट्ठीओ, कंचणकलसप्पमाणसमसहिअलट्ठचुच्चुआमेलगजमलजुअलवट्टिअअब्भुण्णयपीणरइ-यपीवरपओहराओ, भुअंगअणुपुव्वतणुअगोपुच्छवट्ट-संहिअणमिअआइज्जललिअबाहाओ, तंबणहाओ, मंसलग्गहत्थाओ, पीवरकोमलवरंगुलीआओ, णिद्धपाणिलेहाओ, रविससिसंखचक्कसोत्थियसुविभत्त-सुविरइअपाणिलेहाओ, पीणुण्णयकरकक्खवक्खवत्थिप्पएसाओ, पडिपुण्णगल-कपोलाओ, चउरंगुल-सुप्पमाणकंबुवरसरिसगीवाओ, मंसलसंठिअपसत्थहणुगाओ, दाडिमपुप्फप्पगासपीवर-पलंबकुंचि-अवराधराओ, सुंदरुत्तरोट्ठाओ, दहिदगरयचंदकुंदवासंतिमउलधवलअच्छिद्दविमलदसणाओ, रत्तुप्पल-पत्तमउअसुकुमालतालुजीहाओ, कणवीरमउलाकुडिलअब्भुग्गयउज्जुतुंगणासाओ, सारयणवकमलकुमुअ-कुवलयविमलदलणिअरसरिसलक्खणपसत्थअजिम्हकंत-णयणाओ, पत्तलधवलायतआतंबलोअणाओ, आणामिअ-चावरुइलकिण्हब्भराइसंगयसुजायभुमगाओ, अल्लीणपमाणजुत्तसवणाओ, सुसवणाओ, पीण-मट्ठगंडलेहाओ, चउरंगुलपत्थसमणिडालाओ, कोमुईरयणिअरविमलपडिपुण्णसोमवयणाओ, छत्तुण्णय-उत्तमंगाओ, अकविलसुसिणिद्धसुगंधदीहसिरयाओ, छत्त १. ज्झय २. जूअ ३. थूभ ४. दामणि ५. कमंडलु ६. कलस ७. वावि ८. सोत्थिअ ९. पडाग १०. जव ११. मच्छ १२. कुम्म १३. रहवर १४. मगरज्झय १५. अंक १६. थाल १७. अंकुस १८. अट्ठावय १९. सुपइट्ठग २०. मयूर २१. सिरिअभिसेअ २२. तोरण २३. मेइणि २४. उदहि २५. वरभवण २४. गिरि २७. वरआयंस २८. सलीलगय २९. उसभ ३०. सीह ३१. चामर ३२. उत्तमपसत्थबत्तीसलक्खणधराओ, हंससरिसगईओ, कोइल-महुरगिरसुस्सराओ, कंताओ, सव्वस्स अणुमयाओ, ववगयवलिपलिअवंगदुव्वण्णवाहिदोहग्गसोग-मुक्काओ, उच्चत्तेण य णराण थोवूणमुस्सिआओ, सभावसिंगारचारुवेसाओ, संगयगयहसियभणि-अचिट्ठिअविलाससंलावणिउणजुत्तोवयारकुसलाओ, सुंदरथणजहणवयणकर-चलणणयणलावण्णवण-

रूवजोव्वणविलासकलिआओ, णंदणवणविवरचारिणीउव्व अच्छराओ, भरहवासमाणुसच्छराओ, अच्छेरगपेच्छणिज्जाओ, पासाईआओ जाव[1] पडिरूवाओ।

३. ते णं मणुआ ओहस्सरा, हंसस्सरा, कोंचस्सरा, णंदिस्सरा, णंदिघोसा, सीहस्सरा, सीहघोसा, सुसरा, सुसरणिग्घोसा, छायायवोज्जोविअंगमंगा, वज्जरिसहनारायसंघयणा, समचउरसंठाण संठिआ, छविणिरातंका, अणुलोमवाउवेगा, कंकग्गहणी, कवोयपरिणामा, सउणिपोसपिट्ठंतरोरुपरिणया, छद्धणुसहस्समूसिआ।

तेसि णं मणुआणं वे छप्पण्णा पिट्ठकरंडकसया पण्णत्ता समणाउसो! पउमुप्पलगंधसरिसणीसाससुरभिवयणा, ते णं मणुआ पगईउवसंता, पगईपयणुकोहमाणमायालोभा, मिउमद्दवसंपन्ना, अल्लीणा, भद्दगा, विणीआ, अप्पिच्छा, असण्णिहिसंचया, विडिमंतरपरिवसणा, जहिच्छिअकामकामिणो।

[२८] उस समय भरतक्षेत्र में मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा था?

गौतम! उस समय वहाँ के मनुष्य बड़े सुन्दर, दर्शनीय, अभिरूप एवं प्रतिरूप थे। उनके चरण—पैर सुप्रतिष्ठित—सुन्दर रचना युक्त तथा कछुए की तरह उठे हुए होने से मनोज्ञ प्रतीत होते थे। उनकी पगथलियाँ लाल कमल के पत्ते के समान मृदुल, सुकुमार और कोमल थीं। उनके चरण पर्वत, नगर, मगर, सागर एवं चक्ररूप उत्तम मंगलचिह्नों से अंकित थे। उनके पैरों की अंगुलियां क्रमशः आनुपातिक रूप में छोटी-बड़ी एवं सुसंहत—सुन्दर रूप में एक दूसरी से सटी हुई थीं। पैरों के नख उन्नत, पतले, तांबे की तरह कुछ कुछ लाल तथा स्निग्ध—चिकने थे। उनके टखने सुन्दर, सुगठित एवं निगूढ थे—मांसलता के कारण बाहर नहीं निकले हुए थे। उनकी पिंडलियां हरिणी की पिंडलियों, कुरुविन्द घास तथा कते हुए सूत की गेडी की तरह क्रमशः उतार सहित गोल थीं। उनके घुटने डिब्बे के ढक्कन की तरह निगूढ थे। हाथी की सूंड की तरह जंघाएँ सुगठित थीं। श्रेष्ठ हाथी के तुल्य पराक्रम, गंभीरता और मस्ती लिये उनकी चाल थी। प्रमुदित—रोग, शोक आदि रहित—स्वस्थ, उत्तम घोड़े तथा उत्तम सिंह की कमर के समान उनकी कमर गोल घेराव लिए थी। उत्तम घोड़े के सुनिष्पन्न गुप्तांग की तरह उनके गुह्य भाग थे। उत्तम जाति के घोड़े की तरह उनका शरीर मलमूत्र विसर्जन की अपेक्षा से निर्लेप था। उनकी देह के मध्यभाग त्रिकाष्ठिका, मूसल तथा दर्पण के हत्थे के मध्य भाग के समान, तलवार की श्रेष्ठ स्वर्णमय मूठ के समान तथा उत्तम वज्र के समान गोल और पतले थे। उनके कुक्षिप्रदेश—उदर के नीचे के दोनों पार्श्व मत्स्य और पक्षी के समान सुजात—सुनिष्पन्न—सुन्दर रूप में रचित तथा पीन—परिपुष्ट थे। उनके उदर मत्स्य जैसे थे। उनके करण—आन्त्र-समूह—आंतें शुचि—स्वच्छ—निर्मल थीं। उनकी नाभियाँ कमल की ज्यों गंभीर, विकट—गूढ़, गंगा की भंवर की तरह गोल, दाहिनी ओर चक्कर काटती हुई तरंगों की तरह घुमावदार सुन्दर, चमकते हुए सूर्य की किरणों से विकसित होते कमल की तरह खिली हुई थीं। उनके वक्षस्थल और उदर पर सीधे, समान, संहित—एक दूसरे से मिले हुए, उत्कृष्ट, हलके, काले, चिकने, उत्तम लावण्यमय, सुकुमार, कोमल तथा रमणीय बालों की पंक्तियाँ थीं। उनकी देह के पार्श्वभाग—पसवाड़े नीचे की ओर क्रमशः

---

१. देखें सूत्र यही

संकड़े, देह के प्रमाण के अनुरूप; सुन्दर, सुनिष्पन्न तथा समुचित परिमाण में मांसलता लिए हुए थे, मनोहर थे। उनके शरीर स्वर्ण के समान कांतिमान्, निर्मल, सुन्दर, निरुपहत—रोग-दोष-वर्जित तथा समीचीन मांसलतामय थे, जिससे उनकी रीढ़ की हड्डी अनुपलक्षित थी। उनमें उत्तम पुरुष के बत्तीस लक्षण पूर्णतया विद्यमान थे। उनके वक्षस्थल—सीने स्वर्ण-शिला के तल के समान उज्ज्वल, प्रशस्त, समतल, उपचित—मांसल, विस्तीर्ण—चौड़े, पृथुल—विशाल थे। उन पर श्रीवत्स—स्वस्तिक के चिह्न अंकित थे। उनकी भुजाएँ युग—गाड़ी के जुए, यूप—यज्ञस्तम्भ—यज्ञीय खूंटे की तरह गोल, लम्बे, सुदृढ़, देखने में आनन्दप्रद, सुपुष्ट कलाइयों से युक्त, सुश्लिष्ट—सुसंगत, विशिष्ट, घन—ठोस, स्थिर-स्नायुओं से यथावत् रूप में सुबद्ध तथा नगर की अर्गला—आगल के समान गोलाई लिए थीं। इच्छित वस्तु प्राप्त करने हेतु नागराज के फैले हुए विशाल शरीर की तरह उनके दीर्घ बाहु थे। उनके पाणि—कलाई से नीचे के हाथ के भाग उन्नत, कोमल, मांसल तथा सुगठित थे, शुभ लक्षण युक्त थे, अंगुलियाँ मिलाने पर उनमें छिद्र दिखाई नहीं देते थे। उनके तल—हथेलियाँ ललाई लिए हुई थीं। अंगुलियां पुष्ट, सुकोमल और सुन्दर थीं। उनके नख ताँबे की ज्यों कुछ-कुछ ललाई लिए हुए, पतले, उजले, रुचिर—देखने में रुचिकर—अच्छे लगने वाले, स्निग्ध—चिकने तथा सुकोमल थे। उनकी हथेलियों में चन्द्र, सूर्य, शंख, चक्र, दक्षिणावर्त एवं स्वस्तिक की शुभ रेखाएँ थीं। उनके कन्धे प्रबल भैंसे, सूअर, सिंह, चीते, साँड तथा उत्तम हाथी के कन्धों जैसे परिपूर्ण एवं विस्तीर्ण थे। उनकी ग्रीवाएँ—गर्दनें चार चार अंगुल चौड़ी तथा उत्तम शंख के समान त्रिवलि युक्त एवं उन्नत थीं। उनकी ठुड्डियां मांसल—सुपुष्ट, सुगठित, प्रशस्त तथा चीते की तरह विपुल—विस्तीर्ण थीं। उनके श्मश्रु—दाढ़ी व मूंछ अवस्थित—कभी नहीं बढ़ने वाली, बहुत हलकी सी तथा अद्भुत सुन्दरता लिए हुए थी, उनके होठ संस्कारित या सुघटित मूंगे की पट्टी जैसे, बिम्ब फल के सदृश थे। उनके दांतों की श्रेणी निष्कलंक चन्द्रमा के टुकड़े, निर्मल से निर्मल शंख, गाय के दूध, फेन, कुन्द के फूल, जलकण और कमल नाल के समान सफेद थी। दाँत अखंड—परिपूर्ण, अस्फुटित—टूट फूट रहित, सुदृढ, अविरल—परस्पर सटे हुए, सुस्निग्ध—चिकने—आभामय, सुजात—सुन्दराकार थे, अनेक दांत एक दंत-श्रेणी की ज्यों प्रतीत होते थे। जिह्वा तथा तालु अग्नि में तपाए हुए और जल से धोए हुए स्वर्ण के समान लाल थे। उनकी नासिकाएँ गरुड़ की तरह—गरुड़ की चोंच की ज्यों लम्बी, सीधी और उन्नत थीं। उनके नयन खिले हुए पुंडरीक—सफेद कमल के समान थे। उनकी आँखें पद्म की तरह विकसित, धवल, पत्रल—बरौनी युक्त थीं। उनकी भौंहें कुछ खींचे हुए धनुष के समान सुन्दर—टेढ़ी, काले बादल की रेखा के समान कृश—पतली, काली एवं स्निग्ध थीं। उनके कान मुख के साथ सुन्दर रूप में संयुक्त और प्रमाणोपेत—समुचित आकृति के थे, इसलिए वे बड़े सुन्दर लगते थे। उनके कपोल मांसल और परिपुष्ट थे। उनके ललाट निर्व्रण—फोड़े, फुन्सी आदि के घाव के चिह्न से रहित, समतल, सुन्दर एवं निष्कलंक अर्धचन्द्र—अष्टमी के चन्द्रमा के सदृश भव्य थे। उनके मुख पूर्ण चन्द्र के समान सौम्य थे। अत्यधिक सघन, सुबद्ध स्नायुबंध सहित, उत्तम लक्षण युक्त, पर्वत के शिखर के समान उन्नत उनके मस्तक थे। उनके उत्तमांग—मस्तक के ऊपरी भाग छत्राकार थे। उनकी केशान्तभूमि—त्वचा, जिस पर उनके बाल उगे हुए थे, अनार के फूल तथा सोने के समान दीप्तिमय—लाल, निर्मल और चिकनी थी। उनके मस्तक के केश बारीक रेशों से भरे सेमल के फल के फटने से निकलते हुए रेशों जैसे कोमल, विशद, प्रशस्त, सूक्ष्म, श्लक्ष्ण—मुलायम, सुरभित, सुन्दर, भुजमोचक, नीलम, भृंग, नील, कज्जल

तथा प्रहृष्ट—सुपुष्ट भ्रमरवृन्द जैसे चमकीले, काले, घने, घुंघराले, छल्लेदार थे।) वे मनुष्य सुन्दर, (दर्शनीय, अभिरूप—मनोज्ञ) तथा प्रतिरूप थे—मन को आकृष्ट करने वाले थे।

भगवन्! उस समय भरतक्षेत्र में स्त्रियों का आकार-स्वरूप कैसा था?

गौतम! वे स्त्रियाँ—उस काल की स्त्रियाँ श्रेष्ठ तथा सर्वांगसुन्दरियाँ थीं। वे उत्तम महिलोचित गुणों से युक्त थीं। उनके पैर अत्यन्त सुन्दर, विशिष्ट प्रमाणोपेत, मृदुल, सुकुमार तथा कच्छप-संस्थान-संस्थित—कछुए के आकार के थे। उनके पैरों की अंगुलियाँ सरल, कोमल, परिपुष्ट—मांसल एवं सुसंगत—परस्पर मिली हुई थीं। अंगुलियों के नख समुन्नत, रतिद—देखने वालों के लिए आनन्द-प्रद, तलिन—पतले, ताम्र—तांबे के वर्ण के हलके लाल, शुचि—मलरहित, स्निग्ध—चिकने थे। उनके जंघा-युगल रोम रहित, वृत्त—वर्तुल या गोल, रम्य-संस्थान युक्त, उत्कृष्ट, प्रशस्त लक्षण युक्त, अत्यन्त सुभगता के कारण अकोप्य—अद्वेष्य थे। उनके जानु-मंडल सुनिर्मित—सर्वथा प्रमाणोपेत, सुगूढ तथा मांसलता के कारण अनुपलक्ष्य थे, सुदृढ स्नायु-बंधनों से युक्त थे। उनके ऊरु केले के स्तंभ जैसे आकार से भी अधिक सुन्दर, फोड़े, फुन्सी आदि के घावों के चिह्नों से रहित, सुकुमार, सुकोमल, मांसल, अविरल—परस्पर सटे हुए जैसे, सम, सदृश-परिमाण युक्त, सुगठित, सुजात—सुन्दर रूप में समुत्पन्न, वृत्त—वर्तुल—गोल, पीवर—मांसल, निरंतर—अंतर रहित थे। उनके श्रोणिप्रदेश घुण आदि कीड़ों के उपद्रवों से रहित—उन द्वारा नहीं खाए हुए—अखंडित द्यूत-फलक जैसे आकार युक्त, प्रशस्त, विस्तीर्ण, तथा पृथुथ—स्थूल—मोटे या भारी थे। विशाल, मांसल, सुगठित और अत्यन्त सुन्दर थे। उनकी देह के मध्यभाग वज्ररत्न—हीरे जैसे सुहावने, उत्तम लक्षण युक्त, विकृत उदर रहित, त्रिवली—तीन रेखाओं से युक्त, बलित—सशक्त अथवा वलित—गोलाकार एवं पतले थे। उनकी रोमराजियाँ—रोमावलियाँ सरल, सम—बराबर, संहित—परम्पर मिली हुई, उत्तम, पतली, कृष्ण वर्ण युक्त—काली, चिकनी, आदेय—स्पृहणीय, लालित्यपूर्ण—सुन्दरता से युक्त तथा सुरचित—स्वभावतः सुन्दर, सुविभक्त, कान्त—कमनीय, शोभित और रुचिकर थीं। उनकी नाभि गंगा के भंवर की तरह गोल, दाहिनी ओर चक्कर काटती हुई तरंगों की ज्यों घुमावदार, सुन्दर, उदित होते हुए सूर्य की किरणों से विकसित होते कमलों के समान विकट—गूढ़ तथा गंभीर थीं। उनके कुक्षिप्रदेश—उदर के नीचे के दोनों पार्श्व अनुद्भट—अस्पष्ट—मांसलता के कारण साफ नहीं दीखने वाले, प्रशस्त—उत्तम—श्लाघ्य तथा पीन—स्थूल थे। उनकी देह के पार्श्वभाग—पसवाड़े सन्नत—क्रमशः संकड़े, संगत—देह के परिमाण के अनुरूप सुन्दर, सुनिष्पन्न, अत्यन्त समुचित परिमाण में मांसलता लिए हुए मनोहर थे। उनकी देहयष्टियां—देहलताएँ ऐसी समुपयुक्त मांसलता लिए थीं, जिससे उनके पीछे की हड्डी नहीं दिखाई देती थीं। वे सोने की ज्यों देदीप्यमान, निर्मल, सुनिर्मित, निरुपहत—रोग रहित थीं। उनके स्तन स्वर्ण-घट सदृश थे, परस्पर समान, संहित—परस्पर मिले हुए से, सुन्दर अग्रभाग युक्त, सम श्रेणिक, गोलाकार, अभ्युन्नत—उभार युक्त, कठोर तथा स्थूल थे। उनकी भुजाएँ सर्प की ज्यों क्रमशः नीचे की ओर पतली, गाय की पूंछ की ज्यों गोल, परस्पर समान, नमित—झुकी हुई, आदेय तथा सुललित थीं। उनके नख तांबे की ज्यों कुछ-कुछ लाल थे। उनके हाथों के अग्रभाग मांसल थे। अंगुलियाँ पीवर—परिपुष्ट, कोमल तथा उत्तम थीं। उनके हाथों की रेखाएँ चिकनी थीं। उनके हाथों में सूर्य, शंख, चक्र तथा स्वस्तिक की सुस्पष्ट, सुविरचित रेखाएँ थीं। उनके कक्षप्रदेश, वक्षस्थल तथा वस्तिप्रदेश—गुह्यप्रदेश पुष्ट एवं उन्नत थे। उनके गले तथा गाल प्रतिपूर्ण—भरे हुए

होते थे। उनकी ग्रीवाएँ चार अंगुल प्रमाणोपेत तथा उत्तम शंख सदृश थीं—शंख की ज्यों तीन रेखाओं से युक्त होती थीं। उनकी ठुड्डियां मांसल—सुपुष्ट, सुगठित तथा प्रशस्त थीं। उनके अधरोष्ठ अनार के पुष्प की ज्यों लाल, पुष्ट, ऊपर के होठ की अपेक्षा कुछ कुछ लम्बे, कुंचित—नीचे की ओर कुछ मुड़े हुए थे। उनके दांत दही, जलकण, चन्द्र, कुन्द-पुष्प, वासंतिक-कलिका जैसे धवल, अछिद्र—छिद्र-रहित—अविरल तथा विमल—मलरहित—उज्ज्वल थे। उनके तालु तथा जिह्वा लाल कमल के पत्ते के समान मृदुल एवं सुकुमार थीं। उनकी नासिकाएँ कनेर की कलिका जैसी अकुटिल, अभ्युद्गत—आगे निकली हुई, ऋजु—सीधी, तुंग—तीखी या ऊँची थीं। उनके नेत्र शरदऋतु के सूर्यविकासी रक्त कमल, चन्द्रविकासी श्वेत कुमुद तथा कुवलय—नीलोत्पल के स्वच्छ पत्रसमूह जैसे प्रशस्त, अजिह्म—सीधे तथा कांत—सुन्दर थे। उनके लोचन सुन्दर पलकों से युक्त, धवल, आयत—विस्तीर्ण—कर्णान्तपर्यंत तथा आताम्र—हलके लाल रंग के थे। उनकी भौंहें कुछ खींचे हुए धनुष के समान सुन्दर—कुछ टेढ़ी, काले बादल की रेखा के समान कृश एवं सुरचित थीं। उनके कान मुख के साथ सुन्दर रूप में संयुक्त और प्रमाणोपेत—ससुचित आकृति के थे, इसलिए वे बड़े सुन्दर लगते थे। उनकी कपोल-पालि परिपुष्ट तथा सुन्दर थीं। उनके ललाट चौकोर, प्रशस्त—उत्तम तथा सम—समान थे। उनके मुख शरद्ऋतु की पूर्णिमा के निर्मल, परिपूर्ण चन्द्र जैसे सौम्य थे। उनके मस्तक छत्र की ज्यों उन्नत थे। उनके केश काले, चिकने, सुगन्धित तथा लम्बे थे। छत्र, ध्वजा, यूप—यज्ञ-स्तंभ, स्तूप, दाम—माला, कमंडलु, कलश, वापी—बावड़ी, स्वस्तिक, पताका, यव, मत्स्य, कछुआ, श्रेष्ठ रथ, मकरध्वज, अंक—काले तिल, थाल, अंकुश, अष्टापद—द्यूतपट्ट, सुप्रतिष्ठक, मयूर, लक्ष्मी-अभिषेक, तोरण, पृथ्वी, समुद्र, उत्तम भवन, पर्वत, श्रेष्ठ दर्पण, लीलोत्सुक हाथी, बैल, सिंह तथा चँवर इन उत्तम, श्रेष्ठ बत्तीस लक्षणों से वे युक्त थीं। उनकी गति हंस जैसी थी। उनका स्वर कोयल की बोली सदृश मधुर था। वे कांति युक्त थीं। वे सर्वानुमत थीं—उन्हें सब चाहते थे—कोई उनसे द्वेष नहीं करता था। न उनकी देह में झुरियाँ पड़ती थीं, न उनके बाल सफेद होते थे। वे व्यंग—विकृत अंगयुक्त या हीनाधिक अंगयुक्त, दुर्वर्ण—दूषित या अप्रशस्त वर्ण युक्त नहीं थीं। वे व्याधिमुक्त—रोग रहित होती थीं, दौर्भाग्य—वैधव्य, दारिद्रय आदि-जनित शोक रहित थीं। उनकी ऊँचाई पुरुषों से कुछ कम होती थी। स्वभावतः उनका वेष शृंगारानुरूप सुन्दर था। संगत—समुचित गति, हास्य, बोली, स्थिति, चेष्टा, विलास तथा संलाप में वे निपुण एवं उपयुक्त व्यवहार में कुशल थीं। उनके स्तन, जघन, वदन, हाथ, पैर तथा नेत्र सुन्दर होते थे। वे लावण्ययुक्त होती थीं। वर्ण, रूप, यौवन, विलास—नारीजनोचित नयन-चेष्टाक्रम से उल्लसित थीं। वे नन्दनवन में विचरणशील अप्सराओं जैसी मानो मानुषी अप्सराएँ थीं। उन्हें देखकर—उनका सौंदर्य, शोभा आदि देखकर प्रेक्षकों को आश्चर्य होता था। इस प्रकार वे मनःप्रसादकर—चित्त को प्रसन्न करने वाली तथा प्रतिरूप—मन में बस जाने वाली थीं।

भरतक्षेत्र के मनुष्य ओघस्वर—प्रवाहशील स्वर युक्त, हंस की ज्यों मधुर स्वर युक्त, क्रौंच पक्षी की ज्यों दूरदेशव्यापी—बहुत दूर तक पहुँचने वाले स्वर से युक्त तथा नन्दी—द्वादशविध-तूर्य-समवाय—बारह प्रकार के तूर्य-वाद्यविशेषों के सम्मिलित नाद सदृश स्वर युक्त थे। उनका स्वर एवं घोष—अनुनाद—दहाड़ या गर्जना सिंह जैसी जोशीली थी। उनके स्वर तथा घोष में निराली शोभा थी। उनकी देह के अंग-अंग प्रभा से उद्योतित थे। वे वज्रऋषभनाराचसंहनन—सर्वोत्कृष्ट अस्थिबन्ध तथा समचौरस संस्थान—सर्वोत्कृष्ट दैहिक आकृति वाले थे। उनकी चमड़ी में किसी

प्रकार का आतंक—रोग या विकार नहीं था। वे देह के अन्तवर्ती पवन के उचित वेग—गतिशीलता संयुक्त, कंक पक्षी की तरह निर्दोष गुदाशय से युक्त एवं कबूतर की तरह प्रबल पाचनशक्ति वाले थे। उनके अपान-स्थान पक्षी की ज्यों निर्लेप थे। उनके पृष्ठभाग—पार्श्वभाग—पसवाड़े तथा ऊरु सुदृढ़ थे। वे छह हजार धनुष ऊँचे होते थे।

आयुष्मन् श्रमण गौतम ! उन मनुष्यों के पसलियों की दो सौ छप्पन हड्डियां होती थीं। उनके सांस पद्म एवं उत्पल की-सी अथवा पद्म तथा कुष्ठ नामक गन्ध-द्रव्यों की-सी सुगन्ध लिए होते थे, जिससे उनके मुंह सदा सुवासित रहते थे। वे मनुष्य शान्त प्रकृति के थे। उनके जीवन में क्रोध, मान, माया और लोभ की मात्रा प्रतनु—मन्द या हलकी थी। उनका व्यवहार मृदु—मनोज्ञ—परिणाम-सुखावह होता था। वे आलीन—गुरुजन के अनुशासन में रहने वाले अथवा सब क्रियाओं में लीन—गुप्त—समुचित चेष्टारत थे। वे भद्र—कल्याणभाक्, विनीत—बड़ों के प्रति विनयशील, अल्पेच्छ—अल्प आकांक्षायुक्त, अपने पास (पर्युषित खाद्य आदि का) संग्रह नहीं रखने वाले, भवनों की आकृति के वृक्षों के भीतर बसने वाले और इच्छानुसार काम—शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्शमय भोग भोगने वाले थे।

मनुष्यों का आहार

२९. तेसि णं भंते ! मणुआणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

गोयमा ! अट्ठमभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ, पुढवीपुप्फफलाहारा णं ते मणुआ पण्णत्ता समणाउसो !

तीसे णं भंते ! पुढवीए केरिसए आसाए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से जहाणामए गुलेइ वा, खंडेइ वा, सक्कराइ वा, मच्छंडिआइ वा, पप्पडमोअएइ वा, भिसेइ वा, पुप्फुत्तराइ वा, पउमुत्तराइ वा, विजयाइ वा, महाविजयाइ वा, आकासिआइ वा, आदंसिआइ वा, आगासफलोवमाइ वा, उवमाइ वा, अणोवमाइ वा।

एयारूवे ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, सा णं पुढवी इतो इट्ठतरिआ चेव, (पियतरिआ चेव, कंततरिआ चेव, मणुण्णतरिआ चेव,) मणामतरिआ चेव आसाएणं पण्णत्ता।

तेसि णं भंते ! पुप्फफलाणं केरिसए आसाए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से जहाणामए रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स कल्लाणे भोअणजाए सयसहस्सनिप्फन्ने वण्णेणुववेए, (गंधेणं उववेए, रसेणं उववेए,) फासेणं उववेए, आसायणिज्जे, विसायणिज्जे, दिप्पणिज्जे, दप्पणिज्जे, मयणिज्जे, बिंहणिज्जे, सव्विंदिअगायपल्हायणिज्जे—भवे एआरूवे ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, तेसि णं पुप्फफलाणं एत्तो इट्ठतराए चेव जाव[1] आसाए पण्णत्ते।

[२९] भगवन् ! उन मनुष्यों को कितने समय बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है ?

---

१. देखें सूत्र यही

आयुष्मन् श्रमण गौतम ! उनको तीन दिन के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है । वे पृथ्वी तथा पुष्प-फल, जो उन्हें कल्पवृक्षों से प्राप्त होते हैं, का आहार करते हैं ।

भगवन् ! उस पृथ्वी का आस्वाद कैसा होता है ?

गौतम ! गुड़, खांड, शक्कर, मत्स्यंडिका—विशेष प्रकार की शक्कर, राव, पर्पट, मोदक—एक विशेष प्रकार का लड्डू, मृणाल, पुष्पोत्तर (शर्करा विशेष), पद्मोत्तर (एक प्रकार की शक्कर), विजया, महाविजया, आकाशिका, आदर्शिका, आकाशफलोपमा, उपमा तथा अनुपमा—ये उस समय के विशिष्ट आस्वाद्य पदार्थ होते हैं ।

भगवन् ! क्या उस पृथ्वी का आस्वाद इनके आस्वाद जैसा होता है ?

गौतम ! ऐसी बात नहीं है—ऐसा नहीं होता ।

उस पृथ्वी का आस्वाद इनसे इष्टतर—सब इन्द्रियों के लिए इनसे कहीं अधिक सुखप्रद, (अधिक प्रियकर, अधिक कांत, अधिक मनोज्ञ—मन को भाने वाला) तथा अधिक मनोगम्य—मन को रुचने वाला होता है ।

भगवन् ! उन पुष्पों और फलों का आस्वाद कैसा होता है ?

गौतम ! तीन समुद्र तथा हिमवान् पर्यन्त छः खंड के साम्राज्य के अधिपति चक्रवर्ती सम्राट् का भोजन एक लाख स्वर्ण-मुद्राओं के व्यय से निष्पन्न होता है । वह कल्याणकर—अति सुखप्रद, प्रशस्त वर्ण, (प्रशस्त गन्ध, प्रशस्त रस तथा) प्रशस्त स्पर्श युक्त होता है, आस्वादनीय—आस्वाद योग्य, विस्वादनीय—विशेष रूप से आस्वाद योग्य, दीपनीय—जठराग्नि का दीपन करने वाला, दर्पणीय—उत्साह तथा स्फूर्ति बढ़ाने वाला, मदनीय—मस्ती देने वाला, बृंहणीय—शरीर की धातुओं को उपचित—संवर्धित करने वाला एवं प्रह्लादनीय—सभी इन्द्रियों और शरीर को आह्लादित करने वाला होता है ।

भगवन् ! उन पुष्पों तथा फलों का आस्वाद क्या उस भोजन जैसा होता है ?

गौतम ! ऐसा नहीं होता । उन पुष्पों एवं फलों का आस्वाद उस भोजन से इष्टतर—अधिक सुखप्रद होता है ।

मनुष्यों का आवास : जीवन-चर्या

३०. ते णं भंते ! मणुया तमाहारमाहारेत्ता कहिं वसहिं उवेंति ?

गोयमा ! रुक्खगेहालया णं ते मणुआ पण्णत्ता समणाउसो !

तेसि णं भंते ! रुक्खाणं केरिसए आयारभावपडोआरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! कूडागारसंठिआ, पेच्छाच्छत्त-झय-थूभ-तोरण-गोउर-वेइआ-चोप्फालग-अट्टालग-पासाय-हम्मिअ-गवक्ख-वालग्गपोइआ-वलभीघरसंठिआ । अत्थण्णे इत्थ बहवे वरभवणविसिट्ठसंठाण-संठिआ दुमगणा सुहसीअलच्छाया पण्णत्ता समणाउसो !

[३०] भगवन् ! वे मनुष्य वैसे आहार का सेवन करते हुए कहाँ निवास करते हैं ?

आयुष्मन् श्रमण गौतम ! वे मनुष्य वृक्ष-रूप घरों में निवास करते हैं ।

भगवन् ! उन वृक्षों का आकार-स्वरूप कैसा है ?

गौतम ! वे वृक्ष कूट—शिखर, प्रेक्षागृह—नाटयगृह, छत्र, स्तूप—चबूतरा, तोरण, गोपुर—नगरद्वार, वेदिका—उपवेशन योग्य भूमि, चोप्फाल—बरामदा, अट्टालिका, प्रासाद—शिखरबद्ध देव-भवन या राजभवन, हर्म्य—शिखर वर्जित श्रेष्ठिगृह—हवेलियां, गवाक्ष—झरोखे, वालाग्रपोतिका—जलमहल तथा वलभीगृह सदृश संस्थान-संस्थित हैं—वैसे विविध आकार-प्रकार लिये हुए हैं।

इस भरतक्षेत्र में और भी बहुत से ऐसे वृक्ष हैं, जिनके आकार उत्तम, विशिष्ट भवनों जैसे हैं, जो सुखप्रद शीतल छाया युक्त हैं।

३१. (१) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे गेहाइ वा गेहावणाइ वा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, रुक्ख-गेहालया णं ते मणुआ पण्णत्ता समणाउसो !

[३१] (१) भगवन् ! उस समय भरतक्षेत्र में क्या गेह—घर होते हैं ? क्या गेहायतन—उपभोग हेतु घरों में आयतन—आपतन या आगमन होता है ? अथवा क्या गेहापण—गृह युक्त आपण—दुकानें या बाजार होते हैं ?

आयुष्मन् श्रमण गौतम ! ऐसा नहीं होता। उन मनुष्यों के वृक्ष ही घर होते हैं।

(२) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे गामाइ वा, (आगराइ वा, णयराइ वा, णिगमाइ वा, रायहाणीओ वा, खेडाइ वा, कब्बडाइ वा, मडंबाइ वा, दोणमुहाइ वा, पट्टणाइ वा, आसमाइ वा, संवाहाइ वा,) संणिवेसाइ वा।

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, जहिच्छिअ-कामगामिणो णं ते मणुआ पण्णत्ता।

(२) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में ग्राम-बाड़ों से घिरी बस्तियाँ या करगम्य—जहाँ राज्य का कर लागू हो, ऐसी बस्तियाँ, (आकर—स्वर्ण, रत्न आदि के उत्पत्ति-स्थान, नगर—जिनके चारों ओर द्वार हों, जहाँ राज्य-कर नहीं लगता हो, ऐसी बड़ी बस्तियाँ, निगम—जहाँ वणिक्वर्ग का—व्यापारी वर्ग का प्रभूत निवास हो, वैसी बस्तियाँ, राजधानियाँ, खेट—धूल के परकोट से घिरी हुई या कहीं-कहीं नदियों तथा पर्वतों से घिरी हुई बस्तियाँ, कर्वट—छोटी प्राचीर से घिरी हुई या चारों ओर पर्वतों से घिरी हुई बस्तियाँ, मडम्ब—जिनके ढाई कोस इर्द-गिर्द कोई गाँव न हों, ऐसी बस्तियाँ, द्रोणमुख—समुद्रतट सें सटी हुई बस्तियाँ, पत्तन—जल-स्थल-मार्ग युक्त बस्तियाँ, आश्रम—तापसों के आश्रम या लोगों की ऐसी बस्तियाँ, जहाँ पहले तापस रहते रहे हों, सम्बाध—पहाड़ों की चोटियों पर अवस्थित बस्तियाँ या यात्रार्थ समागत बहुत से लोगों के ठहरने के स्थान तथा सन्निवेश—सार्थ—व्यापारार्थ यात्राशील सार्थवाह एवं उनके सहवर्ती लोगों के ठहरने के स्थान होते हैं ?

गौतम ! ऐसा नहीं होता। वे मनुष्य स्वभावतः यथेच्छ-विचरणशील—स्वेच्छानुरूप विविध स्थानों में गमनशील होते हैं।

(३) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे असीइ वा, मसीइ वा, किसीइ वा, वणिएत्ति वा, पणिएत्ति वा, वाणिज्जेइ वा ?

णो इणट्ठे समट्ठे, ववगय-असि-मसि-किसि-वणिअ-पणिअ-वाणिज्जा णं ते मणुआ पण्णत्ता समणाउसो !

(३) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में असि—तलवार के आधार पर जीविका—युद्ध-जीविका, युद्धकला, मषि—लेखन या कलम के आधार पर जीविका—लेखन-कार्य, लेखन-कला, कृषि—खेती, वणिक्-कला—विक्रय के आधार पर चलने वाली जीविका, पण्य—क्रय-विक्रय-कला तथा वाणिज्य—व्यापार-कला होती है ?

गौतम ! ऐसा नहीं होता । वे मनुष्य असि, मषि, कृषि, वणिक्, पणित तथा वाणिज्य-कला से—तन्मूलक जीविका से विरहित होते हैं ।

(४) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे हिरण्णेइ वा, सुवण्णेइ वा, कंसेइ वा, दूसेइ वा, मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवालरत्तरयणसावइज्जेइ वा ?

हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुआणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छइ ।

(४) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में चांदी, सोना, कांसी, वस्त्र, मणियां, मोती, शंख, शिला—स्फटिक, रक्तरत्न—पद्मराग—पुखराज—ये सब होते हैं ?

हाँ, गौतम ! ये सब होते हैं, किन्तु उन मनुष्यों के परिभोग में—उपयोग में नहीं आते ।

(५) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे रायाइ वा, जुवरायाइ वा, ईसर-तलवर-माडंबिअ-कोडुंबिअ-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहाइ वा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयइड्ढिसक्कारा णं ते मणुआ पण्णत्ता ।

(५) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में राजा, युवराज, ईश्वर—ऐश्वर्यशाली एवं प्रभावशाली पुरुष, तलवर—सन्तुष्ट नरपति द्वारा प्रदत्त-स्वर्णपट्ट से अलंकृत—राजसम्मानित विशिष्ट नागरिक, माडंबिक—जागीरदार—भूस्वामी, कौटुम्बिक—बड़े परिवारों के प्रमुख, इभ्य—जिनकी अधिकृत वैभव-राशि के पीछे हाथी भी छिप जाए, इतने विशाल वैभव के स्वामी, श्रेष्ठी—संपत्ति और सुव्यवहार से प्रतिष्ठा प्राप्त सेठ, सेनापति—राजा की चतुरंगिणी सेना के अधिकारी, सार्थवाह—अनेक छोटे व्यापारियों को साथ लिए देशान्तर में व्यवसाय करने वाले समर्थ व्यापारी होते हैं ?

गौतम ! ऐसा नहीं होता । वे मनुष्य ऋद्धि—वैभव तथा सत्कार आदि से निरपेक्ष होते हैं ।

(६) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे दासेइ वा, पेसेइ वा, सिस्सेइ वा, भयगेइ वा, भाइल्लएइ वा, कम्मयरएइ वा ?

णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयअभिओगा णं ते मणुआ पण्णत्ता समणाउसो !

(६) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में दास—मृत्यु पर्यन्त खरीदे हुए या गृह-दासी से उत्पन्न परिचर, प्रेष्य—दौत्यादि कार्य करने वाले सेवक, शिष्य—अनुशासनीय, शिक्षणीय व्यक्ति, भृतक—वृत्ति या वेतन लेकर कार्य करने वाले परिचारक, भागिक—भाग बँटाने वाले, हिस्सेदार तथा कर्मकर—गृह सम्बन्धी कार्य करने वाले नौकर होते हैं ?

गौतम ! ऐसा नहीं होता । वे मनुष्य स्वामि-सेवक-भाव, आज्ञापक-आज्ञाप्य-भाव आदि से अतीत होते हैं ।

(७) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे मायाइ वा, पियाइ वा, भायाइ वा, भगिणीइ वा, भज्जाइ वा, पुत्ताइ वा, धूआइ वा, सुण्हाइ वा ?

हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुआणं तिव्वे पेम्मबंधणे समुप्पज्जइ ।

(७) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में माता, पिता, भाई, वहिन, पत्नी, पुत्र, पुत्री तथा पुत्र-वधू ये सब होते हैं ?

गौतम ! ये सब वहाँ होते हैं, परन्तु उन मनुष्यों का उनमें तीव्र प्रेम-बन्ध उत्पन्न नहीं होता ।

(८) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे अरीइ वा, वेरिएइ वा, घायएइ वा, वहएइ वा, पडिणीयए वा, पच्चामित्तेइ वा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयवेराणुसया णं ते मणुआ पण्णत्ता समणाउसो !

(८) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में अरि—शत्रु, वैरिक—जाति-निबद्ध वैरोपेत—जातिप्रसूत शत्रुभावयुक्त, घातक—दूसरे के द्वारा वध करवाने वाले, वधक—स्वयं वध करने वाले अथवा व्यथक—चपेट आदि द्वारा ताडित करने वाले, प्रत्यनीक—कार्योपघातक—काम बिगाड़ने वाले तथा प्रत्यमित्र—पहले मित्र होकर बाद में अमित्र-भाव—शत्रु-भाव रखने वाले होते हैं ?

गौतम ! ऐसा नहीं होता । वे मनुष्य वैरानुबन्ध-रहित होते हैं—वैर करना, उसके फल पर पश्चात्ताप करना इत्यादि भाव उनमें नहीं होते ।

(९) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे मित्ताइ वा, वयंसाइ वा, णायएइ वा, संघाडिएइ वा, सहाइ वा, सुहीइ वा, संगएइ वा ?

हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुआणं तिव्वे राग-बंधणे समुप्पज्जइ ।

(९) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में मित्र—स्नेहास्पद व्यक्ति, वयस्य—समवयस्क साथी, ज्ञातक—प्रगाढतर स्नेहयुक्त स्वजातीय जन अथवा सहज परिचित व्यक्ति, संघाटिक—सहचर, सखा—एक साथ खाने-पीने वाले प्रगाढतम स्नेहयुक्त मित्र, सुहृद्—सब समय साथ देने वाले, हित चाहने वाले, हितकर शिक्षा देने वाले साथी, सांगतिक—साथ रहने वाले मित्र होते हैं ?

गौतम ! ये सब वहाँ होते हैं, परन्तु उन मनुष्यों का उनमें तीव्र राग-बन्धन उत्पन्न नहीं होता ।

(१०) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे आवाहाइ वा, विवाहाइ वा, जण्णाइ वा, सद्धाइ वा, थालीपागाइ वा, मियपिंड-निवेदणाइ वा ?

णो इणट्ठे समट्ठे, ववगय- आवाह-विवाह-जण्ण-सद्ध-थालीपाक-मियपिंड-निवेदणाइ वा णं ते मणुआ पण्णत्ता समणाउसो !

(१०) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में आवाह—विवाह से पूर्व ताम्बूल-दानोत्सव अथवा वाग्दान रूप उत्सव, विवाह—परिणयोत्सव, यज्ञ—प्रतिदिन अपने-अपने इष्ट-देव की पूजा,

श्राद्ध—पितृ-क्रिया, स्थालीपाक—लोकानुगत मृतक-क्रिया-विशेष तथा मृत-पिण्ड-निवेदन—मृत पुरुषों के लिए श्मशानभूमि में तीसरे दिन, नौवें दिन आदि पिंड-समर्पण—ये सब होते हैं ?

आयुष्मन् श्रमण गौतम ! ये सब नहीं होते। वे मनुष्य आवाह, विवाह, यज्ञ, श्राद्ध, स्थालीपाक तथा मृत-पिंड-निवेदन से निरपेक्ष होते हैं।

(११) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे इंदमहाइ वा, खंदमहाइ वा, णागमहाइ वा, जक्खमहाइ वा, भूअमहाइ वा, अगडमहाइ वा, तडागमहाइ वा, दहमहाइ वा, णदीमहाइ वा, रुक्खमहाइ वा, पव्वयमहाइ वा, थूभमहाइ वा, चेइयमहाइ वा ?

णो इणट्ठे समट्ठे, ववगय-महिमा णं ते मणुआ पण्णत्ता।

(११) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में इन्द्रोत्सव, स्कन्दोत्सव—कार्त्तिकेयोत्सव, नागोत्सव, यक्षोत्सव, कूपोत्सव, तडागोत्सव, द्रहोत्सव, नद्युत्सव, वृक्षोत्सव, पर्वतोत्सव, स्तूपोत्सव तथा चैत्योत्सव—ये सब होते हैं ?

गौतम ! ये नहीं होते। वे मनुष्य उत्सवों से निरपेक्ष होते हैं।

(१२) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए णड-पेच्छाइ वा, णट्ट-पेच्छाइ वा, जल्ल-पेच्छाइ वा, मल्ल-पेच्छाइ वा, मुट्ठिअ-पेच्छाइ वा, वेलंबग-पेच्छाइ वा, कहग-पेच्छाइ वा, पवग-पेच्छाइ वा, लासग-पेच्छाइ वा ?

णो इणट्ठे समट्ठे, ववगय-कोउहल्ला णं ते मणुआ पण्णत्ता समणाउसो !

(१२) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में नट—नाटक दिखाने वालों, नर्तक—नाचने वालों, जल्ल—कलाबाजों—रस्सी आदि पर चढ़कर कला दिखाने वालों, मल्ल—पहलवानों, मौष्टिक—मुक्केबाजों, विडंबक—विदूषकों—मसखरों, कथक—कथा कहने वालों, प्लवक—छलांग लगाने या नदी आदि में तैरने का प्रदर्शन करने वालों, लासक—वीर रस की गाथाएँ या रास गाने वालों के कौतुक—तमाशे देखने हेतु लोग एकत्र होते हैं ?

आयुष्मन् श्रमण गौतम ! ऐसा नहीं होता। क्योंकि उन मनुष्यों के मन में कौतूहल देखने की उत्सुकता नहीं होती।

(१३) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे सगडाइ वा, रहाइ वा, जाणाइ वा, जुग्गाइ वा, गिल्लीइ वा, थिल्लीइ वा, सीआइ वा, संदमाणिआइ वा ?

णो इणट्ठे समट्ठे, पायचार-विहारा णं ते मणुआ पण्णत्ता समणाउओ !

(१३) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में शकट—बैलगाड़ी, रथ, यान—दूसरे वाहन, युग्य—पुरातनकालीन गोल्ल देश में सुप्रसिद्ध दो हाथ लम्बे चौड़े डोली जैसे यान, गिल्लि—दो पुरुषों द्वारा उठाई जाने वाली डोली, थिल्लि—दो घोड़ों या खच्चरों द्वारा खींची जाने वाली बग्घी, शिविका—पर्देदार पालखियाँ तथा स्यन्दमानिका—पुरुष-प्रमाण पालखियाँ—ये सब होते हैं ?

आयुष्मन् श्रमण गौतम ! ऐसा नहीं होता, क्योंकि वे मनुष्य पादचारविहारी—पैदल चलने की प्रवृत्ति वाले होते हैं।

(१४) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे गावीइ वा, महिसीइ वा, अयाइ वा, एलगाइ वा ?

हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुआणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ।

(१४) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में गाय, भैंस, अजा—वकरी, एडका—भेड़—ये सव पशु होते हैं ?

गौतम ! ये पशु होते हैं किन्तु उन मनुष्यों के उपयोग में नहीं आते ।

(१५) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे आसाइ वा, हत्थीइ वा, उट्टाइ वा, गोणाइ वा, गवयाइ वा, अयाइ वा, एलगाइ वा, पसयाइ वा, मिआइ वा, वराहाइ वा, रुरुत्ति वा, सरभाइ वा, चमराइ वा, सवराइ वा, कुरंगाइ वा, गोकण्णाइ वा ?

हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ।

(१५) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में घोड़, हाथी, ऊँट, गाय, गवय—वनैली गाय, वकरी, भेड़, प्रश्रय—दो खुरों के जंगली पशु, मृग—हरिण, वराह—सूअर, रुरु—मृगविशेष, शरभ—अष्टापद, चँवर—जंगली गायें, जिनकी पूंछों के वालों से चंवर वनते हैं, शवर—सांभर, जिनके सींगों से अनेक श्रृंगात्मक शाखाएँ निकलती हैं, कुरंग—मृग-विशेप तथा गोकर्ण—मृग-विशेष—ये होते हैं ?

गौतम ! ये होते हैं, किन्तु उन मनुष्यों के उपयोग में नहीं आते ।

(१६) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे सीहाइ वा, वग्घाइ वा, विगदीविगअच्छतर-च्छसिआलविडालसुणगकोकंतियकोलसुणगाइ वा ?

हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुआणं आवाहं वा वावाहं वा छविच्छेअं वा उप्पायेंति, पगइभद्दया णं ते सावयगणा पण्णत्ता समणाउसो !

(१६) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में सिंह, व्याघ्र—वाघ, वृक—भेड़िया, द्वीपिक—चीते, ऋच्छ—भालू, तरक्ष—मृगभक्षी व्याघ्र विशेष, शृगाल—गीदड़, विडाल—विलाव, शुनक—कुत्ते, कोकन्तिक—लोमड़ी, कोलशुनक—जंगली कुत्ते या सूअर—ये सव होते हैं ?

आयुष्मन् श्रमण गौतम ! ये सव होते हैं, पर वे उन मनुष्यों को आवाधा—ईषद् वाधा, जरा भी वाधा, व्यावाधा—विशेप वाधा नहीं पहुंचाते और न उनका छविच्छेद—न अंग-भंग ही करते हैं अथवा न उनकी चमड़ी नोचकर उन्हें विकृत वना देते हैं। क्योंकि वे श्वापद—जंगली जानवर प्रकृति से भद्र होते हैं ।

(१७) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे सालीइ वा, वीहिगोहूमजवजवजवाइ वा, कलायमसूर-मग्गमासतिलकुलत्थणिप्फावआलिसंदगअयसिकुसुंभकोद्दवकंगुवरगरालगसणसरिसवमूलग-वीआइ वा ?

हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुआणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ।

(१७) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में शाली—कलम जाति के चावल, व्रीहि—व्रीहि जाति के चावल, गोधूम—गेहूँ, यव—जौ, यवयव—विशेष जाति के जौ, कलाय—गोल चने—मटर,

मसूर, मूँग, उड़द, तिल, कुलथी, निष्पाव—वल्ल, आलिसंदक—चौला, अलसी, कुसुम्भ, कोद्रव—कोदों, कंगु—बड़े पीले चावल, वरक, रालक—छोटे पीले चावल, सण—धान्य विशेष, सरसों, मूलक—मूली आदि जमीकंदों के बीज—ये सब होते हैं ?

गौतम ! ये होते हैं, पर उन मनुष्यों के उपयोग में नहीं आते ।

(१८) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरए वासे गुड्डाइ वा, दरीओवायपवायविसमविज्जलाइ वा ?

णो इणट्ठे समट्ठे, तीसे समाए भरहे वासे बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा० ।

(१८) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में गर्त—गड्ढे, दरी—कन्दराएँ, अवपात—ऐसे गुप्त खड्डे जहाँ प्रकाश में चलते हुए भी गिरने की आशंका बनी रहती है, प्रपात—ऐसे स्थान, जहाँ से व्यक्ति मन में कोई कामना लिए भृगु-पतन करे—गिरकर प्राण दे दे, विषम—जिन पर चढ़ना-उतरना कठिन हो, ऐसे स्थान, विज्जल—चिकने कर्दममय स्थान—ये सब होते हैं ?

गौतम ! ऐसा नहीं होता । उस समय भरतक्षेत्र में बहुत समतल तथा रमणीय भूमि होती है । वह मुरज के ऊपरी भाग आदि की ज्यों एक समान होती है ।

(१९) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे खाणूइ वा, कंटगतणयकयवराइ वा, पत्तकयवराइ वा ?

णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयखाणुकंटगतणकयवरपत्तकयवरा णं सा समा पण्णत्ता ।

(१९) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में स्थाणु—ऊर्ध्वकाष्ठ—शाखा, पत्र आदि से रहित वृक्ष—ठूंठ, कांटे, तृणों का कचरा तथा पत्तों का कचरा—ये होते हैं ।

गौतम ! ऐसा नहीं होता । वह भूमि स्थाणु, कंकट, तृणों के कचरे तथा पत्तों के कचरे से रहित होती है ।

(२०) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे डंसाइ वा, मसगाइ वा, जूआइ वा, लिक्खाइ वा, ढिंकुणाइ वा, पिसुआइ वा ?

णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयडंसमसगजूअलिक्खढिंकुणपिसुआ उवद्दवविरहिआ णं सा समा पण्णत्ता ।

(२०) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में डांस, मच्छर, जूएँ, लीखें, खटमल तथा पिस्सू होते हैं ?

गौतम ! ऐसा नहीं होता । वह भूमि डांस, मच्छर, जूं, लीख, खटमल तथा पिस्सू-वर्जित एवं उपद्रव-विरहित होती है ।

(२१) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे अहीइ वा अयगराइ वा ?

हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुआणं आबाहं वा, (वाबाहं वा, छविच्छेअं वा उप्पायेंति,) पगइभद्दया णं ते वालगगणा पण्णत्ता ।

(२१) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में साँप और अजगर होते हैं ?

गौतम ! होते हैं, पर वे मनुष्यों के लिए आबाधाजनक, (व्याबाधाजनक तथा दैहिक पीडा व विकृतिजनक) नहीं होते । वे सर्प, अजगर (आदि सरीसृप जातीय—रेंगकर चलने वाले जीव) प्रकृति से भद्र होते हैं ।

(२२) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे डिंवाइ वा, डमराइ वा, कलहबोलखारवइर-महाजुद्धाइ वा, महासंगामाइ वा, महासत्थपडणाइ वा, महापुरिसपडणाइ वा, महारुहिरणिवडणाइ वा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयवेराणुबंधा णं ते मणुआ पण्णत्ता ।

(२२) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में डिम्बभय—भयावह स्थिति, डमर—राष्ट्र में आभ्यन्तर, बाह्य उपद्रव, कलह—वाग्युद्ध, बोल—अनेक आर्त व्यक्तियों का चीत्कार, क्षार—खार, पारस्परिक ईर्ष्या, वैर—असहनशीलता के कारण हिंस्य-हिंसक भाव, तदुन्मुख अध्यवसाय, महायुद्ध—व्यूह-रचना तथा व्यवस्थावर्जित महारण, महासंग्राम—व्यूह-रचना एवं व्यवस्थायुक्त महारण, महाशस्त्र-पतन—नागबाण, तामसबाण, पवनबाण, अग्निबाण आदि दिव्य अस्त्रों का प्रयोग तथा महापुरुष-पतन—छत्रपति आदि विशिष्ट पुरुषों का वध, महारुधिर-निपतन—छत्रपति आदि विशिष्ट जनों का रक्त-प्रवाह—खून बहाना—ये सब होते हैं ?

गौतम ! ऐसा नहीं होता । वे मनुष्य वैरानुबन्ध—शत्रुत्व के संस्कार से रहित होते हैं ।

(२३) अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे दुब्भूआणि वा, कुलरोगाइ वा, गामरोगाइ वा, मंडलरोगाइ वा, पोट्टरोगाइ वा, सीसवेअणाइ वा, कण्णोट्ठअच्छिणहदंतवेअणाइ वा, कासाइ वा, सासाइ वा, सोसाइ वा, दाहाइ वा, अरिसाइ वा, अजीरगाइ वा, दओदराइ वा, पंडुरोगाइ वा, भगंदराइ वा, एगाहिआइ वा, बेआहिआइ वा, तेआहिआइ वा, चउत्थाहिआइ वा, इंदग्गहाइ वा, धणुग्गहाइ वा, खंदग्गहाइ वा, जक्खग्गहाइ वा, भूअग्गहाइ वा, मत्थसूलाइ वा, हिअयसूलाइ वा, पोट्टसूलाइ वा, कुच्छिसूलाइ वा, जोणिसूलाइ वा, गाममारीइ वा, (आगरमारीइ वा, णयरमारीइ वा, णिगममारीइ वा, रायहाणीमारीइ वा, खेडमारीइ वा, कब्बडमारीइ वा, मडंबमारीइ वा, दोणमुहमारीइ वा, पट्टणमारीइ वा, आसममारीइ वा, संवाहमारीइ वा,) सण्णिवेसमारीइ वा, पाणिक्खया, जणक्खया, वसणब्भूअमणारिआ ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयरोगायंका णं ते मणुआ पण्णत्ता समणाउसो !

(२३) भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में दुर्भूत—मनुष्य या धान्य आदि के लिए उपद्रव हेतु, चूहों टिड्डियों आदि द्वारा उत्पादित ईति[1]—संकट, कुल-रोग—कुलक्रम से आये हुए रोग, ग्राम-रोग—गाँव भर में व्याप्त रोग, मंडल-रोग—ग्रामसमूहात्मक भूभाग में व्याप्त रोग, पोट्ट-रोग—पेट सम्बन्धी रोग, शीर्ष-वेदना—मस्तक-पीडा, कर्ण-वेदना, ओष्ठ-वेदना, नेत्र-वेदना, नख-वेदना, दंत-वेदना, खांसी, श्वास-रोग, शोष—क्षय—तपेदिक, दाह—जलन, अर्श—गुदांकुर—बवासीर, अजीर्ण, जलोदर, पांडु रोग—पीलिया, भगन्दर, एक दिन से आने वाला ज्वर, दो दिन से आने वाला ज्वर,

---

१. अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषिकाः शलभाः शुकाः ।
अत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः ॥

तीन दिन से आने वाला ज्वर, चार दिन से आने वाला ज्वर, इन्द्रग्रह, धनुर्ग्रह, स्कन्दग्रह, कुमारग्रह, यक्षग्रह, भूतग्रह आदि उन्मत्तता हेतु व्यन्तरदेव कृत उपद्रव, मस्तक-शूल, हृदय-शूल, कुक्षि-शूल, योनि-शूल, गाँव, (आकर, नगर, निगम, राजधानी, खेट, कर्वट, मडम्ब, द्रोणमुख, पट्टन, आश्रम, सम्वाध,) सन्निवेश—इन में मारि—किसी विशेष रोग द्वारा एक साथ वहुत से लोगों की मृत्यु, जन-जन के लिए व्यसनभूत—आपत्तिमय, अनार्य—पापात्मक, प्राणि-क्षय—महामारि आदि द्वारा गाय, बैल आदि प्राणियों का नाश, जन-क्षय—मनुष्यों का नाश, कुल-क्षय—वंश का नाश—ये सब होते हैं ?

आयुष्मन् गौतम ! वे मनुष्य रोग—कुष्ट आदि चिरस्थायी वीमारियों तथा आतंक—शीघ्र प्राण लेने वाली शूल आदि बीमारियों से रहित होते हैं ।

मनुष्यों की आयु

३२. (१) तीसे णं भंते ! समाए भारहे वासे मणुआणं केवइअं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं देसूणाइं तिण्णि पलिओवमाइं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं ।

[३२] (१) भगवन् ! उस समय भरतक्षेत्र में मनुष्यों की स्थिति—आयुष्य कितने काल का होता है ?

गौतम ! उस समय उनका आयुष्य जघन्य—कम से कम कुछ कम तीन पल्योपम का तथा उत्कृष्ट—अधिक से अधिक तीन पल्योपम का होता है ।

(२) तीसे णं भंते ! समाए भारहे वासे मणुआणं सरीरा केवइअं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं देसूणाइं तिण्णि गाउआइं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउआइं ।

(२) भगवन् ! उस समय भरतक्षेत्र में मनुष्यों के शरीर कितने ऊँचे होते हैं ?

गौतम ! उनके शरीर जघन्यतः कुछ कम तीन कोस तथा उत्कृष्टतः तीन कोस ऊँचे होते हैं ।

(३) ते णं भंते ! मणुआ किंसंघयणी पण्णत्ता ?

गोयमा ! वइरोसभणारायसंघयणी पण्णत्ता ।

(३) भगवन् ! उन मनुष्यों का संहनन कैसा होता है ?

गौतम ! वे वज्र-ऋषभ-नाराच-संहनन युक्त होते हैं ।

(४) तेसि णं भंते ! मणुआणं सरीरा किंसंठिआ पण्णत्ता ?

गोयमा ! समचउरंससंठाणसंठिआ पण्णत्ता । तेसि णं मणुआणं बेछप्पण्णा पिट्ठकरंडयसया पण्णत्ता समणाउसो !

(४) भगवन् ! उन मनुष्यों का दैहिक संस्थान कैसा होता है ?

आयुष्मन् गौतम ! वे मनुष्य सम-चौरस-संस्थान-संस्थित होते हैं । उनके पसलियों की दो सौ छप्पन हड्डियाँ होती हैं ।

(५) ते णं भंते ! मणुआ कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छन्ति, कहिं उववज्जंति ?

गोयमा ! छम्मासावसेसाउ जुअलगं पसवंति, एगूणपण्णं राइंदिआइं सारक्खंति,

संगोवेंति; संगोवेत्ता, कासित्ता, छीइत्ता, जंभाइत्ता, अक्किट्ठा, अव्वहिआ, अपरिआविआ कालमासे कालं किच्चा देवलोएसु उववज्जंति, देवलोअपरिग्गहा णं ते मणुआ पण्णत्ता।

(५) भगवन्! वे मनुष्य अपना आयुष्य पूरा कर—मृत्यु प्राप्त कर कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं?

गौतम! जब उनका आयुष्य छह मास बाकी रहता है, वे युगल—एक बच्चा, एक बच्ची उत्पन्न करते हैं। उनपचास दिन-रात उनकी सार-सम्हाल करते हैं—पालन-पोषण करते हैं, संगोपन—संरक्षण करते हैं। यों पालन तथा संगोपन कर वे खाँस कर, छींक कर, जम्हाई लेकर शारीरिक कष्ट, व्यथा तथा परिताप का अनुभव नहीं करते हुए काल-धर्म को प्राप्त होकर—मर कर स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं। उन मनुष्यों का जन्म स्वर्ग में ही होता है, अन्यत्र नहीं।

(६) तीसे णं भंते! समाए भारहे वासे कइविहा मणुस्सा अणुसज्जित्था?

गोयमा! छव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—पम्हगंधा १, मिअगंधा २, अममा ३, तेअतली ४, सहा ५, सणिचारी ६।

(६) भगवन्! उस समय भरतक्षेत्र में कितने प्रकार के मनुष्य होते हैं?

गौतम! छह प्रकार के मनुष्य कहे गये हैं— १. पद्मगन्ध—कमल के समान गंध वाले, २. मृगगंध—कस्तूरी सदृश गंध वाले, ३. अमम—ममत्वरहित, ४. तेजस्वी, ५. सह—सहनशील तथा ६. शनैश्चारी—उत्सुकता न होने से धीरे-धीरे चलने वाले।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में यौगलिकों की आयु जघन्य—कम से कम कुछ कम तीन पल्योपम तथा उत्कृष्ट—अधिक से अधिक तीन पल्योपम जो कही गई है, वहाँ यह ज्ञातव्य है कि जघन्य कुछ कम तीन पल्योपम आयुष्य-परिमाण यौगलिक स्त्रियों से सम्बद्ध है।

यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि यौगलिक के आगे के भव का आयुष्य-बन्ध उनकी मृत्यु से छः मास पूर्व होता है, जब वे युगल को जन्म देते हैं।

अवसर्पिणी : सुषमा आरक

३३. तीसे णं समाए चउहिं सागरोवम-कोडाकोडीहिं काले वीइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं, अणंतेहिं गंधपज्जवेहिं, अणंतेहिं रसपज्जवेहिं, अणंतेहिं फासपज्जवेहिं, अणंतेहिं संघयणपज्जवेहिं, अणंतेहिं संठाणपज्जवेहिं, अणंतेहिं उच्चत्तपज्जवेहिं, अणंतेहिं आउपज्जवेहिं, अणंतेहिं गुरुलहुपज्जवेहिं, अणंतेहिं अगुरुलहुपज्जवेहिं, अणंतेहिं उट्ठाणकम्मबलवीरिअपुरिसक्कारपरक्कमपज्जवेहिं, अणंतगुण-परिहाणीए परिहायमाणे परिहायमाणे एत्थ णं सुसमा णामं समाकाले पडिवज्जिसु समणाउसो!

जंबूद्दीवे णं भंते! दीवे इमीसे ओसप्पिणीए सुसमाए समाए उत्तम-कट्ठपत्ताए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे होत्था?

गोयमा! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा तं चेव जं सुसमसुसमाए पुव्ववण्णिअं, णवरं णाणत्तं चउधणुसहस्समूसिआ, एगे अट्ठावीसे पिट्ठकरंडकसए,

छट्ठभत्तस्स आहारट्ठे, चउसट्ठिं राइंदिआइं सारक्खंति, दो पलिओवमाइं आऊ सेसं तं चेव। तीसे णं समाए चउव्विहा मणुस्सा अणुसज्जित्था, तंजहा—एका १, पउरजंघा २, कुसुमा ३, सुसमणा ४।

[३३] आयुष्मन् श्रमण गौतम ! उस समय का—उस आरक का—प्रथम आरक का जब चार सागर कोडा-कोडी काल व्यतीत हो जाता है, तब अवसर्पिणी काल का सुषमा नामक द्वितीय आरक प्रारम्भ हो जाता है। उसमें अनन्त वर्ण-पर्याय, अनन्त गंध-पर्याय, अनन्त रस-पर्याय, अनन्त स्पर्श-पर्याय, अनन्त संहनन-पर्याय, अनन्त संस्थान-पर्याय, अनन्त उच्चत्व-पर्याय, अनन्त आयु-पर्याय, अनन्त गुरु-लघु-पर्याय, अनन्त अगुरु-लघु-पर्याय, अनन्त उत्थान-कर्म-बल-वीर्य-पुरुषाकार-पराक्रम-पर्याय—इनका अनन्तगुण परिहानि-क्रम से ह्रास होता जाता है।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत इस अवसर्पिणी के सुषमा नामक आरक में उत्कृष्टता की पराकाष्ठा-प्राप्त समय में भरतक्षेत्र का कैसा आकार स्वरूप होता है ?

गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय होता है। मुरज के ऊपरी भाग जैसा समतल होता है। सुषम-सुषमा के वर्णन में जो कथन किया गया है, वैसा ही यहाँ जानना चाहिए। उससे इतना अन्तर है—उस काल के मनुष्य चार हजार धनुष की अवगाहना वाले होते हैं, उनके शरीर की ऊँचाई दो कोस होती है। उनकी पसलियों की हड्डियां एक सौ अट्ठाईस होती हैं। दो दिन बीतने पर उन्हें भोजन की इच्छा होती है। वे अपने यौगलिक बच्चों की चौसठ दिन तक सार-सम्हाल करते हैं—पालन-पोषण करते हैं, सुरक्षा करते हैं। उनकी आयु दो पल्योपम की होती है। शेष सब उसी प्रकार है, जैसा पहले वर्णन आया है। उस समय चार प्रकार के मनुष्य होते हैं—१. एक—प्रवर-श्रेष्ठ, २. प्रचुरजंघ—पुष्ट जंघा वाले, ३. कुसुम—पुष्प के सदृश सुकुमार, ४. सुशमन—अत्यन्त शान्त।

अवसर्पिणी : सुषमा-दुःषमा

३४. तीसे णं समाए तिहिं सागरोवमकोडाकोडीहिं काले वीइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं, (अणंतेहिं गंधपज्जवेहिं, अणंतेहिं रसपज्जवेहिं, अणंतेहिं फासपज्जवेहिं, अणंतेहिं संघयणपज्जवेहिं, अणंतेहिं संठाणपज्जवेहिं, अणंतेहिं उच्चत्तपज्जवेहिं, अणंतेहिं आउपज्जवेहिं, अणंतेहिं गुरुलहुपज्जवेहिं, अणंतेहिं अगुरु-लहु-पज्जवेहिं, अणंतेहिं उट्ठाणकम्मबलवीरिअपुरिसक्कारपरक्कमपज्जवेहिं,) अणंतगुण-परिहाणीए परिहायमाणो २, एत्थ णं सुसमदुस्समाणामं समा पडिवज्जिसु। समणाउसो ! सा णं समा तिहा विभज्जइ तंजहा—पढमे तिभाए १, मज्झिमे तिभाए २, पच्छिमे तिभाए ३।

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे, इमीसे ओसप्पिणीए सुसमदुस्समाए समाए पढममज्झिमेसु तिभाएसु भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे ? पुच्छा।

गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था, सो चेव गमो णेअव्वो णाणत्तं दो धणुसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं। तेसिं च मणुआणं चउसट्ठिपिट्ठकरंडगा, चउत्थभत्तस्स आहारत्थे समुप्पज्जइ, ठिई पलिओवमं, एगूणासीइं राइंदिआइं सारक्खंति, संगोवेंति, (कासित्ता, छीइत्ता, जंभाइत्ता, अक्किट्ठा, अव्वहिआ, अपरिआविआ कालमासे कालं किच्चा देवलोएसु उववज्जंति) देवलोगपरिग्गहिआ णं ते मणुआ पण्णत्ता समणाउसो !

तीसे णं भंते ! समाए पच्छिमे तिभाए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे होत्था ?

गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव[1] मणीहिं उवसोभिए, तंजहा—कित्तमेहिं चेव अकित्तिमेहिं चेव ।

तीसे णं भंते ! समाए पच्छिमे तिभागे भरहे वासे मणुआणं केरिसए आयारभावपडोआरे होत्था ?

गोयमा ! तेसिं मणुआणं छव्विहे संघयणे, छव्विहे संठाणे, बहूणि धणुसयाणि उड्ढं उच्चत्तेणं, जहण्णेणं संखिज्जाणि वासाणि, उक्कोसेणं असंखिज्जाणि वासाणि आउअं पालंति, पालित्ता अप्पेगइया णिरयगामी, अप्पेगइया तिरिअगामी, अप्पेगइया मणुस्सगामी, अप्पेगइया देवगामी, अप्पेगइया सिज्झंति, (बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वायंति,) सव्वदुक्खाणमंतं करेंति ।

[३४] आयुष्मन् श्रमण गौतम ! उस समय का—उस आरक का—द्वितीय आरक का तीन सागरोपम कोडाकोडी काल व्यतीत हो जाता है, तब अवसर्पिणी-काल का सुषम-दुःषमा नामक तृतीय आरक प्रारम्भ होता है । उसमें अनन्त वर्ण-पर्याय, (अनन्त गंध-पर्याय, अनन्त रस-पर्याय, अनन्त स्पर्श-पर्याय, अनन्त संहनन-पर्याय, अनन्त संस्थान-पर्याय, अनन्त उच्चत्व-पर्याय, अनन्त आयु-पर्याय, अनन्त गुरु-लघु-पर्याय, अनन्त अगुरु-लघु-पर्याय, अनन्त उत्थान-कर्म-बल-वीर्य-पुरुषकार-पराक्रम-पर्याय)—इनका अनन्त गुण परिहानि-क्रम से ह्रास होता जाता है ।

उस आरक को तीन भागों में विभक्त किया गया है—१. प्रथम त्रिभाग, २. मध्यम त्रिभाग, ३. पश्चिम त्रिभाग—अंतिम त्रिभाग ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में इस अवसर्पिणी के सुषम-दुषमा आरक के प्रथम तथा मध्यम त्रिभाग का आकार—स्वरूप कैसा है ?

आयुष्मन् श्रमण गौतम ! उस का भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय होता है । उसका पूर्ववत् वर्णन जानना चाहिए । अन्तर इतना है—उस समय के मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई दो हजार धनुष होती है । उनकी पसलियों की हड्डियाँ चौसठ होती हैं । एक दिन के बाद उन में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है । उनका आयुष्य एक पल्योपम का होता है, ७९ रात-दिन अपने यौगलिक शिशुओं की वे सार-सम्हाल—पालन पोषण करते हैं, सुरक्षा करते हैं । (वे खाँसकर, छींककर, जम्हाई लेकर शारीरिक कष्ट, व्यथा तथा परिताप अनुभव नहीं करते हुए काल-धर्म को प्राप्त होकर—मर कर स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं) । उन मनुष्यों का जन्म स्वर्ग में ही होता है ।

भगवन् ! उस आरक के पश्चिम त्रिभाग में—आखिरी तीसरे हिस्से में भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा होता है ?

गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल तथा रमणीय होता है । वह मुरज के ऊपरी भाग जैसा समतल होता है । वह यावत् कृत्रिम एवं अकृत्रिम मणियों से उपशोभित होता है ।

भगवन् ! उस आरक के अंतिम तीसरे भाग में भरतक्षेत्र में मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा होता है ?

१. देखें सूत्र संख्या ६

गौतम ! उन मनुष्यों के छहों प्रकार के संहनन होते है, छहों प्रकार के संस्थान होते हैं। उनके शरीर की ऊँचाई सैकड़ों धनुष-परिमाण होती है। उनका आयुष्य जघन्यत: संख्यात वर्षों का तथा उत्कृष्टत: असंख्यात वर्षों का होता है। अपना आयुष्य पूर्ण कर उनमें से कई नरक-गति में, कई तिर्यंच-गति में, कई मनुष्य-गति में, कई देव-गति में उत्पन्न होते हैं और सिद्ध होते हैं, (बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वृत्त होते हैं,) समग्र दुःखों का अन्त करते हैं।

कुलकर-व्यवस्था

३५. तीसे णं समाए पच्छिमे तिभाए पलिओवमट्ठभागावसेसे एत्थ णं इमे पण्णरस कुलगरा समुप्पज्जित्था, तंजहा—सुमई १, पडिस्सुई २, सीमंकरे ३, सीमंधरे ४, खेमंकरे ५, खेमंधरे ६, विमलवाहणे ७, चक्खुमं ८, जसमं ९, अभिचंदे १०, चंदाभे ११, पसेणई १२, मरुदेवे १३, णाभी १४, उसमे १५, त्ति।

[३५] उस आरक के अंतिम तीसरे भाग के समाप्त होने में जब एक पल्योपम का आठवां भाग अवशिष्ट रहता है तो ये पन्द्रह कुलकर-विशिष्ट बुद्धिशाली पुरुष उत्पन्न होते हैं—१. सुमति, २. प्रतिश्रुति, ३. सीमंकर, ४. सीमन्धर, ५. क्षेमंकर, ६. क्षेमंधर, ७. विमलवाहन, ८. चक्षुष्मान्, ९. यशस्वान्, १०. अभिचन्द्र, ११. चन्द्राभ, १२. प्रसेनजित्, १३. मरुदेव, १४. नाभि, १५. ऋषभ।

३६. तत्थ णं सुमई १, पडिस्सुई २, सीमंकरे ३, सीमंधरे ४, खेमंकरे ५—णं एतेसिं पंचण्हं कुलगराणं हक्कारे णामं दंडणीई होत्था।

ते णं मणुआ हक्कारेणं दंडेणं हया समाणा लज्जिआ, विलज्जिआ, वेड्डा, भीआ, तुसिणीआ, विणओणया चिट्ठंति।

तत्थ णं खेमंधर ६, विमलवाहण ७, चक्खुमं ८, जसमं ९, अभिचंदाणं १०—एतेसिं पंचण्हं कुलगराणं मक्कारे णामं दंडणीई होत्था।

ते णं मणुआ मक्कारेणं दंडेणं हया समाणा (लज्जिआ, विलज्जिआ, वेड्डा, भीआ, तुसिणीआ, विणओणया) चिट्ठंति।

तत्थ णं चंदाभ ११, पसेणइ १२, मरुदेव १३, णाभि १४, उसभाणं १५—एतेसि णं पंचण्हं कुलगराणं धिक्कारे णामं दंडणीई होत्था।

ते णं मणुआ धिक्कारेणं दंडेणं हया समाणा जाव[1] चिट्ठंति।

[३६] उन पन्द्रह कुलकरों में से सुमति, प्रतिश्रुति, सीमंकर, सीमन्धर तथा क्षेमंकर—इन पांच कुलकरों की हकार नामक दंड-नीति होती है।

वे (उस समय के) मनुष्य हकार—"हा, यह क्या किया" इतने कथन मात्र रूप दंड से अभिहत होकर लज्जित, विलज्जित—विशेष रूप से लज्जित, व्यर्द्ध—अतिशय लज्जित, भीतियुक्त, तूष्णीक—निःशब्द—चुप तथा विनयावनत हो जाते हैं।

---

१. देखें सूत्र यही

उनमें से छठे क्षेमंधर, सातवें विमलवाहन, आठवें चक्षुष्मान्, नौवें यशस्वान् तथा दशवें अभिचन्द्र—इन पाँच कुलकरों की मकार नामक दण्डनीति होती है।

वे (उस समय के) मनुष्य मकार—'मा कुरु'—ऐसा मत करो—इस कथन रूप दण्ड से (लज्जित, विलज्जित, व्यर्द्ध, भीत, तूष्णीक तथा विनयावनत) हो जाते हैं।

उनमें से ग्यारहवें चन्द्राभ, बारहवें प्रसेनजित्, तेरहवें मरुदेव, चौदहवें नाभि तथा पन्द्रहवें ऋषभ—इन पाँच कुलकरों की धिक्कार नामक नीति होती है।

वे (उस समय के) मनुष्य 'धिक्कार'—इस कर्म के लिए तुम्हें धिक्कार है, इतने कथनमात्र रूप दण्ड से अभिहत होकर लज्जित हो जाते हैं।

विवेचन—हकार, मकार एवं धिक्कार, इन तीन दण्डनीतियों के कथन से स्पष्ट है कि जैसे-जैसे काल व्यतीत होता जाता है, वैसे-वैसे मनुष्यों की मनोवृत्ति में परिवर्तन होता जाता है और अधिकाधिक कठोर दण्ड की व्यवस्था करनी पड़ती है।

प्रथम तीर्थंकर भ० ऋषभ : गृहवास : प्रव्रज्या

३७. णाभिस्स णं कुलगरस्स मरुदेवाए भारिआए कुच्छिंसि एत्थ णं उसहे णामं अरहा कोसलिए पढमराया, पढमजिणे, पढमकेवली, पढमतित्थगरे, पढमधम्मवरचाउरंत-चक्कवट्टी समुप्पज्जित्था। तए णं उसभे अरहा कोसलिए वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसइ, वसित्ता तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्झे वसइ। तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्झे वसमाणे लेहाइआओ, गणिअप्पहाणाओ, सउणरुअपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ चोसट्ठिं महिलागुणे सिप्पसयं च कम्माणं तिण्णिवि पयाहिआए उवदिसइ। उवदिसित्ता पुत्तसयं रज्जसए अभिसिंचइ। अभिसिंचित्ता तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्झे वसइ। वसित्ता जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले, तस्स णं चित्तबहुलस्स णवमीपक्खेणं दिवसस्स पच्छिमे भागे चइत्ता हिरण्णं, चइत्ता सुवण्णं, चइत्ता कोसं, कोट्ठागारं, चइत्ता बलं, चइत्ता वाहणं, चइत्ता पुरं, चइत्ता अंतेउरं, चइत्ता विउलधणकणगरयणमणिमोत्तिअसंखसिलप्पवालरत्तरयणसंतसारसावइज्जं विच्छड्डियित्ता, विगोवइत्ता दायं दाइआणं परिभाएत्ता सुदंसणाए सीआए सदेवमणुआसुराए परिसाए समणुगम्ममाणमग्गे संखिअ-चक्किअ-णंगलिअ-मुहमंगलिअ-पूसमाणव-वद्धमाणग-आइक्खग-लंख-मंख-घंटिअगणेहिं ताहिं इट्ठाहिं, कंताहिं, पियाहिं, मणुण्णाहिं, मणामाहिं, उरालाहिं, कल्लाणाहिं, सिवाहिं, धन्नाहिं, मंगल्लाहिं, सस्सिरिआहिं, हियगमणिज्जाहिं, हिययपल्हायणिज्जाहिं, कण्णमणणिव्वुइकराहिं, अपुणरुत्ताहिं, अट्ठसइआहिं वग्गूहिं अणवरयं अभिणंदंता य अभिथुणंता य एवं वयासी—जय जय नंदा! जय जय भद्दा! धम्मेणं अभीए परीसहोवसग्गाणं, खंतिखमे भयभेरवाणं, धम्मे ते अविग्घं भवउ त्ति कट्टु अभिणंदंति अ अभिथुणंति अ।

तए णं उसभे अरहा कोसलिए णयणमालासहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे २ एवं (हिययमालासहस्सेहिं अभिणंदिज्जमाणे अभिणंदिज्जमाणे, उन्नइज्जमाणे मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे

विच्छिप्पमाणे, वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे अभिथुव्वमाणे, कंति-सोहग्गगुणेहिं पत्थिज्जमाणे पत्थिज्जमाणे, बहूणं नरनारिसहस्साणं दाहिणहत्थेणं अंजलिमालासहस्साइं पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे, मंजुमंजुणा घोसेणं पडिबुज्झमाणे पडिबुज्झमाणे, भवणपंतिसहस्साइं समइच्छमाणे समइच्छमाणे,) आउलबोलबहुलं णभं करंते विणीआए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ। आसिअ-संमज्जिअ-सित्त-सुइक-पुप्फोवयारकलिअं सिद्धत्थवणविउलरायमग्गं करेमाणे हय-गय-रह-पहकरेण पाइक्कचडकरेण य मंदं २ उद्धूयरेणुयं करेमाणे २ जेणेव सिद्धत्थवणे उज्जाणे, जेणेव असोगवरपायवे, तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीअं ठावेइ, ठावित्ता सीआओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता सयमेवाभरणालंकारं ओमुअइ, ओमुइत्ता सयमेव चउहिं अट्ठाहिं लोअं करइ, करित्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं आसाढाहिं णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं उग्गाणं, भोगाणं, राइन्नाणं, खत्तिआणं चउहिं सहस्सेहिं सद्धि एगं देवदूसमादाय मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए।

[३७] नाभि कुलकर के, उनकी भार्या मरुदेवी की कोख से उस समय ऋषभ नामक अर्हत्, कौशलिक—कोशल देश में अवतीर्ण, प्रथम राजा, प्रथम जिन, प्रथम केवली, प्रथम तीर्थंकर चतुर्दिग्व्याप्त अथवा दान, शील, तप एवं भावना द्वारा चार गतियों या चारों कषायों का अन्त करने में सक्षम धर्म-साम्राज्य के प्रथम चक्रवर्ती उत्पन्न हुए। कौशलिक अर्हत् ऋषभ ने बीस लाख पूर्व कुमार—अकृताभिषेक राजपुत्र—युवराज-अवस्था में व्यतीत किये। तिरेसठ लाख पूर्व महाराजावस्था में रहते हुए उन्होंने लेखन से लेकर पक्षियों की बोली की पहचान तक गणित-प्रमुख कलाओं का, जिनमें पुरुषों की बहत्तर कलाओं, स्त्रियों के चौसठ गुणों—कलाओं तथा सौ प्रकार के कार्मिक शिल्पविज्ञान का समावेश है, प्रजा के हित के लिए उपदेश किया। कलाएँ आदि उपदिष्ट कर अपने सौ पुत्रों को सौ राज्यों में अभिषिक्त किया—उन्हें पृथक्-पृथक् राज्य दिये। उनका राज्याभिषेक कर वे तियासी लाख पूर्व (कुमारकाल के बीस लाख पूर्व तथा महाराज काल के तिरेसठ लाख पूर्व) गृहस्थ-वास में रहे। यों गृहस्थ-वास में रहकर ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास—चैत्र मास में प्रथम पक्ष—कृष्ण पक्ष में नवमी तिथि के उत्तरार्ध में—मध्याह्न के पश्चात् रजत, स्वर्ण, कोश—भाण्डागार, कोष्ठागार—धान्य के आगार, बल-चतुरंगिणी सेना, वाहन—हाथी, घोड़े, रथ आदि सवारियाँ, पुर—नगर, अन्तःपुर—रनवास, विपुल धन, स्वर्ण, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिला—स्फटिक, राजपट्ट आदि, प्रवाल—मूंगे, रक्त रत्न—पद्मराग आदि लोक के सारभूत पदार्थों का परित्याग कर ये सब पदार्थ अस्थिर हैं, यों उन्हें जुगुप्सनीय या त्याज्य मानकर—उनसे ममत्व भाव हटाकर अपने दायिक—गोत्रिक—अपने गोत्र या परिवार के जनों में धन का बंटवारा कर वे सुदर्शना नामक शिविका—पालखी में बैठे। देवों, मनुष्यों तथा असुरों की परिषद् उनके साथ-साथ चली। शांखिक—शंख बजाने वाले, चाक्रिक—चक्र घुमाने वाले, लांगलिक—स्वर्णादि-निर्मित हल गले से लटकाये रहने वाले, मुखमांगलिक—मुंह से मंगलमय शुभ वचन बोलने वाले, पुष्यमाणव—मागध, भाट, चारण आदि स्तुतिगायक, वर्धमानक—औरों के कंधों पर बैठे पुरुष, आख्यायक—शुभाशुभ-कथक, लंख—बांस के सिरे पर खेल दिखाने वाले, मंख—चित्रपट दिखाकर आजीविका चलाने वाले, घाण्टिक—घण्टे बजाने वाले पुरुष उनके पीछे-पीछे चले। वे इष्ट—अभीप्सित, कान्त—कमनीय शब्दमय, प्रिय—प्रिय अर्थ युक्त, मनोज्ञ—मन को सुन्दर लगने वाली, मनोरम—मन को बहुत रुचने वाली, उदार—शब्द एवं अर्थ की दृष्टि से वैशद्ययुक्त, कल्याण—

कल्याणाप्तिसूचक, शिव—निरुपद्रव, धन्य—धन-प्राप्ति कराने वाली, मांगल्य—अनर्थनिवारक, सश्रीक—अनुप्रासादि अलंकारोपेत होने से शोभित, हृदयगमनीय—हृदय तक पहुँचने वाली, सुबोध, हृदय प्रह्लादनीय—हृद्गत क्रोध, शोक आदि ग्रन्थियों को मिटाकर प्रसन्न करने वाली, कर्ण-मननिर्वृतिकर—कानों को तथा मन को शांति देने वाली, अपुनरुक्त—पुनरुक्ति-दोष वर्जित, अर्थशतिक—सैकड़ों अर्थों से युक्त अथवा सैकड़ों अर्थ—इष्ट-कार्य निष्पादक—वाणी द्वारा वे निरन्तर उनका इस प्रकार अभिनन्दन तथा अभिस्तवन—स्तुति करते थे—वैराग्य के वैभव से आनन्दित ! अथवा जगन्नंद !—जगत् को आनन्दित करने वाले, भद्र !—जगत् का कल्याण करने वाले प्रभुवर ! आपकी जय हो, आपकी जय हो । आप धर्म के प्रभाव से परिषहों एवं उपसर्गों से अभीत—निर्भय रहें, आकस्मिक भय—संकट, भैरव—सिंह आदि हिंसक प्राणि-जनित भय अथवा भयंकर भय—घोर भय का सहिष्णुतापूर्वक सामना करने में सक्षम रहें । आप की धर्मसाधना निर्विघ्न हो ।

उन आकुल पौरजनों के शब्दों से आकाश आपूर्ण था । इस स्थिति में भगवान् ऋषभ राजधानी के बीचों-बीच होते हुए निकले । सहस्रों नर-नारी अपने नेत्रों से बार-बार उनके दर्शन कर रहे थे, (सहस्रों नर-नारी अपने हृदय से उनका बार-बार अभिनन्दन कर रहे थे, सहस्रों नर-नारी अपने शुभ मनोरथ—हम इनकी सन्निधि में रह पायें इत्यादि उत्सुकतापूर्ण मनोकामनाएँ लिए हुए थे । सहस्रों नर-नारी अपनी वाणी द्वारा उनका बार-बार अभिस्तवन—गुण-संकीर्तन कर रहे थे । सहस्रों नर-नारी उनकी कांति—देह-दीप्ति, उत्तम सौभाग्य आदि गुणों के कारण—ये स्वामी हमें सदा प्राप्त रहें, बार-बार ऐसी अभिलाषा करते थे । भगवान् ऋषभ सहस्रों नर-नारियों द्वारा अपने हजारों हाथों से उपस्थापित अंजलिमाला—प्रणामांजलियों को अपना दाहिना हाथ ऊंचा उठाकर स्वीकार करते जाते थे, अत्यन्त कोमल वाणी से उनका कुशल-क्षेम पूछते जाते थे । यों वे घरों की हजारों पंक्तियों को लांघते हुए आगे बढ़े ।)

सिद्धार्थवन, जहाँ वे गमनोद्यत थे, की ओर जाने वाले राजमार्ग पर जल का छिड़काव कराया हुआ था । वह झाड़-बुहारकर स्वच्छ कराया हुआ था, सुरभित जल से सिक्त था, शुद्ध था, वह स्थान-स्थान पर पुष्पों से सजाया गया था, घोड़ों, हाथियों तथा रथों के समूह, पदातियों—पैदल चलने वाले सैनिकों के समूह के पदाघात से—चलने से जमीन पर जमी हुई धूल धीरे-धीरे ऊपर की ओर उड़ रही थी । इस प्रकार चलते हुए वे जहाँ सिद्धार्थवन उद्यान था, जहाँ उत्तम अशोक वृक्ष था, वहाँ आये । आकर उस उत्तम वृक्ष के नीचे शिविका को रखवाया, उससे नीचे उतरे । नीचे उतरकर स्वयं अपने गहने उतारे । गहने उतारकर उन्होंने स्वयं आस्थापूर्वक चार मुष्टियों द्वारा अपने केशों का लोच किया । वैसा कर निर्जल बेला किया । फिर उत्तराषाढा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर अपने चार हजार उग्र—आरक्षक अधिकारी, भोग—विशेष रूप से समादृत राजपुरुष या अपने मंत्रि-मंडल के सदस्य, राजन्य—राजा द्वारा वयस्य रूप में—मित्र रूप में स्वीकृत विशिष्ट जन या राजा के परामर्शक मंडल के सदस्य, क्षत्रिय—क्षत्रिय वंश के राजकर्मचारीवृन्द के साथ एक देवदूष्य—दिव्य वस्त्र ग्रहण कर मुंडित होकर अगार से—गृहस्थावस्था से अनगारिता—साधुत्व, जहाँ अपना कोई घर नहीं होता, सारा विश्व ही घर होता है, में प्रव्रजित हो गए ।

विवेचन—पुरुष की बहत्तर कलाओं का इस सूत्र में उल्लेख हुआ है । कलाओं का राजप्रश्नीय सूत्र आदि में वर्णन आया है । तदनुसार वे निम्नांकित हैं—

१. लेख—लेखन,
२. गणित,
३. रूप,
४. नाट्य—अभिनय युक्त, अभिनय रहित तांडव आदि नृत्य,
५. गीत—गन्धर्व-कला या संगीत-विद्या,
६. वादित—वाद्य बजाने की कला,
७. स्वरगत—संगीत के मूलभूत षड्ज, ऋषभ आदि स्वरों का ज्ञान,
८. पुष्करगत—मृदंग आदि बजाने का ज्ञान,
९. समताल—संगीत में गीत तथा वाद्यों के सुर एवं ताल-समन्वय या संगति का ज्ञान,
१०. द्यूत—जुआ खेलना,
११. जनवाद—द्यूत-विशेष,
१२. पाशक—पासे खेलना,
१३. अष्टापद—चौपड़ द्वारा जूआ खेलने की कला,
१४. पुरःकाव्य—शीघ्रकवित्व—किसी भी विषय पर तत्काल काव्य रचना करना, आशु-कविता करना,
१५. दकमृत्तिका—पानी तथा मिट्टी को मिलाकर विविध वस्तुएँ निर्मित करने की कला, अथवा पानी तथा मिट्टी के गुणों का परीक्षण करने की कला,
१६. अन्नविधि—भोजन पकाने की कला,
१७. पानविधि—पानी पीने आदि विषय में गुण-दोष का विज्ञान,
१८. वस्त्रविधि—वस्त्र पहनने आदि का विशिष्ट ज्ञान,
१९. विलेपनविधि—देह पर सुरभित, स्निग्ध पदार्थों का, औषधि विशेष का लेप करने की विधि,
२०. शयनविधि – पलंग आदि शयन सम्बन्धी वस्तुओं की संयोजना, सुसज्जा आदि का ज्ञान,
२१. आर्या—आर्या छन्द रचने की कला,
२२. प्रहेलिका—गूढाशय वाले पद्य, पहेलियाँ रचना, उनका हल प्रस्तुत करना,
२३. मागधिका—मागधिका छन्द में रचना करने की कला,
२४. गाथा—संस्कृतभिन्न अन्य भाषा में आर्या छन्द में रचना,
२५. गीतिका —पूर्वार्द्ध के सदृश उत्तरार्द्ध-लक्षणा आर्या में रचना,
२६. श्लोक—अनुष्टुप्-विशेष में रचना,
२७. हिरण्ययुक्ति—चाँदी के यथोचित संयोजन की कला,
२८. स्वर्णयुक्ति—सोने के यथोचित संयोजन की कला,
२९. चूर्णयुक्ति—कोष्ठ आदि सुगन्धित पदार्थों का बुरादा बनाकर उसमें अन्य पदार्थों का मेलन,
३०. आभरणविधि—आभूषण-अलंकार द्वारा सज्जा,
३१. तरुणी-परिकर्म—युवतियों के शृंगार, प्रसाधन की कला,
३२. स्त्रीलक्षण—सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार स्त्रियों के शुभ-अशुभ लक्षणों का ज्ञान,
३३. पुरुषलक्षण—सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार पुरुषों के शुभ तथा अशुभ लक्षणों का ज्ञान,

३४. हयलक्षण—शालिहोत्र शास्त्र के अनुसार घोड़े के शुभ-अशुभ लक्षणों का ज्ञान,
३५. गजलक्षण —हाथी के शुभ-अशुभ लक्षणों का ज्ञान,
३६. गोलक्षण—गोजातीय पशुओं के शुभ-अशुभ लक्षणों का ज्ञान,
३७. कुक्कुटलक्षण—मुर्गो के शुभ-अशुभ लक्षणों का ज्ञान,
३८. छत्रलक्षण—चक्रवर्ती के छत्र-रत्न आदि का ज्ञान,
३९. दण्डलक्षण—छत्र आदि में लगने वाले दंड के सम्वन्ध में ज्ञान,
४०. असिलक्षण—तलवार सम्बन्धी ज्ञान,
४१. मणिलक्षण—रत्न-परीक्षा,
४२. काकणिलक्षण—चक्रवर्ती के काकणि-रत्न का विशेष ज्ञान,
४३. वास्तुविद्या—गृह-भूमि के गुण-दोषों का परिज्ञान,
४४. स्कन्धावार मान– सेना के पड़ाव या शिविर के परिमाण या विस्तार के सम्बन्ध में ज्ञान,
४५. नगरमान--नगर के परिमाण के सम्बन्ध में जानकारी—नूतन नगर बसाने की कला,
४६. चार—ग्रह-गणना का विशेप ज्ञान,
४७. प्रतिचार—ग्रहों के वक्र-गमन आदि प्रतिकूल चाल का ज्ञान,
४८. व्यूह—युद्धोत्सुक सेना की चक्रव्यूह आदि के रूप में जमावट,
४९. प्रतिव्यूह—व्यूह को भंग करने में उद्यत सेना की व्यूह के प्रतिकूल स्थापना या जमावट,
५०. चक्रव्यूह—चक्र के आकार की सैन्य-रचना,
५१. गरुड़व्यूह—गरुड़ के आकार की सैन्य-रचना,
५२. शकटव्यूह—गाड़ी के आकार की सैन्य-रचना,
५३. युद्ध,
५४. नियुद्ध—मल्ल-युद्ध,
५५. युद्धातियुद्ध—घमासान युद्ध, जहाँ दोनों ओर के मरे हुए सैनिकों के ढेर लग जाएँ,
५६. दृष्टियुद्ध—योद्धा तथा प्रतियोद्धा का आमने-सामने निर्निमेष नेत्रों के साथ अपने प्रतिद्वन्द्वी को देखते हुए अवस्थित होना,
५७. मुष्टियुद्ध—दो योद्धाओं का परस्पर मुक्कों से लड़ना,
५८. बाहुयुद्ध—योद्धा-प्रतियोद्धा द्वारा एक दूसरे को अपनी फैलायी हुई भुजाओं में प्रतिबद्ध करना,
५९. लतायुद्ध—जिस प्रकार लता मूल से लेकर चोटी तक वृक्ष पर चढ़ जाती है, उसी प्रकार एक योद्धा द्वारा दूसरे योद्धा को आवेष्टित करना, उसे प्रगाढ रूप में निष्पीडित करना,
६०. इषुशास्त्र—नागबाण आदि दिव्यास्त्रसूचक शास्त्र,
६१. त्सरुप्रवाद—खड्ग-शिक्षाशास्त्र—तलवार चलाने की कला,
६२. धनुर्वेद—धनुर्विद्या,
६३. हिरण्यपाक—रजतसिद्धि,
६४. स्वर्णपाक—स्वर्णसिद्धि,
६५. सूत्र-खेल—सूत्र-क्रीडा,
६६. वस्त्र-खेल—वस्त्र-क्रीडा,

६७. नालिका-खेल—द्यूत-विशेष,
६८. पत्र-छेद्य—एक सौ आठ पत्तों के बीच में विवक्षित संख्या के पत्ते के छेदन में हाथ की चतुराई,
६९. कट-छेद्य—पर्वत-भूमि छेदन की कला,
७०. सजीवकरण—मृत धातुओं को उनके स्वाभाविक स्वरूप में पहुँचाना,
७१. निर्जीवकरण—स्वर्ण आदि धातुओं को मारना, पारद को मूर्च्छित करना,
७२. शकुनिरुत—पक्षियों की बोली का ज्ञान, उससे शुभ-अशुभ शकुन की पहचान।

स्त्रियों की ६४ कलाओं का प्रस्तुत सूत्र में उल्लेख हुआ है। वे निम्नांकित हैं—

१. नृत्य
२. औचित्य
३. चित्र
४. वादित
५. मन्त्र
६. तन्त्र
७. ज्ञान
८. विज्ञान
९. दम्भ
१०. जलस्तम्भ
११. गीत-मान
१२. ताल-मान
१३. मेघ-वृष्टि
१४. जल-वृष्टि
१५. आराम-रोपण
१६. आकार-गोपन
१७. धर्म-विचार
१८. शकुन-विचार
१९. क्रिया-कल्प
२०. संस्कृत-जल्प
२१. प्रासाद-नीति
२२. धर्म-रीति
२३. वर्णिका-वृद्धि
२४. स्वर्ण-सिद्धि
२५. सुरभि-तैलकरण
२६. लीला-संचरण
२७. हय-गज-परीक्षण
२८. पुरुष-स्त्री-लक्षण
२९. हेम-रत्न-भेद
३०. अष्टादश-लिपि-परिच्छेद
३१. तत्काल-बुद्धि—प्रत्युत्पन्नमति
३२. वास्तु-सिद्धि
३३. काम-विक्रिया
३४. वैद्यक-क्रिया
३५. कुंभ-भ्रम
३६. सारिश्रम
३७. अंजन-योग
३८. चूर्ण-योग
३९. हस्त-लाघव
४०. वचन-पाटव
४१. भोज्य-विधि
४२. वाणिज्य-विधि
४३. मुख-मंडन
४४. शालि-खंडन
४५. कथा-कथन
४६. पुष्प-ग्रथन
४७. वक्रोक्ति
४८. काव्य-शक्ति
४९. स्फारविधिवेश
५०. सर्व-भाषा-विशेष
५१. अभिधान-ज्ञान
५२. भूषण-परिधान
५३. भृत्योपचार
५४. गृहोपचार

५५. व्याकरण	५६. परनिराकरण
५७. रन्धन	५८. केश-बन्धन
५९. वीणा-नाद	६०. वितंडावाद
६१. अंक-विचार	६२. लोक-व्यवहार
६३. अन्त्याक्षरिका	६४. प्रश्न-प्रहेलिका ।

प्रस्तुत सूत्र में सौ शिल्पों का संकेत किया गया है। इस सन्दर्भ में ज्ञातव्य है कि शिल्प के मूलत:—

१. कुंभकृत्-शिल्प—घट आदि वर्तन वनाने की कला,

२. चित्रकृत्-शिल्प—चित्रकला,

३. लोहकृत्-शिल्प—शस्त्र आदि लोहे की वस्तुएँ वनाने की कला,

४. तन्तुवाय-शिल्प—वस्त्र बुनने की कला तथा

५. नापित-शिल्प—क्षौरकर्म-कला—ये पाँच भेद हैं। प्रत्येक के बीस-बीस भेद माने गये हैं, यों सव मिलकर सौ होते हैं।

साधना : कैवल्य : संघसंपदा

३८. उसभे णं अरहा कोसलिए संवच्छरसाहिअं चीवरधारी होत्था, तेण परं अचेलए। जप्पभिइं च णं उसभे अरहा कोसलिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, तप्पभिइं च णं उसभे अरहा कोसलिए णिच्चं वोसट्ठकाए, चिअत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति, तंजहा—दिव्वा वा, (माणुसा वा, तिरिक्खजोणिआ वा,) पडिलोमा वा, अणुलोमा वा, तत्थ पडिलोमा वित्तेण वा, (तयाए वां, छियाए वा, लयाए वा,) कसेण वा काए आउट्टेज्जा; अणुलोमा वंदेज्ज वा (णमंसेज्ज वा, सक्कारेज्ज वा, सम्माणेज्ज वा, कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं) पज्जुवासेज्ज वा, ते सव्वे सम्मं सहइ, (खमइ, तितिक्खइ,) अहिआसेइ।

तए णं से भगवं समणे जाए, ईरिआसमिए, (भासासमिए, एसणासमिए, आयाणभंडमत्त-निक्खेवणासमिए,) पारिट्ठावणिआसमिए, मणसमिए, वयसमिए, कायसमिए, मणगुत्ते, (वयगुत्ते, कायगुत्ते, गुत्ते, गुत्तिदिए,) गुत्तबंभयारी, अकोहे, (अमाणे, अमाए,) अलोहे, संते, पसंते, उवसंते, परिणिव्वुडे, छिण्णसोए, निरुवलेवे, संखमिव निरंजणे, जच्चकणगं व जायरूवे, आदरिसपडिभागे इव पागडभावे, कुम्मो इव गुत्तिदिए, पुक्खरपत्तमिव निरुवलेवे, गगणमिव निरालंबणे, अणिले इव णिरालए, चंदो इव सोमदंसणे, सूरो इव तेअंसी, विहगो इव अपडिबद्धगामी, सागरो इव गंभीरे, मंदरो इव अकंपे, पुढवीविव सव्वफासविसहे, जीवो विव अप्पडिहयगइत्ति।

णत्थि णं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबंधे। से पडिबंधे चउव्विहे भवइ, तंजहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ। दव्वओ इह खलु माया मे, पिया मे, भाया मे, भगिणी मे, (भज्जा मे, पुत्ता मे, धूआ मे, णत्ता मे, सुण्हा मे, सहिसयणा मे,) संगंथसंथुआ मे, हिरण्णं मे, सुवण्णं मे, (कंसं मे, दूसं मे, धणं मे,) उवगरणं मे; अहवा समासओ सच्चित्ते वा, अचित्ते वा, मीसए वा, दव्वजाए; सेवं तस्स ण भवइ।

खित्तग्रो—गामे वा, णगरे वा, अरण्णे वा, खेत्ते वा, खले वा, गेहे वा, अंगणे वा, एवं तस्स ण भवइ।

कालओ—थोवे वा, लवे वा, मुहुत्ते वा, अहोरत्ते वा, पक्खे वा, मासे वा, उऊए वा, अयणे वा, संवच्छरे वा, अन्नयरे वा दीहकालपडिबंधे, एवं तस्स ण भवइ।

भावग्रो—कोहे वा, (माणे वा, माया वा,) लोहे वा, भए वा, हासे वा, एवं तस्स ण भवइ।

से णं भगवं वासावासवज्जं हेमंतगिम्हासु गामे एगराइए, णगरे पंचराइए, ववगयहास-सोग-अरइ-भय-परित्तासे, णिम्ममे, णिरहंकारे, लहुभूए, अगंथे, वासीतच्छणे अदुट्ठे, चंदणाणुलेवणे अरत्ते, लेट्ठुंमि कंचणंमि अ समे, इह लोए परलोए अ अपडिबद्धे, जीवियमरणे निरवकंखे, संसार-पारगामी, कम्मसंगणिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिए विहरइ।

तस्स णं भगवंतस्स एतेणं विहारेणं विहरमाणस्स एगे वाससहस्से विइक्कंते समाणे पुरिमतालस्स नगरस्स बहिआ सगडमुहंसि उज्जाणंसि णिग्गोहवरपायवस्स अहे झाणंतरिग्राए वट्टमाणस्स फग्गुणबहुलस्स इक्कारसीए पुव्वण्हकालसमयंसि ग्रट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं उत्तरासाढाण-क्खत्तेणं जोगमुवागएणं अणुत्तरेणं नाणेणं, (दंसणेणं,) चरित्तेणं, अणुत्तरेणं तवेणं बलेणं वीरिएणं आलएणं, विहारेणं, भावणाए, खंतीए, गुत्तीए, मुत्तीए, तुट्ठीए, अज्जवेणं, मद्दवेणं, लाघवेणं, सुचरिअ-सोवचिअफलनिव्वाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स अणंते, अणुत्तरे, णिव्वाघाए, णिरावरणे, कसिणे, पडिपुण्णे केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे; जिणे जाए केवली, सव्वन्नू, सव्वदरिसी, सणेरइअ-तिरिअ-नरामरस्स लोगस्स पज्जवे जाणइ पासइ, तंजहा—आगइं, गइं, ठिइं, उववायं, भुत्तं, कडं, पडिसेविअं, आवीकम्मं, रहोकम्मं, तं कालं मणवयकाये जोगे एवमादी जीवाण वि सव्वभावे, अजीवाण वि सव्वभावे, मोक्खमग्गस्स विसुद्धतराए भावे जाणमाणे पासमाणे, एस खलु मोक्खमग्गे मम अण्णेसिं च जीवाणं हियसुहणिस्सेयसकरे, सव्वदुक्खविमोक्खणे, परमसुहसमाणणे भविस्सइ।

तए णं से भगवं समणाणं निग्गंथाण य, णिग्गंथीण य पंच महव्वयाइं सभावणगाइं, छच्च जीवणिकाए धम्मं देसमाणे विहरइ; तंजहा—पुढविकाइए भावणागमेणं पंच महव्वयाइं सभावणगाइं भाणिअव्वाइं इति।

उसभस्स णं अरहओ कोसलिअस्स चउरासी गणा गणहरा होत्था, उसभस्स णं अरहओ कोसलिअस्स उसभसेणपामोक्खाओ चुलसीइं समणसाहस्सीओ उक्कोसिआ समणसंपया होत्था, उसभस्स णं अरहओ कोसलिअस्स बंभीसुंदरीपामोक्खाओ तिण्णि अज्जिआसयसाहस्सीओ उक्कोसिआ अज्जिआसंपया होत्था, उसभस्स णं अरहओ कोसलिअस्स सेज्जंसपामोक्खाओ तिण्णि समणोवासगसयसाहस्सीओ पंच य साहस्सीओ उक्कोसिआ समणोवासग-संपया होत्था, उसभस्स णं अरहओ कोसलिअस्स सुभद्दापामोक्खाओ पंच समणोवासिआसयसाहस्सीओ चउपण्णं च सहस्सा उक्कोसिआ समणोवासिआ-संपया होत्था, उसभस्स णं अरहओ कोसलिअस्स अजिणाणं जिणसंकासाणं, सव्वक्खरसन्निवाईणं, जिणो विव अवितहं वागरमाणाणं चत्तारि चउद्दसपुव्वीसहस्सा

अद्धट्ठमा य सया उक्कोसिआ चउदसपुव्वी-संपया होत्था, उसभस्स णं अरहओ कोसलिअस्स णव ओहिणाणिसहस्सा उक्कोसिआ ओहिणाणि-संपया होत्था, उसभस्स णं अरहओ कोसलिअस्स वीसं जिणसहस्सा, वीसं वेउव्विअसहस्सा छच्च सया उक्कोसिआ जिण-संपया वेउव्विय-संपया य होत्था, अरहओ कोसलिअस्स बारस विउलमइसहस्सा छच्च सया पण्णासा, बारस वाईसहस्सा छच्च सया पण्णासा, उसभस्स णं अरहओ कोसलिअस्स गइकल्लाणाणं, ठिइकल्लाणाणं, आगमेसिभद्दाणं, बावीसं अणुत्तरोववाइआणं सहस्सा णव य सया उक्कोसिआ अणुत्तरोववाइय-संपया होत्था।

उसभस्स णं अरहओ कोसलिअस्स वीसं समणसहस्सा सिद्धा, चत्तालीसं अज्जिआसहस्सा सिद्धा—सट्ठि अंतेवासीसहस्सा सिद्धा।

अरहओ णं उसभस्स बहवे अंतेवासी अणगारा भगवंतो—अप्पेगइआ मासपरिआया, जहा उववाइए सव्वओ अणगारवण्णओ, जाव (एवं दुमास-तिमास जाव चउमास-पंचमास-छमास-सत्तमास-अट्ठमास-नवमास-दसमास-एक्कारस-मास परियाया, अप्पेगइआ वासपरियाया, दुवासपरियाया, तिवासपरियाया, अप्पेगइआ अणेगवासपरियाया,) उद्धंजाणू अहोसिरा झाणकोट्ठोवगया संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

अरहओ णं उसभस्स दुविहा अंतकरभूमी होत्था, तंजहा—जुगंतकरभूमी अ परिआयंतकरभूमी य, जुगंतकरभूमी जाव असंखेज्जाइं पुरिसजुगाइं, परिआयंतकरभूमी अंतोमुहुत्तपरिआए अंतमकासी।

[३८] कौशलिक अर्हत् ऋषभ कुछ अधिक एक वर्ष पर्यन्त वस्त्रधारी रहे, तत्पश्चात् निर्वस्त्र। जब से वे (कौशलिक अर्हत् ऋषभ) गृहस्थ से श्रमण-धर्म में प्रव्रजित हुए, वे व्युत्सृष्टकाय—कायिक परिकर्म, संस्कार, शृंगार, सज्जा आदि रहित, त्यक्त देह—दैहिक ममता से अतीत—परिषहों को ऐसे उपेक्षा-भाव से सहने वाले, मानो उनके देह हो ही नहीं, देवकृत, (मनुष्यकृत, तिर्यक्—पशु-पक्षि-कृत) जो भी प्रतिलोम—प्रतिकूल, अनुलोम—अनुकूल उपसर्ग आते, उन्हें वे सम्यक्—निर्भीक भाव से सहते, प्रतिकूल परिषह—जैसे कोई बेंत से, (वृक्ष की छाल से बंटी हुई रस्सी से, लोहे की चिकनी सांकल से—चाबुक से, लता दंड से,) चमड़े के कोड़े से उन्हें पीटता अथवा अनुकूल परिषह—जैसे कोई उन्हें वन्दन करता, (नमस्कार करता, उनका सत्कार करता, यह समझकर कि वे कल्याणमय, मंगलमय, दिव्यतामय एवं ज्ञानमय हैं,) उनकी पर्युपासना करता तो वे यह सब सम्यक्—अनासक्त भाव से सहते, क्षमाशील रहते, अविचल रहते।

भगवान् ऐसे उत्तम श्रमण थे कि वे गमन, हलन-चलन आदि क्रिया, (भाषा, आहार आदि की गवेषणा, याचना, पात्र आदि उठाना, इधर-उधर रखना आदि) तथा मल-मूत्र, खंखार, नाक आदि का मैल त्यागना—इन पांच समितियों से युक्त थे। वे मनसमित, वाक्समित तथा कायसमित थे। वे मनोगुप्त, (वचोगुप्त, कायगुप्त—मन, वचन तथा शरीर की क्रियाओं का गोपायन—संयम करने वाले, गुप्त—शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि से सम्बद्ध विषयों में रागरहित—अन्तर्मुख, गुप्तेन्द्रिय—इन्द्रियों को उनके विषय-व्यापार में लगाने की उत्सुकता से रहित,) गुप्त ब्रह्मचारी—नियमोपनियमपूर्वक ब्रह्मचर्य का संरक्षण—परिपालन करने वाले, अक्रोध—क्रोध-रहित (अमान—मान

रहित, अमाय—माया रहित,) अलोभ—लोभ रहित, शांत—प्रशांत, उपशांत, परिनिर्वृत—परम शांति-मय, छिन्न-स्रोत—लोकप्रवाह में नहीं बहने वाले, निरुपलेप—कर्मवन्धन के लेप से रहित, कांसे के पात्र में जैसे पानी नहीं लगता, उसी प्रकार स्नेह, आसक्ति आदि के लगाव से रहित, शंखवत् निरंजन—शंख जैसे सम्मुखीन रंग से अप्रभावित रहता है, उसी प्रकार सम्मुखीन क्रोध, द्वेष, राग, प्रेम, प्रशंसा, निन्दा आदि से अप्रभावित, राग आदि की रंजकता से शून्य, जात्य—उत्तम जाति के, विशोधित—अन्य कुधातुओं से अमिश्रित शुद्ध स्वर्ण के समान जातरूप—प्राप्त निर्मल चारित्र्य में उत्कृष्ट भाव से स्थित—निर्दोष चारित्र्य के प्रतिपालक, दर्पणगत प्रतिविम्व की ज्यों प्रकट भाव—अनिगूहिताभिप्राय, प्रवंचना, छलना व कपट रहित शुद्ध भावयुक्त, कछुए की तरह गुप्तेन्द्रिय—इन्द्रियों को विषयों से खींचकर निवृत्ति-भाव में संस्थित रखने वाले, कमल-पत्र के समान निर्लेप, आकाश के सदृश निरालम्ब—निरपेक्ष, वायु की तरह निरालय—गृहरहित, चन्द्र के सदृश सौम्यदर्शन—देखने में सौम्यतामय, सूर्य के सदृश तेजस्वी—दैहिक एवं आत्मिक तेज से युक्त, पक्षी की ज्यों अप्रतिवद्ध-गामी—उन्मुक्त विहरणशील, समुद्र के समान गंभीर, मंदराचल की ज्यों अकंप—अविचल, सुस्थिर, पृथ्वी के समान सभी शीत-उष्ण अनुकूल-प्रतिकूल स्पर्शों को समभाव से सहने में समर्थ, जीव के समान अप्रतिहत—प्रतिघात या निरोध रहित गति से युक्त थे।

उन भगवान् ऋषभ के किसी भी प्रकार के प्रतिबन्ध—रुकावट या आसक्ति का हेतु नहीं था। प्रतिबन्ध चार प्रकार का कहा गया है—१. द्रव्य की अपेक्षा से, २. क्षेत्र की अपेक्षा से, ३. काल की अपेक्षा से तथा ४. भाव की अपेक्षा से।

द्रव्य की अपेक्षा से जैसे—ये मेरे माता, पिता, भाई, बहिन, (पत्नी, पुत्र, पुत्र-वधू, नाती-पोता, पुत्री, सखा, स्वजन—चाचा, ताऊ आदि निकटस्थ पारिवारिक, सग्रन्थ—अपने पारिवारिक के सम्वन्धी जैसे—चाचा का साला, पुत्र का साला आदि चिरपरिचित जन हैं, ये मेरे चाँदी, सोना, (कांसा, वस्त्र, धन,) उपकरण—अन्य सामान हैं, अथवा अन्य प्रकार से संक्षेप में जैसे ये मेरे सचित्त—द्विपद—दो पैरों वाले प्राणी, अचित्त—स्वर्ण, चांदी आदि निर्जीव पदार्थ, मिश्र—स्वर्णाभरण सहित द्विपद आदि हैं—इस प्रकार इनमें भगवान् का प्रतिवन्ध—ममत्वभाव नहीं था—वे इनमें जरा भी बद्ध या आसक्त नहीं थे।

क्षेत्र की अपेक्षा से ग्राम, नगर, अरण्य, खेत, खल—धान्य रखने, पकाने आदि का स्थान या खलिहान, घर, आंगन इत्यादि में उनका प्रतिबन्ध—आशयवंध—आसक्त भाव नहीं था।

काल की अपेक्षा से स्तोक, लव, मुहूर्त्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर या और भी दीर्घकाल सम्बन्धी कोई प्रतिवन्ध उन्हें नहीं था।

भाव की अपेक्षा से क्रोध (मान, माया,) लोभ, भय, हास्य से उनका कोई लगाव नहीं था।

भगवान् ऋषभ वर्षावास—चातुर्मास के अतिरिक्त हेमन्त—शीतकाल के महीनों तथा ग्रीष्म-काल के महीनों के अन्तर्गत गांव में एक रात, नगर में पांच रात प्रवास करते हुए हास्य, शोक, रति, भय तथा परित्रास—आकस्मिक भय से वर्जित, ममता रहित, अहंकार रहित, लघुभूत—सतत ऊर्ध्व-गामिता के प्रयत्न के कारण हलके, अग्रन्थ—वाह्य तथा आन्तरिक ग्रन्थि से रहित, वसूले द्वारा देह की चमड़ी छीले जाने पर भी वैसा करने वाले के प्रति द्वेष रहित एवं किसी के द्वारा चन्दन का लेप

किये जाने पर भी उस ओर अनुराग या आसक्ति से रहित, पाषाण और स्वर्ण में एक समान भावयुक्त, इस लोक में और परलोक में अप्रतिबद्ध—इस लोक के और देवभव के सुख में निष्पिपासित—अतृष्ण, जीवन और मरण की आकांक्षा से अतीत, संसार को पार करने में समुद्यत, जीव-प्रदेशों के साथ चले आ रहे कर्म-सम्बन्ध को विच्छिन्न कर डालने में अभ्युत्थित—सप्रयत्न रहते हुए विहरणशील थे।

इस प्रकार विहार करते हुए—धर्मयात्रा पर अग्रसर होते हुए एक हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर पुरिमताल नगर के बाहर शकटमुख नामक उद्यान में एक वरगद के वृक्ष के नीचे, ध्यानान्तरिका—आरब्ध ध्यान की समाप्ति तथा अपूर्व ध्यान के अनारंभ की स्थिति में अर्थात् शुक्ल-ध्यान के पृथक्त्ववितर्क-सविचार तथा एकत्ववितर्क-अविचार—इन दो चरणों के स्वायत्त कर लेने एवं सूक्ष्मक्रिय-अप्रतिपति और व्युच्छन्नक्रिय-अनिवर्ति—इन दो चरणों की अप्रतिपन्नावस्था में फाल्गुणमास कृष्णपक्ष एकादशी के दिन पूर्वाह्न के समय, निर्जल तेले की तपस्या की स्थिति में चन्द्र संयोगाप्त उत्तराषाढा नक्षत्र में अनुत्तर—सर्वोत्तम तप, बल, वीर्य, आलय—निर्दोष स्थान में आवास, विहार, भावना—महाव्रत-सम्बद्ध उदात्त भावनाएँ, क्षान्ति—क्रोधनिग्रह, क्षमाशीलता, गुप्ति—मानसिक, वाचिक तथा कायिक प्रवृत्तियों का गोपन—उनका विवेकपूर्ण उपयोग, मुक्ति—कामनाओं से छूटते हुए मुक्तता की ओर प्रयाण—समुद्यतता, तुष्टि—आत्म-परितोष, आर्जव—सरलता, मार्दव—मृदुता, लाघव—आत्मलीनता के कारण सभी प्रकार से निर्भारता—हलकापन, स्फूर्तिशीलता, सच्चारित्र्य के निर्वाण-मार्ग रूप उत्तम फल से आत्मा को भावित करते हुए उनके अनन्त - अन्त रहित, अविनाशी, अनुत्तर—सर्वोत्तम, निर्व्याघात—व्याघातरहित, सर्वथा अप्रतिहत, निरावरण—आवरण रहित, कृत्स्न—सम्पूर्ण, सकलार्थग्राहक, प्रतिपूर्ण—अपनी समग्र किरणों से सुशोभित पूर्ण चन्द्रमा की ज्यों सर्वांशत: परिपूर्ण, श्रेष्ठ केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न हुए। वे जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हुए। वे नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य तथा देव लोक के पर्यायों के ज्ञाता हो गये। आगति—नैरयिक गति तथा देवगति से च्यवन कर मनुष्य या तिर्यञ्च गति में आगमन, मनुष्य या तिर्यञ्च गति से मरकर देवगति या नरकगति में गमन, कार्य-स्थिति, भव-स्थिति, मुक्त, कृत, प्रति-सेवित, आविष्कर्म—प्रकट कर्म, रह:कर्म—एकान्त में कृत-गुप्त कर्म, तब तब उद्भूत मानसिक, वाचिक व कायिक योग आदि के, जीवों तथा अजीवों के समस्त भावों के, मोक्ष-मार्ग के प्रति विशुद्ध भाव—यह मोक्ष-मार्ग मेरे लिए एवं दूसरे जीवों के लिए हितकर, सुखकर तथा नि:श्रेयसकर है, सब दु:खों से छुड़ाने वाला एवं परम-सुख-समापन्न—परम आनन्द युक्त होगा—इन सब के ज्ञाता, द्रष्टा हो गये।

भगवान् ऋषभ निर्ग्रन्थों, निर्ग्रन्थियों—श्रमण-श्रमणियों को पाँच महाव्रतों, उनकी भावनाओं तथा जीव-निकायों का उपदेश देते हुए विचरण करते। पृथ्वीकाय आदि जीव-निकाय तथा भावना[1] युक्त पंच महाव्रतों का विस्तार अन्यत्र ज्ञातव्य है।

कौशलिक अर्हत् ऋषभ के चौरासी गण, चौरासी गणधर, ऋषभसेन आदि चौरासी हजार श्रमण, ब्राह्मी, सुन्दरी आदि तीन लाख आर्यिकाएँ—श्रमणियाँ, श्रेयांस आदि तीन लाख पांच हजार श्रमणोपासक, सुभद्रा आदि पाँच लाख चौवन हजार श्रमणोपासिकाएँ, जिन नहीं पर जिन-सदृश

---

१. आचारांगसूत्र द्वितीय श्रुतस्कन्ध भावनाध्ययन देखें

सर्वाक्षर-संयोग-वेत्ता जिनवत् अवितथ—यथार्थ-सत्य-अर्थ-निरूपक चार हजार सात सौ पचास चतुर्दश-पूर्वधर—श्रुतकेवली, नौ हजार अवधिज्ञानी, बीस हजार जिन—सर्वज्ञ, बीस हजार छह सौ वैक्रियलब्धिधर, वारह हजार छह सौ पचास विपुलमति-मनःपर्यवज्ञानी, वारह हजार छह सौ पचास वादी तथा गति-कल्याणक—देवगति में दिव्य सातोदय रूप कल्याणयुक्त, स्थितिकल्याणक—देवायुरूप स्थितिगत सुख-स्वामित्व युक्त, आगमिष्यद्भद्र—आगामीभव में सिद्धत्व प्राप्त करने वाले अनुत्तरौपपातिक—अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले बाईस हजार नौ सौ मुनि थे।

कौशलिक अर्हत् ऋषभ के बीस हजार श्रमणों तथा चालीस हजार श्रमणियों ने सिद्धत्व प्राप्त किया—यों उनके साठ हजार अंतेवासी सिद्ध हुए।

भगवान् ऋषभ के अनेक अंतेवासी अनगार थे—उनकी बड़ी संख्या थी। उनमें कई एक मास, (कई दो मास, तीन मास, चार मास, पाँच मास, छह मास, सात मास, आठ मास, नौ मास, दस मास, ग्यारह मास, कई एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष तथा कई अनेक वर्ष) के दीक्षा-पर्याय के थे। औपपातिक सूत्र के अनुरूप अनगारों का विस्तृत वर्णन जानना चाहिए।

उनमें अनेक अनगार अपने दोनों घुटनों को ऊँचा उठाये, मस्तक को नीचा किये—यों एक विशेष आसन में अवस्थित हो ध्यान रूप कोष्ठ में—कोठे में प्रविष्ट थे—ध्यान-रत थे—जैसे कोठे में रखा हुआ धान इधर-उधर विखरता नहीं, खिडता नहीं, उसी प्रकार ध्यानस्थता के कारण उनकी इन्द्रियाँ विषयों में प्रसृत नहीं होती थीं। इस प्रकार वे अनगार संयम तथा तप से आत्मा को भावित—अनुप्राणित करते हुए अपनी जीवन-यात्रा में गतिशील थे।

भगवान् ऋषभ की दो प्रकार की भूमि थी—युगान्तकर-भूमि तथा पर्यायान्तकर-भूमि। युगान्तकर-भूमि गुरु-शिष्यक्रमानुबद्ध यावत् असंख्यात-पुरुष-परम्परा-परिमित थी तथा पर्यायान्तकर भूमि अन्तर्मुहूर्त्त थी (क्योंकि भगवान् को केवलज्ञान प्राप्त होने के अन्तर्मुहूर्त्त पश्चात् मरुदेवी को मुक्ति प्राप्त हो गई थी।)

३९. उसभे णं अरहा पंचउत्तरासाढे अभीइछट्ठे होत्था, तंजहा—उत्तरासाढाहिं चुए, चइत्ता गब्भं वक्कंते, उत्तरासाढाहिं जाए, उत्तरासाढाहिं रायाभिसेयं पत्ते, उत्तरासाढाहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारिअं पव्वइए, उत्तरासाढाहिं अणंते (अणुत्तरे निव्वाघाए, णिरावरणे कसिणे, पडिपुण्णे केवलवरनाणदंसणे) समुप्पण्णे, अभीइणा परिणिव्वुए।

[३९] भगवान् ऋषभ के जीवनगत घटनाक्रम पाँच उत्तराषाढा नक्षत्र तथा एक अभिजित् नक्षत्र से सम्बद्ध हैं।

चन्द्रसंयोगप्राप्त उत्तराषाढा नक्षत्र में उनका च्यवन—सर्वार्थसिद्ध-संज्ञक महाविमान से निर्गमन हुआ। च्युत—निर्गत होकर माता मरुदेवी की कोख में अवतरण हुआ। उसी में (चन्द्रसंयोगप्राप्त उत्तराषाढा में ही) जन्म—गर्भावास से निष्क्रमण हुआ। उसी में उनका राज्याभिषेक हुआ। उसी में वे मुंडित होकर, घर छोड़कर अनगार बने—गृहस्थवास से श्रमणधर्म में प्रव्रजित हुए। उसी में उन्हें अनन्त, (अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण, उत्तम केवलज्ञान, केवलदर्शन) समुत्पन्न हुआ।

भगवान् अभिजित् नक्षत्र में परिनिर्वृत्त—सिद्ध, मुक्त हुए।

परिनिर्वाण : देवकृत महामहिमा : महोत्सव

४०. उसभे णं अरहा कोसलिए वज्ज-रिसह-नाराय-संघयणे, समचउरंस-संठाण-संठिए, पंचधणुसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं होत्था।

उसभे णं अरहा वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसित्ता, तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं महारज्जवासमज्झे वसित्ता, तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं अगारवासमज्झे वसित्ता, मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए। उसभे णं अरहा एगं वाससहस्सं छउमत्थपरिआयं पाउणित्ता, एगं पुव्वसय-सहस्सं वाससहस्सूणं केवलिपरिआयं पाउणित्ता, एगं पुव्वसहस्सं बहुपडिपुण्णं सामण्णपरिआयं पाउणित्ता, चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउअं पालइत्ता जे से हेमंताणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे माहबहुले, तस्स णं माहबहुलस्स तेरसीपक्खेणं दसहिं अणगारसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे अट्ठावय-सेल-सिहरंसि चोद्दसमेणं भत्तेणं अपाणएणं संपलिअंकणिसण्णे पुव्वण्हकालसमयंसि अभीइणा णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं सुसमदूसमाए समाए एगूणणवउईहिं पक्खेहिं सेसेहिं कालगए वीइक्कंते, समुज्जाए छिण्ण-जाइ-जरा-मरण-बंधणे, सिद्धे, बुद्धे, मुत्ते, अंतगडे, परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

[४०] कौशलिक भगवान् ऋषभ वज्र-ऋषभ-नाराच-संहनन युक्त, सम-चौरस-संस्थान-संस्थित तथा पांच सौ धनुष दैहिक ऊँचाई युक्त थे।

वे बीस लाख पूर्व तक कुमारावस्था में तथा तिरेसठ लाख पूर्व महाराजावस्था में रहे। यों तिरासी लाख पूर्व गृहवास में रहे। तत्पश्चात् मुंडित होकर अगार-वास से अनगार-धर्म में प्रव्रजित हुए। वे एक हजार वर्ष छद्मस्थ-पर्याय—असर्वज्ञावस्था में रहे। एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व वे केवलि-पर्याय—सर्वज्ञावस्था में रहे। इस प्रकार परिपूर्ण एक लाख पूर्व तक श्रामण्य-पर्याय—साधुत्व का पालन कर—चौरासी लाख पूर्व का परिपूर्ण आयुष्य भोगकर हेमन्त के तीसरे मास में, पाँचवें पक्ष में—माघ मास कृष्ण पक्ष में तेरस के दिन दस हजार साधुओं से संपरिवृत्त अष्टापद पर्वत के शिखर पर छह दिनों के निर्जल उपवास में पूर्वाह्ण-काल में पर्यकासन में अवस्थित, चन्द्र योग युक्त अभिजित् नक्षत्र में, जब सुषम-दुःषमा आरक के नवासी पक्ष—तीन वर्ष साढ़े आठ मास बाकी थे, वे (जन्म, जरा एवं मृत्यु के बन्धन छिन्नकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अंतकृत्, परिनिर्वृत्त,) सर्व-दुःख रहित हुए।

४१. जं समयं च णं उसभे अरहा कोसलिए कालगए वीइक्कंते, समुज्जाए छिण्णजाइ-जरा-मरण-बंधणे, सिद्धे, बुद्धे, (मुत्ते, अंतगडे, परिणिव्वुडे,) सव्व-दुक्खप्पहीणे, तं समयं च णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणे चलिए। तए णं से सक्के देविंदे, देवराया, आसणं चलिअं पासइ, पासित्ता ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता भयवं तित्थयरं ओहिणा आभोएइ, आभोएत्ता एवं वयासी—परिणिव्वुए खलु जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे उसहे अरहा कोसलिए, तं जीअमेअं तीअपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं, देवराईणं तित्थगराणं परिनिव्वाणमहिमं करेत्तए। तं गच्छामि णं अहंपि भगवतो तित्थगरस्स परिनिव्वाण-महिमं करेमित्ति कट्टु वंदइ, णमंसइ; वंदित्ता, णमंसित्ता चउरासीईए सामाणिअ-साहस्सीहिं तायत्तीसाए तायत्तीसएहिं, चउहिं लोगपालेहिं, (अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं, तिहिं परिसाहिं, सत्तहिं अणीएहिं,) चउहिं चउरासीईहिं आयरक्खदेव-साहस्सीहिं,

अण्णेहिं अ बहूहिं सोहम्म-कप्प-वासीहिं वेमाणिएहिं देवेहिं, देवीहि अ सद्धिं संपरिवुडे ताए उक्किट्ठाए, (तुरिआए, चवलाए, चंडाए, जयणाए, उद्धुआए, सिग्घाए, दिव्वाए देवगईए वीईवयमाणे) तिरिअम-संखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं जेणेव अट्ठावयपव्वए, जेणेव भगवओ तित्थगरस्स सरीरए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विमणे, णिराणंदे, अंसुपुण्ण-णयणे तित्थयर-सरीरयं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता णच्चासण्णे, णाइदूरे सुस्सूसमाणे, (णमंसमाणे, अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे,) पज्जुवासइ।

[४१] जिस समय कौशलिक, अर्हत् ऋषभ कालगत हुए, जन्म, वृद्धावस्था तथा मृत्यु के वन्धन तोड़कर सिद्ध, बुद्ध, (मुक्त, अन्तकृत्, परिनिर्वृत्त) तथा सर्वदुःख-विरहित हुए, उस समय देवेन्द्र, देवराज शक्र का आसन चलित हुआ। देवेन्द्र, देवराज शक्र ने अपना आसन चलित देखा, अवधिज्ञान का प्रयोग किया, प्रयोग कर भगवान् तीर्थंकर को देखा। देखकर वह यों वोला—जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरतक्षेत्र में कौशलिक, अर्हत् ऋषभ ने परिनिर्वाण प्राप्त कर लिया है, अतः अतीत, वर्तमान, अनागत—भावी देवराजों, देवेन्द्रों शक्रों का यह जीत—व्यवहार है कि वे तीर्थंकरों के परिनिर्वाण-महोत्सव मनाएं। इसलिए मैं भी तीर्थंकर भगवान् का परिनिर्वाण-महोत्सव आयोजित करने हेतु जाऊँ। यों सोचकर देवेन्द्र ने वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार कर वह अपने चौरासी हजार सामानिक देवों, तेतीस हजार त्रायस्त्रिंशक—गुरुस्थानीय देवों, परिवारोपेत अपनी आठ पट्टरानियों, तीन परिषदों, सात सेनाओं, चारों दिशाओं के चौरासी-चौरासी हजार आत्मरक्षक देवों और भी अन्य वहुत से सौधर्मकल्पवासी देवों एवं देवियों से संपरिवृत, उत्कृष्ट—आकाशगति में सर्वोत्तम, त्वरित—मानसिक उत्सुकता के कारण चपल, चंड—क्रोधाविष्ट की ज्यों अपरिश्रान्त, जवन—परमोत्कृष्ट वेग युक्त, उद्धूत—दिगंतव्यापी रज की ज्यों अत्यधिक तीव्र, शीघ्र तथा दिव्य—देवोचित गति से चलता हुआ तिर्यक्-लोकवर्ती असंख्य द्वीपों एवं समुद्रों के बीच से होता हुआ जहाँ अष्टापद पर्वत और जहाँ भगवान् तीर्थंकर का शरीर था, वहाँ आया। उसने विमन—उदास, निरानन्द—आनन्द रहित, अश्रुपूर्णनयन—आँखों में आँसू भरे, तीर्थंकर के शरीर को तीन वार आदक्षिण—प्रदक्षिणा की। वैसा कर, न अधिक निकट न अधिक दूर स्थित हो, (नमस्कार किया, विनयपूर्वक हाथ जोड़े,) पर्युपासना की।

४२. तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे, देवराया, उत्तरद्धलोगाहिवई, अट्ठावीसविमाण-सयसहस्साहिवई, सूलपाणी, वसहवाहणे, सुरिंदे, अयरंबरवरवत्थधरे, (आलइअमालमउडे, णवहेमचारु-चित्तचंचलकुंडलविलिहिज्जमाणगल्ले, महिड्ढीए, महज्जुईए, महाबले, महायसे, महाणुभावे, महासोक्खे, भासुरबोंदी, पलंबवणमालधरे ईसाणकप्पे ईसाणवडेंसए विमाणे सुहम्माए सभाए ईसाणंसि सिंहासणंसि से णं अट्ठावीसाए विमाणावाससयसाहस्सीणं असीईए सामाणिअसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं, चउण्हं लोगपालाणं, अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणीआणं, सत्तण्हं अणीआहिवईणं, चउण्हं असीईणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं, अण्णेसिं च ईसाणकप्प-वासीणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं, पोरेवच्चं, सामित्तं, भट्टित्तं, महत्तरगत्तं, आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहयणट्टगीअवाइअतंतीतलतालतुडिअघणमुइंगपडुपडहवाइअरवेणं) विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

तस्स ईसाणस्स, देविंदस्स, देवरण्णो आसणं चलइ। तए णं से ईसाणे (देविंदे,) देवराया आसणं चलिअं पासइ, पासित्ता ओहिं पउंजइ, पउंजइत्ता भगवं तित्थगरं ओहिणा आभोएइ, आभोएइत्ता जहा सक्के निअगपरिवारेणं भाणेअव्वो (सद्धिं संपरिवुडे ताए उक्किट्ठाए देवगईए तिरिअम-संखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं जेणेव अट्ठावयपव्वए, जेणेव भगवओ तित्थगरस्स सरीरए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विमणे, णिराणंदे, अंसुपुण्ण-णयणे तित्थयरसरीरयं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता णच्चासण्णे, णाइदूरे सुस्सूसमाणे) पज्जुवासइ। एवं सव्वे देविंदा (सणंकुमारे, माहिंदे, बंभे, लंतगे, महासुक्के, सहस्सारे, आणए, पाणए, आरणे,) अच्चुए णिअगपरि-वारेणं भाणिअव्वा, एवं जाव[1] भवणवासीणं इंदा वाणमंतराणं सोलस जोइसिआणं दोण्णि निअग-परिवारा णेअव्वा।

[४२] उस समय उत्तरार्ध लोकाधिपति, अट्ठाईस लाख विमानों के स्वामी, शूलपाणि—हाथ में शूल लिए हुए, वृषभवाहन—बैल पर सवार, निर्मल आकाश के रंग जैसा वस्त्र पहने हुए, (यथोचित रूप में माला एवं मुकुट धारण किए हुए, नव-स्वर्ण-निर्मित मनोहर कुंडल पहने हुए, जो कानों से गालों तक लटक रहे थे, अत्यधिक समृद्धि, द्युति, वल, यश, प्रभाव तथा सुख-सौभाग्य युक्त, देदीप्यमान शरीर युक्त, सव ऋतुओं के फूलों से बनी माला, जो गले से घुटनों तक लटकती थी, धारण किए हुए, ईशानकल्प में ईशानावतंसक विमान की सुधर्मा सभा में ईशान-सिंहासन पर स्थित, अट्ठाईस लाख वैमानिक देवों, अस्सी हजार सामानिक देवों, तेतीस त्रायस्त्रिंश—गुरुस्थानीय देवों, चार लोकपालों, परिवार सहित आठ पट्टरानियों, तीन परिषदों, सात सेनाओं, सात सेनापतियों, अस्सी-अस्सी हजार चारों दिशाओं के आत्मरक्षक देवों तथा अन्य वहुत से ईशानकल्पवासी देवों और देवियों का आधिपत्य, पुरपतित्व, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, आज्ञेश्वरत्व, सेनापतित्व करता हुआ देवराज ईशानेन्द्र निरवच्छिन्न नाट्य, गीत, निपुण वादकों द्वारा वजाये गये वाजे, वीणा आदि के तन्तुवाद्य, तालवाद्य, त्रुटित, मृदंग आदि के तुमुलघोष के साथ) विपुल भोग भोगता हुआ विहरणशील था—रहता था।

ईशान (देवेन्द्र) का आसन चलित हुआ। ईशान देवेन्द्र ने अपना आसन चलित देखा। वैसा देखकर अवधि-ज्ञान का प्रयोग किया। प्रयोग कर भगवान् तीर्थंकर को अवधिज्ञान द्वारा देखा। देख-कर (शक्रेन्द्र की ज्यों अपने देव-परिवार से संपरिवृत उत्कृष्ट गति द्वारा तिर्यक्-लोकस्थ असंख्य द्वीप-समुद्रों के वीच से चलता हुआ जहाँ अष्टापद पर्वत था, जहाँ भगवान् तीर्थंकर का शरीर था, वहाँ आया। आकर उसने विमन—उदास, निरानन्द—आनन्द-रहित, आँखों में आँसू भरे तीर्थंकर के शरीर को तीन वार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की। वैसा कर न अधिक निकट, न अधिक दूर संस्थित हो पर्युपासना की। उसी प्रकार) सभी देवेन्द्र (—सनत्कुमार, माहेन्द्र, व्रह्म, लांतक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत देव लोकों के अधिपति—इन्द्र) अपने-अपने परिवार के साथ वहाँ आये। उसी प्रकार भवनवासियों के बीस इन्द्र, वानव्यन्तरों के सोलह इन्द्र, ज्योतिष्कों के दो इन्द्र—सूर्य तथा चन्द्रमा अपने-अपने देव-परिवारों के साथ वहाँ—अष्टापद पर्वत पर आये।

---

१. देखें सूत्र यही

४३. तए णं सक्के देविंदे, देवराया बहवे भवणवइवाणमंतरजोइसवेमाणिए देवे एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! णंदणवणाओ सरसाइं गोसीसवरचंदणकट्ठाइं साहरह, साहरेत्ता तओ चिइगाओ रएह—एगं भगवओ तित्थगरस्स, एगं गणधराणं, एगं अवसेसाणं अणगाराणं। तए णं ते भवणवइ (वाणमंतर-जोइसिअ) वेमाणिआ देवा णंदणवणाओ सरसाइं गोसीसवरचंदणकट्ठाइं साहरंति, साहरेत्ता तओ चिइगाओ रएंति, एगं भगवओ तित्थगरस्स, एगं गणहराणं, एगं अवसेसाणं अणगाराणं।

तए णं से सक्के देविंदे, देवराया आभिओगे देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! खीरोदगसमुद्दाओ खीरोदगं साहरह। तए णं ते आभिओगा देवा खीरोदगसमुद्दाओ खीरोदगं साहरंति।

तए णं से सक्के देविंदे, देवराया आभिओगे देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! खीरोदगसमुद्दाओ खीरोदगं साहरह। तए णं ते आभिओगा देवा खीरोदगसमुद्दाओ खीरोदगं साहरंति। तए णं से सक्के देविंदे, देवराया तित्थगरसरीरगं खीरोदगेणं ण्हाणेति, ण्हाणेत्ता सरसेणं गोसीसवरचंदणेणं अणुलिंपइ, अणुलिंपेत्ता हंसलक्खणं पडसाडयं णिअंसेइ, णिअंसेत्ता सव्वालंकारविभूसिअं करेति।

तए णं ते भवणवइ जाव[१] वेमाणिआ गणहरसरीरगाइं अणगारसरीरगाइंपि खीरोदगेणं ण्हावंति, ण्हावेत्ता सरसेणं गोसीसवरचंदणेणं अणुलिंपंति, अणुलिंपेत्ता अहयाइं दिव्वाइं देवदूसजुअलाइं णिअंसंति, णिअंसेत्ता सव्वालंकारविभूसिआइं करेंति। तए णं से सक्के देविंदे, देवराया ते बहवे भवणवइ जाव[२] वेमाणिए देवे एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! ईहामिगउसभतुरग (-णरमगरविहगवालगकिन्नररुरुसरभचमरकुंजर-)वणलयभत्तिचित्ताओ तओ सिवियाओ विउव्वह, एगं भगवओ तित्थगरस्स, एगं गणहराणं, एगं अवसेसाणं अणगाराणं, तए णं ते बहवे भवणवइ जाव[३] वेमाणिआ तओ सिविआओ विउव्वंति, एगं भगवओ तित्थगरस्स, एगं गणहराणं, एगं अवसेसाणं अणगाराणं।

तए णं से सक्के देविंदे, देवराया विमणे, णिराणंदे, अंसुपुण्णणयणे भगवओ तित्थगरस्स विणट्ठजम्मजरामरणस्स सरीरगं सीअं आरुहेति आरुहेत्ता चिइगाइ ठवेइ। तए णं ते बहवे भवणवइ जाव[४] वेमाणिआ देवा गणहराणं अणगाराण य विणट्ठजम्मजरामरणाणं सरीरगाइं सीअं आरुहेंति, आरुहेत्ता चिइगाए ठवेंति।

---

१. देखें सूत्र यही
२. देखें सूत्र यही
३. देखें सूत्र यही
४. देखें सूत्र यही

तए णं सक्के देविंदे, देवराया अग्गिकुमारे देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! तित्थगरचिइगाए, (गणहरचिइगाए,) अणगारचिइगाए अगणिकायं विउव्वह, विउव्वित्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणह। तए णं ते अग्गिकुमारा देवा विमणा, णिराणंदा, अंसुपुण्णणयणा तित्थगरचिइगाए जाव[1] अणगारचिइगाए अ अगणिकायं विउव्वंति। तए णं से सक्के देविंदे, देवराया वाउकुमारे देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! तित्थगरचिइगाए जाव[2] अणगारचिइगाए अ वाउक्कायं विउव्वह, विउव्वित्ता अगणिकायं उज्जालेह, तित्थगरसरीरगं, गणहरसरीरगाइं, अणगारसरीरगाइं, च झामेह। तए णं ते वाउकुमारा देवा विमणा, णिराणंदा, अंसुपुण्णणयणा तित्थगरचिइगाए जाव[3] विउव्वंति, अगणिकायं उज्जालेंति, तित्थगरसरीरगं (गणहर-सरीरगाणि,) अणगारसरीरगाणि अ झामेंति। तए णं से सक्के देविंदे, देवराया ते बहवे भवणवइ जाव[4] वेमाणिए देवे एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! तित्थगरचिइगाए जाव[5] अणगार-चिइगाए अगुरुतुरुक्कघयमधुं च कुंभग्गसो अ भारग्गसो अ साहरह। तए णं ते भवणवइ जाव[6] तित्थगर-(चिइगाए, गणहरचिइगाए, अणगारचिइगाए अगुरुतुरुक्कघयमधुं च कुंभग्गसो अ) भारग्गसो अ साहरंति। तए णं से सक्के देविंदे देवराया मेहकुमारे देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! तित्थगरचिइगं जाव[7] अणगारचिइगं च खीरोदगेणं णिव्वावेह। तए णं ते मेहकुमारा देवा तित्थगरचिइगं जाव[8] णिव्वावेंति।

तए णं से सक्के देविंदे, देवराया भगवओ तित्थगरस्स उवरिल्लं दाहिणं सकहं गेण्हइ, ईसाणे देविंदे देवराया उवरिल्लं वामं सकहं गेण्हइ, चमरे असुरिंदे, असुरराया हिट्ठिल्लं दाहिणं सकहं गेण्हइ, बली वइरोअणिंदे, वइरोअणराया हिट्ठिल्लं वामं सकहं गेण्हइ, अवसेसा भवणवइ जाव[9] वेमाणिआ देवा जहारिहं अवसेसाइं अंगमंगाइं, केई जिणभत्तीए केई जीअमेअंत्ति कट्टु केई धम्मोत्ति-कट्टु गेण्हंति।

तए णं से सक्के देविंदे, देवराया बहवे भवणवइ जाव[10] वेमाणिए देवे जहारिहं एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! सव्वरयणामए, महइमहालए तओ चेइअथूभे करेह, एगं

---

१. देखें सूत्र यही
२. देखें सूत्र यही
३. देखें सूत्र यही
४. देखें सूत्र यही
५. देखें सूत्र यही
६. देखें सूत्र यही
७. देखें सूत्र यही
८. देखें सूत्र यही
९. देखें सूत्र यही
१०. देखें सूत्र यही

भगवओ तित्थगरस्स चिइगाए, एगं गणहरचिइगाए, एगं अव सेसाणं अणगाराणं चिइगाए। तए णं ते बहवे (भवणवइवाणमंतर-जोइसिअ-वेमाणिए देवा) करेंति।

तए णं ते बहवे भवणवइ जाव[1] वेमाणिआ देवा तित्थगरस्स परिणिव्वाणमहिमं करेंति, करेत्ता जेणेवे नंदीसरवरे दीवे तेणेव उवागच्छन्ति। तए णं से सक्के देविंदे, देवराया पुरत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए अट्ठाहिअं महामहिमं करेति। तए णं सक्कस्स देविंदस्स देवरायस्स चत्तारि लोगपाला चउसु दहिमुहगपव्वएसु अट्ठाहियं महामहिमं करेंति। ईसाणे देविंदे, देवराया उत्तरिल्ले अंजगणे अट्ठाहिअं महामहिमं करेइ, तस्स लोगपाला चउसु दहिमुहगेसु अट्ठाहिअं, चमरो अ दाहिणिल्ले अंजगणे, तस्स लोगपाला दहिमुहगपव्वएसु, बली पच्चत्थिमिल्ले अंजगणे, तस्स लोगपाला दहिमुहगेसु। तए णं ते बहवे भवणवइवाणमंतर (देवा) अट्ठाहिआओ महामहिमाओ करेंति, करित्ता जेणेव साइं २ विमाणाइं, जेणेव साइं २ भवणाइं, जेणेव साओ २ सभाओ सुहम्माओ, जेणेव सगा २ माणवगा चेइअखंभा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु जिणसकहाओ पक्खिवंति, पक्खिवित्ता अग्गेहिं वरेहिं मल्लेहि अ गंधेहि अ अच्चेंति, अच्चेत्ता विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

[४३] तब देवराज, देवेन्द्र शक्र ने बहुत से भवनपति, वानव्यन्तर तथा ज्योतिष्क देवों से कहा—देवानुप्रियो ! नन्दनवन से शीघ्र स्निग्ध, उत्तम गोशीर्ष चन्दन-काष्ठ लाओ। लाकर तीन चिताओं की रचना करो—एक भगवान् तीर्थंकर के लिए, एक गणधरों के लिए तथा एक बाकी के अनगारों के लिए। तब वे भवनपति, (वानव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा) वैमानिक देव नन्दनवन से स्निग्ध, उत्तम गोशीर्ष चन्दन-काष्ठ लाये। लाकर चिताएँ बनाईं—एक भगवान् तीर्थंकर के लिए, एक गणधरों के लिए तथा एक बाकी के अनगारों के लिए। तब देवराज शक्रेन्द्र ने आभियोगिक देवों को पुकारा। पुकार कर उन्हें कहा—देवानुप्रियो ! क्षीरोदक समुद्र से शीघ्र क्षीरोदक लाओ। वे आभियोगिक देव क्षीरोदक समुद्र से क्षीरोदक लाये। तत्पश्चात् देवराज शक्रेन्द्र ने तीर्थंकर के शरीर को क्षीरोदक से स्नान कराया। स्नान कराकर सरस, उत्तम गोशीर्ष चन्दन से उसे अनुलिप्त किया। अनुलिप्त कर उसे हंस-सदृश श्वेत वस्त्र पहनाये। वस्त्र पहनाकर सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित किया—सजाया। फिर उन भवनपति, वैमानिक आदि देवों ने गणधरों के शरीरों को तथा साधुओं के शरीरों को क्षीरोदक से स्नान कराया। स्नान कराकर उन्हें स्निग्ध, उत्तम गोशीर्ष चन्दन से अनुलिप्त किया। अनुलिप्त कर दो दिव्य देवदूष्य—वस्त्र धारण कराये। वैसा कर सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित किया।

तत्पश्चात् देवराज शक्रेन्द्र ने उन अनेक भवनपति, वैमानिक आदि देवों से कहा—देवानुप्रियो! ईहामृग—भेड़िया, वृषभ—बैल, तुरंग—घोड़ा, (मनुष्य, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, कस्तूरी मृग, शरभ—अष्टापद, चँवर, हाथी,) वनलता— के चित्रों से अंकित तीन शिविकाओं की विकुर्वणा करो—एक भगवान् तीर्थंकर के लिए, एक गणधरों के लिए तथा एक अवशेष साधुओं के लिए। इस पर उन बहुत से भवनपति, वैमानिक आदि देवों ने तीन शिविकाओं की विकुर्वणा की—एक भगवान् तीर्थंकर के

---

१. देखें सूत्र यही

लिए, एक गणधरों के लिए तथा एक अवशेष अनगारों के लिए। तब उदास, खिन्न एवं आंसू भरे देवराज देवेन्द्र शक्र ने भगवान् तीर्थंकर के, जिन्होंने जन्म, जरा तथा मृत्यु को विनष्ट कर दिया था—इन सबसे जो अतीत हो गये थे, शरीर को शिविका पर आरूढ किया—रखा। आरूढ कर चिता पर रखा। भवनपति तथा वैमानिक आदि देवों ने जन्म, जरा तथा मरण के पारगामी गणधरों एवं साधुओं के शरीर शिविका पर आरूढ किये। आरूढ कर उन्हें चिता पर रखा।

देवराज शक्रेन्द्र ने तब अग्निकुमार देवों को पुकारा। पुकार कर कहा—देवानुप्रियो! तीर्थकर की चिता में, (गणधरों की चिता में) तथा साधुओं की चिता में शीघ्र अग्निकाय की विकुर्वणा करो—अग्नि उत्पन्न करो। ऐसा कर मुझे सूचित करो कि मेरे आदेशानुरूप कर दिया गया है। इस पर उदास, दुःखित तथा अश्रुपूरितनेत्र वाले अग्निकुमार देवों ने तीर्थंकर की चिता, गणधरों की चिता तथा अनगारों की चिता में अग्निकाय की विकुर्वणा की। देवराज शक्र ने फिर वायुकुमार देवों को पुकारा। पुकारकर कहा—तीर्थंकर की चिता, गणधरों की चिता एवं अनगारों की चिता में वायुकाय की विकुर्वणा करो, अग्नि प्रज्वलित करो, तीर्थंकर की देह को, गणधरों तथा अनगारों की देह को ध्मापित करो—अग्निसंयुक्त करो। विमनस्क, शोकान्वित तथा अश्रुपूरितनेत्र वाले वायुकुमार देवों ने चिताओं में वायुकाय की विकुर्वणा की—पवन चलाया, तीर्थंकर-शरीर (गणधर-शरीर) तथा अनगार-शरीर ध्मापित किये।

देवराज शक्रेन्द्र ने बहुत से भवनपति तथा वैमानिक आदि देवों से कहा—देवानुप्रियो! तीर्थंकर-चिता, गणधर-चिता तथा अनगार-चिता में विपुल परिमाणमय अगर, तुरुष्क तथा अनेक घटपरिमित घृत एवं मधु डालो। तब उन भवनपति आदि देवों ने तीर्थंकर-चिता, (गणधर-चिता तथा अनगार-चिता में विपुलपरिमाणमय अगर, तुरुष्क तथा अनेक घट-परिमित) घृत एवं मधु डाला।

देवराज शक्रेन्द्र ने मेघकुमार देवों को पुकारा। पुकार कर कहा—देवानुप्रियो! तीर्थंकर-चिता, गणधर-चिता तथा अनगार-चिता को क्षीरोदक से निर्वापित करो—शान्त करो—बुझाओ। मेघकुमार देवों ने तीर्थंकर-चिता, गणधर-चिता एवं अनगार-चिता को निर्वापित किया।

तदनन्तर देवराज शक्रेन्द्र ने भगवान् तीर्थंकर के ऊपर की दाहिनी डाढ—डाढ की हड्डी ली। असुराधिपति चमरेन्द्र ने नीचे की दाहिनी डाढ ली। वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बली ने नीचे की बाईं डाढ ली। बाकी के भवनपति, वैमानिक आदि देवों ने यथायोग्य अंग—अंगों की हड्डियाँ ली। कइयों ने जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति से, कइयों ने यह समुचित पुरातन परंपरानुगत व्यवहार है, यह सोचकर तथा कइयों ने इसे अपना धर्म मानकर ऐसा किया।

तदनन्तर देवराज, देवेन्द्र शक्र ने भवनपति एवं वैमानिक आदि देवों को यथायोग्य यों कहा—देवानुप्रियो! तीन सर्व रत्नमय विशाल स्तूपों का निर्माण करो—एक भगवान् तीर्थंकर के चिता-स्थान पर, एक गणधरों के चिता-स्थान पर तथा एक अवशेष अनगारों के चिता-स्थान पर। उन बहुत से (भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा वैमानिक) देवों ने वैसा ही किया।

फिर उन अनेक भवनपति, वैमानिक आदि देवों ने तीर्थंकर भगवान् का परिनिर्वाण महोत्सव मनाया। ऐसा कर वे नन्दीश्वर द्वीप में आ गये। देवराज, देवेन्द्र शक्र ने पूर्व दिशा में स्थित अंजनक पर्वत पर अष्टदिवसीय परिनिर्वाण-महोत्सव मनाया। देवराज, देवेन्द्र शक्र के चार लोकपालों ने चारों

दधिमुख पर्वतों पर अष्टदिवसीय परिनिर्वाण-महोत्सव मनाया। देवराज ईशानेन्द्र ने उत्तरदिशावर्ती अंजनक पर्वत पर अष्टदिवसीय परिनिर्वाण-महोत्सव मनाया। उसके लोकपालों ने चारों दधिमुख पर्वतों पर अष्टाह्निक परिनिर्वाण-महोत्सव मनाया। चमरेन्द्र ने दक्षिण दिशावर्ती अंजनक पर्वत पर, उसके लोकपालों ने दधिमुख पर्वतों पर परिनिर्वाण-महोत्सव मनाया। बलि ने पश्चिम दिशावर्ती अंजनक पर्वत पर और उसके लोकपालों ने दधिमुख पर्वतों पर परिनिर्वाण-महोत्सव मनाया। इस प्रकार बहुत से भवनपति, वानव्यन्तर आदि देवों ने अष्टदिवसीय महोत्सव मनाये। ऐसा कर वे जहाँ-तहाँ अपने विमान, भवन, सुधर्मा सभाएँ तथा अपने माणवक नामक चैत्यस्तंभ थे, वहाँ आये। आकर जिनेश्वर देव की डाढ आदि अस्थियों को वज्रमय—हीरों से निर्मित गोलाकार समुद्गक—भाजन-विशेष—डिबियाओं में रखा। रखकर अभिनव, उत्तम मालाओं तथा सुगन्धित द्रव्यों से अर्चना की। अर्चना कर अपने विपुल सुखोपभोगमय जीवन में घुलमिल गये।

अवसर्पिणी : दुःषम-सुषमा

४४- तीसे णं समाए दोहिं सागरोवमकोडाकोडीहिं काले वीइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं जाव[1] परिहायमाणे परिहायमाणे एत्थ णं दूसमसुसमा णामं समा काले पडिवज्जिसु समणाउसो !

तीसे णं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आगारभावपडोआरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते। से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव[2] मणीहिं उवसोभिए, तंजहा—कत्तिमेहिं चेव अकत्तिमेहिं चेव।

तीसे णं भंते ! समाए भरहे मणुआणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तेसिं मणुआणं छव्विहे संघयणे, छव्विहे संठाणे, बहूइं धणूइं उद्धं उच्चत्तेणं, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी आउअं पालेंति। पालित्ता अप्पेगइआ णिरयगामी, (अप्पेगइआ तिरियगामी, अप्पेगइआ मणुयगामी, अप्पेगइआ) देवगामी, अप्पेगइआ सिज्झंति, बुज्झंति, (मुच्चंति, परिणिव्वायंति,) सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।

तीसे णं समाए तओ वंसा समुप्पज्जित्था, तंजहा—अरहंतवंसे, चक्कवट्टिवंसे, दसारवंसे। तीसे णं समाए तेवीसं तित्थयरा, इक्कारस चक्कवट्टी, णव बलदेवा, णव वासुदेवा समुप्पज्जित्था।

[४४] आयुष्मन् श्रमण गौतम ! उस समय का—तीसरे आरक का दो सागरोपम कोडाकोडी काल व्यतीत हो जाने पर अवसर्पिणी काल का दुःषम-सुषमा नामक चौथा आरक प्रारंभ होता है। उसमें अनन्त वर्ण-पर्याय आदि का क्रमशः ह्रास होता जाता है।

भगवन् ! उस समय भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा होता है ?

गौतम ! उस समय भरतक्षेत्र का भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय होता है। मुरज के ऊपरी भाग—चर्मपुट जैसा समतल होता है, कृत्रिम तथा अकृत्रिम मणियों से उपशोभित होता है।

भगवन् ! उस समय मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा होता है ?

---

१. देखें सूत्र संख्या २८

२. देखें सूत्र संख्या ६.

गौतम ! उन मनुष्यों के छह प्रकार के संहनन होते हैं, छह प्रकार के संस्थान होते हैं। उनकी ऊँचाई अनेक धनुष-प्रमाण होती है। जघन्य अन्तर्मुहूर्त का तथा उत्कृष्ट पूर्वकोटि का आयुष्य भोगकर उनमें से कई नरक-गति में, (कई तिर्यञ्च-गति में, कई मनुष्य-गति में) तथा कई देव-गति में जाते हैं, कई सिद्ध, बुद्ध, (मुक्त एवं परिनिर्वृत्त होते हैं,) समस्त दुःखों का अन्त करते हैं।

उस काल में तीन वंश उत्पन्न होते हैं—अर्हत् वंश, चक्रवर्ति-वंश तथा दशारवंश—बलदेव-वासुदेव-वंश। उस काल में तेवीस तीर्थंकर, ग्यारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव तथा नौ वासुदेव उत्पन्न होते हैं।

अवसर्पिणी : दुःषमा आरक

४५. तीसे णं समाए एक्काए सागरोवमकोडाकोडीए बायलीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिआए काले वीइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं तहेव जाव[1] परिहाणीए परिहायमाणे २ एत्थ णं दूसमाणामं समा काले पडिवज्जिस्सइ समणाउसो !

तीसे णं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आगारभावपडोआरे भविस्सइ ?

गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे भविस्सइ, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा मुइंगपुक्खरेइ वा जाव[2] णाणामणिपंचवण्णेहिं कत्तिमेहिं चेव अकत्तिमेहिं चेव।

तीसे णं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स मणुआणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

गोअमा ! तेसिं मणुआणं छव्विहे संघयणे, छव्विहे संठाणे, बहुइओ रयणीओ उद्धं उच्चत्तेणं, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं साइरेगं वाससयं आउअं पालेंति, पालेत्ता अप्पेगइआ णिरयगामी, जाव[3] सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।

तीसे णं समाए पच्छिमे तिभागे गणधम्मे, पासंडधम्मे, रायधम्मे, जायतेए, धम्मचरणे अ वोच्छिज्जिस्सइ।

[४५] आयुष्मन् श्रमण गौतम ! उस समय के—चतुर्थ आरक के बयालीस हजार वर्ष कम एक सागरोपम कोडाकोडी काल व्यतीत हो जाने पर अवसर्पिणी-काल का दुःषमा नामक पंचम आरक प्रारंभ होता है। उसमें अनन्त वर्णपर्याय आदि का क्रमशः ह्रास होता जाता है।

भगवन् ! उस काल में भरतक्षेत्र का कैसा आकार-स्वरूप होता है ?

गौतम ! उस समय भरतक्षेत्र का भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय होता है। वह मुरज के, मृदंग के ऊपरी भाग—चर्मपुट जैसा समतल होता है, विविध प्रकार की पाँच वर्णों की कृत्रिम तथा अकृत्रिम मणियों द्वारा उपशोभित होता है।

भगवन् ! उस काल में भरतक्षेत्र के मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा होता है ?

---

१. देखें सूत्र संख्या २८

२. देखें सूत्र संख्या ६

३. देखें सूत्र संख्या १२

गौतम ! उस समय भरतक्षेत्र के मनुष्यों के छह प्रकार के संहनन एवं संस्थान होते हैं। उनकी ऊँचाई अनेक हाथ—सात हाथ की होती है। वे जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट कुछ—तेतीस वर्ष अधिक सौ वर्ष के आयुष्य का भोग करते हैं। आयुष्य का भोग कर उनमें से कई नरक-गति में, (कई तिर्यञ्च-गति में, कई मनुष्य-गति में, कई देव-गति में जाते हैं, कई सिद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं परिनिर्वृत्त होते हैं)।

उस काल के अन्तिम तीसरे भाग में गणधर्म—किसी समुदाय या जाति के वैवाहिक आदि स्व-स्व प्रवर्तित व्यवहार, पाखण्ड-धर्म—निर्ग्रन्थ-प्रवचनेतर शाक्य आदि अन्यान्य मत, राजधर्म—निग्रह-अनुग्रहादि मूलक राजव्यवस्था, जाततेज—अग्नि तथा चारित्र-धर्म विच्छिन्न हो जाता है।

विवेचन—भाषाविज्ञान के अनुसार किसी शब्द का एक समय जो अर्थ होता है, आगे चलकर भिन्न परिस्थितियों में कभी-कभी वह सर्वथा परिवर्तित हो जाता है। यही स्थिति पाषंड या पाखण्ड शब्द के साथ है। आज प्रचलित पाखण्ड या पाखण्डी शब्द के अर्थ में प्राचीन काल में प्रचलित अर्थ से सर्वथा भिन्नता है। भगवान् महावीर के समय में और शताब्दियों तक पाषंडी या पाखण्डी शब्द अन्य मतों के अनुयायियों के लिए प्रयुक्त होता रहा। आज पाखण्ड शब्द निन्दामूलक अर्थ में है। ढोंगी को पाखण्डी कहा जाता है। प्राचीन काल में पाषंड या पाखण्ड के साथ निन्दात्मकता नहीं जुड़ी थी। अशोक के शिलालेखों में भी अनेक स्थानों पर यह आया है।

अवसर्पिणी : दुःषम-दुःषमा

४६. तीसे णं समाए एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं काले विइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं, गंधपज्जवेहिं, रसपज्जवेहिं, फासपज्जवेहिं जाव[1] परिहायमाणे २ एत्थ णं दूसमदूसमाणामं समा काले पडिवज्जिस्सइ समणाउओ !

तीसे णं भंते ! समाए उत्तमकट्ठपत्ताए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोआरे भविस्सइ ?

गोयमा ! काले भविस्सइ हाहाभूए, भंभाभूए, कोलाहलभूए, समाणुभावेण य खरफरुस-धूलिमइला, दुव्विसहा, वाउला, भयंकरा य वाया संवट्टगा य वाइंति, इह अभिक्खणं २ धूमाहिंति अ दिसा समंता रउस्सला रेणुकलुसतमपडलणिरालोआ, समयलुक्खयाए णं अहिअं चंदा सीअं मोच्छिहिंति, अहिअं सूरिआ तविस्संति, अदुत्तरं च णं गोयमा ! अभिक्खणं अरसमेहा, विरसमेहा, खारमेहा, खत्तमेहा, अग्गिमेहा, विज्जुमेहा, विसमेहा, अजवणिज्जोदगा, वाहिरोगवेदणोदीरणपरिणामसलिला, अमणुण्णपाणिअगा चंडानिलपहततिक्खधाराणिवातपउरं वासं वासिहिंति, जेणं भरहे वासे गामागरणगरखेडकब्बडमडंबदोणमुहपट्टणासमगयं जणवयं, चउप्पयगवेलए, खहयरे, पक्खिसंघे गामारण्णप्पयारणिरए तसे अ पाणे, बहुप्पयारे रुक्खगुच्छगुम्मलयवल्लिपवालंकुरमादीए तणवणस्सइकाइए ओसहीओ अ विद्धंसेहिंति, पव्वयगिरिडोंगरुत्थलभट्ठिमादीए अ वेअड्ढगिरिवज्जे विरावेहिंति, सलिलबिलविसमगत्तणिण्णुण्णयाणि अ गंगासिंधुवज्जाइं समीकरेहिंति।

---

१. देखें सूत्र संख्या २८

तीसे णं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स भूमीए केरिसए आयारभावपडोआरे भविस्सइ ?

गोयमा ! भूमी भविस्सइ इंगालभूआ, मुम्मुरभूआ, छारिअभूआ, तत्तकवेल्लुअभूआ, तत्तसमजोइभूआ, धूलिवहुला, रेणुवहुला, पंकवहुला, पणयवहुला, चलणिवहुला, बहूणं धरणिगोअराणं सत्ताणं दुन्निक्कमा यावि भविस्सइ।

तीसे णं भंते ! समाए भरहे वासे मणुआणं केरिसए आयारभावपडोआरे भविस्सइ ?

गोयमा ! मणुआ भविस्संति दुरूवा, दुव्वण्णा, दुगंधा, दुरसा दुफासा, अणिट्ठा, अकंता, अप्पिआ, असुभा, अमणुन्ना, अमणामा, हीणस्सरा, दीणस्सरा, अणिट्ठस्सरा, अकंतस्सरा, अप्पिअस्सरा, अमणामस्सरा, अमणुण्णस्सरा, अणादेज्जवयणपच्चायाता, णिल्लज्जा, कूड-कवड-कलह-बंध-वेर-निरया, मज्जायातिक्कमप्पहाणा, अकज्जणिच्चुज्जुया गुरुणिओगविणयरहिआ य, विकलरूवा, परूढणहकेसमंसुरोमा, काला, खरफरुससमावण्णा, फुट्टसिरा, कविलपलिअकेसा, बहुण्हारुणिसंपिणद्ध-दुद्दंसणिज्जरूवा, संकुडिअ-वलीतरंग-परिवेढिअंगमंगा, जरापरिणयव्वथेरगणरा, पविरलपरिसडि-अदंतसेढी, उब्भडघडमुहा, विसमणयणवंकणासा, वंकवलीविगयभेसणमुहा, दद्दु-विकिटिभ-सिब्भ-फुडिअ-फरुसच्छवी, चित्तलंगमंगा, कच्छूखसराभिभूआ, खरतिक्खणक्खकंडूइअविकयतणू, टोलगति-विसमसंधिवंधणा, उक्कडुअट्ठिअविभत्तदुब्बलकुसंघयणकुप्पमाणकुसंठिआ, कुरूवा, कुट्ठाणासणकुसेज्ज-कुभोइणो, असुइणो, अणेगवाहिपीलिअंगमंगा, खलंतविब्भलगई, णिरुच्छाहा, सत्तपरिवज्जिया विगयचेट्ठा, नट्ठतेआ, अभिक्खणं सीउण्हखरफरुसवायविज्झडिअमलिणपंसुरओगुंडिअंगमंगा, वहुकोहमाणमायालोभा, बहुमोहा, असुभदुक्खभागी, ओसण्णं धम्मसण्णसम्मत्तपरिब्भट्ठा, उक्कोसेणं रयणिप्पमाणमेत्ता, सोलसवीसइवासपरमाउसो, वहुपुत्त-णत्तुपरियालपणयबहुला गंगासिंधूओ महाणईओ वेअड्ढं च पव्वयं नीसाए बावत्तरिं णिगोअबीअं बीअमेत्ता बिलवासिणो मणुआ भविस्संति।

तेणं णं भंते ! मणुआ किमाहारिस्संति ?

गोयमा ! ते णं कालेणं ते णं समएणं गंगासिंधूओ महाणईओ रहपहमित्तवित्थराओ अक्खसोअप्पमाणमेत्तं जलं वोज्झिहिंति। सेवि अ णं जले बहुमच्छकच्छभाइण्णे, णो चेव णं आउवहुले भविस्सइ।

तए णं ते मणुआ सूरुग्गमणमुहुत्तंसि अ सूरत्थमणमुहुत्तंसि अ बिलेहिंतो णिद्धाइस्संति, विलेहिंतो णिद्धाइत्ता मच्छकच्छभे थलाइं गाहेहिंति, मच्छकच्छभे थलाइं गाहेत्ता सीआतवतत्तेहिं मच्छकच्छभेहिं इक्कवीसं वाससहस्साइं वित्तिं कप्पेमाणा विहरिस्संति।

ते णं भंते ! मणुआ णिस्सीला, णिव्वया, णिग्गुणा, णिम्मेरा, णिप्पच्चक्खाणपोसोहववासा, ओसण्णं मंसाहारा, मच्छाहारा, खुड्डाहारा, कुणिमाहारा कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिंति, कहिं उववज्जिहिंति ?

गोयमा ! ओसण्णं णरगतिरिक्खजोणिएसु उववज्जिहिंति।

तीसे णं भंते ! समाए सीहा, वग्घा, विगा, दीविश्रा, अच्छा, तरस्सा, परस्सरा, सरभसियालबिरालसुणगा, कोलसुणगा, ससगा, चित्तगा, चिल्ललगा ओसण्णं मंसाहारा, मच्छाहारा, खोद्दाहारा, कुणिमाहारा कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिंति कहिं उववज्जिहिंति ?

गोयमा ! ओसण्णं णरगतिरिक्खजोणिएसु उववज्जिहिंति।

ते णं भंते ! ढंका, कंका, पीलगा, मग्गुगा, सिही ओसण्णं मंसाहारा, (मच्छाहारा, खोद्दाहारा, कुणिमाहारा कालमासे कालं किच्चा) कहिं गच्छिहिंति कहिं उववज्जिहिंति ?

गोयमा ! ओसण्णं णरगतिरिक्खजोणिएसु-(गच्छिहिंति) उववज्जिहिंति ।

[४६] आयुष्मन् श्रमण गौतम ! उस समय के—पंचम आरक के इक्कीस हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर अवसर्पिणी काल का दुःषम-दुःषमा नामक छठा आरक प्रारंभ होगा। उसमें अनन्त वर्ण-पर्याय, गन्धपर्याय, रसपर्याय तथा स्पर्शपर्याय आदि का क्रमशः ह्रास होता जायेगा।

भगवन् ! जब वह आरक उत्कर्ष की पराकाष्ठा पर पहुँचा होगा, तो भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा होगा ?

गौतम ! उस समय दुःखार्तत्तावश लोगों में हाहाकार मच जायेगा, गाय आदि पशुओं में भंभा—अत्यन्त दुःखोद्विग्नता से चीत्कार फैल जायेगा अथवा भंभा—भेरी के भीतरी भाग की शून्यता या सर्वथा रिक्तता के सदृश वह समय विपुल जन-क्षय के कारण जन-शून्य हो जायेगा। उस काल का ऐसा ही प्रभाव है।

तब अत्यन्त कठोर, धूल से मलिन, दुर्विषह—दुस्सह, व्याकुल—आकुलतापूर्ण भयंकर वायु चलेंगे, संवर्तक—तृण, काष्ठ आदि को उड़ाकर कहीं का कहीं पहुँचा देने वाले वायु-विशेष चलेंगे। उस काल में दिशाएँ अभीक्ष्ण—क्षण क्षण—पुनः पुनः धुआं छोड़ती रहेंगी। वे सर्वथा रज से भरी होंगी, धूल से मलिन होंगी तथा घोर अंधकार के कारण प्रकाशशून्य हो जायेंगी। काल की रूक्षता के कारण चन्द्र अधिक अहित—अपथ्य शीत-हिम छोड़ेंगे। सूर्य अधिक असह्य, जिसे सहा न जा सके, इस रूप में तपेंगे। गौतम ! उसके अनन्तर अरसमेघ—मनोज्ञ रस-वर्जित जलयुक्त मेघ, विरसमेघ—विपरीत रसमय जलयुक्त मेघ, क्षारमेघ—खार के समान जलयुक्त मेघ, खात्रमेघ—करीष सदृश रसमय जलयुक्त मेघ, अथवा अम्ल या खट्टे जलयुक्त मेघ, अग्निमेघ—अग्नि सदृश दाहक जलयुक्त मेघ, विद्युन्मेघ—विद्युत्-बहुल जलवर्जित मेघ अथवा बिजली गिराने वाले मेघ, विषमेघ—विषमय जलवर्षक मेघ, अयापनीयोदक—अप्रयोजनीय जलयुक्त, व्याधि—कुष्ट आदि लम्बी बीमारी, रोग—शूल आदि सद्योघाती—फौरन प्राण ले लेने वाली बीमारी जैसे वेदनोत्पादक जलयुक्त, अप्रिय जलयुक्त मेघ, तूफानजनित तीव्र प्रचुर जलधारा छोड़ने वाले मेघ निरंतर वर्षा करेंगे।

भरतक्षेत्र में ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्वट, मडम्ब, द्रोणमुख, पट्टन, आश्रमगत जनपद—मनुष्यवृन्द, गाय आदि चौपाये प्राणी, खेचर—वैताढ्य पर्वत पर निवास करने वाले गगनचारी विद्याधर, पक्षियों के समूह, गाँवों और वनों में स्थित द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीव, बहुत प्रकार के आम्र आदि वृक्ष, वृन्ताकी आदि गुच्छ, नवमालिका आदि गुल्म, अशोकलता आदि लताएँ, वालुक्य प्रभृति वेलें, पत्ते, अंकुर इत्यादि बादर वानस्पतिक जीव—तृण आदि वनस्पतियाँ, औषधियाँ—इन सबका वे विध्वंस कर देंगे। वैताढ्य आदि शाश्वत पर्वतों के अतिरिक्त अन्य पर्वत—उज्जयन्त,

वैभार आदि क्रीडापर्वत, गोपाल, चित्रकूट आदि गिरि, डूंगर—पथरीले टीले, उन्नत स्थल—ऊँचे स्थल, वालू के टीबे, भ्राष्ट्र—धूलवर्जित भूमि—पठार, इन सब को तहस-नहस कर डालेंगे। गंगा और सिन्धु महानदी के अतिरिक्त जल के स्रोतों, झरनों, विषमगर्त—ऊवड़-खावड़ खड्डों, निम्न-उन्नत—नीचे-ऊँचे जलीय स्थानों को समान कर देंगे—उनका नाम-निशान मिटा देंगे।

भगवन्! उस काल में भरतक्षेत्र की भूमि का आकार-स्वरूप कैसा होगा?

गौतम! भूमि अंगारभूत—ज्वालाहीन वह्निपिण्डरूप, मुर्मुरभूत—तुषाग्निसदृश विरल-अग्निकणमय, क्षारिकभूत—भस्म रूप, तप्तकवेल्लुकभूत—तपे हुए कटाह सदृश, सर्वत्र एक जैसी तप्त, ज्वालामय होगी। उसमें धूलि, रेणु—वालुका, पंक—कीचड़, प्रतनु—पतले कीचड़, चलते समय जिसमें पैर डूब जाए, ऐसे प्रचुर कीचड़ की बहुलता होगी। पृथ्वी पर चलने-फिरने वाले प्राणियों का उस पर चलना बड़ा कठिन होगा।

भगवन्! उस काल में भरतक्षेत्र में मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा होगा?

गौतम! उस समय मनुष्यों का रूप, वर्ण-रंग, गंध, रस तथा स्पर्श अनिष्ट—अच्छा नहीं लगने वाला, अकान्त—कमनीयता रहित, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ—मन को नहीं भाने वाला तथा अमनोऽम—अमनोगम्य - मन को नहीं रुचने वाला होगा। उनका स्वर हीन, दीन, अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोगम्य और अमनोज्ञ होगा। उनका वचन, जन्म अनादेय—अशोभन होगा। वे निर्लज्ज—लज्जा-रहित, कूट—भ्रांतिजनक द्रव्य, कपट—छल, दूसरों को ठगने हेतु वेषान्तरकरण आदि, कलह—झगड़ा, बन्ध—रज्जु आदि द्वारा बन्धन तथा वैर—शत्रुभाव में निरत होंगे। मर्यादाएँ लांघने, तोड़ने में प्रधान, अकार्य करने में सदा उद्यत एवं गुरुजन के आज्ञा-पालन और विनय से रहित होंगे। वे विकलरूप—असंपूर्ण देहांगयुक्त—काने, लंगड़े, चतुरंगुलिक आदि, आजन्म संस्कारशून्यता के कारण बढ़े हुए नख, केश तथा दाढ़ी-मूंछ युक्त, काले, कठोर स्पर्शयुक्त, गहरी रेखाओं या सलवटों के कारण फूटे हुए से मस्तक युक्त, धूएँ के से वर्ण वाले तथा सफेद केशों से युक्त, अत्यधिक स्नायुओं—नाड़ियों से संपिनद्ध—परिबद्ध या छाये हुए होने से दुर्दर्शनीय रूपयुक्त, देह में पास-पास पड़ी झुर्रियों की तरंगों से परिव्याप्त अंग युक्त, जरा-जर्जर बूढ़ों के सदृश, प्रविरल—दूर-दूर प्ररूढ तथा परिशटित—परिपतित दन्तश्रेणी युक्त, घड़े के विकृत मुख सदृश मुखयुक्त अथवा भद्दे रूप में उभरे हुए मुख तथा घांटी युक्त, असमान नेत्रयुक्त, वक्र-टेढ़ी नासिकायुक्त झुर्रियों से विकृत—वीभत्स, भीषण मुखयुक्त, दाद, खाज, सेहुआ आदि से विकृत, कठोर चर्मयुक्त, चित्रल—कर्बुर—चितकबरे अवयवमय देहयुक्त, पाँव एवं खसर-संज्ञक चर्मरोग से पीड़ित, कठोर, तीक्ष्ण नखों से खाज करने के कारण विकृत—व्रणमय या खरोंची हुई देहयुक्त, टोलगति—ऊँट आदि के समान चालयुक्त या टोलाकृति—अप्रशान्त आकारयुक्त, विषम-सन्धि-बन्धनयुक्त, अयथावत्स्थित अस्थियुक्त, पौष्टिक भोजनरहित, शक्तिहीन, कुत्सित संहनन, कुत्सित परिमाण, कुत्सित संस्थान एवं कुत्सित रूप युक्त, कुत्सित आश्रय, कुत्सित आसन, कुत्सित शय्या तथा कुत्सित भोजनसेवी, अशुचि—अपवित्र अथवा अश्रुति—श्रुत-शास्त्र ज्ञान-वर्जित, अनेक व्याधियों से पीड़ित, स्खलित—विह्वल गतियुक्त—लड़खड़ा कर चलने वाले, उत्साह-रहित, सत्त्वहीन, निश्चेष्ट, नष्टतेज—तेजोविहीन, निरन्तर शीत, उष्ण, तीक्ष्ण, कठोर वायु से व्याप्त शरीरयुक्त, मलिन धूलि से आवृत देहयुक्त, बहुत क्रोधी, अहंकारी, मायावी, लोभी तथा मोहमय, अशुभ कार्यों के परिणाम-स्वरूप अत्यधिक दुःखी, प्रायः धर्मसंज्ञा—धार्मिक श्रद्धा तथा सम्यक्त्व से परिभ्रष्ट होंगे। उत्कृष्टतः उनका

देह-परिमाण—शरीर की ऊँचाई—एक हाथ—चौबीस अंगुल की होगी। उनका अधिकतम आयुष्य—स्त्रियों का सोलह वर्ष का तथा पुरुषों का बीस वर्ष का होगा। अपने बहुपुत्र-पौत्रमय परिवार में उनका बड़ा प्रणय—प्रेम या मोह रहेगा। वे गंगा महानदी, सिन्धु महानदी के तट तथा वैताढ्य पर्वत के आश्रय में बिलों में रहेंगे। वे बिलवासी मनुष्य संख्या में बहत्तर होंगे। उनसे भविष्य में फिर मानव-जाति का विस्तार होगा।[1]

भगवन्! वे मनुष्य क्या आहार करेंगे?

गौतम! उस काल में गंगा महानदी और सिन्धु महानदी—ये दो नदियाँ रहेंगी। रथ चलने के लिए अपेक्षित पथ जितना मात्र उनका विस्तार होगा। उनमें रथ के चक्र के छेद की गहराई जितना गहरा जल रहेगा। उनमें अनेक मत्स्य तथा कच्छप—कछुए रहेंगे। उस जल में सजातीय अप्काय के जीव नहीं होंगे।

वे मनुष्य सूर्योदय के समय तथा सूर्यास्त के समय अपने बिलों से तेजी से दौड़ कर निकलेंगे। बिलों से निकल कर मछलियों और कछुओं को पकड़ेंगे, जमीन पर—किनारे पर लायेंगे। किनारे पर लाकर रात में शीत द्वारा तथा दिन में आतप द्वारा उनको रसरहित बनायेंगे, सुखायेंगे। इस प्रकार वे अतिसरस खाद्य को पचाने में असमर्थ अपनी जठराग्नि के अनुरूप उन्हें आहारयोग्य बना लेंगे। इस आहार-वृत्ति द्वारा वे इक्कीस हजार वर्ष पर्यन्त अपना निर्वाह करेंगे।

भगवन्! वे मनुष्य, जो निःशील—शीलरहित—आचाररहित, निर्व्रत—महाव्रत-अणुव्रतरहित, निर्गुण—उत्तरगुणरहित, निर्मर्याद—कुल आदि की मर्यादाओं से रहित, प्रत्याख्यान—त्याग, पौषध व उपवासरहित होंगे, प्रायः मांस-भोजी, मत्स्य-भोजी, यत्र-तत्र अवशिष्ट क्षुद्र—तुच्छ धान्यादिक-भोजी, कुणिपभोजी—शवरस—वसा या चर्बी आदि दुर्गन्धित पदार्थ-भोजी होंगे।

अपना आयुष्य समाप्त होने पर मरकर कहाँ जायेंगे, कहाँ उत्पन्न होंगे?

गौतम! वे प्रायः नरकगति और तिर्यञ्चगति में उत्पन्न होंगे।

भगवन्! तत्कालवर्ती सिंह, बाघ, भेड़िए, चीते, रीछ, तरक्ष—व्याघ्रजातीय हिंसक जन्तु-विशेष, गेंडे, शरभ—अष्टापद, शृगाल, बिलाव, कुत्ते, जंगली कुत्ते या सूअर, खरगोश, चीतल तथा चिल्ललक, जो प्रायः मांसाहारी, मत्स्याहारी, क्षुद्राहारी तथा कुणपाहारी होते हैं, मरकर कहाँ जायेंगे? कहाँ उत्पन्न होंगे?

गौतम! प्रायः नरकगति और तिर्यञ्चगति में उत्पन्न होंगे।

---

१. छठे आरे के वर्णन में ऐसा भी उल्लेख पाया जाता है—

२१००० वर्ष 'दुःखमा-दुःखमा' नामक छट्ठे आरे का आरम्भ होगा, तब भरतक्षेत्राधिष्ठित देव पञ्चम आरे के विनाश पाते हुए पशु मनुष्यों में से बीज रूप कुछ पशु, मनुष्यों को उठाकर वैताढ्य गिरि के दक्षिण और उत्तर में जो गंगा और सिन्धु नदी हैं, उनके आठों किनारों में से एक-एक तट में नव-नव बिल हैं एवं सर्व ७२ बिल हैं और एक-एक बिल में तीन-तीन मंजिल हैं, उनमें उन पशु व मनुष्यों को रखेंगे।

७२ बिलों में से ६३ बिलों में मनुष्य, ६ बिलों में स्थलचर-पशु एवं ३ बिलों में खेचर पक्षी रहते हैं।

भगवन् ! ढंक—काक विशेष, कंक—कठफोड़ा, पीलक, मद्गुक—जल काक, शिखी—मयूर, जो प्राय: मांसाहारी, (मत्स्याहारी, क्षुद्राहारी तथा कुणपाहारी होते हैं, मरकर) कहाँ जायेंगे ? कहाँ जन्मेंगे ?

गौतम ! वे प्राय: नरकगति और तिर्यञ्चगति में जायेंगे ।

आगमिष्यत् उत्सर्पिणी: दु:षम-दु:षमा-दुषमकाल

४७. तीसे णं समाए इक्कवीसाए वाससहस्सेहिं काले वीइक्कंते आगमिस्साए उस्सप्पिणीए सावणबहुलपडिवए बालवकरणंसि अभीइणक्खत्ते चोद्दसपढमसमये अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं जाव[1] अणंतगुण-परिविद्धीए परिवद्धेमाणे २ एत्थ णं दूसमदूसमा णामं समा काले पडिवज्जिस्सइ समणाउसो !

तीसे णं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आगारभावपडोआरे भविस्सइ ?

गोयमा ! काले भविस्सइ हाहाभूए, भंभाभूए एवं सो चेव दूसमदूसमावेढओ णेअव्वो ।

तीसे णं समाए एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं काले विइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं जाव[2] अणंतगुणपरिवुद्धीए परिवद्धेमाणे २ एत्थ णं दूसमा णामं समा काले पडिवज्जिस्सइ समणाउसो !

[४७] आयुष्मन् श्रमण गौतम ! उस काल के—अवसर्पिणी काल के छठे आरक के इक्कीस हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर आने वाले उत्सर्पिणी-काल का श्रावण मास, कृष्ण पक्ष प्रतिपदा के दिन बालव नामक करण में चन्द्रमा के साथ अभिजित् नक्षत्र का योग होने पर चतुर्दशविध काल[3]के प्रथम समय में दुषम-दुषमा आरक प्रारम्भ होगा । उसमें अनन्त वर्णपर्याय आदि अनन्तगुण-परिवृद्धि-क्रम से परिवर्द्धित होते जायेंगे ।

भगवन् ! उस काल में भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा होगा ?

आयुष्यन् श्रमण गौतम ! उस समय हाहाकारमय, चीत्कारमय स्थिति होगी, जैसा अवसर्पिणी-काल के छठे आरक के सन्दर्भ में वर्णन किया गया है ।

उस काल के—उत्सर्पिणी के प्रथम आरक दु:षम-दुषमा के इक्कीस हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर उसका दु:षमा नामक द्वितीय आरक प्रारम्भ होगा । उसमें अनन्त वर्णपर्याय आदि अनन्त-गुण-परिवृद्धि-क्रम से परिवर्द्धित होते जायेंगे ।

जल-क्षीर-घृत-अमृतरस-वर्षा

४८. तेणं कालेणं तेणं समएणं पुक्खलसंवट्टए णामं महामेहे पाउब्भविस्सइ भरहप्पमाणमित्ते आयामेणं, तदणुरूवं च णं विक्खंभबाहल्लेणं । तए णं से पुक्खलसंवट्टए महामेहे खिप्पामेव पतणतणाइस्सइ, खिप्पामेव पतणतणाइत्ता खिप्पामेव पविज्जुआइस्सइ, खिप्पामेव पविज्जुआइत्ता खिप्पामेव

---

१. देखें सूत्र संख्या २८ ।

२. देखें सूत्र संख्या ३५

३. १. नि:श्वास उच्छ्वास, २. प्राण, ३. स्तोक, ४. लव, ५. मुहूर्त, ६. अहोरात्र, ७. पक्ष, ८. मास, ९. ऋतु, १०. अयन, ११. संवत्सर, १२. युग, १३. करण, १४. नक्षत्र ।

जुगमुसलमुट्ठिप्पमाणमित्ताहिं धाराहिं ओघमेघं सत्तरत्तं वासं वासिस्सइ, जेणं भरहस्स वासस्स भूमि-भागं इंगालभूअं, मुम्मुरभूअं, छारिअभूअं, तत्त-कवेल्लुगभूअं, तत्तसमजोइभूअं णिव्वाविस्सति त्ति ।

तंसि च णं पुक्खलसंवट्टगंसि महामेहंसि सत्तरत्तं णिवतितंसि समाणंसि एत्थ णं खीरमेहे णामं महामेहे पाउब्भविस्सइ, भरहप्पमाणमेत्ते आयामेणं, तदणुरूवं च णं विक्खंभबाहल्लेणं । तए णं से खीरमेहे णामं महामेहे खिप्पामेव पतणतणाइस्सइ (खिप्पामेव पतणतणाइत्ता खिप्पामेव पविज्जुआइस्सइ, खिप्पामेव पविज्जुआइत्ता) खिप्पामेव जुगलमुसलमुट्ठि-(प्पमाणमित्ताहिं धाराहिं ओघमेघं) सत्तरत्तं वासं वासिस्सइ, जेणं भरहवासस्स भूमीए वण्णं गंधं रसं फासं च जणइस्सइ ।

तंसि च णं खीरमेहंसि सत्तरत्तं णिवतितंसि समाणंसि इत्थ णं घयमेहे णामं महामेहे पाउब्भविस्सइ, भरहप्पमाणमेत्ते आयामेणं, तदणुरूवं च णं विक्खंभबाहल्लेणं । तए णं से घयमेहे महामेहे खिप्पामेव पतणतणाइस्सइ जाव[1] वासं वासिस्सइ, जेणं भरहस्स वासस्स भूमीए सिणेहभावं जणइस्सइ ।

तंसि च णं घयमेहंसि सत्तरत्तं णिवतितंसि समाणंसि एत्थ णं अमयमेहे णामं महामेहे पाउब्भविस्सइ, भरहप्पमाणमित्तं आयामेणं, (तदणुरूवं च णं विक्खंभबाहल्लेणं । तए णं से अमयमेहे णामं महामेहे खिप्पामेव पतणतणाइस्सइ, खिप्पामेवे पतणतणाइत्ता खिप्पामेव पविज्जुआइस्सइ, खिप्पामेव पविज्जुआइत्ता खिप्पामेव जुगमुसलमुट्ठिप्पमाणमित्ताहिं धाराहिं ओघमेघं सत्तरत्तं) वासं वासिस्सइ जेणं भरहे वासे रुक्ख-गुच्छ-गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वग-हरित-ओसहि-पवालंकुर-माईए तणवणस्सइकाइए जणइस्सइ ।

तंसि च णं अमयमेहंसि सत्तरत्तं णिवतितंसि समाणंसि एत्थ णं रसमेहे णामं महामेहे पाउब्भविस्सइ, भरहप्पमाणमेत्ते आयामेणं, (तदणुरूवं च विक्खंभबाहल्लेण । तए णं से रसमेहे णामं महामेहे खिप्पामेव पतणतणाइस्सइ, खिप्पामेव पतणतणाइत्ता खिप्पामेव पविज्जुआइस्सइ, खिप्पामेव पविज्जुआइत्ता खिप्पामेव जुगमुसलमुट्ठिप्पमाणमित्ताहिं धाराहिं ओघमेघं सत्तरत्तं) वासं वासिस्सइ, जेणं तेसिं बहूणं रुक्ख-गुच्छ-गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वग-हरित-ओसहि-पवालंकुर-मादीणं तित्त-कडुअ-कसाय-अंबिल-महुरे पंचविहे रसविसेसे जणइस्सइ ।

तए णं भरहे वासे भविस्सइ परूढरुक्खगुच्छगुम्मलयवल्लितणपव्वयगहरिअओसहिए, उवचिय-तय-पत्त-पवालंकुर-पुप्फ-फलसमुइए, सुहोवभोगे आवि भविस्सइ ।

[४८] उस उत्सर्पिणी-काल के दुःषमा नामक द्वितीय आरक के प्रथम समय में भरतक्षेत्र की अशुभ अनुभावमय रूक्षता, दाहकता आदि का अपने प्रशान्त जल द्वारा शमन करने वाला पुष्कर-संवर्तक नामक महामेघ प्रकट होगा । वह महामेघ लम्बाई, चौड़ाई तथा विस्तार में भरतक्षेत्र प्रमाण—भरत क्षेत्र जितना होगा । वह पुष्कर-संवर्तक महामेघ शीघ्र ही गर्जन करेगा, गर्जन कर शीघ्र ही विद्युत् से युक्त होगा—उसमें बिजलियाँ चमकने लगेंगी, विद्युत्-युक्त होकर शीघ्र ही वह युग—रथ के अवयव-

१. देखें सूत्र यही ।

विशेष (जू'वा), मूसल और मुष्टि-परिमित—मोटी धाराओं से सात दिन-रात तक सर्वत्र एक जैसी वर्षा करेगा। इस प्रकार वह भरतक्षेत्र के अंगारमय, मुर्मुरमय, क्षारमय, तप्त-कटाह सदृश, सब ओर से परितप्त तथा दहकते भूमिभाग को शीतल करेगा।

यों सात दिन-रात तक पुष्कर-संवर्तक महामेघ के बरस जाने पर क्षीरमेघ नामक महामेघ प्रकट होगा। वह लम्बाई, चौड़ाई तथा विस्तार में भरतक्षेत्र जितना होगा। वह क्षीरमेघ नामक विशाल बादल शीघ्र ही गर्जन करेगा, (गर्जन कर शीघ्र ही विद्युत्युक्त होगा, विद्युत्युक्त होकर) शीघ्र ही युग, मूसल और मुष्टि (परिमित धाराओं से सर्वत्र एक सदृश) सात दिन-रात तक वर्षा करेगा। यों वह भरतक्षेत्र की भूमि में शुभ वर्ण, शुभ गन्ध, शुभ रस तथा शुभ स्पर्श उत्पन्न करेगा, जो पूर्वकाल में अशुभ हो चुके थे।

उस क्षीरमेघ के सात दिन-रात बरस जाने पर घृतमेघ नामक महामेघ प्रकट होगा। वह लम्बाई, चौड़ाई और विस्तार में भरतक्षेत्र जितना होगा। वह घृतमेघ नामक विशाल बादल शीघ्र ही गर्जन करेगा, वर्षा करेगा। इस प्रकार वह भरतक्षेत्र की भूमि में स्नेहभाव—स्निग्धता उत्पन्न करेगा।

उस घृतमेघ के सात दिन-रात तक बरस जाने पर अमृतमेघ नामक महामेघ प्रकट होगा। वह लम्बाई, (चौड़ाई और विस्तार में भरतक्षेत्र जितना होगा। वह अमृतमेघ नामक विशाल बादल शीघ्र ही गर्जन करेगा, गर्जन कर शीघ्र ही विद्युत्युक्त होगा, युग, मूसल तथा मुष्टि-परिमित धाराओं से सर्वत्र एक जैसी सात दिन-रात) वर्षा करेगा। इस प्रकार वह भरतक्षेत्र में वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, बेल, तृण—घास, पर्वग—गन्ने आदि, हरित—हरियाली—दूब आदि, औषधि—जड़ी-बूटी, पत्ते तथा कोंपल आदि बादर वानस्पतिक जीवों को—वनस्पतियों को उत्पन्न करेगा।

उस अमृतमेघ के इस प्रकार सात दिन-रात बरस जाने पर रसमेघ नामक महामेघ प्रकट होगा। वह लम्बाई, (चौड़ाई और विस्तार में भरतक्षेत्र जितना होगा। फिर वह रसमेघ नामक विशाल बादल शीघ्र ही गर्जन करेगा। गर्जन कर शीघ्र ही विद्युत्युक्त होगा। विद्युत्युक्त होकर शीघ्र ही युग, मूसल तथा मुष्टि-परिमित धाराओं से सर्वत्र एक जैसी सात दिन-रात) वर्षा करेगा। इस प्रकार बहुत से वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, बेल, तृण, पर्वग, हरियाली, औषधि, पत्ते तथा कोंपल आदि में तिक्त—तीता, कटुक—कडुआ, कषाय—कसैला, अम्ल—खट्टा तथा मधुर—मीठा, पाँच प्रकार के रस उत्पन्न करेगा—रस-संचार करेगा।

तब भरतक्षेत्र में वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, बेल, तृण, पर्वग, हरियाली, औषधि, पत्ते तथा कोंपल आदि उगेंगे। उनकी त्वचा—छाल, पत्र, प्रवाल, पल्लव, अंकुर, पुष्प, फल, ये सब परिपुष्ट होंगे, समुदित—सम्यक्तया उदित या विकसित होंगे, सुखोपभोग्य—सुखपूर्वक सेवन करने योग्य होंगे।

सुखद परिवर्तन

४६. तए णं से मणुआ भरहं वासं परूढरुक्ख-गुच्छ-गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वय-हरिअ-ओसहीअं, उवचियतय-पत्त-पवाल-पल्लवंकुर-पुप्फ-फल-समुइअं, सुहोवभोगं जायं २ चावि पासिहिंति, पासित्ता बिलेहिंतो णिद्धाइस्संति, णिद्धाइत्ता हट्ठतुट्ठा अण्णमण्णं सद्दाविस्संति, सद्दावित्ता एवं

वदिस्संति—जाते णं देवाणुप्पिश्रा ! भरहे वासे परूढरुक्ख-गुच्छ-गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वय-हरिय-(श्रोसहीए, उवचिश्रतय-पत्त-पवाल-पल्लवंकुर-पुप्फ-फलसमुइए,) सुहोवभोगे, तं जे णं देवाणुप्पिश्रा ! श्रम्हं केइ श्रज्जप्पभिइ श्रसुभं कुणिमं श्राहारं श्राहारिस्सइ, से णं श्रणेगाहिं छायाहिं वज्जणिज्जेत्ति कट्टु संठिइं ठवेस्संति, ठवेत्ता भरहे वासे सुहंसुहेणं श्रभिरममाणा २ विहरिस्संति।

[४९] तब वे विलवासी मनुष्य देखेंगे—भरतक्षेत्र में वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वेल, तृण, पर्वग, हरियाली, औषधि—ये सब उग आये हैं। छाल, पत्र, प्रवाल, पल्लव, अंकुर, पुष्प तथा फल परिपुष्ट, समुदित एवं सुखोपभोग्य हो गये हैं। ऐसा देखकर वे विलों से निकल आयेंगे। निकलकर हर्षित एवं प्रसन्न होते हुए एक दूसरे को पुकारेंगे, पुकार कर कहेंगे—देवानुप्रियो ! भरतक्षेत्र में वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वेल, तृण, पर्वग, हरियाली, औषधि—ये सब उग आये हैं। (छाल, पत्र, प्रवाल, पल्लव, अंकुर, पुष्प, फल) ये सब परिपुष्ट, समुदित तथा सुखोपभोग्य हैं। इसलिए देवानुप्रियो ! आज से हम में से जो कोई अशुभ, मांसमूलक आहार करेगा, (उसके शरीर-स्पर्श की तो वात ही दूर), उसकी छाया तक वर्जनीय होगी—उसकी छाया तक को नहीं छूएँगे। ऐसा निश्चय कर वे संस्थिति—समीचीन व्यवस्था कायम करेंगे। व्यवस्था कायम कर भरतक्षेत्र में सुखपूर्वक, सोल्लास रहेंगे।

उत्सर्पिणी : विस्तार

५०. तीसे णं समाए भरहस्स वासस्स केरिसए श्रायारभावपडोश्रारे भविस्सइ ?

गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे भविस्सइ (से जहाणामए श्रालिंगपुक्खरेइ वा, मुइंगपुक्खरेइ वा जाव णाणामणिपंचवण्णेहिं) कित्तिमेहिं चेव श्रकित्तिमेहिं चेव।

तीसे णं भंते समाए मणुश्राणं केरिसए श्रायारभावपडोयारे भविस्सइ ?

गोयमा ! तेसि णं मणुआणं छव्विहे संघयणे, छव्विहे संठाणे, बहूईश्रो रयणीश्रो उड्ढं उच्चत्तेणं, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं साइरेगं वाससयं श्राउश्रं पालेहिंति, पालेत्ता श्रप्पेगइश्रा णिरयगामी, (श्रप्पेगइश्रा तिरियगामी, श्रप्पेगइश्रा मणुयगामी,) श्रप्पेगइश्रा देवगामी, ण सिज्झंति।

तीसे णं समाए एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं काले वीइक्कंते श्रणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं जाव[1] परिवड्ढेमाणे २ एत्थ णं दुस्समसुसमा णामं समा काले पडिवज्जिस्सइ समणाउसो !

तीसे णं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए श्रायारभावपडोयारे भविस्सइ ?

गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे (भूमिभागे भविस्सइ, से जहाणामए श्रालिंगपुक्खरेइ वा, मुइंगपुक्खरेइ वा जाव णाणामणिपंचवण्णेहिं कित्तिमेहिं चेव) श्रकित्तिमेहिं चेव।

तेसि णं भंते ! मणुश्राणं केरिसए श्रायार-भाव-पडोयारे भविस्सइ ?

गोयमा ! तेसि णं मणुश्राणं छव्विहे संघयणे, छव्विहे संठाणे, बहूइं धणूइं उद्धं उच्चत्तणं, जहण्णेणं श्रंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडीश्राउश्रं पालिहिंति, पालेत्ता श्रप्पेगइश्रा णिरयगामी, (श्रप्पेगइश्रा तिरियगामी, श्रप्पेगइश्रा मणुयगामी, श्रप्पेगइश्रा देवगामी, श्रप्पेगइश्रा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणं) अंतं करेहिंति।

---

१. देखें सूत्र संख्या २८

तीसे णं समाए तओ वंसा समुप्पज्जिस्संति, तंजहा—तित्थगरवंसे, चक्कवट्टिवंसे, दसारवंसे। तीसे णं समाए तेवीसं तित्थगरा, एक्कारस चक्कवट्टी, णव बलदेवा, णव वासुदेवा समुप्पज्जिस्संति।

तीसे णं समाए सागरोवमकोडाकोडीए बायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिआए काले वीइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं जाव[1] अणंतगुणपरिवुद्धीए परिवद्धेमाणे २ एत्थ णं सुसमदूसमा णामं समा काले पडिवज्जिस्सइ समणाउसो !

सा णं समा तिहा विभजिस्सइ—पढमे तिभागे, मज्झिमे तिभागे, पच्छिमे तिभागे।

तीसे णं भंते ! समाए पढमे तिभाए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सइ ?

गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे जाव[2] भविस्सइ। मणुआणं जा वेव ओसप्पिणीए पच्छिमे तिभागे वत्तव्वया सा भाणिअव्वा, कुलगरवज्जा उसभसामिवज्जा।

अण्णे पढंति तंजहा—तीसे णं समाए पढमे तिभाए इमे पण्णरस कुलगरा समुप्पज्जिस्संति तंजहा—सुमई, पडिस्सुई, सीमंकरे, सीमंधरे, खेमंकरे, खेमंधरे, विमलवाहणे, चक्खुमं, जसमं, अभिचंदे, चंदाभे, पसेणई, मरुदेवे, णाभी, उसभे, सेसं तं चेव, दंडणीईओ पडिलोमाओ णेअव्वाओ।

तीसे णं समाए पढमे तिभाए रायधम्मे (गणधम्मे पाखंडधम्मे अग्गिधम्मे) धम्मचरणे अ वोच्छिज्जिस्सइ।

तीसे णं समाए मज्झिमपच्छिमेसु तिभागेसु पढममज्झिमेसु वत्तव्वया ओसप्पिणीए सा भाणिअव्वा, सुसमा तहेव, सुसमसुसमावि तहेव जाव छव्विहा मणुस्सा अणुसज्जिस्संति जाव सण्णिचारी।

[५०] उस काल में—उत्सर्पिणी काल के दुःषमा नामक द्वितीय आरक में भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा होगा ?

गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल तथा रमणीय होगा। (मुरज के तथा मृदंग के ऊपरी भाग—चर्मपुट जैसा समतल होगा, अनेक प्रकार की, पंचरंगी कृत्रिम एवं अकृत्रिम मणियों से उपशोभित होगा)

उस समय मनुष्यों का आकार-प्रकार कैसा होगा ?

गौतम ! उन मनुष्यों के छह प्रकार के संहनन एवं संस्थान होंगे। उनकी ऊँचाई अनेक हाथ—सात हाथ की होगी। उनका जघन्य अन्तर्मुहूर्त का तथा उत्कृष्ट कुछ अधिक—तेतीस वर्ष अधिक सौ वर्ष का आयुष्य होगा। आयुष्य को भोगकर उन में से कई नरक-गति में, (कई तिर्यञ्च-गति में, कई मनुष्य-गति में), कई देव-गति में जायेंगे, किन्तु सिद्ध नहीं होंगे।

---

१. देखें सूत्र संख्या २८

२. देखें सूत्र यही

आयुष्मन् श्रमण गौतम ! उस आरक के इक्कीस हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर उत्सर्पिणी-काल का दुःषम-सुषमा नामक तृतीय आरक आरंभ होगा । उसमें अनन्त वर्ण-पर्याय आदि क्रमशः परिवर्द्धित होते जायेंगे ।

भगवन् ! उस काल में भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा होगा ?

गौतम ! उसका भूमिभाग बड़ा समतल एवं रमणीय होगा । (वह मुरज के अथवा मृदंग के ऊपरी भाग—चर्मपुट जैसा समतल होगा । वह नानाविध कृत्रिम, अकृत्रिम पंचरंगी मणियों से उपशोभित होगा ।

भगवन् ! उन मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा होगा ?

गौतम ! उन मनुष्यों के छह प्रकार के संहनन तथा संस्थान होंगे । उनके शरीर की ऊँचाई अनेक धनुष-परिमाण होगी । जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट एक पूर्व कोटि तक का उनका आयुष्य होगा । आयुष्य का भोग कर उनमें से कई नरक-गति में. (कई तिर्यञ्च-गति में, कई मनुष्य-गति में, कई देव-गति में जायेंगे, कई सिद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं परिनिर्वृत्त होंगे,) समस्त दुःखों का अन्त करेंगे ।

उस काल में तीन वंश उत्पन्न होंगे—१. तीर्थंकर-वंश, २. चक्रवर्ति-वंश तथा ३. दशार-वंश—बलदेव-वासुदेव-वंश । उस काल में तेवीस तीर्थंकर, ग्यारह चक्रवर्ती तथा नौ वासुदेव उत्पन्न होंगे ।

आयुष्मन् श्रमण गौतम ! उस आरक का बयालीस हजार वर्ष कम एक सागरोपम कोडाकोडी काल व्यतीत हो जाने पर उत्सर्पिणी-काल का सुषम-दुःषमा नामक चतुर्थ आरक प्रारंभ होगा । उसमें अनन्त वर्ण-पर्याय आदि अनन्तगुण परिवृद्धि क्रम से परिवर्द्धित होंगे ।

वह काल तीन भागों में विभक्त होगा—प्रथम तृतीय भाग, मध्यम तृतीय भाग तथा अन्तिम तृतीय भाग ।

भगवन् ! उस काल के प्रथम त्रिभाग में भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा होगा ?

गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल तथा रमणीय हागा । अवसर्पिणी-काल के सुषम-दुःषमा आरक के अन्तिम तृतीयांश में जैसे मनुष्य बताये गये हैं, वैसे ही इसमें होंगे । केवल इतना अन्तर होगा, इसमें कुलकर नहीं होंगे, भगवान् ऋषभ नहीं होंगे ।

इस संदर्भ में अन्य आचार्यों का कथन इस प्रकार है—

उस काल के प्रथम त्रिभाग में पन्द्रह कुलकर होंगे—

१. सुमति, २. प्रतिश्रुति, ३. सीमंकर, ४. सीमन्धर, ५. क्षेमंकर, ६. क्षेमंधर, ७. विमलवाहन, ८. चक्षुष्मान्, ९. यशस्वान्, १०. अभिचन्द्र. ११. चन्द्राभ, १२. प्रसेनजित्, १३. मरुदेव, १४. नाभि, १५. ऋषभ ।

शेष उसी प्रकार है । दण्डनीतियां प्रतिलोम—विपरीत क्रम से होंगी, ऐसा समझना चाहिए ।

उस काल के प्रथम त्रिभाग में राज-धर्म (गण-धर्म, पाखण्ड-धर्म, अग्नि-धर्म तथा) चारित्र-धर्म विच्छिन्न हो जायेगा ।

इस काल के मध्यम तथा अन्तिम त्रिभाग की वक्तव्यता अवसर्पिणी के प्रथम-मध्यम त्रिभाग की ज्यों समझनी चाहिए । सुषमा और सुषम-सुषमा काल भी उसी जैसे हैं । छह प्रकार के मनुष्यों आदि का वर्णन उसी के सदृश है । □□

तृतीय वक्षस्कार

विनीता राजधानी

५१. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—भरहे वासे भरहे वासे ?

गोयमा ! भरहे णं वासे वेअड्ढस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चोद्दसुत्तरं जोअणसयं एक्कारस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स, अबाहाए लवणसमुद्दस्स उत्तरेणं चोद्दसुत्तरं जोअणसयं एक्कारस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स, अबाहाए गंगाए महाणईए पच्चत्थिमेणं, सिंधूए महाणईए पुरत्थिमेणं, दाहिणद्धभरहमज्झिल्लतिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं विणीआणामं रायहाणी पण्णत्ता—पाईणपडीणायया, उदीणदाहिणवित्थिण्णा, दुवालसजोअणायामा, णवजोअणवित्थिण्णा, धणवइमतिणिम्माया, चामीयरपागार-णाणामणि-पञ्चवण्णकविसीसग-परिमंडिआभिरामा, अलकापुरीसंकासा, पमुइयपक्कीलिआ, पच्चक्खं देवलोगभूआ, रिद्धित्थिमिअसमिद्धा, पमुइअजणजाणवया जाव[1] पडिरूवा।

[५१] भगवन् ! भरतक्षेत्र का 'भरतक्षेत्र' यह नाम किस कारण पड़ा ?

गौतम ! भरतक्षेत्र-स्थित वैताढ्य पर्वत के दक्षिण के ११४$\frac{11}{19}$ योजन तथा लवणसमुद्र के उत्तर में ११४$\frac{11}{19}$ योजन की दूरी पर, गंगा महानदी के पश्चिम में और सिन्धु महानदी के पूर्व में दक्षिणार्ध भरत के मध्यवर्ती तीसरे भाग के ठीक बीच में विनीता नामक राजधानी है।

वह पूर्व-पश्चिम लम्बी एवं उत्तर-दक्षिण चौड़ी है। वह लम्बाई में बारह योजन तथा चौड़ाई में नौ योजन है। वह ऐसी है, मानो धनपति—कुबेर ने अपने बुद्धि-कौशल से उसकी रचना की हो। स्वर्णमय प्राकार—परकोटों, तद्गत विविध प्रकार के मणिमय पंचरंगे कपि-शीर्षकों—कंगूरों-भीतर से शत्रु-सेना को देखने आदि हेतु निर्मित वन्दर के मस्तक के आकार के छेदों से सुशोभित एवं रमणीय है। वह अलकापुरी-सदृश है। वह प्रमोद और प्रक्रीडामय है—वहाँ अनेक प्रकार के आनन्दोत्सव, खेल आदि चलते रहते हैं। मानो प्रत्यक्ष स्वर्ग का ही रूप हो, ऐसी लगती है। वह वैभव, सुरक्षा तथा समृद्धि से युक्त है। वहाँ के नागरिक एवं जनपद के अन्य भागों से आये हुए व्यक्ति आमोद-प्रमोद के प्रचुर साधन होने से वड़े प्रमुदित रहते हैं। वह प्रतिरूप—मन में बस जाने वाली—अत्यधिक सुन्दर है।

चक्रवर्ती भरत

५२. तत्थ णं विणीआए रायहाणीए भरहे णामं राया चाउरंतचक्कवट्टी समुप्पज्जित्था, महयाहिमवंत-महंतमलय-मंदर-(महिंदसारे, अच्चंतविसुद्धदीहरायकुलवंससुप्पसूए, णिरंतरं रायलक्खणविराइयंगमंगे, बहुजणबहुमाणपूइए, सव्वगुणसमिद्धे, खत्तिए, मुइए, मुद्धाहिसित्ते, माउपिउसुजाए,

१. देखें सूत्र संख्या १२

दयपत्ते, सीमंकरे, सीमंधरे, खेमंकरे, खेमंधरे, मणुस्सिंदे, जणवयपिया, जणवयपाले, जणवयपुरोहिए, सेउकरे, केउकरे, णरपवरे, पुरिसवरे, पुरिससीहे, पुरिसवग्घे, पुरिसासीविसे, पुरिसपुंडरीए, पुरिसवर-गंधहत्थी, अड्ढे, दित्ते, वित्ते, वित्थिण्णविउलभवणसयणासणजाणवाहणाइण्णे, बहुधणबहुजायरूवरयए, आओगपओगसंपउत्ते, विच्छड्डियपउरभत्तपाणे, बहुदासीदासगोमहिसगवेलगप्पभूए, पडिपुण्णजंत-कोसकोट्ठागाराउधागारे, बलवं, दुब्बलपच्चामित्ते; ओहयकंटयं, निहयकंटयं, मलियकंटयं, उद्धियकंटयं, अकंटयं, ओहयसत्तुं, निहयसत्तुं, मलियसत्तुं, उद्धियसत्तुं, निज्जियसत्तुं पराइयसत्तुं, ववगय-दुब्भिक्खं, मारिभयविप्पमुक्कं, खेमं, सिवं, सुभिक्खं, पसंतडिंबडमरं) रज्जं पसासेमाणे विहरइ।

बिइओ गमो रायवण्णगस्स इमो—

तत्थ असंखेज्जकालवासंतरेण उप्पज्जए जसंसी, उत्तमे, अभिजाए, सत्तवीरिय-परक्कमगुणे, पसत्थवण्णसरसारसंघयणतणुगबुद्धिधारणमेहासंठाणसीलप्पगई, पहाणगारवच्छायागइए, अणेगवयण-प्पहाणे, तेयआउबलवीरियजुत्ते, अझुसिरघणणिचियलोहसंकलणारायवइरउसहसंघयणदेहधारी झस १. जुग २. भिंगार ३. वद्धमाणग ४. भद्दासण ५. संख ६. छत्त ७. वीयणि ८. पडाग ९. चक्क १०. णंगल ११. मूसल १२. रह १३. सोत्थिय १४. अंकुस १५. चंदाइच्च १६-१७. अग्गि १८. जूय १९. सागर २०. इंदज्झय २१. पुहवि २२. पउम २३. कुञ्जर २४. सीहासण २५. दंड २६. कुम्म २७. गिरिवर २८. तुरगवर २९. वरमउड ३०. कुंडल ३१. णंदावत्त ३२. धणु ३३. कोंत ३४. गागर ३५. भवणविमाण ३६. अणेगलक्खणपसत्थसुविभत्तचित्तकरचरणदेसभाए, उड्ढामुहलोमजालसुकुमालणिद्धमउआवत्तपसत्थलोमविरइयसिरिवच्छच्छण्णविउलवच्छे, देसखेत्त-सुविभत्तदेहधारी, तरुणरविरस्सिबोहियवरकमलविबुद्धगब्भवण्णे, हयपोसणकोससण्णिभपसत्थ-पिट्ठंतणिरुवलेवे, पउमुप्पलकुन्दजाइजुहियवरचंपगणागपुप्फसारंगतुल्लगंधी, छत्तीसाहियपसत्थ-पत्थिवगुणेहिं जुत्ते, अव्वोच्छिण्णायवत्ते, पागडउभयजोणी, विसुद्धणियगकुलगयणपुण्णचंदे, चंदे इव सोमयाए णयणमणणिव्वुइकरे, अक्खोभे सागरो व थिमिए, धणवइव्व भोगसमुदयसद्दव्वयाए, समरे अपराइए, परमविक्कमगुणे, अमरवइसमाणसरिसरूवे, मणुयवई भरहचक्कवट्टी भरहं भुञ्जइ पणट्ठसत्तू।

[५२] वहाँ विनीता राजधानी में भरत नामक चातुरंत चक्रवर्त्ती—पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण-तीन ओर समुद्र एवं उत्तर में हिमवान्—यों चारों ओर विस्तृत विशाल राज्य का अधिपति राजा उत्पन्न हुआ। वह महाहिमवान् पर्वत के समान महत्ता तथा मलय, मेरु एवं महेन्द्र (संज्ञक पर्वतों) के सदृश प्रधानता या विशिष्टता लिये हुए था। वह अत्यन्त विशुद्ध—दोष रहित, चिरकालीन—प्राचीन वंश में उत्पन्न हुआ था। उसके अंग पूर्णतः राजोचित लक्षणों से सुशोभित थे। वह बहुत लोगों द्वारा अति सम्मानित और पूजित था, सर्वगुण-समृद्ध—सब गुणों से शोभित क्षत्रिय था—जनता को आक्रमण तथा संकट से बचाने वाला था, वह सदा मुदित[1]—प्रसन्न रहता था। अपनी पैतृक

१. टीकाकार आचार्य श्री अभयदेवसूरि ने 'मुदित' का एक दूसरा अर्थ निर्दोषमातृक भी किया है। उस सन्दर्भ में उन्होंने उल्लेख किया है—'मुइओ जो होइ जोणिसुद्धोत्ति।' —औपपातिकसूत्र वृत्ति, पत्र ११

परम्परा द्वारा, अनुशासनवर्ती अन्यान्य राजाओं द्वारा उसका मूर्द्धाभिषेक—राज्याभिषेक या राजतिलक हुआ था। वह उत्तम माता-पिता से उत्पन्न उत्तम पुत्र था।

वह स्वभाव से करुणाशील था। वह मर्यादाओं की स्थापना करने वाला तथा उनका पालन करने वाला था। वह क्षेमंकर—सबके लिए अनुकूल स्थितियाँ उत्पन्न करने वाला तथा क्षेमंधर—उन्हें स्थिर बनाये रखने वाला था। वह परम ऐश्वर्य के कारण मनुष्यों में इन्द्र के समान था। वह अपने राष्ट्र के लिए पितृतुल्य, प्रतिपालक, हितकारक, कल्याणकारक, पथदर्शक तथा आदर्श-उपस्थापक था। वह नरप्रवर—वैभव, सेना, शक्ति आदि की अपेक्षा से मनुष्यों में श्रेष्ठ तथा पुरुषवर—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप चार पुरुषार्थों में उद्यमशील पुरुषों में परमार्थ-चिन्तन के कारण श्रेष्ठ था। कठोरता व पराक्रम में वह सिंहतुल्य, रौद्रता में बाघ सदृश तथा अपने क्रोध को सफल बनाने के सामर्थ्य में सर्पतुल्य था। वह पुरुषों में उत्तम पुण्डरीक—सुखार्थी, सेवाशील जनों के लिए श्वेत कमल जैसा सुकुमार था। वह पुरुषों में गन्धहस्ती के समान था—अपने विरोधी राजा रूपी हाथियों का मान-भंजक था। वह समृद्ध, दृप्त—दर्प या प्रभावयुक्त तथा वित्त या वृत्त—सुप्रसिद्ध था। उसके यहाँ बड़े-बड़े विशाल भवन, सोने-बैठने के आसन तथा रथ, घोड़े आदि सवारियाँ, वाहन बड़ी मात्रा में थे। उसके पास विपुल सम्पत्ति, सोना तथा चांदी थी। वह आयोग-प्रयोग—अर्थ-लाभ के उपायों का प्रयोक्ता था—धनवृद्धि के सन्दर्भ में वह अनेक प्रकार से प्रयत्नशील रहता था। उसके यहाँ भोजन कर लिये जाने के बाद बहुत खाद्य-सामग्री बच जाती थी (जो तदपेक्षी जनों में बांट दी जाती थी)। उसके यहाँ अनेक दासियाँ, दास, गायें, भैंसें तथा भेड़ें थीं। उसके यहाँ यन्त्र, कोष—खजाना, कोष्ठागार—अन्न आदि वस्तुओं का भण्डार तथा शस्त्रागार प्रतिपूर्ण—अति समृद्ध था। उसके पास प्रभूत सेना थी। वह ऐसे राज्य का शासन करता था जिसमें अपने राज्य के सीमावर्ती राजाओं या पड़ौसी राजाओं को शक्तिहीन बना दिया गया था। अपने सगोत्र प्रतिस्पर्द्धियों—प्रतिस्पर्द्धा व विरोध रखने वालों को विनष्ट कर दिया गया था, उनका धन छीन लिया गया था, उनका मानभंग कर दिया गया था तथा उन्हें देश से निर्वासित कर दिया गया था। यों उसका कोई भी सगोत्र विरोधी नहीं बचा था। अपने (गोत्रभिन्न) शत्रुओं को भी विनष्ट कर दिया गया था, उनकी सम्पत्ति छीन ली गई थी, उनका मानभंग कर दिया गया था और उन्हें देश से निर्वासित कर दिया गया था। अपने प्रभावातिशय से उन्हें जीत लिया गया था, पराजित कर दिया गया।

इस प्रकार वह राजा भरत दुर्भिक्ष तथा महामारी के भय से रहित—निरुपद्रव, क्षेममय, कल्याणमय, सुभिक्षयुक्त एवं शत्रुकृत विघ्नरहित राज्य का शासन करता था।

राजा के वर्णन का दूसरा गम (पाठ) इस प्रकार हैः—

वहाँ (विनीता राजधानी में) असंख्यात वर्ष बाद भरत नामक चक्रवर्ती उत्पन्न हुआ। वह यशस्वी, उत्तम—अभिजात कुलयुक्त, सत्त्व, वीर्य तथा पराक्रम आदि गुणों से शोभित, प्रशस्त वर्ण, स्वर, सुदृढ देह-संहनन, तीक्ष्ण बुद्धि, धारणा, मेधा, उत्तम शरीर-संस्थान, शील एवं प्रकृति युक्त, उत्कृष्ट गौरव, कान्ति एवं गतियुक्त, अनेकविध प्रभावकर वचन बोलने में निपुण, तेज, आयु-बल। वीर्ययुक्त, निश्छिद्र, सघन, लोह-शृंखला की ज्यों सुदृढ वज्र-ऋषभ-नाराच-संहनन युक्त था। उसकी हथेलियों और पगथलियों पर मत्स्य, युग, भृंगार, वर्धमानक, भद्रासन, शंख, छत्र, चँवर,

पताका, चक्र, लांगल—हल, मूसल, रथ, स्वस्तिक, अंकुश, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, यूप—यज्ञ-स्तंभ, समुद्र, इन्द्रध्वज, कमल, पृथ्वी, हाथी, सिंहासन, दण्ड, कच्छप, उत्तम पर्वत, उत्तम अश्व, श्रेष्ठ मुकुट, कुण्डल, नन्दावर्त, धनुष, कुन्त—भाला, गागर—नारी-परिधान-विशेष—घाघरा, भवन, विमान प्रभृति पृथक्-पृथक् स्पष्ट रूप में अंकित अनेक सामुद्रिक शुभ लक्षण विद्यमान थे। उसके विशाल वक्षःस्थल पर ऊर्ध्वमुखी, सुकोमल, स्निग्ध, मृदु एवं प्रशस्त केश थे, जिनसे सहज रूप में श्रीवत्स का चिह्न—आकार निर्मित था।

देश एवं क्षेत्र के अनुरूप उसका सुगठित, सुन्दर शरीर था। बाल-सूर्य की किरणों से उद्बोधित—विकसित उत्तम कमल के मध्यभाग के वर्ण जैसा उसका वर्ण था। उसका पृष्ठान्त—गुदा भाग घोड़े के पृष्ठान्त की ज्यों निरुपलिप्त—मल-त्याग के समय पुरीष से अलिप्त रहता था, यों प्रशस्त था। उसके शरीर से पद्म, उत्पल, चमेली, मालती, जूही, चंपक, केसर तथा कस्तूरी के सदृश सुगंध आती थी। वह छत्तीस से कहीं अधिक प्रशस्त—उत्तम राजगुणों से अथवा प्रशस्त—शुभ राजोचित लक्षणों से युक्त था। वह अखण्डित-छत्र—अविच्छिन्न प्रभुत्व का स्वामी था। उसके मातृवंश तथा पितृवंश—दोनों निर्मल थे। अपने विशुद्ध कुलरूपी आकाश में वह पूर्णिमा के चन्द्र जैसा था। वह चन्द्र-सदृश सौम्य था, मन और आंखों के लिए आनन्दप्रद था। वह समुद्र के समान निश्चल-गंभीर तथा सुस्थिर था। वह कुबेर की ज्यों भोगोपभोग में द्रव्य का समुचित, प्रचुर व्यय करता था। वह युद्ध में सदैव अपराजित, परम विक्रमशाली था, उसके शत्रु नष्ट हो गये थे। यों वह सुखपूर्वक भरत क्षेत्र के राज्य का भोग करता था।

चक्ररत्न की उत्पत्ति : अर्चा : महोत्सव

५३. तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अण्णया कयाइ आउहघरसालाए दिव्वे चक्करयणे समुप्पज्जित्था।

तए णं से आउहघरिए भरहस्स रण्णो आउहघरसालाए दिव्वं चक्करयणं समुप्पण्णं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए, णंदिए, पीइमणे, परमसोमणस्सिए, हरिसवसविसप्पमाणहियए जेणामेव दिव्वे चक्करयणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करेत्ता करयल-(परिग्गहिअदसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं) कट्टु चक्करयणस्स पणामं करेइ, करेत्ता आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणामेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणामेव भरहे राया, तेणामेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता करयल-जाव[1]-जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पियाणं आउहघरसालाए दिव्वे चक्करयणे समुप्पण्णे, तं एयण्णं देवाणुप्पियाणं पियट्ठयाए पियं णिवेएमि, पियं भे भवउ।"

तए णं से भरहे राया तस्स आउहघरियस्य अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ-(तुट्ठचित्तमाणंदिए, णंदिए, पीइमणे, परम-) सोमणस्सिए, वियसियवरकमलणयणवयणे, पयलिअवरकडगतुडिअकेऊरमउडकुण्डलहारविरायंतरइअवच्छे, पालंबपलंबमाणघोलंतभूसणधरे, ससंभमं, तुरिअं,

१. देखें सूत्र यही

चवलं णरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउआओ ओमुअइ, आमुइत्ता एगसाडिअं उत्तरासंगं करेइ, करेत्ता अंजलिमउलिअग्गहत्थे चक्करयणाभिमुहे सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणितलंसि णिहट्टु करयल-जाव[1]-अंजलिं कट्टु चक्करयणस्स पणामं करेइ, करेत्ता तस्स आउहघरियस्स अहामालियं मउडवज्जं ओमोयं दलयइ, दलिइत्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयइ, दलइत्ता सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ, पडिविसज्जेत्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे।

[५३] एक दिन राजा भरत की आयुधशाला में दिव्य चक्ररत्न उत्पन्न हुआ।

आयुधशाला के अधिकारी ने राजा भरत की आयुधशाला में समुत्पन्न दिव्य चक्ररत्न को देखा। देखकर वह हर्षित एवं परितुष्ट हुआ, चित्त में आनन्द तथा प्रसन्नता का अनुभव करता हुआ अत्यन्त सौम्य मानसिक भाव और हर्षातिरेक से विकसितहृदय हो उठा। जहाँ दिव्य चक्र-रत्न था, वहाँ आया, तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, हाथ जोड़ते हुए (उन्हें मस्तक के चारों ओर घुमाते हुए अंजलि बाँधे) चक्ररत्न को प्रणाम किया, प्रणाम कर आयुधशाला से निकला, निकलकर जहाँ बाहरी उपस्थानशाला में राजा भरत था, आया। आकर उसने हाथ जोड़ते हुए राजा को 'आपकी जय हो, आपकी विजय हो'—इन शब्दों द्वारा वर्धापित किया। वर्धापित कर वह बोला—देवानुप्रिय की—आपकी आयुधशाला में दिव्य चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है, आपकी प्रियतार्थ यह प्रिय संवाद निवेदित करता हूँ। आपका प्रिय-शुभ हो।

तब राजा भरत आयुधशाला के अधिकारी से यह सुनकर हर्षित हुआ, (परितुष्ट हुआ, मन में आनन्द एवं प्रसन्नता का अनुभव किया,) अत्यन्त सौम्य मनोभाव तथा हर्षातिरेक से उसका हृदय खिल उठा। उसके श्रेष्ठ कमल जैसे नेत्र एवं मुख विकसित हो गये। उसके हाथों में पहने हुए उत्तम कटक, त्रुटित, केयूर, मस्तक पर धारण किया हुआ मुकुट, कानों के कुंडल चंचल हो उठे—हिल उठे, हर्षातिरेकवश हिलते हुए हार से उसका वक्षःस्थल अत्यन्त शोभित प्रतीत होने लगा। उसके गले में लटकती हुई लम्बी पुष्पमालाएँ चंचल हो उठीं। राजा उत्कण्ठित होता हुआ बड़ी त्वरा से, शीघ्रता से सिंहासन से उठा, उठकर पादपीठ पर पैर रखकर नीचे उतरा, नीचे उतरकर पादुकाएँ उतारीं, एक वस्त्र का उत्तरासंग किया, हाथों को अंजलिबद्ध किये हुए चक्ररत्न के सम्मुख सात-आठ कदम चला, चलकर बायें घुटने को ऊँचा किया, ऊँचा कर दायें घुटने को भूमि पर टिकाया, हाथ जोड़ते हुए, उन्हें मस्तक के चारों ओर घुमाते हुए अंजलि बाँध चक्ररत्न को प्रणाम किया। वैसा कर आयुधशाला के अधिपति को अपने मुकुट के अतिरिक्त सारे आभूषण दान में दे दिये। उसे जीविकोपयोगी विपुल प्रीतिदान दिया—जीवन पर्यन्त उसके लिए भरण-पोषणानुरूप आजीविका की व्यवस्था बाँधी, उसका सत्कार किया, सम्मान किया। उसे सत्कृत, सम्मानित कर वहाँ से विदा किया। वैसा कर वह राजा पूर्वाभिमुख हो सिंहासन पर बैठा।

५४. तए णं से भरहे राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! विणीयं रायहाणिं सब्भितरबाहिरियं आसियसंमज्जियसित्तसुइगरत्थंतरवीहियं, मंचाइ-

---

[1] देखें सूत्र यही

मंचकलियं, णाणाविहरागवसणऊसियझयपडागाइपडागमंडियं, लाउल्लोइयमहियं, गोसीससरस-रत्तचंदणकलसं, चंदणघडसुकय-(तोरणपडिदुवारदेसभायं, आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदाम-कलावं, पंचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं, कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंत-) गंधुद्धुयाभिरामं, सुगंधवरगंधियं, गंधवट्टिभूयं करेह, कारवेह; करेत्ता, कारवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ट० करयल जाव[1] एवं सामित्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति, पडिसुणित्ता भरहस्स अंतियाओ पडिणिक्खमंति, पडि-णिक्खमित्ता विणीयं रायहाणिं (सब्भिंतरबाहिरियं आसियसंमज्जियसित्तसुइगरत्थंतरवीहियं, मंचाइ-मंचकलियं, णाणाविहरागवसणऊसियझयपडागाइपडागमंडियं, लाउल्लोइयमहियं, गोसीससरसरत्त-चंदणकलसं, चंदणघडसुकय जाव गंधुद्धुयाभिरामं, सुगंधवरगंधियं, गंधवट्टिभूयं करेइ, कारवेइ,) करेत्ता, कारवेत्ता य तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

[५४] तत्पश्चात् राजा भरत ने कौटुम्बिक पुरुषों को—व्यवस्था से सम्बद्ध अधिकारियों को बुलाया, बुलाकर उन्हें कहा—देवानुप्रियो ! राजधानी विनीता नगरी की भीतर और बाहर से सफाई कराओ, उसे सम्मार्जित कराओ, सुगंधित जल से उसे आसिक्त कराओ—सुगंधित जल का छिड़काव कराओ, नगरी की सड़कों और गलियों को स्वच्छ कराओ, वहाँ मंच, अतिमंच—विशिष्ट या उच्च मंच—मंचों पर मंच निर्मित कराकर उसे सज्जित कराओ, विविध रंगों में रंगे वस्त्रों से निर्मित ध्वजाओं, पताकाओं—छोटी छोटी झंडियों, अतिपताकाओं—बड़ी बड़ी झंडियों से उसे सुशोभित कराओ, भूमि पर गोबर का लेप कराओ, गोशीर्ष एवं सरस—आर्द्र लाल चन्दन से सुरभित करो, उसके प्रत्येक द्वारभाग को चंदनकलशों—चंदनचर्चित मंगलघटों और तोरणों से सजाओ, नीचे-ऊपर बड़ी-बड़ी गोल तथा लम्बी पुष्पमालाएँ वहाँ लटकाओ, पांचों वर्ण के सरस, सुरभित फूलों के गुलदस्तों से उसे सजाओ, काले अगर, उत्तम कुन्दरुक, लोबान तथा धूप की गमगमाती महक से वहाँ के वातावरण को रमणीय सुरभिमय बनाओ, जिससे) सुगंधित धुएं की प्रचुरता से वहाँ गोल-गोल धूममय छल्ले से बनते दिखाई दें। ऐसा कर आज्ञा पालने की सूचना करो।

राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर व्यवस्थाधिकारी बहुत हर्षित एवं प्रसन्न हुए। उन्होंने हाथ जोड़कर 'स्वामी की जैसी आज्ञा' यों कहकर उसे—शिरोधार्य किया, शिरोधार्य कर राजा भरत के पास से रवाना हुए, रवाना होकर विनीता राजधानी को राजा के आदेश के अनुरूप सजाया, सजवाया और राजा के पास उपस्थित होकर उन्होंने आज्ञापालन की सूचना दी।

५५. तए णं से भरहे राया जेणेव मज्जणघरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता समुत्तजालाकुलाभिरामे, विचित्तमणिरयणकुट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाण-मंडवंसि णाणामणि-रयणभत्तिचित्तंसि ण्हाणपीढंसि, सुहणिसण्णे, सुहोदएहिं, गंधोदएहिं, पुप्फोदएहिं, सुद्धोदएहि य पुण्णे कल्लाणगपवरमज्जणविहीए मज्जिए, तत्थ कोउयसएहिं बहुविहेहिं कल्लाणग-पवरमज्जणावसाणे पम्हलसुकुमालगंधकासाइयलूहियंगे, सरससुरहिगोसीसचंदणाणुलित्तगत्ते,

१. देखें सूत्र यही

श्रहयसुमहग्घदूसरयणसुसंवुडे, सुइमालावण्णगविलेवणे, श्राविद्धमणिसुवण्णे कप्पियहारद्धहारतिसरिय-पालंबपलंबमाणकडिसुत्तसुकयसोहे, पिणद्धगेविज्जगअंगुलिज्जगललिअंगयललियकयाभरणे, णाणामणि-कडगतुडियथंभियभुए, श्रहियसस्सिरीए, कुण्डलउज्जोइयाणणे, मउडदित्तसिरए, हारोत्थयसुकयवच्छे, पालंबपलंबमाणसुकयपडउत्तरिज्जे, मुद्दियापिंगलंगुलीए, णाणामणिकणगविमलमहरिह-णिउणोयविय-मिसिमिसिंत-विरइय-सुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठसंठियपसत्थ-श्राविद्धवीरवलए । किं वहुणा ? कप्परुक्खए चेव श्रलंकिश्रविभूसिए, णरिंदे सकोरंट-(मल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं,) चउचामरवालवीइयंगे, मंगलजयजयसद्दकयालोए, श्रणेगगणणायगदंडणायग - (ईसरतलवरमाडंबिश्रकोडुंबिश्रमंतिमहामंति-गणगदोवारिअश्रमच्चचेडपीढमद्दणगरणिगमसेट्ठिसेणावइसत्थवाह-) दूयसंधिवालसद्धिं संपरिवुडे, धवल-महामेहणिग्गए इव (गहगण-दिप्पंतरिक्ख-तारागणाण मज्झे) ससिव्व पियदंसणे, णरवई धूव-पुप्फ-गंध-मल्ल-हत्थगए मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव श्राउहघरसाला, जेणेव चक्करयणे, तेणामेव पहारेत्थ गमणाए ।

[५५] तत्पश्चात् राजा भरत जहाँ स्नानघर था, वहाँ श्राया । उस श्रोर श्राकर स्नानघर में प्रविष्ट हुश्रा । वह स्नानघर मुक्ताजालयुक्त-मोतियों की श्रनेकानेक लड़ियों से सजे हुए झरोखों के कारण वड़ा सुन्दर था । उसका प्रांगण विभिन्न मणियों तथा रत्नों से खचित था । उसमें रमणीय स्नान-मंडप था । स्नान-मंडप में श्रनेक प्रकार से चित्रात्मक रूप में जड़ी गई मणियों एवं रत्नों से सुशोभित स्नान-पीठ था । राजा सुखपूर्वक उस पर बैठा । राजा ने शुभोदक—न श्रधिक उष्ण, न श्रधिक शीतल, सुखप्रद जल, गन्धोदक—चन्दन श्रादि सुगंधित पदार्थों से मिश्रित जल, पुष्पोदक—पुष्प मिश्रित जल एवं शुद्ध जल द्वारा परिपूर्ण, कल्याणकारी, उत्तम स्नानविधि से स्नान किया ।

स्नान के श्रनन्तर राजा ने दृष्टिदोष, नजर श्रादि के निवारण हेतु रक्षाबन्धन श्रादि के सैकड़ों विधि-विधान संपादित किये । तत्पश्चात् रोएँदार, सुकोमल काषायित—हरीतकी, विभीतक, श्रामलक श्रादि कसैली वनौषधियों से रंगे हुए श्रथवा काषाय—लाल या गेरुए रंग के वस्त्र से शरीर पोंछा । सरस—रसमय—श्रार्द्र, सुगन्धित गोशीर्ष चन्दन का देह पर लेप किया । श्रहत—श्रदूषित—चूहों श्रादि द्वारा नहीं कुतरे हुए बहुमूल्य दूष्यरत्न—उत्तम या प्रधान वस्त्र भली भाँति पहने । पवित्र माला धारण की । केसर श्रादि का विलेपन किया । मणियों से जड़े सोने के श्राभूषण पहने । हार—श्रठारह लड़ों के हार, श्रर्धहार—नौ लड़ों के हार तथा तीन लड़ों के हार श्रौर लम्वे, लटकते कटि सूत्र—करधनी या कंदोरे से श्रपने को सुशोभित किया । गले के श्राभरण धारण किये । अंगुलियों में अंगूठियाँ पहनी । इस प्रकार सुन्दर अंगों को सुन्दर श्राभूषणों से विभूषित किया । नाना मणिमय कंकणों तथा त्रुटितों—तोड़ों—भुजवंधों द्वारा भुजाश्रों को स्तम्भित किया—कसा । यों राजा की शोभा श्रौर श्रधिक बढ़ गई । कुंडलों से मुख उद्योतित था—चमक रहा था । मुकुट से मस्तक दीप्त—देदीप्यमान था । हारों से ढका हुश्रा उसका वक्षःस्थल सुन्दर प्रतीत हो रहा था । राजा ने एक लम्वे, लटकते हुए वस्त्र को उत्तरीय (दुपट्टे) के रूप में धारण किया । मुद्रिकाश्रों—सोने की अंगूठियों के कारण राजा की अंगुलियां पीली लग रही थीं । सुयोग्य शिल्पियों द्वारा नानाविध मणि, स्वर्ण, रत्न—इनके योग से सुरचित विमल—उज्ज्वल, महार्ह—बड़े लोगों द्वारा धारण करने योग्य, सुश्लिष्ट—सुन्दर जोड़ युक्त, विशिष्ट—उत्कृष्ट, प्रशस्त—प्रशंसनीय श्राकृतियुक्त सुन्दर वीरवलय—विजय कंकण

धारण किया। अधिक क्या कहें, इस प्रकार अलंकृत—अलंकारयुक्त, विभूषित—वेशभूषा से विशिष्ट सज्जायुक्त राजा ऐसा लगता था, मानो कल्पवृक्ष हो। अपने ऊपर लगाये गये कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र, दोनों ओर डुलाये जाते चार चँवर, देखते ही लोगों द्वारा किये गये मंगलमय जय शब्द के साथ राजा स्नान-गृह से बाहर निकला। स्नानघर से वाहर निकलकर अनेक गणनायक—जनसमुदाय के प्रतिनिधि, दण्डनायक—आरक्षि-अधिकारी, राजा—माण्डलिक नरपति, (ईश्वर—ऐश्वर्यशाली या प्रभावशील पुरुष, तलवर—राज-सम्मानित विशिष्ट नागरिक, माडंबिक—जागीरदार, भूस्वामी, कौटुम्बिक—वड़े परिवारों के प्रमुख, मंत्री, महामंत्री—मंत्रीमण्डल के प्रधान, गणक—गणितज्ञ या भाण्डागारिक, दौवारिक—प्रहरी, अमात्य—मंत्रणा आदि विशिष्ट कार्य-सम्बद्ध उच्च राजपुरुष, चेट—चरणसेवी दास, पीठमर्द—राजसभा में राजा के निकट रहते हुए विशिष्ट सेवारत वयस्य, नगर—नागरिकवृन्द, निगम—नगर के वणिक्-आवासों के वड़े सेठ, सेनापति तथा सार्थवाह—अनेक छोटे व्यापारियों को साथ लिए देशान्तर में व्यापार-व्यवसाय करने वाले), दूत—संदेशवाहक, संधिपाल—राज्य के सीमान्त-प्रदेशों के अधिकारी—इन सवसे घिरा हुआ राजा धवल महामेघ—श्वेत, विशाल बादल से निकले, ग्रहगण से देदीप्यमान आकाशस्थित तारागण के मध्यवर्ती चन्द्र के सदृश देखने में वड़ा प्रिय लगता था। वह हाथ में धूप, पुष्प, गन्ध, माला—पूजोपकरण लिए हुए स्नानघर से निकला, निकलकर जहाँ आयुधशाला थी, जहाँ चक्ररत्न था, वहाँ के लिए चला।

५६ तए णं तस्स भरहस्स रण्णो बहवे ईसरपभिइओ अप्पेगइआ पउमहत्थगया, अप्पेगइआ उप्पलहत्थगया, (अप्पेगइया कुमुअहत्थगया, अप्पेगइआ नलिणहत्थगया, अप्पेगइआ सोगन्धिअ-हत्थगया, अप्पेगइआ पुंडरीयहत्थगया, अप्पेगइआ सहस्सपत्तहत्थगया,) अप्पेगइआ सयसहस्सपत्त-हत्थगया भरहं रायाणं पिट्ठओ पिट्ठओ अणुगच्छंति।

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो बहूईओ—

(गहाओ) खुज्जा चिलाइ वामणि वडभीओ बब्बरी बउसिआओ।
जोणिय-पह्लवियाओ इसिणिय-थारुकिणियाओ ॥१॥
लासिय-लउसिय-दमिली सिंहलि तह आरबी पुलिंदी य।
पक्कणि बहलि मुरुंडी सबरीओ पारसीओ य ॥२॥

अप्पेगइया वंदणकलसहत्थगआओ, भिंगारआदंसथालपातिसुपइट्ठगवायकरगरयणकरंडपुप्फ-चंगेरीमल्लवण्णचुण्णगंधहत्थगआओ, वत्थआभरणलोमहत्थयचंगेरीपुप्फपडलहत्थगआओ जाव लोम-हत्थगआओ, अप्पेगइआओ सीहासणहत्थगआओ, छत्तचामरहत्थगआओ, तिल्लसमुग्गयहत्थगआओ,

(गाहा) तेल्ले-कोट्ठसमुग्गे, पत्ते चोए अ तगरमेला य।
हरिआले हिंगुलए, मणोसिला सासवसमुग्गे ॥१॥

अप्पेगइआओ तालिअंटहत्थगयाओ, अप्पेगइयाओ धूवकडुच्छुअहत्थगयाओ भरहं रायाणं पिट्ठओ पिट्ठओ अणुगच्छंति।

तए णं से भरहे राया सव्विड्ढीए, सव्वज्जुईए, सव्वबलेणं, सव्वसमुदयेणं, सव्वायरेणं, सव्ववि-भूसाए, सव्वविभूईए, सव्ववत्थपुप्फगंधमल्लालंकारविभूसाए, सव्वतुडिअसद्दसण्णिणाएणं, महया इड्ढीए,

(महया जुईए, महया बलेणं, महया समुदयेणं, महया आयरेणं, महया विभूसाए, महया विभूईए महया वत्थ-पुप्फ-गंध-मल्लालंकारविभूसाए, महया तुडिअसद्दसण्णिणाएणं,) महया वरतुडियजमगसमगपवाइएणं संखपणवपडहभेरिझल्लरिखरमुहिमुरयमुइंगदुंदुहिणिग्घोसणाइएणं जेणेव आउहघरसाला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आलोए चक्करयणस्स पणामं करेइ, करेत्ता जेणेव चक्करयणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थयं परामुसइ, परामुसित्ता चक्करयणं पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ, अब्भुक्खित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं अणुलिंपइ, अणुलिंपित्ता अग्गेहिं, वरेहिं, गंधेहिं, मल्लेहि अ अच्चिणइ, पुप्फारुहणं, मल्ल-गंध-वण्ण-चुण्ण-वत्थारुहणं, आभरणारुहणं करेइ, करेत्ता अच्छेहिं, सण्हेहिं, सेएहिं, रययामएहिं, अच्छरसातंडुलेहिं चक्करयणस्स पुरओ अट्ठट्ठमंगलए आलिहइ, तंजहा—सोत्थिय १. सिरिवच्छ २. णंदिआवत्त ३. वद्धमाणग ४. भद्दासण ५. मच्छ ६. कलस ७. दप्पण ८. अट्ठमंगलए आलिहित्ता काऊणं करेइ उवयारंति, किं ते—पाडलमल्लिअचंपगअसोगपुण्णागचूअमंजरीणवमालिअवकुलतिलगकणवीरकुंदकोज्जयकोरंटयपत्तदमणयवरसुरहिसुगंध-गंधिअस्स, कयग्गहगहिअ-करयलपब्भट्ठविप्पमुक्कस्स, दसद्धवण्णस्स, कुसुमणिगरस्स तत्थ चित्तं जाणुस्सेहप्पमाणमित्तं ओहिनिगरं करेत्ता चंदप्पभवइरवेरुलिअविमलदंडं, कंचणमणिरयणभत्तिचित्तं, कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवगंधुत्तमाणुविद्धं च धूमवट्टिं विणिम्मुअंतं, वेरुलिअमयं कडच्छुअं पग्गहेत्तु पयते, धूवं दहइ, दहेत्ता सत्तट्ठपयाइं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्केत्ता वामं जाणुं अंचेइ, (दाहिणं जाणुं धरणिअलंसि निहट्टु करयलपरिग्गहिअं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु) पणामं करेइ, करेत्ता आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमेत्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव सीहासणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसीयइ, सण्णिसित्ता अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! उस्सुक्कं, उक्करं, उक्किट्ठं, अदिज्जं, अमिज्जं, अभडप्पवेसं, अदंडकोदंडिमं, अधरिमं, गणिआवरणाडइज्जकलियं, अणेगतालायराणुचरियं, अणुद्धअमुइंगं, अमिलाय-मल्लदामं, पमुइय-पक्कीलिय-सपुरजणजाणवयं विजयवेजइयं चक्करयणस्स अट्ठाहिअं महामहिमं करेह, करेत्ता ममेयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह।

तए णं ताओ अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ भरहेणं रन्ना एवं वुत्ताओ समाणीओ हट्ठाओ जाव[1] विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता भरहस्स रण्णो अंतियाओ पडिणिक्खमेंति, पडिणिक्खमित्ता उस्सुक्कं, उक्करं, (उक्किट्ठं, अदिज्जं, अमिज्जं, अभडप्पवेसं, अदंडकोदंडिमं, अधरिमं, गणिआवरणाडइज्जकलियं, अणेगतालायराणुचरियं, अणुद्धयमुइंगं, अमिलायमल्लदामं, पमुइय-पक्कीलिय-सपुरजणजाणवयं विजयवेजइयं चक्करयणस्स अट्ठाहिअं महामहिमं) करेंति य कारवेंति य, करेत्ता कारवेत्ता य जेणेव भरहे राया, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता जाव तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

---

१. देखें सूत्र यही

[५६] राजा भरत के पीछे-पीछे बहुत से ऐश्वर्यशाली विशिष्ट जन चल रहे थे। उनमें से किन्हीं-किन्हीं के हाथों में पद्म, (कुमुद, नलिन, सौगन्धिक, पुंडरीक, सहस्रपत्र—हजार पंखुड़ियों वाले कमल तथा) शतसहस्रपत्र कमल थे।

राजा भरत की बहुत सी दासियां भी साथ थीं। उनमें से अनेक कुबड़ी थीं, अनेक किरात देश की थीं, अनेक बौनी थीं, अनेक ऐसी थीं, जिनकी कमर झुकी थी, अनेक बर्बर देश की, वकुश देश की, यूनान देश की, पह्लव देश की, इसिन देश की, थारुकिनिक देश की, लासक देश की, लकुश देश की, सिंहल देश की, द्रविड़ देश की, अरब देश की, पुलिन्द देश की, पक्कण देश की, बहल देश की, मुरुंड देश की, शबर देश की, पारस देश की—यों विभिन्न देशों की थीं।

उनमें से किन्हीं-किन्हीं के हाथों में मंगलकलश, भृंगार—झारियाँ, दर्पण, थाल, रकाबी जैसे छोटे पात्र, सुप्रतिष्ठक, वातकरक—करवे, रत्नकरंडक—रत्न-मंजूषा, फूलों की डलिया, माला, वर्ण, चूर्ण, गन्ध, वस्त्र, आभूषण, मोर-पंखों से बनी फूलों के गुलदस्तों से भरी डलिया, मयूरपिच्छ, सिंहासन, छत्र, चँवर तथा तिलसमुद्गक—तिल के भाजन-विशेष—डिब्बे जैसे पात्र आदि भिन्न-भिन्न वस्तुएँ थीं।

इनके अतिरिक्त कतिपय दासियाँ तेल-समुद्गक, कोष्ठ-समुद्गक, पत्र-समुद्गक, चोय (सुगन्धित द्रव्य-विशेष)-समुद्गक, तगर-समुद्गक, हरिताल-समुद्गक, हिंगुल-समुद्गक, मैनसिल-समुद्गक तथा सर्षप (सरसों)-समुद्गक लिये थीं। कतिपय दासियों के हाथों में तालपत्र—पंखे, धूपकडच्छुक—धूपदान थे।

यों वह राजा भरत सब प्रकार की ऋद्धि, द्युति, बल, समुदय, आदर, विभूषा, वैभव, वस्त्र, पुष्प, गन्ध, अलंकार—इस सबकी शोभा से युक्त (महती ऋद्धि, द्युति, बल, समुदय, आदर, विभूषा, वैभव, वस्त्र, पुष्प, गन्ध, अलंकार सहित) कलापूर्ण शैली में एक साथ बजाये गये शंख, प्रणव, पटह, भेरी, झालर, खरमुखी, मुरज, मृदंग, दुन्दुभि के निनाद के साथ जहाँ आयुधशाला थी, वहाँ आया। आकर चक्ररत्न की ओर देखते ही, प्रणाम किया, प्रणाम कर जहाँ चक्ररत्न था, वहाँ आया, आकर मयूरपिच्छ द्वारा चक्ररत्न को झाड़ा-पोंछा, झाड़-पोंछकर दिव्य जल-धारा द्वारा उसका सिंचन किया—प्रक्षालन किया, सिंचन कर सरस गोशीर्ष-चन्दन से अनुलेपन किया, अनुलेपन कर अभिनव, उत्तम सुगन्धित द्रव्यों और मालाओं से उसकी अर्चा की, पुष्प चढ़ाये, माला, गन्ध, वर्णक एवं वस्त्र चढ़ाये, आभूषण चढ़ाये। वैसा कर चक्ररत्न के सामने उजले, स्निग्ध, श्वेत, रत्नमय अक्षत चावलों से स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्दावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, मत्स्य, कलश, दर्पण—इन अष्ट मंगलों का आलेखन किया। गुलाब, मल्लिका, चंपक, अशोक, पुन्नाग, आम्रमंजरी, नवमल्लिका, वकुल, तिलक, कणवीर, कुन्द, कुब्जक, कोरंटक, पत्र, दमनक—ये सुरभित—सुगन्धित पुष्प राजा ने हाथ में लिये, चक्ररत्न के आगे चढ़ाये, इतने चढ़ाये कि उन पंचरंगे फूलों का चक्ररत्न के आगे जानु-प्रमाण—घुटने तक ऊँचा ढेर लग गया।

तदनन्तर राजा ने धूपदान हाथ में लिया जो चन्द्रकान्त, वज्र-हीरा, वैडूर्य रत्नमय दंडयुक्त, विविध चित्रांकन के रूप में संयोजित स्वर्ण, मणि एवं रत्नयुक्त, काले अगर, उत्तम कुन्दरुक, लोबान तथा धूप की गमगमाती महक से शोभित, वैडूर्य मणि से निर्मित था आदरपूर्वक धूप जलाया, धूप जलाकर

सात-आठ कदम पीछे हटा, बायें घुटने को ऊँचा किया, वैसा कर (दाहिने घुटने को भूमि पर टिकाया, हाथ जोड़ते हुए, उन्हें मस्तक के चारों ओर घुमाते हुए, अंजलि बांधे, चक्ररत्न को प्रणाम किया। प्रणाम कर आयुधशाला से निकला, निकलकर जहाँ बाहरी उपस्थानशाला—सभाभवन था, जहाँ सिंहासन था, वहाँ आया, आकर पूर्वाभिमुख हो सिंहासन पर विधिवत् बैठा। बैठकर अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि—सभी जाति-उपजाति के प्रजाजनों को बुलाया, बुलाकर उन्हें इस प्रकार कहा—

देवानुप्रियो ! चक्ररत्न के उत्पन्न होने के उपलक्ष्य में तुम सब महान् विजय का संसूचक अष्ट दिवसीय महोत्सव आयोजित करो। (मैं उद्घोषित करता हूँ) 'इन दिनों राज्य में कोई भी क्रय-विक्रय आदि सम्बन्धी शुल्क, सम्पत्ति आदि पर प्रतिवर्ष लिया जाने वाला राज्य-कर नहीं लिया जायेगा। लभ्य-ग्रहण में—किसी से यदि कुछ लेना है, उसमें खिचाव न किया जाए, जोर न दिया जाए, आदान-प्रदान का, नाप-जोख का क्रम बन्द रहे, राज्य के कर्मचारी, अधिकारी किसी के घर में प्रवेश न करें, दण्ड—यथापराध राजग्राह्य द्रव्य—जुर्माना, कुदण्ड—बड़े अपराध के लिए दंड रूप में लिया जाने वाला अल्प द्रव्य—थोड़ा जुर्माना—ये दोनों ही नहीं लिये जायेंगे। ऋण के सन्दर्भ में कोई विवाद न हो—राजकोष से धन लेकर ऋणी का ऋण चुका दिया जाए—ऋणी को ऋण-मुक्त कर दिया जाए। नृत्यांगनाओं के तालवाद्य-समन्वित नाटक, नृत्य आदि आयोजित कर समारोह को सुन्दर बनाया जाए, यथाविधि समुद्भावित मृदंग-निनाद से महोत्सव को गुंजा दिया जाए। नगर-सज्जा में लगाई गई या पहनी गई मालाएँ कुम्हलाई हुई न हों, ताजे फूलों से बनी हों। यों प्रत्येक नगरवासी और जनपदवासी प्रमुदित हो आठ दिन तक महोत्सव मनाएँ।

मेरे आदेशानुरूप यह सब संपादित कर लिये जाने के बाद मुझे शीघ्र सूचित करें।'

राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर वे अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि के प्रजा-जन हर्षित हुए, विनयपूर्वक राजा का वचन शिरोधार्य किया। वैसा कर राजा भरत के पास से रवाना हुए, रवाना होकर उन्होंने राजा की आज्ञानुसार अष्ट दिवसीय महोत्सव की व्यवस्था की, करवाई। वैसा कर जहाँ राजा भरत था, वहाँ वापस लौटे, वापस लौटकर उन्हें निवेदित किया कि आपकी आज्ञानुसार सब व्यवस्था की जा चुकी है।

भरत का मागध तीर्थाभिमुख प्रयाण

५७. तए णं से दिव्वे चक्करयणे अट्ठाहिआए महामहिमाए निव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता अंतलिक्खपडिवण्णे, जक्खसहस्स-संपरिवुडे, दिव्वतुडिअसद्दसण्णिणाएणं आपूरेंते चेव अंबरतलं विणीआए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ २ त्ता गंगाए महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरत्थिमं दिसिं मागहतित्थाभिमुहे पयाते यावि होत्था।

तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं गंगाए महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरत्थिमं दिसिं मागहतित्थाभिमुहं पयातं पासइ २ त्ता हट्ठतुट्ठ-(चित्तमाणंदिए, णंदिए, पीइमणे, परमसोमणस्सिए, हरिसवसविसप्पमाण-) हियए कोडुंबिअपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह, हयगयरहपवरजोहकलिअं

चाउरंगिणि सेण्णं सण्णाहेह, एत्तमाणत्तिअं पच्चप्पिणह। तए णं ते कोडुंबिअ-(पुरिसे तमाणत्तियं) पच्चप्पिणंति।

तए णं से भरहे राया जेणेव मज्जणघरे, तेणेव उवागच्छइ २ त्ता मज्जणघरं अणुपविसइ २ त्ता समुत्तजालाभिरामे, तहेव विचित्तमणिरयणकुट्टिमतले, रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि, णाणामणिरयणभत्तिचित्तंसि ण्हाणपीढंसि सुहणिसण्णे सुहोदएहिं, गंधोदएहिं पुप्फोदएहिं, सुद्धोदएहि य पुण्णे कल्लाणगपवर-मज्जणविहीए मज्जिए। तत्थ कोउयसएहिं बहुविहेहिं कल्लाणगपवरमज्ज-णावसाणे, पम्हल-सुकुमाल-गंधकासाइय-लूहियंगे, सरससुरहिगोसीसचंदणाणुलित्तगत्ते, अहयसुमहग्घ-दूसरयणसुसंवुडे, सुइमालावण्णगविलेवणे, आविद्धमणि-सुवण्णे, कप्पियहारद्धहारतिसरिय-पालंब-पलंबमाणकडिसुत्त-सुकयसोहे, पिणद्ध-गेविज्जग-अंगुलिज्जगललिअंगयललियकयाभरणे, णाणामणि-कडगतुडियथंभियभुए, अहियसस्सिरीए, कुण्डल-उज्जोइयाणणे, मउडदित्तसिरए, हारोत्थयसुकय-वच्छे, पालंबपलंबमाणसुकयपडउत्तरिज्जे, मुद्दियापिंगलंगुलीए, णाणामणिकणगविमलमहरिह-णिउणोयवियमिसिमिसितविरइयसुसिलिट्ठविसिट्ठ-लट्ठसंठियपसत्थआविद्धवीरवलए। किं बहुणा— कप्परुक्खए चेव अलंकिअ-विभूसिए णरिंदे सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं चउ-चामरवाल-वीइयंगे, मंगलजयजयसद्दकयालोए, अणेग-गणणायग-दंडणायग-दूय-संधिवालसद्धिं संपरिवुडे,) धवलमहामेहणिग्गए इव ससिव्व पियदंसणे णरवई मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता हयगयरहपवर-वाहणभडचडगरपहकर-संकुलाए सेणाए पहिअकित्ती जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे, तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अंजणगिरिकडगसण्णिभं गयवइं णरवई दूरूढे।

तए णं से भरहाहिवे णरिंदे हारोत्थए सुकयरइयवच्छे, कुंडलउज्जोइआणणे, मउडदित्त-सिरए, णरसीहे, णरवई, णरिंदे, णरवसहे, मरुअरायवसभकप्पे अब्भहिअरायतेअलच्छीए दिप्पमाणे, पसत्थमंगलसएहिं संथुव्वमाणे, जयसद्दकयालोए, हत्थिखंधवरगए, सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं, सेअवरचामराहिं उद्धुव्व-माणीहिं २ जक्खसहस्ससंपरिवुडे वेसमणे चेव धणवई, अमरवइसण्णिभाइ इड्ढीए पहिअकित्ती, गंगाए महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेणं गामागरणगरखेडकब्बड-मडंबदोणमुह-पट्टणासमसंबाहसहस्समंडिअं, थिमिअमेइणीअं वसुहं अभिजिणमाणे २ अग्गाइं, वराइं रयणाइं पडिच्छमाणे २ तं दिव्वं चक्करयणं अणुगच्छमाणे २ जोअणंतरिआहिं वसहीहिं वसमाणे २ जेणेव मागहतित्थे, तेणेव उवागच्छइ २ त्ता मागहतित्थस्स अदूरसामंते दुवालसजोयणायामं, णवजोअणविच्छिण्णं, वरणगरसरिच्छं, विजय-खंधावारनिवेसं करेइ २ त्ता वड्ढइरयणं सद्दावेइ, सद्दावइत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! ममं आवासं पोसहसालं च करेहि, करेत्ता ममेअमाणत्तिअं पच्चप्पिणाहि। तए णं से वड्ढइरयणे भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए, पीइमणे जाव[1] अंजलि कट्टु एवं सामी! तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ २ त्ता भरहस्स रण्णो आवसहं पोसहसालं च करेइ २ त्ता एअमाणत्तिअं खिप्पामेव पच्चप्पिणंति।

---

१. देखें सूत्र ४४

तए णं से भरहे राया आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ २ त्ता जेणेव पोसहसाला, तेणेव उवागच्छइ २ त्ता पोसहसालं अणुपविसइ २ त्ता पोसहसालं पमज्जइ २ त्ता दब्भसंथारगं संथरइ २ त्ता दब्भसंथारगं दुरूहइ २ त्ता मागहतित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठमभत्तं पगिण्हइ २ त्ता पोसहसालाए पोसहिए, बंभयारी, उम्मुक्कमणिसुवण्णे, ववगयमालावण्णगविलेवणे, णिक्खित्त-सत्थमुसले, दब्भसंथारोवगए, एगे, अबीए अट्ठमभत्तं पडिजागरमाणे २ विहरइ।

तए णं से भरहे राया अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला, तेणेव उवागच्छइ २ त्ता कोडुंबिअपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! हयगयरहपवरजोहकलिअं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेह, चाउग्घंटं आसरहं पडिकप्पेहत्ति कट्टु मज्जणघरं अणुपविसइ २ त्ता समुत्त तहेव जाव[1] धवलमहामेहणिग्गए इव ससिव्व पियदंसणे णरवई मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता हयगयरहपवरवाहण (भडचडगर-पहकरसंकुलाए) सेणाए पहिअकित्ती जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला, जेणेव चाउग्घंटे आसरहे, तेणेव उवागच्छइ २ त्ता चाउग्घंटं आसरहं दुरूढे।

[५७] अष्ट दिवसीय महोत्सव के संपन्न हो जाने पर वह दिव्य चक्ररत्न आयुधगृहशाला—शस्त्रागार से निकला। निकलकर आकाश में प्रतिपन्न—अधर स्थित हुआ। वह एक सहस्र यक्षों[2] से संपरिवृत—घिरा था। दिव्य वाद्यों की ध्वनि एवं निनाद से आकाश व्याप्त था। वह चक्ररत्न विनीता राजधानी के बीच से निकला। निकलकर गंगा महानदी के दक्षिणी किनारे से होता हुआ पूर्व दिशा में मागध तीर्थ की ओर चला।

राजा भरत ने उस दिव्य चक्ररत्न को गंगा महानदी के दक्षिणी तट से होते हुए पूर्व दिशा में मागध तीर्थ की ओर बढ़ते हुए देखा, वह हर्षित व परितुष्ट हुआ, (चित्त में आनन्द एवं प्रसन्नता का अनुभव करता हुआ, अत्यन्त सौम्य मानसिक भावों से युक्त तथा हर्षातिरेक से विकसित हृदय हो उठा।) उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा—देवानुप्रियो !. आभिषेक्य—अभिषेकयोग्य—प्रधानपद पर अधिष्ठित, राजा की सवारी में प्रयोजनीय हस्तिरत्न—उत्तम हाथी—को शीघ्र ही सुसज्ज करो। घोड़े, हाथी, रथ तथा श्रेष्ठ योद्धाओं—पदातियों से परिगठित चतुरंगिणी सेना को तैयार करो। यथावत् आज्ञापालन कर मुझे सूचित करो।

कौटुम्बिक पुरुषों ने राजा के आदेश के अनुरूप सब किया और राजा को अवगत कराया।

तत्पश्चात् राजा भरत जहाँ स्नानघर था, वहाँ आया। उस ओर आकर स्नानघर में प्रविष्ट हुआ। वह स्नानघर मुक्ताजाल युक्त—मोतियों की अनेकानेक लड़ियों से सजे हुए झरोखों के कारण बड़ा सुन्दर था। (उसका प्रांगण विभिन्न मणियों तथा रत्नों से खचित था। उसमें रमणीय स्नानमंडप था। स्नानमंडप में अनेक प्रकार की चित्रात्मक रूप से जड़ी गई मणियों एवं रत्नों से सुशोभित स्नानपीठ था। राजा सुखपूर्वक उस पर बैठा। राजा ने शुभोदक—न अधिक उष्ण तथा न अधिक

---

१. देखें सूत्र संख्या ४४

२. चक्रवर्ती के चौदह रत्नों में से प्रत्येक रत्न एक-एक सहस्र देवों द्वारा अधिष्ठित होता है।

शीतल, सुखप्रद जल, गन्धोदक—चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों से मिश्रित जल, पुष्पोदक—पुष्प-मिश्रित जल एवं शुद्ध जल द्वारा परिपूर्ण, कल्याणकारी, उत्तम स्नानविधि से स्नान किया। स्नान के अनन्तर राजा ने दृष्टिदोष, नजर आदि के निवारण हेतु रक्षाबन्धन आदि के सैकड़ों विधि-विधान संपादित किये। तत्पश्चात् रोएँदार, सुकोमल, काषायित—हरीतकी, विभीतक, आमलक आदि कसैली वनौषधियों से रंगे हुए अथवा काषाय—लाल या गेरुए रंग के वस्त्र से शरीर को पोंछा। सरस—रसमय—आर्द्र, सुगन्धित गोशीर्ष चन्दन का देह पर लेप किया। अहत—अदूषित—चूहों आदि द्वारा नहीं कुतरे हुए, बहुमूल्य, दूष्यरत्न—उत्तम या प्रधान वस्त्र भलीभांति पहने। पवित्र माला धारण की। केसर आदि का विलेपन किया। मणियों से जड़े सोने के आभूषण पहने। हार—अठारह लड़ों के हार, अर्धहार—नौ लड़ों के हार तथा तीन लड़ों के हार और लम्बे, लटकते कटिसूत्र—करधनी या कंदोरे से अपने को सुशोभित किया। गले के आभरण धारण किए। अंगुलियों में अंगूठियाँ पहनीं। इस प्रकार अपने सुन्दर अंगों को सुन्दर आभूषणों से विभूषित किया। नाना मणिमय कंकणों तथा त्रुटितों—तोड़ों—भुजबंधों द्वारा भुजाओं को स्तम्भित किया—कसा। यों राजा की शोभा और अधिक बढ़ गई। कुंडलों से राजा का मुख उद्योतित था—चमक रहा था। मुकुट से मस्तक दीप्त—देदीप्यमान था। हारों से ढका उसका वक्षःस्थल सुन्दर प्रतीत हो रहा था। राजा ने एक लम्बे, लटकते हुए वस्त्र को उत्तरीय (दुपट्टे) के रूप में धारण किया। मुद्रिकाओं—सोने की अंगूठियों—के कारण राजा की अंगुलियाँ पीली लग रही थीं। सुयोग्य शिल्पियों द्वारा नानाविध मणि, स्वर्ण, रत्न, इनके योग से सुरचित विमल—उज्ज्वल, महार्ह—बड़े लोगों द्वारा धारण करने योग्य, सुश्लिष्ट—सुन्दर जोड़ युक्त, विशिष्ट—उत्कृष्ट, प्रशस्त—प्रशंसनीय आकृतियुक्त सुन्दर वीरवलय—विजय, कंकण धारण किया। अधिक क्या कहें, इस प्रकार अलंकृत, विभूषित—वेशभूषा से विशिष्ट सज्जायुक्त राजा ऐसा लगता था, मानो कल्पवृक्ष हो। अपने ऊपर लगाये गये कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र, दोनों ओर डुलाये जाते चार चँवर, देखते ही लोगों द्वारा किये गये मंगलमय जय शब्द के साथ अनेक गणनायक—जन-समुदाय के प्रतिनिधि, दण्डनायक—आरक्षि-अधिकारी, दूत—संदेशवादक, संधिपाल—राज्य के सीमान्त-प्रदेशों के अधिकारी—इन सबसे घिरा हुआ, धवल महामेघ—श्वेत, विशाल बादल से निकले चन्द्र की ज्यों प्रियदर्शन—देखने में प्रिय लगने वाला वह राजा स्नानघर से निकला।)

स्नानघर से निकलकर घोड़े, हाथी, रथ, अन्यान्य उत्तम वाहन तथा योद्धाओं के विस्तार से युक्त सेना से सुशोभित वह राजा जहाँ बाह्य उपस्थानशाला—बाहरी सभाभवन था, आभिषेक्य हस्तिरत्न था, वहाँ आया और अंजनगिरि के शिखर के समान विशाल गजपति पर आरूढ हुआ।

भरताधिप—भरतक्षेत्र के अधिपति नरेन्द्र—राजा भरत का वक्षस्थल हारों से व्याप्त, सुशोभित एवं प्रीतिकर था। उसका मुख कुंडलों से उद्योतित—द्युतिमय था। मस्तक मुकुट से देदीप्यमान था। नरसिंह—मनुष्यों में सिंहसदृश शौर्यशाली, नरपति—मनुष्यों के स्वामी—परिपालक, नरेन्द्र—मनुष्यों के इन्द्र—परम ऐश्वर्यशाली अभिनायक, नरवृषभ—मनुष्यों में वृषभ के समान स्वीकृत कार्यभार के निर्वाहक, मरुद्राजवृषभकल्प—व्यन्तर आदि देवों के राजाओं—इन्द्रों के मध्य वृषभ—मुख्य सौधमेन्द्र के सदृश, राजोचित तेजस्वितारूप लक्ष्मी से अत्यन्त दीप्तिमय, वंदिजनों द्वारा सैकड़ों मंगलसूचक शब्दों से संस्तुत, जयनाद से सुशोभित, गजारूढ राजा[1] भरत सहस्रों यक्षों से संपरिवृत

१. चक्रवर्ती का शरीर दो हजार व्यन्तर देवों से अधिष्ठित होता है।

धनपति यक्षराज कुबेर सदृश लगता था। देवराज इन्द्र के तुल्य उसकी समृद्धि थी, जिससे उसका यश सर्वत्र विश्रुत था। कोरंट के पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र उस पर तना था। श्रेष्ठ, श्वेत चँवर डुलाये जा रहे थे।

राजा भरत गंगा महानदी के दक्षिणी तट से होता हुआ सहस्रों ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्वट, मडंब, द्रोणमुख, पट्टन, आश्रम तथा संवाध—इनसे सुशोभित, प्रजाजनयुक्त पृथ्वी को—वहाँ के शासकों को जीतता हुआ, उत्कृष्ट, श्रेष्ठ रत्नों को भेंट के रूप में ग्रहण करता हुआ, दिव्य चक्ररत्न का अनुगमन करता हुआ—पीछे-पीछे चलता हुआ, एक-एक योजन पर अपने पड़ाव डालता हुआ जहाँ मागध तीर्थ था, वहाँ आया। आकर मागध तीर्थ के न अधिक दूर, न अधिक समीप, बारह योजन लम्बा तथा नौ योजन चौड़ा उत्तम नगर जैसा विजय स्कन्धावार—सैन्य-शिविर लगाया। फिर राजा ने वर्धकिरत्न—चक्रवर्ती के चौदह रत्नों—विशेषातिशयित साधनों में से एक अति श्रेष्ठ सूत्रधार—शिल्पकार को बुलाया। बुलाकर कहा—देवानुप्रिय! शीघ्र ही मेरे लिए आवास-स्थान एवं पोषध-शाला का निर्माण करो, आज्ञापालन कर मुझे सूचित करो। राजा द्वारा यों कहे जाने पर वह शिल्पकार हर्षित तथा परितुष्ट हुआ। उसने अपने चित्त में आनन्द एवं प्रसन्नता का अनुभव किया।

उसने हाथ जोड़कर 'स्वामी! जो आज्ञा' कहकर विनयपूर्वक राजा का आदेश स्वीकार किया। उसने राजा के लिए आवास-स्थान तथा पोषधशाला का निर्माण किया। निर्माण कर राजा को शीघ्र ज्ञापित किया कि उनके आदेशानुरूप कार्य हो गया है।

तब राजा भरत आभिषेक्य हस्तिरत्न से नीचे उतरा। नीचे उतरकर जहाँ पोषधशाला थी, वहाँ आया। आकर पोषधशाला में प्रविष्ट हुआ, पोषधशाला का प्रमार्जन किया, सफाई की। प्रमार्जन कर दर्भ—डाभ का बिछौना बिछाया। बिछौना बिछाकर उस पर स्थित हुआ—बैठा। बैठकर उसने मागध तीर्थकुमार देव को उद्दिष्ट कर तत्साधना हेतु तीन दिनों का उपवास—तेले की तपस्या स्वीकार की। तपस्या स्वीकार कर पोषधशाला में पोषध लिया—व्रत स्वीकार किया। मणि-स्वर्णमय आभूषण शरीर से उतार दिये। माला, वर्णक—चन्दनादि सुगन्धित पदार्थों के देहगत विलेपन आदि दूर किये, शस्त्र—कटार आदि, मूसल—दण्ड, गदा आदि हथियार एक ओर रखे। यों डाभ के बिछौने पर अवस्थित राजा भरत निर्भीकता—निर्भयभाव से आत्मबलपूर्वक तेले की तपस्या में प्रतिजागरित—सावधानी से संलग्न हुआ।

तेले की तपस्या परिपूर्ण हो जाने पर राजा भरत पौषधशाला से बाहर निकला। बाहर निकलकर जहाँ बाहरी उपस्थानशाला थी, वहाँ आया। आकर अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर उन्हें इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! घोड़े, हाथी, रथ एवं उत्तम योद्धाओं—पदातियों से सुशोभित चतुरंगिणी सेना को शीघ्र सुसज्ज करो। चातुर्घंट—चार घंटाओं से युक्त—अश्वरथ तैयार करो। यों कहकर राजा स्नानघर में प्रविष्ट हुआ। प्रविष्ट होकर, स्नानादि से निवृत्त होकर राजा स्नानघर से निकला। वह श्वेत, विशाल बादल से निकले, ग्रहगण से देदीप्यमान, आकाशस्थित तारों के मध्यवर्ती चन्द्र के सदृश देखने में बड़ा प्रिय लगता था। स्नानघर से निकलकर घोड़े, हाथी, रथ, अन्यान्य उत्तम वाहन तथा (योद्धाओं के विस्तार से युक्त) सेना से सुशोभित वह राजा जहाँ बाह्य उपस्थानशाला थी, चातुर्घंट अश्वरथ था, वहाँ आया। आकर रथारूढ़ हुआ।

मागधतीर्थ-विजय

५८. तए णं से भरहे राया चाउग्घंटं आसरहं दुरूढे समाणे हय-गय-रहपवर-जोह-कलिआए सद्धिं संपरिवुडे महया-भडचडगरपहगरवंदपरिक्खित्ते चक्क-रयणदेसिअमग्गे अणेगरायवर-सहस्साणु-आयमग्गे महया उक्किट्ठ-सीहणायबोल-कलकलरवेणं पक्खुभिअमहासमुद्दरव-भूअं पिव करेमाणे २ पुरत्थिमदिसाभिमुहे मागहतित्थेणं लवणसमुद्दं ओगाहइ जाव से रहवरस्स कुप्परा उल्ला।

तए णं से भरहे राया तुरगे निगिण्हइ २ त्ता रहं ठवेइ २ त्ता धणुं परामुसइ, तए णं तं अइरुग्गयबालचन्द-इंदधणुसंकासं वरमहिसदरिअदप्पिअदढघणसिंगरइअसारं उरगवरपवरगवलपवर-परहुअभमरकुलणीलिणिद्धं धंतधोअपट्टं णिउणोविअमिसिमिसिंतमणिरयण-घंटिआजालपरिक्खित्तं तडित्तरुणकिरणतवणिज्ज-बद्धचिंधं दद्दरमलयगिरिसिहरकेसरचामरवालद्धचंदचिंधं काल-हरिअ-रत्त-पीअ-सुक्किल्लबहुण्हारुणिसंपिणद्धजीवं जीविअंतकरणं चलजीवं धणू गहिऊण से णरवई उसुं च वरवइरकोडिअं वइरसारतोंडं कंचणमणिकणगरयणधाइट्ठसुकयपुंखं अणेगमणिरयणविविहसुविरइय-नामचिंधं वइसाहं ठाईऊण ठाणं आयतकण्णायतं च काऊण उसुमुदारं इमाइं वयणाइं तत्थ भाणिअ से णरवई—

हंदि सुणंतु भवंतो, बाहिरओ खलु सरस्स जे देवा।
णागासुरा सुवण्णा, तेसिं खु णमो पणिवयामि ॥१॥
हंदि सुणंतु भवंतो, अब्भितरओ सरस्स जे देवा।
णागासुरा सुवण्णा, सव्वे मे ते विसयवासी ॥२॥

इतिकट्टु उसुं णिसिरइत्ति—

परिगरणिगरिअमज्झो, वाउद्धुअसोभमाणकोसेज्जो।
चित्तेण सोभए धणुवरेण इंदोव्व पच्चक्खं ॥३॥
तं चंचलायमाणं, पंचमिचंदोवमं महाचावं।
छज्जइ वामे हत्थे, णरवइणो तंमि विजयंमि ॥४॥

तए णं से सरे भरहेणं रण्णा णिसट्ठे समाणे खिप्पामेव दुवालस जोअणाइं गंता मागह-तित्थाधिपतिस्स देवस्स भवणंसि निवइए। तए णं से मागहतित्थाहिवई देवे भवणंसि सरं णिवइअं पासइ २ त्ता आसुरुत्ते रुट्ठे चंडिक्किए कुविए मिसिमिसेमाणे तिवलिअं भिउडिं णिडाले साहरइ २ त्ता एवं वयासी—केस णं भो एस अपत्थिअपत्थए दुरंतपंतलक्खणे हीणपुण्णचाउद्दसे हिरिसिरि-परिवज्जिए जे णं मम इमाए एआणुरूवाए दिव्वाए देविद्धीए दिव्वाए देवजुईए दिव्वेणं देवाणुभावेणं लद्धाए पत्ताए अभिसमण्णागयाए उप्पिं अप्पुस्सुए भवणंसि सरं णिसिरइत्ति कट्टु सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता जेणेव से णामाहयंके सरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तं णामाहयंकं सरं गेण्हइ, णामंकं अणुप्पवाएइ, णामंकं अणुप्पवाएमाणस्स इमे एआरूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'उप्पण्णे खलु भो! जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे भरहे णामं राया चाउरंतचक्कवट्टी,

तं जीअमेअं तीअपच्चुप्पण्णमणागयाणं मागहतित्थकुमाराणं देवाणं राईणमुवत्थाणीअं करेत्तए, तं गच्छामि णं अहंपि भरहस्स रण्णो उवत्थाणीअं करेमित्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता हारं मउडं कुंडलाणि अ कडगाणि अ तुडिआणि अ वत्थाणि अ आभरणाणि अ सरं च णामाहयंकं मागहतित्थोदगं च गेण्हइ, गिण्हित्ता ताए उक्किट्ठाए तुरिआए चवलाए जयणाए सीहाए सिग्घाए उद्धुआए दिव्वाए देवगईए वीईवयमाणे २ जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अंतलिक्खपडिवण्णे सखिखिणीआइं पंचवण्णाइं वत्थाइं पवर-परिहिए करयलपरिग्गहिअं दसणहं सिर जाव[1] अंजलिं कट्टु भरहं रायं जएणं विजएणं वद्धावेइ २ त्ता एवं वयासी—'अभिजिए णं देवाणुप्पिएहिं केवलकप्पे भरहे वासे पुरत्थिमेणं मागहतित्थमेराए तं अहण्णं देवाणुप्पिआणं विसयवासी, अहण्णं देवाणुप्पिआणं आणत्ती-किंकरे, अहण्णं देवाणुप्पिआणं पुरत्थिमिल्ले अंतवाले, तं पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिआ ! ममं इमेआरूवं पीइदाणं तिकट्टु हारं मउडं कुंडणाणि अ कडगाणि अ (तुडिआणि अ वत्थाणि अ आभरणाणि अ सरं च णामाहयंकं) मागहतित्थोदगं च उवणेइ।

तए णं से भरहे राया मागहतित्थकुमारस्स देवस्स इमेयारूवं पीइदाणं पडिच्छइ २ त्ता मागहतित्थकुमारं देवं सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता पडिविसज्जेइ। तए णं से भरहे राया रहं परावत्तेइ २ त्ता मागहतित्थेणं लवणसमुद्दाओ पच्चुत्तरइ २ त्ता जेणेव विजयखंधावारणिवेसे जेणेव वाहिरिआ उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तुरए णिगिण्हइ २ त्ता रहं ठवेइ २ त्ता रहाओ पच्चोरुहति २ त्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छति २ त्ता मज्जणघरं अणुपविसइ २ त्ता जाव[2] ससिव्व पिअदंसणे णरवई मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव भोअणमंडवे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता भोअणमंडवंसि सुहासणवरगए अट्ठमभत्तं पारेइ २ त्ता भोअणमंडवाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीअइ २ त्ता अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! उस्सुक्कं उक्करं जाव[3] मागहतित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठाहिअं महामहिमं करेइ २ त्ता मम एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणह।', तए णं ताओ अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ भरहेणं रण्णा एवं वुत्ताओ समाणीओ हट्ठ जाव[4] करेंति २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणंति।

तए णं से दिव्वे चक्करयणे वइरामयतुंवे लोहिअक्खामयारए जंबूणयणेमीए णाणामणिखुर-प्पयालपरिगए मणिमुत्ताजालभूसिए सणंदिघोसे सखिखिणीए दिव्वे तरुणरविमंडलणिभे णाणामणि-रयणघंटिआजालपरिक्खित्ते सव्वोउअसुरभिकुसुमआसत्तमल्लदामे अंतलिक्खपडिवण्णे जक्खसहस्स-संपरिवुडे दिव्वतुडिअसद्दसण्णिणादेणं पूरेंते चेव अंवरतलं णामेण य सुदंसणे णरवइस्स पढमे चक्करयणे मागहतित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठाहिआए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउहघर-सालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता दाहिणपच्चत्थिमं दिसिं वरदामतित्थाभिमुहे पयाए यावि होत्था।

१. देखें सूत्र संख्या ४४।
२. देखें सूत्र ४५।
३. देखें सूत्र ४४।
४. देखें सूत्र ४४।

[५८] तत्पश्चात् राजा भरत चातुर्घंट—चार घंटे वाले—अश्वरथ पर सवार हुआ। वह घोड़े, हाथी, रथ तथा पदातियों से युक्त चातुरंगिणी सेना से घिरा था। बड़े-बड़े योद्धाओं का समूह उसके साथ चल रहा था। हजारों मुकुटधारी श्रेष्ठ राजा उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। चक्ररत्न द्वारा दिखाये गये मार्ग पर वह आगे बढ़ रहा था। उस द्वारा किये गये सिंहनाद के कलकल शब्द से ऐसा भान होता था कि मानो वायु द्वारा प्रक्षुभित महासागर गर्जन कर रहा हो। उसने पूर्व दिशा की ओर आगे बढ़ते हुए, मागध तीर्थ होते हुए अपने रथ के पहिये भीगे, उतनी गहराई तक लवणसमुद्र में प्रवेश किया।

फिर राजा भरत ने घोड़ों को रोका, रथ को ठहराया और अपना धनुष उठाया। वह धनुष अचिरोद्गत बालचन्द्र—शुक्लपक्ष की द्वितीया के चन्द्र जैसा एवं इन्द्रधनुष जैसा था। उत्कृष्ट, गर्वोद्धत भैंसे के सुदृढ, सघन सींगों की ज्यों निविड—निश्छिद्र—पुद्गलनिष्पन्न था। उस धनुष का पृष्ठ भाग उत्तम नाग, महिषशृंग, श्रेष्ठ कोकिल, भ्रमरसमुदाय तथा नील के सदृश उज्ज्वल काली कांति से युक्त, तेज से जाज्वल्यमान एवं निर्मल था। निपुण शिल्पी द्वारा चमकाये गये, देदीप्यमान मणियों और रत्नों की घंटियों के समूह से वह परिवेष्टित था। बिजली की तरह जगमगाती किरणों से युक्त, स्वर्ण से परिबद्ध तथा चिह्नित था। दर्दर एवं मलय पर्वत के शिखर पर रहने वाले सिंह के अयाल तथा चँवरी गाय की पूंछ के बालों के उस पर सुन्दर, अर्ध चन्द्राकार बन्ध लगे थे। काले, हरे, लाल, पीले तथा सफेद स्नायुओं—नाडी-तन्तुओं से उसकी प्रत्यञ्चा बंधी थी। शत्रुओं के जीवन का विनाश करने में वह सक्षम था। उसकी प्रत्यञ्चा चंचल थी। राजा ने वह धनुष उठाया। उस पर बाण चढ़ाया। बाण की दोनों कोटियां उत्तम वज्र—श्रेष्ठ हीरों से बनी थीं। उसका मुख—सिरा वज्र की भांति अभेद्य था। उसका पुंख—पीछे का भाग—स्वर्ण में जड़ी हुई चन्द्रकांत आदि मणियों तथा रत्नों से सुसज्ज था। उस पर अनेक मणियों और रत्नों द्वारा सुन्दर रूप में राजा भरत का नाम अंकित था। भरत ने वैशाख—धनुष चढ़ाने के समय प्रयुक्त किये जाने वाले विशेष पादन्यास में स्थित होकर उस उत्कृष्ट बाण को कान तक खींचा और वह यों बोला—

मेरे द्वारा प्रयुक्त बाण के बहिर्भाग में तथा आभ्यन्तर भाग में अधिष्ठित नागकुमार, असुर कुमार, सुपर्ण कुमार आदि देवो! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप सुनें—स्वीकार करें।

यों कहकर राजा भरत ने बाण छोड़ा। मल्ल जब अखाड़े में उतरता है, तब जैसे वह कमर बांधे होता है, उसी प्रकार भरत युद्धोचित वस्त्र-बन्ध द्वारा अपनी कमर बांधे था। उसका कौशेय—पहना हुआ वस्त्र-विशेष हवा से हिलता हुआ बड़ा सुन्दर प्रतीत होता था। विचित्र, उत्तम धनुष धारण किये वह साक्षात् इन्द्र की ज्यों सुशोभित हो रहा था, विद्युत की तरह देदीप्यमान था। पञ्चमी के चन्द्र सदृश शोभित वह महाधनुष राजा के विजयोद्यत बायें हाथ में चमक रहा था।

राजा भरत द्वारा छोड़े जाते ही वह बाण तुरन्त बारह योजन तक जाकर मागध तीर्थ के अधिपति—अधिष्ठातृ देव के भवन में गिरा। मागध तीर्थाधिपति देव ने ज्योंही बाण को अपने भवन में गिरा हुआ देखा तो वह तत्क्षण क्रोध से लाल हो गया, रोषयुक्त हो गया, कोपाविष्ट हो गया, प्रचण्ड—विकराल हो गया, क्रोधाग्नि से उद्दीप्त हो गया। कोपाधिक्य से उसके ललाट पर तीन रेखाएं उभर आईं। उसकी भृकुटि तन गई। वह बोला—

'अप्रार्थित—जिसे कोई नहीं चाहता, उस मृत्यु को चाहने वाला, दुःखद अन्त तथा अशुभ लक्षण वाला, पुण्य चतुर्दशी जिस दिन हीन—असम्पूर्ण थी—घटिकाओं में अमावस्या आ गई थी, उस

अशुभ दिन में जन्मा हुआ, लज्जा तथा श्री-शोभा से परिवर्जित वह कौन अभागा है, जिसने उत्कृष्ट देवानुभाव से लब्ध प्राप्त स्वायत्त मेरी ऐसी दिव्य देवऋद्धि, देवद्युति पर प्रहार करते हुए मौत से न डरते हुए मेरे भवन में वाण गिराया है ?' यों कहकर वह अपने सिंहासन से उठा और जहाँ वह नामांकित वाण पड़ा था, वहाँ आया। आकर उस वाण को उठाया, नामांकन देखा। देखकर उसके मन में ऐसा चिन्तन, विचार, मनोभाव तथा संकल्प उत्पन्न हुआ—'जम्बूद्वीप के अन्तर्वर्ती भरतक्षेत्र में भरत नामक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हुआ है। अतः अतीत, प्रत्युत्पन्न तथा अनागत—भूत, वर्तमान एवं भविष्यवर्ती मागधतीर्थ के अधिष्ठातृ देवकुमारों के लिए यह उचित है, परम्परागत व्यवहारानुरूप है कि वे राजा को उपहार भेंट करें। इसलिए मैं भी जाऊँ, राजा को उपहार भेंट करूं।' यों विचार कर उसने हार, मुकुट, कुण्डल, कटक—कंकण—कड़े, त्रुटित—भुजवन्ध, वस्त्र, अन्यान्य विविध अलंकार, भरत के नाम से अंकित वाण और मागध तीर्थ का जल लिया। इन्हें लेकर वह उत्कृष्ट, त्वरित वेगयुक्त, सिंह की गति की ज्यों प्रवल, शीघ्रतायुक्त, तीव्रतायुक्त, दिव्य देवगति से चलता हुआ जहाँ राजा भरत था, वहाँ आया। वहाँ आकर छोटी-छोटी घंटियों से युक्त पंचरंगे उत्तम वस्त्र पहने हुए, आकाश में संस्थित होते हुए उसने अपने जुड़े हुए दोनों हाथों से मस्तक को छूकर अंजलिपूर्वक राजा भरत को 'जय, विजय' शब्दों द्वारा वर्धापित किया—उसे वधाई दी और कहा—'आपने पूर्व दिशा में मागध तीर्थ पर्यन्त समस्त भरतक्षेत्र भली-भांति जीत लिया है। मैं आप द्वारा जीते हुए देश का निवासी हूँ, आपका अनुज्ञावर्ती सेवक हूँ, आपका पूर्व दिशा का अन्तपाल हूँ—उपद्रव-निवारक हूँ। अतः आप मेरे द्वारा प्रस्तुत यह प्रीतिदान—परितोष एवं हर्षपूर्वक उपहृत भेंट स्वीकार करें।' यों कह कर उसने हार, मुकुट, कुण्डल, कटक (त्रुटित, वस्त्र, आभूषण, भरत के नाम से अंकित वाण) और मागध तीर्थ का जल भेंट किया।

राजा भरत ने मागध तीर्थकुमार द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत प्रीतिदान स्वीकार किया। स्वीकार कर मागध तीर्थकुमार देव का सत्कार किया, सम्मान किया। सत्कार सम्मान कर उसे विदा किया। फिर राजा भरत ने अपना रथ वापस मोड़ा। रथ मोड़कर वह मागध तीर्थ से होता हुआ लवण-समुद्र से वापस लौटा। जहाँ उसका सैन्य-शिविर—छावनी थी, तद्गत वाह्य उपस्थानशाला थी, वहाँ आया। वहाँ आकर घोड़ों को रोका, रथ को ठहराया, रथ से नीचे उतरा, जहाँ स्नानघर था, गया। स्नानघर में प्रविष्ट हुआ। उज्ज्वल महामेघ से निकलते हुए चन्द्रसदृश प्रियदर्शन—सुन्दर दिखाई देने वाला राजा स्नानादि सम्पन्न कर स्नानघर से वाहर निकला। वाहर निकलकर जहाँ भोजनमण्डप था वहाँ आया। भोजनमण्डप में आकर सुखासन से बैठा, तेले का पारणा किया। तेले का पारणा कर वह भोजनमण्डप से वाहर निकला, जहाँ वाह्य उपस्थानशाला थी, सिंहासन था, वहाँ आया। आकर पूर्व की ओर मुंह किये सिंहासन पर आसीन हुआ। सिंहासनासीन होकर उसने अठारह श्रेणी-प्रश्रेणी-अधिकृत पुरुषों को वुलाया। वुलाकर उन्हें कहा—'देवानुप्रियो ! मागधतीर्थकुमार देव को विजित कर लेने के उपलक्ष में अष्ट दिवसीय महोत्सव आयोजित करो। उस वीच कोई भी क्रय-विक्रय सम्वन्धी शुल्क, सम्पत्ति पर प्रति वर्ष लिया जाने वाला राज्य-कर आदि न लिये जाएं, यह उद्घोषित करो। राजा भरत द्वारा यों आज्ञप्त होकर उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक वैसा ही किया। वैसा कर वे राजा के पास आये और उसे यथावत् निवेदित किया।

तत्पश्चात् राजा भरत का दिव्य चक्ररत्न मागधतीर्थकुमार देव के विजय के उपलक्ष में आयोजित अष्टदिवसीय महोत्सव के सम्पन्न हो जाने पर शस्त्रागार से प्रतिनिष्क्रान्त हुआ—वाहर निकला।

उस चक्ररत्न का अरक-निवेश-स्थान—आरों का जोड़ वज्रमय था—हीरों से जड़ा था। आरे लाल रत्नों से युक्त थे। उसकी नेमि पीत स्वर्णमय थी। उसका भीतरी परिधिभाग अनेक मणियों से परिगत था। वह चक्रमणियों तथा मोतियों के समूह से विभूषित था। वह मृदंग आदि बारह प्रकार के वाद्यों के घोष से युक्त था। उसमें छोटी-छोटी घण्टियां लगी थीं। वह दिव्य प्रभावयुक्त था, मध्याह्न काल के सूर्य के सदृश तेजयुक्त था, गोलाकार था, अनेक प्रकार की मणियों एवं रत्नों की घण्टियों के समूह से परिव्याप्त था। सब ऋतुओं में खिलने वाले सुगन्धित पुष्पों की मालाओं से युक्त था, अन्तरिक्षप्रतिपन्न था—आकाश में अवस्थित था, गतिमान् था, एक हजार यक्षों से संपरिवृत था—घिरा था। दिव्य वाद्यों के शब्द से गगनतल को मानो भर रहा था। उसका सुदर्शन नाम था। राजा भरत के उस प्रथम—प्रधान चक्ररत्न ने यों शस्त्रागार से निकलकर दक्षिण पश्चिम दिशा में—नैऋत्य कोण में वरदाम तीर्थ की ओर प्रयाण किया।

वरदामतीर्थ-विजय

५६. तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं दाहिणपच्चत्थिमं दिसिं वरदामतित्थाभिमुहं पयातं चावि पासइ २ त्ता हट्ठतुट्ठ० कोडुंबिअपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! हय-गय-रह-पवरचाउरंगिणिं सेण्णं सण्णाहेह, आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह, त्ति कट्टु मज्जणघरं अणुपविसइ २ त्ता तेणेव कमेणं जाव[1] धवलमहामेहणिग्गए (इव ससिव्व पियदंसणे, णरवई मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता हयगयरहपवरवाहणभडचडगरपहकरसंकुलाए सेणाए पहिअकित्ती जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अंजणगिरिकडगसण्णिभं गयवइं णरवई दुरूढे। तए णं से भरहाहिवे णरिंदे हारोत्थए सुकयरइयवच्छे कुंडलउज्जोइआणणे मउडदित्तसिरए णरसीहे णरवई णरिंदे णरवसहे मरुअरायवसभकप्पे अब्भहिअरायतेअलच्छीए दिप्पमाणे पसत्थमंगलसएहिं संथुव्वमाणे जयसद्दकयालोए हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं) सेअवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं २ माइअवरफलयपवरपरिगरखेडयवरवम्मकवयमाढीसहस्सकलिए उक्कडवरमउडतिरीडपडागझयवेजयंतिचामरचलंतछत्तंधयारकलिए असिखेवणिखग्गचावणारायकणयकप्पणिसूललउडभिंडिमालधणुहतोणसरपहरणेहिं अ कालणीलरुहिरपीअसुक्किल्लअणेगचिंधसयसण्णिविट्ठे अप्फोडिअसीहणायछेलिअहयहेसिअहत्थिगुलुगुलाइअअणेगरहसयसहस्सघणघणेंतणीहम्ममाणसद्दसहिएण जमगसमगभंभाहोरंभकिणितखरमुहिमुगुंदसंखिअपरिलिवच्चगपरिवाइणिवंसवेणुविपंचिमहतिकच्छभिरिगिसिगिअकलतालंकंसतालकरधाणुत्थिदेण महया सद्दसण्णिणादेण सयलमवि जीवलोगं पूरयंते बलवाहणसमुदएणं एवं जक्खसहस्सपरिवुडे वेसमणे चेव धणवई अमरपतिसण्णिभाइ इद्धीए पहिअकित्ती गामागरणगरखेडकब्बड तहेव सेसं (मडंबदोणमुहपट्टणासमसंवाहसहस्समंडिअं थिमिअमेइणीअं वसुहं अभिजिणमाणे २ अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छमाणे २ तं दिव्वं चक्करयणं अणुगच्छमाणे २ जोअंणतरिआहिं वसहीहिं वसमाणे २ जेणेव वरदामतित्थे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता वरदामतित्थस्स अदूरसामन्ते दुवालसजोयणायामं णवजोअण-

---

१. देखें सूत्र संख्या ४४

वित्थिण्णं वरणगरसरिच्छं) विजयखंधावारणिवेसं करेइ २ त्ता वद्धइरयणं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! मम आवसहं पोसहसालं च करेहि, ममेअमाणत्तिअं पच्चप्पिणाहि ।

[५९] राजा भरत ने दिव्य चक्ररत्न को दक्षिण-पश्चिम दिशा में वरदामतीर्थ की ओर जाते हुए देखा । देखकर वह बहुत हर्षित तथा परितुष्ट हुआ । उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया । उन्हें बुलाकर कहा—देवानुप्रियो ! घोड़े, हाथी रथ तथा श्रेष्ठ योद्धाओं—पदातियों से परिगठित चातुरंगिणी सेना को तैयार करो, आभिषेक्य हस्तिरत्न को शीघ्र ही सुसज्ज करो । यों कहकर राजा स्नानघर में प्रविष्ट हुआ । धवल महामेघ से निकलते हुए चन्द्रमा की ज्यों सुन्दर प्रतीत होता वह राजा स्नानादि सम्पन्न कर स्नानघर से बाहर निकला । (स्नानघर से बाहर निकलकर घोड़े, हाथी, रथ, अन्यान्य उत्तम वाहन तथा योद्धाओं के विस्तार से युक्त सेना से सुशोभित वह राजा, जहाँ बाह्य उपस्थानशाला—बाहरी सभाभवन था, आभिषेक्य हस्तिरत्न था, वहाँ आया, अंजनगिरि के शिखर के समान उस विशाल गजपति पर वह नरपति आरूढ हुआ ।

भरतक्षेत्र के अधिपति नरेन्द्र भरत का वक्षस्थल हारों से व्याप्त, सुशोभित एवं प्रीतिकर था । उसका मुख कुण्डलों से द्युतिमय था । मस्तक मुकुट से देदीप्यमान था । नरसिंह—मनुष्यों में सिंह सदृश शौर्यशाली, मनुष्यों के स्वामी, मनुष्यों के इन्द्र—परम ऐश्वर्यशाली अधिनायक, मनुष्यों में वृषभ के समान स्वीकृत कार्यभार के निर्वाहक, व्यन्तर आदि देवों के राजाओं के बीच विद्यमान प्रमुख सौधर्मेन्द्र के सदृश प्रभावापन्न, राजोचित तेजोमयी लक्ष्मी से देदीप्यमान वह राजा मंगलसूचक शब्दों से संस्तुत तथा जयनाद से सुशोभित था । कोरंटपुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र उस पर तना था ।) उत्तम, श्वेत चँवर उस पर डुलाये जा रहे थे । जिन्होंने अपने-अपने हाथों में उत्तम ढालें ले रखी थीं, श्रेष्ठ कमरबन्धों से अपनी कमर बांध रखी थीं, उत्तम कवच धारण कर रखे थे, ऐसे हजारों योद्धाओं से वह विजय-अभियान परिगत था । उन्नत, उत्तम मुकुट, कुण्डल, पताका—छोटी-छोटी झण्डियां, ध्वजा—बड़े बड़े झण्डे तथा वैजयन्ती—दोनों तरफ दो दो पताकाएं जोड़कर बनाये गये झण्डे, चँवर, छत्र—इनकी सघनता से प्रसूत अन्धकार से आच्छन्न था । असि—तलवार विशेष, क्षेपणी—गोफिया, खड्ग—सामान्य तलवार, चाप—धनुष, नाराच—सम्पूर्णतः लोह-निर्मित बाण, कणक—बाणविशेष, कल्पनी—कृपाण, शूल, लकुट—लट्ठी, भिन्दिपाल—वल्लम या भाले, बांस के बने धनुष, तूणीर—तरकश, शर—सामान्य बाण आदि शस्त्रों से, जो कृष्ण, नील, रक्त, पीत तथा श्वेत रंग के सैकड़ों चिह्नों से युक्त थे, व्याप्त था । भुजाओं को ठोकते हुए, सिंहनाद करते हुए योद्धा राजा भरत के साथ-साथ चल रहे थे । घोड़े हर्ष से हिनहिना रहे थे, हाथी, चिंघाड़ रहे थे, सैकड़ों हजारों—लाखों रथों के चलने की ध्वनि, घोड़ों को ताड़ने हेतु प्रयुक्त चाबुकों की आवाज, भम्भा—ढोल, कौरम्भ—बड़े ढोल, क्वणिता—वीणा, खरमुखी—काहली, मुकुन्द—मृदंग, शंखिका—छोटे शंख, परिली तथा वच्चक—घास के तिनकों से निर्मित वाद्य-विशेष, परिवादिनी—सप्त तन्तुमयी वीणा, दंस—अलगोजा, वेणु—बांसुरी, विपञ्ची—विशेष प्रकार की वीणा, महती कच्छपी—कछुए के आकार की बड़ी वीणा, रिगीसिगिका—सारंगी, करताल, कांस्यताल, परस्पर हस्त-ताडन आदि से उत्पन्न विपुल ध्वनि-प्रतिध्वनि से मानो सारा जगत् आपूर्ण हो रहा था । इन सबके बीच राजा भरत अपनी चातुरंगिणी सेना तथा विभिन्न वाहनों से युक्त, सहस्र यक्षों से संपरिवृत कुबेर सदृश वैभवशाली तथा अपनी ऋद्धि से इन्द्र

जैसा यशस्वी—ऐश्वर्यशाली प्रतीत होता था। वह ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्वट, मडम्ब (द्रोणमुख, पट्टन, आश्रम तथा संवाध)—इनसे सुशोभित भूमण्डल की विजय करता हुआ—वहाँ के शासकों को जीतता हुआ, उत्तम, श्रेष्ठ रत्नों को भेंट के रूप में स्वीकार करता हुआ, दिव्य चक्ररत्न का अनुगमन करता हुआ—उसके पीछे पीछे चलता हुआ, एक-एक योजन पर पड़ाव डालता हुआ जहाँ वरदामतीर्थ था, वहाँ आया। आकर वरदामतीर्थ से न अधिक दूर, न अधिक समीप—कुछ ही दूरी पर वारह योजन लम्वा, नौ योजन चौड़ा, विशिष्ट नगर के सदृश अपना सैन्य-शिविर लगाया। उसने वर्द्धकि-रत्न को वुलाया। उससे कहा—देवानुप्रिय ! शीघ्र ही मेरे लिए आवासस्थान तथा पौषधशाला का निर्माण करो। मेरे आदेशानुरूप कार्य सम्पन्न कर मुझे सूचित करो।

६०. तए णं से आसमदोणमुहगामपट्टणपुरवरखंधावारगिहावणविभागकुसले एगासीतिपदेसु सव्वेसु चेव वत्थूसु णेगगुणजाणए पंडिए विहिण्णू पणयालीसाए देवयाणं वत्थुपरिच्छाए णेमिपासेसु भत्तसालासु कोट्टणिसु अ वासघरेसु अ विभागकुसले छेज्जे वेज्झे अ दाणकम्मे पहाणबुद्धी जलयाणं भूमियाणं य भायणे जलथलगुहासु जंतेसु परिहासु अ कालनाणे तहेव सद्दे वत्थुप्पएसे पहाणे गब्भिणिकण्णरुक्खवल्लिवेढिअगुणदोसविआणए गुणड्ढे सोलसपासायकरणकुसले चउसट्ठि-विकप्प-वित्थियमई णंदावत्ते य वद्धमाणे सोत्थिअरुअग तह सव्वओभद्दसण्णिवेसे अ वहुविसेसे उद्दंडिअदेव-कोट्ठदारुगिरिखायवाहणविभागकुसले—

इह तस्स बहुगुणद्धे, थवईरयणे णरिंदचंदस्स।
तव-संजम-निविट्ठे, किं करवाणी तुवट्ठाई ॥१॥
सो देवकम्मविहिणा, खंधावारं णरिंद-वयणेणं।
आवसहभवणकलिअं, करेइ सव्वं मुहुत्तेणं ॥२॥

करेत्ता पवरपोसहघरं करेइ २ त्ता जेणेव भरहे राया (तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता) एतमाणत्तिअं खिप्पामेव पच्चप्पिणइ, सेसं तहेव जाव[1] मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव वाहिरिआ उवट्ठाणसाला जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ।

[६०] वह शिल्पी (वर्द्धकिरत्न) आश्रम, द्रोणमुख, ग्राम, पट्टन, नगर, सैन्यशिविर, गृह, आपण—पण्यस्थान इत्यादि की समुचित संरचना में कुशल था। इक्यासी प्रकार के वास्तु-क्षेत्र का अच्छा जानकार था। उनके यथाविधि चयन और अंकन में निष्णात था, विधिज्ञ था। शिल्पशास्त्र-निरूपित पैंतालीस देवताओं के समुचित स्थान-सन्निवेश के विधिक्रम का विशेषज्ञ था। विविध परम्परानुगत भवनों, भोजनशालाओं, दुर्ग-भित्तियों, वासगृहों—शयनगृहों के यथोचित रूप में निर्माण करने में निपुण था। काठ आदि के छेदन-वेधन में, गैरिक लगे धागे से रेखाएँ अंकित कर नाप-जोख में कुशल था। जलगत तथा स्थलगत सुरंगों के, घटिकायन्त्र आदि के निर्माण में, परिखाओं—खाइयों के खनन में शुभ समय के, इनके निर्माण के प्रशस्त एवं अप्रशस्त रूप के परिज्ञान में प्रवीण था। शब्दशास्त्र में—शुद्ध नामादि चयन, अंकन, लेखन आदि में अपेक्षित व्याकरणज्ञान में, वास्तुप्रदेश में—विविध दिशाओं में निर्मेय भवन के देवपूजागृह, भोजनगृह, विश्रामगृह आदि के संयोजन में सुयोग्य था।

१. देखें सूत्र संख्या ४५

भवन निर्माणोचित भूमि में उत्पन्न गर्भवती—फलाभिमुख बेलों, कन्या—निष्फल अथवा दूरफल बेलों, वृक्षों एवं उन पर छाई हुई बेलों के गुणों तथा दोषों को समझने में सक्षम था। गुणाढ्य था—प्रज्ञा, हस्तलाघव आदि गुणों से युक्त था। सान्तन, स्वस्तिक आदि सोलह प्रकार के भवनों के निर्माण में कुशल था। शिल्पशास्त्र में प्रसिद्ध चौसठ प्रकार के घरों की रचना में चतुर था। नन्द्यावर्त, वर्धमान, स्वस्तिक, रुचक तथा सर्वतोभद्र आदि विशेष प्रकार के गृहों, ध्वजाओं, इन्द्रादि देवप्रतिमाओं, धान्य के कोठों की रचना में, भवन-निर्माणार्थ अपेक्षित काठ के उपयोग में, दुर्ग आदि निर्माण के अन्तर्गत जनावास हेतु अपेक्षित पर्वतीय गृह, सरोवर, यान—वाहन, तदुपयोगी स्थान—इन सबके संचयन और सन्निर्माण में समर्थ था।

वह शिल्पकार अनेकानेक गुणयुक्त था। राजा भरत को अपने पूर्वाचरित तप तथा संयम के फलस्वरूप प्राप्त उस शिल्पी ने कहा—स्वामी! मैं आपके लिए क्या निर्माण करूं?

राजा के वचन के अनुरूप उसने देवकर्मविधि से—चिन्तनमात्र से रचना कर देने की अपनी असाधारण, दिव्य क्षमता द्वारा मुहूर्त मात्र में—अविलम्ब सैन्यशिविर तथा सुन्दर आवास-भवन की रचना कर दी। वैसा कर उसने फिर उत्तम पौषधशाला का निर्माण किया।

तत्पश्चात् वह जहाँ राजा भरत था, वहाँ आया। आकर शीघ्र ही राजा को निवेदित किया कि आपके आदेशानुरूप निर्माण-कार्य सम्पन्न कर दिया है।

इससे आगे का वर्णन पूर्ववत् है। —जैसे राजा स्नानघर से बाहर निकला। बाहर निकलकर, जहाँ बाह्य उपस्थानशाला थी, चातुर्घंट अश्वरथ था, आया।

६१. उवागच्छित्ता तते णं तं धरणितलगमणलहुं ततो बहुलक्खणपसत्थं हिमवंतकंदरंतरणिवायसंवद्धिअचित्ततिणिसदलिअं जंबूणयसुकयकूबरं कणयदंडियारं पुलयवरिंदणीलसासगपवालफलिहवररयणलेट्ठुमणिविद्दुमविभूसिअं अडयालीसाररइयतवणिज्जपट्टसंगहिअजुत्ततुंबं पघसिअपसिअनिम्मिअनवपट्टपुट्ठपरिणिट्ठिअं विसिट्ठलट्ठणवलोहबद्धकम्मं हरिपहरणरयणसरिसचक्कं कक्केयणइंदणीलसासगसुसमाहिअबद्धजालकडगं पसत्थ विच्छिण्णसमधुरं पुरवरं च गुत्तं सुकिरणतवणिज्जजुत्तकलिअं कंकटयणिजुत्तकप्पणं पहरणाणुजायं खेडगकणगधणुमंडलग्गवरसत्तिकोंततोमरसरसयबत्तीसतोणपरिमंडिअं कणगरयणचित्तं जुत्तं हलीमुहबलागगयदंतचंदमोत्तियतणसोल्लिअकुंदकुडयवरसिंदुवारकंदलवरफेणणिगरहारकासप्पगासधवलेहिं अमरमणपवणजइणचवलसिग्घगामीहिं चउहिं चामराकणगविभूसिअंगेहिं तुरगेहिं सच्छत्तं सज्झयं सघंटं सपडागं सुकयसंधिकम्मं सुसमाहिअसमरकणगगंभीरतुल्लघोसं वरकुप्परं सुचक्कं वरनेमीमंडलं वरधारातोंडं वरवइरबद्धतुंबं वरकंचणभूसिअं वरायरिअणिम्मिअ वरतुरगसंपउत्तं वरसारहिसुसंपग्गहिअं वरपुरिसे वरमहारहं दुरूढे आरूढे, पवररयणपरिमंडिअं कणयखिंखिणीजालसोभिअं अउज्झं सोआमणिकणगतविअपंकयजासुअणजलणजलिअसुअतोंडरागं गुंजद्धबंधुजीवगरत्तहिंगुलणिगरसिंदूररुइलकुंकुमपारेवयचलणणयणकोइलदसणावरणरइतातिरेगरत्ताsसोगकणगकेसुअगयतालुसुरिंदगोवगसमप्पभप्पगासं बिंबफलसिलप्पवालउट्ठितसूरसरिसं सव्वोउअसुरहिकुसुमआसत्तमल्लदामं ऊसिअसेअज्झयं महामेहरसिअगंभीरणिद्धघोसं सत्तुहिअयकंपणं पभाए

अ सस्सिरीअं णामेणं पुहविविजयलंभंति विस्सुतं लोगविस्सुतजसोऽहयं चाउग्घंटं आसरहं पोसहिए णरवई दुरूढे ।

तए णं से भरहे राया चाउग्घंटं आसरहं दुरूढे समाणे सेसं तहेव दाहिणाभिमुहे वरदामतित्थेणं लवणसमुद्दं ओगाहइ जाव से रहवरस्स कुप्परा उल्ला जाव पीइदाणं से, णवरिं चूडामणिं च दिव्वं उरत्थगेविज्जगं सोणिअसुत्तगं कडगाणि अ तुडिआणि अ (वत्थाणि अ आभरणाणि अ) दाहिणिल्ले अंतवाले जाव[1] अट्ठाहिअं महामहिमं करेइ २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणंति ।

तए णं से दिव्वे चक्करयणे वरदामतित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठाहिआए महामहिमाए निव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता अंतलिक्खपडिवण्णे (जक्खसहस्स-संपरिवुडे दिव्वतुडिअसद्दसण्णिणादेणं) पूरंते चेव अंबरतलं उत्तरपच्चत्थिमं दिसिं पभासतित्थाभिमुहे पयाते यावि होत्था ।

[६१] वह रथ पृथ्वी पर शीघ्र गति से चलने वाला था । अनेक उत्तम लक्षण युक्त था । हिमालय पर्वत की वायुरहित कन्दराओं में संवर्धित विविध प्रकार के तिनिश नामक रथनिर्माणोपयोगी वृक्षों के काठ से वह बना था । उसका जुआ जम्बूनद नामक स्वर्ण से निर्मित था । उसके आरे स्वर्ण-मयी ताड़ियों के बने थे । वह पुलक, वरेन्द्र, नील, सासक, प्रवाल, स्फटिक, लेष्टु, चन्द्रकांत, विद्रुम संज्ञक रत्नों एवं मणियों से विभूषित था । प्रत्येक दिशा में बारह बारह के क्रम से उसके अड़तालीस आरे थे । उसके दोनों तुम्ब स्वर्णमय पट्टों से संगृहीत थे—दृढीकृत थे, उपयुक्त रूप में बंधे थे—न बहुत छोटे थे, न बहुत बड़े थे । उसका पृष्ठ—पूठी विशेष रूप से घिसी हुई, बंधी हुई, सटी हुई, नई पट्टियों से सुनिष्पन्न थी । अत्यन्त मनोज्ञ, नूतन लोहे की सांकल तथा चमड़े के रस्से से उसके अवयव बंधे थे । उसके दोनों पहिए वासुदेव के शस्त्ररत्न—चक्र के सदृश—गोलाकार थे । उसकी जाली चन्द्रकांत, इन्द्रनील तथा शस्यक नामक रत्नों से सुरचित और सुसज्जित थी । उसकी धुरा प्रशस्त, विस्तीर्ण तथा एकसमान थी । श्रेष्ठ नगर की ज्यों वह गुप्त—सुरक्षित—सुदृढ था । उसके घोड़ों के गले में डाली जाने वाली रस्सी कमनीय किरणयुक्त—अत्यन्त द्युतियुक्त, लालिमामय स्वर्ण से वनी थी । उसमें स्थान-स्थान पर कवच प्रस्थापित थे । वह (रथ) प्रहरणों—अस्त्र-शस्त्रों से परिपूरित था । ढालों, कणकों—विशेष प्रकार के बाणों, धनुषों, मण्डलाग्रों—विशेष प्रकार की तलवारों, त्रिशूलों, भालों, तोमरों तथा सैकड़ों बाणों से युक्त बत्तीस तूणीरों से वह परिमंडित था । उस पर स्वर्ण एवं रत्नों द्वारा चित्र बने थे । उसमें हलीमुख, बगुले, हाथीदांत, चन्द्र, मुक्ता, मल्लिका, कुन्द, कुटज—निर्गुण्डी तथा कन्दल के पुष्प, सुन्दर फेन-राशि, मोतियों के हार और काश के सदृश धवल—श्वेत, अपनी गति द्वारा मन एवं वायु की गति को जीतने वाले, चपल, शीघ्रगामी, चँवरों और स्वर्णमय आभूषणों से विभू-षित चार घोड़े जुते थे । उस पर छत्र बना था । ध्वजाएँ, घण्टियां तथा पताकाएँ लगी थीं । उसका सन्धि-योजन—जोड़ों का मेल सुन्दर रूप में निष्पादित था । यथोचित रूप में सुनियोजित-सुस्थापित समर-कणक—युद्ध में प्रयोजनीय वाद्य-विशेष के गम्भीर घोष जैसा उसका घोष था—उस से वैसी आवाज निकलती थी । उसके कूर्पर—पिञ्जनक—अवयवविशेष उत्तम थे । वह सुन्दर चक्रयुक्त तथा उत्कृष्ट नेमिमंडल युक्त था । उसके जुए के दोनों किनारे बड़े सुन्दर थे । उसके दोनों तुम्ब श्रेष्ठ वज्र

१. देखें सूत्र संख्या ४४

रत्न से—हीरों द्वारा बने थे। वह श्रेष्ठ स्वर्ण से—स्वर्णाभरणों से सुशोभित था। वह सुयोग्य शिल्पकारों द्वारा निर्मित था। उसमें उत्तम घोड़े जोते जाते थे। सुयोग्य सारथि द्वारा वह संप्रगृहीत—स्वायत्त—सुनियोजित था। वह उत्तमोत्तम रत्नों से परिमंडित था। अपने में लगी हुई छोटी-छोटी सोने की घण्टियों से वह शोभित था। वह अयोध्य—अपराभवनीय था—कोई भी उसका पराभव करने में सक्षम नहीं था। उसका रंग विद्युत, परितप्त स्वर्ण, कमल, जपा-कुसुम, दीप्त अग्नि तथा तोते की चोंच जैसा था। उसकी प्रभा घुंघची के अर्ध भाग—रक्त वर्णमय भाग, बन्धुजीवक पुष्प, सम्मर्दित हिंगुल-राशि, सिन्दूर, रुचिकर—श्रेष्ठ केसर, कबूतर के पैर, कोयल की आंखें, अधरोष्ठ, मनोहर रक्ताशोक तरु, स्वर्ण, पलाशपुष्प, हाथी के तालु, इन्द्रगोपक—वर्षा में उत्पन्न होने वाले लाल रंग के छोटे-छोटे जन्तुविशेष जैसी थी। उसकी कांति बिम्बफल, शिलाप्रवाल एवं उदीयमान सूर्य के सदृश थी। सब ऋतुओं में विकसित होने वाले पुष्पों की मालाएँ उस पर लगी थीं। उस पर उन्नत श्वेत ध्वजा फहरा रही थी। उसका घोष महामेघ के गर्जन के सदृश अत्यन्त गम्भीर था, शत्रु के हृदय को कँपा देने वाला था। लोकविश्रुत यशस्वी राजा भरत प्रातःकाल पौषध पारित कर उस सर्व अवयवों से युक्त चातुर्घण्ट 'पृथ्वीविजयलाभ' नामक अश्वरथ पर आरुढ हुआ।

आगे का भाग पूर्ववत् है।····राजा भरत ने पूर्व दिशा की ओर बढ़ते हुए वरदाम तीर्थ होते हुए अपने रथ के पहिये भीगें, उतनी गहराई तक लवणसमुद्र में प्रवेश किया। आगे का प्रसंग वरदाम तीर्थकुमार के साथ वैसा ही बना, जैसा मागध तीर्थकुमार के साथ बना था। वरदाम तीर्थकुमार ने राजा भरत को दिव्य—उत्कृष्ट, सर्व विषापहारी चूडामणि—शिरोभूषण, वक्षःस्थल पर धारण करने का आभूषण, गले में धारण करने का अलंकार, कमर में पहनने की मेखला, कटक, त्रुटित (वस्त्र तथा अन्यान्य आभूषण) भेंट किये और उसने कहा कि मैं आपका दक्षिणदिशा का अन्तपाल—उपद्रव-निवारक, सीमारक्षक हूँ। इस विजय के उपलक्ष्य में राजा की आज्ञा के अनुसार अष्टदिवसीय महोत्सव आयोजित हुआ। उसकी सम्पन्नता पर आयोजक पुरुषों ने राजा को सब जानकारी दी।

वरदाम तीर्थकुमार को विजय कर लेने के उपलक्ष्य में समायोजित अष्टदिवसीय महोत्सव के परिसम्पन्न हो जाने पर वह दिव्य चक्ररत्न शस्त्रागार से बाहर निकला। बाहर निकलकर वह आकाश में अधर अवस्थित हुआ। वह एक हजार यक्षों से परिवृत था। दिव्य वाद्यों के शब्द से गगन-मण्डल को आपूरित करते हुए उसने उत्तर-पश्चिम दिशा में प्रभास तीर्थ की ओर होते हुए प्रयाण किया।

प्रभासतीर्थविजय

६२. तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं जाव उत्तरपच्चत्थिमं दिसिं तहेव जाव पच्चत्थिमदिसाभिमुहे पभासतित्थेणं लवणसमुद्दं ओगाहेइ २ त्ता जाव से रहवरस्स कुप्परा उल्ला जाव पीइदाणं से णवरं मालं मउडिं मुत्ताजालं हेमजालं कडगाणि अ तुडिआणि अ आभरणाणि अ सरं च णामाहयंकं पभासतित्थोदगं च गिण्हइ २ त्ता जाव पच्चत्थिमेणं पभासतित्थमेराए अहण्णं देवाणुप्पिआणं विसयवासी जाव पच्चत्थिमिल्ले अंतवाले, सेसं तहेव जाव अट्ठाहिआ निव्वत्ता।

[६२] राजा भरत ने उस दिव्य चक्ररत्न का अनुगमन करते हुए, उत्तर-पश्चिम दिशा होते हुए, पश्चिम में, प्रभास तीर्थ की ओर जाते हुए, अपने रथ के पहिये भीगें, उतनी गहराई तक लवणसमुद्र

में प्रवेश किया। आगे की घटना पूर्वानुसार है।····वरदाम तीर्थकुमार की तरह प्रभास तीर्थकुमार ने राजा को प्रीतिदान के रूप में भेंट करने हेतु रत्नों की माला, मुकुट, दिव्य मुक्ता-राशि, स्वर्ण-राशि, कटक, त्रुटित, वस्त्र, अन्यान्य आभूषण, राजा भरत के नाम से अंकित बाण तथा प्रभासतीर्थ का जल दिया—राजा को उपहृत किया और कहा कि मैं आप द्वारा विजित देश का वासी हूँ, पश्चिम दिशा का अन्तपाल हूँ। आगे का प्रसंग पूर्ववत् है। पहले की ज्यों राजा की आज्ञा से इस विजय के उपलक्ष्य में अष्टदिवसीय महोत्सव आयोजित हुआ, सम्पन्न हुआ।

सिन्धुदेवी-साधन

६३. तए णं से दिव्वे चक्करयणे पभासतित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठाहिआए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता (अंतलिक्खपडिवण्णे जक्खसहस्ससंपरिवुडे दिव्वतुडिअसद्दसण्णिणादेणं) पूरंते चेव अंबरतलं सिंधूए महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरच्छिमं दिसिं सिंधुदेवीभवणाभिमुहे पयाते यावि होत्था।

तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं सिंधूए महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरत्थिमं सिंधुदेवीभवणाभिमुहं पयातं पासइ २ त्ता हट्ठतुट्ठचित्त तहेव जाव[1] जेणेव सिंधूए देवीए भवणं तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सिंधूए देवीए भवणस्स अदूरसामंते दुवालसजोअणायामं णवजोअणविच्छिण्णं वरणगरसरिच्छं विजयखंधावारणिवेसं करेइ (करेत्ता वड्ढइरयणं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! ममं आवासं पोसहसालं च करेहि, करेत्ता ममेअमाणत्तिअं पच्चप्पिणाहि। तए णं से वड्ढइरयणे भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए पीइमणे जाव अंजलिं कट्टु एवं सामी तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ २ त्ता भरहस्स रण्णो आवसहं पोसहसालं च करेइ २ त्ता एअमाणत्तिअं खिप्पामेव पच्चप्पिणति।

तए णं से भरहे राया चाउग्घंटाओ आसरहाओ पच्चोरुहइ २ त्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता पोसहसालं अणुपविसइ २ त्ता पोसहसालं पमज्जइ २ त्ता दब्भसंथारगं संथरइ २ त्ता दब्भसंथारगं दुरूहइ २ त्ता) सिंधुदेवीए अट्ठमभत्तं पगिण्हइ २ त्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी (उम्मुक्कमणिसुवण्णे ववगयमालावण्णगविलेवणे णिक्खित्तसत्थमुसले) दब्भसंथारोवगए अट्ठमभत्तिए सिंधुदेविं मणसि करेमाणे चिट्ठइ। तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि सिंधूए देवीए आसणं चलइ। तए णं सा सिंधुदेवी आसणं चलिअं पासइ २ त्ता ओहिं पउंजइ २ त्ता भरहं रायं ओहिणा आभोएइ २ त्ता इमे एआरूवे अब्भत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—उप्पण्णे खलु भो जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे भरहे णामं राया चाउरंतचक्कवट्टी, तं जीअमेअं तीअपच्चुप्पण्णमणागयाणं सिंधूणं देवीणं भरहाणं राईणं उवत्थाणिअं करेत्तए। तं गच्छामि णं अहंपि भरहस्स रण्णो उवत्थाणिअं करेमित्ति कट्टु कुंभट्ठसहस्सं रयणचित्तं णाणामणिकणगरयणभत्तिचित्ताणि अ दुवे कणगभद्दासणाणि य कडगाणि अ तुडिआणि अ (वत्थाणि अ) आभरणाणि अ

---

१. देखें सूत्र संख्या ४४

गेण्हइ २ त्ता ताए उक्किट्ठाए जाव[1] एवं वयासी—अभिजिए णं देवाणुप्पिएहिं केवलकप्पे भरहे वासे, अहण्णं देवाणुप्पिआणं विसयवासिणी, अहण्णं देवाणुप्पिआणं आणत्तिकिंकरी तं पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिआ ! मम इमं एआरूवं पीइदाणंति कट्टु कुंभट्ठसहस्सं रयणचित्तं णाणामणिकणगकडगाणि अ (तुडिआणि अ वत्थाणि अ आभरणाणि अ) सो चेव गमो (तए णं से भरहे राया सिंधूए देवीए इमेयारूवं पीइदाणं पडिच्छइ २ त्ता सिंधुं देविं सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता) पडिविसज्जेइ। तए णं से भरहे राया पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता ण्हाए कयबलिकम्मे (मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता) जेणेव भोअणमंडवे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता भोअणमंडवंसि सुहासणवरगए अट्ठमभत्तं परियादियइ २ त्ता (भोअणमंडवाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता) सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीअइ २ त्ता अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ सद्दावेइ २ त्ता जाव[2] अट्ठाहिआए महामहिमाए तमाणत्तिअं पच्चप्पिणंति।

[६३] प्रभास तीर्थकुमार को विजित कर लेने के उपलक्ष्य में समायोजित अष्टदिवसीय महोत्सव के परिसम्पन्न हो जाने पर वह दिव्य चक्ररत्न शस्त्रागार से बाहर निकला। (आकाश में अधर अवस्थित हुआ। वह एक हजार यक्षों से संपरिवृत था। दिव्य वाद्यों की ध्वनि से गगन-मंडल को आपूरित करते हुए) उसने सिन्धु महानदी के दाहिने किनारे होते हुए पूर्व दिशा में सिन्धु देवी के भवन की ओर प्रयाण किया।

राजा भरत ने उस दिव्य चक्ररत्न को जब सिन्धु महानदी के दाहिने किनारे होते हुए पूर्व दिशा में सिन्धु देवी के भवन की ओर जाते हुए देखा तो वह मन में बहुत हर्षित हुआ, परितुष्ट हुआ। जहाँ सिन्धु देवी का भवन था, उधर आया। आकर, सिन्धु देवी के भवन के न अधिक दूर और न अधिक समीप—थोड़ी ही दूरी पर बारह योजन लम्बा तथा नौ योजन चौड़ा, श्रेष्ठ नगर के सदृश सैन्य-शिविर स्थापित किया। (वैसा कर वर्धकिरत्न को—अपने निपुण शिल्पकार को बुलाया। बुलाकर उससे कहा—देवानुप्रिय ! मेरे लिए आवास-स्थान तथा पौषधशाला का शीघ्र निर्माण करो। निर्माण-कार्य सुसम्पन्न कर मुझे ज्ञापित करो। राजा भरत ने जब उस शिल्पकार को ऐसा कहा तो वह अपने मन में हर्षित, परितुष्ट तथा प्रसन्न हुआ। हाथ जोड़कर 'स्वामी ! आपकी जो आज्ञा' ऐसा कहते हुए उसने विनयपूर्वक राजा का आदेश स्वीकार किया। राजा के लिए उसने आवास-स्थान तथा पौषधशाला का निर्माण किया। निर्माण-कार्य समाप्त कर शीघ्र ही राजा को ज्ञापित किया।

तदनन्तर राजा भरत अपने चातुर्घण्ट अश्वरथ से नीचे उतरा। नीचे उतर कर जहाँ पौषध-शाला थी, वहाँ आया। पौषधशाला में प्रविष्ट हुआ। उसका प्रमार्जन किया—सफाई की। प्रमार्जन कर डाभ का बिछौना बिछाया। बिछौना बिछाकर उस पर बैठा। बैठकर) उसने सिन्धु देवी को उद्दिष्ट कर—तत्साधना हेतु तीन दिनों का उपवास—तेले की तपस्या स्वीकार की। तपस्या का संकल्प कर उसने पौषधशाला में पौषध लिया, ब्रह्मचर्य स्वीकार किया। (मणिस्वर्णमय आभूषण

१. देखें सूत्र ३४
२. देखें सूत्र ४४

शरीर से उतारे। माला, वर्णक—चन्दन आदि सुरभित पदार्थों के देहगत विलेपन आदि दूर किये। शस्त्र—कटार आदि, मूसल—दण्ड, गदा आदि हथियार एक ओर रखे।) यों डाभ के बिछौने पर उपगत, तेले की तपस्या में अभिरत भरत मन में सिन्धु देवी का ध्यान करता हुआ स्थित हुआ। भरत द्वारा यों किये जाने पर सिन्धु देवी का आसन चलित हुआ—उसका सिंहासन डोला। सिन्धु देवी ने जब अपना सिंहासन डोलता हुआ देखा, तो उसने अवधिज्ञान का प्रयोग किया। अवधिज्ञान द्वारा उसने भरत को देखा, तपस्यारत, ध्यानरत जाना। देवी के मन में ऐसा चिन्तन, विचार, मनोभाव तथा संकल्प उत्पन्न हुआ—जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरतक्षेत्र में भरत नामक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हुआ है। अतीत, प्रत्युत्पन्न, अनागत—भूत, वर्तमान तथा भविष्यवर्ती सिन्धु देवियों के लिए यह समुचित है, परम्परागत व्यवहारानुरूप है कि वे राजा को उपहार भेंट करें। इसलिए मैं भी जाऊँ, राजा को उपहार भेंट करूँ। यों सोचकर देवी रत्नमय एक हजार आठ कलश, विविध मणि, स्वर्ण, रत्नाञ्चित चित्रयुक्त दो स्वर्ण-निर्मित उत्तम आसन, कटक, त्रुटित [वस्त्र] तथा अन्यान्य आभूषण लेकर तीव्र गतिपूर्वक वहाँ आई और राजा से बोली—आपने भरतक्षेत्र को विजय कर लिया है। मैं आपके देश में—राज्य में निवास करने वाली आपकी आज्ञाकारिणी सेविका हूँ। देवानुप्रिय! मेरे द्वारा प्रस्तुत रत्नमय एक हजार आठ कलश, विविध मणि, स्वर्ण, रत्नांचित चित्रयुक्त दो स्वर्ण-निर्मित उत्तम आसन, कटक (त्रुटित, वस्त्र तथा अन्यान्य आभूषण) ग्रहण करें।

आगे का वर्णन पूर्ववत् है। (तब राजा भरत ने सिन्धु देवी द्वारा प्रस्तुत प्रीतिदान स्वीकार कर सिन्धु देवी का सत्कार किया, सम्मान किया और उसे विदा किया। वैसा कर राजा भरत पौषध-शाला से बाहर निकला। जहाँ स्नानघर था, वहाँ आया। उसने स्नान किया, नित्य-नैमित्तिक कृत्य किये। (स्नानघर से वह बाहर निकला। बाहर निकल कर) जहाँ भोजन-मण्डप था, वहाँ आया। वहाँ आकर भोजन-मण्डप में सुखासन से बैठा, तेले का पारणा किया। (भोजन-मण्डप से वह बाहर निकला। बाहर निकलकर, जहाँ बाह्य उपस्थानशाला थी, सिंहासन था, वहाँ आया। वहाँ आकर) पूर्वाभिमुख हो उत्तम सिंहासन पर बैठा। सिंहासन पर बैठकर अपने अठारह श्रेणी-प्रश्रेणी-अधिकृत पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा कि अष्टदिवसीय महोत्सव का आयोजन करो। मेरे आदेशानुरूप उसे परिसम्पन्न कर मुझे सूचित करो। उन्होंने सब वैसा ही किया। वैसा कर राजा को यथावत् ज्ञापित किया।

वैताढ्य-विजय

६४. तए णं से दिव्वे चक्करयणे सिंधूए देवीए अट्ठाहिआए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ तहेव (पडिणिक्खमइ २ त्ता अंतलिक्खपडिवण्णे जक्खसहस्ससंपरिवुडे दिव्वतुडिअ-सद्दसण्णिणादेणं पूरंते चेव अंबरतलं) उत्तरपुरच्छिमं दिसिं वेअद्धपव्वयाभिमुहे पयाए आवि होत्था।

तए णं से भरहे राया (तं दिव्वं चक्करयणं उत्तरपुरच्छिमं दिसिं वेअद्धपव्वयाभिमुहं पयातं चावि पासइ २ त्ता) जेणेव वेअद्धपव्वए जेणेव वेअद्धस्स पव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता वेअद्धस्स पव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे दुवालसजोअणायामं णवजोअणविच्छिण्णं वरणगरसरिच्छं विजयखंधावारनिवेसं करेइ २ त्ता जाव[1] वेअद्धगिरिकुमारस्स देवस्स अट्ठमभत्तं पगिण्हइ २ त्ता

१. देखें सूत्र ५०

पोसहसालाए (पोसहिए बंभयारी उम्मुक्कमणिसुवण्णे ववगयमालावण्णगविलेवणे णिक्खित्तसत्थमुसले दब्भसंथारोवगए) अट्ठमभत्तिए वेअड्ढगिरिकुमारं देवं मणसि करेमाणे २ चिट्ठइ । तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि वेअड्ढगिरिकुमारस्स देवस्स आसणं चलइ, एवं सिंधुगमो णेअव्वो, पीइदाणं आभिसेक्कं रयणालंकारं कडगाणि अ तुडिआणि अ वत्थाणि अ आभरणाणि अ गेण्हइ २ त्ता ताए उक्किट्ठाए जाव[1] अट्ठाहिअं (महामहिमं करेइ २ त्ता एअमाणत्तिअं) पच्चप्पिणंति ।

[६४] सिन्धुदेवी के विजयोपलक्ष्य में अष्टदिवसीय महोत्सव सम्पन्न हो जाने पर वह दिव्य चक्ररत्न पूर्ववत् शस्त्रागार से बाहर निकला । (बाहर निकल कर आकाश में अधर अवस्थित हुआ । वह एक हजार यक्षों से संपरिवृत था । दिव्य वाद्यध्वनि से गगन-मण्डल को आपूर्ण कर रहा था ।) उसने उत्तर-पूर्व दिशा में—ईशानकोण में वैताढ्य पर्वत की ओर प्रयाण किया ।

राजा भरत (उस दिव्य चक्ररत्न को उत्तर-पूर्व दिशा में वैताढ्य पर्वत की ओर जाता हुआ देखकर) जहाँ वैताढ्य पर्वत था, उसके दाहिनी ओर की तलहटी थी, वहाँ आया । वहाँ बारह योजन लम्बा तथा नौ योजन चौड़ा सैन्य-शिविर स्थापित किया । वैताढ्यकुमार देव को उद्दिष्ट कर उसे साधने हेतु तीन दिनों का उपवास—तेले की तपस्या स्वीकार की । पौषधशाला में (पौषध लिया, ब्रह्मचर्य स्वीकार किया । मणि-स्वर्णमय आभूषण शरीर से उतारे । माला, वर्णक—चन्दनादि सुरभित पदार्थों के देहगत विलेपन आदि दूर किये । शस्त्र—कटार आदि, मूसल—दण्ड, गदा आदि हथियार एक ओर रखे । वह डाभ के बिछौने पर संस्थित हुआ ।) तेले की तपस्या में स्थित मन में वैताढ्य गिरिकुमार का ध्यान करता हुआ अवस्थित हुआ । भरत द्वारा यों तेले की तपस्या में निरत होने पर वैताढ्य गिरिकुमार का आसन डोला । आगे का प्रसंग सिन्धु देवी के प्रसंग जैसा समझना चाहिए । वैताढ्य गिरिकुमार ने राजा भरत को प्रीतिदान भेंट करने हेतु राजा द्वारा धारण करने योग्य रत्नालंकार—रत्नाञ्चित मुकुट, कटक, त्रुटित, वस्त्र तथा अन्यान्य आभूषण लिये । तीव्र गति से वह राजा के पास आया । आगे का वर्णन सिन्धु देवी के वर्णन जैसा है । राजा की आज्ञा से अष्टदिवसीय महोत्सव आयोजित कर आयोजकों ने राजा को सूचित किया ।

तमिस्रा-विजय

६५. तए णं से दिव्वे चक्करयणे अट्ठाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए (आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता अंतलिक्खपडिवण्णे जक्खसहस्ससंपरिवुडे दिव्वतुडिअसद्दसण्णिणादेणं पूरंते चेव अंबरतलं) पच्चत्थिमं दिसिं तिमिसगुहाभिमुहे पयाए आवि होत्था । तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं (अंतलिक्खपडिवण्णं जक्खसहस्ससंपरिवुडं दिव्वं तुडिअसद्दसण्णिणादेणं पूरंतं चेव अंबरतलं) पच्चत्थिमं दिसिं तिमिसगुहाभिमुहं पयातं पासइ २ त्ता हट्ठतुट्ठचित्त जाव[2] तिमिसगुहाए अदूरसामंते दुवालसजोअणायामं णवजोअणविच्छिण्णं (वरणगरसरिच्छं विजयखंधावारनिवेसं करेइ २ त्ता) कयमालस्स देवस्स अट्ठमभत्तं पगिण्हइ २ त्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी

१. देखें सूत्र ३४
२. देखें सूत्र ४४

(उम्मुक्कमणिसुवण्णे ववगयमालावण्णगविलेवणे णिक्खित्तसत्थमुसले दब्भसंथारोवगए अट्ठमभत्तिए) कयमालगं देवं मणसि करेमाणे २ चिट्ठइ। तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि कयमालस्स देवस्स आसणं चलइ तहेव जाव वेअद्धगिरिकुमारस्स णवरं पीइदाणं इत्थीरयणस्स तिलगचोद्दसं भंडालंकारं कडगाणि अ (तुडिआणि अ वत्थाणि अ) गेण्हइ २ त्ता ताए उक्किट्ठाए जाव[3] सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता पडिविसज्जेइ (तए णं से भरहे राया पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता ण्हाए कयबलिकम्मे मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ) भोअणमंडवे, तहेव महामहिमा कयमालस्स पच्चप्पिणंति।

[६५] अष्ट दिवसीय महोत्सव के सम्पन्न हो जाने पर वह दिव्य चक्ररत्न (शस्त्रागार से बाहर निकला। बाहर निकल कर आकाश में अधर अवस्थित हुआ। वह एक हजार यक्षों से संपरिवृत था। दिव्य वाद्य-ध्वनि से गगन-मण्डल को आपूर्ण कर रहा था।) पश्चिम दिशा में तमिस्रा गुफा की ओर आगे बढ़ा। राजा भरत ने उस दिव्य चक्ररत्न को (आकाश में अधर अवस्थित, एक हजार यक्षों से संपरिवृत, दिव्य वाद्य-ध्वनि से गगन-मण्डल को आपूर्ण करते हुए) पश्चिम दिशा में तमिस्रा गुफा की ओर आगे बढ़ते हुए देखा। उसे यों देखकर राजा अपने मन में हर्षित हुआ, परितुष्ट हुआ। उसने तमिस्रा गुफा से न अधिक दूर, न अधिक समीप—थोड़ी ही दूरी पर बारह योजन लम्बा और नौ योजन चौड़ा (श्रेष्ठ नगर के सदृश) सैन्य-शिविर स्थापित किया। कृतमाल देव को उद्दिष्ट कर उसने तेले की तपस्या स्वीकार की। तपस्या का संकल्प कर उसने पौषध लिया, ब्रह्मचर्य स्वीकार किया। (मणि-स्वर्णमय आभूषण शरीर से उतारे। माला, वर्णक—चन्दनादि सुरभित पदार्थों के देहस्थ विलेपन आदि दूर किये। शस्त्र—कटार आदि, मूसल—दण्ड, गदा आदि हथियार एक ओर रखे। डाभ के बिछौने पर उपगत हुआ। तेले की तपस्या में अभिरत) राजा भरत मन में कृतमाल देव का ध्यान करता हुआ स्थित हुआ। भरत द्वारा यों तेले की तपस्या में अभिरत हो जाने पर कृतमाल देव का आसन चलित हुआ। आगे का वर्णन-क्रम वैसा ही है, जैसा वैताढ्य गिरिकुमार का है। कृतमाल देव ने राजा भरत को प्रीतिदान देने हेतु राजा के स्त्री-रत्न के लिए—रानी के लिए रत्न-निर्मित चौदह तिलक—ललाट-आभूषण सहित आभूषणों की पेटी, कटक (त्रुटित तथा वस्त्र आदि) लिये। उन्हें लेकर वह शीघ्र गति से राजा के पास आया। उसने राजा को ये उपहार भेंट किये। राजा ने उसका सत्कार किया, सम्मान किया। सत्कार-सम्मान कर फिर वहाँ से विदा किया। फिर राजा भरत (पौषधशाला से बाहर निकला। बाहर निकलकर, जहाँ स्नानघर था, वहाँ आया। वहाँ आकर उसने स्नान किया, नित्य-नैमित्तिक कृत्य किये। वैसा कर स्नानघर से बाहर निकला।) भोजन-मण्डप में आया। आगे का वर्णन पूर्ववत् है। कृतमाल देव को विजय करने के उपलक्ष्य में राजा के आदेश से अष्टदिवसीय महोत्सव आयोजित हुआ। महोत्सव के सम्पन्न होते ही आयोजकों ने राजा को वैसी सूचना की।

निष्कुट-विजयार्थ सुषेण की तैयारी

६६. तए णं से भरहे राया कयमालस्स अट्ठाहिआए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए सुसेणं सेणावइं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—गच्छाहि णं भो देवाणुप्पिआ! सिंधूए महाणईए

३. देखें सूत्र संख्या ३४

पच्चत्थिमिल्लं णिक्खुडं ससिंधुसागरगिरिमेरागं समविसमणिक्खुडाणि अ ओअवेहि ओअवेत्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छाहि अग्गाइं० पडिच्छित्ता ममेअमाणत्तिअं पच्चप्पिणाहि।

तते णं से सेणावई बलस्स णेआ भरहे वासंमि विस्सुअजसे महाबलपरक्कमे महप्पा ओअंसी तेअलक्खणजुत्ते मिलक्खुभासाविसारए चित्तचारुभासी भरहे वासंमि णिक्खुडाणं निण्णाण य दुग्गमाण य दुप्पवेसाण य विआणए अत्थसत्थकुसले रयणं सेणावई सुसेणे भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए जाव[1] करयलपरिग्गहिअं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं सामी ! तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ २ त्ता भरहस्स रण्णो अंतिआओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव सए आवासे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह हयगयरहपवर-(जोहकलिअं) चाउरंगिणिं सेण्णं सण्णाहेहत्ति कट्टु जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता मज्जणघरं अणुपविसइ २ त्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउअमंगलपायच्छित्ते सन्नद्धबद्धवम्मिअकवए उप्पीलिअसरासणपट्टिए पिणद्धगेविज्जबद्धआविद्धविमलवरचिंधपट्टे गहिआउहप्पहरणे अणेगगणनायगदंडनायग जाव[2] सद्धिं संपरिवुडे सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं मंगलजयसद्दकयालोए मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूढे।

[६६] *कृतमाल देव के विजयोपलक्ष्य में समायोजित अष्टदिवसीय महोत्सव के सम्पन्न हो जाने* पर राजा भरत ने अपने सुषेण नामक सेनापति को बुलाया। बुलाकर उससे कहा—देवानुप्रिय ! सिंधु महानदी के पश्चिम में विद्यमान, पूर्व में तथा दक्षिण में सिन्धु महानदी द्वारा, पश्चिम में पश्चिम समुद्र द्वारा तथा उत्तर में वैताढ्य पर्वत द्वारा विभक्त—मर्यादित भरतक्षेत्र के कोणवर्ती खण्डरूप निष्कुट प्रदेश को, उसके सम, विषम अवान्तर-क्षेत्रों को अधिकृत करो—मेरे अधीन बनाओ। उन्हें अधिकृत कर उनसे अभिनव, उत्तम रत्न—अपनी-अपनी जाति के उत्कृष्ट पदार्थ गृहीत करो—प्राप्त करो। मेरे इस आदेश की पूर्ति हो जाने पर मुझे इसकी सूचना दो।

भरत द्वारा यों आज्ञा दिये जाने पर सेनापति सुषेण चित्त में हर्षित, परितुष्ट तथा आनन्दित हुआ। सुषेण भरतक्षेत्र में विश्रुतयशा—बड़ा यशस्वी था। विशाल सेना का वह अधिनायक था, अत्यन्त बलशाली तथा पराक्रमी था। स्वभाव से उदात्त—बड़ा गम्भीर था। ओजस्वी—आन्तरिक ओजयुक्त, तेजस्वी—शारीरिक तेजयुक्त था। वह पारसी, अरबी आदि भाषाओं में निष्णात था। उन्हें बोलने में, समझने में, उन द्वारा औरों को समझाने में समर्थ था। वह विविध प्रकार से चारु—सुन्दर, शिष्ट भाषा-भाषी था। निम्न—नीचे, गहरे, दुर्गम—जहाँ जाना बड़ा कठिन हो, दुष्प्रवेश्य—जिनमें प्रवेश करना दुःशक्य हो, ऐसे स्थानों का विशेषज्ञ था—विशेष जानकार था। अर्थशास्त्र—नीतिशास्त्र आदि में कुशल था। सेनापति सुषेण ने अपने दोनों हाथ जोड़े। उन्हें मस्तक से लगाया—

---

१. देखें सूत्र संख्या ४४
२. देखे सूत्र संख्या ४४

मस्तक पर से घुमाया तथा अंजलि बाँधे 'स्वामी ! जो आज्ञा' यों कहकर राजा का आदेश विनय-पूर्वक स्वीकार किया। ऐसा कर वह वहाँ से चला। चलकर जहाँ अपना आवास-स्थान था, वहाँ आया। वहाँ आकर उसने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर उनको कहा—देवानुप्रियो! आभिषेक्य हस्तिरत्न को—गजराज को तैयार करो, घोड़े, हाथी, रथ तथा उत्तम योद्धाओं पदातियों से परिगठित चातुरंगिणी सेना को सजाओ।

ऐसा आदेश देकर वह जहाँ स्नानघर था, वहाँ आया। स्नानघर में प्रविष्ट हुआ। स्नान किया, नित्य-नैमित्तिक कृत्य किये, कौतुक-मंगल-प्रायश्चित्त किया—देहसज्जा की दृष्टि से नेत्रों में अंजन आंजा, ललाट पर तिलक लगाया, दु:स्वप्न आदि दोष-निवारण हेतु चन्दन, कुंकुम, दही, अक्षत आदि से मंगल-विधान किया। उसने अपने शरीर पर लोहे के मोटे मोटे तारों से निर्मित कवच कसा, धनुष पर दृढता के साथ प्रत्यञ्चा आरोपित की। गले में हार पहना। मस्तक पर अत्यधिक वीरता-सूचक निर्मल, उत्तम वस्त्र गांठ लगाकर बांधा। वाण आदि क्षेप्य—दूर फेंके जाने वाले तथा खड्ग आदि अक्षेप्य—पास ही से चलाये जाने वाले शस्त्र धारण किये। अनेक गणनायक, दण्डनायक आदि से वह घिरा था। उस पर कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र तना था। लोग मंगलमय जय-जय शब्द द्वारा उसे वर्धापित कर रहे थे। वह स्नानघर से बाहर निकला। बाहर निकलकर जहाँ बाह्य उप-स्थानशाला थी, आभिषेक्य हस्तिरत्न था, वहाँ आया। आकर उस गजराज पर आरूढ हुआ।

चर्मरत्न का प्रयोग

६७. तए णं से सुसेणे सेणावई हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं हयगयरहपवरजोहकलिआए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महयाभडचडगरपहगरवंदपरिक्खित्ते महयाउक्किट्ठसीहणायबोलकलकलसद्देणं समुद्दरवभूयंपिव करेमाणे २ सव्विड्ढीए सव्वज्जुईए सव्वबलेणं (सव्वसमुदयेणं सव्वायरेणं सव्वविभूसाए सव्वविभूईए सव्ववत्थपुप्फगंधमल्लालंकारविभूसाए सव्वतुडिअसद्दसण्णिणाएणं सव्विड्ढीए सव्ववर-तुडिअ-जमगसमगपवाइएणं संखपणवपडहभेरिझल्लरि-खरमुहिमुरयमुइंगदुंदुहि-) णिग्घोसणाइएणं जेणेव सिंधू महाणई तेणेव उवागच्छइ २ त्ता चम्मरयणं परामुसइ। तए णं तं सिरिवच्छसरिसरूवं मुत्ततारद्धचंदचित्तं अयलमकंपं अभेज्जकवयं जंतं सलिलासु सागरेसु अ उत्तरणं दिव्वं चम्मरयणं सणसत्तरसाइं सव्वधण्णाइं जत्थ रोहंति एगदिवसेण वाविआइं, वासं णाऊण चक्कवट्टिणा परामुट्ठे दिव्वे चम्मरयणे दुवालस जोअणाइं तिरिअं पवित्थरइ तत्थ साहिआइं, तए णं से दिव्वे चम्मरयणे सुसेणसेणावइणा परामुट्ठे समाणे खिप्पामेव णावाभूए जाए होत्था। तए णं से सुसेणे सेणावई सखंधावारबलवाहणे णावाभूयं चम्मरयणं दुरूहइ २ त्ता सिंधुमहाणइं विमलजलतुंगवीचिं णावाभूएणं चम्मरयणेणं सबलवाहणे ससेणे समुत्तिण्णे।

[६७] कोरंट पुष्प की मालाओं से युक्त छत्र उस पर लगा था, घोड़े, हाथी, उत्तम योद्धाओं—पदा-तियों से युक्त सेना से वह संपरिवृत था। विपुल योद्धाओं के समूह से वह समवेत था। उस द्वारा किये गये गम्भीर, उत्कृष्ट सिंहनाद की कलकल ध्वनि से ऐसा प्रतीत होता था, मानो समुद्र गर्जन कर रहा हो। सब प्रकार की ऋद्धि, सब प्रकार की द्युति—आभा, सब प्रकार के बल सैन्य, शक्ति से युक्त (सर्वसमुदय—सभी परिजन सहित, समादरपूर्ण प्रयत्नरत, सर्वविभूषा—सब प्रकार की वेशभूषा, वस्त्र,

आभरण आदि द्वारा सज्जित, सर्वविभूति—सब प्रकार के वैभव, सब प्रकार के वस्त्र, पुष्प सुगन्धित पदार्थ, फूलों की मालाएँ, अलंकार अथवा फूलों की मालाओं से निर्मित आभरण- इनसे वह सुसज्जित था। सब प्रकार के वाद्यों की ध्वनि-प्रतिध्वनि, शंख, पणव—पात्र विशेष पर मढे हुए ढोल, पटह—बड़े ढोल, भेरी, झालर, खरमुही, मुरज—ढोलक, मृदंग तथा नगाड़े इनके समवेत घोष के साथ) वह जहाँ सिन्धु महानदी थी, वहाँ आया।

वहाँ आकर चर्म-रत्न का स्पर्श किया। वह चर्म-रत्न श्रीवत्स—स्वस्तिक-विशेष जैसा रूप लिये था। उस पर मोतियों के, तारों के तथा अर्धचन्द्र के चित्र बने थे। वह अचल एवं अकम्प था। वह अभेद्य कवच जैसा था। नदियों एवं समुद्रों को पार करने का यन्त्र—अनन्य साधन था। दैवी विशेषता लिये था। चर्म-निर्मित वस्तुओं में वह सर्वोत्कृष्ट था। उस पर बोये हुए सत्तरह प्रकार के धान्य एक दिन में उत्पन्न हो सकें, वह ऐसी विशेषता लिये था। ऐसी मान्यता है कि गृहपतिरत्न इस चर्म-रत्न पर सूर्योदय के समय धान्य बोता है, जो उग कर दिन भर में पक जाते हैं, गृहपति सायंकाल उन्हें काट लेता है। चक्रवर्ती भरत द्वारा परामृष्ट वह चर्मरत्न कुछ अधिक बारह योजन विस्तृत था।

सेनापति सुषेण द्वारा छुए जाने पर चर्मरत्न शीघ्र ही नौका के रूप में परिणत हो गया। सेनापति सुषेण सैन्य-शिविर—छावनी में विद्यमान सेना एवं हाथी, घोड़े, रथ आदि वाहनों सहित उस चर्म-रत्न पर सवार हुआ। सवार होकर निर्मल जल की ऊँची उठती तरंगों से परिपूर्ण सिन्धु महानदी को दलबलसहित, सेनासहित पार किया।

विशाल विजय

६८. तओ महाणईमुत्तरित्तु सिंधुं अप्पडिहयसासणे अ सेणावई कहिंचि गामागरणगर-पव्वयाणि खेडकव्वडमडंबाणि पट्टणाणि सिंहलए बब्बरए अ सव्वं च अंगलोअं बलायालोअं च परमरम्मं जवणदीवं च पवरमणिरयणगकोसागारसमिद्धं आरबके रोमके अ अलसंडविसयवासी अ पिक्खुरे कालमुहे जोणए अ उत्तरवेअड्ढसंसियाओ अ मेच्छजाई बहुप्पगारा दाहिणअवरेण जाव सिंधुसागरंतोत्ति सव्वपवरकच्छं अ ओअवेऊण पडिणिअत्तो बहुसमरमणिज्जे अ भूमिभागे तस्स कच्छस्स सुहणिसण्णे, ताहे ते जणवयाण णगराण पट्टणाण य जे अ तहिं सामिआ पभूआ आगरपती अ मंडलपती अ पट्टणपती अ सव्वे घेत्तूण पाहुडाइं आभरणाणि भूसणाणि रयणाणि य वत्थाणि अ महरिहाणि अण्णं च जं वरिट्ठं रायारिहं जं च इच्छिअव्वं एअं सेणावइस्स उवणेंति मत्थयकयंजलिपुडा, पुणरवि काऊण अंजलिं मत्थयंमि पणया तुब्भे अम्हेऽत्थ सामिआ देवयंव सरणागया मो तुब्भं विसयवासिणोत्ति विजयं जंपमाणा सेणावइणा जहारिहं ठविअ पूइअ विसज्जिआ णिअत्ता सगाणि णगराणि पट्टणाणि अणुपविट्ठा, ताहे सेणावई सविणओ घेत्तूण पाहुडाइं आभरणाणि भूसणाणि रयणाणि य पुणरवि तं सिंधुणामधेज्जं उत्तिण्णे अणहसासणबले, तहेव भरहस्स रण्णो णिवेएइ णिवेइत्ता य अप्पिणित्ता य पाहुडाइं सक्कारिअसम्माणिए सहरिसे विसज्जिए सगं पडमंडवमइगए।

तते णं सुसेणे सेणावई ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउअमंगलपायच्छित्ते जिमिअभुत्तुत्तरागए

समाणे (आयंते चोक्खे परमसुईभूए) सरसगोसीसचंदणुक्खित्तगायसरीरे उप्पि पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं बत्तीसइबद्धेहिं णाडएहिं वरतरुणीसंपउत्तेहिं उवणच्चिज्जमाणे २ उवगिज्ज-माणे २ उवलालि (लभि) ज्जमाणे २ महयाहयणट्टगीअवाइअतंतीतलतालतुडिअघणमुइंगपडुप्पवाइअर-वेणं इट्ठे सद्दफरिसरसरूवगंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे भुंजमाणे विहरइ ।

[६८]सिन्धु महानदी को पार कर अप्रतिहत-शासन—जिसके आदेश का उल्लंघन करने में कोई समर्थ नहीं था, वह सेनापति सुषेण ग्राम, आकर, नगर, पर्वत, खेट, कर्वट, मडम्ब, पट्टन आदि जीतता हुआ, सिंहलदेशोत्पन्न, बर्बरदेशोत्पन्न जनों को, अंगलोक, बलावलोक नामक क्षेत्रों को, अत्यन्त रम-णीय, उत्तम मणियों तथा रत्नों के भंडारों से समृद्ध यवन द्वीप को, अरब देश के, रोम देश के लोगों को अलसंड-देशवासियों को, पिक्खुरों, कालमुखों, जोनकों—विविध म्लेच्छ जातीय जनों को तथा उत्तर वैताढ्य पर्वत की तलहटी में वसी हुई बहुविध म्लेच्छ जाति के जनों को, दक्षिण-पश्चिम—नैऋत्यकोण से लेकर सिन्धु नदी तथा समुद्र के संगम तक के सर्वप्रवर—सर्वश्रेष्ठ कच्छ देश को साधकर—जीतकर वापस मुड़ा । कच्छ देश के अत्यन्त सुन्दर भूमिभाग पर ठहरा । तब उन जनपदों—देशों, नगरों, पत्तनों के स्वामी, अनेक आकरपति—स्वर्ण आदि की खानों के मालिक, मण्डलपति, पत्तनपतिवृन्द ने आभ-रण—अंगों पर धारण करने योग्य अलंकार, भूषण—उपांगों पर धारण करने योग्य अलंकार, रत्न, बहुमूल्य वस्त्र, अन्यान्य श्रेष्ठ, राजोचित वस्तुएँ हाथ जोड़कर, जुड़े हुए हाथ मस्तक से लगाकर उपहार के रूप में सेनापति सुषेण को भेंट कीं । वापस लौटते हुए उन्होंने पुनः हाथ जोड़े, उन्हें मस्तक से लगाया, प्रणत हुए । वे बड़ी नम्रता से बोले—'आप हमारे स्वामी हैं । देवता की ज्यों आपके हम शरणागत हैं, आपके देशवासी हैं । इस प्रकार विजयसूचक शब्द कहते हुए उन सबको सेनापति सुषेण ने पूर्ववत् यथायोग्य कार्यों में प्रस्थापित किया, नियुक्त किया, उनका सम्मान किया और उन्हें विदा किया । वे अपने अपने नगरों, पत्तनों आदि स्थानों में लौट आये ।

अपने राजा के प्रति विनयशील, अनुपहत-शासन एवं बलयुक्त सेनापति सुषेण ने सभी उपहार, आभरण, भूषण तथा रत्न लेकर सिन्धु नदी को पार किया । वह राजा भरत के पास आया । आकर जिस प्रकार उस देश को जीता, वह सारा वृत्तान्त राजा को निवेदित किया । निवेदित कर उससे प्राप्त सभी उपहार राजा को अर्पित किये । राजा ने सेनापति का सत्कार किया, सम्मान किया, सहर्ष विदा किया । सेनापति तम्बू में स्थित अपने आवास-स्थान में आया ।

तत्पश्चात् सेनापति सुषेण ने स्नान किया, नित्य-नैमित्तिक कृत्य किये, देह-सज्जा की दृष्टि से नेत्रों में अंजन आंजा, ललाट पर तिलक लगाया, दुःस्वप्न आदि दोष-निवारण हेतु चन्दन, कुंकुम, दही, अक्षत आदि से मंगल-विधान किया । फिर उसने राजसी ठाठ से भोजन किया । भोजन कर विश्रामगृह में आया । (आकर शुद्ध जल से हाथ, मुंह आदि धोये, शुद्धि की । शरीर पर ताजे गोशीर्ष चन्दन का जल छिड़का, ऊपर अपने आवास में गया । वहाँ मृदंग वज रहे थे । सुन्दर, तरुण स्त्रियाँ वत्तीस प्रकार के अभिनयों द्वारा नाटक कर रही थीं । सेनापति की पसन्द के अनुरूप नृत्य आदि क्रियाओं द्वारा वे उसके मन को अनुरंजित करती थीं । नाटक में गाये जाते गीतों के अनुरूप वीणा, तवले एवं ढोल वज रहे थे । मृदंगों से वादल की-सी गंभीर ध्वनि निकल रही थी । वाद्य बजाने वाले वादक अपनी अपनी वादन-कला में वड़े निपुण थे । निपुणता से अपने अपने वाद्य बजा रहे थे । सेना-

पति सुषेण इस प्रकार अपनी इच्छा के अनुरूप शब्द, स्पर्श, रस, रूप तथा गन्धमय पांच प्रकार के मानवोचित, प्रिय कामभोगों का आनन्द लेने लगा।

तमिस्रा गुफा : दक्षिणद्वारोद्घाटन

६९. तए णं से भरहे राया अण्णया कयाई सुसेणं सेणावइं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—गच्छ णं खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे विघाडेहि २ त्ता मम एअमत्तिअं पच्चप्पिणाहि त्ति।

तए णं से सुसेणे सेणावई भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए जाव[1] करयलपरिग्गहिअं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु (एवं सामित्ति आणाए विणएणं वयणं) पडिसुणेइ २ त्ता भरहस्स रण्णो अंतियाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव सए आवासे जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता दब्भसंथारगं संथरइ (संथरित्ता दब्भसंथारगं दुरूहइ २ त्ता) कयमालस्स देवस्स अट्ठमभत्तं पगिण्हइ, पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी जाव[2] अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउअमंगलपायच्छित्ते सुद्धप्पवेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे धूवपुप्फगंधमल्लहत्थगए मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं तस्स सुसेणस्स सेणावइस्स बहवे राईसरतलवर-माडंबिअ जाव[3] सत्थवाहप्पभिइओ अप्पेगइआ उप्पलहत्थगया जाव[4] सुसेणं सेणावइं पिट्ठओ २ अणुगच्छंति। तए णं तस्स सुसेणस्स सेणावइस्स बहूईओ खुज्जाओ चिलाइआओ (वामणिआओ वडभीओ बब्बरीओ बउसिआओ जोणियाओ पल्हवियाओ ईसिणियाओ चारुकिणियाओ लासियाओ लउसियाओ दमिलीआओ सिंहलिआओ अरबीओ पुलिंदीओ पक्कणिआओ बहलिआओ मुरुंडीओ सबरीओ पारसीओ) इंगिअचिंतिअपत्थिअविआणिआओ णिउणकुसलाओ विणीआओ अप्पेगइआओ कलसहत्थगआओ (चंगेरीपुप्फपडलहत्थगआओ भिंगारआदंसथालपातिसुपइट्ठगवायकरगरयणकरंडपुप्फ-चंगेरीमल्लवण्णचुण्णगंधहत्थगआओ वत्थआभरणलोमहत्थयचंगेरीपुप्फपडलहत्थगआओ जाव लोमहत्थगआओ अप्पेगइआओ सीहासणहत्थगआओ छत्तचामरहत्थगआओ तिल्लसमुग्गयहत्थगआओ) अणुगच्छंतीति।

तए णं से सुसेणे सेणावई सव्विड्ढीए सव्वजुईए जाव[5] णिग्घोसणाइएणं जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आलोए पणामं करेइ २ त्ता लोमहत्थगं

---

१. देखें सूत्र संख्या ४४
२. देखें सूत्र संख्या ५०
३. देखें सूत्र संख्या ४४
४. देखें सूत्र संख्या ४४
५. देखें सूत्र संख्या ५२

परामुसइ २ त्ता तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे लोमहत्थेणं पमज्जइ २ त्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ २ त्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचंगुलितले चच्चए दलइ २ त्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहि अ मल्लेहि अ अच्चिणेइ २ त्ता पुप्फारुहणं (मल्लगंधवण्णचुण्ण-) वत्थारुहणं करेइ २ त्ता आसत्तोसत्तविपुलवट्ट-(वग्घारियमल्लदामकलावं) करेइ २ त्ता अच्छेहिं सण्णेहिं रययामएहिं अच्छरसातंडुलेहिं तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडाणं पुरओ अट्ठट्ठमंगलए आलिहइ, तंजहा—सोत्थियसिरिवच्छ-(णंदिआवत्तवद्धमाणगभद्दासणमच्छकलसदप्पणए) कयग्गहगहिअ-करयल-पब्भट्ट-चंदप्पभवइरवेरुलिअविमलदंडं कंचणमणिरयणभत्तिचित्तं कालागुरुपवरकुंदरुक्कतुरुक्क-धूवगंधुत्तमाणुविद्धं च धूमवट्टिं विणिम्मुअंतं वेरुलिअमयं कडुच्छुअं पग्गहेत्तु पयते) धूवं दलयइ २ त्ता वामं जाणुं अंचेइ २ त्ता करयल जाव[1] मत्थए अंजलिं कट्टु कवाडाणं पणामं करेइ २ त्ता दंडरयणं परामुसइ। तए णं तं दंडरयणं पंचलइअं वइरसारमइअं विणासणं सव्वसत्तुसेण्णाणं खंधावारे णरवइस्स गड्ढ-दरि-विसमपब्भारगिरिवरपवायाणं समीकरणं संतिकरं सुभकरं हितकरं रण्णो हिअ-इच्छिअ-मणोरहपूरगं दिव्वमप्पडिहयं दंडरयणं गहाय सत्तट्ठपयाइं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे दंडरयणेणं महया २ सद्देणं तिक्खुत्तो आउडेइ। तए णं तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा सुसेणसेणावइणा दंडरयणेणं महया २ सद्देणं तिक्खुत्तो आउडिया समाणा महया २ सद्देणं कोंचारवं करेमाणा सरसरस्स सगाइं २ ठाणाइं पच्चोसक्कित्था। तए णं से सुसेणे सेणावई तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे विहाडेइ २ त्ता जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता (तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करेत्ता) करयलपरिग्गहिअं (दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु) जएणं विजएणं वद्धावेइ २ त्ता एवं वयासी—विहाडिआ णं देवाणुप्पिया! तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा एअण्णं देवाणुप्पिआणं पिअं णिवेएमो पिअं भे भवउ।

तए णं से भरहे राया सुसेणस्स सेणावइस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठचित्त-माणंदिए जाव[2] हिअए सुसेणं सेणावइं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता कोडुंबिअपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह हयगयरहपवर-(जोहकलिआए चाउरंगिणीए सेण्णाए सद्धिं संपरिवुडे महयाभडचडगरपहगर-वंदपरिक्खित्ते महया उक्किट्ठिसीहणायबोलकलकलसद्देणं समुद्दरवभूयंपिव करेमाणे) अंजणगिरि-कूडसण्णिभं गयवरं णरवई दुरूढे।

[६६] राजा भरत ने सेनापति सुषेण को बुलाया। बुलाकर उससे कहा—'देवानुप्रिय! जाओ, शीघ्र ही तमिस्रा गुफा के दक्षिणी द्वार के दोनों कपाट उद्घाटित करो। वैसा कर मुझे सूचित करो।

---

१. देखें सूत्र संख्या ४४

२. देखें सूत्र संख्या ४४

राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर सेनापति सुषेण अपने चित्त में हर्षित, परितुष्ट तथा आनन्दित हुआ। उसने अपने दोनों हाथ जोड़े। उन्हें मस्तक से लगाया, मस्तक पर से घुमाया और अंजलि बाँधे ('स्वामी! जैसी आज्ञा' ऐसा कहकर) विनयपूर्वक राजा का वचन स्वीकार किया। वैसा कर राजा भरत के पास से रवाना हुआ। रवाना होकर जहाँ अपना आवासस्थान था, जहाँ पौषधशाला थी, वहाँ आया। वहाँ आकर डाभ का बिछौना बिछाया। (डाभ का बिछौना बिछाकर उस पर संस्थित हुआ।) कृतमाल देव को उद्दिष्ट कर तेले की तपस्या अंगीकार की। पौषधशाला में पौषध लिया। ब्रह्मचर्य स्वीकार किया। तेले के पूर्ण हो जाने पर वह पौषधशाला से बाहर निकला। बाहर निकलकर, जहाँ स्नानघर था, वहाँ आया। आकर स्नान किया, नित्यनैमित्तिक कृत्य किये। देह-सज्जा की दृष्टि से नेत्रों में अंजन आंजा, ललाट पर तिलक लगाया, दुःस्वप्नादि दोष-निवारण हेतु चन्दन, कुंकुम, दही, अक्षत आदि से मंगल-विधान किया। उत्तम, प्रवेश्य—राजसभा में, उच्च वर्ग में प्रवेशोचित श्रेष्ठ, मांगलिक वस्त्र भली-भांति पहने। थोड़े—संख्या में कम पर बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया। धूप, पुष्प, सुगन्धित पदार्थ एवं मालाएँ हाथ में लीं। स्नानघर से बाहर निकला। बाहर निकल कर जहाँ तमिस्रा गुफा के दक्षिणी द्वार के कपाट थे, उधर चला। माण्डलिक अधिपति, ऐश्वर्यशाली, प्रभावशाली पुरुष, राजसम्मानित विशिष्ट जन, जागीरदार तथा सार्थवाह आदि सेनापति सुषेण के पीछे पीछे चले, जिनमें से कतिपय अपने हाथों में कमल लिये थे। बहुत सी दासियां पीछे पीछे चलती थीं, जिनमें से अनेक कुबड़ी थीं, अनेक किरात देश की थीं। (अनेक बौनी थीं, अनेक ऐसी थीं, जिनकी कमर झुकी थीं। अनेक बर्बर देश की, बकुश देश की, यूनान देश की, पह्लव देश की, इसिन देश की, चारुकिनिक देश की, लासक देश की, लकुश देश की, द्रविड देश की, सिंहल देश की, अरब देश की, पुलिन्द देश की, पक्कण देश की, बहल देश की, मुरुंड देश की, शबर देश की तथा पारस देश की थीं।) वे चिन्तित तथा अभिलषित भाव को संकेत या चेष्टा मात्र से समझ लेने में विज्ञ थीं, प्रत्येक कार्य में निपुण थीं, कुशल थीं तथा स्वभावतः विनयशील थीं।

उन दासियों में से किन्हीं के हाथों में मंगल-कलश थे, (किन्हीं के हाथों में फूलों के गुलदस्तों से भरी टोकरियां, भृंगार-झारियां, दर्पण, थाल, रकाबी जैसे छोटे पात्र, सुप्रतिष्ठक, वातकरक—करवे, रत्नकरण्डक—रत्न-मंजूषा, फलों की डलिया, माला, वर्णक, चूर्ण, गन्ध, वस्त्र, आभूषण, मोर-पंखों से बनी, फूलों के गुलदस्तों से भरी डलिया, मयूरपिच्छ, सिंहासन, छत्र, चँवर तथा तिल-समुद्गक—तिल के भाजन-विशेष—डिब्बे आदि भिन्न भिन्न वस्तुएँ थीं।)

सब प्रकार की समृद्धि तथा द्युति से युक्त सेनापति सुषेण वाद्य-ध्वनि के साथ जहाँ तमिस्रा गुफा के दक्षिणी द्वार के कपाट थे, वहाँ आया। आकर उन्हें देखते ही प्रणाम किया। मयूरपिच्छ से बनी प्रमार्जनिका उठाई। उससे दक्षिणी द्वार के कपाटों को प्रमार्जित किया—साफ किया। उन पर दिव्य जल की धारा छोड़ी—दिव्य जल से उन्हें धोया। धोकर आर्द्र गोशीर्ष चन्दन से परिलिप्त पांच अंगुलियों सहित हथेली के थापे लगाये। थापे लगाकर अभिनव, उत्तम सुगन्धित पदार्थों से तथा मालाओं से उनकी अर्चना की। उन पर पुष्प (मालाएँ, सुगन्धित वस्तुएँ, वर्णक, चूर्ण) वस्त्र चढ़ाये। ऐसा कर इन सबके ऊपर से नीचे तक फैला, विस्तीर्ण, गोल (अपने में लटकाई गई मोतियों की मालाओं से युक्त) चांदनी—चँदवा ताना। चँदवा तानकर स्वच्छ बारीक चांदी के चावलों से, जिनमें स्वच्छता के कारण समीपवर्ती वस्तुओं के प्रतिबिम्ब पड़ते थे, तमिस्रा गुफा के कपाटों के आगे स्वस्तिक, श्रीवत्स, (नन्द्यावर्त,

वर्धमानक, भद्रासन, मत्स्य, कलश तथा दर्पण—ये आठ) मांगलिक प्रतीक अंकित किये। कचग्रह—केशों को पकड़ने की ज्यों पांचों अंगुलियों से ग्रहीत पंचरंगे फूल उसने अपने करतल से उन पर छोड़े। वैडूर्य रत्नों से बना धूपपात्र उसने हाथ में लिया। धूपपात्र को पकड़ने का हत्था चन्द्रमा की ज्यों उज्ज्वल था, वज्ररत्न एवं वैडूर्यरत्न से बना था। धूप-पात्र पर स्वर्ण, मणि तथा रत्नों द्वारा चित्रांकन किया हुआ था। काले अगर, उत्तम कुन्दरुक, लोबान एवं धूप की गमगमाती महक उससे उठ रही थी। सुगन्धित धुएँ की प्रचुरता से वहाँ गोल गोल धूममय छल्ले से बन रहे थे। उसने उस धूपपात्र में धूप दिया—धूप खेया। फिर उसने अपने बाएँ घुटने को जमीन से ऊँचा रखा (दाहिने घुटने को जमीन पर टिकाया) दोनों हाथ जोड़े, अंजलि रूप से उन्हें मस्तक से लगाया। वैसा कर उसने कपाटों को प्रणाम किया। प्रणाम कर दण्डरत्न को उठाया। वह दण्ड रत्नमय तिरछे अवयव-युक्त था, वज्रसार से बना था, समग्र शत्रु-सेना का विनाशक था, राजा के सैन्य-सन्निवेश में गड्ढों, कन्दराओं, ऊबड़-खाबड़ स्थलों, पहाड़ियों, चलते हुए मनुष्यों के लिए कष्टकर पथरीले टीलों को समतल बना देने वाला था। वह राजा के लिए शांतिकर, शुभकर, हितकर तथा उसके इच्छित मनोरथों का पूरक था, दिव्य था, अप्रतिहत—किसी भी प्रतिघात से अबाधित था। सेनापति सुषेण ने उस दण्डरत्न को उठाया। वेग-आपादन हेतु वह सात आठ कदम पीछे हटा, तमिस्रा गुफा के दक्षिणी द्वार के किवाड़ों पर तीन वार प्रहार किया, जिससे भारी शब्द हुआ। इस प्रकार सेनापति सुषेण द्वारा दण्डरत्न से तीन बार आहत—ताड़ित कपाट क्रौञ्च पक्षी की ज्यों जोर से आवाज कर सरसराहट के साथ अपने स्थान से विचलित हुए—सरके। यों सेनापति सुषेण ने तमिस्रागुफा के दक्षिणी द्वार के कपाट खोले। वैसा कर वह जहाँ राजा भरत था, वहाँ आया (आकर राजा की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की)। हाथ जोड़े, (हाथों से अंजलि बांधे मस्तक को छुआ)। राजा को 'जय, विजय' शब्दों द्वारा वर्धापित किया। वर्धापित कर राजा से कहा—देवानुप्रिय ! तमिस्रागुफा के दक्षिणी द्वार के कपाट खोल दिये हैं। मैं तथा मेरे सहचर यह प्रिय संवाद आपको निवेदित करते हैं। आपके लिए यह प्रियकर हो।

राजा भरत सेनापति सुषेण से यह संवाद सुनकर अपने मन में हर्षित, परितुष्ट तथा आनन्दित हुआ। राजा ने सेनापति सुषेण का सत्कार किया, सम्मान किया। सेनापति को सत्कृत, सम्मानित कर उसने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा—आभिषेक्य हस्तिरत्न को शीघ्र तैयार करो। उन्होंने वैसा किया। तब घोड़े, हाथी, रथ तथा श्रेष्ठ योद्धाओं—पदातियों से परिगठित चातुरंगिणी सेना से संपरिवृत, अनेकानेक सुभटों के विस्तार से युक्त राजा उच्च स्वर से समुद्र के गर्जन के सदृश सिंहनाद करता हुआ अंजनगिरि के शिखर के समान गजराज पर आरूढ हुआ।

काकणी रत्न द्वारा मण्डल-आलेखन

७०. तए णं से भरहे राया मणिरयणं परामुसइ तोतं चउरंगुलप्पमाणमित्तं च अणग्घं तंसिअं छलंसं अणोवमजुइं दिव्वं मणिरयणपतिसमं वेरुलिअं सव्वभूअकंतं जेण य मुद्धागएणं दुक्खं ण किंचि जाव हवइ आरोग्गे अ सव्वकालं तेरिच्छिअदेवमाणुसकया य उवसग्गा सव्वे ण करेंति तस्स दुक्खं, संगामेऽवि असत्थवज्झो होइ णरो मणिवरं धरेंतो, ठिअजोव्वणकेसअवट्ठिअणहो हवइ अ सव्वभयविप्पमुक्को, तं मणिरयणं गहाय से णरवई हत्थिरयणस्स दाहिणिल्लाए कुंभीए णिक्खिवइ।

तए णं से भरहाहिवे णरिंदे हारोत्थए सुकयरइअवच्छे (कुंडलउज्जोइआणणे मउडदित्तसिरए

णरसीहे णरवई णरिंदे णरवसहे मरुअरायवसभकप्पे अब्भहिअरायतेअलच्छीए दिप्पमाण पसत्थमंगल-सएहिं संथुव्वमाणे जयसद्दकयालोए हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेअवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं २ जक्खसहस्ससंपरिवुडे वेसमणे चेव धणवई) अमरवइसण्णिभाए इद्धीए पहिअकित्ती मणिरयणकउज्जोए चक्करयणदेसिअभग्गे अणेगरायसहस्साणुआयमग्गे महयाउक्किट्ठसीहणायबोलकलकलरवेणं समुद्दरवभूअंपिव करेमाणे २ जेणव तिमिसगुहाए दाहिणिल्ले दुवारे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तिमिसगुहं दाहिणिल्लेणं दुवारेणं अईइ ससिव्व मेहंधयारनिवहं। तए णं से भरहे राया छत्तलं दुवालसंसिअं अट्ठकण्णिअं अहिगरणिसंठिअं अट्ठसोवण्णिअं कागणिरयणं परामुसइत्ति। तए णं तं चउरंगुलप्पमाणमित्तं अट्ठसुवण्णं च विसहरणं अउलं चउरंससंठाणसंठिअं समतलं माणुम्माणजोगा जतो लोगे चरंति सव्वजणपण्णवगा, ण इव चंदो ण इव तत्थ सूरे ण इव अग्गी ण इव तत्थ मणिणो तिमिरं णासेंति अंधयारे जत्थ तयं दिव्वं भावजुत्तं दुवालसजोअणाइं तस्स लेसाउ विवद्ध ंति तिमिरणिगरपडिसेहिआओ, रत्तिं च सव्वकालं खंधावारे करेइ आलोअं दिवसभूअं जस्स पभावेण चक्कवट्टी, तिमिसगुहं अतीति सेण्णसहिए अभिजेतु ं बितिअमद्धभरहं रायवरे कागणिं गहाय तिमिसगुहाए पुरच्छिमिल्लपच्चत्थिमिल्लेसु ं कडएसु जोअणंतरिआइं पंचधणुसयविक्खंभाइं जोअणुज्जोअकराइं चक्कणेमीसंठिआइं चंदमंडलपडिणिकासाइं एगूणपण्णं मंडलाइं आलिहमाणे २ अणुप्पविसइ। तए णं सा तिमिसगुहा भरहेण रण्णा तेहिं जोअणंतरिएहिं (पंचधणुसयविक्खंभेहिं) जोअणुज्जोअकरेहिं एगूणपण्णाए मंडलेहिं आलिहिज्जमाणेहिं २ खिप्पामेव आलोगभूआ उज्जोअभूआ दिवसभूआ जाया यावि होत्था।

[७०] तत्पश्चात् राजा भरत ने मणिरत्न का स्पर्श किया। वह मणिरत्न विशिष्ट आकार-युक्त, सुन्दरतायुक्त था, चार अंगुल प्रमाण था, अमूल्य था—कोई उसका मूल्य आंक नहीं सकता था। वह तिखूंटा था, ऊपर नीचे षट्कोणयुक्त था, अनुपम द्युतियुक्त था, दिव्य था, मणिरत्नों में सर्वोत्कृष्ट था, वैडूर्यमणि की जाति का था, सब लोगों का मन हरने वाला था—सबको प्रिय था, जिसे मस्तक पर धारण करने से किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं रह जाता था—जो सर्व-कष्ट-निवारक था, सर्वकाल आरोग्यप्रद था। उसके प्रभाव से तिर्यञ्च—पशु पक्षी, देव तथा मनुष्य कृत उपसर्ग—विघ्न कभी भी दुःख उत्पन्न नहीं कर सकते थे। उस उत्तम मणि को धारण करने वाले मनुष्य का संग्राम में किसी भी शस्त्र द्वारा वध किया जाना शक्य नहीं था। उसके प्रभाव से यौवन सदा स्थिर रहता था, बाल तथा नाखून नहीं बढ़ते थे। उसे धारण करने से मनुष्य सब प्रकार के भयों से विमुक्त हो जाता था। राजा भरत ने इन अनुपम विशेषताओं से युक्त मणिरत्न को गृहीत कर गजराज के मस्तक के दाहिने भाग पर निक्षिप्त किया—बांधा।

भरतक्षेत्र के अधिपति राजा भरत का वक्षस्थल हारों से व्याप्त, सुशोभित एवं प्रीतिकर था। (उसका मुख कुण्डलों से द्युतिमय था, मस्तक मुकुट से देदीप्यमान था। वह नरसिंह—मनुष्यों में सिंह सदृश शौर्यशाली, मनुष्यों का स्वामी, मनुष्यों का इन्द्र—परम ऐश्वर्यशाली अधिनायक, मनुष्यों में वृषभ के समान स्वीकृत कार्यभार का निर्वाहक, व्यन्तर आदि देवों के राजाओं के बीच विद्यमान प्रमुख सौधर्मेन्द्र के सदृश प्रभावशील, राजोचित तेजोमयी लक्ष्मी से उद्दीप्त, मंगलसूचक शब्दों से संस्तुत

तथा जयनाद से सुशोभित था। वह हाथी पर आरूढ था। कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र उस पर तना था। उत्तम, श्वेत चँवर उस पर डुलाये जा रहे थे। वह सहस्र यक्षों से संपरिवृत कुबेर सदृश वैभवशाली प्रतीत होता था।) अपनी ऋद्धि से इन्द्र जैसा ऐश्वर्यशाली, यशस्वी लगता था। मणिरत्न से फैलते हुए प्रकाश तथा चक्ररत्न द्वारा निर्देशित किये जाते मार्ग के सहारे आगे बढ़ता हुआ, अपने पीछे-पीछे चलते हुए हजारों नरेशों से युक्त राजा भरत उच्च स्वर से समुद्र के गर्जन की ज्यों सिंहनाद करता हुआ, जहाँ तमिस्रा गुफा का दक्षिणी द्वार था, वहाँ आया। चन्द्रमा जिस प्रकार मेघ-जनित विपुल अन्धकार में प्रविष्ट होता है, वैसे ही वह दक्षिणी द्वार से तमिस्रा गुफा में प्रविष्ट हुआ।

फिर राजा भरत ने काकणी-रत्न लिया। वह रत्न चार दिशाओं तथा ऊपर नीचे छः तलयुक्त था। ऊपर, नीचे एवं तिरछे—प्रत्येक ओर वह चार चार कोटियों से युक्त था, यों बारह कोटि युक्त था। उसकी आठ कर्णिकाएँ थीं। अधिकरणी—स्वर्णकार लोह-निर्मित जिस पिण्डी पर सोने, चांदी आदि को पीटता है, उस पिण्डी के समान आकारयुक्त था। वह अष्ट सौवर्णिक[1]—अष्ट स्वर्णमान-परिमाण था—तत्कालीन तोल के अनुसार आठ तोले वजन का था। वह चार-अंगुल-परिमित था। विषनाशक, अनुपम, चतुरस्र-संस्थान-संस्थित, समतल तथा समुचित मानोन्मानयुक्त था, सर्वजन-प्रज्ञापक—उस समय लोक प्रचलित मानोन्मान व्यवहार का प्रामाणिक रूप में संसूचक था। जिस गुफा के अन्तर्वर्ती अन्धकार को न चन्द्रमा नष्ट कर पाता था, न सूर्य ही जिसे मिटा सकता था, न अग्नि ही उसे दूर कर सकती थी तथा न अन्य मणियाँ ही जिसे अपगत कर सकती थीं, उस अन्धकार को वह काकणी-रत्न नष्ट करता जाता था। उसकी दिव्य प्रभा बारह योजन तक विस्तृत थी। चक्रवर्ती के सैन्य-सन्निवेश में—छावनी में रात में दिन जैसा प्रकाश करते रहना उस मणि-रत्न का विशेष गुण था। उत्तर भरतक्षेत्र को विजय करने हेतु उसी के प्रकाश में राजा भरत ने सैन्यसहित तमिस्रा गुफा में प्रवेश किया। राजा भरत ने काकणी रत्न हाथ में लिए तमिस्रा गुफा की पूर्वदिशावर्ती तथा पश्चिमदिशावर्ती भित्तियों पर एक एक योजन के अन्तर से पांच सौ धनुष प्रमाण विस्तीर्ण, एक योजन क्षेत्र को उद्योतित करने वाले, रथ के चक्के की परिधि की ज्यों गोल, चन्द्र-मण्डल की ज्यों भास्वर—उज्ज्वल, उनचास मण्डल आलिखित किये। वह तमिस्रा गुफा राजा भरत द्वारा यों एक एक योजन की दूरी पर आलिखित (पाँच सौ धनुष प्रमाण विस्तीर्ण) एक योजन तक उद्योत करने वाले उनपचास मण्डलों से शीघ्र ही दिन के समान आलोकयुक्त—प्रकाशयुक्त हो गई।

उन्मग्नजला, निमग्नजला महानदियाँ

७१. तीसे णं तिमिसगुहाए बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं उम्मग्ग-णिमग्ग-जलाओ णामं दुवे महाणईओ पण्णत्ताओ, जाओ णं तिमिसगुहाए पुरच्छिमिल्लाओ भित्तिकडगाओ पवूढाओ समाणीओ पच्चत्थिमेणं सिंधुं महाणइं समप्पेंति।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ उम्मग्ग-णिमग्गजलाओ महाणईओ?

१. तत्र सुवर्णमानमिदम्—चत्वारि मधुरतृणफलान्येकः श्वेतसर्षपः, षोडश श्वेतसर्षपा एकं धान्यमाषफलम्, द्वे धान्यमाषफले एका गुञ्जा, पञ्च गुञ्जा एकः कर्ममाषकः, षोडश कर्ममाषका एकसुवर्ण इति।

चार मधुर तृणफल=एक सफेद सरसों, सोलह सफेद सरसों=एक उर्द का दाना, दो उर्द के दाने=एक घुंघची, पांच घुंघची=एक मासा, सोलह मासे=एक सुवर्ण—एक तोला।

—श्री जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति शान्तिचन्द्रीया वृत्तिः ३ वक्षस्कारे सू. ५४

गोयमा ! जण्णं उम्मग्गजलाए महाणईए तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा सक्करं वा आसे वा हत्थी वा रहे वा जोहे वा मणुस्से वा पक्खिप्पइ तण्णं उम्मग्गजलामहाणई तिक्खुत्तो आहुणिअ २ एगंते थलंसि एडेइ, जण्णं णिमग्गजलाए महाणईए तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा सक्करं वा (आसे वा हत्थी वा रहे वा जोहे वा) मणुस्से वा पक्खिप्पइ तण्णं णिमग्गजलामहाणई तिक्खुत्तो आहुणिअ २ अंतो जलंसि णिमज्जावेइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ उम्मग्ग-णिमग्गजलाओ महाणईओ ।

तए णं से भरहे राया चक्करयणदेसिअमग्गे अणेगराय० महया उक्किट्ठ सीहणाय (बोलकलकलसद्देणं समुद्दरवभूयंपिव) करेमाणे २ सिंधूए महाणईए पुरच्छिमिल्ले णं कूडे णं जेणेव उम्मग्गजला महाणई तेणेव उवागच्छइ २ त्ता वद्धइरयणं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! उम्मग्गणिमग्गजलासु महाणईसु अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे अयलमकंपे अभेज्जकवए सालंबणबाहाए सव्वरयणामए सुहसंकमे करेहि करेत्ता मम एअमाणत्तिअं खिप्पामेव पच्चप्पिणाहि ।

तए णं से वद्धइरयणे भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए जाव[1] विणएणं पडिसुणेइ २ त्ता खिप्पामेव उम्मग्गणिमग्गजलासु महाणईसु अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे (अयलमकंपे अभेज्जकवए सालंबणबाहाए सव्वरयणामए) सुहसंकमे करेइ २ त्ता जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता जाव[2] एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणइ ।

तए णं से भरहे राया सखंधावारबले उम्मग्गणिमग्गजलाओ महाणईओ तेहिं अणेगखंभसयसण्णिविट्ठेहिं (अयलमकंपेहिं अभेज्जकवएहिं सालंबणबाहाएहिं सव्वरयणामएहिं) सुहसंकमेहिं उत्तरइ, तए णं तीसे तिमिसगुहाए उत्तरिल्लस्स दुवारस्स कवाडा सयमेव महया २ कोंचारवं करेमाणा सरसरस्स सगाग्गाइं २ ठाणाइं पच्चोसक्कित्था ।

[७१] तमिस्रा गुफा के ठीक बीच में उन्मग्नजला तथा निमग्नजला नामक दो महानदियां प्ररूपित की गई हैं, जो तमिस्रा गुफा के पूर्वी भित्तिप्रदेश से निकलती हुई पश्चिम भित्ति प्रदेश होती हुई सिन्धु महानदी में मिलती हैं ।

भगवन् ! इन नदियों के उन्मग्नजला तथा निमग्नजला—ये नाम किस कारण पड़े ?

गौतम ! उन्मग्नजला महानदी में तृण, पत्र, काष्ठ, पाषाणखण्ड—पत्थर का टुकड़ा, घोड़ा, हाथी, रथ, योद्धा—पदाति या मनुष्य जो भी प्रक्षिप्त कर दिये जाएँ—गिरा दिये जाएँ तो वह नदी उन्हें तीन बार इधर-उधर घुमाकर किसी एकान्त, निर्जल स्थान में डाल देती है ।

निमग्नजला महानदी में तृण, पत्र, काष्ठ, पत्थर का टुकड़ा (घोड़ा, हाथी, रथ, योद्धा—पदाति) या मनुष्य जो भी प्रक्षिप्त कर दिये जाएं—गिरा दिये जाएं तो वह उन्हें तीन बार इधर-उधर घुमाकर जल में निमग्न कर देती है—डुबो देती है । गौतम ! इस कारण से ये महानदियां क्रमशः उन्मग्नजला तथा निमग्नजला कही जाती हैं ।

---

१. देखें सूत्र संख्या ४४

२. देखें सूत्र संख्या ४४

तत्पश्चात् अनेक नरेशों से युक्त राजा भरत चक्ररत्न द्वारा निर्देशित किये जाते मार्ग के सहारे आगे बढ़ता हुआ उच्च स्वर से (समुद्र के गर्जन की ज्यों) सिंहनाद करता हुआ सिन्धु महानदी के पूर्वी तट पर अवस्थित उन्मग्नजला महानदी के निकट आया। वहाँ आकर उसने अपने वर्द्धकिरत्न को—अपने श्रेष्ठ शिल्पी को बुलाया। उसे बुलाकर कहा—'देवानुप्रिय! उन्मग्नजला तथा निमग्नजला महानदियों पर उत्तम पुलों का निर्माण करो, जो सैकड़ों खंभों पर सन्निविष्ट हों—भली-भाँति टिके हों, अचल हों, अकम्प हों—सुदृढ़ हों, कवच की ज्यों अभेद्य हों—जिनके ऊपरी पर्त भिन्न होने वाले—टूटनेवाले न हों, जिनके ऊपर दोनों ओर दीवारें बनी हों, जिससे उन पर चलने वाले लोगों को चलने में आलम्बन रहे, जो सर्वथा रत्नमय हों। मेरे आदेशानुरूप यह कार्य परिसम्पन्न कर मुझे शीघ्र सूचित करो।'

राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर वह शिल्पी अपने चित्त में हर्षित, परितुष्ट एवं आनन्दित हुआ। उसने विनयपूर्वक राजा का आदेश स्वीकार किया। राजाज्ञा स्वीकार कर उसने शीघ्र ही उन्मग्नजला तथा निमग्नजला नामक नदियों पर उत्तम पुलों का निर्माण कर दिया, जो सैकड़ों खंभों पर भली भांति टिके थे (अचल थे, अकम्प थे, कवच की ज्यों अभेद्य थे अथवा जिनके ऊपरी पर्त भिन्न होने वाले—टूटने वाले नहीं थे, जिनके ऊपर दोनों ओर दीवारें बनी थीं, जिससे उन पर चलने वालों को चलने में आलम्वन रहे, जो सर्वथा रत्नमय थे)। ऐसे पुलों की रचना कर वह शिल्पकार जहाँ राजा भरत था, वहाँ आया। वहाँ आकर राजा को अवगत कराया कि उनके आदेशानुरूप पुल-निर्माण हो गया है।

तत्पश्चात् राजा भरत अपनी समग्र सेना के साथ उन पुलों द्वारा, जो सैकड़ों खंभों पर भली-भांति टिके थे (अचल थे, अकम्प थे, कवच की ज्यों अभेद्य थे अथवा जिनके ऊपरी पर्त भिन्न होने वाले—टूटने वाले नहीं थे, जिनके ऊपर दोनों ओर दीवारें वनी थीं, जिससे उन पर चलने वालों को चलने में आलम्वन रहे, जो सर्वथा रत्नमय थे), उन्मग्नजला तथा निमग्नजल नामक नदियों को पार किया। यों ज्योंही उसने नदियां पार की, तमिस्रा गुफा के उत्तरी द्वारा के कपाट क्रोञ्च पक्षी की तरह आवाज करते हुए सरसराहट के साथ अपने आप अपने स्थान से सरक गये—खुल गये।

आपात किरातों से संग्राम

७२. तेणं कालेणं तेणं समएणं उत्तरड्ढभरहे वासे बहवे आवाडा णामं चिलाया परिवसंति, अड्ढा दित्ता वित्ता विच्छिण्णविउलभवणसयणासणजाणवाहणाइन्ना बहुधणबहुजायरूवरयया आओगपओगसंपउत्ता विच्छड्डिअपउरभत्तपाणा बहुदासीदासगोमहिसगवेलगप्पभूआ बहुजणस्स अपरिभूआ सूरा वीरा विक्कंता विच्छिण्णविउलबलवाहणा बहुसु समरसंपराएसु लद्धलक्खा यावि होत्था।

तए णं तेसिमावाडचिलायाणं अण्णया कयाई विसयंसि बहूइं उप्पाइअसयाइं पाउब्भवित्था, तंजहा—अकाले गज्जिअं, अकाले विज्जुआ, अकाले पायवा पुप्फंति, अभिक्खणं २ आगासे देवयाओ णच्चंति। तए णं ते आवाडचिलाया विसयंसि बहूइं उप्पाइअसयाइं पाउब्भूयाइं पासंति पासित्ता अण्णमण्णं सद्दावेंति २ त्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिआ! अम्हं विसयंसि बहूइं उप्पाइअसयाइं पाउब्भूआइं तंजहा—अकाले गज्जिअं, अकाले विज्जुआ, अकाले पायवा पुप्फंति, अभिक्खणं २ आगासे देवयाओ

णच्चंति, तं ण णज्जइ णं देवाणुप्पिआ ! अम्हं विसयस्स के मन्ने उवद्दवे भविस्सइत्ति कट्टु ओहयमण-संकप्पा चिंतासोगसागरं पविट्ठा करयलपल्हत्थमुहा अट्टज्झाणोवगया भूमिगयदिट्ठिआ झिआयंति।

तए णं से भरहे राया चक्करयणदेसिअमग्गे (अणेगरायसहस्साणुआयमग्गे महयाउक्किट्ठसीह-णायबोलकलकलरवेणं) समुद्दरवभूअं पिव करेमाणे २ तिमिसगुहाओ उत्तरिल्लेणं दारेणं णीति ससिव्व मेहंधयारणिवहा।

तए णं ते आवाडचिलाया भरहस्स रण्णो अग्गाणीअं एज्जमाणं पासंति २ त्ता आसुरुत्ता रुट्ठा चंडिक्किआ कुविआ मिसिमिसेमाणा अण्णमण्णं सद्दावेंति २ त्ता एवं वयासी—'एस णं देवाणुप्पिआ ! केइ अप्पत्थिअपत्थए दुरंतपंतलक्खणे हीणपुण्णचाउद्दसे हिरिसिरिपरिवज्जिए, जे णं अम्हं विसयस्स उवरिं विरिएणं हव्वमागच्छइ तं तहा णं घत्तामो देवाणुप्पिआ ! जहा णं एस अम्हं विसयस्स उवरिं विरिएणं णो हव्वमागच्छइत्तिकट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एअमट्ठं पडिसुणेंति २ त्ता सण्णद्धबद्धवम्मियकवआ उप्पीलिअसरासणपट्टिआ पिणद्धगेविज्जा बद्धआविद्धविमलवरचिंधपट्टा गहिआउहप्पहरणा जेणेव भरहस्स रण्णो अग्गाणीअं तेणेव उवागच्छंति २ त्ता भरहस्स रण्णो अग्गाणीएण सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था। तए णं ते आवाडचिलाया भरहस्स रण्णो अग्गाणीअं हयमहिअपवरवीरघाइअविवडिअचिंधद्धयपडागं किच्छप्पाणोवगयं दिसोदिसिं पडिसेहिंति।

[७२] उस समय उत्तरार्ध भरतक्षेत्र में आवाड—आपात संज्ञक किरात निवास करते थे। वे आढ्य—सम्पत्तिशाली, दीप्त—दीप्तिमान्—प्रभावशाली, वित्त—अपने जातीय जनों में विख्यात, भवन—रहने के मकान, शयन—ओढ़ने-विछाने के वस्त्र, आसन—बैठने के उपकरण, यान—माल-असवाब ढोने की गाड़ियाँ, वाहन—सवारियाँ आदि विपुल साधन-सामग्री तथा स्वर्ण, रजत आदि प्रचुर धन के स्वामी थे। आयोग-प्रयोग-संप्रवृत्त—व्यावसायिक दृष्टि से धन के सम्यक् विनियोग और प्रयोग में निरत—कुशलतापूर्वक द्रव्योपार्जन में संलग्न थे। उनके यहाँ भोजन कर चुकने के बाद भी खाने-पीने के बहुत पदार्थ बचते थे। उनके घरों में बहुत से नौकर-नौकरानियाँ, गायें, भैंसें, बैल, पाड़े, भेड़ें, बकरियाँ आदि थीं। वे लोगों द्वारा अपरिभूत—अतिरस्कृत थे—इतने रौबीले थे कि उनका कोई तिरस्कार या अपमान करने का साहस नहीं कर पाते थे। वे शूर थे—अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह करने में, दान देने में शौर्यशाली थे, युद्ध में वीर थे, विक्रांत—भूमण्डल को आक्रान्त करने में समर्थ थे। उनके पास सेना और सवारियों की प्रचुरता एवं विपुलता थी। अनेक ऐसे युद्धों में, जिनमें मुकावले की टक्करें थीं, उन्होंने अपना पराक्रम दिखाया था।

उन आपात संज्ञक किरातों के देश में अकस्मात् सैकड़ों उत्पात—अनिष्टसूचक निमित्त उत्पन्न हुए। असमय में वादल गरजने लगे, असमय में विजली चमकने लगी, फूलों के खिलने का समय न आने पर भी पेड़ों पर फूल आते दिखाई देने लगे। आकाश में भूत-प्रेत पुनः-पुनः नाचने लगे।

आपात किरातों ने अपने देश में इन सैकड़ों उत्पातों को आविर्भूत होते देखा। वैसा देखकर वे आपस में कहने लगे—देवानुप्रियो ! हमारे देश में असमय में वादलों का गरजना, असमय में विजली का चमकना, असमय में वृक्षों पर फूल आना, आकाश में वार-वार भूत-प्रेतों का नाचना आदि सैकड़ों उत्पात प्रकट हुए हैं। देवानुप्रियो ! न मालूम हमारे देश में कैसा उपद्रव होगा। वे

उन्मनस्क—उदास हो गये। राज्य-भ्रंश, धनापहार आदि की चिन्ता से उत्पन्न शोकरूपी सागर में डूब गये—अत्यन्त विषादयुक्त हो गये। अपनी हथेली पर मुंह रखे वे आर्तध्यान में ग्रस्त हो भूमि की ओर दृष्टि डाले सोच-विचार में पड़ गये।

तब राजा भरत (जो हजारों राजाओं से युक्त था, समुद्र के गर्जन की ज्यों उच्च स्वर से सिंहनाद करता हुआ) चक्ररत्न द्वारा निर्देशित किये जाते मार्ग के सहारे तमिस्रा गुफा के उत्तरी द्वार से इस प्रकार निकला, जैसे बादलों के प्रचुर अन्धकार को चीरकर चन्द्रमा निकलता है।

आपात किरातों ने राजा भरत की सेना के अग्रभाग को जब आगे बढ़ते हुए देखा तो वे तत्काल अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, विकराल तथा कुपित होते हुए, मिसमिसाहट करते हुए—तेज सांस छोड़ते हुए आपस में कहने लगे—देवानुप्रियो! अप्रार्थित—जिसे कोई नहीं चाहता, उस मृत्यु को चाहने वाला, दुःखद अन्त एवं अशुभ लक्षण वाला, पुण्य चतुर्दशी जिस दिन हीन—असम्पूर्ण थी—घटिकाओं में अमावस्या आ गई थी, उस अशुभ दिन में जन्मा हुआ, अभागा, लज्जा, शोभा से परिवर्जित वह कौन है, जो हमारे देश पर बलपूर्वक जल्दी-जल्दी चढ़ा आ रहा है। देवानुप्रियो! हम उसकी सेना को तितर-बितर कर दें, जिससे वह हमारे देश पर बलपूर्वक आक्रमण न कर सके। इस प्रकार उन्होंने आपस में विचार कर अपने कर्त्तव्य का—आक्रान्ता का मुकाबला करने का निश्चय किया। वैसा निश्चय कर उन्होंने लोहे के कवच धारण किये, वे युद्धार्थ तत्पर हुए, अपने धनुषों पर प्रत्यंचा चढ़ा कर उन्हें हाथ में लिया, गले पर ग्रैवेयक—ग्रीवा की रक्षा करने वाले संग्रामोचित उपकरण विशेष बाँधे—धारण किये, विशिष्ट वीरता सूचक चिह्न के रूप में उज्ज्वल वस्त्र-विशेष मस्तक पर बाँधे। विविध प्रकार के आयुध—क्षेप्य—फेंके जाने वाले बाण आदि अस्त्र तथा प्रहरण—अक्षेप्य—नहीं फेंके जाने वाले, हाथ द्वारा चलाये जाने वाले तलवार आदि शस्त्र धारण किये। वे, जहाँ राजा भरत की सेना का अग्रभाग था—सेना की अगली टुकड़ी थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर वे उससे भिड़ गये।

उन आपात किरातों ने राजा भरत की सेना के अग्रभाग के कतिपय विशिष्ट योद्धाओं को मार डाला, मथ डाला, घायल कर डाला, गिरा डाला। उनकी गरुड आदि के चिह्नों से युक्त ध्वजाएँ, पताकाएँ नष्ट कर डालीं। राजा भरत की सेना के अग्रभाग के सैनिक बड़ी कठिनाई से अपने प्राण बचाकर इधर-उधर भाग छूटे।

आपात किरातों का पलायन

७३. तए णं से सेणाबलस्स णेआ वेढो (सण्णद्धबद्धवम्मियकवअं उप्पीलिअसरासणपट्टिअं पिणद्धगेविज्जं बद्ध-आविद्धविमलवरचिंधपट्टं गहिआउहप्पहरणं) भरहस्स रण्णो अग्गाणीअं आवाड-चिलाएहिं हय-महिय-पवर-वीर-(घाइअविवडिअचिंधद्धयपडागं किच्छप्पाणोवगयं) दिसोदिसं पडिसेहिअं पासइ २ त्ता आसुरुत्ते रुट्ठे चंडिक्किए कुविए मिसिमिसेमाणे कमलामेलं आसरयणं दुरूहइ २ त्ता तए णं तं असीइमंगुलमूसिअं णवणउइमंगुलपरिणाहं अट्ठसयमंगुलमायतं बत्तीसमंगुल-मूसिअसिरं चउरंगुलकन्नागं वीसइअंगुलबाहागं चउरंगुलजाणूकं सोलसअंगुलजंघागं चउरंगुलमूसिअखुरं मुत्तोलीसंवत्तवलिअमज्झं ईसिं अंगुलपणयपट्ठं संणयपट्ठं संगयपट्ठं सुजायपट्ठं पसत्थपट्ठं विसिट्ठपट्ठं एणीजाणुण्णयवित्थयथद्धपट्ठं वित्तलयकसणिवायअंकेल्लणपहारपरिवज्जिअंगं तवणिज्जथासगाहिलाणं

वरकणगसुफुल्लथासगविचित्तरयणरज्जुपासं कंचणमणिकणगपयरगणाणाविहघंटिआजालमुत्तिआजालएहिं परिमंडियेणं पट्टेण सोभमाणेण सोभमाणं कक्केयणइंदनीलमरगयमसारगल्लमुहमंडणरइअं आविद्धमाणिक्कसुत्तगविभूसियं कणगामयपउमसुकयतिलकं देवमइविकप्पिअं सुरवरिंदवाहणजोग्गावयं सुरूवं दूइज्जमाणपंचचारुचामरामेलगं धरेंतं अणब्भवाहं अभेलणयणं कोकासिअवहलपत्तलच्छं सयावरणनवकणगतविअतवणिज्जतालुजीहासयं सिरिआभिसेअघोणं पोक्खरपत्तमिव सलिलबिंदुजुअं अचंचलं चंचलसरीरं चोक्खचरगपरिव्वायगोविव हिलीयमाणं २ खुरचलणचच्चपुडेहिं धरणिअलं अभिहणमाणं २ दो वि अ चलणे जमगसमगं मुहाओ विणिग्गमंतं व सिग्घयाए मुलाणतंतुउदगमवि णिस्साए पक्कमंतं जाइकुलरूवपच्चयपसत्थ-बारसावत्तगविसुद्धलक्खणं सुकुलप्पसूअं मेहाविभद्दयविणीअं अणुअतणुअसुकुमाललोमनिद्धच्छविं सुजायअमरमणपवणगरुलजइणचवलसिग्घगामिं इसिमिव खंतिखमए सुसीसमिव पच्चक्खया विणीयं उदगहुतवहपासाणपंसुकद्दम ससक्करसवालुइल्लतडकडगविसमपब्भारगिरिदरीसु लंघणपिल्लणणित्थारणासमत्थं अचंडपाडियं दंडपातिं अणंसुपातिं अकालतालुं च कालहेसिं जिअनिद्दं गवेसगं जिअपरिसहं जच्चजातीअं मल्लिहाणिं सुगपत्तसुवण्णकोमलं मणाभिरामं कमलामेलं णामेणं आसरयणं सेणावई कमेण समभिरूढे कुवलयदलसामलं च रयणिकरमंडलनिभं सत्तुजणविणासणं कणगरयणदंडं णवमालिअपुप्फसुरहिगंधिं णाणामणिलयभत्तिचित्तं च पहोतमिसिमिसिंततिक्खधारं दिव्वं खग्गरयणं लोके अणोवमाणं तं च पुणो वंसरुक्खसिंगट्ठिदंतकालायसविपुललोहदंडकवरवइरभेदकं जाव-सव्वत्थ अप्पडिहयं किं पुण देहेसु जंगमाणं—

पण्णासंगुलदीहो सोलस से अंगुलाइं विच्छिण्णो।
अद्धंगुलसोणीको जेट्ठपमाणो असी भणिओ ॥१॥

असिरयणं णरवइस्स हत्थाओ तं गहिऊण जेणेव आवाडचिलाया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आवाडचिलाएहिं सद्धिं संपलग्गो आवि होत्था। तए णं से सुसेणे सेणावई ते आवाडचिलाए हयमहिअपवरवीरघाइअ जाव[1] दिसो दिसिं पडिसेहेइ।

[७३] सेनापति सुषेण ने राजा भरत के (लोहे के कवच धारण किये हुए, प्रत्यंचा चढ़ा धनुष हाथ में लिये हुए, गले पर ग्रैवेयक धारण किये हुए, वीरतासूचक चिह्नरूप वस्त्र-विशेष मस्तक पर बाँधे हुए, आयुध-प्रहरण लिये हुए) सैन्य के अग्रभाग के अनेक योद्धाओं को आपात किरातों द्वारा हत, मथित (घातित, विपातित) देखा। (उनकी ध्वजाएँ, पताकाएँ नष्ट-विनष्ट देखीं।) सैनिकों को बड़ी कठिनाई से अपने प्राण बचाकर एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर भागते देखा। यह देखकर सेनापति सुषेण तत्काल अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, विकराल एवं कुपित हुआ। वह मिसमिसाहट करता हुआ—तेज सांस छोड़ता हुआ कमलामेल नामक अश्वरत्न पर—अति उत्तम घोड़े पर आरूढ हुआ। वह घोड़ा अस्सी अंगुल ऊँचा था, निन्यानवें अंगुल मध्य परिधियुक्त था, एक सौ आठ अंगुल लम्बा था। उसका मस्तक बत्तीस अंगुल-प्रमाण था। उसके कान चार अंगुल प्रमाण थे। उसकी बाहा—मस्तक के नीचे का और घुटनों के ऊपर का भाग—प्राक्चरण-भाग बीस अंगुल-प्रमाण था। उसके घुटने चार

१. देखें सूत्र यही

अंगुल-प्रमाण थे। उसकी जंघा—घुटनों से लेकर खुरों तक का भाग—पिण्डली सोलह अंगुलप्रमाण थी। उसके खुर चार अंगुल ऊँचे थे। उसकी देह का मध्य भाग मुक्तोली—ऊपर नीचे से सँकड़ी, बीच से कुछ विशाल कोष्ठिका—कोठी के सदृश गोल तथा वलित था। उसकी पीठ की यह विशेपता थी, जब सवार उस पर बैठता, तब वह कुछ कम एक अंगुल झुक जाती थी। उसकी पीठ क्रमशः देहानुरूप अभिनत थी, देह-प्रमाण के अनुरूप थी—संगत थी, सुजात—जन्मजात दोषरहित थी, प्रशस्त थी, शालिहोत्रशास्त्र निरूपित लक्षणों के अनुरूप थी, विशिष्ट थी। वह हरिणी के जानु—घुटनों की ज्यों उन्नत थी, दोनों पार्श्व-भागों में विस्तृत तथा चरम भाग में स्तब्ध—सुदृढ़ थी। उसका शरीर वेत्र—बेंत, लता—बाँस की पतली छड़ी, कशा—चमड़े के चाबुक आदि के प्रहारों से परिवर्जित था—घुड़सवार के मनोनुकूल चलते रहने के कारण उसे बेंत, छड़ी, चाबुक आदि से तर्जित करना, ताडित करना सर्वथा अनपेक्षित था। उसकी लगाम स्वर्ण में जड़े दर्पण जैसा आकार लिये अश्वोचित स्वर्णाभरणों से युक्त थी। काठी बाँधने हेतु प्रयोजनीय रस्सी, जो पेट से लेकर पीठ तक दोनों पार्श्वों में बाँधी जाती है, उत्तम स्वर्णघटित सुन्दर पुष्पों तथा दर्पणों से समायुक्त थी, विविध-रत्नमय थी। उसकी पीठ, स्वर्णयुक्त मणि-रचित तथा केवल स्वर्ण-निर्मित पत्रकसंज्ञक आभूषण जिनके बीच-बीच में जड़े थे, ऐसी नाना प्रकार की घंटियों और मोतियों की लड़ियों से परिमंडित थी—सुशोभित थी, जिससे वह अश्व बड़ा सुन्दर प्रतीत होता था। मुखालंकरण हेतु कर्केतन मणि, इन्द्रनील मणि, मरकत मणि आदि रत्नों द्वारा रचित एवं माणिक के साथ आविद्ध—पिरोये गये सूत्रक से—घोड़ों के मुख पर लगाये जाने वाले आभूषण-विशेष से वह विभूषित था। स्वर्णमय कमल के तिलक से उसका मुख सुसज्ज था। वह अश्व देवमति से—दैवी कौशल से विकल्पित—विरचित था। वह देवराज इन्द्र की सवारी के उच्चैःश्रवा नामक अश्व के समान गतिशील तथा सुन्दर रूप युक्त था। अपने मस्तक, गले, ललाट, मौलि एवं दोनों कानों के मूल में विनिवेशित पाँच चँवरों को—कलंगियों को समवेत रूप में वह धारण किये था। वह अनभ्रचारी था—इन्द्र का घोड़ा उच्चैःश्रवा जहाँ अभ्रचारी—आकाशगामी होता है, वहाँ वह भूतलगामी था। उसकी अन्यान्य विशेषताएँ उच्चैःश्रवा जैसी ही थीं। उसकी आँखें दोष आदि के कारण संकुचित नहीं थीं, विकसित थीं, दृढ़ थीं, रोमयुक्त थीं—पलकयुक्त थीं। डांस, मच्छर आदि से रक्षा हेतु उस पर लगाये गये प्रच्छादनपट में—झूल में स्वर्ण के तार गुंथे थे। उसका तालु तथा जिह्वा तपाये हुए स्वर्ण की ज्यों लाल थे। उसकी नासिका पर लक्ष्मी के अभिषेक का चिह्न था। जलगत कमल-पत्र जैसे वायु द्वारा आहत पानी की बूँदों से युक्त होकर सुन्दर प्रतीत होता है, उसी प्रकार वह अश्व अपने शरीर के पानी—आभा या लावण्य से बड़ा सुन्दर प्रतीत होता था। वह अचंचल था—अपने स्वामी का कार्य करने में सुस्थिर था। उसके शरीर में चंचलता—स्फूर्ति थी। जैसे स्नान आदि द्वारा शुद्ध हुआ भिक्षाचर संन्यासी अशुचि पदार्थ के संसर्ग की आशंका से अपने आपको कुत्सित स्थानों से दूर रखता है, उसी तरह वह अश्व अपवित्र स्थानों को—ऊबड़-खावड़ स्थानों को छोड़ता हुआ उत्तम एवं सुगम मार्ग द्वारा चलने की वृत्ति वाला था। वह अपने खुरों की टापों से भूमितल को अभिहत करता हुआ चलता था। अपने आरोहक द्वारा नचाये जाने पर वह अपने आगे के दोनों पैर एक साथ इस प्रकार ऊपर उठाता था, जिससे ऐसा प्रतीत होता, मानो उसके दोनों पैर एक ही साथ उसके मुख से निकल रहे हों। उसकी गति इतनी लाघवयुक्त—स्फूर्तियुक्त थी कि कमलनालयुक्त जल में भी वह चलने में सक्षम था—जैसे जल में चलने वाले अन्य प्राणियों के पैर कमलनालयुक्त जल में उलझ जाते हैं, उसके वैसा नहीं था—वह जल में भी स्थल की ज्यों शीघ्रता

से चलने में समर्थ था। वह उन प्रशस्त बारह आवर्तों से युक्त था, जिनसे उसके उत्तम जाति—मातृ-पक्ष, कुल—पितृ-पक्ष तथा रूप—आकार-संस्थान का प्रत्यय—विश्वास होता था, परिचय मिलता था। वह अश्वशास्त्रोक्त उत्तम कुल—क्षत्रियाश्व जातीय पितृ-प्रसूत था। वह मेधावी—अपने मालिक के पैरों के संकेत, नाम-विशेष आदि द्वारा आह्वान आदि का आशय समझने की विशिष्ट बुद्धियुक्त था। वह भद्र एवं विनीत था, उसके रोम अति सूक्ष्म, सुकोमल एवं स्निग्ध—चिकने थे, जिनसे वह छवि-मान् था। वह अपनी गति से देवता, मन, वायु तथा गरुड़ की गति को जीतने वाला था। वह बहुत चपल और द्रुतगामी था। वह क्षमा में ऋषितुल्य था—वह न किसी को लात मारता था, न किसी को मुँह से काटता था तथा न किसी को अपनी पूँछ से ही चोट लगाता था। वह सुशिष्य की ज्यों प्रत्यक्षतः विनीत था। वह उदक—पानी, हुतवह—अग्नि, पाषाण—पत्थर, पांसु—मिट्टी, कर्दम—कीचड़, छोटे-छोटे कंकड़ों से युक्त स्थान, रेतीले स्थान, नदियों के तट, पहाड़ों की तलहटियाँ, ऊँचे-नीचे पठार, पर्वतीय गुफाएँ—इन सब को अनायास लांघने में, अपने सवार के संकेत के अनुरूप चल-कर इन्हें पार करने में समर्थ था। वह प्रबल योद्धाओं द्वारा युद्ध में पातित—गिराये गये—फेंके गये दण्ड की ज्यों शत्रु की छावनी पर अतर्कित रूप में आक्रमण करने की विशेषता से युक्त था। मार्ग में चलने से होने वाली थकावट के बावजूद उसकी आँखों से कभी आँसू नहीं गिरते थे। उसका तालु कालेपन से रहित था। वह समुचित समय पर ही हिनहिनाहट करता था। वह जितनिद्र—निद्रा को जीतने वाला था। मूत्र, पुरीष—लीद आदि का उत्सर्ग उचित स्थान खोजकर करता था। वह सर्दी, गर्मी आदि के कष्टों में भी अखिन्न रहता था। उसका मातृपक्ष निर्दोष था। उसका नाक मोगरे के फूल के सदृश शुभ्र था। उसका वर्ण तोते के पंख के समान सुन्दर था। देह कोमल थी। वह वास्तव में मनोहर था।

ऐसे अश्वरत्न पर आरूढ सेनापति सुषेण ने राजा के हाथ से असिरत्न—उत्तम तलवार ली। वह तलवार नील कमल की तरह श्यामल थी। घुमाये जाने पर चन्द्रमण्डल के सदृश दिखाई देती थी। वह शत्रुओं का विनाश करने वाली थी। उसकी मूठ स्वर्ण तथा रत्न से निर्मित थी। उसमें से नवमालिका के पुष्प जैसी सुगन्ध आती थी। उस पर विविध प्रकार की मणियों से निर्मित बेल आदि के चित्र थे। उसकी धार शाण पर चढ़ी होने के कारण बड़ी चमकीली और तीक्ष्ण भी। लोक में वह अनुपम थी। वह बाँस, वृक्ष, भैंसे आदि के सींग, हाथी आदि के दाँत, लोह, लोहमय भारी दण्ड, उत्कृष्ट वज्र—हीरक जातीय उपकरण आदि का भेदन करने में समर्थ थी। अधिक क्या कहा जाए, वह सर्वत्र अप्रतिहत—प्रतिघात रहित थी—बिना किसी रुकावट के दुर्भेद्य वस्तुओं के भेदन में भी समर्थ थी। फिर पशु, मनुष्य आदि जंगम प्राणियों के देह-भेदन की तो बात ही क्या! वह तलवार पचास अंगुल लम्बी थी, सोलह अंगुल चौड़ी थी। उसकी मोटाई अर्ध-अंगुल-प्रमाण थी। यह उत्तम तलवार का लक्षण है।

राजा के हाथ से उस उत्तम तलवार को लेकर सेनापति सुषेण, जहाँ आपात किरात थे, वहाँ आया। वहाँ आकर वह उनसे भिड़ गया—उन पर टूट पड़ा। उसने आपात किरातों में से अनेक प्रबल योद्धाओं को मार डाला, मथ डाला तथा घायल कर डाला। वे आपात किरात एक दिशा से दूसरी दिशा में भाग छूटे।

मेघमुख देवों द्वारा उपद्रव

७४. तए णं ते आवाडचिलाया सुसेणसेणावइणा हयमहिआ जाव[1] पडिसेहिया समाणा भीआ तत्था वहिआ उव्विग्गा संजायभया अत्थामा अबला अवीरिआ अपुरिसक्कारपरक्कमा अधारणिज्जमिति कट्टु अणेगाइं जोअणाइं अवक्कमंति २ त्ता एगयओ मिलायंति २ त्ता जेणेव सिंधू महाणई तेणेव उवागच्छंति २ त्ता वालुआसंथारए संथरेंति २ त्ता वालुआसंथारए दुरूहंति २ त्ता अट्ठमभत्ताइं पगिण्हंति २ त्ता वालुआसंथारोवगया उत्ताणगा अवसणा अट्ठमभत्तिआ जे तेसिं कुलदेवया मेहमुहा णामं णागकुमारा देवा, ते मणसि करेमाणा २ चिट्ठंति। तए णं तेसिमावाडचिलायाणं अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि मेहमुहाणं णागकुमाराणं देवाणं आसणाइं चलंति।

तए णं ते मेहमुहा णागकुमारा देवा आसणाइं चलिआइं पासंति २ त्ता ओहिं पउंजंति २ त्ता आवाडचिलाए ओहिणा आभोएंति २ त्ता अण्णमण्णं सद्दावेंति २ त्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिआ! जंबुद्दीवे दीवे उत्तरद्धभरहे वासे आवाडचिलाया सिंधूए महाणईए वालुआसंथारोवगया उत्ताणगा अवसणा अट्ठमभत्तिआ अम्हे कुलदेवए मेहमुहे णागकुमारे देवे मणसि करेमाणा २ चिट्ठंति, तं सेअं खलु देवाणुप्पिआ! अम्हं आवाडचिलायाणं अंतिए पाउब्भवित्तएत्ति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एअमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता ताए उक्किट्ठाए तुरिआए जाव[2] वीतिवयमाणा २ जेणेव जंबुद्दीवे दीवे उत्तरद्धभरहे वासे जेणेव सिंधू महाणई जेणेव आवाडचिलाया तेणेव उवागच्छंति २ त्ता अंतलिक्खपडिवण्णा सखिंखिणिआइं पंचवण्णाइं वत्थाइं पवरपरिहिआ ते आवाडचिलाए एवं वयासी—हं भो आवाडचिलाया! जण्णं तुब्भे देवाणुप्पिआ! वालुआसंथारोवगया उत्ताणगा अवसणा अट्ठमभत्तिआ अम्हे कुलदेवए मेहमुहे णागकुमारे देवे मणसि करेमाणा २ चिट्ठह, तए णं अम्हे मेहमुहा णागकुमारा देवा तुब्भं कुलदेवया तुम्हं अंतिअण्णं पाउब्भूआ, तं वदह णं देवाणुप्पिआ! किं करेमो के व भे मणसाइए?

तए णं ते आवाडचिलाया मेहमुहाणं णागकुमाराणं देवाणं अंतिए एअमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिआ जाव[3] हिअया उट्ठाए उट्ठेन्ति २ त्ता जेणेव मेहमुहा णागकुमारा देवा तेणेव उवागच्छंति २ त्ता करयलपरिग्गहियं जाव[4] मत्थए अंजलिं कट्टु मेहमुहे णागकुमारे देवे जएणं विजएणं वद्धावेंति २ त्ता एवं वयासी—एस णं देवाणुप्पिए! केइ अप्पत्थिअपत्थिए दुरंतपंतलक्खणे (हीणपुण्णचाउद्दसे) हिरि-सिरि परिवज्जिए जे णं अम्हं विसयस्स उवरिं विरिएणं हव्वमागच्छइ, तं तहा णं घत्तेह देवाणुप्पिआ! जहा णं एस अम्हं विसयस्स उवरिं विरिएणं णो हव्वमागच्छइ।

---

१. देखें सूत्र संख्या ५७
२. देखें सूत्र संख्या ३४
३. देखें सूत्र संख्या ४४
४. देखें सूत्र संख्या ४४

तए णं ते मेहमुहा णागकुमारा देवा ते आवाडचिलाए एवं वयासी—एस णं भो देवाणुप्पिश्रा ! भरहे णामं राया चाउरंतचक्कवट्टी महिड्ढीए महज्जुईए जाव[1] महासोक्खे, णो खलु एस सक्को केणइ देवेण वा दाणवेण वा किण्णरेण वा किं पुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा सत्थप्पश्रोगेण वा श्रग्गि पश्रोगेण वा मंतप्पश्रोगेण वा उद्दवित्तए पडिसेहित्तए वा, तहावि श्र णं तुब्भं पियट्ठयाए भरहस्स रण्णो उवसग्गं करेमोत्ति कट्टु तेसिं श्रावाडचिलायाणं श्रंतिश्राश्रो श्रवक्कमन्ति २ त्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति २ त्ता महाणीअं विउव्वंति २ त्ता जेणेव भरहस्स रण्णो विजय-क्खंधावारणिवेसे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता उप्पि विजयक्खंधावारणिवेसस्स खिप्पामेव पततुतणायंति खिप्पामेव विज्जुयायन्ति २ त्ता खिप्पामेव जुगमुसलमुट्ठिप्पमाणमेत्ताहिं धाराहिं श्रोघमेघं सत्तरत्तं वासं वासिउं पवत्ता यावि होत्था।

[७४] सेनापति सुषेण द्वारा मारे जाने पर, मथित किये जाने पर, घायल किये जाने पर मैदान छोड़कर भागे हुए श्रापात किरात बड़े भीत—भयाकुल, त्रस्त—त्रासयुक्त, व्यथित—व्यथायुक्त-पीड़ायुक्त, उद्विग्न—उद्वेगयुक्त होकर घबरा गये। युद्ध में टिक पाने की शक्ति उनमें नहीं रही। वे श्रपने को निर्बल, निर्वीर्य तथा पौरुष-पराक्रम रहित श्रनुभव करने लगे। शत्रु-सेना का सामना करना शक्य नहीं है, यह सोचकर वे वहाँ से अनेक योजन दूर भाग गये।

यों दूर जाकर वे एक स्थान पर श्रापस में मिले, जहाँ सिन्धु महानदी थी, वहाँ श्राये। वहाँ श्राकर वालू के संस्तारक—विछौने तैयार किये। वालू के संस्तारकों पर वे स्थित हुए। वैसा कर उन्होंने तेले की तपस्या स्वीकार की। वे श्रपने मुख ऊँचे किये, निर्वस्त्र हो घोर श्रातापना सहते हुए मेघमुख नामक नागकुमारों का, जो उनके कुल-देवता थे, मन में ध्यान करते हुए तेले की तपस्या में श्रभिरत हो गए। जब तेले की तपस्या परिपूर्ण-प्राय थी, तब मेघमुख नागकुमार देवों के श्रासन चलित हुए।

मेघमुख नागकुमार देवों ने श्रपने श्रासन चलित देखे तो उन्होंने श्रपने श्रवधिज्ञान का प्रयोग किया। श्रवधिज्ञान द्वारा उन्होंने आपात किरातों को देखा। उन्हें देखकर वे परस्पर यों कहने लगे—देवानुप्रियो ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत उत्तरार्ध भरतक्षेत्र में सिन्धु महानदी पर वालू के संस्तारकों पर श्रवस्थित हो आपात किरात श्रपने मुख ऊँचे किये हुए तथा निर्वस्त्र हो आतापना सहते हुए तेले की तपस्या में संलग्न हैं। वे हमारा—मेघमुख नागकुमार देवों का, जो उनके कुल-देवता हैं, ध्यान करते हुए विद्यमान हैं। देवानुप्रियो ! यह उचित है कि हम उन श्रापात किरातों के समक्ष प्रकट हों।

इस प्रकार परस्पर विचार कर उन्होंने वैसा करने का निश्चय किया। वे उत्कृष्ट, तीव्र गति से चलते हुए, जहाँ जम्बूद्वीप था, उत्तरार्ध भरतक्षेत्र था एवं सिन्धु महानदी थी, श्रापात किरात थे, वहाँ श्राये। उन्होंने छोटी-छोटी घण्टियों सहित पँचरंगे उत्तम वस्त्र पहन रखे थे। श्राकाश में श्रधर श्रवस्थित होते हुए वे श्रापात किरातों से बोले—आपात किरातो ! देवानुप्रियो ! तुम वालू के संस्तारकों पर श्रवस्थित हो, निर्वस्त्र हो श्रातापना सहते हुए, तेले ही तपस्या में श्रभिरत होते हुए हमारा—मेघमुख नागकुमार देवों का, जो तुम्हारे कुल देवता हैं, ध्यान कर रहे हो। यह देखकर हम

१. देखें सूत्र संख्या १४

तुम्हारे कुलदेव मेघमुख नागकुमार तुम्हारे समक्ष प्रकट हुए हैं। देवानुप्रियो ! तुम क्या चाहते हो ? हम तुम्हारे लिए क्या करें ?

मेघमुख नागकुमार देवों का यह कथन सुनकर आपात किरात अपने चित्त में हर्षित, परितुष्ट तथा आनन्दित हुए, उठे। उठकर जहाँ मेघमुख नागकुमार देव थे, वहाँ आये। वहाँ आकर हाथ जोड़े, अंजलि—बाँधे उन्हें मस्तक से लगाया। ऐसा कर मेघमुख नागकुमार देवों को जय-विजय शब्दों द्वारा वर्धापित किया—उनका जयनाद, विजयनाद किया और बोले—देवानुप्रियो ! अप्रार्थित—जिसे कोई नहीं चाहता, उस मृत्यु का प्रार्थी—चाहने वाला, दुःखद अन्त एवं अशुभ लक्षण वाला (पुण्य चतुर्दशी-हीन—असंपूर्ण थी, घटिकाओं में अमावस्या आ गई, उस अशुभ दिन में जन्मा हुआ) अभागा, लज्जा, शोभा से परिवर्जित कोई एक पुरुष है, जो बलपूर्वक जल्दी-जल्दी हमारे देश पर चढ़ा आ रहा है। देवानुप्रियो ! आप उसे वहाँ से इस प्रकार फेंक दीजिए—हटा दीजिए, जिससे वह हमारे देश पर बलपूर्वक आक्रमण नहीं कर सके, आगे नहीं बढ़ सके।

तब मेघमुख नागकुमार देवों ने आपात किरातों से कहा—देवानुप्रियो ! तुम्हारे देश पर आक्रमण करने वाला महाऋद्धिशाली, परम द्युतिमान्, परम सौख्ययुक्त, चातुरन्त चक्रवर्ती भरत नामक राजा है। उसे न कोई देव—वैमानिक देवता, न कोई किंपुरुष, न कोई महोरग तथा न कोई गन्धर्व ही रोक सकता है, न बाधा उत्पन्न कर सकता है। न उसे शस्त्र-प्रयोग द्वारा, न अग्नि-प्रयोग द्वारा तथा न मन्त्र-प्रयोग द्वारा ही उपद्रुत किया जा सकता है, रोका जा सकता है। फिर भी हम तुम्हारा अभीष्ट साधने हेतु राजा भरत के लिए उपसर्ग—विघ्न उत्पन्न करेंगे। ऐसा कहकर वे आपात किरातों के पास से चले गये। उन्होंने वैक्रिय समुद्घात द्वारा आत्मप्रदेशों को देह से बाहर निकाला। आत्मप्रदेश बाहर निकाल कर उन द्वारा गृहीत पुद्गलों के सहारे बादलों की विकुर्वणा की। वैसा कर जहाँ राजा भरत की छावनी थी, वहाँ आये। बादल शीघ्र ही धीमे-धीमे गरजने लगे। बिजलियाँ चमकने लगीं। वे शीघ्र ही पानी बरसाने लगे। सात दिन-रात तक युग, मूसल एवं मुष्टिका के सदृश मोटी धाराओं से पानी बरसता रहा।

छत्ररत्न का प्रयोग

७५. तए णं से भरहे राया उप्पिं विजयक्खंधावारस्स जुगमुसलमुट्ठिप्पमाणमेत्ताहिं धाराहिं ओघमेघं सत्तरत्तं वासं वासमाणं पासइ २ त्ता चम्मरयणं परामुसइ, तए णं तं सिरिवच्छसरिसरूवं वेढो भाणिअव्वो (मुत्ततारद्धचंदचित्तं अयलमकंपं अभेज्जकवयं जंतं सलिलासु सागरेसु अ उत्तरणं दिव्वं चम्मरयणं सणसत्तरसाइं सव्वधण्णाइं जत्थ रोहंति एगदिवसेण वाविआइं, वासं णाऊण चक्कवट्टिणा परामुट्ठे दिव्वे चम्मरयणे) दुवालसजोअणाइं तिरिअं पवित्थरइ, तत्थ साहिआइं, तए णं से भरहे राया सखंधावारबले चम्मरयणं दुरूहइ २ त्ता दिव्वं छत्तरयणं परामुसइ, तए णं णवणउइ-सहस्सकंचणसलागपरिमंडिअं महरिहं अउज्झं णिव्वणसुपसत्थविसिट्ठलट्ठकंचणसुपुट्ठदंडं मिउरायय-वट्टलट्ठअरविंदकण्णिअसमाणरूवं वत्थिपएसे अ पंजरविराइअं विविहभत्तिचित्तं मणिमुत्तपवालतत्त-तवणिज्जपंचवण्णिअधोअरयणरूवरइयं रयणमरीईसमोप्पणाकप्पकारमणुरंजिएल्लियं रायलच्छिचिंधं अज्जुणसुवण्णपंडुरपच्चत्थअपट्ठदेसभागं तहेव तवणिज्जपट्टधम्मंतपरिगयं अहिअसस्सिरीअं सारयरयणि-

अरविमलपडिपुण्णचंदमंडलसमाणरूवं णरिंदवामप्पमाणपगइवित्थडं कुमुदसंडधवलं रण्णो संचारिमं विमाणं सूरातववायबुट्ठिदोसाण य खयकरं तवगुर्णेहिं लद्धं—

अहयं बहुगुणदाणं उऊण विवरीअसुहकयच्छायं।
छत्तरयणं पहाणं सुदुल्लहं अप्पपुण्णाणं॥ १॥

पमाणराईण तवगुणाण फलेगदेसभागं विमाणवासेवि दुल्लहतरं वग्घारिअमल्लदामकलावं सारयधवलब्भरययणिगरप्पगासं दिव्वं छत्तरयणं महिवइस्स धरणिअलपुण्णइंदो। तए णं से दिव्वे छत्तरयणे भरहेणं रण्णा परामुट्ठे समाणे खिप्पामेव दुवालस जोअणाइं, पवित्थरइ साहिआइं तिरिअं।

[७५] राजा भरत ने अपनी सेना पर युग, मूसल तथा मुष्टिका के प्रमाण मोटी धाराओं के रूप में सात दिन-रात तक बरसती हुई वर्षा को देखा। देखकर उसने चर्मरत्न का स्पर्श किया। वह चर्मरत्न-श्रीवत्स-स्वस्तिकविशेष जैसा रूप लिये था। (उस पर मोतियों के, तारों के तथा अर्धचन्द्र के चित्र बने थे। वह अचल एवं अकम्प था। वह कवच की ज्यों अभेद्य था। नदियों तथा समुद्रों को पार करने का यन्त्र—अनन्य साधन था, दैवी विशेषता लिये था। चर्मनिर्मित वस्तुओं में वह सर्वोत्कृष्ट था। उस पर बोये हुए सत्तरह प्रकार के धान्य एक दिन में उत्पन्न हो सकें, ऐसी विशेषता से युक्त था। ऐसी मान्यता है कि गृहपतिरत्न इस चर्मरत्न पर सूर्योदय के समय धान्य बोता है, जो उगकर दिन भर में पक जाते हैं, गृहपति सायंकाल उन्हें काट लेता है।) चक्रवर्ती राजा भरत द्वारा उपर्युक्त रूप में होती हुई वर्षा को देखकर छुआ गया दिव्य चर्मरत्न कुछ अधिक बारह योजन तिर्यक्—तिरछा विस्तीर्ण हो गया—फैल गया।

तत्पश्चात् राजा भरत अपनी सेना सहित उस चर्मरत्न पर आरूढ हो गया। आरूढ होकर उसने छत्ररत्न को छुआ, उठाया। वह छत्ररत्न निन्यानवे हजार स्वर्ण-निर्मित शलाकाओं से—ताड़ियों से परिमण्डित था। बहुमूल्य था—चक्रवर्ती के योग्य था। अयोध्य था—उसे देख लेने पर प्रतिपक्षी योद्धाओं के शस्त्र उठते तक नहीं थे। वह निर्व्रण था—छिद्र, ग्रन्थि आदि के दोष से रहित था। सुप्रशस्त, विशिष्ट, मनोहर एवं स्वर्णमय सुदृढ दण्ड से युक्त था। उसका आकार मृदु—मुलायम चाँदी से बनी गोल कमलकर्णिका के सदृश था। वह बस्ति-प्रदेश में—छत्र के मध्य भागवर्ती दण्ड-प्रक्षेप-स्थान में—जहाँ दण्ड आविद्ध एवं योजित रहता है, अनेक शलाकाओं से युक्त था। अतएव वह पिंजरे जैसा प्रतीत होता था। उस पर विविध प्रकार की चित्रकारी की हुई थी। उस पर मणि, मोती, मूंगे, तपाये हुए स्वर्ण तथा रत्नों द्वारा पूर्ण कलश आदि मांगलिक-वस्तुओं के पँचरंगे उज्ज्वल आकार बने थे। रत्नों की किरणों के सदृश रंगरचना में निपुण पुरुषों द्वारा वह सुन्दर रूप में रंगा हुआ था। उस पर राजलक्ष्मी का चिह्न अंकित था। अर्जुन नामक पाण्डुर वर्ण के स्वर्ण द्वारा उसका पृष्ठभाग आच्छादित था—उस पर सोने का कलापूर्ण काम था। उसके चार कोण परितापित स्वर्णमय पट्ट से परिवेष्टित थे। वह अत्यधिक श्री—शोभा—सुन्दरता से युक्त था। उसका रूप शरद् ऋतु के निर्मल, परिपूर्ण चन्द्रमण्डल के सदृश था। उसका स्वाभाविक विस्तार राजा भरत द्वारा तिर्यक् प्रसारित—तिरछी फैलाई गई अपनी दोनों भुजाओं के विस्तार जितना था। वह कुमुद—चन्द्रविकासी कमलों के वन सदृश धवल था। वह राजा भरत का मानो संचरणशील—जंगम विमान था। वह सूर्य

के आतप, वायु—आँधी, वर्षा आदि दोषों—विघ्नों का विनाशक था। पूर्व जन्म में आचरित तप, पुण्य-कर्म के फलस्वरूप वह प्राप्त था।

वह छत्ररत्न अहत—अपने आपको योद्धा मानने वाले किसी भी पुरुष द्वारा संग्राम में खण्डित न हो सकने वाला था, ऐश्वर्य आदि अनेक गुणों का प्रदायक था। हेमन्त आदि ऋतुओं में तद्विपरीत सुखप्रद छाया देता था। अर्थात् शीत ऋतु में उष्ण छाया देता था तथा ग्रीष्म ऋतु में शीतल छाया देता था। वह छत्रों में उत्कृष्ट एवं प्रधान था। अल्पपुण्य—पुण्यहीन या थोड़े पुण्यवाले पुरुषों के लिए वह दुर्लभ था। वह छत्ररत्न छह खण्डों के अधिपति चक्रवर्ती राजाओं के पूर्वाचरित तप के फल का एक भाग था। विमानवास में भी—देवयोनि में भी वह अत्यन्त दुर्लभ था। उस पर फूलों की मालाएँ लटकती थीं—वह चारों ओर पुष्पमालाओं से आवेष्टित था। वह शरद् ऋतु के धवल मेघ तथा चन्द्रमा के प्रकाश के समान भास्वर—उज्ज्वल था। वह दिव्य था—एक सहस्र देवों से अधिष्ठित था। राजा भरत का वह छत्ररत्न ऐसा प्रतीत होता था, मानो भूतल पर परिपूर्ण चन्द्र-मण्डल हो।

राजा भरत द्वारा छूए जाने पर वह छत्ररत्न कुछ अधिक बाहर योजन तिरछा विस्तीर्ण हो गया—फैल गया।

७६. तए णं से भरहे राया छत्तरयणं खंधावारस्सुवरिं ठवेइ २ त्ता मणिरयणं परामुसइ वेढो (तोतं चउरंगुलप्पमाणमित्तं च अणग्घं तसिअं छलंसं अणोवमजुइं दिव्वं मणिरयणपतिसमं वेरुलिअं सव्वभूअकंतं जेण य मुद्धागएणं दुक्खं ण किंचि जाव हवइ आरोग्गे अ सव्वकालं तेरिच्छिअदेवमाणु-सकया य उवसग्गा सव्वे ण करेंति तस्स दुक्खं, संगामेऽवि असत्थवज्झो होइ णरो मणिवरं धरेंतो ठिअजोव्वणकेसअवडिढअणहो हवइ अ सव्वभयविप्पमुक्को) छत्तरयणस्स वत्थिभागंसि उवेइ, तस्स य अणतिवरं चारुरूवं सिलणिहिअत्थमंतमेत्तसालि-जव-गोहूम-मुग्ग-मास-तिल-कुलत्थ-सट्ठिग-निप्फाव-चणग-कोद्दव-कोत्थुंभरि-कंगुवरग-रालग-अणेग-धण्णावरण-हारिअग-अल्लग-मूलग-हलिद्द-लाउअ-तउस-तुंब-कालिंग-कविट्ठ-अंब-अंबिलिअ-सव्वणिप्फायए सुकुसले गाहावइरयणेत्ति सव्वजणवीसुअगुणे। तए णं से गाहावइरयणे भरहस्स रण्णो तद्दिवसप्पइण्णणिप्फाइअपूइआणं सव्वधण्णाणं अणेगाइं कुंभसहस्साइं उवट्ठवेति, तए णं से भरहे राया चम्मरयणसमारूढे छत्तरयणसमोच्छन्ने मणिरयणकउज्जोए समुग्गयभूएणं सुहंसुहेणं सत्तरत्तं परिवसइ—

णवि से खुहा ण विलिअं णेव भयं णेव विज्जए दुक्खं।
भरहाहिवस्स रण्णो खंधावारस्सवि तहेव ॥१॥

[७६] राजा भरत ने छत्ररत्न को अपनी सेना पर तान दिया। यों छत्ररत्न को तानकर मणिरत्न का स्पर्श किया। (वह मणिरत्न विशिष्ट आकारयुक्त, सुन्दर था, चार अंगुल प्रमाण था, अमूल्य था—कोई उसका मूल्य आंक नहीं सकता था। वह तिखूंटा था, ऊपर-नीचे षट्कोण युक्त था, अनुपम द्युतियुक्त था, दिव्य था, मणिरत्नों में सर्वोत्कृष्ट था, वैदूर्य मणि की जाति का था, सब लोगों का मन हरने वाला था—सबको प्रिय था, जिसे मस्तक पर धारण करने से किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं रह जाता था—जो सर्वकष्ट-निवारक था, सर्वकाल आरोग्यप्रद था। उसके प्रभाव से तिर्यञ्च—

पशु-पक्षी, देव तथा मनुष्यकृत उपसर्ग—विघ्न कभी भी दुःख उत्पन्न नहीं कर सकते थे। उस उत्तम मणि को धारण करनेवाले मनुष्य का संग्राम में किसी भी शस्त्र द्वारा वध किया जाना शक्य नहीं था। उसके प्रभाव से यौवन सदा स्थिर रहता था, बाल एवं नाखून नहीं बढ़ते थे। उसे धारण करने से मनुष्य सब प्रकार के भयों से विमुक्त हो जाता था।) उस मणिरत्न को राजा भरत ने छत्ररत्न के वस्तिभाग में—शलाकाओं के बीच में स्थापित किया। राजा भरत के साथ गाथापतिरत्न—सैन्य-परिवार हेतु खाद्य, पेय आदि की समीचीन व्यवस्था करनेवाला उत्तम गृहपति था। वह अपनी अनुपम विशेषता—योग्यता लिये था। शिला की ज्यों अति स्थिर चर्मरत्न पर केवल वपन मात्र द्वारा शालि—कलम संज्ञक उच्चजातीय चावल, जौ, गेहूँ, मूंग, उर्द, तिल, कुलथी, षष्टिक—तण्डुलविशेष, निष्पाव, चने, कोद्रव—कोदों, कुस्तुंभरी—धान्यविशेष, कंगु, वरक, रालक—मसूर आदि दालें, धनिया, वरण आदि हरे पत्तों के शाक, अदरक, मूली, हल्दी, लौकी, ककड़ी, तुम्बक, बिजौरा, कटहल, आम, इमली आदि समग्र फल, सब्जी आदि पदार्थों को उत्पन्न करने में वह कुशल था—समर्थ था। सभी लोग उसके इन गुणों से सुपरिचित थे।

उस श्रेष्ठ गाथापति ने उसी दिन उप्त—बोये हुए, निष्पादित—पके हुए, पूत—तुष, भूसा आदि हटाकर साफ किये हुए सब प्रकार के धान्यों के सहस्रों कुंभ राजा भरत को समर्पित किये। राजा भरत उस भीषण वर्षा के समय चर्मरत्न पर आरूढ रहा—स्थित रहा, छत्ररत्न द्वारा आच्छादित रहा, मणिरत्न द्वारा किये गये प्रकाश में सात दिन-रात सुखपूर्वक सुरक्षित रहा।

उस अवधि में राजा भरत को तथा उसकी सेना को न भूख ने पीडित किया, न उन्होंने दैन्य का अनुभव किया और न वे भयभीत और दुःखित ही हुए।

आपात किरातों की पराजय

७७. तए ण तस्स भरहस्स रण्णो सत्तरत्तंसि परिणममाणंसि इमेआरूवे अब्भत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—केस णं भो! अपत्थिअपत्थए दुरंतपंतलक्खणे (हीणपुण्ण-चाउद्दसे हिरिसिरि-) परिवज्जिए जे णं ममं इमाए एआणुरूवाए जाव अभिसमण्णागयाए उप्पि विजयखंधावारस्स जुगमुसलमुट्ठि-(प्पमाणमेत्ताहिं धाराहिं ओघमेघं सत्तरत्तं) वासं वासइ।

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो इमेआरूवं अब्भत्थिअं चिंतियं पत्थिअं मणोगयं संकप्पं समुप्पण्णं जाणित्ता सोलस देवसहस्सा सण्णज्झिउं पवत्ता यावि होत्था। तए णं ते देवा सण्णद्धबद्धवम्मिअकवया जाव[1] गहिआउहप्पहरणा जेणेव ते मेहमुहा णागकुमारा देवा तेणेव उवागच्छंति २ त्ता मेहमुहे णागकुमारे देवे एवं वयासी—'हं भो! मेहमुहा णागकुमारा! देवा अप्पत्थिअपत्थगा (दुरंतपंतलक्खणा हीणपुण्णचाउद्दसा हिरिसिरि-) परिवज्जिआ किण्णं तुब्भि ण याणह भरहं रायं चाउरंतचक्कवट्टिं महिड्ढिअं (महज्जुइयं जाव महासोक्खं णो खलु एस सक्को केणइ देवेण वा दाणवेण वा किण्णरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा सत्थप्पओगेण वा अग्गिप्पओगेण वा मंतप्पओगेण वा) उवद्दवित्तए वा पडिसेहित्तए वा तहावि णं तुब्भे भरहस्स रण्णो विजयखंधावारस्स उप्पि जुगमुसल-

---

१. देखें सूत्र संख्या ५७

मुट्ठिप्पमाणमित्ताहिं धाराहिं ओघमेघं सत्तरत्तं वासं वासह, तं एवमवि गते इत्तो खिप्पामेव अवक्कमह अहव णं अज्ज पासह चित्तं जीवलोगं।

तए णं ते मेहमुहा णागकुमारा देवा तेहिं देवेहिं एवं वुत्ता समाणा भीआ तत्था वहिआ उव्विग्गा संजायभया मेघानीकं पडिसाहरंति २ त्ता जेणेव आवाडचिलाया तेणेव उवागच्छंति २ त्ता आवाडचिलाए एवं वयासी—एस णं देवाणुप्पिआ ! भरहे राया महिड्ढिए (महज्जुईए जाव महासोक्खे) णो खलु एस सक्को केणइ देवेण वा (दाणवेण वा किण्णरेण वा किं पुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा सत्थप्पओगेण वा) अग्गिप्पओगेण वा (मंतप्पओगेण वा) उवद्दवित्तए वा पडिसेहित्तए वा तहावि अ णं ते अम्हेहिं देवाणुप्पिआ ! तुब्भं पियट्ठयाए भरहस्स रण्णो उवसग्गे कए, गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिआ ! ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउअमंगलपायच्छित्ता उल्लपडसाडगा ओचूलगणिअच्छा अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय पंजलिउडा पायवडिआ भरहं रायाणं सरणं उवेह, पणिवइअवच्छला खलु उत्तमपुरिसा, णत्थि भे भरहस्स रण्णो अंतिआओ भयमिति कट्टु। एवं वदित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूआ तामेव दिसिं पडिगया।

तए ते आवाडचिलाया मेहमुहेहिं णागकुमारेहिं देवेहिं एवं वुत्ता समाणा उट्ठाए उट्ठेंति २ त्ता ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउअमंगलपायच्छित्ता उल्लपड़साडगा ओचूलगणिअच्छा अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति २ त्ता करयलपरिग्गहिअं जाव[1] मत्थए अंजलिं कट्टु रायं जएणं विजएणं वद्धाविंति २ त्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं उवणेंति २ त्ता एवं वयासी—

वसुहर गुणहर जयहर, हिरिसिरिधीकित्तिधारकणरिंद।
लक्खणसहस्सधारक, रायमिदं णे चिरं धारे ॥१॥
हयवइ गयवइ णरवइ, णवणिहिवइ भरहवासपढमवई।
बत्तीसजणवयसहस्सराय, सामी चिरं जीव ॥२॥
पढमणरीसर ईसर, हिअईसर महिलिआसहस्साणं।
देवसयसाहसीसर, चोद्दसरयणीसर जसंसी ॥३॥
सागरगिरिमेरागं, उत्तरवाईणमभिजिअं तुमए।
ता अम्हे देवाणुप्पिअस्स विसए परिवसामो ॥४॥

अहो णं देवाणुप्पिआणं इड्ढी जुई जसे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे दिव्वा देवजुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए। तं दिट्ठा णं देवाणुप्पिआणं इड्ढी एवं चेव (जुई जसे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे दिव्वा देवजुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते) अभिसमण्णागए। तं खामेमु णं देवाणुप्पिआ ! खमंतु णं देवाणुप्पिआ ! खंतुमरहतु णं देवाणुप्पिआ ! णाइ भुज्जो भुज्जो एवंकरणाएत्ति कट्टु पंजलिउडा पायवडिआ भरहं रायं सरणं उविंति।

---

१. देखें सूत्र संख्या ४४

तए णं से भरहे राया तेसिं आवाडचिलायाणं अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छति २ त्ता ते आवाडचिलाए एवं वयासी—गच्छह णं भो ! तुब्भे ममं बाहुच्छायापरिग्गहिया णिब्भया णिरुव्विग्गा सुहंसुहेणं परिवसह, णत्थि भे कत्तो वि भयमत्थित्ति कट्टु सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ ।

तए णं से भरहे राया सुसेणं सेणावइं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—गच्छाहि णं भो देवाणुप्पिआ ! दोच्चं पि सिंधूए महाणईए पच्चत्थिमं णिक्खुडं ससिंधुसागरगिरिमेरागं समविसमणिक्खुडाणि अ ओअवेहि २ त्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छाहि २ त्ता मम एअमाणत्तिअं खिप्पामेव पच्चप्पिणाहि जहा दाहिणिल्लस्स ओयवणं तहा सव्वं भाणिअव्वं जाव पच्चणुभवमाणा विहरंति ।

[७७] जब राजा भरत को इस रूप में रहते हुए सात दिन रात व्यतीत हो गये तो उसके मन में ऐसा विचार, भाव, संकल्प उत्पन्न हुआ—वह सोचने लगा—अप्रार्थित—जिसे कोई नहीं चाहता, उस मृत्यु का प्रार्थी—चाहने वाला, दुःखद अन्त एवं अशुभ लक्षण वाला (पुण्य चतुर्दशी हीन—असम्पूर्ण थी, घटिकाओं में अमावस्या आ गई थी, उस अशुभ दिन में जन्मा हुआ अभागा, लज्जा एवं शोभा से परिवर्जित) कौन ऐसा है, जो मेरी दिव्य ऋद्धि तथा दिव्य द्युति की विद्यमानता में भी मेरी सेना पर युग, मूसल एवं मुष्टिका प्रमाण जलधारा द्वारा सात दिन-रात हुए, भारी वर्षा करता जा रहा है ।

राजा भरत के मन में ऐसा विचार, भाव, संकल्प उत्पन्न हुआ जानकर सोलह हजार देव—चोदह रत्नों के रक्षक चौदह हजार देव तथा दो हजार राजा भरत के अंगरक्षक देव—युद्ध हेतु सन्नद्ध हो गये । उन्होंने लोहे के कवच अपने शरीर पर कस लिये, शस्त्रास्त्र धारण किये, जहाँ मेघमुख नागकुमार देव थे, वहाँ आये । आकर उनसे बोले—मृत्यु को चाहने वाले, (दुःखद अन्त एवं अशुभ लक्षण वाले, पुण्य चतुर्दशी हीन—असम्पूर्ण थी, घटिकाओं में अमावस्या आ गई थी, उस अशुभ दिन में जन्म लेने वाले अभागे, लज्जा तथा शोभा से परिवर्जित) मेघमुख नागकुमार देवो ! क्या तुम चातुरन्त चक्रवर्ती राजा भरत को नहीं जानते ? वह महा ऋद्धिशाली है । (परम द्युतिमान् तथा परम सौख्यशाली—भाग्यशाली है । उसे न कोई देव—वैमानिक देवता, न कोई दानव—भवनवासी देवता, न कोई किन्नर, न कोई किंपुरुष, न कोई महोरग तथा न कोई गन्धर्व ही रोक सकता है, न बाधा उत्पन्न कर सकता है । न उसे शस्त्र-प्रयोग द्वारा, न अग्नि-प्रयोग द्वारा तथा न मन्त्र-प्रयोग द्वारा ही उपद्रुत किया जा सकता है, रोका जा सकता है ।) फिर भी तुम राजा भरत की सेना पर युग, मूसल तथा मुष्टिका-प्रमाण जल-धाराओं द्वारा सात दिन-रात हुए भीषण वर्षा कर रहे हो । तुम्हारा यह कार्य अनुचित है—तुमने यह बिना सोचे समझे किया है, किन्तु बीती बात पर अब क्या अधिक्षेप करें—उपालंभ दें । तुम अब शीघ्र ही यहाँ से चले जाओ, अन्यथा इस जीवन से अग्रिम जीवन देखने को तैयार हो जाओ—मृत्यु की तैयारी करो ।

जब उन देवताओं ने मेघमुख नागकुमार देवों को इस प्रकार कहा तो वे भीत, त्रस्त, व्यथित एवं उद्विग्न हो गये, बहुत डर गये । उन्होंने बादलों की घटाएँ समेट लीं । समेट कर, जहाँ आपात किरात थे, वहाँ आये और बोले—देवानुप्रियो ! राजा भरत महा ऋद्धिशाली (परम द्युतिमान् तथा परम सौभाग्यशाली है । उसे न कोई देव, न कोई दानव, न कोई किन्नर, न कोई किंपुरुष, न कोई महोरग तथा न कोई गन्धर्व ही रोक सकता है, न बाधा उत्पन्न कर सकता है । न उसे शस्त्र-प्रयोग

द्वारा, न अग्नि-प्रयोग द्वारा तथा न मन्त्र-प्रयोग द्वारा ही उपद्रुत किया जा सकता है, रोका जा सकता है।) देवानुप्रियो ! फिर भी हमने तुम्हारा अभीष्ट साधने हेतु राजा भरत के लिए उपसर्ग—विघ्न किया। अब तुम जाओ, स्नान करो, नित्य-नैमित्तिक कृत्य करो, देह-सज्जा की दृष्टि से नेत्रों में अंजन आंजो, ललाट पर तिलक लगाओ, दुःस्वप्न आदि दोष-निवारण हेतु चन्दन, कुंकुम, दधि, अक्षत आदि से मंगल-विधान करो। यह सब कर तुम गीली धोती, गीला दुपट्टा धारण किये हुए, वस्त्रों के नीचे लटकते किनारों को सम्हाले हुए—पहने हुए वस्त्रों को भली भाँति बाँधने में—जचाने में समय न लगाते हुए श्रेष्ठ, उत्तम रत्नों को लेकर हाथ जोड़े राजा भरत के चरणों में पड़ो, उसकी शरण लो। उत्तम पुरुष विनम्र जनों के प्रति वात्सल्य-भाव रखते हैं, उनका हित करते हैं। तुम्हें राजा भरत से कोई भय नहीं होगा। यों कहकर वे देव जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा में चले गये।

मेघमुख नागकुमार देवों द्वारा यों कहे जाने पर वे आपात किरात उठे। उठकर स्नान किया, नित्य नैमित्तिक कृत्य किये, देह-सज्जा की दृष्टि से नेत्रों में अंजन आंजा, ललाट पर तिलक लगाया, दुःस्वप्न आदि दोष-निवारण हेतु चन्दन, कुंकुम, दधि, अक्षत आदि से मंगल-विधान किया। यह सब कर गीली धोती एवं गीला दुपट्टा धारण किये हुए, वस्त्रों के नीचे लटकते किनारे सम्हाले हुए—पहने हुए वस्त्रों को भली भाँति बाँधने में भी—जचाने में भी समय न लगाते हुए श्रेष्ठ, उत्तम रत्न लेकर जहाँ राजा भरत था, वहाँ आये। आकर हाथ जोड़े, अंजलि बाँधे उन्हें मस्तक से लगाया। राजा भरत को 'जय विजय' शब्दों द्वारा वर्धापित किया, श्रेष्ठ, उत्तम रत्न भेंट किये तथा इस प्रकार बोले—षट्खण्डवर्ती वैभव के—सम्पत्ति के स्वामिन् ! गुणभूषित ! जयशील ! लज्जा, लक्ष्मी, धृति—सन्तोष, कीर्ति के धारक ! राजोचित सहस्रों लक्षणों से सम्पन्न ! नरेन्द्र ! हमारे इस राज्य का चिरकाल पर्यन्त आप पालन करें ॥१॥

अश्वपते ! गजपते ! नरपते ! नवनिधिपते ! भरत क्षेत्र के प्रथमाधिपते ! बत्तीस हजार देशों के राजाओं के अधिनायक ! आप चिरकाल तक जीवित रहें—दीर्घायु हों ॥२॥

प्रथम नरेश्वर ! ऐश्वर्यशालिन् ! चौसठ हजार नारियों के हृदयेश्वर—प्राणवल्लभ ! रत्नाधिष्ठातृ-मागध तीर्थाधिपति आदि लाखों देवों के स्वामिन् ! चतुर्दश रत्नों के धारक ! यशस्विन् ! आपने दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम दिशा में समुद्रपर्यन्त और उत्तर दिशा में क्षुल्ल हिमवान् गिरि पर्यन्त उत्तरार्ध, दक्षिणार्ध—समग्र भरतक्षेत्र को जीत लिया है (जीत रहे हैं)। हम देवानुप्रिय के देश में प्रजा के रूप में निवास कर रहे हैं—हम आपके प्रजाजन हैं ॥३-४॥

देवानुप्रिय की—आपकी ऋद्धि—सम्पत्ति, द्युति—कान्ति, यश—कीर्ति, बल—दैहिक शक्ति, वीर्य—आन्तरिक शक्ति, पुरुषकार—पौरुष तथा पराक्रम—ये सब आश्चर्यकारक हैं। आपको दिव्य देव-द्युति—देवताओं के सदृश परमोत्कृष्ट कान्ति, परमोत्कृष्ट प्रभाव अपने पुण्योदय से प्राप्त है। हमने आपकी ऋद्धि (द्युति, यश, बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम, दिव्य देव-द्युति, दिव्य देव-प्रभाव, जो आपको लब्ध है, प्राप्त है, स्वायत्त है) का साक्षात् अनुभव किया है। देवानुप्रिय ! हम आपसे क्षमा-याचना करते हैं। देवानुप्रिय ! आप हमें क्षमा करें। आप क्षमा करने योग्य हैं—क्षमाशील हैं। देवानुप्रिय ! हम भविष्य में फिर कभी ऐसा नहीं करेंगे। यों कहकर वे हाथ जोड़े राजा भरत के चरणों में गिर पड़े, शरणागत हो गये।

फिर राजा भरत ने उन आपात किरातों द्वारा भेंट के रूप में उपस्थापित उत्तम, श्रेष्ठ रत्न

स्वीकार किये। स्वीकार कर उनसे कहा—तुम अब अपने स्थान पर जाओ। मैंने तुमको अपनी भुजाओं की छाया में स्वीकार कर लिया है—मेरा हाथ तुम्हारे मस्तक पर है। तुम निर्भय—भयरहित, निरुद्वेग—उद्वेग रहित—व्यथा रहित होकर सुखपूर्वक रहो। अब तुम्हें किसी से भी भय नहीं है। यों कहकर राजा भरत ने उनका सत्कार किया, सम्मान किया। उन्हें सत्कृत, सम्मानित कर विदा किया।

तब राजा भरत ने सेनापति सुषेण को बुलाया और कहा—देवानुप्रिय! जाओ, पूर्वसाधित निष्कुट—कोणवर्ती प्रदेश की अपेक्षा दूसरे, सिन्धु महानदी के पश्चिम भागवर्ती कोण में विद्यमान, पश्चिम में सिन्धु महानदी तथा पश्चिमी समुद्र, उत्तर में क्षुल्ल हिमवान् पर्वत तथा दक्षिण में वैताढ्य पर्वत द्वारा मर्यादित—विभक्त प्रदेश को, उसके सम-विषम कोणस्थ स्थानों को साधित करो—विजित करो। वहाँ से उत्तम, श्रेष्ठ रत्नों को भेंट के रूप में प्राप्त करो। यह सब कर मुझे शीघ्र ही अवगत कराओ।

इससे आगे का भाग दक्षिणी सिन्धु निष्कुट के विजय के वर्णन के सदृश है। वैसा ही यहाँ समझ लेना चाहिए।

चुल्लहिमवंतविजय

७८. तए णं दिव्वे चक्करयणे अण्णया कयाइ आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता अंतलिक्ख-पडिवण्णे जाव[1] उत्तरपुरच्छिमं दिसिं चुल्लहिमवंतपव्वयाभिमुहे पयाते यावि होत्था। तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं (उत्तरपुरच्छिमं दिसिं चुल्लहिमवंतपव्वयाभिमुहे पयातं पासइ) चुल्लहिम-वंतवासहरपव्वयस्स अदूरसामंते दुवालसयोजनायामं (णवजोअणवित्थिण्णं वरणगरसरिच्छं विजयखंधावारणिवेसं करेइ) चुल्लहिमवंतगिरिकुमारस्स देवस्स अट्ठमभत्तं पगिण्हइ, तहेव जहा मागहतित्थस्स (हयगयरहपवरजोहकलिआए सद्धिं संपरिवुडे महया-भडचडगर-पहगरवंदपरिक्खित्ते चक्करयणदेसिअमग्गे अणेगरायवरसहस्साणुआयमग्गे महया उक्किट्ठसीहणायबोलकलकलरवेणं पक्खुभियमहा-) समुद्दरवभूअंपिव करेमाणे २ उत्तरदिसाभिमुहे जेणेव चुल्लहिमवंतवासहरपव्वए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता चुल्लहिमवंतवासहरपव्वयं तिक्खुत्तो रहसिरेणं फुसइ, फुसित्ता तुरए णिगिण्हइ, णिगिण्हित्ता तहेव (रहं ठवेइ २ त्ता धणुं परामुसइ, तए णं तं अइरुग्गयबालचन्द-इंदधणुसंकासं वरमहिसदरिअदप्पिअदढ-घणसिंगरइअसारं उरगवरपवरगवलपवर-परहुअभमरकुलणीलिणिद्धधंत-धोअपट्टं णिउणोविअमिसिमिसिंतमणिरयणघंटिआजालपरिक्खित्तं तडिततरुणकिरणतवणिज्ज-बद्धचिंधं दद्दरमलयगिरिसिहरकेसरचामरवालद्धचंदचिंधं कालहरिअरत्तपीअसुक्किल्लबहुण्हारुणि-संपिणद्धजीवं जीविअंतकरणं चलजीवं धणू गहिऊण से णरवई उसुं च वरवइरकोडिअं वइरसारतोंडं कंचणमणिकणगरयणधाइट्ठसुकयपुंखं अणेगमणिरयणविविहसुविरइयनामचिंधं वइसाहं ठाईऊण ठाणं) आयत्तकण्णायतं च काऊण उसुमुदारं इमाणि वयणाणिं तत्थ भाणीय से णरवई (हंदि सुणंतु भवंतो, बाहिरओ खलु सरस्स जे देवा णागासुरा सुवण्णा, तेसिं खु णमो पणिवयामि। हंदि सुणंतु भवंतो,

१. देखें सूत्र संख्या ५२

अब्भिंतरओ सरस्स जे देवा। णागासुरा सुवण्णा,) सव्वे मे ते विसयवासित्ति कट्टु उद्ध' वेहासं उसुं णिसिरइ परिगरणिगरिअमज्झो, (वाउद्धुअसोभमाणकोसेज्जो। चित्तेण सोभए धणुवरेण इंदोव्व पच्चक्खं।) तए णं से सरे भरहेणं रण्णा उड्ढं वेहासं णिसट्ठे समाणे खिप्पामेव बावत्तरिं जोअणाइं गंता चुल्लहिमवंतगिरिकुमारस्स देवस्स मेराए णिवइए।

तए णं से चुल्लहिमवंतगिरिकुमारे देवे मेराए सरं णिवइअं पासइ २ त्ता आसुरुत्ते रुट्ठे (चंडिक्किए कुविए मिसिमिसेमाणे तिवलियं भिउडिं णिडाले साहरइ २ त्ता एवं वयासी—केस णं भो एस अपत्थिअपत्थए दुरंतपंतलक्खणे हीणपुण्णचाउद्दसे हिरिसिरिपरिवज्जिए जे णं मम इमाए एआणुरूवाए दिव्वाए देविद्धीए दिव्वाए देवजुईए दिव्वेणं दिव्वाणुभावेणं लद्धाए पत्ताए अभिसमण्णागयाए उप्पिं अप्पुस्सुए भवणंसि सरं णिसिरइत्ति कट्टु सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता जेणेव से णामाहयंके सरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तं णामाहयंकं सरं गेण्हइ, णामंकं अणुप्पवाएइ, णामंकं अणुप्पवाएमाणस्स इमे एआरूवे अब्भत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—उप्पण्णे खलु भो! जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे भरहे णामं राया चाउरंतचक्कवट्टी, तं जीअमेअं तीअपच्चुप्पण्णमणागयाणं चुल्लहिमवंतगिरिकुमाराणं देवाणं राईणमुवत्थाणीअं करेत्तए। तं गच्छामि णं अहंपि भरहस्स रण्णो उवत्थाणीअं करेमित्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता) पीइदाणं सव्वोसहिं च मालं गोसीसचंदणं कडगाणि (अ तुडिआणि अ वत्थाणि अ आभरणाणि अ सरं च णामाहयंकं) दहोदगं च गेण्हइ २ त्ता ताए उक्किट्ठाए जाव[1] उत्तरेणं चुल्लहिमवंतगिरिमेराए अहण्णं देवाणुप्पिआणं विसयवासी (अहण्णं देवाणुप्पिआणं आणत्तीकिंकरे) अहण्णं देवाणुप्पिआणं उत्तरिल्ले अंतवाले (तं पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिआ! ममं इमेआरूवं पीइदाणंति कट्टु सव्वोसहिं च मालं गोसीसचंदणं कडगाणि अ तुडिआणि अ वत्थाणि अ आभरणाणि अ सरं च णामाहयंकं दहोदगं च उवणेइ। तए णं से भरहे राया चुल्लहिमवंतगिरिकुमारस्स देवस्स इमेयारूवं पीइदाणं पडिच्छइ २ त्ता चुल्लहिमवंतगिरिकुमारं देवं) पडिविसज्जेइ।

[७८] आपात किरातों को विजित कर लेने के पश्चात् एक दिन वह दिव्य चक्ररत्न शस्त्रागार से बाहर निकला, आकाश में अधर अवस्थित हुआ। फिर वह उत्तर-पूर्व दिशा में—ईशान-कोण में क्षुद्र—लघु हिमवान् पर्वत की ओर चला। राजा भरत ने उस दिव्य चक्ररत्न को उत्तर-पूर्व दिशा में क्षुद्र हिमवान् पर्वत की ओर जाते देखा। उसने क्षुद्र हिमवान् वर्षधर पर्वत से न अधिक दूर, न अधिक समीप—कुछ ही दूरी पर बारह योजन लम्बा (नौ योजन चौड़ा, उत्तम नगर जैसा) सैन्य-शिविर स्थापित किया। उसने क्षुद्र हिमवान् गिरिकुमार देव को उद्दिष्ट कर तेले की तपस्या स्वीकार की।

आगे का वर्णन मागध तीर्थ के प्रसंग जैसा है।

(.... ..राजा भरत घोड़े, हाथी, रथ तथा पदातियों से युक्त चातुरंगिणी सेना से घिरा था। बड़े-बड़े योद्धाओं का समूह उसके साथ चल रहा था। चक्ररत्न द्वारा दिखाये गये मार्ग पर वह आगे

---

१. देखें सूत्र संख्या ३४

बढ़ रहा था। हजारों मुकुटधारी श्रेष्ठ राजा उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। उस द्वारा किये गये सिंहनाद के कलकल शब्द से ऐसा भान होता था कि मानो वायु द्वारा प्रक्षुभित महासागर गर्जन कर रहा हो।)

राजा भरत उत्तर दिशा की ओर अग्रसर हुआ। जहाँ क्षुद्र हिमवान् वर्षधर पर्वत था, वहाँ आया। उसके रथ का अग्रभाग क्षुद्र हिमवान् वर्षधर पर्वत से तीन वार स्पृष्ट हुआ। उसने वेगपूर्वक चलते हुए घोड़ों को नियन्त्रित किया। (घोड़ों को नियन्त्रित कर रथ को रोका। धनुष का स्पर्श किया। वह धनुष आकार में अचिरोद्गत बाल-चन्द्र—शुक्ल पक्ष की द्वितीया के चन्द्र जैसा एवं इन्द्रधनुष जैसा था। उत्कृष्ट, गर्वोद्धत भैंसे के सुदृढ, सघन सींगों की ज्यों निविड—निश्छिद्र पुद्गल-निष्पन्न था। उस धनुष का पृष्ठभाग उत्तम नाग, महिष-शृंग, श्रेष्ठ कोकिला, भ्रमरसमूह तथा नील के सदृश उज्ज्वल काली कान्ति से युक्त, तेज से जाज्वल्यमान एवं निर्मल था। निपुण शिल्पी द्वारा चमकाये गये, देदीप्यमान मणियों और रत्नों की घंटियों के समूह से वह परिवेष्टित था। बिजली की तरह जगमगाती किरणों से युक्त, स्वर्ण से परिवद्ध तथा चिह्नित था। दर्दर एवं मलय पर्वत के शिखर पर रहनेवाले सिंह के अयालों तथा चँवरी गाय के पूँछ के बालों के उस पर सुन्दर, अर्धचन्द्राकार वन्ध लगे थे। काले, हरे, लाल, पीले तथा सफेद स्नायुओं—नाड़ी-तन्तुओं से उसकी प्रत्यंचा बँधी थी। शत्रुओं के जीवन का विनाश करने में वह सक्षम था। उसकी प्रत्यंचा चंचल थी। राजा ने वह धनुष उठाया। उस पर बाण चढ़ाया। बाण की दोनों कोटियाँ उत्तम वज्र—श्रेष्ठ हीरों से बनी थीं। उसका मुख—सिरा वज्र की ज्यों अभेद्य था। उसका पुंख—पीछे का भाग स्वर्ण में जड़ी हुई चन्द्रकान्त आदि मणियों तथा रत्नों से सुसज्ज था। उस पर अनेक मणियों और रत्नों द्वारा सुन्दर रूप में राजा भरत का नाम अंकित था। भरत ने वैशाख—धनुष चढ़ाने के समय प्रयुक्त किये जाने वाले विशेष पाद-न्यास में स्थिर होकर) उस उत्कृष्ट वाण को कान तक खींचा (और वह यों बोला—मेरे द्वारा प्रयुक्त बाण के वहिर्भाग में तथा आभ्यन्तर भाग में अधिष्ठित नागकुमार, असुरकुमार, सुपर्णकुमार, आदि देवो! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप सुनें—स्वीकार करें।)

ऐसा कर राजा भरत ने वह बाण ऊपर आकाश में छोड़ा। मल्ल जब अखाड़े में उतरता है तब जैसे वह कमर बाँधे होता है, उसी प्रकार भरत युद्धोचित वस्त्र-वन्ध द्वारा अपनी कमर बाँधे था। (उसका कौशेय—पहना हुआ वस्त्र-विशेष हवा से हिलता हुआ वड़ा सुन्दर प्रतीत होता था। विचित्र, उत्तम धनुष धारण किये वह साक्षात् इन्द्र की ज्यों सुशोभित हो रहा था।)

राजा भरत द्वारा ऊपर आकाश में छोड़ा गया वह बाण शीघ्र ही वहत्तर योजन तक जाकर क्षुद्र हिमवान् गिरिकुमार देव की मर्यादा में—सीमा में—तत्सम्वद्ध समुचित स्थान में गिरा। क्षुद्र हिमवान् गिरिकुमार देव ने वाण को अपने यहाँ गिरा हुआ देखा तो वह तत्क्षण क्रोध से लाल हो गया। (रोषयुक्त हो गया—कोपाविष्ट हो गया, प्रचण्ड—विकराल हो गया, क्रोधाग्नि से उद्दीप्त हो गया। कोपाधिक्य से उसके ललाट पर तीन रेखाएँ उभर आई। उसकी भृकुटि तन गई। वह बोला—अप्रार्थित—जिसे कोई नहीं चाहता, उस मृत्यु को चाहने वाला, दुःखद अन्त तथा अशुभ लक्षण वाला, पुण्य चतुर्दशी जिस दिन हीन—असम्पूर्ण थी—घटिकाओं में अमावस्या आ गई थी, उस अशुभ दिन में जन्मा हुआ, लज्जा, श्री—शोभा से परिवर्जित वह कौन अभागा है, जिसने उत्कृष्ट

देवानुभाव से—दैविक प्रभाव से लब्ध, प्राप्त, स्वायत्त मेरी ऐसी दिव्य देवऋद्धि, देवद्युति पर प्रहार करते हुए, मौत से न डरते हुए मेरे यहाँ बाण गिराया है ! यों कहकर वह अपने सिंहासन से उठा और जहाँ वह नामांकित बाण पड़ा था, वहाँ आया। वहाँ आकर उस बाण को उठाया, नामांकन देखा। देखकर उसके मन में ऐसा चिन्तन, विचार, मनोभाव तथा संकल्प उत्पन्न हुआ—जम्बूद्वीप के अन्तर्वर्ती भरतक्षेत्र में भरत नामक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हुआ है। अतः अतीत, प्रत्युत्पन्न तथा अनागत—भूत, वर्तमान एवं भविष्यवर्ती क्षुद्र हिमवान्-गिरिकुमार देवों के लिए यह उचित है—परंपरागत व्यवहारानुरूप है कि वे (चक्रवर्ती) राजा को उपहार भेंट करें। इसलिए मैं भी जाऊँ, राजा को उपहार भेंट करूं। यों विचार कर) उसने प्रीतिदान—भेंट के रूप में सर्वौषधियाँ, कल्पवृक्ष के फूलों की माला, गोशीर्ष चन्दन—हिमवान् कुंज में उत्पन्न होने वाला चन्दन-विशेष, कटक (*त्रुटित, वस्त्र, आभूषण, नामांकित बाण*), पद्मद्रह—पद्म नामक (ह्रद) का जल लिया। यह सब लेकर उत्कृष्ट तीव्र गति द्वारा वह राजा भरत के पास आया। आकर बोला—मैं क्षुद्र हिमवान् पर्वत की सीमा में देवानुप्रिय के—आपके देश का वासी हूँ। मैं आपका आज्ञानुवर्ती सेवक हूँ। आपका उत्तर दिशा का अन्तपाल हूँ—उपद्रव-निवारक हूँ। अतः देवानुप्रिय! आप मेरे द्वारा उपहृत भेंट स्वीकार करें। यों कहकर उसने सर्वौषधि, माला, गोशीर्ष चन्दन, कटक, त्रुटित, वस्त्र, आभूषण, नामांकित बाण तथा पद्मह्रद का जल भेंट किया। राजा भरत ने क्षुद्र हिमवान्-गिरिकुमार देव द्वारा इस प्रकार भेंट किये गये उपहार स्वीकार किये। स्वीकार करके क्षुद्र हिमवान्-गिरिकुमार देव को विदा किया।

ऋषभकूट पर नामांकन

७९. तए णं से भरहे राया तुरए णिगिण्हइ २ त्ता रहं परावत्तेइ २ त्ता जेणेव उसहकूडे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता उसहकूडं पव्वयं तिक्खुत्तो रहसिरेणं फुसइ २ त्ता तुरए णिगिण्हइ २ त्ता रहं ठवेइ २ त्ता छत्तलं दुवालसंसिअं अट्ठकण्णिअं अहिगरणिसंठिअं सोवण्णिअं कागणिरयणं परामुसइ २ त्ता उसभकूडस्स पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लंसि कडगंसि णामगं आउडेइ—

ओसप्पिणीइमीसे, तइआए समाए पच्छिमे भाए।
अहमंसि चक्कवट्टी, भरहो इअ नामधिज्जेणं॥१॥
अहमंसि पढमराया, अहयं भरहाहिवो णरवरिंदो।
णत्थि महं पडिसत्तू, जिअं मए भारहं वासं॥२॥

इति कट्टु णामगं आउडेइ, णामगं आउडित्ता रहं परावत्तेइ २ त्ता जेणेव विजयखंधावार-णिवेसे, जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता (तुरए णिगिण्हइ २ त्ता रहं ठवेइ २ त्ता रहाओ पच्चोरुहति २ त्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छति २ त्ता मज्जणघरं अणुपविसइ २ त्ता जाव ससिव्व पिअदंसणे णरवई मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव भोअणमंडवे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता भोअणमंडवंसि सुहासणवरगए अट्ठमभत्तं पारेइ २ त्ता भोअणमंडवाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीअइ २ त्ता अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो

देवाणुप्पिया ! उस्सुक्कं उक्करं जाव चुल्लहिमवंतगिरिकुमारस्स देवस्स अट्ठाहिअं महामहिमं करेह २ त्ता मम एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणह, तए णं ताओ अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ भरहेणं रण्णा एवं वुत्ताओ समाणीओ हट्ठ जाव करेंति २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणंति) चुल्लहिमवंतगिरिकुमारस्स देवस्स अट्ठाहिआए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जाव[1] दाहिणिं दिसिं वेअड्ढपव्वयाभिमुहे पयाते आवि होत्था।

[७९] क्षुद्र हिमवान् पर्वत पर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् राजा भरत ने अपने रथ के घोड़ों को नियन्त्रित किया—दाईं ओर के दो घोड़ों को लगाम द्वारा अपनी ओर खींचा तथा बाईं ओर के दो घोड़ों को आगे किया—ढीला छोड़ा। यों उन्हें रोका। रथ को वापस मोड़ा। वापस मोड़कर जहाँ ऋषभकूट पर्वत था, वहाँ आया। वहाँ आकर रथ के अग्र भाग से तीन बार ऋषभकूट पर्वत का स्पर्श किया। तीन बार स्पर्श कर फिर उसने घोड़ों को खड़ा किया, रथ को ठहराया। रथ को ठहराकर काकणी रत्न का स्पर्श किया। वह (काकणी) रत्न चार दिशाओं तथा ऊपर, नीचे छह तलयुक्त था। ऊपर, नीचे एवं तिरछे—प्रत्येक ओर वह चार-चार कोटियों से युक्त था, यों बारह कोटि युक्त था। उसकी आठ कर्णिकाएँ थीं। अधिकरणी—स्वर्णकार लोह-निर्मित जिस पिण्डी पर सोने, चाँदी आदि को पीटता है, उस पिण्डी के समान आकारयुक्त था, सौवर्णिक था—अष्टस्वर्णमान-परिमाण था।

राजा ने काकणी रत्न का स्पर्श कर ऋषभकूट पर्वत के पूर्वीय कटक में—मध्य भाग में इस प्रकार नामांकन किया—

इस अवसर्पिणी काल के तीसरे आरक के पश्चिम भाग में—तीसरे भाग में मैं भरत नामक चक्रवर्ती हुआ हूँ ॥ १ ॥

मैं भरतक्षेत्र का प्रथम राजा—प्रधान राजा हूँ, भरतक्षेत्र का अधिपति हूँ, नरवरेन्द्र हूँ। मेरा कोई प्रतिशत्रु—प्रतिपक्षी नहीं है। मैंने भरतक्षेत्र को जीत लिया है ॥ २ ॥

इस प्रकार राजा भरत ने अपना नाम एवं परिचय लिखा। वैसा कर अपने रथ को वापस मोड़ा। वापस मोड़कर, जहाँ अपना सैन्य-शिविर था, जहाँ बाह्य उपस्थानशाला थी, वहाँ आया। (वहाँ आकर घोड़ों को नियन्त्रित किया, रथ को ठहराया, रथ से नीचे उतरा। नीचे उतर कर, जहाँ स्नानघर था, वहाँ आया, स्नानघर में प्रविष्ट हुआ। स्नानादि सम्पन्न कर, चन्द्र की ज्यों प्रियदर्शन—प्रीतिप्रद दिखाई देनेवाला राजा भरत स्नानघर से बाहर निकला। बाहर निकल कर वह भोजन-मंडप में आया, सुखासन से बैठा अथवा शुभ—उत्तम आसन पर बैठा, तेले का पारणा किया। पारणा कर, जहाँ बाह्य उपस्थानशाला थी, सिंहासन था, वहाँ आया। पूर्व की ओर मुंह कर सिंहासन पर बैठा। अपने अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि जनों को बुलाया, उनसे कहा—देवानुप्रियो ! मेरी ओर से यह घोषणा करो कि क्षुद्र हिमवान्-गिरिकुमार देव को विजय करने के उपलक्ष्य में अष्टदिवसीय महोत्सव आयोजित किया जाए। इन आठ दिनों में राज्य में कोई भी क्रय-विक्रय आदि

---

१. देखें सूत्र ५०

से सम्बद्ध शुल्क, सम्पत्ति आदि पर लिया जाने वाला राज्य-कर आदि न लिये जाएँ। मेरे आदेशानुरूप यह कार्य परिसम्पन्न कर मुझे अवगत कराओ।

राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर वे अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि जन अपने मन में हर्षित हुए। उन्होंने राजा के आदेशानुरूप सब व्यवस्थाएँ कीं, महोत्सव आयोजित करवाया। वैसा कर उन्होंने राजा को सूचित किया।)

क्षुद्र हिमवान्-गिरिकुमार देव को विजय करने के उपलक्ष्य में समायोजित अष्ट दिवसीय महोत्सव के सम्पन्न हो जाने पर वह दिव्य चक्ररत्न शस्त्रागार से बाहर निकला। बाहर निकलकर उसने दक्षिण दिशा में वैताढच पर्वत की ओर प्रयाण किया।

नमि-विनमि-विजय

८०. तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं जाव[1] वेअद्धस्स पव्वयस्स उत्तरिल्ले णितंबे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता वेअद्धस्स पव्वयस्स उत्तरिल्ले णितंबे दुवालसजोयणायामं जाव[2] पोसहसालं अणुपविसइ जाव[3] णमिविणमीणं विज्जाहरराईणं अट्ठमभत्तं पगिण्हइ २ त्ता पोसहसालाए (अट्ठमभत्तिए) णमिविणमिविज्जाहररायाणो मणसि करेमाणे २ चिट्ठइ। तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि णमिविणमिविज्जाहररायाणो दिव्वाए मईए चोइअमई अण्णमण्णस्स अंतिअं पाउब्भवंति २ त्ता एवं वयासी—उप्पण्णे खलु भो देवाणुप्पिआ! जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी तं जीअमेअं तीअपच्चुप्पण्णमणागयाणं विज्जाहरराईणं चक्कवट्टीणं उवत्थाणिअं करेत्तए, तं गच्छामो णं देवाणुप्पिआ! अम्हेवि भरहस्स रण्णो उवत्थाणिअं करेमो इति कट्टु विणमी णाऊणं चक्कवट्टि दिव्वाए मईए चोइअमई माणुम्माणप्पमाणजुत्तं तेअस्सिं रूवलक्खणजुत्तं ठिअजुव्वणकेसवट्ठिअणहं सव्वरोगणासणिं बलकरिं इच्छिअसीउण्हफासजुत्तं—

तिसु तणुअं तिसु तंबं तिवलीगतिउण्णयं तिगंभीरं।
तिसु कालं तिसु सेअं तिआयतं तिसु अ विच्छिण्णं ॥१॥

समसरीरं भरहे वासंमि सव्वमहिलप्पहाणं सुंदरथणजघणवरकरचलणणयणसिरसिजदसणजणहिअयरमणमणहरिं सिंगारगारं-(चारुवेसं संगयगयहसिअभणिअचिट्ठिअविलाससलिअसंलावनिउण-) जुत्तोवयारकुसलं अमरवहूणं सुरूवं रूवेणं अणुहरंतीं सुभद्दं भद्दंमि जोव्वणे वट्टमाणिं इत्थीरयणं णमी अ रयणाणि य कडगाणि य तुडिआणि अ गेण्हइ २ त्ता ताए उक्किट्ठाए तुरिआए जाव[4] उद्धूआए विज्जाहरगईए जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति २ त्ता अंतलिक्खपडिवण्णा सखिंखिणीयाइं (पंचवण्णाइं वत्थाइं पवर-परिहिए करयलपरिग्गहिअं दसणहं सिर-जाव अंजलिं कट्टु भरहं रायं)

---

१. देखें सूत्र ५०
२. देखें सूत्र ६२
३. देखें सूत्र ५१
४. देखे सूत्र ३४

जएणं विजएणं वद्धावेंति २ त्ता एवं वयासी—अभिजिए णं देवाणुप्पिआ ! (केवलकप्पे भरहे वासे उत्तरेणं चुल्लहिमवंतमेराए तं अम्हे देवाणुप्पिआणं विसयवासी) अम्हे देवाणुप्पिआणं आणत्तिकिंकरा इति कट्टु तं पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिआ ! अम्हं इमं (इमेआरूवं पीइदाणंति कट्टु) विणमी इत्थीरयणं णमी रयणाणि समप्पेइ ।

तए णं से भरहे राया (नमिविनमीणं विज्जाहरराईणं इमेयारूवं पीइदाणं पडिच्छइ २ त्ता नमिविनमीणं विज्जाहरराईणं सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता) पडिविसज्जेइ २ त्ता पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता मज्जणघरं अणुपविसइ २ त्ता भोअणमंडवे जाव[1] नमिविनमीणं विज्जाहरराईणं अट्ठाहिअमहामहिमा । तए णं से दिव्वे चक्करयणे आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ जाव[2] उत्तरपुरत्थिमं दिसिं गंगादेवीभवणाभिमुहे पयाए आवि होत्था, सच्चेव सव्वा सिंधुवत्तव्वया जाव नवरं कुंभट्ठसहस्सं रयणचित्तं णाणामणिकणगरयणभत्तिचित्ताणि अ दुवे कणगसीहासणाइं सेसं तं चेव जाव महिमत्ति ।

[८०] राजा भरत ने उस दिव्य चक्ररत्न को दक्षिण दिशा में वैताढ्य पर्वत की ओर जाते हुए देखा । वह बहुत हर्षित एवं परितुष्ट हुआ । वह वैताढ्य पर्वत की उत्तर दिशावर्ती तलहटी में आया । वहाँ बारह योजन लम्बा, नौ योजन चौड़ा श्रेष्ठ नगर सदृश सैन्यशिविर स्थापित किया । वहाँ वह पौषधशाला में प्रविष्ट हुआ । श्रीऋषभ स्वामी के कच्छ तथा महाकच्छ नामक प्रधान सामन्तों के पुत्र नमि एवं विनमि नामक विद्याधर राजाओं को उद्दिष्ट कर—उन्हें साधने हेतु तेले की तपस्या स्वीकार की । पौषधशाला में (तेले की तपस्या में विद्यमान) नमि, विनमि विद्याधर राजाओं का मन में ध्यान करता हुआ वह स्थित रहा ।

राजा की तेले की तपस्या जब परिपूर्ण होने को आई, तब नमि, विनमि विद्याधर राजाओं को अपनी दिव्य मति—दिव्यानुभाव-जनित ज्ञान द्वारा इसका भान हुआ । वे एक दूसरे के पास आये, परस्पर मिले और कहने लगे—जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरतक्षेत्र में भरत नामक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हुआ है । अतीत, प्रत्युत्पन्न तथा अनागत—भूत, वर्तमान एवं भविष्यवर्ती विद्याधर राजाओं के लिए यह उचित है—परम्परागत व्यवहारानुरूप है कि वे राजा को उपहार भेंट करें । इसलिए हम भी राजा भरत को अपनी ओर से उपायन उपहृत करें । यह सोचकर विद्याधरराज विनमि ने अपनी दिव्य मति से प्रेरित होकर चक्रवर्ती राजा भरत को भेंट करने हेतु सुभद्रा नामक स्त्रीरत्न लिया । स्त्रीरत्न—परम सुन्दरी सुभद्रा का शरीर मानोन्मान प्रमाणयुक्त था—दैहिक फैलाव, वजन, ऊँचाई आदि की दृष्टि से वह परिपूर्ण, श्रेष्ठ तथा सर्वांगसुन्दर था । वह तेजस्विनी थी, रूपवती एवं लावण्यमयी थी । वह स्थिर यौवन युक्त थी—उसका यौवन अविनाशी था । उसके शरीर के केश तथा नाखून नहीं बढ़ते थे । उसके स्पर्श से सब रोग मिट जाते थे । वह बल-वृद्धि-कारिणी थी—उसके परिभोग से परिभोक्ता का बल, कान्ति बढ़ती थी । ग्रीष्म ऋतु में वह शीत-स्पर्शा तथा शीत ऋतु में उष्णस्पर्शा थी ।

---

१. देखें सूत्र ७९

२. देखें सूत्र ५०

वह तीन स्थानों में—कटिभाग में, उदर में तथा शरीर में कृश थी। तीन स्थानों में—नेत्र के प्रान्त भाग में, अधरोष्ठ में तथा योनिभाग में ताम्र—लाल थी। वह त्रिवलियुक्त थी—देह के मध्य उदर स्थित तीन रेखाओं से युक्त थी। वह तीन स्थानों में—स्तन, जघन तथा योनिभाग में उन्नत थी। तीन स्थानों में—नाभि में, सत्त्व में—अन्त:शक्ति में तथा स्वर में गंभीर थी। वह तीन स्थानों में—रोमराजि में, स्तनों के चूचकों में तथा नेत्रों की कनीनिकायों में कृष्ण वर्ण युक्त थी। तीन स्थानों में—दाँतों में, स्मित में—मुसकान में तथा नेत्रों में वह श्वेतता लिये थी। तीन स्थानों में—केशों की वेणी में, भुजलता में तथा लोचनों में प्रलम्ब थी—लम्बाई लिये थी। तीन स्थानों में—श्रोणिचक्र में, जघन-स्थली में तथा नितम्ब विम्बों में विस्तीर्ण थी—चौड़ाई युक्त थी ॥ १ ॥

वह समचौरस दैहिक संस्थानयुक्त थी। भरतक्षेत्र में समग्र महिलाओं में वह प्रधान—श्रेष्ठ थी। उसके स्तन, जघन, हाथ, पैर, नेत्र, केश, दाँत—सभी सुन्दर थे, देखने वाले पुरुष के चित्त को आह्लादित करने वाले थे, आकृष्ट करने वाले थे। वह मानो शृंगार-रस का आगार—गृह थी। (उसकी वेशभूषा बड़ी लुभावनी थी। उसकी गति—चाल, हँसी, बोली, चेष्टा, कटाक्ष—ये सब बड़े संगत—सुन्दर थे। वह लालित्यपूर्ण संलाप—वार्तालाप करने में निपुण थी।) लोक-व्यवहार में वह कुशल—प्रवीण थी। वह रूप में देवांगनाओं के सौन्दर्य का अनुसरण करती थी। वह कल्याणकारी—सुखप्रद यौवन में विद्यमान थी।

विद्याधरराज नमि ने चक्रवर्ती भरत को भेंट करने हेतु रत्न, कटक तथा त्रुटित लिये। उत्कृष्ट त्वरित, तीव्र विद्याधर-गति द्वारा वे दोनों, जहाँ राजा भरत था, वहाँ आये। वहाँ आकर वे आकाश में अवस्थित हुए। (उन्होंने छोटी-छोटी घंटियों से युक्त, पंचरंगे वस्त्र भलीभाँति पहन रखे थे। उन्होंने हाथ जोड़े, अंजलि बाँधे उन्हें मस्तक से लगाया। ऐसा कर) उन्होंने जय-विजय शब्दों द्वारा राजा भरत को वर्धापित किया और कहा—(देवानुप्रिय! आपने उत्तर में क्षुद्र हिमवान् पर्वत की सीमा तक भरतक्षेत्र को जीत लिया है। हम आपके देशवासी हैं—आपके प्रजाजन हैं,) हम आपके आज्ञानुवर्ती सेवक हैं। (आप हमारे ये उपहार स्वीकार करें। यह कह कर) विनमि ने स्त्रीरत्न तथा नमि ने रत्न, आभरण भेंट किये। राजा भरत ने (विद्याधरराज नमि तथा विनमि द्वारा समर्पित ये उपहार स्वीकार किये। स्वीकार कर नमि एवं विनमि का सत्कार किया, सम्मान किया। उन्हें सत्कृत, सम्मानित कर) वहाँ से विदा किया।

फिर राजा भरत पौषधशाला से बाहर निकला। बाहर निकल कर स्नानघर में गया। स्नान आदि संपन्न कर भोजन-मंडप में गया, तेले का पारणा किया।

विद्याधरराज नमि तथा विनमि को विजय कर लेने के उपलक्ष्य में अष्ट दिवसीय महोत्सव आयोजित किया।

अष्ट दिवसीय महोत्सव के संपन्न हो जाने के पश्चात् दिव्य चक्ररत्न शस्त्रागार से बाहर निकला। उसने उत्तर-पूर्व दिशा में—ईशान-कोण में गंगा देवी के भवन की ओर प्रयाण किया।

यहाँ पर वह सब वक्तव्यता ग्राह्य है, जो सिन्धु देवी के प्रसंग में वर्णित है। विशेषता केवल यह है कि गंगा देवी ने राजा भरत को भेंट रूप में विविध रत्नों से युक्त एक हजार आठ कलश,

स्वर्ण एवं विविध प्रकार की मणियों से चित्रित—विमंडित दो सोने के सिंहासन विशेषरूप से उपहृत किये।

फिर राजा ने अष्टदिवसीय महोत्सव आयोजित करवाया।

खण्डप्रपातविजय

८१. तए णं से दिव्वे चक्करयणे गंगाए देवीए अट्ठाहियाए महामहिमाए निव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जाव[1] गंगाए महाणईए पच्चत्थिमिल्लेणं कूलेणं दाहिणदिसिं खंडप्पवायगुहाभिमुहे पयाए यावि होत्था।

तते णं से भरहे राया (तं दिव्वं चक्करयणं गंगाए महाणईए पच्चत्थिमिल्लेणं कूलेणं दाहिणदिसिं खंडप्पवायगुहाभिमुहं पयातं पासइ २ त्ता) जेणेव खंडप्पवायगुहा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सव्वा कयमालवत्तव्वया णेअव्वा णवरि णट्टमालगे देवे पीतिदाणं से आलंकारिअभंडं कडगाणि अ सेसं सव्वं तहेव जाव अट्ठाहिआ महामहिमा०।

तए णं से भरहे राया णट्टमालस्स देवस्स अट्ठाहिआए म० णिव्वत्ताए समाणीए सुसेणं सेणावइं सद्दावेइ २ त्ता जाव सिंधुगमो णेअव्वो, जाव गंगाए महाणईए पुरत्थिमिल्लं णिक्खुडं सगंगासागरगिरिमेरागं समविसमणिक्खुडाणि अ आओवेइ २ त्ता अग्गाणि वराणि रयणाणि पडिच्छइ २ त्ता जेणेव गंगामहाणई तेणेव उवागच्छइ २ त्ता दोच्चंपि सक्खंधावारबले गंगामहाणइं विमलजल-तुंगवीइं णावाभूएणं चम्मरयणेणं उत्तरइ २ त्ता जेणेव भरहस्स रण्णो विजयखंधावारणिवेसे जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ २ त्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता करयलपरिग्गहिअं जाव[2] अंजलिं कट्टु भरहं रायं जएणं विजएणं वद्धावेइ २ त्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं उवणेइ। तए णं से भरहे राया सुसेणस्स सेणावइस्स अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छइ २ त्ता सुसेणं सेणावइं सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता पडिविसज्जेइ। तए णं से सुसेणे सेणावई भरहस्स रण्णो सेसंपि तहेव जाव विहरइ।

तए णं से भरहे राया अण्णया कयाइ सुसेणं सेणावइरयणं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—गच्छ णं भो देवाणुप्पिआ! खंडप्पवायगुहाए उत्तरिल्लस्स दुवारस्स कवाडे विहाडेहि २ त्ता जहा तिमिसगुहाए तहा भाणिअव्वं जाव पिअं भे भवउ, सेसं तहेव जाव भरहो उत्तरिल्लेणं दुवारेणं अईइ, ससिव्व मेहंधयारनिवहं तहेव पविसंतो मंडलाइं आलिहइ। तीसे णं खंडप्पवायगुहाए बहुमज्झदेसभाए (एत्थ णं) उम्मग्ग-णिमग्ग-जलाओ णामं दुवे महाणईओ तहेव णवरं पच्चत्थिमिल्लाओ कडगाओ पवूढाओ समाणीओ पुरत्थिमेणं गंगं महाणइं समप्पेंति, सेसं तहेव णवरि पच्चत्थिमिल्लेणं कूलेणं गंगाए संकमवत्तव्वया तहेवत्ति। तए णं खंडगप्पवायगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा सयमेव महया कोंचारवं करेमाणा २ सरसरस्सगाइं ठाणाइं पच्चोसक्कित्था। तए णं से भरहे राया चक्क-

१. देखें सूत्र संख्या ५०

२. देखें सूत्र संख्या ४४

रयणदेसियमग्गे (अणेगराय० महया उक्किट्ठसीहणायबोलकलकलसद्देणं समुद्दरवभूयं पिव करेमाणे) खंडगप्पवायगुहाओ दक्खिणिल्लेणं दारेणं णीणेइ ससिव्व मेहंधयारनिवहाओ।

(८१) गंगा देवी को साध लेने के उपलक्ष्य में आयोजित अष्टदिवसीय महोत्सव सम्पन्न हो जाने पर वह दिव्य चक्ररत्न शस्त्रागार से बाहर निकला। बाहर निकलकर उसने गंगा महानदी के पश्चिमी किनारे दक्षिण दिशा में खण्डप्रपात गुफा की ओर प्रयाण किया।

तब (दिव्य चक्ररत्न को गंगा महानदी के पश्चिमी किनारे दक्षिण दिशा में खण्डप्रपात गुफा की ओर प्रयाण करते देखा, देखकर) राजा भरत जहाँ खण्डप्रपात गुफा थी, वहाँ आया।

यहाँ तमिस्रा गुफा के अधिपति कृतमाल देव से सम्बद्ध समग्र वक्तव्यता ग्राह्य है। केवल इतना सा अन्तर है, खण्डप्रपात गुफा के अधिपति नृत्तमालक देव ने प्रीतिदान के रूप में राजा भरत को आभूषणों से भरा हुआ पात्र, कटक—हाथों के कड़े विशेष रूप में भेंट किये।

नृत्तमालक देव को विजय करने के उपलक्ष्य में आयोजित अष्टदिवसीय महोत्सव के सम्पन्न हो जाने पर राजा भरत ने सेनापति सुषेण को बुलाया।

यहाँ पर सिन्धु देवी से सम्बद्ध प्रसंग ग्राह्य है।

सेनापति सुषेण ने गंगा महानदी के पूर्वभागवर्ती कोण-प्रदेश को, जो पश्चिम में महानदी से, पूर्व में समुद्र से, दक्षिण में वैताढ्य पर्वत से एवं उत्तर में लघु हिमवान् पर्वत से मर्यादित था, तथा सम-विषम अवान्तरक्षेत्रीय कोणवर्ती भागों को साधा। श्रेष्ठ, उत्तम रत्न भेंट में प्राप्त किये। वैसा कर सेनापति सुषेण जहाँ गंगा महानदी थी, वहाँ आया। वहाँ आकर उसने निर्मल जल की ऊँची उछलती लहरों से युक्त गंगा महानदी को नौका के रूप में परिणत चर्मरत्न द्वारा सेनासहित पार किया। पार कर जहाँ राजा भरत था, सेना का पड़ाव था, जहाँ बाह्य उपस्थानशाला थी, वहाँ आया। आकर आभिषेक्य हस्तिरत्न से नीचे उतरा। नीचे उतर कर उसने उत्तम, श्रेष्ठ रत्न लिये, जहाँ राजा भरत था, वह वहाँ आया। वहाँ आकर दोनों हाथ जोड़े, अंजलि बाँधे राजा भरत को जय-विजय शब्दों द्वारा वर्धापित किया। वर्धापित कर उत्तम, श्रेष्ठ रत्न, जो भेंट में प्राप्त हुए थे, राजा को समर्पित किये। राजा भरत ने सेनापति सुषेण द्वारा समर्पित उत्तम, श्रेष्ठ रत्न स्वीकार किये। रत्न स्वीकार कर सेनापति सुषेण का सत्कार किया, सम्मान किया। उसे सत्कृत, सम्मानित कर वहाँ से विदा किया।

आगे का प्रसंग पहले आये वर्णन की ज्यों है।

तत्पश्चात् एक समय राजा भरत ने सेनापतिरत्न सुषेण को बुलाया। बुलाकर उससे कहा—देवानुप्रिय ! जाओ, खण्डप्रपात गुफा के उत्तरी द्वार के कपाट उद्घाटित करो।

आगे का वर्णन तमिस्रा गुफा की ज्यों संग्राह्य है।

फिर राजा भरत उत्तरी द्वार से गया। सघन अन्धकार को चीर कर जैसे चन्द्रमा आगे बढ़ता है, उसी तरह खण्डप्रपात गुफा में प्रविष्ट हुआ, मण्डलों का आलेखन किया। खण्डप्रपात गुफा के ठीक बीच के भाग से उन्मग्नजला तथा निमग्नजला नामक दो बड़ी नदियाँ निकलती हैं।

इनका वर्णन पूर्ववत् है। केवल इतना अन्तर है, ये नदियां खण्डप्रपात गुफा के पश्चिमी भाग से निकलती हुई, निकलकर आगे बढ़ती हुईं पूर्वी भाग में गंगा महानदी में मिल जाती हैं।

शेष वर्णन पूर्ववत् संग्राह्य है। केवल इतना अन्तर है, पुल गंगा के पश्चिमी किनारे पर बनाया।

तत्पश्चात् खण्डप्रपात गुफा के दक्षिणी द्वार के कपाट क्रौञ्चपक्षी की ज्यों जोर से आवाज करते हुए सरसराहट के साथ स्वयमेव अपने स्थान से सरक गये, खुल गये। चक्ररत्न द्वारा निर्देशित मार्ग का अनुसरण करता हुआ, (समुद्र के गर्जन की ज्यों सिंहनाद करता हुआ, अनेक राजाओं से संपरिवृत) राजा भरत निविड अन्धकार को चीर कर आगे बढ़ते हुए चन्द्रमा की ज्यों खण्डप्रपात गुफा के दक्षिणी द्वार से निकला।

नवनिधि-प्राकट्य

८२. तए णं से भरहे राया गंगाए महाणईए पच्चत्थिमिल्ले कूले दुवालसजोअणायामं णवजोअणविच्छिण्णं (वरणगरसरिच्छं) विजयक्खंधावारणिवेसं करेइ। अवसिट्ठं तं चेव जाव निहिरयणाणं अट्ठमभत्तं पगिण्हइ। तए णं से भरहे राया पोसहसालाए जाव णिहिरयणे मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइत्ति, तस्स य अपरिमिअरत्तरयणा धुअमक्खयमव्वया सदेवा लोकोपचयंकरा उवगया णव णिहिओ लोगविस्सुअजसा, तं जहा—

नेसप्पे १, पंडुअए २, पिंगलए ३, सव्वरयणे ४, महपउमे ५।
काले ६, अ महाकाले ७, माणवगे महानिही ८ संखे ९॥१॥

णेसप्पंमि णिवेसा, गामागरणगरपट्टणाणं च।
दोणमुहमडंबाणं खंधावारावणगिहाणं॥२॥
गणिअस्स य उप्पत्ती, माणुम्माणस्स जं पमाणं च।
धण्णस्स य बीआण, य उप्पत्ती पंडुए भणिआ॥३॥
सव्वा आभरणविही, पुरिसाणं जा य होइ महिलाणं।
आसाण य हत्थीण य, पिंगलणिहिंमि सा भणिआ॥४॥
रयणाइं सव्वरयणे, चउदस वि वराइं चक्कवट्टिस्स।
उप्पज्जंते एगिंदिआइं पंचिंदिआइं च॥५॥
वत्थाण य उप्पत्ती, णिप्फत्ती चेव सव्वभत्तीणं।
रंगाण य धोव्वाण य, सव्वा एसा महापउमे॥६॥
काले कालण्णाणं, सव्वपुराणं च तिसु वि वंसेसु।
सिप्पसयं कम्माणि अ तिण्णि पयाए हिअकराणि॥७॥
लोहस्स य उप्पत्ती, होइ महाकालि आगराणं च।
रुप्पस्स सुवण्णस्स य, मणिमुत्तसिलप्पवालाणं॥८॥

जोहाण य उप्पत्ती, आवरणाणं च पहरणाणं च ।
सव्वा य जुद्धणीई, माणवगे दंडणीई अ ।।९।।
णट्टविही णाडगविही, कव्वस्स य चउव्विहस्स उप्पत्ती ।
संखे महाणिहिम्मी, तुडिअंगाणं च सव्वेसिं ।।१०।।
चक्कट्ठपइट्ठाणा, अट्ठुस्सेहा य णव य विक्खंभा ।
बारसदीहा मंजू-संठिया जण्हवीइ मुहे ।।११।।
वेरुलिअमणिकवाडा, कणगमया विविहरयणपडिपुण्णा ।
ससिसूरचक्कलक्खण अणुसमवयणोववत्ती या ।।१२।।
पलिओवमट्ठिईआ, णिहिसरिणामा य तत्थ खलु देवा ।
जेसिं ते आवासा, अक्किज्जा आहिवच्चा य ।।१३।।
एए णवणिहिरयणा, पभूयधणरयणसंचयसमिद्धा ।
जे वसमुपगच्छंति, भरहाविवचक्कवट्टीणं ।।१४।।

तए णं से भरहे राया अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, एवं मज्जणघरपवेसो जाव सेणिपसेणिसद्दावणया जाव णिहिरयणाणं अट्ठाहिअं महामहिमं करेइ ।

तए णं से भरहे राया णिहिरयणाणं अट्ठाहिआए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए सुसेणं सेणावइरयणं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—गच्छ णं भो देवाणुप्पिआ ! गंगामहाणईए पुरत्थिमिल्लं णिक्खुडं दुच्चंपि सगंगासागरगिरिमेरागं समविसमणिक्खुडाणि अ ओअवेहि २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणाहित्ति ।

तए णं से सुसेणे तं चेव पुव्ववण्णिअं भाणिअव्वं जाव ओअवित्ता तमाणत्तिअं पच्चप्पिणइ पडिविसज्जेइ जाव भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ ।

तए णं से दिव्वे चक्करयणे अन्नया कयाइ आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता अंतलिक्ख-पडिवण्णे जक्खसहस्ससंपरिवुडे दिव्वतुडिअ-(सद्दसण्णिणादेणं) आपूरेंते चेव विजयक्खंधावारणिवेसं मज्झंमज्झेणं णिगच्छइ दाहिणपच्चत्थिमं दिसिं विणीअं रायहाणिं अभिमुहे पयाए यावि होत्था ।

तए णं से भरहे राया जाव[1] पासइ २ त्ता हट्ठतुट्ठ जाव[2] कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! आभिसेक्कं (हत्थिरयणं पडिकप्पेह हयगयरहपवरजोहकलिअं चाउरंगिणिं सेण्णं सण्णाहेह, एत्तमाणत्तिअं पच्चप्पिणह, तए णं ते कोडुंबियपुरिसे तमाणत्तियं) पच्चप्पिणंति ।

---

१. देखें सूत्र संख्या ५०
२. देखें सूत्र संख्या ४४

[८२] तत्पश्चात्—गुफा से निकलने के बाद राजा भरत ने गंगा महानदी के पश्चिमी तट पर बारह योजन लम्बा, नौ योजन चोड़ा, श्रेष्ठ-नगर-सदृश सैन्यशिविर स्थापित किया।

आगे का वर्णन मागध देव को साधने के सन्दर्भ में आये वर्णन जैसा है।

फिर राजा ने नौ निधिरत्नों को—उत्कृष्ट निधियों को उद्दिष्ट कर तेले की तपस्या स्वीकार की। तेले की तपस्या में अभिरत राजा भरत नौ निधियों का मन में चिन्तन करता हुआ पौषधशाला में अवस्थित रहा। नौ निधियां अपने अधिष्ठातृ-देवों के साथ वहाँ राजा भरत के समक्ष उपस्थित हुईं। वे निधियाँ अपरिमित—अनगिनत लाल, नीले, पीले, हरे, सफेद आदि अनेक वर्णों के रत्नों से युक्त थीं, ध्रुव, अक्षय तथा अव्यय—अविनाशी थीं, लोकविश्रुत थीं।

वे इस प्रकार थीं—

१. नैसर्प निधि, २. पाण्डुक निधि, ३. पिंगलक निधि, ४. सर्वरत्न निधि, ५. महापद्म निधि, ६. काल निधि, ७. महाकाल निधि, ८. माणवक निधि तथा ९. शंखनिधि।

वे निधियां अपने-अपने नाम के देवों से अधिष्ठित थीं।

१. नैसर्प निधि—ग्राम, आकर, नगर, पट्टन, द्रोणमुख, मडम्ब, स्कन्धावार, आपण तथा भवन—इनके स्थापन—समुत्पादन की विशेषता लिये होती है।

२. पाण्डुक निधि—गिने जाने योग्य—दीनार, नारिकेल आदि, मापे जाने वाले धान्य आदि, तोले जाने वाले चीनी, गुड़ आदि, कलम जाति के उत्तम चावल आदि धान्यों के बीजों को उत्पन्न करने में समर्थ होती है।

३. पिंगलक निधि—पुरुषों, नारियों, घोड़ों तथा हाथियों के आभूषणों को उत्पन्न करने की विशेषता लिये होती है।

४. सर्वरत्न निधि—चक्रवर्ती के चौदह उत्तम रत्नों को उत्पन्न करती है। उनमें चक्ररत्न, दण्डरत्न, असिरत्न, छत्ररत्न, चर्मरत्न, मणिरत्न तथा काकणीरत्न—ये सात एकेन्द्रिय होते हैं। सेनापतिरत्न, गाथापतिरत्न, वर्धकिरत्न, पुरोहितरत्न, अश्वरत्न, हस्तिरत्न तथा स्त्रीरत्न—ये सात पंचेन्द्रिय होते हैं।

५. महापद्म निधि—सब प्रकार के वस्त्रों को उत्पन्न करती है। वस्त्रों के रंगने, धोने आदि समग्र सज्जा के निष्पादन की वह विशेषता लिये होती है।

६. काल निधि—समस्त ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान, तीर्थंकर-वंश, चक्रवर्ति-वंश तथा बलदेव-वासुदेव-वंश—इन तीनों में जो शुभ, अशुभ घटित हुआ, घटित होगा, घटित हो रहा है, उन सबके ज्ञान, सौ प्रकार के शिल्पों के ज्ञान, उत्तम, मध्यम तथा अधम कर्मों के ज्ञान को उत्पन्न करने की विशेषता लिये होती है।

७. महाकाल निधि—विविध प्रकार के लोह, रजत, स्वर्ण, मणि, मोती, स्फटिक तथा प्रवाल—मूंगे आदि के आकरों—खानों को उत्पन्न करने की विशेषतायुक्त होती है।

८. माणवक निधि—योद्धाओं, आवरणों—शरीर को आवृत करने वाले, सुरक्षित रखने

वाले कवच आदि के प्रहरणों—शस्त्रों के, सब प्रकार की युद्ध-नीति के—चक्रव्यूह, शकटव्यूह, गरुडव्यूह आदि की रचना से सम्बद्ध विधिक्रम के तथा साम, दाम, दण्ड एवं भेदमूलक राजनीति के उद्भव की विशेषता युक्त होती है।

९. शंख निधि—सब प्रकार की नृत्य-विधि, नाटक-विधि—अभिनय, अंग-संचालन, मुद्रा-प्रदर्शन आदि की, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चार पुरुषार्थों के प्रतिपादक काव्यों की अथवा संस्कृत, अपभ्रंश एवं संकीर्ण—मिली-जुली भाषाओं में निबद्ध काव्यों की अथवा गद्य—अच्छन्दोबद्ध, पद्य—छन्दोबद्ध, गेय—गाये जा सकने योग्य, गीतिबद्ध, चौर्ण—निपात एवं अव्यय बहुल रचनायुक्त काव्यों की उत्पत्ति की विशेषता लिये होती है, सब प्रकार के वाद्यों को उत्पन्न करने की विशेपता-युक्त होती है।

उनमें से प्रत्येक निधि का अवस्थान आठ-आठ चक्रों के ऊपर होता है—जहाँ-जहाँ ये ले जाई जाती हैं, वहाँ-वहाँ ये आठ चक्रों पर प्रतिष्ठित होकर जाती हैं। उनकी ऊँचाई आठ-आठ योजन की, चौड़ाई नौ-नौ योजन की तथा लम्बाई बारह-बारह योजन की होती है। उनका आकार मंजूषा—पेटी जैसा होता है। गंगा जहाँ समुद्र में मिलती है, वहाँ उनका निवास है। उनके कपाट वैडूर्य मणिमय होते हैं। वे स्वर्ण-घटित होती हैं। विविध प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण—संभृत होती हैं। उन पर चन्द्र, सूर्य तथा चक्र के आकार के चिह्न होते हैं। उनके द्वारों की रचना अनुसम—अपनी रचना के अनुरूप संगत, अविषम होती है। निधियों के नामों के सदृश नामयुक्त देवों की स्थिति एक पल्योपम होती है। उन देवों के आवास अक्रयणीय—न खरीदे जा सकने योग्य होते हैं—मूल्य देकर उन्हें कोई खरीद नहीं सकता, उन पर आधिपत्य प्राप्त नहीं कर सकता।

प्रचुर धन-रत्न-संचय युक्त ये नौ निधियां भरतक्षेत्र के छहों खण्डों को विजय करने वाले चक्रवर्ती राजाओं के वंशगत होती हैं।

राजा भरत तेले की तपस्या के परिपूर्ण हो जाने पर पौषधशाला से बाहर निकला, स्नानघर में प्रविष्ट हुआ। स्नान आदि संपन्न कर उसने श्रेणि-प्रश्रेणि-जनों को बुलाया, नौ निधि-रत्नों को—नौ निधियों को साध लेने के उपलक्ष्य में अष्टदिवसीय महोत्सव आयोजित कराया। अष्टदिवसीय महोत्सव के संपन्न हो जाने पर राजा भरत ने अपने सेनापति सुषेण को बुलाया। बुलाकर उससे कहा—देवानुप्रिय ! जाओ, गंगा महानदी के पूर्व में अवस्थित, भरतक्षेत्र के कोणस्थित दूसरे प्रदेश को, जो पश्चिम दिशा में गंगा से, पूर्व एवं दक्षिण दिशा में समुद्रों से और उत्तर दिशा में वैताढ्य पर्वत से मर्यादित हैं तथा वहाँ के अवान्तरक्षेत्रीय समविषम कोणस्थ प्रदेशों को अधिकृत करो। अधिकृत कर मुझे अवगत कराओ।

सेनापति सुषेण ने उन क्षेत्रों पर अधिकार किया—उन्हें साधा। यहाँ का सारा वर्णन पूर्ववत् है।

सेनापति सुषेण ने उन क्षेत्रों को अधिकृत कर राजा भरत को उससे अवगत कराया। राजा भरत ने उसे सत्कृत, सम्मानित कर विदा किया। वह अपने आवास पर आया, सुखोपभोग में अभिरत हुआ।

तत्पश्चात् एक दिन वह दिव्य चक्ररत्न शस्त्रागार से बाहर निकला। बाहर निकलकर आकाश में प्रतिपन्न—अधर स्थित हुआ। वह एक सहस्र योद्धाओं से संपरिवृत था—घिरा था। दिव्य वाद्यों की ध्वनि (एवं निनाद) से आकाश को व्याप्त करता था। वह चक्ररत्न सैन्य-शिविर के बीच से चला। उसने दक्षिण-पश्चिम दिशा में—नैऋत्य कोण में विनीता राजधानी की ओर प्रयाण किया।

राजा भरत ने चक्ररत्न को देखा। उसे देखकर वह हर्षित एवं परितुष्ट हुआ। उसने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा—देवानुप्रियो। आभिषेक्य हस्तिरत्न को तैयार करो (घोड़े, हाथी, रथ तथा श्रेष्ठ योद्धाओं—पदातियों से युक्त चातुरंगिणी सेना को सजाओ)। मेरे आदेशानुरूप यह सब संपादित कर मुझे सूचित करो।

कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा किया एवं राजा को उससे अवगत कराया।

विनीत-प्रत्यागमन

८३. तए णं से भरहे राया अज्जिअरज्जो णिज्जिअसत्तू उप्पण्णसमत्तरयणे चक्करयणप्पहाणे णवणिहिवई समिद्धकोसे बत्तीसरायवरसहस्साणुआयमग्गे सट्ठीए वरिससहस्सेहिं केवलकप्पं भरहं वासं ओयवेइ, ओअवेत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं हयगयरह० तहेव अंजणगिरिकूडसण्णिभं गयवइं णरवई दुरूढे।

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ, तंजहा—सोत्थिअ-सिरिवच्छ-(णंदिआवत्त-वद्धमाणग-भद्दासण-मच्छ-कलस) दप्पणे, तयणंतरं च णं पुण्णकलसभिंगार दिव्वा य छत्तपडागा (सचामरा दंसणरइअ आलोअ-दरिसणिज्जा वाउद्धुअविजयवेजयंती अब्भुस्सिआ गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए) संपट्ठिआ, तयणंतरं च वेरुलिअभिसंतविमलदंडं (पलंबकोरण्टमल्लदामोवसोहिअं चन्दमंडलनिभं समूसिअं विमलं आयवत्तं पवरं सीहासणं च मणिरयणपायपीढं सपाउआजोगसमाउत्तं बहुकिंकरकम्मकरपुरिसपायत्त-परिक्खित्तं पुरओ अहाणुपुव्वीए) संपट्ठिअं, तयणंतरं च णं सत्त एगिंदिअरयणा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिआ, तंजहा—चक्करयणे १, छत्तरयणे २, चम्मरयणे ३, दंडरयणे ४, असिरयणे ५, मणिरयणे ६, कागणिरयणे ७, तयणंतरं च णं णव महाणिहीओ पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ, तंजहा—णेसप्पे पंडुयए (पिंगलए सव्वरयणे महपउमे काले अ महाकाले माणवगे महानिही) संखे, तयणंतरं च णं सोलस देवसहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ, तयणंतरं च णं बत्तीसं रायवरसहस्सा अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ, तयणंतरं च णं सेणावइरयणे पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिए, एवं गाहावइरयणे, वद्धइरयणे, पुरोहिअरयणे, तयणंतरं च णं इत्थिरयणे पुरओ अहाणुपुव्वीए, तयणंतरं च णं बत्तीसं उडुकल्लाणिआ सहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए, तयणंतरं च णं बत्तीसं जणवयकल्लाणिआ सहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए०, तयणंतरं च णं बत्तीसं बत्तीसइबद्धा णाडगसहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए०, तयणंतरं च णं तिण्णि सट्ठा सूअसया पुरओ अहाणुपुव्वीए०, तयणंतरं च णं अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ पुरओ०, तयणंतरं च णं चउरासीइं आससयसहस्सा पुरओ०, तयणंतरं च णं चउरासीइं हत्थिसयसहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए०, तयणंतरं च णं छण्णउई मणुस्सकोडीओ पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ, तयणंतरं

च णं बहवे राईसरतलवर जाव[1] सत्थवाहप्पभिइओ पुरओ अहाणुव्वीइ संपट्ठिआ। तयणंतरं च णं बहवे असिग्गाहा लट्ठिग्गाहा कुंतग्गाहा चावग्गाहा चामरग्गाहा पासग्गाहा फलगग्गाहा परसुग्गाहा पोत्थयग्गाहा वीणग्गाहा कूअग्गाहा हडप्फग्गाहा दीविअग्गाहा सएहिं सएहिं रूवेहिं, एवं वेसेहिं चिंधेहिं निओएहिं सएहिं २ वत्थेहिं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिआ, तयणंतरं च णं बहवे दंडिणो मुंडिणो सिहंडिणो जडिणो पिच्छिणो हासकारगा खेड्डुकारगा दवकारगा चाडुकारगा कंदप्पिआ कुक्कुइआ मोहरिआ गायंता य दीवंता य (वायंता) नच्चंता य हसंता य रमंता य कीलंता य सासेंता य सावेंता य जावेंता य रावेंता य सोभेंता य सोभावेंता य आलोअंता य जयजयसद्दं च पउंजमाणा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ, एवं उववाइअगमेणं जाव तस्स रण्णो पुरओ महआसा आसधरा उभओ पासिं णागा णागधरा पिट्ठओ रहा रहसंगेल्ली अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ इति।

तए णं से भरहाहिवे णरिंदे हारोत्थयए सुकयरइअवच्छे जाव[2] अमरवइसण्णिभाए इड्ढीए पहिअकित्ती चक्करयणदेसिअमग्गे अणेगरायवरसहस्साणुआयमग्गे (महयाउक्किट्ठसीहणायबोलकल-कलरवेणं) समुद्दरवभूअंपिव करेमाणे २ सव्विड्ढीए सव्वजुईए जाव[3] णिग्घोसणाइयरवेणं गामागरण-गरखेडकब्बडमडंब-(दोणमुह-पट्टणासम-संवाह-सहस्समंडिआहिं) जोअणंतरिआहिं वसहीहिं वसमाणे २ जेणेव विणीया रायहाणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विणीआए रायहाणीए अदूरसामंते दुवालसजोअणायामं णवजोयणविच्छिण्णं (वरणगरसरिच्छं विजय-) खंधावारणिवेसं करइ, २ त्ता वद्धइरयणं सद्दावेइ २ त्ता जाव[4] पोसहसालं अणुपविसइ, २ त्ता विणीआए रायहाणीए अट्ठमभत्तं पगिण्हइ २ त्ता (पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी उम्मुक्कमणिसुवण्णो ववगयमालावण्ण-गविलेवणे णिक्खित्तसत्थमुसले दब्भसंथारोवगए) अट्ठमभत्तं पडिजागरमाणे २ विहरइ।

तए णं से भरहे राया अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता कोडुंबिअपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता तहेव जाव[5] अंजणगिरिकूडसण्णिभं गयवइं णरवई दूरूढे। तं चेव सव्वं जहा हेट्ठा णवरि णव महाणिहिओ चत्तारि सेणाओ ण पविसंति सेसो सो चेव गमो जाव णिग्घोसणाइएणं विणीआए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे जेणेव भवणवरवडिंसगपडिदुवारे तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं तस्स भरहस्स रण्णो विणीअं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं अणुपविसमाणस्स अप्पेगइआ देवा विणीअं रायहाणिं सब्भंतरबाहिरिअं आसिअसम्मज्जिओवलित्तं करेंति अप्पेगइआ मंचाइमंचकलिअं करेंति, एवं सेसेसुवि पएसु, अप्पेगइआ णाणाविहरागवसणुस्सियधयपडागा-मंडितभूमिअं अप्पेगइआ लाउल्लोइअमहिअं करेंति, अप्पेगइआ (कालागुरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूव-मघमघंत-गंधुद्धुयाभिरामं, सुगंधवरगंधियं) गंधवट्टिभूअं करेंति, अप्पेगइआ हिरण्णवासं वासिंति

१. देखें सूत्र संख्या ४४
२. देखें सूत्र ५४
३. देखें सूत्र ५२
४. देखें सूत्र संख्या ५०
५. देखें सूत्र-संख्या ५३

सुवण्णरयणवइरआभरणवासं वासेंति, तए णं तस्स भरहस्स रण्णो विणीअं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं अणुपविसमाणस्स सिंघाडग-(तिग-चउक्क-चच्चर-पणियावण-) महापहेसु बहवे अत्थत्थिआ कामत्थिआ भोगत्थिआ लाभत्थिआ इद्धिसिआ किब्बिसिआ कारोडिआ कारवाहिआ संखिया चक्किआ णंगलिआ मुहमंगलिआ पूसमाणया वद्धमाणया लंखमंखमाइआ ताहिं ओरालाहिं इट्ठाहिं कंताहिं पिआहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं सिवाहिं धण्णाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरीआहिं हिअयगमणिज्जाहिं हिअयपह्लायणिज्जाहिं वग्गूहिं अणुवरयं अभिणंदंता य अभिथुणंता य एवं वयासी—जय जय णंदा ! जय जय भद्दा ! भद्दं ते अजिअं जिणाहि जिअं पालयाहि जिअमज्झे वसाहि इंदो विव देवाणं चंदो विव ताराणं चमरो विव असुराणं धरणो विव नागाणं बहूइं पुव्वसयसहस्साइं बहूईओ पुव्वकोडीओ बहूईओ पुव्वकोडाकोडीओ विणीआए रायहाणीए चुल्लहिमवंतगिरिसागरमेरागस्स य केवलकप्पस्स भरहस्स वासस्स गामागरणगरखेडकब्बडमडंबदोणमुहपट्टणासमसण्णिवेसेसु सम्मं पयापालणोवज्जिअलद्धजसे महया जाव (आहेवच्चं, पोरेवच्चं, सामित्तं, भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहयनट्टगीयवाइयतंतीतलतालतुडियघणमुअंगपडुप्पवाइयरवेणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे) विहराहित्ति कट्टु जयजयसद्दं पउंजंति। तए णं से भरहे राया णयणमालासहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे २ वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे २ हिअयमालासहस्सेहिं उण्णंदिज्जमाणे २ मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे २ कंतिरूवसोहग्गगुणेहिं पिच्छिज्जमाणे २ अंगुलिमालासहस्सेहिं दाइज्जमाणे २ दाहिणहत्थेणं बहूणं णरणारीसहस्साहिं अंजलिमालासहस्साइं पडिच्छेमाणे २ भवणपंतीसहस्साइं समइच्छमाणे २ तंतीतलतुडिअगीअवाइअरवेणं मधुरेणं मणहरेणं मंजुमंजुणा घोसेणं अपडिबुज्झमाणे २ जेणेव सए गिहे जेणेव सए भवणवरवडिंसयदुवारे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आभिसेक्कं हत्थिरयणं ठवइ २ त्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ २ त्ता सोलस देवसहस्से सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता बत्तीसं रायसहस्से सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता सेणावइरयणं सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता एवं गाहावइरयणं वद्धइरयणं पुरोहियरयणं सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता तिण्णि सट्ठे सूअसए सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता अण्णेवि बहवे राईसर, जाव[1] सत्थवाहप्पभिइओ सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता पडिविसज्जेइ, इत्थीरयणेणं बत्तीसाए उडुकल्लाणिआसहस्सेहिं बत्तीसाए जणवयकल्लाणिआसहस्सेहिं बत्तीसाए बत्तीसइबद्धेहिं णाडयसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे भवणवरवडिंसगं अईइ जहा कुवेरो व्व देवराया कैलाससिहरिसिंगभूअंति, तए णं से भरहे राया मित्तणाइणिअगसयणसंबंधिपरिअणं पच्चुवेक्खइ २ त्ता जेणेव मज्जणगरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता जाव[2] मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव भोअणमंडवे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता भोअणमंडवंसि सुहासणवरगए अट्ठमभत्तं पारेइ २ त्ता उप्पिं पासायवरगए

---

१. देखें सूत्र ४४

२. देखें सूत्र ४५

फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं बत्तीसइबद्धेहिं णाडएहिं उवलालिज्जमाणे २ उवणच्चिज्जमाणे २ उवगिज्जमाणे २ महया जाव[1] भुंजमाणे विहरइ ।

[८३] राजा भरत ने इस प्रकार राज्य अर्जित किया—अधिकृत किया। शत्रुओं को जीता। उसके यहाँ समग्र रत्न उद्‌भूत हुए। चक्ररत्न उनमें मुख्य था। राजा भरत को नौ निधियाँ प्राप्त हुईं। उसका कोश—खजाना समृद्ध था—धन-वैभवपूर्ण था। बत्तीस हजार राजाओं से वह अनुगत था। उसने साठ हजार वर्षों में समस्त भरतक्षेत्र पर अधिकार कर लिया—भरतक्षेत्र को साध लिया।

तनदन्तर राजा भरत ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर उन्हें कहा—'देवानुप्रियो ! शीघ्र ही आभिषेक्य हस्तिरत्न को तैयार करो, हाथी, घोड़े, रथ तथा पदातियों से युक्त चातुरंगिणी सेना सजाओ। कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा किया, राजा को अवगत कराया। राजा स्नान आदि नित्य-नैमित्तिक कृत्यों से निवृत्त होकर अंजनगिरि के शिखर के समान उन्नत गजराज पर आरूढ हुआ। राजा के हस्तिरत्न पर आरूढ हो जाने पर स्वस्तिक, श्रीवत्स (नन्द्यावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, मत्स्य, कलश,) दर्पण—ये आठ मंगल-प्रतीक राजा के आगे चले—रवाना किये गये।

उनके बाद जल से परिपूर्ण कलश, भृंगार—झारियाँ, दिव्य छत्र, पताका, चंवर तथा दर्शन-रचित—राजा के दृष्टिपथ में अवस्थित—राजा को दिखाई देने वाली, आलोक-दर्शनीय—देखने में सुन्दर प्रतीत होने वाली, हवा से फहराती, उच्छ्रित—ऊँची उठी हुई, मानो आकाश को छूती हुई-सी विजय-वैजयन्ती—विजयध्वजा लिये राजपुरुष चले।

तदनन्तर वैडूर्य—नीलम की प्रभा से देदीप्यमान उज्ज्वल दंडयुक्त, लटकती हुई कोरंट पुष्पों की मालाओं से सुशोभित, चन्द्रमंडल के सदृश आभामय, समुच्छ्रित—ऊँचा फैलाया हुआ निर्मल आतपत्र—धूप से बचाने-वाला छत्र, अति उत्तम सिंहासन, श्रेष्ठ मणि-रत्नों से विभूषित—जिसमें मणियां तथा रत्न जड़े थे, जिस पर राजा की पादुकाओं की जोड़ी रखी थी, वह पादपीठ—राजा के पैर रखने का पीढ़ा, चौकी, जो (उक्त वस्तु-समवाय) किङ्करों—आज्ञा कीजिए, क्या करें—हरदम यों आज्ञा पालन में तत्पर सेवकों, विभिन्न कार्यों में नियुक्त भृत्यों तथा पदातियों—पैदल चलने वाले लोगों से घिरे थे, क्रमशः आगे रवाना किये गये।

तत्पश्चात् चक्ररत्न, छत्ररत्न, चर्मरत्न, दण्डरत्न, असिरत्न, मणिरत्न, काकणीरत्न—ये सात एकेन्द्रिय रत्न यथाक्रम चले। उनके पीछे क्रमशः नैसर्प, पाण्डुक, (पिंगलक, सर्वरत्न, महापद्म, काल, महाकाल, माणवक) तथा शंख—ये नौ निधियाँ चलीं। उनके बाद सोलह हजार देव चले। उनके पीछे बत्तीस हजार राजा चले। उनके पीछे सेनापतिरत्न, गाथापतिरत्न, वर्धकिरत्न तथा पुरोहितरत्न ने प्रस्थान किया। तत्पश्चात् स्त्रीरत्न—परम सुन्दरी सुभद्रा, बत्तीस हजार ऋतुकल्याणिकाएँ—जिनका स्पर्श ऋतु के प्रतिकूल रहता है—शीतकाल में उष्ण तथा ग्रीष्मकाल में शीतल रहता है, ऐसी राजकुलोत्पन्न कन्याएँ तथा बत्तीस हजार जनपदकल्याणिकाएँ—जनपद के अग्रगण्य पुरुषों की कन्याएँ यथाक्रम चलीं। उनके पीछे बत्तीस-बत्तीस अभिनेतव्य प्रकारों से परिबद्ध—संयुक्त बत्तीस हजार नाटक—नाटकमंडलियाँ प्रस्थित हुईं। तदनन्तर तीन सौ साठ सूपकार—रसोइये,

१. देखें सूत्र ४५

अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि जन—१. कुंभकार, २. पटेल—ग्रामप्रधान, ३. स्वर्णकार, ४. सूपकार, ५. गन्धर्व—संगीतकार—गायक, ६. काश्यपक—नापित, ७. मालाकार—माली, ८. कक्षकर, ९. ताम्बूलिक—ताम्बूल लगाने वाले—तमोली—ये नौ नारुक तथा १. चर्मकार—चमार—जूते बनाने वाले, २. यन्त्रपीलक—तेली, ३. ग्रन्थिक, ४. छिंपक—छींपे, ५. कांस्यक—कसेरे, ६. सीवक—दर्जी, ७. गोपाल—ग्वाले, ८. भिल्ल—भील तथा ९. धीवर—ये नौ कारुक—इस प्रकार कुल अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि जन चले।

उनके पीछे क्रमशः चौरासी लाख घोड़े, चौरासी लाख हाथी, छियानवै करोड़ मनुष्य—पदाति जन चले। तत्पश्चात् अनेक राजा—माण्डलिक नरपति, ईश्वर - ऐश्वर्यशाली या प्रभावशाली पुरुष, तलवर—राजसम्मानित विशिष्ट नागरिक, सार्थवाह आदि यथाक्रम चले।

तत्पश्चात् असिग्राह—तलवारधारी, लष्टिग्राह—लट्ठीधारी, कुन्तग्राह—भालाधारी, चापग्राह—धनुर्धारी, चमरग्राह—चँवर लिये हुए, पाशग्राह—उद्धत घोड़ों तथा बैलों को नियन्त्रित करने हेतु चाबुक आदि लिये हुए अथवा पासे आदि द्यूत-सामग्री लिये हुए, फलकग्राह—काष्ठपट्ट लिये हुए, परशुग्राह—कुल्हाड़े लिये हुए, पुस्तकग्राह—पुस्तकधारी—ग्रन्थ लिये हुए अथवा हिसाब-किताब रखने के वही-खाते आदि लिये हुए, वीणाग्राह—वीणा लिये हुए, कूप्यग्राह—पक्व तैलपात्र लिये हुए, हड़प्फग्राह—द्रम्म आदि सिक्कों के पात्र अथवा ताम्बूल हेतु पान के मसाले, सुपारी आदि के पात्र लिये हुए पुरुष तथा दीपिकाग्राह—मशालची अपने-अपने कार्यों के अनुसार रूप, वेश, चिह्न तथा वस्त्र आदि धारण किये हुए यथाक्रम चले।

उनके वाद वहुत से दण्डी—दण्ड धारण करने वाले, मुण्डी—सिरमुँडे, शिखण्डी—शिखाधारी, जटी—जटाधारी, पिच्छी—मयूरपिच्छ—मोरपंख आदि धारण किये हुए, हासकारक—हास-परिहास करने वाले—विदूषक—मसखरे, खेड्डुकारक—द्यूतविशेष में निपुण, द्रवकारक—क्रीडा करने वाले—खेल-तमाशे करने वाले, चाटुकारक—खुशामदी—खुशामदयुक्त प्रिय वचन वोलने वाले, कान्दर्पिक—कामुक या शृंगारिक चेष्टाएँ करने वाले, कौत्कुचिक—भांड आदि तथा मौखरिक—मुखर, वाचाल मनुष्य गाते हुए, खेल करते हुए, (तालियाँ बजाते हुए) नाचते हुए, हँसते हुए, पासे आदि द्वारा द्यूत आदि खेलने का उपक्रम करते हुए, क्रीडा करते हुए, दूसरों को गीत आदि सिखाते हुए, सुनाते हुए, कल्याणकारी वाक्य वोलते हुए, तरह-तरह की आवाजें करते हुए, अपने मनोज्ञ वेष आदि द्वारा शोभित होते हुए, दूसरों को शोभित करते हुए—प्रसन्न करते हुए, राजा भरत को देखते हुए, उनका जयनाद करते हुए यथाक्रम चलते गये।

यह प्रसंग विस्तार से औपपातिक सूत्र के अनुसार संग्राह्य है।

राजा भरत के आगे-आगे बड़े-बड़े कद्दावर घोड़े, घुड़सवार [गजारूढ़ राजा के] दोनों ओर हाथी, हाथियों पर सवार पुरुष चलते थे। उसके पीछे रथ-समुदाय यथावत् रूप में चलता था।

तव नरेन्द्र, भरतक्षेत्र का अधिपति राजा भरत, जिसका वक्षःस्थल हारों से व्याप्त, सुशोभित एवं प्रीतिकर था, अमरपति—देवराज इन्द्र के तुल्य जिसकी समृद्धि सुप्रशस्त थी, जिससे उसकी कीर्ति विश्रुत थी, समुद्र के गर्जन की ज्यों अत्यधिक उच्च स्वर से सिंहनाद करता हुआ, सब प्रकार की ऋद्धि तथा द्युति से समन्वित, भेरी—नगाड़े, झालर, मृदंग आदि अन्य वाद्यों की

ध्वनि के साथ सहस्रों ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्वट, मडम्ब (द्रोणमुख, आश्रम, संवाध) से युक्त मेदिनी को जीतता हुआ उत्तम, श्रेष्ठ रत्न भेंट के रूप में प्राप्त करता हुआ, दिव्य चक्ररत्न का अनुसरण करता हुआ, एक-एक योजन के अन्तर पर पड़ाव डालता हुआ, रुकता हुआ, जहाँ विनीता राजधानी थी, वहाँ आया। राजधानी से न अधिक दूर न अधिक समीप—थोड़ी ही दूरी पर बारह योजन लम्बा, नौ योजन चौड़ा (उत्तम नगर के सदृश) सैन्य-शिविर स्थापित किया। अपने उत्तम शिल्पकार को बुलाया।

यहाँ की वक्तव्यता पूर्वानुसार संग्राह्य है।

विनीता राजधानी को उद्दिष्ट कर—तदधिष्ठायक देव को साधने हेतु राजा ने तेले की तपस्या स्वीकार की। *(तपस्या स्वीकार कर पौषधशाला में पौषध लिया, ब्रह्मचर्य स्वीकार किया,* मणि-स्वर्णमय आभूषण शरीर से उतार दिये। माला, वर्णक—चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों के देहगत विलेपन दूर किये। शस्त्र—कटार आदि, मूसल—दण्ड, गदा आदि हथियार एक ओर रखे।) डाभ के विछौने पर अवस्थित राजा भरत तेले की तपस्या में प्रतिजागरित—सावधानतापूर्वक संलग्न रहा। तेले की तपस्या के पूर्ण हो जाने पर राजा भरत पौषधशाला से बाहर निकला। बाहर निकलकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, आभिषेक्य हस्तिरत्न को तैयार करने, स्नानघर में प्रविष्ट होने, स्नान करने आदि का वर्णन पूर्ववत् संग्राह्य है।

सभी नित्य-नैमित्तिक आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर राजा भरत अंजनगिरि के शिखर के के समान उन्नत गजपति पर आरूढ हुआ।

यहाँ से आगे का वर्णन विनीता राजधानी से विजय हेतु अभियान करने के वर्णन जैसा है। केवल इतना अन्तर है कि विनीता राजधानी में प्रवेश करने के अवसर पर नौ महानिधियों ने तथा चार सेनाओं ने राजधानी में प्रवेश नहीं किया। उनके अतिरिक्त सबने उसी प्रकार विनीता में प्रवेश किया, जिस प्रकार विजयाभियान के अवसर पर विनीता से निकले थे।

राजा भरत ने तुमुल वाद्य-ध्वनि के साथ विनीता राजधानी के बीचों-बीच चलते हुए जहाँ अपना पैतृक घर था, जगद्वर्ति निवास-गृहों में सर्वोत्कृष्ट प्रासाद का बाहरी द्वार था, उधर चलने का विचार किया, चला।

जब राजा भरत इस प्रकार विनीता राजधानी के बीच से निकल रहा था, उस समय कतिपय जन विनीता राजधानी के बाहर-भीतर पानी का छिड़काव कर रहे थे, गोबर आदि का लेप कर रहे थे, मंचातिमंच—सीढ़ियों से समायुक्त प्रेक्षागृहों की रचना कर रहे थे, तरह-तरह के रंगों के वस्त्रों से बनी, ऊँची, सिंह, चक्र आदि के चिह्नों से युक्त ध्वजाओं एवं पताकाओं से नगरी के स्थानों को सजा रहे थे। अनेक व्यक्ति नगरी की दीवारों को लीप रहे थे, पोत रहे थे। अनेक व्यक्ति काले अगर, उत्तम कुन्दरुक, लोबान आदि तथा धूप की गमगमाती महक से नगरी के वातावरण को उत्कृष्ट सुरभिमय बना रहे थे, जिससे सुगन्धित धूएँ की प्रचुरता के कारण गोल-गोल धूममय छल्ले बनते दिखाई दे रहे थे। कतिपय देवता उस समय चाँदी की वर्षा कर रहे थे। कई देवता स्वर्ण, रत्न, हीरों एवं आभूषणों की वर्षा कर रहे थे।

जब राजा भरत विनीता राजधानी के बीच से निकल रहा था तो नगरी के सिंघाटक—तिकोने स्थानों, (तिराहों, चौराहों, चत्वरों—जहाँ चार से अधिक रास्ते मिलते हों, ऐसे स्थानों, बाजारों,) महापथों—बड़ी-बड़ी सड़कों पर बहुत से अभ्यर्थी—धन के अभिलाषी, कामार्थी—सुख या मनोज्ञ शब्द, सुन्दर रूप के अभिलाषी, भोगार्थी—सुखप्रद गन्ध, रस एवं स्पर्श के अभिलाषी, लाभार्थी—मात्र भोजन के अभिलाषी, ऋद्धयेषिक—गोधन आदि ऋद्धि के अभिलाषी, किल्विषिक—भांड आदि, कापालिक—खप्पर धारण करने वाले भिक्षु, करबाधित—करपीडित—राज्य के कर आदि से कष्ट पाने वाले, शांखिक—शंख बजाने वाले, चाक्रिक—चक्रधारी, लांगलिक—हल चलाने वाले कृषक, मुखमांगलिक—मुँह से मंगलमय शुभ वचन बोलने वाले या खुशामदी, पुष्यमानव—मागध—भाट, चारण आदि स्तुतिगायक, वर्धमानक—औरों के कन्धों पर स्थित पुरुष, लंख—बांस के सिरे पर खेल दिखाने वाले—नट, मंख—चित्रपट दिखाकर आजीविका चलाने वाले, उदार—उत्तम, इष्ट—वाञ्छित, कान्त—कमनीय, प्रिय—प्रीतिकर, मनोज्ञ—मनोनुकूल, मनाम—चित्त को प्रसन्न करने वाली, शिव—कल्याणमयी, धन्य—प्रशंसायुक्त, मंगल—मंगलयुक्त, सश्रीक—शोभायुक्त—लालित्य-युक्त, हृदयगमनीय—हृदयंगम होने वाली—हृदय में स्थान प्राप्त करने वाली, हृदय-प्रह्लादनीय—हृदय को आह्लादित करने वाली वाणी से एवं मांगलिक शब्दों से राजा का अनवरत—लगातार अभिनन्दन करते हुए, अभिस्तवन करते हुए—प्रशस्ति करते हुए इस प्रकार बोले—जन-जन को आनन्द देने वाले राजन् ! आपकी जय हो, आपकी विजय हो। जन-जन के लिए कल्याणस्वरूप राजन् ! आप सदा जयशील हों। आपका कल्याण हो। जिन्हें नहीं जीता है, उन पर आप विजय प्राप्त करें। जिनको जीत लिया है, उनका पालन करें, उनके बीच निवास करें। देवों में इन्द्र की तरह, तारों में चन्द्र की तरह, असुरों में चमरेन्द्र की तरह तथा नागों में धरणेन्द्र की तरह लाखों पूर्व, करोड़ों पूर्व, कोडाकोडी पूर्व पर्यन्त उत्तर दिशा में लघु हिमवान् पर्वत तथा अन्य तीन दिशाओं में समुद्रों द्वारा मर्यादित सम्पूर्ण भरतक्षेत्र के ग्राम, आकर—नमक आदि के उत्पत्ति-स्थान, नगर—जिनमें कर नहीं लगता हो, ऐसे शहर, खेट—धूल के परकोटों से युक्त गाँव, कर्बट अति साधारण कस्बे, मंडम्ब—आसपास गाँव रहित बस्ती, द्रोणमुख—जल-मार्ग तथा स्थल-मार्ग से युक्त स्थान, पत्तन—बन्दरगाह अथवा बड़े नगर, आश्रम—तापसों के आवास, सन्निवेश—झोपड़ियों से युक्त बस्ती अथवा सार्थवाह तथा सेना आदि के ठहरने के स्थान—इन सबका—इन सब में बसने वाले प्रजाजनों का सम्यक्—भली-भाँति पालन कर यश अर्जित करते हुए, इन सबका आधिपत्य, पौरोवृत्य—अग्रेसरता या आगेवानी, स्वामित्व, भर्तृत्व—प्रभुत्व, महत्तरत्व—अधिनायकत्व, आज्ञेश्वरत्व-सैनापत्य—जिसे आज्ञा देने का सर्वाधिकार होता है, ऐसा सैनापत्य—सेनापतित्व—इन सबका सर्वाधिकृत रूप में सर्वथा निर्वाह करते हुए निर्बाध, निरन्तर अविच्छिन्न रूप में नृत्य, गीत, वाद्य, वीणा, करताल, तूर्य—तुरही एवं घन-मृदंग—बादल जैसी आवाज करने वाले मृदंग आदि के निपुणतापूर्ण प्रयोग द्वारा निकलती सुन्दर ध्वनियों से आनन्दित होते हुए, विपुल—प्रचुर—अत्यधिक भोग भोगते हुए सुखी रहें, यों कहकर उन्होंने जयघोष किया।

राजा भरत का सहस्रों नर-नारी अपने नेत्रों से बार-बार दर्शन कर रहे थे। सहस्रों नर-नारी अपने वचनों द्वारा बार-बार उसका अभिस्तवन—गुणसंकीर्तन कर रहे थे। सहस्रों नर-नारी हृदय से उसका बार-बार अभिनन्दन कर रहे थे। सहस्रों नर-नारी अपने शुभ मनोरथ—हम इनकी सन्निधि में रह पाएं, इत्यादि उत्सुकतापूर्ण मनःकामनाएँ लिये हुए थे। सहस्रों नर-नारी उसकी कान्ति—

देहदीप्ति, उत्तम सौभाग्य आदि गुणों के कारण—ये स्वामी हमें सदा प्राप्त रहें, बार-बार ऐसी अभिलापा करते थे।

नर-नारियों द्वारा अपने हजारों हाथों से उपस्थापित अंजलिमाला—प्रणामांजलियों को अपना दाहिना हाथ ऊँचा उठाकर बार-बार स्वीकार करता हुआ, घरों की हजारों पंक्तियों को लांघता हुआ, वीणा, ढोल, तुरही आदि वाद्यों की मधुर, मनोहर, सुन्दर ध्वनि में तन्म होता हुआ, उसका आनन्द लेता हुआ, जहाँ अपना घर था, अपने सर्वोत्तम प्रासाद का द्वार था, वहाँ आया। वहाँ आकर आभिषेक्य हस्तिरत्न को ठहराया, उससे नीचे उतरा। नीचे उतरकर सोलह हजार देवों का सत्कार किया, सम्मान किया। उन्हें सत्कृत-सम्मानित कर बत्तीस हजार राजाओं का सत्कार किया, सम्मान किया। उन्हें सत्कृत-सम्मानित कर सेनापतिरत्न, गाथापतिरत्न, वर्धकिरत्न तथा पुरोहितरत्न का सत्कार किया, सम्मान किया। उनका सत्कार-सम्मान कर तीन सौ साठ पाचकों का सत्कार-सम्मान किया, अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि-जनों का सत्कार-सम्मान किया। माण्डलिक राजाओं, ऐश्वर्यशाली, प्रभावशाली पुरुषों तथा सार्थवाहों आदि का सत्कार-सम्मान किया। उन्हें सत्कृत-सम्मानित कर सुभद्रा नामक स्त्रीरत्न, बत्तीस हजार ऋतु-कल्याणिकाओं तथा बत्तीस हजार जनपद-कल्याणिकाओं, बत्तीस-बत्तीस अभिनेतव्य विधिक्रमों से परिबद्ध बत्तीस हजार नाटकों से—नाटक-मण्डलियों से संपरिवृत राजा भरत कुबेर की ज्यों कैलास पर्वत के शिखर के तुल्य अपने उत्तम प्रासाद में गया। राजा ने अपने मित्रों—सुहृज्जनों, निजक—माता, भाई, बहिन आदि स्वजन—पारिवारिक जनों तथा श्वसुर, साले आदि सम्बन्धियों से कुशल-समाचार पूछे। वैसा कर वह जहाँ स्नानघर था, वहाँ गया। स्नान आदि संपन्न कर स्नानघर से बाहर निकला, जहाँ भोजन-मण्डप था, आया। भोजनमण्डप में आकर सुखासन से अथवा शुभ—उत्तम आसन पर बैठा, तेले की तपस्या का पारणा किया। पारणा कर अपने महल में गया। वहाँ मृदंग बज रहे थे। बत्तीस-बत्तीस अभिनेतव्य विधिक्रम से नाटक चल रहे थे, नृत्य हो रहे थे। यों नाटककार, नृत्यकार, संगीतकार राजा का मनोरंजन कर रहे थे, गीतों द्वारा राजा का कीर्ति-स्तवन कर रहे थे। राजा उनका आनन्द लेता हुआ सांसारिक सुख का भोग करने लगा।

राज्याभिषेक

८४. तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अण्णया कयाइ रज्जधुरं चिंतेमाणस्स इमेआरूवे (अब्भत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था) अभिजिए णं मए णिअगबलवीरिअपुरिसक्कार-परक्कमेण चुल्लहिमवंतगिरिसागरमेराए केवलकप्पे भरहे वासे, तं सेयं खलु मे अप्पाणं महया रायाभिसेएणं अभिसेएणं अभिसिंचावित्तएत्ति कट्टु एवं संपेहेति २ त्ता कल्लं पाउप्पभाए (रयणीए फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियम्मि अह पंडुरे पहाए रत्तासोगप्पगास-किंसुय-सुयमुह-गुंजद्धरागसरिसे कमलागर-संड-बोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा) जलंते जेणेव मज्जणघरे जाव पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीअति, णिसीइत्ता सोलस देवसहस्से बत्तीसं रायवरसहस्से

सेणावइरयणे (गाहावइरयणे वद्धइरयणे) पुरोहियरयणे तिण्णि सट्ठे सूअसए अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ अण्णे अ बहवे राईसरतलवर जाव[1] सत्थवाहप्पभिइओ सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—'अभिजिए णं देवाणुप्पिआ ! मए णिअगबलवीरिय-(पुरिसक्कारपरक्कमेण चुल्लहिमवंतगिरिसागरमेराए) केवलकप्पे भरहे वासे। तं तुब्भे णं देवाणुप्पिआ ! ममं महयारायाभिसेयं विअरह।' तए णं से सोलस देवसहस्सा (बत्तीसं रायवरसहस्सा सेणावइरयणे जाव पुरोहियरयणे तिण्णि सट्ठे सूअसए अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ अण्णे अ बहवे राईसरतलवर जाव सत्थवाह-) पभिइओ भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठकरयलमत्थए अंजलिं कट्टु भरहस्स रण्णो एअमट्ठं सम्मं विणएणं पडिसुणेंति। तए णं से भरहे राया जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता जाव पडिजागरमाणे विहरइ।

तए णं से भरहे राया अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि आभिओगिए देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! विणीआए रायहाणीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एगं महं अभिसेअमंडवं विउव्वेह २ त्ता मम एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणह, तए णं ते आभिओगा देवा भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा जाव[2] एवं सामित्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता विणीआए रायहाणीए उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति २ त्ता वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणंति २ त्ता संखिज्जाइं जोअणाइं दंडं णिसिरंति, तंजहा—(वइराणं वेरुलिआणं लोहिअक्खाणं मसारगल्लाणं हंसगब्भाणं पुलयाणं सोगन्धिआणं जोईरसाणं अंजणाणं अंजणपुलयाणं जायरूवाणं अंकाणं फलिहाणं) रिट्ठाणं अहाबायरे पुग्गले परिसाडेंति २ त्ता अहासुहुमे पुग्गले परिआदिअंति २ त्ता दुच्चंपि वेउव्विय-समुग्घायेणं (संखिज्जाइं जोअणाइं दंडं णिसिरंति, तंजहा—अहाबायरे पुग्गले परिसाडेंति २ त्ता अहासुहुमे पुग्गले परिआदिअंति २ त्ता दुच्चंपि वेउव्वियसमुग्घायेणं) समोहणंति २ त्ता बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं विउव्वंति, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा०। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झ-देसभाए एत्थ णं महं एगं अभिसेअमण्डवं विउव्वंति—अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं (अब्भुग्गयं सुकयवइर-वेइयातोरणवररचियसालिभंजियागं सुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठसंठियपसत्थ-वेरुलियविमलखंभं णाणामणि-कणगरयणखचियउज्जलं बहुसमसुविभत्तदेसभागं ईहामियउसभतुरगणरमगरविहगवालगकिन्नररुरुसर-भचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्तं कंचणमणिरयणथूभियागं णाणाविहपंचवण्णघंटापडागपरि-मंडियग्गसिहरधवलं मरीइकवयं विणिमुयंतं लाउलोइयमहियं गोसीसरत्तचंदणदद्दरदिन्नपंचंगुलितलं उवचियचंदणकलसं चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागं आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदाम-कलावं पंचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं, कालागुरुपवरकुंदरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंतं गंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधियं) गंधवट्टिभूअं पेच्छाघरमंडववण्णगोत्ति तस्स णं अभिसेअमंडवस्स

---

१. देखें सूत्र संख्या ४४
२. देखें सूत्र संख्या ४४

बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगं अभिसेअपेढं विउव्वंति अच्छं सण्हं, तस्स णं अभिसेअपेढस्स तिदिसिं तओ तिसोवाणपडिरूवए विउव्वंति, तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं अयमेआरूवे वण्णावासे पण्णत्ते। (तेसिं णं तिसोवाणपडिरूवगाणं झया छत्ता य नेवत्था) तस्स णं अभिसेअपेढस्स बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगं सीहासणं विउव्वंति। तस्स णं सीहासणस्स अयमेवारूवे वण्णावासे पण्णत्ते जाव दामवण्णगं समत्तंति। तए णं ते देवा अभिसेअमंडवं विउव्वंति २ त्ता जेणेव भरहे राया (तमाणत्तिअं) पच्चप्पिणंति।

तए णं से भरहे राया आभिओगाणं देवाणं अंतिए एअमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव[1] पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता कोडंबिअपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह २ त्ता हयगय (रहपवरजोहकलिअं चाउरंगिणिं सेण्णं) सण्णाहेत्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणह जाव[2] पच्चपिण्णंति। तए णं भरहे राया मज्जणघरं अणुपविसइ जाव[3] अंजणगिरिकूडसण्णिभं गयवइं णरवई आरूढे। तए णं तस्स भरहस्स रण्णो आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठमंगलगा जो चेव गमो विणीअं पविसमाणस्स सो चेव णिक्खममाणस्स वि जाव अपडिबुज्झमाणे विणीअं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ २ त्ता जेणेव विणीआए रायहाणीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अभिसेअमंडवे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अभिसेअमंडव-दुआरे आभिसेक्कं हत्थिरयणं ठावेइ २ त्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ २ त्ता इत्थीरयणेणं बत्तीसाए उडुकल्लाणिआसहस्सेहिं बत्तीसाए जणवयकल्लाणिआसहस्सेहिं बत्तीसाए बत्तीसइबद्धेहिं णाडगसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे अभिसेअमंडवं अणुपविसइ २ त्ता जेणेव अभिसेयपेढे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अभिसेअपेढं अणुप्पदाहिणीकरेमाणे २ पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं दूरूहइ २ त्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णेत्ति। तए णं तस्स भरहस्स रण्णो बत्तीसं रायसहस्सा जेणेव अभिसेअमण्डवे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता अभिसेअमंडवं अणुपविसंति २ त्ता अभिसेअपेढं अणुप्पयाहिणीकरेमाणा २ उत्तरिल्लं तिसोवाणपडिरूवएणं जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति २ त्ता करयल जाव[4] अंजलिं कट्टु भरहं रायाणं जएणं विजएणं वद्धावेंति २ त्ता भरहस्स रण्णो णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणा (णमंसमाणा अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा) पज्जुवासंति। तए णं तस्स भरहस्स रण्णो सेणावइरयणे (गाहावइरयणे वद्धइरयणे पुरोहियरयणे तिण्णि सट्ठे सूअसए अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ अण्णे अ बहवे राईसरतलवर) सत्थवाहप्पभिईओ ते ऽवि तह चेव णवरं दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं (णमंसंति अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा) पज्जुवासंति। तए णं से भरहे राया आभिओगे देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! ममं महत्थं महग्घं महरिहं महारायाअभिसेअं उवट्ठवेह।

१. देखें सूत्र संख्या ४४
२. देखें सूत्र यही
३. देखें सूत्र संख्या ५३
४. देखें सूत्र संख्या ४४

तए णं ते आभिओगिआ देवा भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठचित्ता जाव[1] उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणंति, एवं जहा विजयस्स तहा इत्थंपि जाव पंडगवणे एगओ मिलायंति एगओ मिलाइत्ता जेणेव दाहिणद्धभरहे वासे जेणेव विणीआ रायहाणी तेणेव उवागच्छंति २ त्ता विणीअं रायहाणिं अणुप्पयाहिणीकरेमाणा २ जेणेव अभिसेअमंडवे जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति २ त्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं महारायाभिसेअं उवट्ठवेंति। तए णं तं भरहं रायाणं बत्तीसं रायसहस्सा सोभणंसि तिहिकरणदिवसणक्खत्तमुहुत्तंसि उत्तरपोट्ठवयाविजयंसि तेहिं साभाविएहि अ उत्तरवेउव्विएहि अ वरकमलपइट्ठाणेहिं सुरभिवरवारिपडिपुण्णेहिं जाव महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचंति, अभिसेओ जहा विजयस्स, अभिसिंचित्ता पत्तेअं २ जाव[2] अंजलिं कट्टु ताहिं इट्ठाहिं जहा पविसंतस्स भणिआ (भद्दं ते, अजिअं जिणाहि जिअं पालयाहि, जिअमज्झे वसाहि, इंदो विव देवाणं चंदो विव ताराणं चमरो विव असुराणं धरणो विव नागाणं बहूइं पुव्वसय-सहस्साइं बहूईओ पुव्वकोडीओ बहूईओ पुव्वकोडाकोडीओ विणीआए राहाणीए चुल्लहिमवंतगिरि-सागरमेरागस्स य केवलकप्पस्स भरहस्स वासस्स गामागरणगरखेडकब्बडमडंबदोणमुहपट्टणासम-सण्णिवेसेसु सम्मं पयापालणोवज्जिअलद्धजसे महया जाव आहेवच्चं पोरेवच्चं) विहराहित्ति कट्टु जयजयसद्दं पउंजंति।

तए णं तं भरहं रायाणं सेणावइरयणे (गाहावइरयणे वद्धइरयणे) पुरोहियरयणे तिण्णि अ सट्ठा सूअसया अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ अण्णे अ बहवे जाव[3] सत्थवाहप्पभिइओ एवं चेव अभिसिंचंति वरकमलपइट्ठाणेहिं तहेव (ओरालाहिं इट्ठाहिं कंताहिं पिआहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं सिवाहिं धण्णाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरीआहिं हिअयगमणिज्जाहिं हिअयपल्हायणिज्जाहिं वग्गूहिं अणुवरयं अभिणंदंति य) अभिथुणंति अ सोलस देवसहस्सा एवं चेव णवरं पम्हलसुकुमालाए गन्धकासाइआए गायाइं लूहेंति सरसगोसीसचन्दणेणं गायाइं अणुलिंपंति २ त्ता नासाणीसासवायवोज्झं चक्खुहरं वण्णफरिसजुत्तं हयलालापेलवाइरेगं धवलं कणगखइअंतकम्मं आगासफलिहसरिसप्पभं अहयं दिव्वं देवदूसजुअलं णिअंसावेंति २ त्ता हारं पिणद्धेंति २ त्ता एवं अद्धहारं एगावलिं मुत्तावलिं रयणावलिं पालंब-अंगयाइं तुडिआइं कडयाइं दसमुद्दिआणंतगं कडिसुत्तगं वेअच्छगसुत्तगं मुरविं कंठमुरविं कुंडलाइं चूडामणिं चित्तरयणुक्कडंति) मउडं पिणद्धेंति। तयणंतरं गंधेहिं च णं दद्दरमलयसुगंधिएहिं गंधेहिं गायाइं अब्भुक्खेंति दिव्वं च सुमणोदामं पिणद्धेंति, किं बहुणा? गंट्ठिमवेढिम (पूरिम-संघाइमेणं चउव्विहेणं मल्लेणं कप्परुक्खयंपिव समलंकिय-) विभूसिअं करेंति।

तए णं से भरहे राया महया २ रायाभिसेएणं अभिसिंचिए समाणे कोडुंबिअपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! हत्थिखंधवरगया विणीआए रायहाणीए

---

१. देखें सूत्र संख्या ४४
२. देखें सूत्र संख्या ४४
३. देखें सूत्र संख्या ४४

सिंघाडगतिगचउक्कचच्चर जाव महापहपहेसु महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणा २ उस्सुक्कं उक्करं उक्किट्ठं अदिज्जं अमिज्जं अब्भडपवेसं अदंडकुदंडिमं (अधरिमं गणिआवरणाडइज्जकलियं अणेगताला-यराणुचरियं अणुद्धअमुइंगं अमिलाय-मल्लदामं पमुइय-पक्कीलियं) सपुरजणवयं दुवालससंवच्छरिअं पमोअं घोसेह २ ममेअमाणत्तिअं पच्चप्पिणहत्ति, तए णं ते कोडुंबिअपुरिसा भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिआ पीइमणा हरिसवसविसप्पमाणहियया विणएणं वयणं पडिसुणेंति २ त्ता खिप्पामेव हत्थिखंधवरगया (विणीयाए रायहाणीए सिंघाडगतिगचउक्कचच्चर जाव महापहपहेसु महया २ सद्देणं) घोसंति २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणंति।

तए णं से भरहे राया महया २ रायाभिसेएणं अभिसित्ते समाणे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता इत्थिरयणेणं (उडुकल्लाणिआसहस्सेहिं जणवयकल्लाणिआसहस्सेहिं बत्तीसं बत्तीसइबद्धेहिं) णाडगसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे अभिसेअपेढाओ पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहइ २ त्ता अभिसेअमंडवाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अंजणगिरिकूडसण्णिभं गयवइं जाव[1] दूरूढे। तए णं तस्स भरहस्स रण्णो बत्तीसं रायसहस्सा अभिसेअपेढाओ उत्तरिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति, तए णं तस्स भरहस्स रण्णो सेणावइरयणे जाव[2] सत्थवाहप्पभिईओ अभिसेअपेढाओ दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति, तए णं तस्स भरहस्स रण्णो आभिसेक्कं हत्थिरयणं दूरूढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ जाव संपत्थिआ, जोऽवि अ अइगच्छमाणस्स गमो पढमो कुबेरावसाणो सो चेव इहंपि कमो सक्कारजढो णेअव्वो जाव कुबेरोव्व देवराया कैलासं सिहरिसिंगभूअंति। तए णं से भरहे राया मज्जणघरं अणुपविसइ २ त्ता जाव[3] भोअणमंडवंसि सुहासणवरगए अट्ठमभत्तं पारेइ २ त्ता भोअणमंडवाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं (बत्तीसइबद्धेहिं णाडएहिं उवलालिज्जमाणे २ उवणच्चिज्जमाणे २ उवगिज्जमाणे २ विउलाइं भोगभोगाइं) भुंजमाणे विहरइ।

तए णं से भरहे राया दुवालससंवच्छरिअंसि पमोअंसि णिव्वत्तंसि समाणंसि जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता जाव[4] मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला (जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता) सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीअइ २ त्ता सोलस देवसहस्से सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता पडिविसज्जेइ २ त्ता बत्तीसं रायवरसहस्सा सक्कारेइ

---

१. देखें सूत्र ५३
२. देखें सूत्र यही
३. देखें सूत्र ४४
४. देखें सूत्र ४४

सम्माणेइ २ त्ता सेणावइरयणं सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता जाव[1] पुरोहियरयणं सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता एवं तिण्णि सट्ठं सूवआरसए अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता अण्णे बहवे राईसरतलवर जाव[2] सत्थवाहप्पभिइओ सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता पडिविसज्जेति २ त्ता उप्पि पासायवरगए जाव[3] विहरइ ।

[८४] राजा भरत अपने राज्य का दायित्व सम्हाले था। (एक दिन उसके मन में ऐसा भाव, चिन्तन, आशय तथा संकल्प उत्पन्न हुआ—) मैंने अपने बल, वीर्य, पौरुष एवं पराक्रम द्वारा एक ओर लघु हिमवान् पर्वत एवं तीन ओर समुद्रों से मर्यादित समस्त भरतक्षेत्र को जीत लिया है। इसलिए अब उचित है, मैं विराट् राज्याभिषेक-समारोह आयोजित करवाऊं, जिसमें मेरा राजतिलक हो। उसने ऐसा विचार किया।

(रात बीत जाने पर, नीले तथा अन्य कमलों के सुहावने रूप में खिल जाने पर, उज्ज्वल प्रभा एवं लाल अशोक, किंशुक के पुष्प, तोते की चोंच, घुंघची के आधे भाग के रंग के सदृश लालिमा लिये हुए, कमल वन को उद्बोधित—विकसित करने वाले, सहस्रकिरणयुक्त, दिन के प्रादुर्भावक सूर्य के उदित होने पर, अपने तेज से उद्दीप्त होने पर) दूसरे दिन राजा भरत, जहाँ स्नानघर था, वहाँ आया। स्नान आदि कर बाहर निकला, जहाँ बाह्य उपस्थानशाला थी, सिंहासन था, वहाँ आया, पूर्व की ओर मुंह किये सिंहासन पर बैठा। सिंहासन पर बैठकर उसने सोलह हजार आभियोगिक देवों, बत्तीस हजार प्रमुख राजाओं, सेनापतिरत्न, (गाथापतिरत्न, वर्धकिरत्न,) पुरोहितरत्न, तीन सौ साठ सूपकारों, अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि जनों तथा अन्य बहुत से माण्डलिक राजाओं, ऐश्वर्यशाली एवं प्रभावशील पुरुषों, राजसम्मानित विशिष्ट नागरिकों और सार्थवाहों को—अनेक छोटे व्यापारियों को साथ लिये देशान्तर में व्यापार-व्यवसाय करनेवाले बड़े व्यापारियों को बुलाया। बुलाकर उसने कहा—'देवानुप्रियो ! मैंने अपने बल, वीर्य, (पौरुष तथा पराक्रम द्वारा एक ओर लघु हिमवान् पर्वत से तथा तीन ओर समुद्रों से मर्यादित) समग्र भरतक्षेत्र को जीत लिया है। देवानुप्रियो ! तुम लोग मेरे राज्याभिषेक के विराट् समारोह की रचना करो—तैयारी करो।

राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर वे सोलह हजार आभियोगिक देव (बत्तीस हजार प्रमुख राजा, सेनापतिरत्न, गाथापतिरत्न, वर्धकिरत्न, पुरोहितरत्न, तीन सौ साठ सूपकार, अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि जन तथा अन्य बहुत से माण्डलिक राजा, ऐश्वर्यशाली, प्रभावशील पुरुष, राज-सम्मानित विशिष्ट नागरिक, सार्थवाह) आदि बहुत हर्षित एवं परितुष्ट हुए। उन्होंने हाथ जोड़े, उन्हें मस्तक से लगाया। ऐसा कर राजा भरत का आदेश विनयपूर्वक स्वीकार किया।

तत्पश्चात् राजा भरत जहाँ पौषधशाला थी, वहाँ आया, तेले की तपस्या स्वीकार की। तेले की तपस्या में प्रतिजागरित रहा। तेले की तपस्या पूर्ण हो जाने पर उसने आभियोगिक देवों का आह्वान किया। आह्वान कर उसने कहा—'देवानुप्रियो ! विनीता राजधानी के उत्तर-पूर्व दिशाभाग

---

१. देखें सूत्र यही

२. देखें सूत्र ४४

३. देखें सूत्र यही

में—ईशानकोण में एक विशाल अभिषेकमण्डप की विकुर्वणा करो—वैक्रियलब्धि द्वारा रचना करो। वैसा कर मुझे अवगत कराओ।' राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर वे आभियोगिक देव अपने मन में हर्षित एवं परितुष्ट हुए। "स्वामी ! जो आज्ञा।" यों कहकर उन्होंने राजा भरत का आदेश विनयपूर्वक स्वीकार किया। स्वीकार कर विनीता राजधानी के उत्तर-पूर्व दिशाभाग में—ईशानकोण में गये। वहाँ जाकर वैक्रिय समुद्घात द्वारा अपने आत्मप्रदेशों को बाहर निकाला। आत्मप्रदेशों को बाहर निकाल कर उन्हें संख्यात योजन पर्यन्त दण्डरूप में परिणत किया। उनसे गृह्यमाण (हीरे, वैडूर्य, लोहिताक्ष, मसारगल्ल, हंसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, ज्योतिरस, अंजन, अंजनपुलक, स्वर्ण, अंक, स्फटिक), रिष्ट—आदि रत्नों के बादर—स्थूल, असार पुद्गलों को छोड़ दिया। उन्हें छोड़ कर सारभूत सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण किया। उन्हें ग्रहण कर पुनः वैक्रिय समुद्घात द्वारा अपने आत्मप्रदेशों को बाहर निकाला। बाहर निकाल कर मृदंग के ऊपरी भाग की ज्यों समतल, सुन्दर भूमिभाग की विकुर्वणा की—वैक्रियलब्धि द्वारा रचना की। उसके ठीक बीच में एक विशाल अभिषेक-मण्डप की रचना की।

वह अभिषेक-मण्डप सैकड़ों खंभों पर टिका था। (वह अभ्युद्गत—बहुत ऊँचा था। वह हीरों से सुरचित वेदिकाओं, तोरणों एवं सुन्दर पुतलियों से सुसज्जित था। वह सुश्लिष्ट—सुन्दर, सुहावने, विशिष्ट, रमणीय आकारयुक्त, प्रशस्त, उज्ज्वल वैडूर्यमणि निर्मित स्तंभों पर संस्थित था। उसका भूभिभाग नाना प्रकार की देदीप्यमान मणियों से खचित—जड़ा हुआ, सुविभक्त एवं अत्यधिक समतल था। वह ईहामृग—भेड़िया, वृषभ—बैल, तुरंग—घोड़ा, मनुष्य, मगरमच्छ, विहंग—पक्षी, व्यालक—सांप, किन्नर, रुरु—कस्तूरीमृग, शरभ—अष्टापद, चमर—चँवरी गाय, कुंजर—हाथी, वनलता एवं पद्मलता आदि के विविध चित्रों से युक्त था। उस पर स्वर्ण, मणि तथा रत्न रचित स्तूप बने थे। उसका उच्च धवल शिखर अनेक प्रकार की घंटियों एवं पांच रंग की पताकाओं से परिमंडित था—विभूषित था। वह किरणों की ज्यों अपने से निकलती आभा से देदीप्यमान था। उसका आंगन गोबर से लिपा था तथा दीवारें चूने से—कलई से पुती थीं। उस पर ताजे गोशीर्ष तथा लाल चन्दन के पांचों अंगुलियों एवं हथेली सहित हाथ के थापे लगे थे। उसमें चन्दन-चर्चित कलश रखे थे। उसका प्रत्येक द्वार तोरणों एवं कलशों से सुसज्जित था। उसकी दीवारों पर जमीन से ऊपर तक के भाग को छूती हुई बड़ी-बड़ी गोल तथा लम्बी पुष्पमालाएँ लगी थीं। पांच रंगों के सरस—ताजे, सुरभित पुष्पों से वह सजा था। काले अगर, उत्तम कुन्दरुक, लोबान एवं धूप की गमगमाती महक से वहाँ का वातावरण उत्कृष्ट सुरभिमय बना था, जिससे सुगन्धित धुएँ की प्रचुरता के कारण वहाँ गोल-गोल धूममय छल्ले बनते दिखाई देते थे।

अभिषेकमण्डप के ठीक बीच में एक विशाल अभिषेकपीठ की रचना की। वह अभिषेकपीठ स्वच्छ—रजरहित तथा श्लक्षण—सूक्ष्म पुद्गलों से बना होने से मुलायम था। उस अभिषेकपीठ की तीन दिशाओं में उन्होंने तीन-तीन सोपानमार्गों की रचना की। (उन्हें ध्वजाओं, छत्रों तथा वस्त्रों से सजाया।) उस अभिषकपीठ का भूमिभाग बहुत समतल एवं रमणीय था। उस अत्यधिक समतल, सुन्दर भूमिभाग के ठीक बीच में उन्होंने एक विशाल सिंहासन का निर्माण किया।

सिंहासन का वर्णन विजयदेव के सिंहासन जैसा है।

यों उन देवताओं ने अभिषेकमण्डप की रचना की। अभिषेकमण्डप की रचना कर वे जहाँ राजा भरत था, वहाँ आये। उसे इससे अवगत कराया।

राजा भरत उन आभियोगिक देवों से यह सुनकर हर्षित एवं परितुष्ट हुआ, पौषधशाला से बाहर निकला। बाहर निकल कर उसने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर यों कहा—'देवानुप्रियो! शीघ्र ही हस्तिरत्न को तैयार करो। हस्तिरत्न को तैयार कर घोड़े, हाथी, रथ तथा श्रेष्ठ योद्धाओं से—पदातियों से परिगठित चातुरंगिणी सेना को सजाओ। ऐसा कर मुझे अवगत कराओ।' कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा किया एवं राजा को उसकी सूचना दी।

फिर राजा भरत स्नानघर में प्रविष्ट हुआ। स्नानादि से निवृत्त होकर अंजनगिरि के शिखर के समान उन्नत गजराज पर आरूढ हुआ। राजा भरत के आभिषेक्य हस्तिरत्न पर आरूढ हो जाने पर आठ मंगल-प्रतीक, जिनका वर्णन विनीता राजधानी में प्रवेश करने के अवसर पर आया है, राजा के आगे-आगे रवाना किये गये। राजा के विनीता राजधानी से अभिनिष्क्रमण का वर्णन उसके विनीता में प्रवेश के वर्णन के समान है।

राजा भरत विनीता राजधानी के बीच से निकला। निकल कर जहाँ विनीता राजधानी के उत्तर-पूर्व दिशाभाग में—ईशानकोण में अभिषेकमण्डप था, वहाँ आया। वहाँ आकर अभिषेकमण्डप के द्वार पर आभिषेक्य हस्तिरत्न को ठहराया। ठहराकर वह हस्तिरत्न से नीचे उतरा। नीचे उतर कर स्त्रीरत्न—परम सुन्दरी सुभद्रा, बत्तीस हजार ऋतुकल्याणिकाओं, बत्तीस हजार जनपद-कल्याणिकाओं, बत्तीस-बत्तीस पात्रों, अभिनेतव्य क्रमोपक्रमों से अनुबद्ध बत्तीस हजार नाटकों—नाटक-मंडलियों से संपरिवृत—घिरा हुआ राजा भरत अभिषेकमण्डप में प्रविष्ट हुआ। प्रविष्ट होकर जहाँ अभिषेकपीठ था, वहाँ आया। वहाँ आकर उसने अभिषेकपीठ की प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वह पूर्व की ओर स्थित तीन सीढ़ियों से होता हुआ जहाँ सिंहासन था, वहाँ आया। वहाँ आकर पूर्व की ओर मुँह करके सिंहासन पर बैठा।

फिर राजा भरत के अनुगत बत्तीस हजार प्रमुख राजा, जहाँ अभिषेकमण्डप था, वहाँ आये। वहाँ आकर उन्होंने अभिषेकमण्डप में प्रवेश किया। प्रवेश कर अभिषेकपीठ की प्रदक्षिणा की, उसके उत्तरवर्ती त्रिसोपानमार्ग से, जहाँ राजा भरत था, वहाँ आये। वहाँ आकर उन्होंने हाथ जोड़े, अंजलि बाँधे राजा भरत को जय-विजय शब्दों द्वारा वर्धापित किया। वर्धापित कर राजा भरत के न अधिक समीप, न अधिक दूर—थोड़ी ही दूरी पर शुश्रूषा करते हुए—राजा का वचन सुनने की इच्छा रखते हुए, प्रणाम करते हुए, विनयपूर्वक सामने हाथ जोड़े हुए, राजा की पर्युपासना करते हुए यथास्थान बैठ गये।

तदनन्तर राजा भरत का सेनापतिरत्न, (गाथापतिरत्न, वर्धकिरत्न, पुरोहितरत्न, तीन सौ साठ सूपकार, अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि जन तथा और बहुत से माण्डलिक राजा, ऐश्वर्यशाली, प्रभावशील पुरुष, राजसम्मानित नागरिक) सार्थवाह आदि वहाँ आये।

उनके आने का वर्णन पूर्ववत् संग्राह्य है। केवल इतना अन्तर है कि वे दक्षिण की ओर के त्रिसोपान-मार्ग से अभिषेकपीठ पर गये। (राजा को प्रणाम किया, विनयपूर्वक सामने हाथ जोड़े हुए) राजा की पर्युपासना करने लगे—राजा की सेवा में उपस्थित हुए।

तत्पश्चात् राजा भरत ने आभियोगिक देवों का आह्वान किया। आह्वान कर उनसे कहा—देवानुप्रियो! मेरे लिए महार्थ—जिसमें मणि, स्वर्ण, रत्न आदि का उपयोग हो, महार्घ—जिसमें

बहुत बड़ा पूजा-सत्कार हो—बहुमूल्य वस्तुओं का उपयोग हो, महार्ह—जिसके अन्तर्गत गाजों-बाजों सहित बहुत बड़ा उत्सव मनाया जाए, ऐसे महाराज्याभिषेक का प्रबन्ध करो - व्यवस्था करो।

राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर वे आभियोगिक देव हर्षित एवं परितुष्ट हुए। वे उत्तर-पूर्व दिशाभाग में—ईशान-कोण में गये। वहाँ जाकर वैक्रिय समुद्घात द्वारा उन्होंने आत्मप्रदेशों को बाहर निकाला।

जम्बूद्वीप के विजयद्वार के अधिष्ठाता विजयदेव के प्रकरण में जो वर्णन आया है, वह यहाँ संग्राह्य है।

वे देव पंडकवन में एकत्र हुए, मिले। मिलकर जहाँ दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र था, जहाँ विनीता राजधानी थी, वहाँ आये। आकर विनीता राजधानी की प्रदक्षिणा की, जहाँ अभिषेकमण्डप था, जहाँ राजा भरत था, वहाँ आये। आकर महार्थ, महार्घ तथा महार्ह महाराज्याभिषेक के लिए अपेक्षित समस्त सामग्री राजा के समक्ष उपस्थित की। बत्तीस हजार राजाओं ने शोभन—उत्तम, श्रेष्ठ तिथि, करण, दिवस, नक्षत्र एवं मुहूर्त में—उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र तथा विजय नामक मुहूर्त में स्वाभाविक तथा उत्तरविक्रिया द्वारा—वैक्रियलब्धि द्वारा निष्पादित, श्रेष्ठ कमलों पर प्रतिष्ठापित, सुरभित, उत्तम जल से परिपूर्ण एक हजार आठ कलशों से राजा भरत का बड़े आनन्दोत्सव के साथ अभिषेक किया।

अभिषेक का परिपूर्ण वर्णन विजयदेव के अभिषेक के सदृश है।[1]

उन राजाओं में से प्रत्येक ने इष्ट—प्रिय वाणी द्वारा राजा का अभिनन्दन, अभिस्तवन किया। वे बोले—राजन्! आप सदा जयशील हों। आपका कल्याण हो। (जिन्हें नहीं जीता है, उन पर आप विजय प्राप्त करें, जिनको जीत लिया है, उनका पालन करें, उनके बीच निवास करें। देवों में इन्द्र की तरह, तारों में चन्द्र की तरह, असुरों में चमरेन्द्र की तरह तथा नागों में धरणेन्द्र की तरह लाखों पूर्व, करोड़ों पूर्व, कोड़ाकोड़ी पूर्व पर्यन्त उत्तर दिशा में लघु हिमवान् पर्वत तथा अन्य तीन दिशाओं में समुद्रों द्वारा मर्यादित संपूर्ण भरतक्षेत्र के ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, सन्निवेश—इन सबका, इन सब में बसने वाले प्रजाजनों का सम्यक्—भली-भाँति पालन कर यश अर्जित करते हुए, इन सबका आधिपत्य, पौरोवृत्त्य, अग्रेसरता करते हुए) आप सांसारिक सुख भोगें, यों कह कर उन्होंने जयघोष किया।

तत्पश्चात् सेनापतिरत्न, (गाथापतिरत्न, वर्धकिरत्न) तीन सौ साठ सूपकारों, अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि जनों तथा और बहुत से माण्डलिक राजाओं, सार्थवाहों ने राजा भरत का उत्तम कमल-पत्रों पर प्रतिष्ठापित, सुरभित उत्तम जल से परिपूर्ण कलशों से अभिषेक किया।

उन्होंने उदार—उत्तम, इष्ट—वाञ्छित, कान्त—कमनीय, प्रिय—प्रीतिकर, मनोज्ञ—मनोनुकूल, मनाम—चित्त को प्रसन्न करने वाली, शिव—कल्याणमयी, धन्य—प्रशंसा युक्त, मंगल—मंगलयुक्त, सश्रीक—शोभायुक्त—लालित्ययुक्त, हृदयगमनीय—हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाली, हृदय-प्रह्लादनीय—हृदय को आह्लादित करने वाली वाणी द्वारा अनवरत अभिनन्दन किया, अभिस्तवन किया।

---

१. देखिये तृतीय उपाङ्ग—जीवाजीवाभिगमसूत्र

सोलह हजार देवों ने (अगर आदि सुगन्धित पदार्थों एवं आमलक आदि कसैले पदार्थों से संस्कारित, अनुवासित अति सुकुमार रोओं वाले तौलिये से राजा का शरीर पोंछा। शरीर को पोंछ कर उस पर गोशीर्ष चन्दन का लेप किया। लेप कर राजा को दो देवदूष्य—दिव्य वस्त्र धारण कराये। वे इतने बारीक और वजन में इतने हलके थे कि नासिका से निकलने वाली हवा से भी दूर सरक जाते। वे इतने रूपातिशययुक्त थे—सुन्दर थे कि उन्हें देखते ही नेत्र आकृष्ट हो जाते। उनका वर्ण—रंग तथा स्पर्श बड़ा उत्तम था। वे घोड़े के मुंह से निकलने वाली लार—मुखजल से भी अत्यन्त कोमल थे, सफेद रंग के थे। उनकी किनार सोने से—सोने के तारों से खचित थी—बुनाई में सोने के तारों से समन्वित थी। उनकी प्रभा—दीप्ति आकाश-स्फटिक—अत्यन्त स्वच्छ स्फटिक-विशेष जैसी थी। वे अहत—छिद्ररहित थे—कहीं से भी कटे हुए नहीं थे—सर्वथा नवीन थे, दिव्य द्युतियुक्त थे। वस्त्र पहनाकर उन्होंने राजा के गले में अठारह लड़ का हार पहनाया। हार पहनाकर अर्धहार—नौ लड़ का हार, एकावली—इकलड़ा हार, मुक्तावली—मोतियों का हार, कनकावली—स्वर्णमणिमय हार, रत्नावली—रत्नों का हार, प्रालम्ब—स्वर्णमय, विविध मणियों एवं रत्नों के चित्रांकन से युक्त देह-प्रमाण आभरण विशेष—हार-विशेष पहनाया। अंगद—भुजाओं के बाजूबन्द, त्रुटित—तोड़े, कटक—हाथों में पहनने के कड़े पहनाये। दशों अंगुलियों में दश अंगूठियाँ पहनाई। कमर में कटिसूत्र—करधनी या करनोला पहनाया, दुपट्टा ओढ़ाया, मुरकी—कानों को चारों ओर से घेरने वाला कर्णभूषण, जो कानों से नीचे आने पर गले तक लटकने लगता है, पहनाया। कुण्डल पहनाये, चूड़ामणि—शिरोभूषण धारण करवाया।) विभिन्न रत्नों से जड़ा हुआ मुकुट पहनाया।

तत्पश्चात् उन देवों ने दर्दर तथा मलय चन्दन की सुगन्ध से युक्त, केसर, कपूर, कस्तूरी आदि के सारभूत, सघन-सुगन्ध-व्याप्त रस—इत्र राजा पर छिड़के। उसे दिव्य पुष्पों की माला पहनाई। उन्होंने उसको ग्रन्थिम—सूत आदि से गुंथी हुई, वेष्टिम—वस्तुविशेष पर लपेटी हुई, (पूरिम—वंश-शलाका आदि पंजर—पोल—रिक्त स्थान में भरी हुई तथा संघातिम—परस्पर सम्मिलित अनेक के एकीकृत—समन्वित रूप से विरचित) चार प्रकार की मालाओं से समलंकृत किया—विभूषित किया। उनसे सुशोभित राजा कल्पवृक्ष सदृश प्रतीत होता था।

इस प्रकार विशाल राज्याभिषेक समारोह में अभिषिक्त होकर राजा भरत ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा—देवानुप्रियो! हाथी पर सवार होकर तुम लोग विनीता राजधानी के तिकोने स्थानों, तिराहों, चौराहों, चत्वरों—जहाँ चार से अधिक रास्ते मिलते हैं, ऐसे स्थानों तथा विशाल राजमार्गों पर जोर-जोर से यह घोषणा करो कि इस उपलक्ष्य में मेरे राज्य के निवासी बारह वर्ष पर्यन्त प्रमोदोत्सव मनाएं। इस बीच राज्य में कोई भी क्रय-विक्रय आदि सम्बन्धी शुल्क, संपत्ति आदि पर प्रतिवर्ष लिया जाने वाला राज्य-कर नहीं लिया जायेगा। लभ्य में—ग्राह्य में—किसी से यदि कुछ लेना है, पावना है, उसमें खिंचाव न किया जाए, जोर न दिया जाए, आदान-प्रदान का, नाप-जोख का क्रम बन्द रहे, राज्य के कर्मचारी, अधिकारी किसी के घर में प्रवेश न करें, दण्ड—यथापराध राजग्राह्य द्रव्य—जुर्माना, कुदण्ड—बड़े अपराध के लिए दण्डरूप में लिया जाने वाला अल्पद्रव्य—थोड़ा जुर्माना—ये दोनों ही न लिये जाएं। (ऋण के सन्दर्भ में कोई विवाद न हो, राजकोष से धन देकर ऋणी का ऋण चुका दिया जाए—ऋणी को ऋणमुक्त कर दिया जाए। विविध प्रकार के नाटक, नृत्य आदि आयोजित कर समारोह को सुन्दर बनाया जाए, जिसे सभी

दर्शक सुविधापूर्वक देख सकें। यथाविधि समुद्भावित मृदंग-निनाद से महोत्सव गुंजाया जाता रहे। नगरसज्जा में लगाई गई या लोगों द्वारा पहनी गई मालाएँ कुम्हलाई हुई न हों, ताजे फूलों से वनी हों। प्रमोद—आनन्दोल्लास, मनोरंजन, खेल-तमाशे चलते रहें।) यह घोषणा कर मुझे अवगत कराओ।

राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर वे कौटुम्बिक पुरुष बहुत हर्षित तथा परितुष्ट हुए, आनन्दित हुए। उनके मन में बड़ी प्रसन्नता हुई। हर्ष से उनका हृदय खिल उठा। उन्होंने विनयपूर्वक राजा का आदेश स्वीकार किया। स्वीकार कर वे शीघ्र ही हाथी पर सवार हुए, (विनीता राजधानी के सिंघाटक—तिकोने स्थानों, तिराहों, चौराहों, चत्वरों—जहाँ चार से अधिक मार्ग मिलते हों, ऐसे स्थानों तथा बड़े-बड़े राजमार्गों में उच्च स्वर से) उन्होंने राजा के आदेशानुरूप घोषणा की। घोषणा कर राजा को अवगत कराया।

विराट् राज्याभिषेक-समारोह में अभिषिक्त राजा भरत सिंहासन से उठा। स्त्रीरत्न सुभद्रा, (बत्तीस हजार ऋतुकल्याणिकाओं तथा बत्तीस हजार जनपदकल्याणिकाओं और बत्तीस-बत्तीस पात्रों, अभिनेतव्य क्रमोपक्रमों से अनुबद्ध) बत्तीस हजार नाटकों—नाटक-मंडलियों से संपरिवृत वह राजा अभिषेक-पीठ से उसके पूर्वी त्रिसोपानोपगत मार्ग से नीचे उतरा। नीचे उतरकर अभिषेक-मण्डप से बाहर निकला। बाहर निकलकर जहाँ आभिषेक्य हस्तिरत्न था, वहाँ आकर अंजनगिरि के शिखर के समान उन्नत गजराज पर आरूढ हुआ।

राजा भरत के अनुगत बत्तीस हजार प्रमुख राजा अभिषेक-पीठ से उसके उत्तरी त्रिसोपानोपगत मार्ग से नीचे उतरे। राजा भरत का सेनापतिरत्न, सार्थवाह आदि अभिषेक-पीठ से उसके दक्षिणी त्रिसोपानोपगत मार्ग से नीचे उतरे।

आभिषेक्य हस्तिरत्न पर आरूढ राजा के आगे आठ मंगल-प्रतीक रवाना किये गये।

आगे का वर्णन पूर्ववर्ती एतत्सदृश प्रसंग से संग्राह्य है।

तत्पश्चात् राजा भरत स्नानघर में प्रविष्ट हुआ। स्नानादि परिसंपन्न कर भोजन-मण्डप में आया, सुखासन पर या शुभासन पर बैठा, तेले का पारणा किया। पारणा कर भोजन-मण्डप से निकला। भोजन-मण्डप से निकल कर वह अपने श्रेष्ठ उत्तम प्रासाद में गया। वहाँ मृदंग बज रहे थे। (बत्तीस-बत्तीस पात्रों, अभिनेतव्य क्रमोपक्रमों से नाटक चल रहे थे, नृत्य हो रहे थे। यों नाटककार, नृत्यकार, संगीतकार, राजा का मनोरंजन कर रहे थे, गीतों द्वारा राजा का कीर्ति-स्तवन कर रहे थे।) राजा उनका आनन्द लेता हुआ सांसारिक सुखों का भोग करने लगा।

प्रमोदोत्सव में बारह वर्ष पूर्ण हो गये। राजा भरत जहाँ स्नानघर था, वहाँ आया। स्नान कर वहाँ से निकला, जहाँ बाह्य उपस्थानशाला थी, (जहाँ सिंहासन था, वहाँ आया।) वहाँ आकर पूर्व की ओर मुँह कर सिंहासन पर बैठा। सिंहासन पर बैठकर सोलह हजार देवों का सत्कार किया, सम्मान किया। उनको सत्कृत, सम्मानित कर वहाँ से विदा किया। बत्तीस हजार प्रमुख राजाओं का सत्कार-सम्मान किया। सत्कृत, सम्मानित कर उन्हें विदा किया। सेनापतिरत्न, पुरोहितरत्न आदि का, तीन सौ साठ सूपकारों का, अठारह श्रेणी-प्रश्रेणीजनों का, बहुत से माण्डलिक राजाओं, ऐश्वर्यशाली, प्रभावशाली पुरुषों, राजसम्मानित विशिष्ट नागरिकों तथा सार्थवाह आदि का सत्कार

किया, सम्मान किया। उन्हें सत्कृत, सम्मानित कर विदा किया। विदा कर वह अपने श्रेष्ठ—उत्तम महल में गया। वहाँ विपुल भोग भोगने लगा।

चतुर्दश रत्न : नव निधि : उत्पत्तिक्रम

८५. भरहस्स रण्णो चक्करयणे १ दंडरयणे २ असिरयणे ३ छत्तरयणे ४ एते णं चत्तारि एगिंदियरयणे आउहघरसालाए समुप्पण्णा। चम्मरयणे १ मणिरयणे २ कागणिरयणे ३ णव य महाणिहओ एए णं सिरिघरंसि समुप्पण्णा। सेणावइरयणे १ गाहावइरयणे २ वद्धइरयणे ३ पुरोहिअरयणे ४ एए णं चत्तारि मणुअरयणा विणीआए रायहाणीए समुप्पण्णा। आसरयणे १ हत्थिरयणे २ एए णं दुवे पंचिदिअरयणा वेअद्धगिरिपायमूले समुप्पण्णा। सुभद्दा इत्थीरयणे उत्तरिल्लाए विज्जाहरसेढीए समुप्पण्णे।

[८५] चक्ररत्न, दण्डरत्न, असिरत्न तथा छत्ररत्न—राजा भरत के ये चार एकेन्द्रिय रत्न आयुधगृहशाला में—शस्त्रागार में उत्पन्न हुए।

चर्मरत्न, मणिरत्न, काकणीरत्न तथा नौ महानिधियां, श्रीगृह में—भाण्डागार में उत्पन्न हुए।

सेनापतिरत्न, गाथापतिरत्न, वर्धकिरत्न तथा पुरोहितरत्न, ये चार मनुष्यरत्न, विनीता राजधानी में उत्पन्न हुए।

अश्वरत्न तथा हस्तिरत्न, ये दो पञ्चेन्द्रियरत्न वैताढय पर्वत की तलहटी में उत्पन्न हुए।

सुभद्रा नामक स्त्रीरत्न उत्तर विद्याधरश्रेणी में उत्पन्न हुआ।

भरत का राज्य : वैभव : सुख

८६. तए णं से भरहे राया चउदसण्हं रयणाणं णवण्हं महाणिहीणं सोलसण्हं देवसाहस्सीणं बत्तीसाए रायसहस्साणं बत्तीसाए उडुकल्लाणिआसहस्साणं बत्तीसाए जणवयकल्लाणिआसहस्साणं बत्तीसाए बत्तीसइबद्धाणं णाडगसहस्साणं तिण्हं सट्ठीणं सूवयारसयाणं अट्ठारसण्हं सेणिप्पसेणीणं चउरासीइए आससयसहस्साणं चउरासीइए दंतिसयसहस्साणं चउरासीइए रहसयसहस्साणं छण्णउइए मणुस्सकोडीणं बावत्तरीए पुरवरसहस्साणं बत्तीसाए जणवयसहस्साणं छण्णउइए गामकोडीणं णवणउइए दोणमुहसहस्साणं अडयालीसाए पट्टणसहस्साणं चउव्वीसाए कब्बडसहस्साणं चउव्वीसाए मडंबसहस्साणं वीसाए आगरसहस्साणं सोलसण्हं खेडसहस्साणं चउदसण्हं संवाहसहस्साणं छप्पण्णाए अंतरोदगाणं एगूणपण्णाए कुरज्जाणं विणीआए रायहाणीए चुल्लहिमवंतगिरिसागरमेरागस्स केवलकप्पस्स भरहस्स वासस्स अण्णेसिं च बहूणं राईसरतलवर जाव[1] सत्थवाहप्पभिईणं आहेवच्चं पोरेवच्चं भट्टित्तं सामित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे ओहयणिहएसु कंटएसु उद्धिअमलिएसु सव्वसत्तुसु णिज्जिएसु भरहाहिवे णरिंदे वरचंदणचच्चिअंगे वरहाररइअवच्छे वरमउडविसिट्ठए वरवत्थभूसणधरे सव्वोउअसुरहिकुसुमवरमल्लसोभिअसिरे वरणाडगनाडइज्जवरइत्थिगुम्मसद्धिं संपरिवुडे सव्वोसहि-

१. देखें सूत्र ४४

सव्वरयणसव्वसमिइसमग्गे संपुण्णमणोरहे हयामित्तमाणमहणे पुव्वकयतवप्पभावनिविट्ठसंचिअफले भुंजइ माणुस्सए सुहे भरहे णामधेज्जेत्ति ।

[८६] राजा भरत चौदह रत्नों, नौ महानिधियों, सोलह हजार देवताओं, बत्तीस हजार राजाओं, बत्तीस हजार ऋतुकल्याणिकाओं, बत्तीस हजार जनपदकल्याणिकाओं, बत्तीस-बत्तीस पात्रों, अभिनेतव्य क्रमोपक्रमों से अनुबद्ध बत्तीस हजार नाटकों—नाटक-मण्डलियों, तीन सौ साठ सूपकारों, अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि-जनों, चौरासी लाख घोड़ों, चौरासी लाख हाथियों, चौरासी लाख रथों, छियानवै करोड़ मनुष्यों—पदातियों, बहत्तर हजार पुरवरों—महानगरों, बत्तीस हजार जनपदों, छियानवै करोड़ गाँवों, निन्यानवै हजार द्रोणमुखों, अड़तालीस हजार पत्तनों, चौबीस हजार कर्वटों, चौबीस हजार मडम्बों, बीस हजार आकरों, सोलह हजार खेटों, चौदह हजार संवाधों, छप्पन अन्तरोदकों—जलके अन्तर्वर्ती सन्निवेश-विशेषों तथा उनचास कुराज्यों—भील आदि जंगली जातियों के राज्यों का, विनीता राजधानी का, एक ओर लघु हिमवान् पर्वत से तथा तीन ओर समुद्रों से मर्यादित समस्त भरतक्षेत्र का, अन्य अनेक माण्डलिक राजा, ऐश्वर्यशाली, प्रभावशाली पुरुष, तलवर, सार्थवाह आदि का आधिपत्य, पौरोवृत्य—अग्रेसरत्व, भर्तृत्व—प्रभुत्व, स्वामित्व, महत्तरत्व—अधिनायकत्व, आज्ञेश्वरत्व सैनापत्य—जिसे आज्ञा देने का सर्वाधिकार होता है, वैसा सैनापत्य—सेनापतित्व—इन सबका सर्वाधिकृत रूप में पालन करता हुआ, सम्यक् निर्वाह करता हुआ राज्य करता था ।

राजा भरत ने अपने कण्टकों—गोत्रज शत्रुओं की समग्र सम्पत्ति का हरण कर लिया, उन्हें विनष्ट कर दिया तथा अपने अगोत्रज समस्त शत्रुओं को मसल डाला, कुचल डाला । उन्हें देश से निर्वासित कर दिया । यों उसने अपने समग्र शत्रुओं को जीत लिया । राजा भरत को सर्वविध औषधियाँ, सर्वविध रत्न तथा सर्वविध समितियाँ—आभ्यन्तर एवं बाह्य परिषदें संप्राप्त थीं । अमित्रों—शत्रुओं का उसने मान-भंग कर दिया । उसके समस्त मनोरथ सम्यक् सम्पूर्ण थे—सम्पन्न थे ।

जिसके अंग श्रेष्ठ चन्दन से चर्चित थे, जिसका वक्षःस्थल हारों से सुशोभित था, प्रीतिकर था, जो श्रेष्ठ मुकुट से विभूषित था, जो उत्तम, बहुमूल्य आभूषण धारण किये था, सब ऋतुओं में खिलनेवाले फूलों की सुहावनी माला से जिसका मस्तक शोभित था, उत्कृष्ट नाटक प्रतिबद्ध पात्रों—नाटक-मण्डलियों तथा सुन्दर स्त्रियों के समूह से संपरिवृत वह राजा भरत अपने पूर्व जन्म में आचीर्ण तप के, संचित निकाचित—निश्चित रूप में फलप्रद पुण्य कर्मों के परिणामस्वरूप मनुष्य जीवन के सुखों का परिभोग करने लगा ।

कैवल्योदभव

८७. तए णं से भरहे राया अण्णया कयावि जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता जाव[1] ससिव्व पियदंसणे णरवई मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव आदंसघरे जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीअइ २ त्ता आदंसघरंसि अत्ताणं देहमाणे २ चिट्ठइ ।

१. देखें सूत्र संख्या ४४

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो सुभेणं परिणामेणं पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं २ ईहापोहमग्गणगवेसणं करेमाणस्स कम्माणं खएणं कम्मरयविकिरणकरं अपुव्वकरणं पविट्ठस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे। तए णं से भरहे केवली सयमेवाभरणालंकारं ओमुअइ २ त्ता सयमेव पंचमुट्ठिअं लोअं करेइ २ त्ता आयंसघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता अंतेउरमज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ २ त्ता दसहिं रायवरसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे विणीअं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ २ त्ता मज्झदेसे सुहंसुहेणं विहरइ २ त्ता जेणेव अट्ठावए पव्वए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अट्ठावयं पव्वयं सणिअं २ दुरूहइ २ त्ता मेघघणसण्णिकासं देवसण्णिवायं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहेइ २ त्ता संलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्त-पाण-पडिआइक्खए पाओवगए कालं अणवकंखमाणे २ विहरइ।

तए णं से भरहे केवली सत्तर्त्तारं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसित्ता, एगं वाससहस्सं मंडलिय-राय-मज्झे वसित्ता, छ पुव्वसयसहस्साइं वाससहस्सूणगाइं महारायमज्झे वसित्ता, तेसीइ पुव्वसयसहस्साइं अगारवासमज्झे वसित्ता, एगं पुव्वसयसहस्सं देसूणगं केवलि-परियायं पाउणित्ता तमेव वहुपडिपुण्णं सामन्न-परियायं पाउणित्ता चउरासीइ पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउअं पाउणित्ता मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं सवणेणं णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं खीणे वेअणिज्जे आउए णामे गोए कालगए वीइक्कंते समुज्जाए छिण्णजाइ-जरा-मरण-बन्धणे सिद्धे बद्धे मुत्ते परिणिव्वुडे अंतगडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

[८७] किसी दिन राजा भरत, जहाँ स्नानघर था, वहाँ आया। आकर स्नानघर में प्रविष्ट हुआ, स्नान किया। मेघसमूह को चीर कर वाहर निकलते चन्द्रमा के सदृश प्रियदर्शन—देखने में प्रिय एवं सुन्दर लगनेवाला राजा स्नानघर से वाहर निकला। वाहर निकलकर जहाँ आदर्शगृह—कांच से निर्मित भवन—शीशमहल था, जहाँ सिंहासन था, वहाँ आया। आकर पूर्व की ओर मुँह किये सिंहासन पर वैठा। वह शीशमहल में शीशों पर पड़ते अपने प्रतिविम्व को वार वार देखता रहा।

शुभ परिणाम—अन्त:परिणति, प्रशस्त—उत्तम अध्यवसाय—मन:संकल्प, विशुद्ध होती हुई लेश्याओं—पुद्गल द्रव्यों के संसर्ग से जनित आत्मपरिणामों में उत्तरोत्तर बढ़ते हुए विशुद्धिक्रम से ईहा—सामान्य ज्ञान के अनन्तर विशेष निश्चयार्थ विचारणा, अपोह—विशेष निश्चयार्थ प्रवृत्त विचारणा द्वारा तदनुगुण दोष-चिन्तन प्रसूत निश्चय, मार्गण तथा गवेषण—निरावरण परमात्मस्वरूप के चिन्तन, अनुचिन्तन, अन्वेषण करते हुए राजा भरत को कर्मक्षय से—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय एवं अन्तराय—इन चार घाति कर्मो के—आत्मा के मूल गुणों—केवलज्ञान तथा केवल-दर्शन आदि का घात या अवरोध करनेवाले कर्मो के क्षय के परिणामस्वरूप, कर्म-रज के निवारक अपूर्वकरण में—शुक्लध्यान में अवस्थिति द्वारा अनन्त—अन्तरहित, कभी नहीं मिटने वाला, अनुत्तर—सर्वोत्तम, निर्व्याघात—वाधा-रहित, निवारण—आवरण-रहित, कृत्स्न—सम्पूर्ण, प्रतिपूर्ण केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न हुए।

तव केवली सर्वज्ञ भरत ने स्वयं ही अपने आभूपण, अलंकार उतार दिये। स्वयं ही पंच-मुष्टिक लोच किया। वे शीशमहल से प्रतिनिष्क्रान्त हुए। प्रतिनिष्क्रान्त होकर अन्त:पुर के वीच से

होते हुए राजभवन से बाहर निकले। अपने द्वारा प्रतिबोधित दश हजार राजाओं से संपरिवृत केवली भरत विनीता राजधानी के बीच से होते हुए बाहर चले गये। मध्यदेश में—कोशलदेश में सुखपूर्वक विहार करते हुए वे जहाँ अष्टापद पर्वत था, वहाँ आये। वहाँ आकर धीरे-धीरे अष्टापद पर्वत पर चढ़े। पर्वत पर चढ़कर सघन मेघ के समान श्याम तथा देव-सन्निपात—रम्यता के कारण जहाँ देवों का आवागमन रहता था, ऐसे पृथ्वीशिलापट्टक का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन कर उन्होंने वहाँ संलेखना—शरीर-कषाय-क्षयकारी तपोविशेष स्वीकार किया, खान-पान का परित्याग किया, पादोपगत—कटी वृक्ष की शाखा की ज्यों जिसमें देह को सर्वथा निष्प्रकम्प रखा जाए, वैसा संथारा अंगीकार किया। जीवन और मरण की आकांक्षा—कामना न करते हुए वे आत्माराधना में अभिरत रहे।

केवली भरत सतहत्तर लाख पूर्व तक कुमारावस्था में रहे, एक हजार वर्ष तक मांडलिक राजा के रूप में रहे, एक हजार वर्ष कम छह लाख पूर्व तक महाराज के रूप में—चक्रवर्ती सम्राट् के रूप में रहे। वे तियासी लाख पूर्व तक गृहस्थवास में रहे। अन्तर्मुहूर्त कम एक लाख पूर्व तक वे केवलि-पर्याय—सर्वज्ञावस्था में रहे। एक लाख पूर्व पर्यन्त उन्होंने बहु-प्रतिपूर्ण—सम्पूर्ण श्रामण्य-पर्याय[1]—श्रमण-जीवन का, संयमी जीवन का पालन किया। उन्होंने चौरासी लाख पूर्व का समग्र आयुष्य भोगा। उन्होंने एक महीने के चौविहार—अन्न, जल आदि आहार वर्जित अनशन द्वारा वेदनीय, आयुष्य, नाम तथा गोत्र—इन चार भवोपग्राही, अघाति कर्मों के क्षीण हो जाने पर श्रवण नक्षत्र में जब चन्द्र का योग था, देह-त्याग किया। जन्म, जरा तथा मृत्यु के बन्धन को उन्होंने छिन्न कर डाला—तोड़ डाला। वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत, अन्तकृत्—संसार के—संसार में आवागमन के नाशक तथा सब प्रकार के दुःखों के प्रहाता हो गये।

विवेचन—राजा भरत शीशमहल में सिंहासन पर बैठा शीशों में पड़ते हुए अपने प्रतिबिम्ब को निहार रहा था। अपने सौन्दर्य, शोभा एवं रूप पर वह स्वयं विमुग्ध था। अपने प्रतिबिम्बों को निहारते-निहारते उसकी दृष्टि अपनी अंगुली पर पड़ी। अंगुली में अंगूठी नहीं थी। वह नीचे गिर पड़ी थी। भरत ने अपनी अंगुली पर पुनः दृष्टि गड़ाई। अंगूठी के बिना उसे अपनी अंगुली सुहावनी नहीं लगी। सूर्य की ज्योत्स्ना में चन्द्रमा की द्युति जिस प्रकार निष्प्रभ प्रतीत होती है, उसे अपनी अंगुली वैसी ही लगी। उसके सौन्दर्याभिमानी मन पर एक चोट लगी। उसने अनुभव किया—अंगुली की कोई अपनी शोभा नहीं थी, वह तो अंगूठी की थी, जिसके बिना अंगुली का शोभारहित रूप उद्-घाटित हो गया।

भरत चिन्तन की गहराई में पैठने लगा। उसने अपने शरीर के अन्यान्य आभूषण भी उतार दिये। सौन्दर्य-परीक्षण की दृष्टि से अपने आभूषणरहित अंगों को निहारा। उसे लगा—चमचमाते स्वर्णाभरणों तथा रत्नाभरणों के अभाव में वस्तुतः मेरे अंग फीके, अनाकर्षक लगते हैं। उनका अपना सौन्दर्य, अपनी शोभा कहाँ है ?

भरत की चिन्तन-धारा उत्तरोत्तर गहन बनती गई। शरीर के भीतरी मलीमस रूप पर

---

१. केवलज्ञान की उत्पत्ति से पहले अन्तर्मुहूर्त का भाव-चारित्र जोड देने से एक लाख पूर्व का काल पूर्ण हो जाता है।

उसका ध्यान गया । उसने मन ही मन अनुभव किया—शरीर का वास्तविक स्वरूप मांस, रक्त, मज्जा, विष्ठा, मूत्र एवं मल-मय है । इनसे आपूर्ण शरीर सुन्दर, श्रेष्ठ कहाँ से होगा ?

भरत के चिन्तन ने एक दूसरा मोड़ लिया । वह आत्मोन्मुख बना । आत्मा के परम पावन, विशुद्ध चेतनामय तथा शाश्वत शान्तिमय रूप की अनुभूति में भरत उत्तरोत्तर मग्न होता गया । उसके प्रशस्त अध्यवसाय, उज्ज्वल, निर्मल परिणाम इतनी तीव्रता तक पहुँच गये कि उसके कर्म-बन्धन तड़ातड़ टूटने लगे । परिणामों की पावन धारा तीव्र से तीव्रतर, तीव्रतम होती गई । मात्र अन्तर्मुहूर्त में अपने इस पावन भावचारित्र द्वारा चक्रवर्ती भरत ने वह विराट् उपलब्धि स्वायत्त कर ली, जो जीवन की सर्वोपरि उपलब्धि है । घातिकर्म-चतुष्टय क्षीण हो गया । राजा भरत का जीवन कैवल्य की दिव्य ज्योति से आलोकित हो उठा ।

चक्रवर्ती के अत्यन्त भोगमय, वैभवमय जीवन में रचे-पचे भरत में सहसा ऐसा अप्रत्याशित, अकल्पित, अतर्कित परिवर्तन आयेगा, किसी ने सोचा तक नहीं था । इतने स्वल्प काल में भरत परम सत्य को यों प्राप्त कर लेगा, किसी को यह कल्पना तक नहीं थी । किन्तु परम शक्तिमान्, परम तेजस्वी आत्मा के उद्बुद्ध होने पर यह सब संभव है, शक्य है । अन्तःपरिणामों की उच्चतम पवित्रता की दशा प्राप्त हो जाने पर अनेकानेक वर्षों में भी नहीं सध सकने वाला साध्य मिनिटों में, घण्टों में सध जाता है । वहाँ गाणितिक नियम लागू नहीं होते ।

भरत का जीवन, जीवन की दो पराकाष्ठाओं का प्रतीक है । चक्रवर्ती का जीवन जहाँ भोग की पराकाष्ठा है, वहाँ सहसा प्राप्त सर्वज्ञतामय परम उत्तम मुमुक्षा का जीवन त्याग की पराकाष्ठा है । इस दूसरी पराकाष्ठा के अन्तर्गत मुहूर्त भर में भरत ने जो कर दिखाया, निश्चय ही वह उसके प्रबल पुरुषार्थ का द्योतक है ।

भरतक्षेत्र : नामाख्यान

८८. भरहे अ इत्थ देवे महिड्ढीए महज्जुईए जाव[1] पलिओवमट्ठिईए परिवसइ, से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ भरहे वासे २ इति ।

अदुत्तरं च णं गोयमा ! भरहस्स वासस्स सासए णामधिज्जे पण्णत्ते, जं ण कयाइ ण आसि, ण कयाइ णत्थि, ण कयाइ ण भविस्सइ, भुविं च भवइ अ भविस्सइ अ, धुवे णिअए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे भरहे वासे ।

[८८] यहाँ भरतक्षेत्र में महान् ऋद्धिशाली, परम द्युतिशाली, पल्योपमस्थितिक—एक पल्योपम आयुष्य युक्त भरत नामक देव निवास करता है । गौतम ! इस कारण यह क्षेत्र भरतवर्ष या भरतक्षेत्र कहा जाता है ।

गौतम ! एक और बात भी है । भरतवर्ष या भरतक्षेत्र—यह नाम शाश्वत है—सदा से चला आ रहा है । कभी नहीं था, कभी नहीं है, कभी नहीं होगा—यह स्थिति इसके साथ नहीं है । यह था, यह है, यह होगा—यह ऐसी स्थिति लिये हुए है । यह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित एवं नित्य है ।

१. देखें सूत्र संख्या १४

चतुर्थ वक्षस्कार

क्षुल्ल हिमवान्

८९. कहि णं भंते ! जम्बुद्दीवे दीवे चुल्लहिमवंते णामं वासहर-पव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! हेमवयस्स वासस्स दाहिणेणं, भरहस्स वासस्स उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे चुल्लहिमवंते णामं वासहर-पव्वए पण्णत्ते। पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिण-वित्थिण्णे, दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे। एगं जोअण-सयं उद्धं उच्चत्तेणं, पणवीसं जोअणाइं उव्वेहेणं, एगं जोअणसहस्सं बावण्णं च जोअणाइं दुवालस य एगूणवीसइ भाए जोअणस्स विक्खंभेणंति।

तस्स बाहा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं पंच जोअणसहस्साइं तिण्णि अ पण्णासे जोअणसए पण्णरस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं, तस्स जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया (पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा,) पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा, चउव्वीसं जोअण-सहस्साइं णव य बत्तीसे जोअणसए अद्धभागं च किंचि विसेसूणा आयामेणं पण्णत्ता। तीसे धणु-पट्ठे दाहिणेणं पणवीसं जोअण-सहस्साइं दोण्णि अ तीसे जोअणसए चत्तारि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं पण्णत्ते, रुअगसंठाणसंठिए, सव्वकणगामए, अच्छे, सण्हे तहेव जाव[1] पडिरूवे, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ते दुण्हवि पमाणं वण्णगोत्ति।

चुल्लहिमवंतस्स वासहर-पव्वयस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव[2] बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ अ जाव[3] विहरंति।

[८९] भगवन् ! जम्बूद्वीप में चुल्ल हिमवान् नामक वर्षधर पर्वत कहाँ (बतलाया गया) है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप में चुल्ल हिमवान् नामक वर्षधर पर्वत हैमवतक्षेत्र के दक्षिण में, भरत-क्षेत्र के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में बतलाया गया है। वह पूर्व-पश्चिम लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ा है। वह दो ओर से लवणसमुद्र को छुए हुए है। अपनी पूर्वी कोटि से—किनारे से पूर्वी लवणसमुद्र को छुए हुए है तथा पश्चिमी कोटि से पश्चिमी लवणसमुद्र को छुए है। वह एक सौ योजन ऊँचा है। पच्चीस योजन भूगत है—भूमि में गड़ा है। वह १०५२ $\frac{१२}{१९}$ योजन चौड़ा है।

---

१. देखें सूत्र संख्या ४

२. देखें सूत्र संख्या ६

३. देखें सूत्र संख्या १२

उसकी वाहा—भुजा सदृश प्रदेश पूर्व-पश्चिम ५३५० १५/१९" योजन लम्वा है। उसकी जीवा—धनुष की प्रत्यंचा सदृश प्रदेश पूर्व-पश्चिम लम्वा है। वह (अपने पूर्वी किनारे से पूर्वी लवणसमुद्र का स्पर्श किये हुए है), अपने पश्चिमी किनारे से पश्चिमी लवणसमुद्र का स्पर्श किये हुए है। वह (जीवा) २४९३२ योजन एवं आधे योजन से कुछ कम लम्वी है। दक्षिण में उसका धनु पृष्ठ भाग परिधि की अपेक्षा से २५२३० ४/१९ योजन वतलाया गया है। वह रुचक-संस्थान-संस्थित है—रुचक संज्ञक आभूषण-विशेष का आकार लिये हुए है, सर्वथा स्वर्णमय है। वह स्वच्छ, सुकोमल तथा सुन्दर है। वह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं एवं दो वनखंडों से घिरा हुआ है। उनका वर्णन पूर्वानुरूप है।

चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत के ऊपर वहुत समतल और रमणीय भूमिभाग है। वह आलिग-पुष्कर—मुरज या ढोलक के ऊपरी चर्मपुट के सदृश समतल है। वहाँ बहुत से वानव्यन्तर देव तथा देवियाँ विहार करते हैं।

पद्मह्रद

९०. तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए इत्थ णं इक्के महं पउमद्दहे णामं दहे पण्णत्ते। पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिण-वित्थिण्णे, इक्कं जोअण-सहस्सं आयामेणं, पंच जोअणसयाइं विक्खंभेणं, दस जोअणाइं उव्वेहेणं, अच्छे, सण्हे, रययामयकूले (लण्हे, घट्ठे, मट्ठे, णीरये, णिप्पंके, णिक्कंकडच्छाए, सप्पभे, सस्सिरीए, सउज्जोए,) पासाईए, (दरिसणिज्जे, अभिरूवे,) पडिरूवेत्ति।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। वेइआ-वणसंड-वण्णओ भाणिअव्वोत्ति।

तस्स णं पउमद्दहस्स चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता। वण्णावासो भाणिअव्वोत्ति। तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरओ पत्तेअं २ तोरणा पण्णत्ता। ते णं तोरणा णाणामणिमया।

तस्स णं पउमद्दहस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थं महं एगे पउमे पण्णत्ते, जोअणं आयाम-विक्खंभेणं, अद्धजोअणं वाहल्लेणं, दस जोअणाइं उव्वेहेणं, दो कोसे ऊसिए जलंताओ। साइरेगाइं दसजोअणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता। से णं एगाए जगईए सव्वओ समंता संपरिक्खित्तो जम्बुद्दीवजगइप्पमाणा, गवक्खकडएवि तह चेव पमाणेणंति।

तस्स णं पउमस्स अयमेवारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—वइरामया मूला, रिट्ठामए कंदे, वेरुलिआमए णाले, वेरुलिआमया बाहिरपत्ता, जम्बूणयामया अब्भिंतरपत्ता, तवणिज्जमया केसरा, णाणामणिमया पोक्खरत्थिभाया, कणगामई कण्णिगा। सा णं अद्धजोयणं आयामविक्खंभेणं, कोसं बाहल्लेणं, सव्वकणगामई, अच्छा।

तीसे णं कण्णिआए उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिगपुक्खरेइ वा। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं महं एगे भवणे पण्णत्ते, कोसं

आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, देसूणगं कोसं उद्धं उच्चत्तेणं, अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे, पासाईए दरिसणिज्जे। तस्स णं भवणस्स तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता। ते णं दारा पञ्चधणुसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं विक्खंभेणं, तावतिअं चेव पवेसेणं। सेआवरकणगथूभिआ जाव वणमालाओ णेअव्वाओ।

तस्स णं भवणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंग०, तस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महई एगा मणिपेढिआ पण्णत्ता। सा णं मणिपेढिआ पंचधणुसयाइं आयाम-विक्खंभेणं, अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमई अच्छा। तीसे णं मणिपेढिआए उप्पिं एत्थ णं महं एगे सयणिज्जे पण्णत्ते, सयणिज्जवण्णओ भाणिअव्वो।

से णं पउमे अण्णेणं अट्ठसएणं पउमाणं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमित्ताणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। ते णं पउमा अद्धजोअणं आयाम-विक्खंभेणं, कोसं बाहल्लेणं, दसजोअणाइं उव्वेहेणं, कोसं ऊसिया जलंताओ, साइरेगाइं दसजोअणाइं उच्चत्तेणं।

तेसि णं पउमाणं अयमेवारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा वइरामया मूला, (रिट्ठामए कंदे, वेरुलिआमए णाले, वेरुलिआमया बाहिरपत्ता, जम्बूणयामया अब्भितरपत्ता तवणिज्जमया केसरा णाणामणिमया पोक्खरत्थिभाया) कणगामई कण्णिआ।

सा णं कण्णिआ कोसं आयामेणं, अद्धकोसं बाहल्लेणं, सव्वकणगामई, अच्छा इति। तीसे णं कण्णिआए उप्पिं बहुसमरमणिज्जे जाव[1] मणीहिं उवसोभिए।

तस्स णं पउमस्स अवरुत्तरेणं, उत्तरेणं, उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं सिरीए देवीए चउण्हं सामाणिअ-साहस्सीणं चत्तारि पउम-साहस्सीओ पण्णत्ताओ। तस्स णं पउमस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं सिरीए देवीए चउण्हं महत्तरिआणं चत्तारि पउमा प०। तस्स णं पउमस्स दाहिण-पुरत्थिमेणं सिरीए देवीए अब्भिंतरिआए परिसाए अट्ठण्हं देवसाहस्सीणं अट्ठ पउम-साहस्सीओ पण्णत्ताओ। दाहिणेणं मज्झिमपरिसाए दसण्हं देवसाहस्सीणं दस पउम-साहस्सीओ पण्णत्ताओ। दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिरिआए परिसाए बारसण्हं देवसाहस्सीणं बारस पउम-साहस्सीओ पण्णत्ताओ। पच्चत्थिमेणं सत्तण्हं अणिआहिवईणं सत्त पउमा पण्णत्ता। तस्स णं पउमस्स चउद्दिसिं सव्वओ समंता इत्थ णं सिरीए देवीए सोलसण्हं आयरक्ख-देवसाहस्सीणं सोलस पउम-साहस्सीओ पण्णत्ताओ।

से णं तिहिं पउम-परिक्खेवेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, तं जहा—अब्भितरकेणं मज्झिमएणं बाहिरएणं। अब्भितरए पउम-परिक्खेवे बत्तीसं पउम-सय-साहस्सीओ पण्णत्ताओ। मज्झिमए पउम-परिक्खेवे चत्तालीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। बाहिरिए पउम-परिक्खेवे अडयालीसं पउम-सयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। एवामेव सपुव्वावरेणं तिहिं पउम-परिक्खेवेहिं एगा पउमकोडी वीसं च पउम-सयसाहस्सीओ भवंतीति अक्खायं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ पउमद्दहे २?

---

१. देखें सूत्र संख्या ६

गोयमा ! पउमद्दहे णं तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे उप्पलाइं, (कुमुयाइं, नलिणाइं, सोगन्धियाइं, पुंडरीयाइं, सयपत्ताइं, सहस्सपत्ताइं,) सयसहस्सपत्ताइं पउमद्दहप्पभाइं पउमद्दहवण्णाभाइं सिरी अ इत्थ देवी महिड्ढिआ जाव[1] पलिओवमट्ठिईआ परिवसइ, से एएणट्ठेणं (एवं वुच्चइ पउमद्दहे इति) अदुत्तरं च णं गोयमा ! पउमद्दहस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते ण कयाइ णासि न०।

[९०] उस अति समतल तथा रमणीय भूमिभाग के ठीक बीच में पद्मद्रह नामक एक विशाल द्रह बतलाया गया है। वह पूर्व-पश्चिम लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ा है। उसकी लम्बाई एक हजार योजन तथा चौड़ाई पाँच सौ योजन है। उसकी गहराई दश योजन है। वह स्वच्छ, सुकोमल, रजतमय, तटयुक्त, (चिकना, घुटा हुआ-सा, तरासा हुआ-सा, रजरहित, मैलरहित, कर्दम-रहित, कंकड़रहित, प्रभायुक्त, श्रीयुक्त—शोभायुक्त, उद्योतयुक्त) सुन्दर, (दर्शनीय, अभिरूप—मन को अपने में रमा लेने वाला एवं) प्रतिरूप—मन में बस जानेवाला है।

वह द्रह एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक वनखण्ड द्वारा सब ओर से परिवेष्टित है। वेदिका एवं वनखण्ड पूर्व वर्णित के अनुरूप हैं।

उस पद्मद्रह की चारों दिशाओं में तीन-तीन सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। वे पूर्व वर्णनानुरूप हैं। उन तीन-तीन सीढ़ियों में से प्रत्येक के आगे तोरणद्वार बने हैं। वे नाना प्रकार की मणियों से सुसज्जित हैं।

उस पद्मद्रह के बीचोंबीच एक विशाल पद्म है। वह एक योजन लम्बा और एक योजन चौड़ा है। आधा योजन मोटा है। दश योजन जल के भीतर गहरा है। दो कोश जल से ऊँचा उठा हुआ है। इस प्रकार उसका कुल विस्तार दश योजन से कुछ अधिक है। वह एक जगती—प्राकार द्वारा सब ओर से घिरा है। उस प्राकार का प्रमाण जम्बूद्वीप के प्राकार के तुल्य है। उसका गवाक्ष-समूह झरोखे भी प्रमाण में जम्बूद्वीप के गवाक्षों के सदृश हैं।

उस पद्म का वर्णन इस प्रकार है—उसके मूल वज्ररत्नमय—हीरकमय हैं। उसका कन्द—मूल-नाल की मध्यवर्ती ग्रन्थि रिष्टरत्नमय है। उसका नाल वैडूर्यरत्नमय है। उसके बाह्य पत्र—बाहरी पत्ते वैडूर्यरत्न—नीलम घटित हैं। उसके आभ्यन्तर पत्र—भीतरी पत्ते जम्बूनद—कुछ-कुछ लालिमान्वित रंगयुक्त या पीतवर्णयुक्त स्वर्णमय हैं। उसके केसर—किञ्जल्क तपनीय रक्त या लाल स्वर्णमय हैं। उसके पुष्करास्थिभाग—कमलबीज विभाग विविध मणिमय हैं। उसकी कर्णिका—बीजकोश कनकमय स्वर्णमय है। वह कर्णिका आधा योजन लम्बी-चौड़ी है, सर्वथा स्वर्णमय है, स्वच्छ—उज्ज्वल है।

उस कर्णिका के ऊपर अत्यन्त समतल एवं सुन्दर भूमिभाग है। वह ढोलक पर मढ़े हुए चर्मपुट की ज्यों समतल है। उस अत्यन्त समतल तथा रमणीय भूमिभाग के ठीक बीच में एक विशाल भवन बतलाया गया है। वह एक कोश लम्बा, आधा कोश चौड़ा तथा कुछ कम एक कोश ऊँचा है, सैकड़ों खंभों से युक्त है, सुन्दर एवं दर्शनीय है। उस भवन के तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं। वे द्वार पाँच सौ

१. देखें सूत्र संख्या १४

धनुष ऊँचे हैं, अढ़ाई सौ धनुष चौड़े हैं तथा उनके प्रवेशमार्ग भी उतने ही चौड़े हैं। उन पर उत्तम स्वर्णमय छोटे-छोटे शिखर—कंगूरे बने हैं। वे पुष्पमालाओं से सजे हैं, जो पूर्व वर्णनानुरूप हैं।

उस भवन का भीतरी भूमिभाग बहुत समतल तथा रमणीय है। वह ढोलक पर मढ़े चमड़े की ज्यों समतल है। उसके ठीक बीच में एक विशाल मणिपीठिका बतलाई गई है। वह मणिपीठिका पाँच सौ धनुष लम्बी-चौड़ी तथा अढ़ाई सौ धनुष मोटी है, सर्वथा स्वर्णमय है, स्वच्छ है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक विशाल शय्या है। उसका वर्णन पूर्ववत् है।

वह पद्म दूसरे एक सौ आठ पद्मों से, जो ऊँचाई में, प्रमाण में—विस्तार में उससे आधे हैं, सब ओर से घिरा हुआ है। वे पद्म आधा योजन लम्बे-चौड़े, एक कोश मोटे, दश योजन जलगत—पानी में गहरे तथा एक कोश जल से ऊपर ऊँचे उठे हुए हैं। यों जल के भीतर से लेकर ऊँचाई तक वे दश योजन से कुछ अधिक है।

उन पद्मों का विशेष वर्णन इस प्रकार है—उनके मूल वज्ररत्नमय, (उनके कन्द रिष्टरत्नमय, नाल वैडूर्यरत्नमय, वाह्य पत्र वैडूर्यरत्नमय, आभ्यन्तर पत्र जम्बूनद संज्ञक स्वर्णमय, किञ्जल्क तपनीय-स्वर्णमय, पुष्करास्थि भाग नाना मणिमय) तथा कर्णिका कनकमय है।

वह कर्णिका एक कोश लम्बी, आधा कोश मोटी, सर्वथा स्वर्णमय तथा स्वच्छ है। उस कर्णिका के ऊपर एक बहुत समतल, रमणीय भूमिभाग है, जो नाना प्रकार की मणियों से सुशोभित है।

उस मूल पद्म के उत्तर-पश्चिम में—वायव्यकोण में, उत्तर में तथा उत्तर-पूर्व में—ईशानकोण में श्री देवी के सामानिक देवों के चार हजार पद्म हैं। उस (मूल पद्म) के पूर्व में श्री देवी की चार महत्तरिकाओं के चार पद्म हैं। उसके दक्षिण-पूर्व में—आग्नेयकोण में श्री देवी की आभ्यन्तर परिषद् के आठ हजार देवों के आठ हजार पद्म हैं। दक्षिण में श्री देवी की मध्यम परिषद् के दश हजार देवों के दश हजार पद्म हैं। दक्षिण-पश्चिम में—नैर्ऋत्यकोण में श्री देवी की बाह्य परिषद् के बारह हजार देवों के बारह हजार पद्म हैं। पश्चिम में सात अनीकाधिपति—सेनापति देवों के सात पद्म हैं। उस पद्म की चारों दिशाओं में सब ओर श्री देवी के सोलह हजार आत्मरक्षक देवों के सोलह हजार पद्म हैं।

वह मूल पद्मआभ्यन्तर, मध्यम तथा बाह्य तीन पद्म-परिक्षेपों—कमल रूप परिवेष्टनों द्वारा—प्राचीरों द्वारा सब ओर से घिरा हुआ है। आभ्यन्तर पद्म-परिक्षेप में बत्तीस लाख पद्म हैं, मध्यम पद्म-परिक्षेप में चालीस लाख पद्म हैं, तथा बाह्य पद्मपरिक्षेप में अड़तालीस लाख पद्म हैं। इस प्रकार तीनों पद्म-परिक्षेपों में एक करोड़ बीस लाख पद्म हैं।

भगवन् ! यह द्रह पद्मद्रह किस कारण कहलाता है ?

गौतम ! पद्मद्रह में स्थान-स्थान पर बहुत से उत्पल, (कुमुद, नलिन, सौगन्धिक, पुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र) शतसहस्रपत्र प्रभृति अनेकविध पद्म हैं। वे पद्म—कमल पद्मद्रह के सदृश आकारयुक्त, वर्णयुक्त एवं आभायुक्त हैं। इस कारण वह पद्मद्रह कहा जाता है। वहाँ परम ऋद्धिशालिनी पल्योपम-स्थितियुक्त श्री नामक देवी निवास करती है।

अथवा गौतम ! पद्मद्रह नाम शाश्वत कहा गया है। वह कभी नष्ट नहीं होता।

विवेचन—तीनों परिक्षेपों के पद्म १२०००००० हैं। उनके अतिरिक्त श्री देवी के निवास का एक पद्म, श्री देवी के आवास-पद्म के चारों ओर १०८ पद्म, श्री देवी के चार हजार सामानिक देवों के ४००० पद्म, चार महत्तरिकाओं के ४ पद्म, आभ्यन्तर परिषद् के आठ हजार देवों के ८००० पद्म, मध्यम परिषद् के दश हजार देवों के १०००० पद्म, बाह्य परिषद् के बारह हजार देवों के १२००० पद्म, सात सेनापतिदेवों के ७ पद्म तथा सोलह हजार आत्मरक्षक देवों के १६००० पद्म—कुल पद्मों की संख्या १२००००००+१+१०८+४०००+४+८०००+१००००+१२०००+७+१६०००=१२०५०१२० एक करोड़ बीस लाख पचास हजार एक सौ बीस है।

गंगा, सिन्धु, रोहितांशा

९१. तस्स णं पउमद्दहस्स पुरत्थिमिल्लेणं तोरणेणं गंगा महाणई पवूढा समाणी पुरत्थाभिमुही पञ्च जोअणसयाइं पव्वएणं गंता गंगावत्तकूडे आवत्ता समाणी पञ्च तेवीसे जोअणसए तिण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स दाहिणाभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवत्तएणं मुत्तावलीहारसंठिएणं साइरेगजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ।

गंगा महाणई जओ पवडइ, एत्थ णं महं एगा जिब्भिया पण्णत्ता। सा णं जिब्भिआ अद्धजोअणं आयामेणं, छ सकोसाइं जोअणाइं विक्खंभेणं, अद्धकोसं बाहल्लेणं, मगरमुहविउट्ठसंठाणसंठिआ, सव्ववइरामई, अच्छा, सण्हा।

गंगा महाणई जत्थ पवडइ, एत्थ णं महं एगे गंगप्पवाए कुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते, सट्ठिं जोअणाइं आयामविक्खंभेणं, णउअं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं, दस जोअणाइं उव्वेहेणं, अच्छे, सण्हे, रययामयकूले, समतीरे, वइरामयपासाणे, वइरतले, सुवण्णसुब्भरययामयवालुआए, वेरुलिअमणिफालिअपडलपच्चोअडे, सुहोआरे, सुहोत्तारे, णाणामणितित्थसुबद्धे, वट्टे, अणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीअलजले, संछण्णपत्तभिसमुणाले, बहुउप्पल-कुमुअ-णलिण-सुभग-सोगंधिअ-पोंडरीअ-महापोंडरीअ-सयपत्त-सहस्सपत्त-सयसहस्सपत्त-पप्फुल्लकेसरोवचिए, छप्पय-महुयरपरिभुज्जमाणकमले, अच्छ-विमल-पत्थसलिले, पुण्णे, पडिहत्थभवन-मच्छ-कच्छभ-अणेगसउणगणमिहुणपविअरियसद्दुन्नइअ-महुरसरणाइए पासाईए। से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं वणसण्डेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। वेइआवणसंडगाणं पउमाणं वण्णओ भाणिअव्वो।

तस्स णं गंगप्पवायकुंडस्स तिदिसिं तओ तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, तंजहा—पुरत्थिमेणं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं। तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—वइरामया णेम्मा, रिट्ठामया पइट्ठाणा, वेरुलिआमया खंभा, सुवण्णरुप्पमया फलया, लोहिक्खमईओ सूईओ, वयरामया संधी, णाणामणिमया आलंबणा आलंबणबाहाओत्ति।

तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरओ पत्तेअं पत्तेअं तोरणा पण्णत्ता। ते णं तोरणा णाणामणिमया णाणामणिमएसु खंभेसु उवणिविट्ठसंनिविट्ठा, विविहमुत्तंतरोवइआ, विविहतारारूवोवचिआ, ईहामिअ-उसह-तुरग-णर-मगर-विहग-वालग-किण्णर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्ता, खंभुग्गयवइरवेइआपरिगयाभिरामा, विज्जाहरजमलजुअलजंतजुत्ताविव,

अच्चीसहस्समालणीआ, रूवगसहस्सकलिआ, भिसमाणा, भिब्भिसमाणा, चक्खुल्लोअणलेसा, सुहफासा, सस्सिरीअरूवा, घंटावलिचलिअमहुरमणहरसरा, पासादीआ।

तेसि णं तोरणाणं उवरिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता, तंजहा—सोत्थिय सिरिवच्छे जाव पडिरूवा। तेसि णं तोरणाणं उवरिं बहवे किण्हचामरज्झया, (नीलचामरज्झया, हरिअचामरज्झया,) सुक्किल्लचामरज्झया, अच्छा, सण्हा, रुप्पपट्टा, वइरामयदण्डा, जलयामलगंधिआ, सुरम्मा, पासाईया ४। तेसि णं तोरणाणं उप्पिं बहवे छत्ताइच्छत्ता, पडागाइपडागा, घंटाजुअला, चामरजुअला, उप्पलहत्थगा, पउमहत्थगा-(कुमुअहत्थगा, नलिणहत्थगा, सोगन्धिअहत्थगा, पुंडरीअहत्थगा, सयपत्तहत्थगा, सहस्सपत्तहत्थगा,) सयसहस्सपत्तहत्थगा, सव्वरयणामया, अच्छा जाव[1] पडिरूवा।

तस्स णं गंगप्पवायकुंडस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे गंगादीवे णामं दीवे पण्णत्ते, अट्ठ जोअणाइं आयामविक्खंभेणं, साइरेगाइं पणवीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं, दो कोसे ऊसिए जलंताओ, सव्ववइरामए, अच्छे, सण्हे। से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते, वण्णओ भाणिअव्वो।

गंगादीवस्स णं दीवस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते। तस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं गंगाए देवीए एगे भवणे पण्णत्ते, कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, देसूणगं च कोसं उद्धं उच्चत्तेणं, अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे जाव[2] बहुमज्झदेसभाए मणिपेढियाए सयणिज्जे।

से केणट्ठेण (धुवे णियए) सासए णामधेज्जे पण्णत्ते।

तस्स णं गंगप्पवायकुंडस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं गंगामहाणई पवूढा समाणी उत्तरद्धभरहवासं एज्जमाणी २ सत्तहिं सलिलासहस्सेहिं आउरेमाणी २ अहे खण्डप्पवायगुहाए वेअद्धपव्वयं दालइत्ता दाहिणद्धभरहवासं एज्जमाणी २ दाहिणद्धभरहवासस्स बहुमज्झदेसभागं गंता पुरत्थाभिमुही आवत्ता समाणी चोद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दालइत्ता पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ।

गंगा णं महाणई पवहे छ सकोसाइं जोअणाइं विक्खंभेणं, अद्धकोसं उव्वेहेणं। तयणंतरं च णं मायाए २ परिवद्धमाणी २ मुहे बासट्ठिं जोअणाइं अद्धजोअणं च विक्खंभेणं, सकोसं जोअणं उव्वेहेणं। उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं, दोहिं वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता। वेइआ-वणसंडवण्णओ भाणिअव्वो।

एवं सिंधूए वि णेअव्वं जाव तस्स णं पउमद्दहस्स पच्चत्थिमिल्लेणं तोरणेणं सिंधुआवत्तणकूडे दाहिणाभिमुही सिंधुप्पवायकुंडं, सिंधुद्दीवो अट्ठो सो चेव जाव अहे तिमिसगुहाए वेअद्धपव्वयं दालइत्ता पच्चत्थिमाभिमुही आवत्ता समाणा चोद्दससलिला अहे जगइं पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं जाव समप्पेइ, सेसं तं चेवत्ति।

---

१. देखें सूत्र संख्या ४

२. देखें सूत्र संख्या ५५

तस्स णं पउमद्दहस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं रोहिअंसा महाणई पवूढा समाणी दोण्णि छावत्तरे जोअणसए छच्च एगूणवीसइभाइ जोअणस्स उत्तराभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवत्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं साइरेगजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ। रोहिअंसाणामं महाणई जओ पवडइ, एत्थ णं महं एगा जिब्भिआ पण्णत्ता। सा णं जिब्भिआ जोअणं आयामेणं, अद्धतेरसजोअणाइं विक्खंभेणं, कोसं बाहल्लेणं, मगरमुहविउट्टसंठाणसंठिआ, सव्ववइरामई, अच्छा।

रोहिअंसा महाणई जहिं पवडइ, एत्थ णं महं एगे रोहिअंसापवायकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते। सवीसं जोअणसयं आयामविक्खंभेणं, तिण्णि असीए जोअणसए किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं, दसजोअणाइं उव्वेहेणं, अच्छे। कुंडवण्णओ जाव तोरणा।

तस्स णं रोहिअंसापवायकुंडस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे रोहिअंसा णामं दीवे पण्णत्ते। सोलस जोअणाइं आयामविक्खंभेणं, साइरेगाइं पण्णासं जोयणाइं परिक्खेवेणं, दो कोसे ऊसिए जलंताओ, सव्वरयणामए, अच्छे, सण्हे। सेसं तं चेव जाव भवणं अट्ठो अ भाणिअव्वोत्ति।

तस्स णं रोहिअंसप्पवायकुंडस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं रोहिअंसा महाणई पवूढा समाणी हेमवयं वासं एज्जमाणी २ चउद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी २ सद्दावइवट्टवेअड्ढपव्वयं अद्धजोअणेणं असंपत्ता समाणी पच्चत्थाभिमुही आवत्ता समाणी हेमवयं वासं दुहा विभयमाणी २ अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दालइत्ता पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ। रोहिअंसा णं पवहे अद्धतेरसजोअणाइं विक्खंभेणं, कोसं उव्वेहेणं। तयणंतरं च णं मायाए २ परिवद्धमाणी २ मुहमूले पणवीसं जोअणसयं विक्खंभेणं, अड्ढाइज्जाइं जोअणाइं उव्वेहेणं, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता।

[९१] उस पद्मद्रह के पूर्वी तोरण-द्वार से गंगा महानदी निकलती है। वह पर्वत पर पांच सौ योजन वहती है, गंगावर्तकूट के पास से वापस मुड़ती है, ५२३ ३/१९ योजन दक्षिण की ओर वहती है। घड़े के मुंह से निकलते हुए पानी की ज्यों जोर से शब्द करती हुई वेगपूर्वक, मोतियों के बने हार के सदृश आकार में वह प्रपात-कुण्ड में गिरती है। प्रपात-कुण्ड में गिरते समय उसका प्रवाह चुल्ल हिमवान् पर्वत के शिखर से प्रपात-कुण्ड तक कुछ अधिक सौ योजन होता है।

जहाँ गंगा महानदी गिरती है, वहाँ एक जिह्विका—जिह्वा की-सी आकृतियुक्त प्रणालिका है। वह प्रणालिका आधा योजन लम्बी तथा छह योजन एवं एक कोस चौड़ी है। वह आधा कोस मोटी है। उसका आकार मगरमच्छ के खुले मुँह जैसा है। वह सम्पूर्णतः हीरकमय है, स्वच्छ एवं सुकोमल है।

गंगा महानदी जिसमें गिरती है, उस कुण्ड का नाम गंगाप्रपातकुण्ड है। वह बहुत वड़ा है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई साठ योजन है। उसकी परिधि एक सौ नब्बे योजन से कुछ अधिक है। वह दस योजन गहरा है, स्वच्छ एवं सुकोमल है, रजतमय कूलयुक्त है, समतल तटयुक्त है, हीरकमय पाषाणयुक्त है—वह पत्थरों के स्थान पर हीरों से बना है। उसके पैंदे में हीरे हैं। उसकी बालू स्वर्ण तथा शुभ्र रजतमय है। उसके तट के निकटवर्ती उन्नत प्रदेश वैडूर्यमणि—नीलम तथा

स्फटिक—बिल्लौर की पट्टियों से बने हैं। उसमें प्रवेश करने एवं बाहर निकलने के मार्ग सुखावह हैं। उसके घाट अनेक प्रकार की मणियों से बँधे हैं। वह गोलाकार है। उसमें विद्यमान जल उत्तरोत्तर गहरा और शीतल होता गया है। वह कमलों के पत्तों, कन्दों तथा नालों से परिव्याप्त है। अनेक उत्पल, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र, शत-सहस्र-पत्र—इन विविध कमलों के प्रफुल्लित किञ्जल्क से सुशोभित है। वहाँ भौंरे कमलों का परिभोग करते हैं। उसका जल स्वच्छ, निर्मल और पथ्य—हितकर है। वह कुण्ड जल से आपूर्ण है। इधर-उधर घूमती हुई मछलियों, कछुओं तथा पक्षियों के समुन्नत—उच्च, मधुर स्वर से वह मुखरित—गुंजित रहता है, सुन्दर प्रतीत होता है। वह एक पद्मवरवेदिका एवं वनखण्ड द्वारा सब ओर से घिरा हुआ है। वेदिका, वनखण्ड तथा कमलों का वर्णन पूर्ववत् कथनीय है, ज्ञातव्य है।

उस गंगाप्रपातकुण्ड की तीन दिशाओं में—पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम में तीन-तीन सीढ़ियां बनी हुई हैं। उन सीढ़ियों का वर्णन इस प्रकार है। उनके नेम— भूभाग से ऊपर निकले हुए प्रदेश वज्ररत्नमय—हीरकमय हैं। उनके प्रतिष्ठान—सीढ़ियों के मूल प्रदेश रिष्टरत्नमय हैं। उनके खंभे वैडूर्यरत्नमय हैं। उनके फलक—पट्ट—पाट सोने-चाँदी से बने हैं। उनकी सूचियाँ—दो-दो पाटों को जोड़ने के कीलक लोहिताक्ष-संज्ञक रत्न-निर्मित हैं। उनकी सन्धियाँ—दो-दो पाटों के बीच के भाग वज्ररत्नमय हैं। उनके आलम्बन—चढ़ते-उतरते समय स्खलननिवारण हेतु निर्मित आश्रयभूत स्थान, आलम्बनवाह—भित्ति-प्रदेश विविध प्रकार की मणियों से बने हैं।

तीनों दिशाओं में विद्यमान उन तीन-तीन सीढ़ियों के आगे तोरण-द्वार बने हैं। वे अनेकविध रत्नों से सज्जित हैं, मणिमय खंभों पर टिके हैं, सीढ़ियों के सन्निकटवर्ती हैं। उनमें बीच-बीच में विविध तारों के आकार में बहुत प्रकार के मोती जड़े हैं। वे ईहामृग—वृक, वृषभ, अश्व, मनुष्य, मकर, खग, सर्प, किन्नर, रुरुसंज्ञक मृग, शरभ—अष्टापद, चमर—चँवरी गाय, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि के चित्रांकनों से सुशोभित हैं। उनके खंभों पर उत्कीर्ण वज्ररत्नमयी वेदिकाएँ बड़ी सुहावनी लगती हैं। उन पर चित्रित विद्याधर-युगल-सहजात-युगल—एकसमान, एक आकारयुक्त कठपुतलियों की ज्यों संचरणशील से प्रतीत होते हैं। अपने पर जड़े हजारों रत्नों की प्रभा से वे सुशोभित हैं। अपने पर बने सहस्रों चित्रों से वे बड़े सुहावने एवं अत्यन्त देदीप्यमान हैं, देखने मात्र से नेत्रों में समा जाते हैं। वे सुखमय स्पर्शयुक्त एवं शोभामय रूपयुक्त हैं। उन पर जो घंटियाँ लगी हैं, वे पवन से आन्दोलित होने पर बड़ा मधुर शब्द करती हैं, मनोरम प्रतीत होती हैं।

उन तोरण-द्वारों पर स्वस्तिक, श्रीवत्स आदि आठ-आठ मंगल-द्रव्य स्थापित हैं। काले चँवरों की ध्वजाएँ— काले चँवरों से अलंकृत ध्वजाएँ, (नीले चँवरों की ध्वजाएँ, हरे चँवरों की ध्वजाएँ, तथा सफेद चँवरों की ध्वजाएँ, जो उज्ज्वल एवं सुकोमल हैं, उन पर फहराती हैं। उनमें रुपहले वस्त्र लगे हैं। उनके दण्ड, जिनमें वे लगी हैं, वज्ररत्न-निर्मित हैं। कमल की सी उत्तम सुगन्ध उनसे प्रस्फुटित होती है। वे सुरम्य हैं, चित्त को प्रसन्न करनेवाली हैं। उन तोरण-द्वारों पर बहुत से छत्र, अतिछत्र-छत्रों पर लगे छत्र, पताकाएँ, अतिपताकाएँ—पताकाओं पर लगी पताकाएँ, दो-दो घंटाओं की जोड़ियाँ, दो-दो चँवरों की जोड़ियाँ लगी हैं। उन पर उत्पलों, पद्मों, (कुमुदों, नलिनों, सौगन्धिकों, पुण्डरीकों, शतपत्रों, सहस्रपत्रों,) शत-सहस्रपत्रों—एतत्संज्ञक कमलों के ढेर के ढेर लगे हैं, जो सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ एवं सुन्दर हैं।

उस गंगाप्रपातकुण्ड के ठीक बीच में गंगाद्वीप नामक एक विशाल द्वीप है। वह आठ योजन लम्बा-चौड़ा है। उसकी परिधि कुछ अधिक पच्चीस योजन है। वह जल से ऊपर दो कोस ऊँचा उठा हुआ है। वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ एवं सुकोमल है। वह एक पद्मवरवेदिका तथा एक वन-खण्ड द्वारा सब ओर से घिरा हुआ है। उनका वर्णन पूर्ववत् है।

गंगाद्वीप पर बहुत समतल, सुन्दर भूमिभाग है। उसके ठीक बीच में गंगा देवी का विशाल भवन है। वह एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा तथा कुछ कम एक कोस ऊँचा है। वह सैकड़ों खंभों पर अवस्थित है। उसके ठीक बीच में एक मणिपीठिका है। उस पर शय्या है।

परम ऋद्धिशालिनी गंगादेवी का आवास-स्थान होने से वह द्वीप गंगाद्वीप कहा जाता है, अथवा यह उसका शाश्वत नाम है—सदा से चला आता है।

उस गंगाप्रपातकुण्ड के दक्षिणी तोरण से गंगा महानदी आगे निकलती है। वह उत्तरार्ध भरतक्षेत्र की ओर आगे बढ़ती है तब सात हजार नदियाँ उसमें आ मिलती हैं। वह उनसे आपूर्ण होकर खण्डप्रपात गुफा होती हुई, वैताढ्य पर्वत को चीरती हुई—पार करती हुई दक्षिणार्ध भरत-क्षेत्र की ओर जाती है। वह दक्षिणार्ध भरत के ठीक बीच से बहती हुई पूर्व की ओर मुड़ती है। फिर चौदह हजार नदियाँ के परिवार से युक्त होकर वह (गंगा महानदी) जम्बूद्वीप की जगती को दीर्ण कर—चीर कर पूर्वी—पूर्वदिग्वर्ती लवणसमुद्र में मिल जाती है।

गंगा महानदी का प्रवह—उद्गमस्रोत—जिस स्थान से वह निर्गत होती है, वहाँ उसका प्रवाह एक कोस अधिक छः योजन का विस्तार—चौड़ाई लिये हुए है। वह आधा कोस गहरा है। तत्पश्चात् वह महानदी क्रमशः मात्रा में—प्रमाण में—विस्तार में बढ़ती जाती है। जब समुद्र में मिलती है, उस समय उसकी चौड़ाई साढ़े बासठ योजन होती है, गहराई एक योजन एक कोस—सवा योजन होती है। वह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं तथा वनखण्डों द्वारा संपरिवृत है। वेदिकाओं एवं वनखण्डों का वर्णन पूर्ववत् है।

गंगा महानदी के अनुरूप ही सिन्धु महानदी का आयाम-विस्तार है। इतना अन्तर है—सिन्धु महानदी उस पद्मद्रह के पश्चिम दिग्वर्ती तोरण से निकलती है, पश्चिम दिशा की ओर बहती है, सिन्ध्वावर्त कूट से मुड़कर दक्षिणाभिमुख होती हुई बहती है। आगे सिन्धुप्रपातकुण्ड, सिन्धुद्वीप आदि का वर्णन गंगाप्रपातकुण्ड, गंगाद्वीप आदि के सदृश है। फिर नीचे तिमिस गुफा से होती हुई वह वैताढ्य पर्वत को चीरकर पश्चिम की ओर मुड़ती है। उसमें वहाँ चौदह हजार नदियां मिलती हैं। फिर वह जगती को दीर्ण करती हुई पश्चिमी लवणसमुद्र में जाकर मिलती है। बाकी सारा वर्णन गंगा महानदी के अनुरूप है।

उस पद्मद्रह के उत्तरी तोरण से रोहितांशा नामक महानदी निकलती है। वह पर्वत पर उत्तर में २७६ $\frac{६}{१९}$ योजन बहती है, आगे बढ़ती है। घड़े के मुंह से निकलते हुए पानी की ज्यों जोर से शब्द करती हुई वेगपूर्वक, मोतियों के हार के सदृश आकार में पर्वत-शिखर से प्रपात तक कुछ अधिक एक सौ योजन परिमित प्रवाह के रूप में प्रपात में गिरती है। रोहितांशा महानदी जहाँ गिरती है, वहाँ एक जिह्विका—जिह्वासदृश आकृतियुक्त प्रणालिका है। उसका आयाम एक योजन है, विस्तार साढ़े बारह योजन है। उसका मोटापन एक कोस है। उसका आकार मगरमच्छ के खुले मुख के आकार जैसा है। वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है।

रोहितांशा महानदी जहाँ गिरती है, वह रोहितांशाप्रपातकुण्ड नामक एक विशाल कुण्ड है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई एक सौ वीस योजन है। उसकी परिधि कुछ कम १८३ योजन है। उसकी गहराई दस योजन है। वह स्वच्छ है। तोरण-पर्यन्त उसका वर्णन पूर्ववत् है।

उस रोहितांशाप्रपात कुण्ड के ठीक बीच में रोहितांशद्वीप नामक एक विशाल द्वीप है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई सोलह योजन है। उसकी परिधि कुछ अधिक पचास योजन है। वह जल से ऊपर दो कोश ऊँचा उठा हुआ है। वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ एवं सुकोमल है। भवन-पर्यन्त बाकी का वर्णन पूर्ववत् है।

उस रोहितांशाप्रपात कुण्ड के उत्तरी तोरण से रोहितांशा महानदी आगे निकलती है, हैमवत क्षेत्र की ओर बढ़ती है। चौदह हजार नदियाँ वहाँ उसमें मिलती हैं। उनसे आपूर्ण होती हुई वह शब्दापाती वृत्तवैताढ्य पर्वत के आधा योजन दूर रहने पर पश्चिम की ओर मुड़ती है। वह हैमवत क्षेत्र को दो भागों में विभक्त करती हुई आगे बढ़ती है। तत्पश्चात् अट्ठाईस हजार नदियों के परिवार सहित—उनसे आपूर्ण होती हुई वह नीचे की ओर जगती को दीर्ण करती हुई—उसे चीरकर लांघती हुई पश्चिम-दिग्वर्ती लवणसमुद्र में मिल जाती है। रोहितांशा महानदी जहाँ से निकलती है, वहाँ उसका विस्तार साढ़े बारह योजन है। उसकी गहराई एक कोश है। तत्पश्चात् वह मात्रा में—क्रमशः बढ़ती जाती है। मुख-मूल में—समुद्र में मिलने के स्थान पर उसका विस्तार एक सौ पच्चीस योजन होता है, गहराई अढाई योजन होती है। वह अपने दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो वनखण्डों से संपरिवृत है।

चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत के कूट

९२. चुल्लहिमवन्ते णं भन्ते ! वासहरपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?

गोयमा ! इक्कारस कूडा पण्णत्ता, तं जहा—१. सिद्धाययणकूडे, २. चुल्लहिमवन्तकूडे, ३. भरहकूडे, ४. इलादेवीकूडे, ५. गंगादेवीकूडे, ६. सिरिकूडे, ७. रोहिअंसकूडे, ८. सिन्धुदेवीकूडे, ९. सुरदेवीकूडे, १०. हेमवयकूडे, ११. वेसमणकूडे।

कहि णं भन्ते ! चुल्लहिमवन्ते वासहरपव्वए सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं चुल्लहिमवन्तकूडस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते, पंच जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, मूले पंच जोअणसयाइं विक्खंभेणं, मज्झे तिण्णि अ पण्णत्तरे जोअणसए विक्खंभेणं, उप्पिं अद्धाइज्जे जोअणसए विक्खंभेणं। मूले एगं जोअणसहस्सं पंच य एगासीए जोअणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं, मज्झे एगं जोअणसहस्सं एगं च छलसीअं जोअणसयं किंचि विसेसूणं परिक्खेवेणं, उप्पिं सत्त इक्काणउए जोअणसए किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं। मूले विच्छिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं तणुए, गोपुच्छ-संठाण-संठिए, सव्व-रयणामए, अच्छे। से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।

सिद्धाययणस्स कूडस्स णं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव[1] तस्स णं

---

१. देखें सूत्र संख्या ६

बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे सिद्धायतणे पण्णत्ते, पण्णासं जोअणाइं आयामेणं, पणवीसं जोअणाइं विक्खंभेणं, छत्तीसं जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं जाव जिणपडिमावण्णओ भाणिअव्वो।

कहि णं भन्ते ! चुल्लहिमवन्ते वासहरपव्वए चुल्लहिमवन्तकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

गोयमा ! भरहकूडस्स पुरत्थिमेणं सिद्धायतणकूडस्स पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं चुल्लहिमवन्ते वासहरपव्वए चुल्लहिमवन्तकूडे णामं कूडे पण्णत्ते। एवं जो चेव सिद्धायतणकूडस्स उच्चत्त-विक्खंभ-परिक्खेवो जाव—

बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे पासायवडेंसए पण्णत्ते, वासट्ठिं जोअणाइं अद्धजोअणं च उच्चत्तेणं, इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च विक्खंभेणं, अब्भुग्गयमूसिअ-पहसिए विव, विविहमणिरयणभत्तिचित्ते, वाउद्धअविजयवेजयंतीपडागच्छत्ताइछत्तकलिए, तुंगे गगणतलमभिलंघमाणसिहरे, जालंतररयणपंजरुम्मीलिएव्व, मणिरयणथूभिआए, विअसिअसयवत्त-पुंडरीअतिलयरयणद्धचंदचित्ते, णाणामणिमयदामालंकिए, अंतो बहिं च सण्हे वइरतवणिज्जरुइल-वालुगापत्थडे, सुहफासे, सस्सिरीअरूवे, पासाईए (दरिसणिज्जे अभिरूवे) पडिरूवे। तस्स णं पासाय-वडेंसगस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव सीहासणं सपरिवारं।

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ चुल्लहिमवन्तकूडे २ ?

गोयमा ! चुल्लहिमवन्ते णामं देवे महिड्ढिए जाव परिवसइ।

कहि णं भन्ते ! चुल्लहिमवन्तगिरिकुमारस्स देवस्स चुल्लहिमवन्ता णामं रायहाणी पण्णत्ता ?

गोयमा ! चुल्लहिमवन्तकूडस्स दक्खिणेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीइवइत्ता अण्णं जम्बुद्दीवं २ दक्खिणेणं बारस जोअण-सहस्साइं ओगाहित्ता इत्थ णं चुल्लहिमवन्तस्स गिरिकुमारस्स देवस्स चुल्लहिमवन्ता णामं रायहाणी पण्णत्ता, बारस जोअणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं, एवं विजयरायहाणीसरिसा भाणिअव्वा। एवं अवसेसाणवि कूडाणं वत्तव्वया णेअव्वा, आयामविक्खंभ-परिक्खेवपासायदेवयाओ सीहासणपरिवारो अट्ठो अ देवाण य देवीण य रायहाणीओ णेअव्वाओ, चउसु देवा १. चुल्लहिमवन्त २. भरह ३. हेमवय ४. वेसमणकूडेसु, सेसेसु देवयाओ।

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ चुल्लहिमवन्ते वासहरपव्वए ?

गोयमा ! महाहिमवन्त-वासहर-पव्वयं पणिहाय आयामुच्चत्तुव्वेहविक्खंभपरिक्खेवं पडुच्च ईसिं खुड्डतराए चेव हस्सतराए चेव णीअतराए चेव, चुल्लहिमवन्ते अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव[२] पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—चुल्लहिमवन्ते वासहरपव्वए २, अदुत्तरं च णं गोयमा ! चुल्लहिमवन्तस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते जं ण कयाइ णासि०।

[९२] भगवन् ! चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत के कितने कूट—शिखर बतलाये गये हैं ?

---

१. देखें सूत्र संख्या १४

२. देखें सूत्र संख्या १४

गौतम ! उसके ग्यारह कूट बतलाये गये हैं—१. सिद्धायतनकूट, २. चुल्लहिमवान्कूट, ३. भरतकूट, ४. इलादेवीकूट, ५. गंगादेवीकूट, ६. श्रीकूट, ७. रोहितांशाकूट, ८. सिन्धुदेवीकूट, ९. सुरादेवीकूट, १० हैमवतकूट तथा ११. वैश्रवणकूट।

भगवन् ! चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत पर सिद्धायतनकूट कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, चुल्ल हिमवान् कूट के पूर्व में सिद्धायतन नामक कूट बतलाया गया है। वह पांच सौ योजन ऊँचा है। वह मूल में पांच सौ योजन, मध्य में ३७५ योजन तथा ऊपर २५० योजन विस्तीर्ण है। मूल में उसकी परिधि कुछ अधिक १५८१ योजन, मध्य में कुछ कम ११८६ योजन तथा ऊपर कुछ कम ७९१ योजन है। वह मूल में विस्तीर्ण—चौड़ा, मध्य में संक्षिप्त—संकड़ा एवं ऊपर तनुक—पतला है। उसका आकार गाय की ऊर्ध्वीकृत पूँछ के आकार जैसा है। वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है। वह एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखण्ड द्वारा सब ओर से घिरा हुआ है।

सिद्धायतनकूट के ऊपर एक बहुत समतल तथा रमणीय भूमिभाग है। उस भूमिभाग के ठीक बीच में एक विशाल सिद्धायतन है। वह पचास योजन लम्बा, पच्चीस योजन चौड़ा और छत्तीस योजन ऊँचा है। उससे सम्बद्ध जिनप्रतिमा पर्यन्त का वर्णन पूर्ववत् है।

भगवन् ! चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत पर चुल्लहिमवान् नामक कूट कहाँ पर बतलाया गया है ?

गौतम ! भरतकूट के पूर्व में, सिद्धायतनकूट के पश्चिम में चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत पर चुल्लहिमवान् नामक कूट बतलाया गया है। सिद्धायतनकूट की ऊँचाई, विस्तार तथा घेरा जितना है, उतना ही उस (चुल्लहिमवान्कूट) का है।

उस कूट पर एक बहुत ही समतल एवं रमणीय भूमिभाग है। उसके ठीक बीच में एक बहुत बड़ा उत्तम प्रासाद है। वह ६२½ योजन ऊँचा है। वह ३१ योजन और १ कोस चौड़ा है। (समचतुरस्र होने से उतना ही लम्बा है।) वह बहुत ऊँचा उठा हुआ है। अत्यन्त धवल प्रभापुंज लिये रहने से वह हँसता हुआ-सा प्रतीत होता है। उस पर अनेक प्रकार की मणियाँ तथा रत्न जड़े हुए हैं। उनसे वह बड़ा विचित्र—अद्भुत प्रतीत होता है। अपने पर लगी, पवन से हिलती, फहराती विजय-वैजयन्तियों—विजयसूचक ध्वजाओं, पताकाओं, छत्रों तथा अतिछत्रों से वह बड़ा सुहावना लगता है। उसके शिखर बहुत ऊँचे हैं, मानो वे आकाश को लांघ जाना चाहते हों। उसकी जालियों में जड़े रत्न-समूह ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो प्रासाद ने अपने नेत्र उघाड़ रखे हों। उसकी स्तूपिकाएँ—छोटे-छोटे शिखर—छोटी-छोटी गुमटियाँ मणियों एवं रत्नों से निर्मित हैं। उस पर विकसित शतपत्र, पुण्डरीक, तिलक, रत्न तथा अर्धचन्द्र के चित्र अंकित हैं। अनेक मणि-निर्मित मालाओं से वह अलंकृत है। वह भीतर-बाहर वज्ररत्नमय, तपनीय-स्वर्णमय, चिकनी, रुचिर बालुका से आच्छादित है। उसका स्पर्श सुखप्रद है, रूप सश्रीक—शोभान्वित है। वह आनन्दप्रद, (दर्शनीय, अभिरूप तथा) प्रतिरूप है। उस उत्तम प्रासाद के भीतर बहुत समतल एवं रमणीय भूमिभाग बतलाया गया है। सम्बद्ध सामग्रीयुक्त सिंहासन पर्यन्त उसका विस्तृत वर्णन पूर्ववत् है।

भगवन् ! वह चुल्ल हिमवान् कूट क्यों कहलाता है ?

गौतम ! परम ऋद्धिशाली चुल्ल हिमवान् नामक देव वहाँ निवास करता है, इसलिए वह चुल्ल हिमवान् कूट कहा जाता है ।

भगवन् ! चुल्ल हिमवान् गिरिकुमार देव की चुल्ल हिमवन्ता नामक राजधानी कहाँ बतलाई गई है ?

गौतम ! चुल्ल हिमवान् कूट के दक्षिण में तिर्यक् लोक में असंख्य द्वीपों, समुद्रों को पार कर अन्य जम्बूद्वीप में दक्षिण में बारह हजार योजन पार करने पर चुल्ल हिमवान् गिरिकुमार देव की चुल्ल हिमवन्ता नामक राजधानी आती है । उसका आयाम-विस्तार बारह हजार योजन है । उसका विस्तृत वर्णन विजय-राजधानी के सदृश जानना चाहिए ।

बाकी के कूटों का आयाम-विस्तार, परिधि, प्रासाद, देव, सिंहासन, तत्सम्बद्ध सामग्री, देवों एवं देवियों की राजधानियों आदि का वर्णन पूर्वानुरूप है । इन कूटों में से चुल्ल हिमवान्, भरत, हैमवत तथा वैश्रवण कूटों में देव निवास करते हैं और उनके अतिरिक्त अन्य कूटों में देवियाँ निवास करती हैं ।

भगवन् ! वह पर्वत चुल्ल हिमवान् वर्षधर किस कारण कहा जाता है ?

गौतम ! महा हिमवान् वर्षधर पर्वत की अपेक्षा चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत आयाम-लम्बाई, उच्चत्व—ऊँचाई, उद्वेध—जमीन में गहराई, विष्कम्भ—विस्तार—चौड़ाई, तथा परिक्षेप—परिधि या घेरा—इनमें क्षुद्रतर, ह्रस्वतर तथा निम्नतर है—न्यूनतर है, कम है । इसके अतिरिक्त वहाँ परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयुष्ययुक्त चुल्ल हिमवान् नामक देव निवास करता है, गौतम ! इस कारण वह चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत कहा जाता है ।

गौतम ! अथवा चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत—यह नाम शाश्वत कहा गया है, जो न कभी नष्ट हुआ, न कभी नष्ट होगा ।

हैमवत वर्ष

९३. कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे हेमवए णामं वासे पण्णत्ते ?

गोयमा ! महाहिमवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं, चुल्लहिमवन्तस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे हेमवए णामं वासे पण्णत्ते । पाइण-पडीणायए, उदीणदाहिणविच्छिण्णे, पलिअंकसंठाणसंठिए, दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे । दोण्णि जोअणसहस्साइं एगं च पंचुत्तरं जोअणसयं पंच य एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खंभेणं ।

तस्स बाहा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं छज्जोअणसहस्साइं सत्त य पणवण्णे जोअणसए तिण्णि अ एगूणवीसइ भाए जोअणस्स आयामेणं । तस्स जीवा उत्तरेणं पाईणपडीणायया, दुहओ लवणसमुद्दं पुट्ठा, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा, पच्चत्थिमिल्लाए (कोडीए पच्चत्थिमिल्लं

लवणसमुद्दं) पुट्ठा। सत्ततीसं जोअणसहस्साइं छच्च चउवत्तरे जोअणसए सोलस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स किंचिविसेसूणे आयामेणं। तस्स धणुं दाहिणेणं अट्ठतीसं जोअणसहस्साइं सत्त य चत्ताले जोअणसए दस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं।

हेमवयस्स णं भंते! वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते?

गोयमा! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, एवं तइयसमाणुभावो णेअव्वोत्ति।

[९३] भगवन्! जम्बूद्वीप में हैमवत क्षेत्र कहाँ वतलाया गया है?

गौतम! महा हिमवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत हैमवत नामक क्षेत्र कहा गया है। वह पूर्व-पश्चिम लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ा है, पलंग के आकार में अवस्थित है। वह दो ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श करता है। अपने पूर्वी किनारे से पूर्वी लवण-समुद्र का तथा पश्चिमी किनारे से पश्चिमी लवणसमुद्र का स्पर्श करता है। वह २१०५ $\frac{५}{१९}$ योजन चौड़ा है।

उसकी वाहा पूर्व-पश्चिम में ६७५५ $\frac{३}{१९}$ योजन लम्वी है। उत्तर दिशा में उसकी जीवा पूर्व तथा पश्चिम दोनों ओर लवणसमुद्र का स्पर्श करती है। अपने पूर्वी किनारे से वह पूर्वी लवणसमुद्र का स्पर्श करती है, पश्चिमी किनारे से पश्चिमी लवणसमुद्र को स्पर्श करती है। उसकी लम्वाई कुछ कम ३७६७४ $\frac{१६}{१९}$ योजन है। दक्षिण में उसका धनुपृष्ठ परिधि की अपेक्षा से ३८७४० $\frac{१०}{१९}$ योजन है।

भगवन्! हैमवत क्षेत्र का आकार—स्वरूप, भाव—तदन्तर्गत पदार्थ, प्रत्यवतार—तत्सम्वद्ध प्राकटच—अवस्थिति कैसी है?

गौतम! उसका भूमिभाग बहुत समतल एवं रमणीय है। उसका स्वरूप आदि तृतीय आरक—सुषम-दुःषमा काल के सदृश है।

शब्दापाती वृत्त वैताढच पर्वत

९४. कहि णं भंते! हेमवए वासे सद्दावई णामं वट्टवेअड्ढपव्वए पण्णत्ते?

गोयमा! रोहिआए महाणईए पच्चत्थिमेणं, रोहिअंसाए महाणईए पुरत्थिमेणं, हेमवयवासस्स बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं सद्दावई णामं वट्टवेअड्ढपव्वए पण्णत्ते। एगं जोअणसहस्सं उद्धं उच्चत्तेणं, अड्ढाइज्जाइं जोअणसयाइं उव्वेहेणं, सव्वत्थसमे, पल्लंगसंठाणसंठिए, एगं जोअणसहस्सं आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोअणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, सव्वरयणामए अच्छे। से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, वेइआवणसंडवण्णओ भाणिअव्वो।

सद्दावइस्स णं वट्टवेअड्ढपव्वयस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे पासायवडेंसए पण्णत्ते। बावट्ठिं जोअणाइं अद्धजोयणं च उद्धं उच्चत्तेणं, इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च आयामविक्खंभेणं जाव सीहासणं सपरिवारं।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ सद्दावई वट्टवेयद्धपव्वए २ ?

गोयमा ! सद्दावई वट्टवेअद्धपव्वए णं खुद्दा खुड्डिआसु वावीसु, (पोक्खरिणीसु, दीहिआसु, गुंजालिआसु, सरपंतिआसु, सरसरपंतिआसु, बिलपंतिआसु बहवे उप्पलाइं, पउमाइं, सद्दावइप्पभाइं, सद्दावइवण्णाइं सद्दावइवण्णाभाइं, सद्दावई अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव[1] महाणुभावे पलिओवमट्ठिइए परिवसइत्ति। से णं तत्थ चउण्हं सामाणिआसाहस्सीणं जाव रायहाणी मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं अण्णंमि जंबुद्दीवे दीवे०।

[९४] भगवन् ! हैमवतक्षेत्र में शब्दापाती नामक वृत्तवैताढ्य पर्वत कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! रोहिता महानदी के पश्चिम में, रोहितांशा महानदी के पूर्व में, हैमवत क्षेत्र के बीचोबीच शब्दापाती नामक वृत्त वैताढ्य पर्वत बतलाया गया है। वह एक हजार योजन ऊँचा है, अढाई सौ योजन भूमिगत है, सर्वत्र समतल है। उसकी आकृति पलंग जैसी है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई एक हजार योजन है। उसकी परिधि कुछ अधिक ३१६२ योजन है। वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है। वह एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखण्ड द्वारा सब ओर से संपरिवृत है। पद्मवर-वेदिका तथा वनखण्ड का वर्णन पूर्ववत् है।

शब्दापाती वृत्तवैताढ्य पर्वत पर बहुत समतल एवं रमणीय भूमिभाग है। उस भूमिभाग के बीचोंबीच एक विशाल, उत्तम प्रासाद बतलाया गया है। वह ६२½ योजन ऊँचा है, ३१ योजन १ कोश लम्बा-चौड़ा है। सिंहासन पर्यन्त आगे का वर्णन पूर्ववत् है।

भगवन् ! वह शब्दापाती वृत्तवैताढ्य पर्वत क्यों कहा जाता है ?

गौतम ! शब्दापाती वृत्तवैताढ्य पर्वत पर छोटी-छोटी चौरस बावड़ियों, (गोलाकार पुष्करिणियों, बड़ी-बड़ी सीधी वापिकाओं, टेढ़ी-तिरछी वापिकाओं, पृथक्-पृथक् सरोवरों, एक दूसरे से संलग्न सरोवरों,)—अनेकविध जलाशयों में बहुत से उत्पल हैं, पद्म हैं, जिनकी प्रभा, जिनका वर्ण शब्दापाती के सदृश है। इसके अतिरिक्त परम ऋद्धिशाली, प्रभावशाली, पल्योपम आयुष्ययुक्त शब्दातिपाती नामक देव वहाँ निवास करता है। उसके चार हजार सामानिक देव हैं। उसकी राजधानी अन्य जम्बूद्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में है। विस्तृत वर्णन पूर्ववत् है। (इस कारण यह नाम पड़ा है, अथवा शाश्वत रूप में यह चला आ रहा है।)

हैमवतवर्ष नामकरण का कारण

९५. से केणट्ठे णं भन्ते ! एवं वुच्चइ हेमवए वासे २ ?

गोयमा ! चुल्लहिमवन्तमहाहिमवन्तेहिं वासहरपव्वएहिं दुहओ समवगूढे णिच्चं हेमं दलइ, णिच्चं हेमं दलइत्ता णिच्चं हेमं पगासइ, हेमवए अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव[2] पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ हेमवए वासे हेमवए वासे।

---

१. देखें सूत्र संख्या १४
२. देखे सूत्र संख्या १४

[९५] भगवन् ! वह हैमवत क्षेत्र क्यों कहा जाता है ?

गौतम ! वह चुल्ल हिमवान् तथा महाहिमवान् वर्षधर पर्वतों के बीच में है—महाहिमवान् पर्वत से दक्षिण दिशा में एवं चुल्ल हिमवान् पर्वत से उत्तर दिशा में, उनके अन्तराल में विद्यमान है। वहाँ जो यौगलिक मनुष्य निवास करते हैं, वे बैठने आदि के निमित्त नित्य स्वर्णमय शिलापट्टक आदि का उपयोग करते हैं। उन्हें नित्य स्वर्ण देकर वह यह प्रकाशित करता है कि वह स्वर्णमय विशिष्ट वैभवयुक्त है। (यह औपचारिक कथन है) वहाँ परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयुष्ययुक्त हैमवत नामक देव निवास करता है। गौतम ! इस कारण वह हैमवतक्षेत्र कहा जाता है।

महाहिमवान् वर्षधर पर्वत

९६. कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे २ महाहिमवन्ते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! हरिवासस्स दाहिणेणं, हेमवयस्स वासस्स उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे महाहिमवंते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते।

पाईणपडीणायए, उदीणदाहिणवित्थिण्णे, पलियंकसंठाणसंठिए, दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए (पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं) पुट्ठे, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे। दो जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, पण्णासं जोअणाइं उव्वेहेणं, चत्तारि जोअणसहस्साइं दोण्णि अ दसुत्तरे जोअणसए दस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खंभेणं। तस्स बाहा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं णव य जोअणसहस्साइं दोण्णि अ छावत्तरे जोअणसए णव य एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं। तस्स जीवा उत्तरेणं पाईणपडीणायया, दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा, पच्चत्थिमिल्लाए (कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं) पुट्ठा, तेवण्णं जोअणसहस्साइं नव य एगतीसे जोअणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोअणस्स किंचिविसेसाहिए आयामेणं। तस्स धणुं दाहिणेणं सत्तावण्णं जोअणसहस्साइं दोणि अ तेणउए जोअणसए दस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं, रुअगसंठाणसंठिए, सव्वरयणामए, अच्छे। उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ते।

महाहिमवन्तस्स णं वासहरपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, जाव[1] णाणाविह पञ्चवण्णेहिं मणीहि अ तणेहि अ उवसोभिए जाव[2] आसयंति सयंति य।

[९६] भगवन् ! जम्बूद्वीप में महाहिमवान् नामक वर्षधर पर्वत कहाँ वतलाया गया है ?

गौतम ! हरिवर्षक्षेत्र के दक्षिण में, हैमवतक्षेत्र के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाहिमवान् नामक वर्षधर पर्वत वतलाया गया है।

वह पर्वत पूर्व-पश्चिम लम्वा तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ा है। वह पलंग का-सा आकार लिये

१. देखें सूत्र संख्या ६

२. देखें सूत्र संख्या १२

हुए है। वह दो ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श करता है। अपने पूर्वी किनारे से पूर्वी लवणसमुद्र का स्पर्श करता है और पश्चिमी किनारे से पश्चिमी लवणसमुद्र का स्पर्श करता है। वह दो सौ योजन ऊँचा है, ५० योजन भूमिगत है—जमीन में गहरा गड़ा है। वह ४२१० १०/१९ योजन चौड़ा है। उसकी बाहा पूर्व-पश्चिम ९२७६ ९½/१९ योजन लम्बी है। उत्तर में उसकी जीवा पूर्व-पश्चिम लम्बी है। वह लवणसमुद्र का दो ओर से स्पर्श करती है। वह अपने पूर्वी किनारे से पूर्वी लवणसमुद्र का तथा पश्चिमी किनारे से पश्चिमी लवणसमुद्र का स्पर्श करती है। वह कुछ अधिक ५३९३१ ६/१९ योजन लम्बी है। दक्षिण में उसका धनुपृष्ठ है, जिसकी परिधि ५७२९३ १०/१९ योजन है। वह रुचक-सदृश आकार लिये हुए है, सर्वथा रत्नमय है, स्वच्छ है। अपने दोनों ओर वह दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो वनखण्डों से घिरा हुआ है।

महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के ऊपर अत्यन्त समतल तथा रमणीय भूमिभाग है। वह विविध प्रकार के पंचरंगे रत्नों तथा तृणों से सुशोभित है। वहाँ देव-देवियाँ निवास करते हैं।

महापद्मद्रह

९७. महाहिमवंतस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महापउमद्दहे णामं दहे पण्णत्ते। दो जोअणसहस्साइं आयामेणं, एगं जोअणसहस्सं विक्खंभेणं, दस जोअणाइं उव्वेहेणं, अच्छे रययामयकूले एवं आयामविक्खंभविहूणा जा चेव पउमद्दहस्स वत्तव्वया सा चेव णेअव्वा। पउमप्पमाणं दो जोअणाइं अट्ठो जाव महापउमद्दहवण्णाभाइं हिरी अ इत्थ देवी जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसइ।

से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ, अदुत्तरं च णं गोयमा! महापउमद्दहस्स सासए णामधिज्जे पण्णत्ते जं णं कयाइ णासी ३।

तस्स णं महापउमद्दहस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं रोहिआ महाणई पवूढा समाणी सोलस पंचुत्तरे जोअणसए पंच य एगूणवीसइभाए जोअणस्स दाहिणाभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवित्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं साइरेगदोजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ। रोहिआ णं महाणई जओ पवडइ एत्थ णं महं एगा जिब्भिया पण्णत्ता। सा णं जिब्भिआ जोअणं आयामेणं, अद्धतेरसजोअणाइं विक्खंभेणं, कोसं बाहल्लेणं, मगरमुहविउट्ठसंठाणसंठिआ, सव्ववइरामई, अच्छा।

रोहिआ णं महाणई जहिं पवडइ एत्थ णं महं एगे रोहिअप्पवायकुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते। सवीसं जोअणसयं आयामविक्खंभेणं पण्णत्तं तिण्णि असीए जोअणसए किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं, दस जोअणाइं उव्वेहेणं, अच्छे, सण्हे, सो चेव वण्णओ। वइरतले, वट्टे, समतीरे जाव तोरणा।

तस्स णं रोहिअप्पवायकुण्डस्स बहुज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे रोहिअदीवे णामं दीवे पण्णत्ते। सोलस जोअणाइं आयामविक्खंभेणं, साइरेगाइं पण्णासं जोअणाइं परिक्खेवेणं, दो कोसे ऊसिए जलंताओ, सव्ववइरामए, अच्छे। से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। रोहिअदीवस्स णं दीवस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते। तस्स णं बहुसमर-मणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे भवणे पण्णत्ते। कोसं आयामेणं, सेसं तं चेव पमाणं च अट्ठो अ भाणिअव्वो।

तस्स णं रोहिअप्पवायकुण्डस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं रोहिआ महाणई पवूढा समाणी हेमवयं वासं एज्जेमाणी २ सद्दावइं वट्टवेअद्धपव्वयं अद्धजोअणेणं असंपत्ता पुरत्थाभिमुही आवत्ता समाणी हेमवयं वासं दुहा विभयमाणी २ अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दालइत्ता पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ। रोहिआ णं जहा रोहिअंसा तहा पवाहे अ मुहे अ भाणिअव्वा इति जाव संपरिक्खित्ता।

तस्स णं महापउमद्दहस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं हरिकंता महाणई पवूढा समाणी सोलस पंचुत्तरे जोअणसए पंच य एगूणवीसइभाए जोअणस्स उत्तराभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवत्तिएणं, मुत्तावलिहारसंठिएणं, साइरेगदुजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ।

हरिकंता महाणई जओ पवडइ, एत्थ णं महं एगा जिब्भिआ पण्णत्ता। दो जोयणाइं आयामेणं, पणवीसं जोअणाइं विक्खंभेणं, अद्धं जोअणं बाहल्लेणं, मगरमुहविउट्टसंठाणसंठिआ, सव्वरयणामई, अच्छा।

हरिकंता णं महाणई जहिं पवडइ, एत्थ णं महं एगे हरिकंतप्पवायकुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते। दोण्णि अ चत्ताले जोअणसए आयामविक्खंभेणं, सत्तअउणट्ठे जोयणसए परिक्खेवेणं, अच्छे एवं कुण्डवत्तव्वया सव्वा नेयव्वा जाव तोरणा।

तस्स णं हरिकंतप्पवायकुण्डस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे हरिकंतदीवे णामं दीवे पण्णत्ते, बत्तीसं जोअणाइं आयामविक्खंभेणं, एगुत्तरं जोअणसयं परिक्खेवेणं, दो कोसे ऊसिए जलंताओ, सव्वरयणामए, अच्छे। से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं (सव्वओ समंता) संपरिक्खित्ते वण्णओ भाणिअव्वोत्ति, पमाणं च सयणिज्जं च अट्ठो अ भाणिअव्वो। तस्स णं हरिकंतप्पवायकुण्डस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं (हरिकंता महाणई) पवूढा समाणी हरिवस्सं वासं एज्जेमाणी २ विअडावइं वट्टवेअद्धं जोअणेणं असंपत्ता पच्चत्थाभिमुही आवत्ता समाणी हरिवासं दुहा विभयमाणी २ छप्पण्णाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दलइत्ता पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ। हरिकंता णं महाणई पवहे पणवीसं जोअणाइं, विक्खम्भेणं, अद्धजोअणं उव्वेहेणं। तयणंतरं च णं मायाए २ परिवद्धमाणी २ मुहमूले अड्ढाइज्जाइं जोअणसयाइं विक्खम्भेणं, पञ्च जोअणाइं उव्वेहेणं। उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता।

[९७] महाहिमवान् पर्वत के बीचोंबीच महापद्मद्रह नामक द्रह बतलाया गया है। वह दो हजार योजन लम्बा तथा एक हजार योजन चौड़ा है। वह दश योजन जमीन में गहरा है। वह स्वच्छ—उज्ज्वल है, रजतमय तटयुक्त है। लम्बाई और चौड़ाई को छोड़कर उसका सारा वर्णन पद्मद्रह के सदृश है। उसके मध्य में जो पद्म है, वह दो योजन का है। अन्य सारा वर्णन पद्मद्रह के पद्म के सदृश है। उसकी आभा—प्रभा आदि सब वैसा ही है। वहाँ एक पल्योपमस्थितिका—एक पल्योपम आयुष्ययुक्ता ह्री नामक देवी निवास करती है।

गौतम! इस कारण वह इस नाम से पुकारा जाता है। अथवा गौतम! महापद्मद्रह नाम शाश्वत बतलाया गया है, जो न कभी नष्ट हुआ, न कभी नष्ट होगा।

उस महापद्मद्रह के दक्षिणी तोरण से रोहिता नामक महानदी निकलती है। वह हिमवान् पर्वत पर दक्षिणाभिमुख होती हुई १६०५ ५/१९ योजन बहती है। घड़े के मुँह से निकलते हुए जल की ज्यों जोर से शब्द करती हुई वेगपूर्वक मोतियों से निर्मित हार के-से आकार में वह प्रपात में गिरती है। तब उसका प्रवाह पर्वत-शिखर से नीचे प्रपात तक कुछ अधिक २०० योजन होता है। रोहिता महानदी जहाँ गिरती है, वहाँ एक विशाल जिह्विका—प्रणालिका बतलाई गई है। उसका आयाम—लम्बाई एक योजन और विस्तार—चौड़ाई १२½ योजन है। उसकी मोटाई एक कोश है। उसका आकार मगरमच्छ के खुले मुँह के आकार जैसा है। वह सर्वथा स्वर्णमय है, स्वच्छ है।

रोहिता महानदी जहाँ गिरती है, उस प्रपात का नाम रोहिताप्रपात कुण्ड है। वह १२० योजन लम्बा-चौड़ा है। उसकी परिधि कुछ कम तीन सौ अस्सी योजन है। वह दश योजन गहरा है, स्वच्छ एवं सुकोमल—चिकना है। उसका पेंदा हीरों से बना है। वह गोलाकार है। उसका तट समतल है। उससे सम्बद्ध तोरण पर्यन्त समग्र वर्णन पूर्ववत् है।

रोहिताप्रपात कुण्ड के बीचोंबीच रोहित नामक एक विशाल द्वीप है। वह १६ योजन लम्बा-चौड़ा है। उसकी परिधि कुछ अधिक ५० योजन है। वह जल से दो कोश ऊपर ऊँचा उठा हुआ है। वह संपूर्णत: हीरकमय है, उज्ज्वल है—चमकीला है। वह चारों ओर एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक वनखण्ड द्वारा घिरा हुआ है। रोहित द्वीप पर बहुत समतल तथा रमणीय भूमिभाग है। उस भूमिभाग के ठीक बीच में एक विशाल भवन है। वह एक कोश लम्बा है। बाकी का वर्णन, प्रमाण आदि पूर्ववत् कथनीय है।

उस रोहितप्रपात कुण्ड के दक्षिणी तोरण से रोहिता महानदी निकलती है। वह हैमवत क्षेत्र की ओर आगे बढ़ती है। शब्दापाती वृत्तवैताढ्य पर्वत जब आधा योजन दूर रह जाता है, तब वह पूर्व की ओर मुड़ती है और हैमवत क्षेत्र को दो भागों में बाँटती हुई आगे बढ़ती है। उसमें २८००० नदियाँ मिलती हैं। वह उनसे आपूर्ण होकर नीचे जम्बूद्वीप की जगती को चीरती हुई—भेदती हुई पूर्वी लवणसमुद्र में मिल जाती है। रोहिता महानदी के उद्गम, संगम आदि सम्बन्धी सारा वर्णन रोहितांशा महानदी जैसा है।

उस महापद्मद्रह के उत्तरी तोरण से हरिकान्ता नामक महानदी निकलती है। वह उत्तराभिमुख होती हुई १६०५ ५/१९ योजन पर्वत पर बहती है। फिर घड़े के मुँह से निकलते हुए जल की ज्यों जोर से शब्द करती हुई, वेगपूर्वक मोतियों से बने हार के आकार में प्रपात में गिरती है। उस समय ऊपर पर्वत-शिखर से नीचे प्रपात तक उसका प्रवाह कुछ अधिक दो सौ योजन का होता है।

हरिकान्ता महानदी जहाँ गिरती है, वहाँ एक विशाल जिह्विका—प्रणालिका बतलाई गई है। वह दो योजन लम्बी तथा पच्चीस योजन चौड़ी है। वह आधा योजन मोटी है। उसका आकार मगरमच्छ के खुले हुए मुख के आकार जैसा है। वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है।

हरिकान्ता महानदी जिसमें गिरती है, उसका नाम हरिकान्ताप्रपात कुण्ड है। वह विशाल है। वह २४० योजन लम्बा-चौड़ा है। उसकी परिधि ७५९ योजन की है। वह निर्मल है। तोरण-पर्यन्त कुण्ड का समग्र वर्णन पूर्ववत् जान लेना चाहिए।

हरिकान्ताप्रपातकुण्ड के बीचों-बीच हरिकान्त द्वीप नामक एक विशाल द्वीप है। वह ३२ योजन लम्बा-चौड़ा है। उसकी परिधि १०१ योजन है, वह जल से ऊपर दो कोश ऊँचा उठा हुआ है। वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है। वह चारों ओर एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक वनखण्ड द्वारा घिरा हुआ है। तत्सम्बन्धी प्रमाण, शयनीय आदि का समस्त वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

हरिकान्ताप्रपातकुण्ड के उत्तरी तोरण से हरिकान्ता महानदी आगे निकलती है। हरिवर्ष-क्षेत्र में बहती है, विकटापाती वृत्त वैताढ्य पर्वत के एक योजन दूर रहने पर वह पश्चिम की ओर मुड़ती है। हरिवर्षक्षेत्र को दो भागों में बाँटती हुई आगे बढ़ती है। उसमें ५६००० नदियाँ मिलती हैं। वह उनसे आपूर्ण होकर नीचे की ओर जम्बूद्वीप की जगती को चीरती हुई पश्चिमी लवण समुद्र में मिल जाती है। हरिकान्ता महानदी जिस स्थान से उद्गत होती है—निकलती है, वहाँ उसकी चौड़ाई पच्चीस योजन तथा गहराई आधा योजन है। तदनन्तर क्रमशः उसकी मात्रा—प्रमाण बढ़ता जाता है। जब वह समुद्र में मिलती है, तब उसकी चौड़ाई २५० योजन तथा गहराई पाँच योजन होती है। वह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं से तथा दो वनखण्डों से घिरी हुई है।

महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के कूट

९८. महाहिमवन्ते णं भन्ते ! वासहरपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तंजहा—१. सिद्धाययणकूडे, २. महाहिमवन्तकूडे, ३. हेमवयकूडे, ४. रोहिअकूडे, ५. हिरिकूडे, ६. हरिकंतकूडे, ७. हरिवासकूडे, ८. वेरुलिअकूडे। एवं चुल्लहिमवंत-कूडाणं जा चेव वत्तव्वया सच्चेव णेअव्वा।

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ महाहिमवंते वासहरपव्वए २ ?

गोयमा ! महाहिमवंते णं वासहरपव्वए चुल्लहिमवंतं वासहरपव्वयं पणिहाय आयामुच्चत्तु-व्वेहविक्खम्भपरिक्खेवेणं महंततराए चेव दीहतराए चेव, महाहिमवंते अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव[1] पलिओवमट्ठिइए परिवसइ।

[९८] भगवन् ! महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के कितने कूट बतलाये गये हैं ?

गौतम ! महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के आठ कूट बतलाये गये हैं, जैसे—१. सिद्धायतनकूट, २. महाहिमवान्कूट, ३. हैमवतकूट, ४. रोहितकूट, ५. ह्रीकूट, ६. हरिकान्तकूट, ७. हरिवर्ष-कूट तथा ८. वैडूर्यकूट।

चुल्ल हिमवान् कूटों की वक्तव्यता के अनुरूप ही इनका वर्णन जानना चाहिए।

भगवन् ! यह पर्वत महाहिमवान् वर्षधर पर्वत क्यों कहा जाता है ?

गौतम ! महाहिमवान् वर्षधर पर्वत, चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत की अपेक्षा लम्बाई, ऊँचाई, गहराई, चौड़ाई तथा परिधि में महत्तर तथा दीर्घतर है—अधिक बड़ा है। परम ऋद्धिशाली, पल्योपम आयुष्ययुक्त महा हिमवान् नामक देव वहाँ निवास करता है, इसलिए वह महा-हिमवान् वर्षधर पर्वत कहा जाता है।

---

१. देखें सूत्र संख्या १४

हरिवर्षक्षेत्र

९९. कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे हरिवासे णामं वासे पण्णत्ते ?

गोयमा ! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं, महाहिमवन्तवासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे २ हरिवासे णामं वासे पण्णत्ते। एवं (पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे,) पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे। अट्ठ जोअणसहस्साइं चत्तारि अ एगवीसे जोअणसए एगं च एगूणवीसइभागं जोअणस्स विक्खम्भेणं।

तस्स वाहा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं तेरस जोअणसहस्साइं तिण्णि अ एगसट्ठे जोअणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणंति। तस्स जीवा उत्तरेणं पाईणपडीणायया, दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं (लवणसमुद्दं पुट्ठा, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं) लवणसमुद्दं पुट्ठा। तेवत्तरिं जोअणसहस्साइं णव य एगुत्तरे जोअणसए सत्तरस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं। तस्स धणुं दाहिणेणं चउरासीइं जोअणसहस्साइं सोलस जोअणाइं चत्तारि एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं।

हरिवासस्स णं भन्ते ! वासस्स केरिसए आगारभावपडोआरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव[1] मणीहिं तणेहि अ उवसोभिए एवं मणीणं तणाण य वण्णो गन्धो फासो सद्दो भाणिअव्वो। हरिवासे णं तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे खुड्डा खुड्डिआओ एवं जो सुसमाए अणुभावो सो चेव अपरिसेसो वत्तव्वोत्ति।

कहि णं भन्ते ! हरिवासे वासे विअडावई णामं वट्टवेअद्धपव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! हरीए महाणईए पच्चत्थिमेणं, हरिकंताए महाणईए पुरत्थिमेणं, हरिवासस्स २ बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं विअडावई णामं वट्टवेअद्धपव्वए पण्णत्ते। एवं जो चेव सद्दावइस्स विक्खंभुच्चत्तुव्वेहपरिक्खेवसंठाणवण्णावासो अ सो चेव विअडावइस्सवि भाणिअव्वो। णवरं अरुणो देवो, पउमाइं जाव विअडावइवण्णाभाइं अरुणे इत्थ देवे महिड्ढीए एवं जाव[2] दाहिणेणं रायहाणी णेअव्वा।

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ—हरिवासे हरिवासे ?

गोयमा ! हरिवासे णं वासे मणुआ अरुणा, अरुणाभासा, सेआ णं संखदलसण्णिकासा। हरिवासे अ इत्थ देवे महिड्ढिए जाव[3] पलिओवमट्ठिईए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ।

[९९] भगवन् ! जंम्बूद्वीप के अन्तर्गत हरिवर्ष नामक क्षेत्र कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! निषध वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत हरिवर्ष नामक

---

१. देखें सूत्र संख्या ६

२. देखें सूत्र संख्या १४

३. देखें सूत्र संख्या १४

क्षेत्र बतलाया गया है। वह (अपने पूर्वी किनारे से पूर्वी लवणसमुद्र का स्पर्श करता है तथा) पश्चिमी किनारे से पश्चिमी लवणसमुद्र का स्पर्श करता है। उसका विस्तार ८४२१ १/१९ योजन है।

उसकी बाहा पूर्व-पश्चिम १३३६१ ६॥/१९ लम्बी है। उत्तर में उसकी जीवा है, जो पूर्व-पश्चिम लम्बी है। वह दो ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श करती है। अपने पूर्वी किनारे से पूर्वी लवणसमुद्र का स्पर्श करती है (तथा पश्चिमी किनारे से पश्चिमी लवणसमुद्र का स्पर्श करती है)। वह ७३९०१ १७॥/१९ योजन लम्बी है।

भगवन् ! हरिवर्षक्षेत्र का आकार, भाव, प्रत्यवतार कैसा है ?

गौतम ! उसमें अत्यन्त समतल तथा रमणीय भूमिभाग है। वह मणियों तथा तृणों से सुशोभित है। मणियों एवं तृणों के वर्ण, गन्ध, स्पर्श और शब्द पूर्व वर्णित के अनुरूप हैं। हरिवर्षक्षेत्र में जहाँ तहाँ छोटी-छोटी वापिकाएँ, पुष्करिणियां आदि है। अवसर्पिणी काल के सुषमा नामक द्वितीय आरक का वहाँ प्रभाव है—वहाँ तदनुरूप स्थिति है। अवशेष वक्तव्यता पूर्ववत् है।

भगवन् ! हरिवर्षक्षेत्र में विकटापाती नामक वृत्त वैताढ्य पर्वत कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! हरि या हरिसलिला नामक महानदी के पश्चिम में, हरिकान्ता महानदी के पूर्व में, हरिवर्ष क्षेत्र के बीचों-बीच विकटापाती नामक वृत्त वैताढ्य पर्वत बतलाया गया है। विकटापाती वृत्त वैताढ्य की चौड़ाई, ऊँचाई, गहराई, परिधि, आकार वैसा ही है, जैसा शब्दापाती का है। इतना अन्तर है—वहाँ अरुण नामक देव है। वहाँ विद्यमान कमल आदि के वर्ण, आभा, आकार आदि विकटापाती वृत्त वैताढ्य पर्वत के-से हैं। वहाँ परम ऋद्धिशाली अरुण नामक देव निवास करता है। दक्षिण में उसकी राजधानी है।

भगवन् ! हरिवर्षक्षेत्र नाम किस कारण पड़ा ?

गौतम ! हरिवर्षक्षेत्र में मनुष्य रक्तवर्णयुक्त है, रक्तप्रभायुक्त हैं कतिपय शंख-खण्ड के सदृश श्वेत है। श्वेतप्रभायुक्त है। वहाँ परम ऋद्धिशाली, पल्योपमस्थितिक—एक पल्योपम आयुष्य वाला हरिवर्ष नामक देव निवास करता है।

गौतम ! इस कारण वह क्षेत्र हरिवर्ष कहलाता है।

विवेचन—हरि शब्द के अनेक अर्थों में एक अर्थ सूर्य तथा एक अर्थ चन्द्र भी है। वृत्तिकार के अनुसार वहाँ कतिपय मनुष्य उदित होते अरुणआभायुक्त सूर्य के सदृश अरुणवर्णयुक्त एवं अरुण-आभायुक्त है। कतिपय मनुष्य चन्द्र के समान श्वेत—उज्ज्वल वर्णयुक्त, श्वेतआभायुक्त हैं।

निषध वर्षधर पर्वत

१००. कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे २ णिसहे णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! महाविदेहस्स वासस्स दक्खिणेणं, हरिवासस्स उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे णिसहे णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते। पाईणपडीणायए, उदीणदाहिणविच्छिण्णे। दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे, पुरत्थिमिल्लाए (कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं) पुट्ठे, पच्चत्थिमिल्लाए (कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं) पुट्ठे।

चत्तारि जोयणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, चत्तारि गाउअसयाइं उव्वेहेणं, सोलस जोअणसहस्साइं अट्ठ य बायाले जोअणसए दोण्णि य एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खम्भेणं।

तस्स बाहा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं वीसं जोअणसहस्साइं एगं च पण्णट्ठं जोअणसयं दुण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं। तस्स जीवा उत्तरेणं (पाईणपडीणायया, दुहओ लवणसमुद्दं पुट्ठा, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा) चउणवइ जोअणसहस्साइं एगं च छप्पण्णं जोअणसयं दुण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणंति। तस्स धणुं दाहिणेणं एगं जोअणसयसहस्सं चउवीसं च जोअणसहस्साइं तिण्णि अ छायाले जोअणसए णव य एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणंति। रुअगसंठाणसंठिए, सव्वतवणिज्जमए, अच्छे। उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं (सव्वओ समंता) संपरिक्खित्ते।

णिसहस्स णं वासहरपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव[1] आसयंति, सयंति। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे तिगिंछिद्दहे णामं दहे पण्णत्ते। पाईणपडीणायए, उदीणदाहिणवित्थिण्णे, चत्तारि जोअणसहस्साइं आयामेणं, दो जोअणहस्साइं विक्खंभेणं, दस जोअणाइं उव्वेहेणं, अच्छे सण्हे रययामयकूले।

तस्स णं तिगिंच्छिद्दहस्स चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता। एवं जाव आयामविक्खम्भविहूणा जा चेव महापउमद्दहस्स वत्तव्वया सा चेव तिगिंछिद्दहस्सवि वत्तव्वया, तं चेव पउमद्दहप्पमाणं जाव तिगिंछिवण्णाइं, धिई अ इत्थ देवी पलिओवमट्ठिईआ परिवसइ से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ तिगिंछिद्दहे तिगिंछिद्दहे।

[१००] भगवन्! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत निषध नामक वर्षधर पर्वत कहाँ बतलाया गया है?

गौतम! महाविदेहक्षेत्र के दक्षिण में, हरिवर्षक्षेत्र के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत निषध नामक वर्षधर पर्वत बतलाया गया है। वह पूर्व-पश्चिम में लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है। वह दो ओर लवणसमुद्र का स्पर्श करता है। वह अपने पूर्वी किनारे से पूर्वी लवणसमुद्र का स्पर्श करता है तथा पश्चिमी किनारे से पश्चिमी लवणसमुद्र का स्पर्श करता है। वह ४०० योजन ऊँचा है, ४०० कोस जमीन में गहरा है। वह १६८४२ $\frac{२}{१९}$ योजन चौड़ा है।

उसकी बाहा—पार्श्व-भुजा पूर्व-पश्चिम में २०१६५ $\frac{२॥}{१९}$ योजन लम्बी है। उत्तर में उसकी जीवा (पूर्व-पश्चिम लम्बी है। वह दो ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श करती है। अपने पूर्वी किनारे से पूर्वी लवणसमुद्र का स्पर्श करती है, पश्चिमी किनारे से पश्चिमी लवणसमुद्र का स्पर्श करती है।) ९४१५६ $\frac{२}{१९}$ योजन लम्बाई लिये है। दक्षिण की ओर स्थित उसके धनुपृष्ठ की परिधि १२४३४६ $\frac{९}{१९}$ योजन है। उसका रुचक—स्वर्णाभरणविशेष के आकार जैसा आकार है। वह सम्पूर्णतः तपनीय स्वर्णमय है, स्वच्छ है। वह दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो वनखण्डों द्वारा सब ओर से घिरा है।

---

१. देखें सूत्र संख्या १२

निषध वर्षधर पर्वत के ऊपर एक बहुत समतल तथा सुन्दर भूमिभाग है, जहाँ देव-देवियाँ निवास करते हैं। उस बहुत समतल, सुन्दर भूमिभाग के ठीक बीच में एक तिगिंछद्रह (पुष्परजोद्रह) नामक द्रह है। वह पूर्व-पश्चिम लम्बा है, उत्तर-दक्षिण चौड़ा है। वह ४००० योजन लम्बा २००० योजन चौड़ा तथा १० योजन जमीन में गहरा है। वह स्वच्छ, स्निग्ध—चिकना तथा रजतमय तटयुक्त है।

उस तिगिंछद्रह के चारों ओर तीन-तीन सीढ़ियाँ बनी हैं। लम्बाई, चौड़ाई के अतिरिक्त उस (तिगिंछद्रह) का सारा वर्णन पद्मद्रह के समान है। परम ऋद्धिशालिनी, एक पल्योपम के आयुष्य वाली धृति नामक देवी वहाँ निवास करती है। उसमें विद्यमान कमल आदि के वर्ण, प्रभा आदि तिगिंच्छ-परिमल—पुष्परज के सदृश हैं। अतएव वह तिगिंछद्रह कहलाता है।

१०१. तस्स णं तिगिंछिद्दहस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं हरिमहाणई पवूढा समाणी सत्त जोअणसहस्साइं चत्तारि अ एकवीसे जोअणसए एगं च एगूणवीसइभागं जोअणस्स दाहिणाभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवित्तिएणं (मुत्तावलिहारसंठिएणं) साइरेगचउजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ। एवं जा चेव हरिकन्ताए वत्तव्वया सा चेव हरीएवि णेअव्वा। जिब्भिआए, कुंडस्स, दीवस्स, भवणस्स तं चेव पमाणं अट्ठोऽवि भाणिअव्वो जाव अहे जगइं दालइत्ता छप्पण्णाए सलिला-सहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिमं लवणसमुद्दं समप्पेइ। तं चेव पवहे अ मुहमूले अ पमाणं उव्वेहो अ जो हरिकन्ताए जाव वणसंडसंपरिक्खित्ता।

तस्स णं तिगिंछिद्दहस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं सीओआ महाणई पवूढा समाणी सत्त जोअण-सहस्साइं चत्तारि अ एगवीसे जोअणसए एगं च एगूणवीसइभागं जोअणस्स उत्तराभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवित्तिएणं जाव[1] साइरेगचउजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ। सीओआ णं महाणई जओ पवडइ, एत्थ णं महं एगा जिब्भिआ पण्णत्ता। चत्तारि जोअणाइं आयामेणं, पण्णासं जोअणाइं विक्खंभेणं, जोअणं बाहल्लेणं, मगरमुहविउट्टसंठाणसंठिआ, सव्ववइरामई अच्छा।

सीओआ णं महाणई जहिं पवडइ एत्थ णं महं एगे सीओअप्पवायकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते। चत्तारि असीए जोअणसए आयामविक्खंभेणं, पण्णरसअट्ठारे जोअणसए किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं, अच्छे एवं कुंडवत्तव्वया णेअव्वा जाव तोरणा।

तस्स णं सीओअप्पवायकुण्डस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे सीओअदीवे णामं दीवे पण्णत्ते। चउसट्ठिं जोअणाइं आयामविक्खंभेणं, दोण्णि विउत्तरे जोअणसए परिक्खेवेणं, दो कोसे ऊसिए जलंताओ, सव्ववइरामए, अच्छे। सेसं तमेव वेइयावणसंडभूमिभागभवणसयणिज्जअट्ठो भाणिअव्वो।

तस्स णं सीओअप्पवायकुण्डस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं सीओआ महाणई पवूढा समाणी देवकुरुं एज्जेमाणा २ चित्तविचित्तकूडे, पव्वए, निसढदेवकुरुसूरसुलसविज्जुप्पभदहे अ दुहा विभयमाणी २ चउरासीए सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी २ भद्दसालवणं एज्जेमाणी २ मंदरं पव्वयं दोहिं जोअणेहिं

१. देखें सूत्र संख्या १२

असंपत्ता पच्चत्थिमाभिमुही आवत्ता समाणी अहे विज्जुप्पभं वक्खारपव्वयं दारइत्ता मन्दरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं अवरविदेहं वासं दुहा विभयमाणी २ एगमेगाओ चक्कवट्टिविजयाओ अट्ठावीसाए २ सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी २ पञ्चहिं सलिलासयसहस्सेहिं दुतीसाए अ सलिला-सहस्सेहिं समग्गा अहे जयंतस्स दारस्स जगइं दालइत्ता पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेति ।

सीओआ णं महाणई पवहे पण्णासं जोअणाइं विक्खंभेणं, जोअणं उव्वेहेणं । तयणंतरं च णं मायाए २ परिवद्धमाणी २ मुहमूले पञ्च जोअणसयाइं विक्खंभेणं, दस जोअणाइं उव्वेहेणं । उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता ।

णिसढे णं भन्ते ! वासहरपव्वए णं कति कूडा पण्णत्ता ?

गोयमा ! णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—१. सिद्धाययणकूडे, २. णिसढकूडे, ३. हरिवासकूडे, ४. पुव्वविदेहकूडे, ५. हरिकूडे, ६. धिईकूडे, ७. सीओआकूडे, ८. अवरविदेहकूडे, ९. रुअगकूडे । जो चेव चुल्लहिमवंतकूडाणं उच्चत्त-विक्खम्भ-परिक्खेवो पुव्ववण्णिओ रायहाणी अ सा चेव इहं णि णेअव्वा ।

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ णिसहे वासहरपव्वए २ ?

गोयमा ! णिसहे णं वासहरपव्वए बहवे कूडा णिसहसंठाणसंठिआ उसभसंठाणसंठिआ, णिसहे अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव[1] पलिओवमट्ठिईए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ णिसहे वासहरपव्वए २ ।

[१०१] उस तिगिंछद्रह के दक्षिणी तोरण से हरि (हरिसलिला) नामक महानदी निकलती है । वह दक्षिण में उस पर्वत पर ७४२१ $\frac{१}{१९}$ योजन बहती है । घड़े के मुँह से निकलते पानी की ज्यों जोर से शब्द करती हुई वह वेगपूर्वक (मोतियों से बने हार के आकार में) प्रपात में गिरती है । उस समय उसका प्रवाह ऊपर से नीचे तक कुछ अधिक चार सौ योजन का होता है । शेष वर्णन जैसा हरिकान्ता महानदी का है, वैसा ही इसका समझना चाहिए । इसकी जिह्विका, कुण्ड, द्वीप एवं भवन का वर्णन, प्रमाण उसी जैसा है ।

नीचे जम्बूद्वीप की जगती को दीर्ण कर वह आगे बढ़ती है । ५६००० नदियों से आपूर्ण वह महानदी पूर्वी लवणसमुद्र में मिल जाती है । उसके प्रवह—उद्गम-स्थान, मुख-मूल—समुद्र से संगम तथा उद्वेध—गहराई का वैसा ही प्रमाण है, जैसा हरिकान्ता महानदी का है । हरिकान्ता महानदी की ज्यों वह पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड से घिरी हुई है ।

तिगिंछद्रह के उत्तरी तोरण से शीतोदा नामक महानदी निकलती है । वह उत्तर में उस पर्वत पर ७४२१ $\frac{१}{१९}$ योजन बहती है । घड़े के मुँह से निकलते जल की ज्यों जोर से शब्द करती हुई वेगपूर्वक वह प्रपात में गिरती है । तब ऊपर से नीचे तक उसका प्रवाह कुछ अधिक ४०० योजन होता है । शीतोदा महानदी जहाँ से गिरती है, वहाँ एक विशाल जिह्विका—प्रणालिका है । वह चार योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी तथा एक योजन मोटी है । उसका आकार मगरमच्छ के खुले हुए मुख के आकार जैसा है । वह संपूर्णतः वज्ररत्नमय है, स्वच्छ है ।

१. देखें सूत्र संख्या १४

शीतोदा महानदी जिस कुण्ड में गिरती है, उसका नाम शीतोदाप्रपातकुण्ड है। वह विशाल है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई ४८० योजन है। उसकी परिधि कुछ कम १५१८ योजन है। वह निर्मल है। तोरणपर्यन्त उस कुण्ड का वर्णन पूर्ववत् है।

शीतोदाप्रपातकुण्ड के बीचों-बीच शीतोदाद्वीप नामक विशाल द्वीप है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई ६४ योजन है, परिधि २०२ योजन है। वह जल के ऊपर दो कोस ऊँचा उठा है। वह सर्व-वज्ररत्नमय है, स्वच्छ है। पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, भूमिभाग, भवन, शयनीय आदि बाकी का वर्णन पूर्वानुरूप है।

उस शीतोदाप्रपातकुण्ड के उत्तरी तोरण से शीतोदा महानदी आगे निकलती है। देवकुरुक्षेत्र में आगे बढ़ती है। चित्र-विचित्र—वैविध्यमय कूटों, पर्वतों, निषध, देवकुरु, सूर, सुलस एवं विद्युत्प्रभ नामक द्रहों को विभक्त करती हुई जाती है। उस बीच उसमें ८४००० नदियाँ आ मिलती हैं। वह भद्रशाल वन की ओर आगे जाती है। जब मन्दर पर्वत दो योजन दूर रह जाता है, तब वह पश्चिम की ओर मुड़ती है। नीचे विद्युत्प्रभ नामक वक्षस्कार पर्वत को भेद कर मन्दर पर्वत के पश्चिम में अपर विदेहक्षेत्र—पश्चिम विदेहक्षेत्र को दो भागों में विभक्त करती हुई बहती है। उस बीच उसमें १६ चक्रवर्ती विजयों में से एक-एक से अट्ठाईस-अट्ठाईस हजार नदियाँ आ मिलती हैं। इस प्रकार ४४८००० ये तथा ८४००० पहले की—कुल ५३२००० नदियों से आपूर्ण वह शीतोदा महानदी नीचे जम्बूद्वीप के पश्चिम दिग्वर्ती जयन्त द्वार की जगती को दीर्ण कर पश्चिमी लवणसमुद्र में मिल जाती है।

शीतोदा महानदी अपने उद्‌गम-स्थान में पचास योजन चौड़ी है। वहाँ वह एक योजन गहरी है। तत्पश्चात् वह मात्रा में—प्रमाण में क्रमशः बढ़ती-बढ़ती जब समुद्र में मिलती है, तब वह ५०० योजन चौड़ी हो जाती है। वह अपने दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो वनखण्डों द्वारा परिवृत है।

भगवन्! निषध वर्षधर पर्वत के कितने कूट बतलाये गये हैं?

गौतम! उसके नौ कूट बतलाये गये हैं—१. सिद्धायतनकूट, २. निषधकूट, ३. हरिवर्ष-कूट, ४. पूर्वविदेहकूट, ५. हरिकूट, ६. धृतिकूट, ७. शीतोदाकूट, ८. अपरविदेहकूट तथा ९. रुचककूट।

चुल्ल हिमवान् पर्वत के कूटों की ऊँचाई, चौड़ाई, परिधि, राजधानी आदि का जो वर्णन पहले आया है, वैसा ही इनका है।

भगवन्! वह निषध वर्षधर पर्वत क्यों कहा जाता है?

गौतम! निषध वर्षधर पर्वत के बहुत से कूट निषध के—वृषभ के आकार के सदृश हैं। उस पर परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयुष्ययुक्त निषध नामक देव निवास करता है। इसलिए वह निषध वर्षधर पर्वत कहा जाता है।

महाविदेहक्षेत्र

१०२. कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे णामं वासे पण्णत्ते ?

गोयमा ! णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं, णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जंबुद्दीवे २ महाविदेहे णामं वासे पण्णत्ते। पाईणपडीणायए, उदीणदाहिणविच्छिण्णे, पलिअंकसंठाणसंठिए। दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे (पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं) पुट्ठे पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं (लवणसमुद्दं) पुट्ठे, तित्तीसं जोअणसहस्साइं छच्च चुलसीए जोअणसए चत्तारि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खंभेणंति।

तस्स बाहा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं तेत्तीसं जोअणसहस्साइं सत्त य सत्तसट्ठे जोअणसए सत्त य एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणंति। तस्स जीवा बहुमज्झदेसभाए पाईणपडीणायया। दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं (लवणसमुद्दं) पुट्ठा एवं पच्चत्थिमिल्लाए (कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं) पुट्ठा, एगं जोयणसयसहस्सं आयामेणंति। तस्स धणुं उभओ पासिं उत्तरदाहिणेणं एगं जोअणसयसहस्सं अट्ठावण्णं जोअणसहस्साइं एगं च तेरसुत्तरं जोअणसयं सोलस य एगूणवीसइभागे जोअणस्स किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणंति।

महाविदेहे णं वासे चउव्विहे चउप्पडोआरे पण्णत्ते, तं जहा—१. पुव्वविदेहे, २. अवरविदेहे, ३. देवकुरा, ४. उत्तरकुरा।

महाविदेहस्स णं भंते ! वासस्स केरिसए आगारभावपडोआरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव[1] कित्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिं चेव।

महाविदेहे णं भंते ! वासे मणुआणं केरिसए आयारभावपडोआरे पण्णत्ते ?

तेसि णं मणुआणं छव्विहे संघयणे, छव्विहे संठाणे, पञ्चधणुसयाइं उद्धं च उच्चत्तेणं, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडीआउअं पालेन्ति, पालेत्ता अप्पेगइआ णिरयगामी, (अप्पेगइआ तिरियगामी, अप्पेगइआ मणुयगामी, अप्पेगइआ देवगामी,) अप्पेगइआ सिज्झंति, (बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वायंति, सव्वदुक्खाणं) अंतं करेन्ति।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—महाविदेहे वासे २ ?

गोयमा ! महाविदेहे णं वासे भरहेरवयहेमवयहेरण्णवयहरिवासरम्मगवासेहिंतो आयाम-विक्खंभसंठाणपरिणाहेणं विच्छिण्णतराए चेव विपुलतराए चेव महंततराए चेव सुप्पमाणतराए चेव। महाविदेहा य इत्थ मणूसा परिवसंति, महाविदेहे अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव[2] पलिओवमट्ठिइए परिवसइ। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—महाविदेहे वासे २।

अदुत्तरं च णं गोयमा ! महाविदेहस्स वासस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते, जं ण कयाइ णासि ३।

---

१. देखें सूत्र संख्या ४१
२. देखें सूत्र संख्या १४

[१०२] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह नामक क्षेत्र कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, निषध वर्षधर पर्वत के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह नामक क्षेत्र बतलाया गया है। वह पूर्व-पश्चिम में लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है, पलंग के आकार के समान संस्थित है। वह दो ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श करता है। (अपने पूर्वी किनारे से पूर्वी लवणसमुद्र का स्पर्श करता है तथा) पश्चिमी किनारे से पश्चिमी लवणसमुद्र का स्पर्श करता है। उसकी चौड़ाई ३३६८४ $\frac{४}{१९}$ योजन है।

उसकी बाहा पूर्व-पश्चिम ३३७६७ $\frac{७}{१९}$ योजन लम्बी है। उसके बीचों-बीच उसकी जीवा पूर्व-पश्चिम लम्बी है। वह दो ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श करती है। अपने पूर्वी किनारे से वह पूर्वी लवणसमुद्र का स्पर्श करती है (तथा पश्चिमी किनारे से पश्चिमी लवणसमुद्र का स्पर्श करती है)। वह एक लाख योजन लम्बी है। उसका धनुपृष्ठ उत्तर-दक्षिण दोनों ओर परिधि की दृष्टि से कुछ अधिक १५८११३ $\frac{१६}{१९}$ योजन है।

महाविदेह क्षेत्र के चार भाग बतलाये गये हैं—१. पूर्व विदेह, २. पश्चिम विदेह, ३. देवकुरु तथा ४. उत्तरकुरु।

भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र का आकार, भाव, प्रत्यवतार किस प्रकार का है ?

गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल एवं रमणीय है। वह नानाविध कृत्रिम—व्यक्ति-विशेष-विरचित एवं अकृत्रिम—स्वाभाविक पंचरंगे रत्नों से, तृणों से सुशोभित है।

भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में मनुष्यों का आकार, भाव, प्रत्यवतार किस प्रकार का है ?

गौतम ! वहाँ के मनुष्य छह प्रकार के संहनन[1], छह प्रकार के संस्थान[2] वाले होते हैं। वे पाँच सौ धनुष ऊँचे होते हैं। उनका आयुष्य कम से कम अन्तर्मुहूर्त तथा अधिक से अधिक एक पूर्व कोटि का होता है। अपना आयुष्य पूर्ण कर उनमें से कतिपय नरकगामी होते हैं, (कतिपय तिर्यक्-योनि में जन्म लेते हैं, कतिपय मनुष्ययोनि में जन्म लेते हैं, कतिपय देव रूप में उत्पन्न होते है,) कतिपय सिद्ध, (बुद्ध, मुक्त, परिनिवृत्त) होते हैं, समग्र दुःखों का अन्त करते हैं।

भगवन् ! वह महाविदेह क्षेत्र क्यों कहा जाता है ?

गौतम ! भरतक्षेत्र, ऐरवतक्षेत्र, हैमवतक्षेत्र, हैरण्यवतक्षेत्र, हरिवर्षक्षेत्र तथा रम्यक-क्षेत्र की अपेक्षा महाविदेहक्षेत्र लम्बाई, चौड़ाई, आकार एवं परिधि में विस्तीर्णतर—अति विस्तीर्ण, विपुलतर—अति विपुल, महत्तर—अति विशाल तथा सुप्रमाणतर—अति वृहत् प्रमाणयुक्त है। महाविदेह—अति महान्—विशाल देहयुक्त मनुष्य उसमें निवास करते हैं। परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयुष्य वाला महाविदेह नामक देव उसमें निवास करता है। गौतम ! इस कारण वह महाविदेह क्षेत्र कहा जाता है।

---

१. १. वज्रऋषभनाराच, २. ऋषभनाराच, ३. नाराच, ४. अर्धनाराच, ५. कीलक तथा ६. सेवार्त।

२. १. समचतुरस्र, २. न्यग्रोधपरिमंडल, ३. स्वाति, ४. वामन, ५. कुब्ज तथा ६. हुंड।

इसके अतिरिक्त गौतम ! महाविदेह नाम शाश्वत बतलाया है, जो न कभी नष्ट हुआ है, न कभी नष्ट होगा।

गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत

१०३. कहि णं भन्ते महाविदेहवासे गन्धमायणे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपच्चत्थिमेणं, गंधिलावइस्स विजयस्स पुरच्छिमेणं, उत्तरकुराए पच्चत्थिमेणं एत्थ णं महाविदेहे वासे गन्धमायणे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते।

उत्तरदाहिणायए पाईणपडीणविच्छिण्णे। तीसं जोअणसहस्साइं दुण्णि अ णउत्तरे जोअण-सए छच्च य एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं। णीलवंतवासहरपव्वयंतेणं चत्तारि जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, चत्तारि गाउअसयाइं उव्वेहेणं, पञ्च जोअणसयाइं विक्खंभेणं। तयणंतरं च णं मायाए २ उस्सेहुव्वेहपरिवद्धीए परिवद्धमाणे २, विक्खंभपरिहाणीए परिहायमाणे २ मंदरपव्वयंतेणं पञ्च जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, पञ्च गाउअसयाइं उव्वेहेणं, अंगुलस्स असंखिज्जइभागं विक्खंभेणं पण्णत्ते। गयदन्तसंठाणसंठिए, सव्वरयणामए, अच्छे। उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते।

गन्धमायणस्स णं वक्खारपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे। (तासि णं आभिओग-सेढीणं तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे देवा य देवीओ अ) आसयंति।

गन्धमायणे णं वक्खारपव्वए कति कूडा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सत्त कूडा, तं जहा—१. सिद्धाययणकूडे, २. गन्धमायणकूडे, ३. गंधिलावईकूडे, ४. उत्तरकुरुकूडे, ५. फलिहकूडे, ६. लोहियक्खकूडे, ७. आणंदकूडे।

कहि णं भन्ते ! गंधमायणे वक्खारपव्वए सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

गोयमा ! मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपच्चत्थिमेणं, गंधमायणकूडस्स दाहिणपुरत्थिमेणं, एत्थ णं गंधमायणे वक्खारपव्वए सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते। जं चेव चुल्लहिमवन्ते सिद्धाययणकूडस्स पमाणं तं चेव एएसिं सव्वेसिं भाणिअव्वं। एवं चेव विदिसाहिं तिण्णि कुडा भाणिअव्वा।

चउत्थे तइअस्स उत्तरपच्चत्थिमेणं पञ्चमस्स दाहिणेणं, सेसा उ उत्तरदाहिणेणं। फलिह-लोहिअक्खेसु भोगंकरभोगवईओ देवयाओ सेसेसु सरिसणामया देवा। छसु वि पसायवडेंसगा रायहाणीओ विदिसासु।

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ गंधमायणे वक्खारपव्वए २ ?

गोयमा ! गंधमायणस्स णं वक्खारपव्वयस्स गंधे से जहाणामए कोट्ठपुडाण वा (तयरपुडाण) पीसिज्जमाणाण वा उक्किरिज्जमाणाण वा विकिरिज्जमाणाण वा परिभुज्जमाणाण वा (संहिज्जमाणाण वा) ओराला मणुण्णा (मणामा) गंधा अभिणिस्सवन्ति, भवे एयारूवे ? णो इणट्ठे समट्ठे, गंधमायणस्स णं इतो इट्ठतराए (कंततराए, पियतराए, मणुण्णतराए, मणामतराए,

मणाभिरामतराए) गंधे पण्णत्ते। से एएणट्ठणं गोयमा! एवं वुच्चइ गंधमायणे वक्खार-पव्वए २। गंधमायणे अ इत्थ देवे महिड्ढीए परिवसइ, अदुत्तरं च णं सासए णामधिज्जे इति।

[१०३] भगवन्! महाविदेह क्षेत्र में गन्धमादन नामक वक्षस्कार पर्वत कहाँ बतलाया गया है?

गौतम! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, मन्दर पर्वत के उत्तर-पश्चिम में—वायव्य कोण में, गन्धिलावती विजय के पूर्व में तथा उत्तर कुरु के पश्चिम में महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत गन्धमादन नामक वक्षस्कार पर्वत बतलाया गया है।

वह उत्तर-दक्षिण लम्बा और पूर्व-पश्चिम चौड़ा है। उसकी लम्बाई ३०२०९ $\frac{६}{१९}$ योजन है। वह नीलवान् वर्षधर पर्वत के पास ४०० योजन ऊँचा है, ४०० कोश जमीन में गहरा है, ५०० योजन चौड़ा है। उसके अनन्तर क्रमशः उसकी ऊँचाई तथा गहराई बढ़ती जाती है, चौड़ाई घटती जाती है। यों वह मन्दर पर्वत के पास ५०० योजन ऊँचा हो जाता है, ५०० कोश गहरा हो जाता है। उसकी चौड़ाई अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी रह जाती है। उसका आकार हाथी के दाँत जैसा है। वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है। वह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं द्वारा तथा दो वन-खण्डों द्वारा घिरा हुआ है।

गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत के ऊपर बहुत समतल, सुन्दर भूमिभाग है। उसकी चोटियों पर जहाँ तहाँ अनेक देव-देवियाँ निवास करते हैं।

भगवन्! गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत के कितने कूट बतलाये गये हैं?

गौतम! उसके सात कूट बतलाये गये हैं—१. सिद्धायतन कूट, २. गन्धमादन कूट, ३. गन्धिलावती कूट, ४. उत्तरकुरु कूट, ५. स्फटिक कूट, ६. लोहिताक्ष कूट तथा ७. आनन्द कूट।

भगवन्! गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत पर सिद्धायतन कूट कहाँ बतलाया गया है?

गौतम! मन्दर पर्वत के उत्तर-पश्चिम में, गन्धमादन कूट के दक्षिण-पूर्व में गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत पर सिद्धायतन कूट बतलाया गया है। चुल्ल हिमवान् पर्वत पर सिद्धायतन कूट का जो प्रमाण है, वही इन सब कूटों का प्रमाण है।

तीन कूट विदिशाओं में—सिद्धायतन कूट मन्दर पर्वत के वायव्य कोण में,—गन्धमादन कुट सिद्धायतन कूट के वायव्य कोण में तथा गन्धिलावती कूट गन्धमादन कूट के वायव्य कोण में है। चौथा उत्तरकुरु कूट तीसरे गन्धिलावती कूट के वायव्य कोण में तथा पाँचवें स्फटिक कूट के दक्षिण में है। इनके सिवाय बाकी के तीन—स्फटिक कूट, लोहिताक्ष कूट एवं आनन्द कूट उत्तर-दक्षिण-श्रेणियों में अवस्थित हैं अर्थात् पाँचवाँ कूट चौथे कूट के उत्तर में छठे कूट के दक्षिण में, छठा कूट पाँचवें कूट के उत्तर में सातवें कूट के दक्षिण में तथा सातवाँ कूट छठे कूट के उत्तर में है, स्वयं दक्षिण में है।

स्फटिक कूट तथा लोहिताक्ष कूट पर भोगंकरा एवं भोगवती नामक दो दिक्कुमारिकाएँ निवास करती हैं। बाकी के कूटों पर तत्सदृश—कूटानुरूप नाम वाले देव निवास करते हैं। उन कूटों पर तदधिष्ठातृ-देवों के उत्तम प्रासाद हैं, विदिशाओं में राजधानियाँ हैं।

भगवन् ! गन्धमादन वक्षस्कारपर्वत का यह नाम किस प्रकार पड़ा ?

गौतम ! पीसे हुए, कूटे हुए, बिखेरे हुए, (एक बर्तन से दूसरे बर्तन में डाले हुए, उंडेले हुए) कोष्ठ (एवं तगर) से निकलने वाली सुगन्ध के सदृश उत्तम, मनोज्ञ, (मनोरम) सुगन्ध गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत से निकलती रहती है ।

भगवन् ! क्या वह सुगन्ध ठीक वैसी है ?

गौतम ! तत्वतः वैसी नहीं है । गन्धमादन से जो सुगन्ध निकलती है, वह उससे इष्टतर—अधिक इष्ट (अधिक कान्त, अधिक प्रिय, अधिक मनोज्ञ, अधिक मनस्तुष्टिकर एवं अधिक मनोरम) है । वहाँ गन्धमादन नामक परम ऋद्धिशाली देव निवास करता है । इसलिए वह गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत कहा जाता है । अथवा उसका यह नाम शाश्वत है ।

उत्तर कुरु

१०४. कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे उत्तरकुरा णामं कुरा पण्णत्ता ?

गोयमा ! मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं, णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं, गन्धमायणस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं उत्तरकुरा णामं कुरा पण्णत्ता ।

पाईणपडीणायया, उदीणदाहिणवित्थिण्णा, अद्धचंदसंठाणसंठिआ । इक्कारस जोअणसहस्साइं अट्ठ य बायाले जोअणसए दोण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खम्भेणंति ।

तीसे जीवा उत्तरेणं पाईणपडीणायया, दुहा वक्खारपव्वयं पुट्ठा, तंजहा—पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं पुट्ठा एवं पच्चत्थिमिल्लाए (कोडीए) पच्चत्थिमिल्लं वक्खार-पव्वयं पुट्ठा, तेवण्णं जोअणसहस्साइं आयामेणंति । तीसे णं धणुं दाहिणेणं सट्ठिं जोअणसहस्साइं चत्तारि अ अट्ठारसे जोअणसए दुवालस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं ।

उत्तरकुराए णं भन्ते ! कुराए केरिसए आयारभावपडोआरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, एवं पुव्ववण्णिआ जा चेव सुसमसुसमावत्तव्वया सा चेव णेअव्वा जाव १. पउमगंधा, २. मिअगंधा, ३. अममा, ४. सहा, ५. तेतली, ६. सणिचारी ।

[१०४] भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में उत्तरकुरु नामक क्षेत्र कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! मन्दर पर्वत के उत्तर में, नीलवान् वर्षधरपर्वत के दक्षिण में, गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में तथा माल्यवान् वक्षस्कारपर्वत के पश्चिम में उत्तरकुरु नामक क्षेत्र बतलाया गया है ।

वह पूर्व-पश्चिम लम्बा है, उत्तर-दक्षिण चौड़ा है, अर्ध चन्द्र के आकार में विद्यमान है । वह ११८४२ $\frac{२}{१९}$ योजन चौड़ा है ।

उत्तर में उसकी जीवा पूर्व-पश्चिम लम्बी है । वह दो तरफ से वक्षस्कार पर्वत का स्पर्श करती है । अपने पूर्वी किनारे से पूर्वी वक्षस्कारपर्वत का स्पर्श करती है, पश्चिमी किनारे से पश्चिमी वक्षस्कार पर्वत का स्पर्श करती है । वह ५३००० योजन लम्बी है । दक्षिण में उसके धनुपृष्ठ की परिधि ६०४१८ $\frac{१२}{१९}$ योजन है ।

भगवन् ! उत्तर कुरुक्षेत्र का आकार, भाव, प्रत्यवतार कैसा है ?

गौतम ! वहाँ बहुत समतल, सुन्दर भूमिभाग है। पूर्व प्रतिपादित सुषमसुषमा-सम्बन्धी वक्तव्यता—वर्णन के अनुरूप है—वैसी ही स्थिति उसकी है।

वहाँ के मनुष्य पद्मगन्ध—कमल-सदृश सुगन्धयुक्त, मृगगन्ध—कस्तूरी-मृग सदृश सुगन्धयुक्त, अमम—ममता रहित, सह—कार्यक्षम, तेतली—विशिष्ट पुण्यशाली तथा शनैश्चारी—मन्दगतियुक्त—धीरे-धीरे चलने वाले होते हैं।

यमक पर्वत

१०५. कहि णं भन्ते ! उत्तरकुराए जमगाणामं दुवे पव्वया पण्णत्ता ?

गोयमा ! णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणिल्लाओ चरिमन्ताओ अट्ठजोअणसए चोत्तीसे चत्तारि अ सत्तभाए जोअणस्स अबाहाए सीआए महाणईए उभओ कूले एत्थ णं जमगाणामं दुवे पव्वया पण्णत्ता। जोअणसहस्सं उड्ढं उच्चत्तेणं, अड्ढाइज्जाइं जोअणसयाइं उव्वेहेणं, मूले एगं जोअणसहस्सं आयामविक्खम्भेणं, मज्झे अद्धट्ठमाणि जोअणसयाइं आयामविक्खम्भेणं, उवरिं पंच जोअणसयाइं आयामविक्खम्भेणं। मूले तिण्णि जोअणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं, मज्झे दो जोअणसहस्साइं तिण्णि वावत्तरे जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं, उवरि एगं जोअणसहस्सं पञ्च य एकासीए जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं। मूले विच्छिण्णा, मज्झे संखित्ता, उप्पिं तणुआ, जमगसंठाणसंठिआ सव्वकणगामया, अच्छा, सण्हा। पत्तेअं २ पउमवरवेइआपरिक्खित्ता पत्तेअं २ वणसंडपरिक्खित्ता। ताओ णं पउमवरवेइआओ दो गाउआइं उद्धं उच्चत्तेणं, पञ्च धणुसयाइं विक्खम्भेणं, वेइआ-वणसण्डवण्णओ भाणिअव्वो।

तेसि णं जमगपव्वयाणं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव[1] तस्स णं बहुसमर-मणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं दुवे पासायवडेंसगा पण्णत्ता। ते णं पासायवडेंसगा बावट्ठिं जोअणाइं अद्धजोअणं च उद्धं उच्चत्तेणं, इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च आयाम-विक्खंभेणं पासायवण्णओ भाणिअव्वो, सीहासणा सपरिवारा (एवं पासायपंतीओ)। एत्थ णं जमगाणं देवाणं सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं सोलस-भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ जमग-पव्वया २ ?

गोयमा ! जमग-पव्वएसु णं तत्थ २ देसे तहिं तहिं बहवे खुड्डाखुड्डियासु वावीसु जाव[2] विलपंतियासु बहवे उप्पलाइं जाव[3] जमगवण्णाभाइं, जमगा य इत्थ दुवे देवा महिड्ढिया, ते णं तत्थ चउण्हं सामाणिअ-साहस्सीणं (चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणिआणं, सत्तण्हं अणिआहिवईणं, सोलसण्हं आयरक्ख-देवसाहस्सीणं मज्झगए पुरापोराणाणं सुपरक्कंताणं

---

१. देखें सूत्र संख्या ६

२. देखें सूत्र संख्या ७८

३. देखें सूत्र संख्या ७४

सुभाणं, कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं कल्लाण-फल-वित्ति-विसेसं पच्चणुभवमाणा) भुंजमाणा विहरंति, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—जमग-पव्वया २ अदुत्तरं च णं सासए णामधिज्जे जाव जमगपव्वया २ ।

कहि णं भन्ते ! जमगाणं देवाणं जमिगाओ रायहाणीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं अण्णंमि जम्बुद्दीवे २ बारस जोअणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं जमगाणं देवाणं जमिगाओ रायहाणीओ पण्णत्ताओ । बारस जोअणसहस्साइं आयामविक्खम्भेणं, सत्ततीसं जोअणसहस्साइं णव य अडयाले जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं । पत्तेअं २ पायारपरिक्खित्ता । ते णं पागारा सत्ततीसं जोअणाइं अद्धजोअणं च उद्धं उच्चत्तेणं, मूले अद्धत्तेरसजोअणाइं विक्खम्भेणं, मज्झे छ सकोसाइं जोअणाइं विक्खम्भेणं, उवरिं तिण्णि सअद्धकोसाइं जोअणाइं विक्खम्भेणं, मूले विच्छिण्णा, मज्झे संखित्ता, उप्पि तणुआ, बाहिं वट्टा, अंतो चउरंसा, सव्वरयणामया, अच्छा । ते णं पागारा णाणामणिपञ्च-वण्णेहिं कविसीसएहिं उवसोहिआ, तं जहा—किण्हेहिं जाव[1] सुक्किल्लेहिं । ते णं कविसीसगा अद्धकोसं आयामेणं, देसूणं अद्धकोसं उद्धं उच्चत्तेणं, पञ्च धणुसयाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमया, अच्छा ।

जमिगाणं रायहाणीणं एगमेगाए बाहाए पणवीसं पणवीसं दारसयं पण्णत्तं । ते णं दारा बावट्ठि जोअणाइं अद्धजोअणं च उद्धं उच्चत्तेणं, इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च विक्खम्भेणं, तावइअं चेव पवेसेणं । सेआ वरकणगथूभिआगा एवं रायप्पसेणइज्जविमाणवत्तव्वयाए दारवण्णओ जाव अट्ठट्ठमंगलगाइं ति ।

जमियाणं रायहाणीणं चउद्दिसिं पञ्च पञ्च जोअणसए अबाहाए चत्तारि वणसण्डा पण्णत्ता, तं जहा—१. असोगवणे, २. सत्तिवण्णवणे, ३. चंपगवणे, ४. चूअवणे । ते णं वणसंडा साइरेगाइं बारसजोअणसहस्साइं आयामेणं, पञ्च जोअणसयाइं विक्खंभेणं । पत्तेअं २ पागारपरिक्खित्ता किण्हा, वणसण्डवण्णओ भूमीओ पासायवडेंसगा य भाणिअव्वा ।

जमिगाणं रायहाणीणं अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते वण्णगोत्ति । तेसि णं बहुसमर-मणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं दुवे उवयारियालयणा पण्णत्ता । बारस जोअणसयाइं आयामविक्खम्भेणं, तिण्णि जोअणसहस्साइं सत्त य पञ्चाणउए जोअणसए परिक्खेवेणं, अद्धकोसं च बाहल्लेणं, सव्वजंबूणयामया, अच्छा । पत्तेअं पत्तेअं पउमवरवेइआपरिक्खित्ता, पत्तेअं पत्तेअं वणसंडवण्णओ भाणिअव्वो, तिसोवाणपडिरूवगा तोरणचउद्दिसिं भूमिभागा य भाणिअव्वत्ति ।

तस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे पासायवडेंसए पण्णत्ते । बावट्ठि जोअणाइं अद्धजोअणं च उद्धं उच्चत्तेणं, इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च आयामविक्खम्भेणं वण्णओ उल्लोआ भूमिभागा

---

१. देखें सूत्र संख्या ४

सीहासणा सपरिवारा. एवं पासायपंतीओ (एत्थ पढमा पंती ते णं पासायवडेंसगा) एक्कतीसं जोअणाइं कोसं च उद्धं उच्चत्तेणं, साइरेगाइं अद्धसोलसजोअणाइं आयामविक्खम्भेणं।

बिइअपासायपंती ते णं पासायवडेंसया साइरेगाइं अद्धसोलसजोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, साइरेगाइं अद्धट्ठमाइं जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं।

तइअपासायपंती ते णं पासायवडेंसया साइरेगाइं अद्धट्ठमाइं जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, साइरेगाइं अद्धट्ठजोअणाइं आयामविक्खम्भेणं, वण्णओ सीहासणा सपरिवारा।

तेसि णं मूलपासायवडिंसयाणं उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं जमगाणं देवाणं सहाओ सुहम्माओ पण्णत्ताओ। अद्धतेरस जोअणाइं आयामेणं, छस्सकोसाइं जोअणाइं विक्खम्भेणं, णव जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठा सभावण्णओ, तासि णं सभाणं सुहम्माणं तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता। ते णं दारा दो जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, जोअणं विक्खम्भेणं, तावइअं चेव पवेसेणं, सेआ वण्णओ जाव वणमाला।

तेसि णं दाराणं पुरओ पत्तेअं २ तओ मुहमंडवा पण्णत्ता। ते णं मुहमंडवा अद्धत्तेरसजोअणाइं आयामेणं, छस्सकोसाइं जोअणाइं विक्खम्भेणं, साइरेगाइं दो जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं। (तासि णं सभाणं सुहम्माणं) दारा भूमिभागा य त्ति। पेच्छाघरमंडवाणं तं चेव पमाणं भूमिभागो मणिपेढिआओत्ति, ताओ णं मणिपेढिआओ जोअणं आयामविक्खम्भेणं, अद्धजोअणं बाहल्लेणं सव्वमणिमईआ सीहासणा भाणिअव्वा।

तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं पुरओ मणिपेढिआओ पण्णत्ताओ। ताओ णं मणिपेढिआओ दो जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं, जोअणं बाहल्लेणं, सव्वमणिमईओ। तासि णं उप्पि पत्तेअं २ तओ थूभा। ते णं थूभा दो जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, दो जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं, सेआ संखतल जाव[1] अट्ठट्ठमंगलया।

तेसि णं थूभाणं चउद्दिसिं चत्तारि मणिपेढिआओ पण्णत्ताओ। ताओ णं मणिपेढिआओ जोअणं आयामविक्खम्भेणं, अद्धजोअणं बाहल्लेणं, जिणपडिमाओ वत्तव्वाओ। चेइअरुक्खाणं मणिपेढिआओ दो जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं, जोअणं बाहल्लेणं, चेइअ-रुक्ख-वण्णओत्ति।

तेसि णं चेइअ-रुक्खाणं पुरओ तओ मणि-पेढिआओ पण्णत्ताओ। ताओ णं मणि-पेढिआओ जोअणं आयाम-विक्खम्भेणं, अद्धजोअणं बाहल्लेणं। तासि णं उप्पि पत्तेअं २ महिंदज्झया पण्णत्ता। ते णं अद्धट्ठमाइं जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, अद्धकोसं उव्वेहेणं, अद्धकोसं बाहल्लेणं, वइरामयवट्ट वण्णओ वेइआवणसंडतिसोवाणतोरणा य भाणिअव्वा।

तासिं णं सभाणं सुहम्माणं छच्च मणोगुलिआसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पुरत्थिमेणं दो साहस्सीओ पण्णत्ताओ, पच्चत्थिमेणं दो साहस्सीओ, दक्खिणेणं एगा साहस्सी, उत्तरेणं एगा। (तासु णं मणोगुलिआसु बहवे सुवण्णरुप्पमया फलगा पण्णत्ता। तेसि णं सुवण्णरुप्पमएसु फलगेसु

१. देखें सूत्र संख्या ६७

बहुवे वइरामया णागदन्तगा पण्णत्ता। तेसु णं वइरामएसु नागदन्तेसु बहुवे किण्हसुत्तवग्घारिअमल्ल-दामकलावा जाव सुक्किल्लसुत्तवग्घारिअमल्लदामकलावा। ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा) दामा चिट्ठंतिंत्ति। एवं गोमाणसिआओ, णवरं धूवघडिआओत्ति।

तासि णं सुहम्माणं सभाणं अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्त। मणिपेढिआ दो जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं, जोअणं वाहल्लेणं। तासि णं मणिपेढिआणं उप्पि माणवए चेइअखम्भे महिंदज्झयप्पमाणे उवरिं छक्कोसे ओगाहित्ता हेट्ठा छक्कोसे वज्जित्ता जिणसकहाओ पण्णत्ताओत्ति। माणवगस्स पुव्वेणं सीहासणा सपरिवारा, पच्चत्थिमेणं सयणिज्जवण्णओ। सयणिज्जाणं उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए खुड्डगमहिंदज्झया, मणिपेढिआविहूणा महिंदज्झयप्पमाणा। तेसिं अवरेणं चोप्फाला पहरणकोसा। तत्थ णं वहवे फलिहरयणपामुक्खा (वहवे पहरणरयणा सन्निक्खित्ता) चिट्ठंति। सुहम्माणं उप्पि अट्ठट्ठमंगलगा। तासि णं उत्तरपुरत्थिमेणं सिद्धाययणा, एस चेव जिणघराणवि गमोत्ति। णवरं इमं णाणत्तं-एतेसि णं बहुमज्झदेसभाए पत्तेअं २ मणिपेढिआओ। दो जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं, जोअणं वाहल्लेणं। तासि उप्पि पत्तेअं २ देवच्छंदया पण्णत्ता। दो जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं, साइरेगाइं दो जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, सव्वरयणामए। जिणपडिमा वण्णओ जाव धूवकडुच्छुगा, एवं अवसेसाणवि सभाणं जाव उववायसभाए, सयणिज्जं हरओ अ।

अभिसेअसभाए बहु आभिसेक्के भंडे, अलंकारिअसभाए बहु अलंकारिअभंडे चिट्ठइ, ववसायसभासु पुत्थयरयणा, णंदा पुक्खरिणीओ, वलिपेढा, दो जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं, जोअणं वाहल्लेणं जावत्ति—

उववाओ संकप्पो, अभिसेअविहूसणा य ववसाओ।
अच्चणिअसुधम्मगमो, जहा य परिवारणा इद्धी ॥१॥
जावइयंमि पमाणंमि, हुंति जमगाओ णीलवंताओ।
तावइअमन्तरं खलु, जमगदहाणं दहाणं च ॥२॥

[१०५] भगवन्! उत्तरकुरु में यमक नामक दो पर्वत कहाँ बतलाये गये हैं?

गौतम! नीलवान् वर्षधरपर्वत के दक्षिण दिशा के अन्तिम कोने से ८३४ ४/७ योजन के अन्तराल पर शीतोदा नदी के दोनों—पूर्वी, पश्चिमी तट पर यमक संज्ञक दो पर्वत बतलाये गये हैं। वे १००० योजन ऊँचे, २५० योजन जमीन में गहरे, मूल में १००० योजन, मध्य में ७५० योजन तथा ऊपर ५०० योजन लम्बे-चौड़े हैं। उनकी परिधि मूल में कुछ अधिक ३१६२ योजन, मध्य में कुछ अधिक २३७२ योजन एवं ऊपर कुछ अधिक १५८१ योजन है। वे मूल में विस्तीर्ण—चौड़े, मध्य में संक्षिप्त—संकड़े और ऊपर—चोटी पर तनुक पतले हैं। वे यमकसंस्थानसंस्थित हैं—एक साथ उत्पन्न हुए दो भाइयों के आकार के सदृश अथवा यमक नामक पक्षियों के आकार के समान हैं। वे सर्वथा स्वर्णमय, स्वच्छ एवं सुकोमल हैं। उनमें से प्रत्येक एक-एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक-एक वन-खण्ड द्वारा घिरा हुआ है। वे पद्मवरवेदिकाएँ दो-दो कोश ऊँची हैं। पाँच-पाँच सौ धनुष चौड़ी हैं। पद्मवरवेदिकाओं तथ

उन यमक नामक पर्वतों पर वहुत समतल एवं रमणीक भूमिभाग है। उस वहुत समतल, सुन्दर भूमिभाग के बीचों-बीच दो उत्तम प्रासाद हैं। वे प्रासाद ६२½ योजन ऊँचे हैं। ३१ योजन १ कोश लम्बे-चौड़े हैं। सम्बद्ध सामग्री युक्त सिंहासन पर्यन्त प्रासाद का वर्णन पूर्ववत् है। इन यमक देवों के १६००० आत्मरक्षक देव हैं। उनके १६००० उत्तम आसन—सिंहासन वतलाये गये हैं।

भगवन्! उन्हें यमक पर्वत क्यों कहा जाता है ?

गौतम! उन (यमक) पर्वतों पर जहाँ तहाँ वहुत सी छोटी-छोटी वावड़ियों, पुष्करिणियों आदि में जो अनेक उत्पल, कमल आदि खिलते हैं, उनका आकार एवं आभा यमक पर्वतों के आकार तथा आभा के सदृश हैं। वहाँ यमक नामक दो परम ऋद्धिशाली देव निवास करते हैं। उनके चार हजार सामानिक देव हैं, (चार सपरिवार अग्रमहिषियाँ—प्रधान देवियां हैं, तीन परिषदें हैं, सात सेनाएँ हैं, सात सेनापति-देव हैं, १६००० आत्मरक्षक देव हैं। उनके वीच वे अपने पूर्व आचरित, आत्मपराक्रमपूर्वक सदुपार्जित शुभ, कल्याणमय कर्मो का अभीष्ट सुखमय फल-भोग करते हुए विहार करते हैं—रहते हैं।)

गौतम! इस कारण वे यमक पर्वत कहलाते हैं। अथवा उनका यह नाम शाश्वत रूप में चला आ रहा है।

भगवन्! यमक देवों की यमिका नामक राजधानियाँ कहाँ हैं ?

गौतम! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत मन्दर पर्वत के उत्तर में अन्य जम्बूद्वीप में १२००० योजन अवगाहन करने पर—जाने पर यमक देवों की यमिका नामक राजधानियाँ आती हैं। वे १२००० योजन लम्बी-चौड़ी हैं। उनकी परिधि कुछ अधिक ३७९४८ योजन है। प्रत्येक राजधानी प्राकार—परकोटे से परिवेष्टित है—घिरी हुई है। वे प्राकार ३७½ योजन ऊँचे हैं। वे मूल में १२½ योजन, मध्य में ६ योजन १ कोश तथा ऊपर तीन योजन आधा कोश चौड़े हैं। वे मूल में विस्तीर्ण—चौड़े, वीच में संक्षिप्त—संकड़े तथा ऊपर तनुक—पतले हैं। वे वाहर से कोनों के अनुपलक्षित रहने के करण वृत्त—गोलाकार तथा भीतर से कोनों के उपलक्षित रहने से चौकोर प्रतीत होते हैं। वे सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ हैं। वे नाना प्रकार के पँचरंगे रत्नों से निर्मित कपिशीर्षकों—वन्दर के मस्तक के आकार के कंगूरों द्वारा सुशोभित हैं। वे कंगूरे आधा कोश ऊँचे तथा पाँच सौ धनुप मोटे हैं, सर्वरत्नमय हैं, उज्ज्वल हैं।

यमिका नामक राजधानियों के प्रत्येक पार्श्व में सवा सौ-सवा सौ द्वार हैं। वे द्वार ६२½ योजन ऊँचे हैं। ३१ योजन १ कोश चौड़े हैं। उनके प्रवेश-मार्ग भी उतने ही प्रमाण के हैं। उज्ज्वल, उत्तम स्वर्णमय स्तूपिका, द्वार, अष्ट मंगलक आदि से सम्बद्ध समस्त वक्तव्यता राजप्रश्नीय सूत्र में विमान-वर्णन के अन्तर्गत आई वक्तव्यता के अनुरूप है।

यमिका राजधानियों की चारों दिशाओं में पाँच-पाँच सौ योजन के व्यवधान से १. अशोक-वन, २. सप्तपर्णवन, ३. चम्पकवन तथा ४. आम्रवन—ये चार वन-खण्ड हैं। ये वन-खण्ड कुछ अधिक १२००० योजन लम्बे तथा ५०० योजन चौड़े हैं। प्रत्येक वन-खण्ड प्राकार द्वारा परिवेष्टित है। वन-खण्ड, भूमि, उत्तम प्रासाद आदि पूर्व वर्णित के अनुरूप हैं।

यमिका राजधानियों में से प्रत्येक में बहुत समतल सुन्दर भूमिभाग हैं। उनका वर्णन पूर्ववत् है। उन बहुत समतल, रमणीय भूमिभागों के बीचों-बीच दो प्रासाद-पीठिकाएँ हैं। वे १२०० योजन लम्बी-चौड़ी हैं। उनकी परिधि ३७९५ योजन है। वे आधा कोश मोटी हैं। वे सम्पूर्णतः उत्तम जम्बूनद जातीय स्वर्णमय हैं, उज्ज्वल हैं। उनमें से प्रत्येक एक-एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक-एक वन-खण्ड द्वारा परिवेष्टित है। वन-खण्ड, त्रिसोपानक, चारों दिशाओं में चार तोरण, भूमिभाग आदि से सम्बद्ध वर्णन पूर्ववत् है।

उसके बीचों-बीच एक उत्तम प्रासाद है। वह ६२½ योजन ऊँचा है। वह ३१ योजन १ कोश लम्बा-चौड़ा है। उसके ऊपर के हिस्से, भूमिभाग—नीचे के हिस्से, सम्बद्ध सामग्री सहित सिंहासन, प्रासाद-पंक्तियाँ—मुख्य प्रासाद को चारों ओर से परिवेष्टित करनेवाली महलों की कतारें इत्यादि अन्यत्र वर्णित है, ज्ञातव्य हैं।

प्रासाद-पंक्तियों में से प्रथम पंक्ति के प्रासाद ३१ योजन १ कोश ऊँचे हैं। वे कुछ अधिक १५½ योजन लम्बे चौड़े हैं।

द्वितीय पंक्ति के प्रासाद कुछ अधिक १५½ योजन ऊँचे हैं। वे कुछ अधिक ७½ योजन लम्बे-चौड़े हैं।

तृतीय पंक्ति के प्रासाद कुछ अधिक ७½ योजन ऊँचे हैं, कुछ अधिक ३½ योजन लम्बे-चौड़े हैं। सम्बद्ध सामग्री युक्त सिंहासनपर्यन्त समस्त वर्णन पूर्ववत् है।

मूल प्रासाद के उत्तर-पूर्व दिशाभाग में—ईशान कोण में यमक देवों की सुधर्मा सभाएँ बतलाई गई हैं। वे सभाएँ १२½ योजन लम्बी, ६ योजन १ कोश चौड़ी तथा ९ योजन ऊँची हैं। सैकड़ों खंभों पर अवस्थित हैं—टिकी हैं। उन सुधर्मा सभाओं की तीन दिशाओं में तीन द्वार बतलाये गये हैं। वे द्वार दो योजन ऊँचे हैं, एक योजन चौड़े हैं। उनके प्रवेश-मार्गों का प्रमाण—विस्तार भी उतना ही है। वनमाला पर्यन्त आगे का सारा वर्णन पूर्वानुरूप है।

उन द्वारों में से प्रत्येक के आगे मुख-मण्डप—द्वाराग्रवर्ती मण्डप बने हैं। वे साढ़े बारह योजन लम्बे, छह योजन एक कोश चौड़े तथा कुछ अधिक दो योजन ऊँचे हैं। द्वार तथा भूमिभाग पर्यन्त अन्य समस्त वर्णन पूर्वानुरूप है। मुख-मण्डपों के आगे अवस्थित प्रेक्षागृहों—नाटयशालाओं का प्रमाण मुख-मण्डपों के सदृश है। भूमिभाग, मणिपीठिका आदि पूर्व वर्णित हैं। मुख-मण्डपों में अवस्थित मणिपीठिकाएँ १ योजन लम्बी-चौड़ी तथा आधा योजन मोटी हैं। वे सर्वस्था मणिमय हैं। वहाँ विद्यमान सिंहासनों का वर्णन पूर्ववत् है।

प्रेक्षागृह-मण्डपों के आगे जो मणिपीठिकाएँ हैं, वे दो योजन लम्बी-चौड़ी तथा एक योजन मोटी हैं। वे सम्पूर्णतः मणिमय हैं। उनमें से प्रत्येक पर तीन तीन स्तूप—स्मृति-स्तंभ बने हैं। वे स्तूप दो योजन ऊँचे हैं, दो योजन लम्बे-चौड़े हैं वे शंख की ज्यों श्वेत हैं। यहाँ आठ मांगलिक पदार्थों तक का वर्णन पूर्वानुरूप है।

उन स्तूपों की चारों दिशाओं में चार मणिपीठिकाएँ हैं। वे मणिपीठिकाएँ एक योजन लम्बी-चौड़ी तथा आधा योजन मोटी हैं। वहाँ स्थित जिन-प्रतिमाओं का वर्णन पूर्वानुरूप है।

वहाँ के चैत्यवृक्षों की मणिपीठिकाएँ दो योजन लम्बी-चौड़ी और एक योजन मोटी हैं। चैत्यवृक्षों का वर्णन पूर्वानुरूप है।

उन चैत्यवृक्षों के आगे तीन मणिपीठिकाएँ बतलाई गई हैं। वे मणिपीठिकाएँ एक योजन लम्बी-चौड़ी तथा आधा योजन मोटी हैं। उनमें से प्रत्येक पर एक-एक महेन्द्रध्वजा है। वे ध्वजाएँ साढ़े सात योजन ऊँची हैं और आधा कोश जमीन में गहरी गड़ी हैं। वे वज्ररत्नमय हैं, वर्तुलाकार हैं। उनका तथा वेदिका, वन-खण्ड त्रिसोपान एवं तोरणों का वर्णन पूर्वानुरूप है।

उन (पूर्वोक्त) सुधर्मा सभाओं में ६००० पीठिकाएँ बतलाई गई हैं। पूर्व में २००० पीठिकाएँ पश्चिम में २००० पीठिकाएँ, दक्षिण में १००० पीठिकाएँ तथा उत्तर में १००० पीठिकाएँ हैं। (उन पीठिकाओं में अनेक स्वर्णमय, रजतमय फलक लगे हैं। उन स्वर्ण-रजतमय फलकों में वज्ररत्नमय अनेक खूँटियाँ लगी हैं। उन वज्ररत्नमय खूँटियों पर काले सूत्र में तथा सफेद सूत्र में पिरोई हुई मालाओं के समूह लटक रहे हैं। वे मालाएँ तपनीय तथा जम्बूनद जातीय स्वर्ण के सदृश देदीप्यमान हैं। वहाँ गोमानसिका—शय्या रूप स्थान-विशेष विरचित हैं। उनका वर्णन पीठिकाओं जैसा है। इतना अन्तर है—मालाओं के स्थान पर धूपदान लेने चाहिए।

उन सुधर्मा सभाओं के भीतर बहुत समतल, सुन्दर भूमिभाग हैं। मणिपीठिकाएँ हैं। वे दो योजन लम्बी-चौड़ी हैं तथा एक योजन मोटी हैं। उन मणिपीठिकाओं के ऊपर महेन्द्रध्वज के समान प्रमाणयुक्त—साढ़े सात योजन-प्रमाण माणवक नामक चैत्य-स्तंभ हैं। उनमें ऊपर के छह कोश तथा नीचे के छह कोश वर्जित कर बीच में—साढ़े चार योजन के अन्तराल में जिनदंष्ट्राएँ निक्षिप्त हैं। माणवक चैत्य स्तंभ के पूर्व में विद्यमान सम्बद्ध सामग्री युक्त सिंहासन, पश्चिम में विद्यमान शयनीय—शय्याएँ पूर्ववर्णनानुरूप हैं। शयनीयों के उत्तर-पूर्व में—ईशान कोण में दो छोटे महेन्द्रध्वज बतलाये गये हैं। उनका प्रमाण महेन्द्रध्वज जितना है। वे मणिपीठिकारहित हैं। यों महेन्द्रध्वज से उतने छोटे हैं। उनके पश्चिम में चोप्फाल नामक प्रहरण-कोश—आयुध-भाण्डागार—शस्त्रशाला है। वहाँ परिघ-रत्न—लोहमयी उत्तम गदा आदि (अनेक शस्त्ररत्न—उत्तम शस्त्र) रखे हुए हैं। उन सुधर्मा सभाओं के ऊपर आठ-आठ मांगलिक पदार्थ प्रस्थापित हैं। उनके उत्तर-पूर्व में—ईशान कोण में दो सिद्धायतन हैं। जिनगृह सम्बन्धी वर्णन पूर्ववत् है केवल इतना अन्तर है—इन जिन-गृहों के बीचों-बीच प्रत्येक में मणिपीठिका है। वे मणिपीठिकाएँ दो योजन लम्बी-चौड़ी तथा एक योजन मोटी हैं। उन मणिपीठिकाओं में से प्रत्येक पर जिनदेव के आसन हैं। वे आसन दो योजन लम्बे-चौड़े हैं, कुछ अधिक दो योजन ऊँचे हैं। वे सम्पूर्णतः रत्नमय हैं। धूपदान पर्यन्त जिन-प्रतिमा वर्णन पूर्वानुरूप है। उपपात सभा आदि शेष सभाओं का भी शयनीय एवं गृह आदि पर्यन्त पूर्वानुरूप वर्णन है।

अभिषेक सभा में बहुत से अभिषेक-पात्र हैं, आलंकारिक सभा में बहुत से अलंकार-पात्र हैं, व्यवसाय-सभा में—पुस्तकरत्न-उद्घाटनरूप व्यवसाय-स्थान में पुस्तक-रत्न हैं। वहाँ नन्दा पुष्करिणियाँ हैं, पूजा-पीठ हैं। वे (पूजा-पीठ) दो योजन लम्बे-चौड़े तथा एक योजन मोटे हैं।

उपपात—उत्पत्ति, संकल्प—शुभ अध्यवसाय-चिन्तन, अभिषेक—इन्द्रकृत अभिषेक, विभूषणा—आलंकारिक सभा में अलंकार-परिधान, व्यवसाय—पुस्तक-रत्न का उद्घाटन, अर्चनिका—सिद्धायतन आदि की अर्चा—पूजा, सुधर्मा सभा में गमन, परिवारणा—परिवेष्टना—

तत्तद् दिशाओं में देव-परिवारस्थापना, ऋद्धि—सम्पत्ति—देव-वैभव-नियोजना आदि यमक देवों का वर्णन-क्रम है।

नीलवान् पर्वत से यमक पर्वतों का जितना अन्तर है, उतना ही यमक-द्रहों का अन्य द्रहों से अन्तर है।

नीलवान् द्रह

१०६. कहि णं भन्ते ! उत्तरकुराए णीलवन्तद्दहे णामं दहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! जमगाणं दक्खिणिल्लाओ चरिमन्ताओ अट्ठसए चोत्तीसे चत्तारि अ सत्तभाए जोअणस्स अबाहाए सीआए महाणईए बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं णीलवन्तद्दहे णामं दहे पण्णत्ते। दाहिण-उत्तरायए, पाईण-पडीणवित्थिण्णे। जहेव पउमद्दहे तहेव वण्णओ णेअव्वो, णाणत्तं—दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि य वणसंडेहिं संपरिक्खित्ते, णीलवन्ते णामं णागकुमारे देवे सेसं तं चेव णेअव्वं।

णीलवन्तद्दहस्स पुव्वावरे पासे दस २ जोअणाइं अबाहाए एत्थ णं वीसं कंचणगपव्वया पण्णत्ता, एगं जोयणसयं उद्धं उच्चत्तेणं—

मूलंमि जोअणसयं, पण्णत्तरि जोअणाइं मज्झंमि।
उवरितले कंचणगा, पण्णासं जोअणा हुंति ॥१॥
मूलंमि तिण्णि सोले, सत्तत्तीसाइं दुण्णि मज्झंमि।
अट्ठावण्णं च सयं, उवरितले परिरओ होइ ॥२॥
पढमित्थ नीलवन्तो १, बितिओ उत्तरकुरू २, मुणेअव्वो।
चंदद्दहोत्थ तइओ ३, एरावय ४, मालवन्तो अ ५ ॥३॥

एवं वण्णओ अट्ठो पमाणं पलिओवमट्ठिइआ देवा।

[१०६] भगवन् ! उत्तरकुरु में नीलवान् नामक द्रह कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! यमक पर्वतों के दक्षिणी छोर से ८३४ $\frac{4}{7}$ योजन के अन्तराल पर शीता महानदी के ठीक बीच में नीलवान् नामक द्रह बतलाया गया है। वह दक्षिण-उत्तर लम्बा एवं पूर्व-पश्चिम चौड़ा है। जैसा पद्मद्रह का वर्णन है, वैसा ही उसका है। केवल इतना अन्तर है—नीलवान् द्रह दो पद्मवर-वेदिकाओं द्वारा तथा दो वनखण्डों द्वारा परिवेष्टित है। वहाँ नीलवान् नामक नागकुमार देव निवास करता है। अवशेष-वर्णन पूर्वानुरूप है।

नीलवान् द्रह के पूर्वी पश्चिमी पार्श्व में दश-दश योजन के अन्तराल पर बीस काञ्चनक पर्वत हैं। वे सौ योजन ऊँचे हैं।

काञ्चनक पर्वतों का विस्तार मूल में सौ योजन, मध्य में पचहत्तर योजन तथा ऊपर पचास योजन है। उनकी परिधि मूल में ३१६ योजन, मध्य में २३७ योजन तथा ऊपर १५८ योजन है।

पहला नीलवान्, दूसरा उत्तरकुरु, तीसरा चन्द्र, चौथा ऐरावत तथा पाँचवां माल्यवान्—ये पाँच द्रह हैं। अन्य द्रहों का प्रमाण, वर्णन नीलवान् द्रह के सदृश ग्राह्य है। उनमें एक पल्योपम-

आयुष्य वाले देव निवास करते हैं। प्रथम नीलवान् द्रह में जैसा सूचित किया गया है, नागेन्द्र देव निवास करता है तथा अन्य चार में व्यन्तरेन्द्र देव निवास करते हैं। वे एक पल्योपम आयुष्य वाले हैं।

जम्बूपीठं, जम्बूसुदर्शना

१०७. कहि णं भन्ते ! उत्तरकुराए कुराए जम्बूपेढे णामं पेढे पण्णत्ते ?

गोयमा ! णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं, मन्दरस्स उत्तरेणं, मालवन्तस्स वक्खार-पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, सीआए महाणईए पुरत्थिमिल्ले कूले एत्थ णं उत्तरकुराए कुराए जम्बूपेढे णामं पेढे पण्णत्ते। पञ्च जोअणसयाइं आयाम-विक्खम्भेणं, पण्णरस एक्कासीयाइं जोअणसयाइं किंचिविसेसाहिआइं परिक्खेवेणं, बहुमज्झदेसभाए बारस जोअणाइं बाहल्लेणं। तयणन्तरं च णं मायाए २ पदेसपरिहाणीए २ सव्वेसु णं चरिमपेरंतेसु दो दो गाउआइं बाहल्लेणं, सव्वजम्बूणयामए अच्छे। से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते, दुण्हंपि वण्णओ। तस्स णं जम्बूपेढस्स चउद्दिसिं एए चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, वण्णओ जाव तोरणाइं।

तस्स णं जम्बूपेढस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं मणिपेढिआ पण्णत्ता। अट्ठजोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं, चत्तारि जोअणाइं बाहल्लेणं। तीसे णं मणिपेढिआए उप्पिं एत्थ णं जम्बूसुदंसणा पण्णत्ता। अट्ठ जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, अद्धजोअणं उव्वेहेणं। तीसे णं खंधो दो जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, अद्धजोअणं बाहल्लेणं। तीसे णं साला छ जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं, साइरेगाइं अट्ठ जोअणाइं सव्वग्गेणं।

तीसे णं अयमेआरूवे वण्णावासे पण्णत्ते—वइरामया मूला, रययसुपइट्ठिअविडिमा (-विउलखंधा वेरुलियरुइलखंधा, सुजायवरजायरूवपढमगविसालसाला, णाणामणिरयणविविहसाह-प्पसाहा, वेरुलियपत्ततवणिज्जपत्तविंटा, जंबूणयरत्तमउयसुकुमालपवालपल्लवंकुरधरा, विचित्तमणि-रयणसुरहिकुसुमफलभारनमियसाला, सच्छाया सप्पभा सस्सिरिया सउज्जोया) अहिअमणणिव्वुइकरी पासाईआ दरिसणिज्जा०।

जंबूए सुदंसणाए चउद्दिसिं चत्तारि साला पण्णत्ता। तेसि णं सालाणं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं सिद्धायणे पण्णत्ते। कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खम्भेणं, देसूणगं कोसं उद्धं उच्चत्तेणं, अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठे जाव[1] दारा पञ्चधणुसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं जाव वणमालाओ।

मणिपेढिआ पञ्चधणुसयाइं आयाम-विक्खम्भेणं, अद्धाइज्जाइं धणुसयाइं बाहल्लेणं। तीसे णं मणिपेढिआए उप्पिं देवच्छन्दए, पंचधणुसयाइं आयाम-विक्खम्भेणं, साइरेगाइं पञ्चधणुसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, जिणपडिमावण्णओ णेअव्वोत्ति।

तत्थ णं जे से पुरत्थिमिल्ले साले, एत्थ णं भवणे पण्णत्ते। कोसं आयामेणं, एवमेव णवरमित्थ सयणिज्जं। सेसेसु पासायवडेंसया सीहासणा य सपरिवारा इति।

---

१. देखें सूत्र संख्या ६८

जम्बू णं बारसहिं पउमवरवेइआहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता, वेइआणं वण्णओ। जम्बू णं अण्णेणं अट्ठसएणं जम्बूणं तदद्धुच्चत्ताणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता। तासि णं वण्णओ। ताओ णं जम्बू छहिं पउमवरवेइआहिं संपरिक्खित्ता।

जम्बूए णं सुदंसणाए उत्तरपुरत्थिमेणं, उत्तरेणं, उत्तरपच्चत्थिमेणं एत्थ णं अणाढिअस्स देवस्स चउण्हं सामाणिअसाहस्सीणं चत्तारि जम्बूसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। तीसे णं पुरत्थिमेणं चउण्हं अग्गमहिसीणं चत्तारि जम्बूओ पण्णत्ताओ—

दक्खिणपुरत्थिमे दक्खिणेण तह अवरदक्खिणेणं च।
अट्ठ दस बारसेव य भवन्ति जम्बूसहस्साइं ॥१॥
अणिआहिवाण पच्चत्थिमेण सत्तेव होंति जम्बूओ।
सोलस साहस्सीओ चउद्दिसिं आयरक्खाणं ॥२॥

जम्बूए णं तिहिं सइएहिं वणसंडेहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता। जम्बूए णं पुरत्थिमेणं पण्णासं जोअणाइं पढमं वणसंडं ओगाहित्ता एत्थ णं भवणे पण्णत्ते, कोसं आयामेणं, सो चेव वण्णओ सयणिज्जं च, एवं सेसासुवि दिसासु भवणा। जम्बूए णं उत्तरपुरत्थिमेणं पढमं वणसण्डं पण्णासं जोअणाइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—१, पउमा, २, पउमप्पभा, ३, कुमुदा, ४, कुमुदप्पभा। ताओ णं कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खम्भेणं, पञ्चधणुसयाइं उव्वेहेणं वण्णओ। तासि णं मज्झे पासायवडेंसगा कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खम्भेणं, देसूणं कोसं उद्धं उच्चत्तेणं, वण्णओ सीहासणा सपरिवारा, एवं सेसासु विदिसासु गाहा—

पउमा पउमप्पभा चेव, कुमुदा कुमुदप्पहा।
उप्पलगुम्मा णलिणा, उप्पला उप्पलुज्जला ॥१॥
भिंगा भिंगप्पभा चेव, अंजणा कज्जलप्पभा।
सिरिकंता सिरिमहिआ, सिरिचंदा चेव सिरिनिलया ॥२॥

जम्बूए णं पुरत्थिमिल्लस्स भवणस्स उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स दक्खिणेणं एत्थ णं कूडे पण्णत्ते। अट्ठ जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, दो जोअणाइं उव्वेहेणं, मूले अट्ठ जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं, बहुमज्झदेसभाए छ जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं, उवरिं चत्तारि जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं—

पणवीसट्ठारस बारसेव मूले अ मज्झि उवरिं च।
सविसेसाइं परिरओ कूडस्स इमस्स बोद्धव्वो ॥१॥

मूले वित्थिण्णे, मज्झे संखित्ते, उवरिं तणुए, सव्वकणगामए, अच्छे, वेइआवणसंडवण्णओ, एवं सेसावि कूडा इति।

जम्बूए णं सुदंसणाए दुवालस णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

१. सुदंसणा, २. अमोहा य, ३. सुप्पबुद्धा, ४. जसोहरा।
५. विदेहजम्बू, ६. सोमणसा, ७. णिअया, ८. णिच्चमंडिआ ॥१॥
९ सुभद्दा य, १० विसाला य, ११ सुजाया, १२ सुमणा वि अ।
सुदंसणाए जम्बूए, णामधेज्जा दुवालस ॥२॥

जम्बूए णं अट्ठट्ठमंगलगा०।

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ—जम्बू सुदंसणा २ ?

गोयमा ! जम्बूए णं सुदंसणाए अणाढिए णामं जम्बुद्दीवाहिवई परिवसइ महिड्ढीए, से णं तत्थ चउण्हं सामाणिअसाहस्सीणं, (चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणिआहिवईणं सोलस-) आयरक्खदेवसाहस्सीणं, जम्बुद्दीवस्स णं दीवस्स, जम्बूए सुदंसणाए, अणाढिआए रायहाणीए, अण्णेसिं च बहूणं देवाण य देवीण य जाव[1] विहरइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ, अदुत्तरं णं च णं गोयमा ! जम्बूसुदंसणा जाव भुविं च ३ धुवा, णिअआ, सासया, अक्खया (अव्वया) अवट्ठिआ।

कहि णं भन्ते ! अणाढिअस्स देवस्स अणाढिआ णामं रायहाणी पण्णत्ता ?

गोयमा ! जम्बुद्दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं जं चेव पुव्ववण्णिअं जमिगापमाणं तं चेव णेअव्वं, जाव उववाओ अभिसेओ अ निरवसेसोत्ति।

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ उत्तरकुरा ?

गोयमा ! उत्तरकुराए उत्तरकुरू णामं देवे परिवसइ महिड्ढीए जाव[2] पलिओवमट्ठिइए, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ उत्तरकुरा २, अदुत्तरं च णंति (धुवे, णियए) सासए।

[१०७] भगवन् ! उत्तरकुरु में जम्बूपीठ नामक पीठ कहाँ वतलाया गया है ?

गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, मन्दर पर्वत के उत्तर में माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में एवं शीता महानदी के पूर्वी तट पर उत्तरकुरु में जम्बूपीठ नामक पीठ वतलाया गया है। वह ५०० योजन लम्वा-चौड़ा है। उसकी परिधि कुछ अधिक १५८१ योजन है। वह पीठ वीच में वारह योजन मोटा है। फिर क्रमशः मोटाई में कम होता हुआ वह अपने आखिरी छोरों पर दो दो कोश मोटा रह जाता है। वह सम्पूर्णतः जम्बूनदजातीय स्वर्णमय है, उज्ज्वल है। वह एक पद्मवरवेदिका से तथा एक वन-खण्ड से सव ओर से संपरिवृत—घिरा है। पद्मवरवेदिका तथा वन-खण्ड का वर्णन पूर्वानुरूप है।

जम्बूपीठ की चारों दिशाओं में तीन तीन सोपानपंक्तियां हैं। तोरण-पर्यन्त उनका वर्णन पूर्ववत् है।

जम्बूपीठ के वीचोंवीच एक मणि-पीठिका है। वह आठ योजन लम्वी-चौड़ी है, चार योजन मोटी है। उस मणि-पीठिका के ऊपर जम्बू सुदर्शना नामक वृक्ष वतलाया गया है। वह आठ योजन

१. देखें सूत्र संख्या १२
२. देखें सूत्र संख्या १४

ऊँचा तथा आधा योजन जमीन में गहरा है उसका स्कन्ध—कन्द से ऊपर शाखा का उद्गम-स्थान दो योजन ऊँचा और आधा योजग मोटा है। उसकी शाखा-दिक्-प्रसृता शाखा अथवा मध्य भाग प्रभवा ऊर्ध्वगता शाखा ६ योजन ऊँची है। बीच में उसका आयाम-विस्तार आठ योजन है। यों सर्वांगत: उसका आयाम-विस्तार कुछ अधिक आठ योजन है।

उस जम्बू वृक्ष का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है—

उसके मूल वज्ररत्नमय हैं, विडिमा-मध्य से ऊर्ध्व विनिर्गत—ऊपर को निकली हुई शाखा रजत-घटित है। (उसका स्कन्ध विशाल, रुचिर वज्ररत्नमय है। उसकी बड़ी डालें उत्तमजातीय स्वर्णमय हैं। उसके अरुण, मृदुल, सुकुमार प्रवाल—अंकुरित होते पत्ते, पल्लव—बढ़े हुए पत्ते तथा अंकुर स्वर्णमय हैं। उसकी डालें विविध मणि रत्नमय हैं, सुरभित फूलों तथा फलों के भार से अभिनत हैं। वह वृक्ष छायायुक्त, प्रभायुक्त, शोभायुक्त एवं आनन्दप्रद तथा दर्शनीय है।

जम्बू सुदर्शना की चारों दिशाओं में चार शाखाएँ वतलाई गई हैं। उन शाखाओं के बीचोंबीच एक सिद्धायतन है। वह एक कोश लम्बा, आधा कोश चौड़ा तथा कुछ कम एक कोश ऊँचा है। वह सैकड़ों खंभों पर टिका है। उसके द्वार पांच सौ धनुष ऊँचे हैं। वनमालाओं तक का आगे का वर्णन पूर्वानुरूप है।

उपर्युक्त मणिपीठिका पाँच सौ धनुष लम्बी-चौड़ी है, अढ़ाई सौ धनुष मोटी है। उस मणिपीठिका पर देवच्छन्दक—देवासन है। वह देवच्छन्दक पांच सौ धनुष लम्बा-चौड़ा है, कुछ अधिक पांच सौ धनुष ऊँचा है। आगे जिन-प्रतिमाओं तक का वर्णन पूर्ववत् है।

उपर्युक्त शाखाओं में जो पूर्वी शाखा है, वहाँ एक भवन वतलाया गया है। वह एक कोश लम्बा है। यहाँ विशेषत: शयनीय और जोड़ लेना चाहिए। बाकी की दिशाओं में जो शाखाएँ हैं, वहाँ प्रासादावतंसक—उत्तम प्रासाद हैं। सम्बद्ध सामग्री सहित सिंहासन-पर्यन्त उनका वर्णन पूर्वानुसार है।

वह जम्बू (सुदर्शन) बारह पद्मवरवेदिकाओं द्वारा सब ओर से घिरा हुआ है। वेदिकाओं का वर्णन पूर्वानुरूप है। पुन: वह अन्य १०८ जम्बू वृक्षों से घिरा हुआ है, जो उससे आधे ऊँचे हैं। उनका वर्णन पूर्ववत् है। पुनश्च वे जम्बू वृक्ष छह पद्मवरवेदिकाओं से घिरे हुए हैं।

जम्बू (सुदर्शन) के उत्तर-पूर्व में—ईशान कोण में, उत्तर में तथा उत्तर-पश्चिम में—वायव्य कोण में अनादृत नामक देव, जो अपने को वैभव, ऐश्वर्य तथा ऋद्धि में अनुपम, अप्रतिम मानता हुआ जम्बू द्वीप के अन्य देवों को आदर नहीं देता, के चार हजार सामानिक देवों के ४००० जम्बू वृक्ष वतलाये—गये हैं। पूर्व में चार अग्रमहिषियों—प्रधान देवियों के चार जम्बू कहे गये हैं।

दक्षिण-पूर्व में—आग्नेय कोण में, दक्षिण में तथा दक्षिण-पश्चिम में—नैऋर्त्य कोण में क्रमश: आठ हजार, दश हजार और बारह हजार जम्बू हैं। ये पार्षद देवों के जम्बू हैं।

पश्चिम में सात अनीकाधिपों—सात सेनापति-देवों के सात जम्बू हैं। चारों दिशाओं में सोलह हजार आत्मरक्षक देवों के सोलह हजार जम्बू हैं।

जम्बू (सुदर्शन) तीन सौ वन-खण्डों द्वारा सव ओर से घिरा हुआ है। उसके पूर्व में पचास योजन पर अवस्थित प्रथम वनखण्ड में जाने पर एक भवन आता है, जो एक कोश लम्बा है।

उसका तथा तद्गत शयनीय आदि का वर्णन पूर्वानुरूप है। बाकी की दिशाओं में भी भवन बतलाये गये हैं।

जम्बू सुदर्शन के उत्तर-पूर्व—ईशान कोण में प्रथम वनखण्ड में पचास योजन की दूरी पर १. पद्म, २. पद्मप्रभा, ३. कुमुदा एवं ४. कुमुदप्रभा नामक चार पुष्करिणियाँ हैं। वे एक कोश लम्बी, आधा कोश चौड़ी तथा पाँच सौ धनुष भूमि में गहरी हैं। उनका विशेष वर्णन अन्यत्र है, वहाँ से ग्राह्य है। उनके बीच-बीच में उत्तम प्रासाद हैं। वे एक कोश लम्बे, आधा कोश चौड़े तथा कुछ कम एक कोश ऊँचे हैं। सम्बद्ध सामग्री सहित सिंहासन पर्यन्त उनका वर्णन पुर्वानुरूप है। इसी प्रकार बाकी की विदिशाओं में—आग्नेय, नैर्ऋत्य तथा वायव्य कोण में भी पुष्करिणियाँ हैं। उनके नाम निम्नांकित हैं:—

१. पद्मा, २. पद्मप्रभा, ३. कुमुदा, ४. कुमुदप्रभा, ५. उत्पलगुल्मा, ६. नलिना, ७. उत्पला, ८. उत्पलोज्ज्वला, ९. भृंगा, १०. भृंगप्रभा, ११. अंजना, १२. कज्जलप्रभा, १३. श्रीकान्ता, १४. श्रीमहिता, १५. श्रीचन्द्रा तथा १६. श्रीनिलया।

जम्बू के पूर्व दिग्वर्ती भवन के उत्तर में, उत्तर-पूर्व—ईशानकोणस्थित उत्तम प्रासाद के दक्षिण में एक कूट—पर्वत-शिखर बतलाया गया है। वह आठ योजन ऊँचा एवं दो योजन जमीन में गहरा है। वह मूल में आठ योजन, बीच में छह योजन तथा ऊपर चार योजन लम्बा-चौड़ा है।

उस शिखर की परिधि मूल में कुछ अधिक पच्चीस योजन, मध्य में कुछ अधिक अठारह योजन तथा ऊपर कुछ अधिक बारह योजन है।

वह मूल में चौड़ा, बीच में संकड़ा और ऊपर पतला है, सर्व स्वर्णमम है, उज्ज्वल है।

पद्मवरवेदिका एवं वनखण्ड का वर्णन पूर्वानुरूप है। इसी प्रकार अन्य शिखर हैं।

जम्बू सुदर्शना के बारह नाम कहे गये हैं:—

१. सुदर्शना, २. अमोघा, ३. सुप्रबुद्धा, ४. यशोधरा, ५. विदेहजम्बू, ६. सौमनस्या, ७. नियता, ८. नित्यमण्डिता, ९. सुभद्रा, १०. विशाला, ११. सुजाता तथा १२. सुमना।

जम्बू सुदर्शना पर आठ-आठ मांगलिक द्रव्य प्रस्थापित हैं।

भगवन्! इसका नाम जम्बू सुदर्शना किस कारण पड़ा?

गौतम! वहाँ जम्बूद्वीपाधिपति, परम ऋद्धिशाली अनादृत नामक देव अपने चार हजार सामानिक देवों, (चार सपरिवार अग्रमहिषियों—प्रधान देवियों, तीन परिषदों, सात सेनाओं, सात सेनापति-देवों तथा) सोलह हजार आत्मरक्षक देवों का, जम्बूद्वीप का, जम्बू सुदर्शना का, अनादृता नामक राजधानी का, अन्य अनेक देव-देवियों का आधिपत्य करता हुआ निवास करता है।

गौतम! इस कारण उसे जम्बू सुदर्शना कहा जाता है। अथवा गौतम! जम्बू सुदर्शना नाम ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय (अव्यय) तथा अवस्थित है।

भगवन्! अनादृत नामक देव की अनादृता नामक राजधानी कहाँ बतलाई गई है?

गौतम! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत मन्दर पर्वत के उत्तर में अनादृता राजधानी है। उसके

प्रमाण आदि पूर्ववर्णित यमिका राजधानी के सदृश हैं। देव का उपपात—उत्पत्ति, अभिषेक आदि सारा वर्णन वैसा ही है।

भगवन् ! उत्तरकुरु—यह नाम किस कारण पड़ा ?

गौतम ! उत्तरकुरु में परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयुष्य युक्त उत्तरकुरु नामक देव निवास करता है। गौतम ! इस कारण वह उत्तरकुरु कहा जाता है।

अथवा उत्तरकुरु नाम (ध्रुव, नियत एवं) शाश्वत है।

माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत

१०८. कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे मालवंते णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं, णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, उत्तरकुराए पुरत्थिमेणं, कच्छस्स चक्कवट्टिविजयस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं महाविदेहे वासे मालवंते णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते। उत्तरदाहिणायए, पाईणपडीणविच्छिण्णे, जं चेव गंधमायणस्स पमाणं विक्खम्भो अ, णवरमिमं णाणत्तं सव्ववेरुलिआमए, अवसिट्ठं तं चेव जाव गोयमा ! नव कूडा पण्णत्ता, तं जहा सिद्धायतणकूडे—

सिद्धे य मालवन्ते, उत्तरकुरु कच्छ सागरे रयए।
सीओ य पुण्णभद्दे, हरिस्सहे चेव बोद्धव्वे ॥१॥

कहि णं भन्ते ! मालवन्ते वक्खारपव्वए सिद्धायतणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

गोयमा ! मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं, मालवन्तस्स कूडस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं एत्थ णं सिद्धायतणे कूडे पण्णत्ते। पंच जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, अवसिट्ठं तं चेव जाव रायहाणी। एवं मालवन्तस्स कूडस्स, उत्तरकुरुकूडस्स, कच्छकूडस्स, एए चत्तारि कूडा दिसाहिं पमाणेहिं णेअव्वा, कूडसरिसणामया देवा।

कहि णं भन्ते ! मालवन्ते सागरकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

गोयमा ! कच्छकूडस्स उत्तरपुरत्थिमेणं, रययकूडस्स दक्खिणेणं एत्थ णं सागरकूडे णामं कूडे पण्णत्ते। पंच जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, अवसिट्ठं तं चेव, सुभोगा देवी, रायहाणी उत्तरपुरत्थिमेणं, रययकूडे भोगमालिणी देवी रायहाणी उत्तरपुरत्थिमेणं, अवसिट्ठा कूडा उत्तरदाहिणेणं णेअव्वा एक्केणं पमाणेणं।

[१०८] भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत माल्यवान् नामक वक्षस्कारपर्वत कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! मन्दरपर्वत के उत्तर-पूर्व में—ईशान कोण में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, उत्तर कुरु के पूर्व में, कच्छ नामक चक्रवर्ति-विजय के पश्चिम में महाविदेह क्षेत्र में माल्यवान् नामक वक्षस्कारपर्वत बतलाया गया है। वह उत्तर-दक्षिण लम्बा एवं पूर्व-पश्चिम चौड़ा है। गन्धमादन का जैसा प्रमाण, विस्तार है, वैसा ही उसका है। इतना अन्तर है– वह सर्वथा वैडूर्य-रत्नमय है। बाकी सब वैसा ही है।

गौतम ! यावत् कूट—पर्वत-शिखर नौ वतलाये गये हैं—१. सिद्धायतनकूट, २. माल्यवान्कूट, ३. उत्तरकुरुकूट, ४. कच्छकूट, ५. सागरकूट, ६. रजतकूट, ७. शीताकूट, ८. पूर्णभद्रकूट एवं ९. हरिस्सहकूट।

भगवन् ! माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत पर सिद्धायतन कूट नामक कूट कहाँ वतलाया गया है ?

गौतम ! मन्दरपर्वत के उत्तर-पूर्व में—ईशान-कोण में, माल्यवान् कूट के दक्षिण-पश्चिम में—नैर्ऋत्य कोण में सिद्धायतन नामक कूट वतलाया गया है। वह पाँच सौ योजन ऊँचा है। राजधानी-पर्यन्त वाकी का वर्णन पूर्वानुरूप है। माल्यवान्कूट, उत्तरकुरुकूट तथा कच्छकूट की दिशाएँ—प्रमाण आदि सिद्धायतन कूट के सदृश हैं। अर्थात् वे चारों कूट प्रमाण, विस्तार आदि में एक समान हैं। कूटों के सदृश नाम युक्त देव उन पर निवास करते हैं।

भगवन् ! माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत पर सागर कूट नामक कूट कहाँ वतलाया गया है ?

गौतम ! कच्छकूट के उत्तर-पूर्व में—ईशान कोण में और रजतकूट के दक्षिण में सागर कूट नामक कूट वतलाया गया है। वह पाँच सौ योजन ऊँचा है। वाकी का वर्णन पूर्वानुरूप है। वहाँ सुभोगा नामक देवी निवास करती है। उत्तर-पूर्व में—ईशान कोण में उसकी राजधानी है। रजत कूट पर भोगमालिनी नामक देवी निवास करती है। उत्तर-पूर्व में उसकी राजधानी है। वाकी के कूट—पिछले कूट से अगला कूट उत्तर में, अगले कूट से पिछला कूट दक्षिण में—इस क्रम से अवस्थित हैं, एक समान प्रमाणयुक्त हैं।

हरिस्सह कूट

१०९. कहि णं भन्ते ! मालवन्ते हरिस्सहकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पुण्णभद्दस्स उत्तरेणं, णीलवन्तस्स दक्खिणेणं, एत्थ णं हरिस्सहकूडे णामं कूडे पण्णत्ते। एगं जोअणसहस्सं उद्धं उच्चत्तेणं, जमगपमाणेणं णेअव्वं। रायहाणी उत्तरेणं असंखेज्जे दीवे अण्णंमि जम्बुद्दीवे दीवे, उत्तरेणं वारस जोअणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं हरिस्सहस्स देवस्स हरिस्सहाणामं रायहाणी पण्णत्ता। चउरासीइं जोअणसहस्साइं आयामविक्खम्भेणं, बे जोअणसय-सहस्साइं पण्णट्ठिं च सहस्साइं छच्च छत्तीसे जोअणसए परिक्खेवेणं, सेसं जहा चमरचञ्चाए रायहाणीए तहा पमाणं भाणिअव्वं, महिड्ढीए महज्जुईए।

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ मालवन्ते वक्खारपव्वए २ ?

गोयमा ! मालवन्ते णं वक्खारपव्वए तत्थ तत्थ देसे तहिं २ वहवे सरिआगुम्मा, णोमालिआगुम्मा जाव मगदन्तिआगुम्मा। ते णं गुम्मा दसद्धवण्णं कुसुमं कुसुमेंति, जे णं तं मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं वायविधुअग्गसालामुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिअं करेन्ति। मालवंते अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव[1] पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ, अदुत्तरं च णं (धुवे, णियए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए) णिच्चे।

---

१. देखें सूत्र संख्या १४

[१०९] भगवन् ! माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत पर हरिस्सह कूट नामक कूट कहाँ वतलाया गया है ?

गौतम ! पूर्णभद्रकूट के उत्तर में, नीलवान् पर्वत के दक्षिण में हरिस्सहकूट नामक कूट वतलाया गया है। वह एक हजार योजन ऊँचा है। उसकी लम्बाई, चौड़ाई आदि सव यमक पर्वत के सदृश है। मन्दर पर्वत के उत्तर में असंख्य तिर्यक् द्वीप-समुद्रों को लांघकर अन्य जम्बूद्वीप के अन्तर्गत उत्तर में वारह हजार योजन जाने पर हरिस्सह कूट के अधिष्ठायक हरिस्सह देव की हरिस्सहा नामक राजधानी आती है। वह ८४००० योजन लम्बी-चौड़ी है। उसकी परिधि २६५६३६ योजन है। वह ऋद्धिमय तथा द्युतिमय है। उसका अवशेष वर्णन चमरेन्द्र की चमरचञ्चा नामक राजधानी के समान समझना चाहिए।

भगवन् ! माल्यवान् वक्षस्कारपर्वत—इस नाम से क्यों पुकारा जाता है ?

गौतम ! माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत पर जहाँ तहाँ वहुत से सरिकाओं, नवमालिकाओं, मगदन्तिकाओं—आदि तत्तत् पुष्पलताओं के गुल्म—झुरमुट हैं। उन लताओं पर पंचरंगे फूल खिलते हैं। वे लताएँ पवन द्वारा प्रकम्पित अपनी टहनियों के अग्रभाग से मुक्त हुए पुष्पों द्वारा माल्यवान् वक्षस्कारपर्वत के अत्यन्त समतल एवं सुन्दर भूमिभाग को सुशोभित, सुसज्जित करती हैं। वहाँ परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयुष्ययुक्त माल्यवान् नामक देव निवास करता है, गौतम ! इस कारण वह माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत कहा जाता है। अथवा उसका यह नाम (ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित एवं) नित्य है।

कच्छ विजय

११०. कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे कच्छे णामं विजए पण्णत्ते ?

गोयमा ! सीआए महाणईए उत्तरेणं, णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं, चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, मालवंतस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे २ महाविदेहे वासे कच्छे णामं विजए पण्णत्ते। उत्तरदाहिणायए, पाडीण-पडीणविथिण्णे पलिअंकसंठाणसंठिए, गंगासिंधूहिं महाणईहिं वेयद्धेण य पव्वएणं छब्भागपविभत्ते, सोलस जोअणसहस्साइं पंच य वाणउए जोअणसए दोण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं, दो जोअणसहस्साइं दोण्णि अ तेरसुत्तरे जोअणसए किंचि विसेसूणे विक्खंभेणंति।

कच्छस्स णं विजयस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं वेअद्धे णामं पव्वंए पण्णत्ते, जे णं कच्छं विजयं दुहा विभयमाणे २ चिट्ठइ, तं जहा—दाहिणद्धकच्छं उत्तरद्धकच्छं चेति।

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे दाहिणद्धकच्छे णामं विजए पण्णत्ते ?

गोयमा ! वेअद्धस्स पव्वयस्स दाहिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं, चित्तकूडस्स वक्खार-पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, मालवंतस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे दाहिणद्धकच्छे णामं विजए पण्णत्ते। उत्तरदाहिणायए, पाईणपडीणविथिण्णे, अट्ठजोअणसहस्साइं दोण्णि अ एगसत्तरे जोअणसए एक्कं च एगूणवीसइभागं आयामेणं, दो जोअणसहस्साइं दोण्णि अ तेरसुत्तरे जोअणसए किंचिविसेसूणे विक्खंभेणं, पलिअंकसंठाणसंठिए।

दाहिणद्धकच्छस्स णं भन्ते ! विजयस्स केरिसए आयारभावपडोआरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, तं जहा—जाव[1] कत्तिमेहिं चेव अकत्तिमेहिं चेव ।

दाहिणद्धकच्छे णं भन्ते ! विजए मणुआणं केरिसए आयारभावपडोआरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तेसि णं मणुआणं छव्विहे संघयणे जाव[2] सव्वदुक्खाणमंतं करेंति ।

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे कच्छे विजए वेअद्धे णामं पव्वए ?

गोयमा ! दाहिणद्धकच्छ-विजयस्स उत्तरेणं, उत्तरद्धकच्छस्स दाहिणेणं, चित्तकूडस्स पच्चत्थिमेणं, मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं कच्छे विजए वेअद्धे णामं पव्वए पण्णत्ते । तं जहा—पाईणपडीणायए, उदीणदाहिणवित्थिण्णे, दुहा वक्खारपव्वए पुट्ठे—पुरत्थिमिल्लाए कोडीए (पुरत्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं पुट्ठे, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं पुट्ठे) दोहिवि पुट्ठे । भरहवेअद्धसरिसए णवरं दो बाहाओ जीवा धणुपट्ठं च ण कायव्वं । विजय-विक्खम्भसरिसे आयामेणं । विक्खम्भो, उच्चत्तं, उव्वेहो तहेव च विज्जाहरआभिओगसेढीओ तहेव, णवरं पणपण्णं २ विज्जाहरणगरावासा पण्णत्ता । आभिओगसेढीए उत्तरिल्लाओ सेढीओ सीआए ईसाणस्स सेसाओ सक्कस्सत्ति । कूडा—

१. सिद्धे २. कच्छे ३. खंडग ४. माणी ५. वेअद्ध ६. पुण्ण ७. तिमिसगुहा ।
८. कच्छे ९. वेसमणे वा, वेअद्धे होंति कूडाइं ॥१॥

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे २ महाविदेहे वासे उत्तर-कच्छे णामं विजए पण्णत्ते ?

गोयमा ! वेयद्धस्स पव्वयस्स उत्तरेणं, णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे जाव[3] सिज्झन्ति, तहेव णेअव्वं सव्वं ।

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे उत्तरद्धकच्छे विजए सिंधुकुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते ?

गोयमा ! मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, उसभकूडस्स पच्चत्थिमेणं, णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे उत्तरद्धकच्छविजए सिंधुकुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते, सट्ठि जोअणाणि आयामविक्खम्भेणं जाव भवणं अट्ठो रायहाणी अ णेअव्वा, भरहसिंधुकुंडसरिसं सव्वं णेअव्वं ।

तस्स णं सिंधुकुण्डस्स दाहिणिल्लेणं तोरणेणं सिंधुमहाणई पवूढा समाणी उत्तरद्धकच्छविजयं एज्जेमाणी २ सत्तहिं सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी २ अहे तिमिसगुहाए वेअद्धपव्वयं दालयित्ता

१. देखें सूत्र संख्या ४१
२. देखें सूत्र संख्या १२
३. देखें सूत्र संख्या १४

दाहिणकच्छविजयं एज्जेमाणी २ चोद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं समग्गा दाहिणेणं सीयं महाणइं समप्पेइ। सिंधुमहाणई पवहे अ मूले अ भरहसिंधुसरिसा पमाणेणं जाव दोहिं वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता।

कहि णं भन्ते ! उत्तरद्धकच्छविजए उसभकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! सिंधुकुंडस्स पुरत्थिमेणं, गंगाकुण्डस्स पच्चत्थिमेणं, णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे एत्थ णं उत्तरद्धकच्छविजए उसहकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते। अट्ठ जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, तं चेव पमाणं जाव रायहाणी से णवरं उत्तरेणं भाणिअव्वा।

कहि णं भन्ते ! उत्तरद्धकच्छे विजए गंगाकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते ?

गोयमा ! चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, उसहकूडस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं, णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे एत्थ णं उत्तरद्धकच्छे गंगाकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते। सट्ठिं जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं, तहेव जहा सिंधू जाव वणसंडेण य संपरिक्खित्ता।

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ कच्छे विजए कच्छे विजए ?

गोयमा ! कच्छे विजए वेअद्धस्स पव्वयस्स दाहिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं, गंगाए महाणईए पच्चत्थिमेणं, सिंधूए महाणईए पुरत्थिमेणं दाहिणद्धकच्छविजयस्स बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं खेमा णामं रायहाणी पण्णत्ता, विणीआरायहाणीसरिसा भाणिअव्वा। तत्थ णं खेमाए रायहाणीए कच्छे णामं राया समुप्पज्जइ, महया हिमवन्त जाव सव्वं भरहोवमं भाणिअव्वं निक्खमणवज्जं सेसं सव्वं भाणिअव्वं जाव भुंजए माणुस्सए सुहे। कच्छणामधेज्जे अ कच्छे इत्थ देवे महिड्ढीए जाव[1] पलिओवमट्ठिईए परिवसइ, से एएट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ कच्छे विजए कच्छे विजए जाव[2] णिच्चे।

[११०] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में कच्छ नामक विजय कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! शीता महानदी के उत्तर में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में, माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में कच्छ नामक विजय—चक्रवर्ती द्वारा विजेतव्य भूविभाग बतलाया गया है।

वह उत्तर-दक्षिण लम्बा एवं पूर्व-पश्चिम चौड़ा है, पलंग के आकार में अवस्थित है। गंगा महानदी, सिन्धु महानदी तथा वैताढ्य पर्वत द्वारा वह छह भागों में विभक्त है। वह १६५९२ $\frac{२}{१९}$ योजन लम्बा तथा कुछ कम २२१३ योजन चौड़ा है।

कच्छ विजय के बीचोंबीच वैताढ्य नामक पर्वत बतलाया गया है, जो कच्छ विजय को दक्षिणार्ध कच्छ तथा उत्तरार्ध कच्छ के रूप में दो भागों में बाँटता है।

---

१. देखें सूत्र संख्या १४

२. देखें सूत्र संख्या ९३

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में दक्षिणार्ध कच्छ नामक विजय कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! वैताढ्य पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में, माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में दक्षिणार्ध कच्छ नामक विजय बतलाया गया है। वह उत्तर-दक्षिण लम्बा तथा पूर्व-पश्चिम चौड़ा है। ८२७१ १/१९ योजन लम्बा है, कुछ कम २२१३ योजन चौड़ा है, पलंग के आकार में विद्यमान है।

भगवन् ! दक्षिणार्ध कच्छ विजय का आकार, भाव, प्रत्यवतार किस प्रकार का वतलाया गया है ?

गौतम ! वहाँ का भूमिभाग बहुत समतल एवं सुन्दर है। वह कृत्रिम, अकृत्रिम मणियों तथा तृणों आदि से सुशोभित है।

भगवन् ! दक्षिणार्ध कच्छ विजय में मनुष्यों का आकार, भाव, प्रत्यवतार किस प्रकार का बतलाया गया है ?

गौतम ! वहाँ मनुष्य छह प्रकार के संहननों से युक्त होते हैं। अवशेष वर्णन पूर्ववत् है।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में कच्छ विजय में वैताढ्य नामक पर्वत कहाँ है ?

गौतम ! दक्षिणार्ध कच्छ विजय के उत्तर में, उत्तरार्ध कच्छ विजय के दक्षिण में, चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में तथा माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में कच्छ विजय के अन्तर्गत वैताढ्य नामक पर्वत बतलाया गया है, वह पूर्व-पश्चिम लम्बा है, उत्तर-दक्षिण चौड़ा है। वह दो ओर से वक्षस्कार-पर्वतों का स्पर्श करता है। (अपने पूर्वी किनारे से वह चित्रकूट नामक पूर्वी वक्षस्कार पर्वत का स्पर्श करता है तथा पश्चिमी किनारे से माल्यवान् नामक पश्चिमी वक्षस्कार पर्वत का स्पर्श करता है, वह भरत क्षेत्रवर्ती वैताढ्य पर्वत के सदृश है। अवक्रक्षेत्रवर्ती होने के कारण उसमें बाहाएँ, जीवा तथा धनुपृष्ठ—इन्हें न लिया जाए—नहीं कहना चाहिए। कच्छादि विजय जितने चौड़े हैं, वह उतना लम्बा है। वह चौड़ाई, ऊँचाई एवं गहराई में भरतक्षेत्रवर्ती वैताढ्य पर्वत के समान है। विद्याधरों तथा आभियोग्य देवों की श्रेणियाँ भी उसी की ज्यों हैं। इतना अन्तर है—इसकी दक्षिणी श्रेणी में ५५ तथा उत्तरी श्रेणी में ५५ विद्याधर—नगरावास कहे गये हैं। आभियोग्य श्रेण्यन्तर्गत, शीता महानदी के उत्तर में जो श्रेणियाँ हैं, वे ईशानदेव—द्वितीय कल्पेन्द्र की हैं, बाकी की श्रेणियाँ शक्र—प्रथम कल्पेन्द्र की हैं।

वहाँ कूट—पर्वत-शिखर इस प्रकार हैं—१. सिद्धायतन कूट, २. दक्षिणकच्छार्ध कूट, ३. खण्डप्रपातगुहा कूट, ४. माणिभद्र कूट, ५. वैताढ्य कूट, ६. पूर्णभद्र कूट, ७. तमिस्रगुहा कूट, ८. उत्तरार्धकच्छ कूट, ९. वैश्रवण कूट।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में उत्तरार्ध कच्छ नामक विजय कहाँ वतलाया गया है ?

गौतम ! वैताढ्य पर्वत के उत्तर में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, माल्यवान्

वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में तथा चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत उत्तरार्धकच्छविजय नामक विजय बतलाया गया है। अवशेष वर्णन पूर्ववत् है।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में उत्तरार्धकच्छविजय में सिन्धु-कुण्ड नामक कुण्ड कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में, ऋषभकूट के पश्चिम में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिणी नितम्ब में—मेखलारूप मध्यभाग में—ढलान में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में उत्तरार्धकच्छविजय में सिन्धुकुण्ड नामक कुण्ड बतलाया गया है। वह साठ योजन लम्बा-चौड़ा है। भवन, राजधानी आदि सारा वर्णन भरत क्षेत्रवर्ती सिन्धु-कुण्ड के सदृश है।

उस सिन्धु-कुण्ड के दक्षिणी तोरण से सिन्धु महानदी निकलती है। उत्तरार्ध कच्छ विजय में बहती है। उसमें वहाँ ७००० नदियाँ मिलती हैं। वह उनसे आपूर्ण होकर नीचे तिमिस्रगुहा से होती हुई वैताढ्य पर्वत को दीर्ण कर—चीर कर दक्षिणार्ध कच्छ विजय में जाती है। वहाँ १४००० नदियों से युक्त होकर वह दक्षिण में शीता महानदी में मिल जाती है। सिन्धु महानदी अपने उद्गम तथा संगम पर प्रवाह—विस्तार में भरत क्षेत्रवर्ती सिन्धु महानदी के सदृश है। वह दो वनखण्डों द्वारा घिरी है—यहाँ तक का सारा वर्णन पूर्ववत् है।

भगवन् ! उत्तरार्ध कच्छ विजय में ऋषभकूट नामक पर्वत कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! सिन्धुकूट के पूर्व में, गंगाकूट के पश्चिम में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिणी ढलान में, उत्तरार्ध कच्छ विजय में ऋषभकूट नामक पर्वत बतलाया गया है। वह आठ योजन ऊँचा है। उसका प्रमाण, विस्तार, राजधानी पर्यन्त वर्णन पूर्ववत् है। इतना अन्तर है—उसकी राजधानी उत्तर में है।

भगवन् ! उत्तरार्ध कच्छ विजय में गंगा-कुण्ड नामक कुण्ड कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में, ऋषभकूट पर्वत के पूर्व में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिणी ढलान में उत्तरार्ध कच्छ में गंगा-कुण्ड नामक कुण्ड बतलाया गया है। वह ६० योजन लम्बा-चौड़ा है। वह एक वन-खण्ड द्वारा परिवेष्टित है—यहाँ तक का अवशेष वर्णन सिन्धु-कुण्ड सदृश है।

भगवन् ! वह कच्छ विजय क्यों कहा जाता है ?

गौतम ! कच्छ विजय में वैताढ्य पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, गंगा महानदी के पश्चिम में, सिन्धु महानदी के पूर्व में दक्षिणार्ध कच्छ विजय के बीचोंबीच उसकी क्षेमा नामक राजधानी बतलाई गई है। उसका वर्णन विनीता राजधानी के सदृश है। क्षेमा राजधानी में कच्छ नामक षट्खण्ड-भोक्ता चक्रवर्ती राजा समुत्पन्न होता है—वहाँ लोगों द्वारा उसके लिए कच्छ नाम व्यवहृत किया जाता है। अभिनिष्क्रमण—प्रव्रजन को छोड़कर उसका सारा वर्णन चक्रवर्ती राजा भरत जैसा समझना चाहिए।

कच्छ विजय में परम समृद्धिशाली, एक पल्योपम आयु-स्थितियुक्त कच्छ नामक देव निवास करता है। गौतम ! इस कारण वह कच्छ विजय कहा जाता है। अथवा उसका कच्छ विजय नाम नित्य है, शाश्वत है।

चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत

१११. कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे चित्तकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! सीआए महाणईए उत्तरेणं, णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, कच्छविजयस्स पुरत्थिमेणं, सुकच्छविजयस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहवासे चित्तकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते। उत्तरदाहिणायए, पाईणपडीणविच्छिण्णे, सोलस-जोअणसहस्साइं पञ्च य वाणउए जोअणसए दुण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं, पञ्च जोअणसयाइं विक्खम्भेणं, नीलवन्तवासहरपव्वयंतेणं चत्तारि जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, चत्तारि गाउअसयाइं उव्वेहेणं।

तयणंतरं च णं मायाए २ उस्सेहोव्वेहपरिवुड्ढीए परिवड्ढमाणे २ सीआमहाणई-अंतेणं पञ्च जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, पञ्च गाउअसयाइं उव्वेहेणं, अस्सखन्धसंठाणसंठिए, सव्वरयणामए अच्छे सण्हे जाव[1] पडिरूवे। उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ते, वण्णओ दुण्ह वि चित्तकूडस्स णं वक्खारपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव[2] आसयन्ति।

चित्तकूडे णं भन्ते ! वक्खारपव्वए कति कूडा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि कूडा पण्णत्ता, तं जहा—१. सिद्धाययणकूडे, २. चित्तकूडे, ३. कच्छकूडे, ४. सुकच्छकूडे। समा उत्तरदाहिणेणं परुप्परंति, पढमं सीआए उत्तरेणं, चउत्थए नीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं।

एत्थ णं चित्तकूडे णामं देवे महिड्ढीए जाव[3] रायहाणी सेत्ति।

[१११] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में चित्रकूट नामक वक्षस्कार पर्वत कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! शीता महानदी के उत्तर में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, कच्छ विजय के पूर्व में तथा सुकच्छ विजय के दक्षिण में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में चित्रकूट नामक वक्षस्कार पर्वत बतलाया गया है। वह उत्तर-दक्षिण लम्बा तथा पूर्व-पश्चिम चौड़ा है। वह १६५९२$\frac{२}{१९}$ योजन लम्बा है, ५०० योजन चौड़ा है, नीलवान् वर्षधर पर्वत के पास ४०० योजन ऊँचा है तथा ४०० कोश जमीन में गहरा है।

तत्पश्चात् वह ऊँचाई एवं गहराई में क्रमशः बढ़ता जाता है। शीता महानदी के पास वह ५०० योजन ऊँचा तथा ५०० कोश जमीन में गहरा हो जाता है। उसका आकार घोड़े के कन्धे जैसा है वह सर्वरत्नमय है, निर्मल, सुकोमल तथा सुन्दर है। वह अपने दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं से तथा दो वन-खण्डों से घिरा है। दोनों का वर्णन पूर्वानुरूप है। चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के ऊपर बहुत समतल एवं सुन्दर भूमिभाग है। वहाँ देव-देवियाँ आश्रय लेते हैं, विश्राम करते हैं।

---

१. देखें सूत्र संख्या ४

२. देखें सूत्र संख्या ६

३. देखें सूत्र संख्या १४

भगवन् ! चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के कितने कूट बतलाये गये हैं ?

गौतम ! उसके चार कूट बतलाये गये हैं—१. सिद्धायतनकूट (चित्रकूट के दक्षिण में), २. चित्रकूट (सिद्धायतनकूट के उत्तर में), ३. कच्छकूट (चित्रकूट के उत्तर में) तथा ४. सुकच्छकूट (कच्छकूट के दक्षिण में)।

ये परस्पर उत्तर-दक्षिण में एक समान हैं। पहला सिद्धायतनकूट शीता महानदी के उत्तर में तथा चौथा सुकच्छकूट नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में है।

चित्रकूट नामक परम ऋद्धिशाली देव वहाँ निवास करता है। राजधानी पर्यन्त सारा वर्णन पूर्ववत् है।

सुकच्छ विजय

११२. कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सुकच्छे णामं विजए पण्णत्ते ?

गोयमा ! सीआए महाणईए उत्तरेणं, णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, गाहावईए महाणईए पच्चत्थिमेणं, चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सुकच्छे णामं विजए पण्णत्ते, उत्तरदाहिणायए, जहेव कच्छे विजए तहेव सुकच्छे विजए, णवरं खेमपुरा रायहाणी, सुकच्छे राया समुप्पज्जइ तहेव सव्वं।

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे २ महाविदेहे वासे गाहावइकुण्डे पण्णत्ते ?

गोयमा ! सुकच्छविजयस्स पुरत्थिमेणं, महाकच्छस्स विजयस्स पच्चत्थिमेणं, णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले णितम्बे एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे गाहावइकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते, जहेव रोहिअंसाकुण्डे तहेव जाव गाहावइदीवे भवणे।

तस्स णं गाहावइस्स कुण्डस्स दाहिणिल्लेणं तोरणेणं गाहावई महाणई पवूढा समाणी सुकच्छ-महाकच्छविजए दुहा विभयमाणी २ अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा दाहिणेणं सीअं महाणइं समप्पेइ। गाहावई णं महाणई पवहे अ मुहे अ सव्वत्थ समा, पणवीसं जोअणसयं विक्खम्भेणं, अद्धाइज्जाइं जोअणाइं उव्वेहेणं, उभओ पासिं दोहि अ पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसण्डेहिं जाव दुण्हवि वण्णओ इति।

[११२] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में सुकच्छ नामक विजय कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! शीता महानदी के उत्तर में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, ग्राहावती महानदी के पश्चिम में तथा चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में सुकच्छ नामक विजय बतलाया गया है। वह उत्तर-दक्षिण लम्बा है। उसका विस्तार आदि सब वैसा ही है, जैसा कच्छ विजय का है। इतना अन्तर है—क्षेमपुरा उसकी राजधानी है। वहाँ सुकच्छ नामक राजा समुत्पन्न होता है। बाकी सब कच्छ विजय की ज्यों हैं।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में ग्राहावती कुण्ड कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! सुकच्छ विजय के पूर्व में, महाकच्छ विजय के पश्चिम में नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिणी ढलान में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में ग्राहावती कुण्ड नामक कुण्ड बतलाया गया है। इसका सारा वर्णन रोहितांशा कुण्ड की ज्यों है।

उस ग्राहावती कुण्ड के दक्षिणी तोरण-द्वार से ग्राहावती नामक महानदी निकलती है। वह सुकच्छ महाकच्छ विजय को दो भागों में विभक्त करती हुई आगे बढ़ती है। उसमें २८००० नदियां मिलती हैं। वह उनसे आपूर्ण होकर दक्षिण में शीता महानदी से मिल जाती है। ग्राहावती महानदी उद्गम-स्थान पर, संगम-स्थान पर—सर्वत्र एक समान है। वह १२५ योजन चौड़ी है, अढ़ाई योजन जमीन में गहरी है। वह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं द्वारा, दो वन-खण्डों द्वारा घिरी है। बाकी का सारा वर्णन पूर्वानुरूप है।

महाकच्छ विजय

११३. कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे महाकच्छे णामं विजये पण्णत्ते ?

गोयमा ! णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं, पम्हकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, गाहावईए महाणईए पुरत्थिमेणं एत्थ णं महाविदेहे वासे महाकच्छे णामं विजए पण्णत्ते, सेसं जहा कच्छविजयस्स जाव महाकच्छे इत्थ देवे महिड्ढीए अट्ठो अ भाणिअव्वो।

[११३] भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में महाकच्छ नामक विजय कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, पद्मकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में, ग्राहावती महानदी के पूर्व में महाविदेह क्षेत्र में महाकच्छ नामक विजय बतलाया गया है। बाकी का सारा वर्णन कच्छ विजय की ज्यों है। यहाँ महाकच्छ नामक परम ऋद्धिशाली देव रहता है।

पद्मकूट वक्षस्कार पर्वत

११४. कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे पम्हकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! णीलवन्तस्स दक्खिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं, महाकच्छस्स पुरत्थिमेणं, कच्छावईए पच्चत्थिमेणं एत्थ णं महाविदेहे वासे पम्हकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते, उत्तरदाहिणायए पाईणपडीणविच्छिण्णे सेसं जहा चित्तकूडस्स जाव आसयन्ति। पम्हकूडे चत्तारि कूडा पण्णत्ता तं जहा—१. सिद्धाययणकूडे, २. पम्हकूडे, ३. महाकच्छकूडे, ४. कच्छवइकूडे एवं जाव अट्ठो।

पम्हकूडे इत्थ देवे महद्धिए पलिओवमठिईए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ।

[११४] भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत पद्मकूट नामक वक्षस्कार पर्वत कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! नीलवान् वक्षस्कार पर्वत के दक्षिण में शीता महानदी के उत्तर में, महाकच्छ विजय के पूर्व में, कच्छावती विजय के पश्चिम में महाविदेह क्षेत्र में पद्मकूट नामक वक्षस्कार पर्वत बतलाया गया है। वह उत्तर-दक्षिण लम्बा है, पूर्व-पश्चिम चौड़ा है। बाकी का सारा वर्णन चित्रकूट की ज्यों है। पद्मकूट के चार कूट—शिखर बतलाये गये हैं—

१. सिद्धायतन कूट, २. पद्म कूट, ३. महाकच्छ कूट, ४. कच्छावती कूट। इनका वर्णन पूर्वानुरूप है।

यहाँ परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयुष्ययुक्त पद्मकूट नामक देव निवास करता है। गौतम ! इस कारण यह पद्मकूट कहलाता है।

कच्छकावती (कच्छावती) विजय

११५. कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे कच्छगावती णामं विजए पण्णत्ते ?

गोयमा ! णीलवन्तस्स दाहिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं, दहावतीए महाणईए पच्चत्थिमेणं, पम्हकूडस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं महाविदेहे वासे कच्छगावती णामं विजए पण्णत्ते, उत्तरदाहिणायए पाईणपडीणविच्छिण्णे सेसं जहा कच्छस्स विजयस्स जाव कच्छगावई अ इत्थ देवे।

कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे दहावईकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते ?

गोयमा ! आवत्तस्स विजयस्स पच्चत्थिमेणं, कच्छगावईए विजयस्स पुरत्थिमेणं, णीलवन्तस्स दाहिणिल्ले णितंबे एत्थ णं महाविदेहे वासे दहावईकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते। सेसं जहा गाहावई-कुण्डस्स जाव अट्ठो।

तस्स णं दहावईकुण्डस्स दाहिणेणं तोरणेणं दहावई महाणई पवूढा समाणी कच्छावईआवत्ते विजए दुहा विभयमाणी २ दाहिणेणं सीअं महाणइं समप्पेइ, सेसं जहा गाहावईए।

[११५] भगवन् महाविदेह क्षेत्र में कच्छकावती नामक विजय कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, द्रहावती महानदी के पश्चिम में, पद्मकूट के पूर्व में, महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत कच्छकावती नामक विजय बतलाया गया है। वह उत्तर-दक्षिण लम्बा तथा पूर्व-पश्चिम चौड़ा है। बाकी सारा वर्णन कच्छविजय के सदृश है। यहाँ कच्छकावती नामक देव निवास करता है।

भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में द्रहावती कुण्ड नामक कुण्ड कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! आवर्त विजय के पश्चिम में, कच्छकावती विजय के पूर्व में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिणी ढलान में महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत द्रहावती कुण्ड नामक कुण्ड बतलाया गया है। बाकी का सारा वर्णन ग्राहावती कुण्ड की ज्यों है।

उस द्रहावती कुण्ड के दक्षिणी तोरण-द्वार से द्रहावती महानदी निकलती है। वह कच्छावती तथा आवर्त विजय को दो भागों में बांटती हुई आगे बढ़ती है। दक्षिण में शीतोदा महानदी में मिल जाती है। बाकी का सारा वर्णन ग्राहावती का ज्यों है।

आवर्त विजय

११६. कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे आवत्ते णामं विजए पण्णत्ते ?

गोयमा ! णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं, णलिणकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, दहावतीए महाणईए पुरत्थिमेणं एत्थ णं महाविदेहे वासे आवत्ते णामं विजए पण्णत्ते। सेसं जहा कच्छस्स विजयस्स इति।

[११६] भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में आवर्त्त नामक विजय कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, नलिनकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में तथा द्रहावती महानदी के पूर्व में महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत आवर्त्त नामक विजय बतलाया गया है। उसका बाकी सारा वर्णन कच्छविजय की ज्यों है।

नलिनकूट वक्षस्कार पर्वत

११७. कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे णलिणकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! णीलवन्तस्स दाहिणेणं, सीआए उत्तरेणं, मंगलावइस्स विजयस्स पच्चत्थिमेणं, आवत्तस्स विजयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं महाविदेहे वासे णलिणकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते, उत्तरदाहिणायए पाईणपडीणवित्थिण्णे सेसं जहा चित्तकूडस्स जाव आसयन्ति।

णलिणकूडे णं भन्ते ! कति कूडा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि कूडा पण्णत्ता, तं जहा—१. सिद्धायययणकूडे, २. णलिणकूडे, ३. आवत्तकूडे, ४. मंगलावत्तकूडे, एए कूडा पञ्चसइआ, रायहाणीओ उत्तरेणं।

[११७] भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में नलिनकूट नामक वक्षस्कार पर्वत कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, मंगलावती विजय के पश्चिम में तथा आवर्त विजय के पूर्व में महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत नलिनकूट नामक वक्षस्कार पर्वत बतलाया गया है। वह उत्तर-दक्षिण लम्बा एवं पूर्व-पश्चिम चौड़ा है। बाकी वर्णन चित्रकूट के सदृश है।

भगवन् ! नलिनकूट के कितने कूट बतलाये गये हैं ?

गौतम ! उसके चार कूट बतलाये गये हैं—१. सिद्धायतनकूट, २. नलिनकूट, ३. आवर्त-कूट तथा ४. मंगलावर्तकूट।

ये कूट पाँच सौ योजन ऊँचे हैं। राजधानियाँ उत्तर में हैं।

मंगलावर्त विजय

११८. कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे मंगलावत्ते णामं विजए पण्णत्ते ?

गोयमा ! णीलवन्तस्स दक्खिणेणं, सीआए उत्तरेणं, णलिणकूडस्स पुरत्थिमेणं, पंकावईए पच्चत्थिमेणं एत्थ णं मंगलावत्ते णामं विजए पण्णत्ते। जहा कच्छस्स विजए तहा एसो भाणियव्वो जाव मंगलावत्ते अ इत्थ देवे परिवसइ, से एएणट्ठेणं०।

कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे पंकावई कुंडे णामं कुण्डे पण्णत्ते ?

गोयमा ! मंगलावत्तस्स पुरत्थिमेणं, पुक्खलविजयस्स पच्चत्थिमेणं, णीलवन्तस्स दाहिणे णितंबे, एत्थ णं पंकावई (कुंडे णामं) कुंडे पण्णत्ते। तं चेव गाहावइकुण्डप्पमाणं जाव मंगलावत्त-पुक्खलावत्तविजए दुहा विभयमाणी २ अवसेसं तं चेव जं चेव गाहावईए।

[११८] भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में मंगलावर्त नामक विजय कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, नलिनकूट के पूर्व में,

पंकावती के पश्चिम में मंगलावर्त नामक विजय बतलाया गया है । इसका सारा वर्णन कच्छ विजय के सदृश है । यहाँ मंगलावर्त नामक देव निवास करता है । इस कारण यह मंगलावर्त कहा जाता है ।

भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में पंकावती कुण्ड नामक कुण्ड कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! मंगलावर्त विजय के पूर्व में, पुष्कल विजय के पश्चिम में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिणी ढलान में पंकावती कुण्ड नामक कुण्ड बतलाया गया है । उसका प्रमाण, वर्णन ग्राहावती कुण्ड के समान है । उससे पंकावती नामक नदी निकलती है, जो मंगलावर्त विजय तथा पुष्कलावर्त विजय को दो भागों में विभक्त करती हुई आगे बढ़ती है । उसका बाकी वर्णन ग्राहावती की ज्यों है ।

पुष्कलावर्त विजय

११९. कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे पुक्खलावत्ते णामं विजए पण्णत्ते ?

गोयमा ! णीलवन्तस्स दाहिणेणं, सीआए उत्तरेणं, पंकावईए पुरत्थिमेणं, एक्कसेलस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं पुक्खलावत्ते णामं विजए पण्णत्ते, जहा कच्छविजए तहा भाणिअव्वं जाव पुक्खले अ इत्थ देवे महिड्ढिए पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से एएणट्ठेणं० ।

[११९] भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावर्त नामक विजय कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, पंकावती के पूर्व में एकशैल वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत पुष्कलावर्त नामक विजय बतलाया गया है । इसका वर्णन कच्छ विजय के समान है । यहाँ परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयुष्य युक्त पुष्कल नामक देव निवास करता है, इस कारण यह पुष्कलावर्त विजय कहलाता है ।

एकशैल वक्षस्कार पर्वत

१२०. कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे एगसेले णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! पुक्खलावत्तचक्कवट्टिविजयस्स पुरत्थिमेणं, पोक्खलावतीचक्कवट्टिविजयस्स पच्चत्थिमेणं, णीलवन्तस्स दक्खिणेणं, सीआए उत्तरेणं, एत्थ णं एगसेले णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते, चित्तकूडगमेणं णेअव्वो जाव[1] देवा आसयन्ति । चत्तारि कूडा, तं जहा—१. सिद्धाययणकूडे, २. एगसेलकूडे, ३. पुक्खलावत्तकूडे, ४. पुक्खलावईकूडे, कूडाणं तं चेव पञ्चसइअं परिमाणं जाव एगसेले अ देवे महिड्ढीए ।

[१२०] भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में एकशैल नामक वक्षस्कार पर्वत कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! पुष्कलावर्त-चक्रवर्ति-विजय के पूर्व में, पुष्कलावती-चक्रवर्ति-विजय के पश्चिम में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत एकशैल नामक वक्षस्कार पर्वत बतलाया गया है । देव-देवियां वहाँ आश्रय लेते हैं, विश्राम करते हैं—तक उसका वर्णन चित्रकूट के सदृश है । उसके चार कूट हैं—१. सिद्धायतनकूट, २. एकशैलकूट, ३. पुष्कलावर्तकूट तथा ४. पुष्कलावतीकूट । ये पाँच सौ योजन ऊँचे हैं ।

उस (एकशैल वक्षस्कार पर्वत) पर एकशैल नामक परम ऋद्धिशाली देव निवास करता है ।

---

१. देखें सूत्र संख्या १२

पुष्कलावती विजय

१२१. कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे पुक्खलावई णामं चक्कवट्टिविजए पण्णत्ते ?

गोयमा ! णीलवन्तस्स दक्खिणेणं, सीआए उत्तरेणं, उत्तरिल्लस्स सीआमुहवणस्स पच्चत्थिमेणं, एगसेलस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं महाविदेहे वासे पुक्खलावई णामं विजए पण्णत्ते, उत्तरदाहिणायए एवं जहा कच्छविजयस्स जाव पुक्खलावई अ इत्थ देवे परिवसइ, एएणट्ठेणं० ।

[१२१] भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती नामक चक्रवर्ति-विजय कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, उत्तरवर्ती शीतामुखवन के पश्चिम में, एकशैल वक्षस्कारपर्वत के पूर्व में महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत पुष्कलावती नामक विजय बतलाया गया है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बा है—इत्यादि सारा वर्णन कच्छविजय की ज्यों है । उसमें पुष्कलावती नामक देव निवास करता है । इस कारण वह पुष्कलावती विजय कहा जाता है ।

उत्तरी शीतामुख वन

१२२. कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे सीआए महाणईए उत्तरिल्ले सीआमुहवणे णामं वणे पण्णत्ते ?

गोयमा ! णीलवन्तस्स दक्खिणेणं, सीआए उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पुक्खलावइचक्कवट्टिविजयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं सीआमुहवणे णामं वणे पण्णत्ते । उत्तरदाहिणायए, पाईणपडीणविच्छिण्णे, सोलसजोअणसहस्साइं पञ्च य बाणउए जोअणसए दोण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं, सीआए महाणईए अन्तेणं दो जोअणसहस्साइं नव य बावीसे जोअणसए विक्खम्भेणं । तयणंतरं च णं मायाए २ परिहायमाणे २ णीलवन्तवासहरपव्वयंतेणं एगं एगूणवीसइभागं जोअणस्स विक्खम्भेणंति । से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसण्डेणं संपरिक्खित्ते वण्णओ सीआमुहवणस्स जाव[1] देवा आसयन्ति, एवं उत्तरिल्लं पासं समत्तं । विजया भणिआ । रायहाणीओ इमाओ—

१. खेमा, २. खेमपुरा चेव, ३. रिट्ठा, ४. रिट्ठपुरा तहा ।
५. खग्गी, ६. मंजूसा, अवि अ ७. ओसही, ८. पुंडरीगिणी ।।१।।

सोलस विज्जाहरसेढीओ, तावइआओ अभिओगसेढीओ सव्वाओ इमाओ ईसाणस्स, सव्वेसु विजएसु कच्छवत्तव्वया जाव अट्ठो, रायाणो सरिसणामगा, विजएसु सोलसण्हं वक्खारपव्वयाणं चित्तकूडवत्तव्वया जाव कूडा चत्तारि २, बारसण्हं णईणं गाहावइवत्तव्वया जाव उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं वणसण्डेहि अ वण्णओ ।

[१२२] भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में शीता महानदी के उत्तर में शीतामुख नामक वन कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, पुष्कलावती चक्रवर्ति-विजय के पूर्व में शीतामुख नामक वन बतलाया गया है। वह उत्तर-दक्षिण लम्बा तथा पूर्व-पश्चिम चौड़ा है। वह १६५९२ २/१९ योजन लम्बा है। शीता महानदी के पास २९२२ योजन चौड़ा है। तत्पश्चात् इसकी मात्रा—विस्तार क्रमशः घटता जाता है। नीलवान् वर्षधर पर्वत के पास यह केवल १/१९ योजन चौड़ा रह जाता है। यह वन एक पद्मवरवेदिका तथा एक वन-खण्ड द्वारा संपरिवृत है। इस पर देव-देवियां आश्रय लेते हैं, विश्राम लेते हैं—तक का और वर्णन पूर्वानुरूप है।

विजयों के वर्णन के साथ उत्तरदिग्वर्ती पार्श्व का वर्णन समाप्त होता है।

विभिन्न विजयों की राजधानियां इस प्रकार हैं—

१. क्षेमा, २. क्षेमपुरा, ३. अरिष्टा, ४. अरिष्टपुरा, ५. खड्गी, ६. मंजूषा, ७. औषधि तथा ८. पुण्डरीकिणी।

कच्छ आदि पूर्वोक्त विजयों में सोलह विद्याधर-श्रेणियां तथा उतनी ही—सोलह ही आभियोग्य-श्रेणियां हैं। ये आभियोग्यश्रेणियां ईशानेन्द्र की हैं।

सब विजयों की वक्तव्यता—वर्णन कच्छविजय के वर्णन जैसा है। उन विजयों के जो जो नाम हैं, उन्हीं नामों के चक्रवर्ती राजा वहाँ होते हैं। विजयों में जो सोलह वक्षस्कार पर्वत हैं, उनका वर्णन चित्रकूट के वर्णन के सदृश है। प्रत्येक वक्षस्कार पर्वत के चार चार कूट—शिखर हैं। उनमें जो बारह नदियां हैं, उनका वर्णन ग्राहावती नदी जैसा है। वे दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो वन-खण्डों द्वारा परिवेष्टित हैं, जिनका वर्णन पूर्वानुरूप है।

दक्षिणी शीतामुखवन

१२३. कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सीआए महाणईए दाहिणिल्ले सीयामुहवणे णामं वणे पण्णत्ते ?

एवं जह चेव उत्तरिल्लं सीआमुहवणं तह चेव दाहिणं पि भाणिअव्वं, णवरं णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, सीआए महाणईए दाहिणेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, वच्छस्स विजयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सीआए महाणईए दाहिणिल्ले सीआमुहवणे णामं वणे पण्णत्ते। उत्तरदाहिणायए तहेव सव्वं णवरं णिसहवासहरपव्वयंतेणं एगमेगूणवीसइभागं जोअणस्स विक्खम्भेणं, किण्हे किण्णोभासे जाव[1] महया गन्धद्धाणिं मुअंते जाव[2] आसयंति, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं वणवण्णओ।

[१२३] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में शीता महानदी के दक्षिण में शीतामुखवन नामक वन कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! जैसा शीता महानदी के *उत्तर-दिग्वर्ती शीतामुख वन का वर्णन है, वैसा ही दक्षिण* दिग्वर्ती शीतामुखवन का वर्णन समझ लेना चाहिए। इतना अन्तर है—दक्षिण-दिग्वर्ती शीतामुख

१. देखें सूत्र संख्या ६

२. देखें सूत्र संख्या ८७

वन निषध वर्षधर पर्वत के उत्तर में, शीता महानदी के दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, वत्स विजय के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में विद्यमान है। वह उत्तर-दक्षिण लम्बा है और सब उत्तर-दिग्वर्ती शीतामुख वन की ज्यों है। इतना अन्तर और है—वह घटते-घटते निषध वर्षधर पर्वत के पास $\frac{१}{१६}$ योजन चौड़ा रह जाता है। वह काले, नीले आदि पत्तों से युक्त होने से वैसी आभा लिये है। उससे बड़ी सुगन्ध फूटती है, देव-देवियां उस पर आश्रय लेते हैं, विश्राम करते हैं। वह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं तथा वनखण्डों से परिवेष्टित है—इत्यादि समस्त वर्णन पूर्वानुरूप है।

वत्स आदि विजय

१२४. कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे वच्छे णामं विजए पण्णत्ते ?

गोयमा ! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, सीआए महाणईए दाहिणेणं, दाहिणिल्लस्स सीआमुहवणस्स पच्चत्थिमेणं, तिउडस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे वच्छे णामं विजए पण्णत्ते, तं चेव पमाणं, सुसीमा रायहाणी १, तिउडे वक्खारपव्वए सुवच्छे विजए, कुण्डला रायहाणी २, तत्तजला णई, महावच्छे विजए अपराजिआ रायहाणी ३, वेसमणकूडे वक्खारपव्वए, वच्छावई विजए, पभंकरा रायहाणी ४, मत्तजला णई, रम्मे विजए, अंकावई रायहाणी ५, अंजणे वक्खारपव्वए रम्मगे विजए, पम्हावई रायहाणी ६, उम्मत्तजला महाणई, रमणिज्जे विजए, सुभा रायहाणी ७, मायंजणे वक्खारपव्वए मंगलावई विजए, रयणसंचया रायहाणीति ८। एवं जह चेव सीआए महाणईए उत्तरं पासं तह चेव दक्खिणिल्लं भाणिअव्वं, दाहिणिल्लसीआमुह-वणाइ। इमे वक्खार-कूडा, तं जहा—तिउडे १, वेसमण कूडे २, अंजणे ३, मायंजणे ४, [णईउ तत्तजला १, मत्तजला २, उम्मत्तजला ३,] विजया तं जहा—

वच्छे सुवच्छे महावच्छे, चउत्थे वच्छगावई।
रम्मे रम्मए चेव रमणिज्जे मंगलावई ॥१॥

रायहाणीओ, तं जहा—

सुसीमा कुण्डला चेव, अवराइअ पहंकरा।
अंकावई पम्हावई, सुभा रयणसंचया ॥

वच्छस्स विजयस्स णिसहे दाहिणेणं, सीआ उत्तरेणं, दाहिणिल्ल-सीदामुहवणे पुरत्थिमेणं, तिउडे पच्चत्थिमेणं, सुसीमा रायहाणी पमाणं तं चेवेति।

वच्छाणंतरं तिउडे, तओ सुवच्छे विजए, एएणं कमेणं तत्तजला णई, महावच्छे विजए वेसमणकूडे वक्खारपव्वए, वच्छावई विजए, मत्तजला णई, रम्मे विजए, अंजणे वक्खारपव्वए, रम्मए विजए, उम्मत्तजला णई, रमणिज्जे विजए, मायंजणे वक्खारपव्वए, मंगलावई विजए।

[१२४] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में वत्स नामक विजय कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! निषध वर्षधर पर्वत के उत्तर में, शीता महानदी के दक्षिण में, दक्षिणी शीतामुख

वन के पश्चिम में, त्रिकूट वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में वत्स नामक विजय वतलाया गया है। उसका प्रमाण पूर्ववत् है। उसकी सुसीमा नामक राजधानी है।

त्रिकूट वक्षस्कार पर्वत पर सुवत्स नामक विजय है। उसकी कुण्डला नामक राजधानी है। वहाँ तप्तजला नामक नदी है। महावत्स विजय की अपराजिता नामक राजधानी है। वैश्रवणकूट वक्षस्कार पर्वत पर वत्सावती विजय है। उसकी प्रभंकरा नामक राजधानी है। वहाँ मत्तजला नामक नदी है। रम्य विजय की अंकावती नामक राजधानी है। अंजन वक्षस्कार पर्वत पर रम्यक विजय है। उसकी पद्मावती नामक राजधानी है। वहाँ उन्मत्तजला नामक महानदी है। रमणीय विजय की शुभा नामक राजधानी है। मातंजन वक्षस्कार पर्वत पर मंगलावती विजय है। उसकी रत्नसंचया नामक राजधानी है।

शीता महानदी का जैसा उत्तरी पार्श्व है, वैसा ही दक्षिणी पार्श्व है। उत्तरी शीतामुख वन की ज्यों दक्षिणी शीतामुख वन है।

वक्षस्कारकूट इस प्रकार हैं—

१. त्रिकूट, २. वैश्रवणकूट, ३. अंजनकूट, ४. मातंजनकूट। (नदियां—१. तप्तजला, २. मत्तजला तथा ३. उन्मत्तजला।)

विजय इस प्रकार हैं—

१. वत्स विजय, २. सुवत्स विजय, ३. महावत्स विजय, ४. वत्सकावती विजय, ५. रम्य विजय, ६. रम्यक विजय, ७. रमणीय विजय तथा ८. मंगलावती विजय।

राजधानियां इस प्रकार हैं—

१. सुसीमा, २. कुण्डला, ३. अपराजिता, ४. प्रभंकरा, ५. अंकावती, ६. पद्मावती, ७. शुभा तथा ८. रत्नसंचया।

वत्स विजय के दक्षिण में निषध पर्वत है, उत्तर में शीता महानदी है, पूर्व में दक्षिणी शीता-मुख वन है तथा पश्चिम में त्रिकूट वक्षस्कार पर्वत है। उसकी सुसीमा राजधानी है, जिसका प्रमाण, वर्णन विनीता के सदृश है।

वत्स विजय के अनन्तर त्रिकूट पर्वत, तदनन्तर सुवत्स विजय, इसी क्रम से तप्तजला नदी, महावत्स विजय, वैश्रवण कूट वक्षस्कार पर्वत, वत्सावती विजय, मत्तजला नदी, रम्य विजय, अंजन वक्षस्कार पर्वत, रम्यक विजय, उन्मत्तजला नदी, रमणीय विजय, मातंजन वक्षस्कार पर्वत तथा मंगलावती विजय हैं।

सौमनस वक्षस्कार पर्वत

१२५. कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सोमणसे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, मन्दरस्स पव्वयस्स दाहिणपुरत्थिमेणं मंगलावई० विजयस्स पच्चत्थिमेणं, देवकुराए पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे २ महाविदेहे वासे सोमणसे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते। उत्तरदाहिणायए, पाईणपडीणविच्छिण्णे, जहा मालवन्ते

वक्खारपव्वए तहा णवरं सव्वरययामये अच्छे जाव[1] पडिरूवे। णिसहवासहरपव्वयंतेणं चत्तारि जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, चत्तारि गाऊसयाइं उव्वेहेणं, सेसं तहेव सव्वं णवरं अट्ठो से, गोयमा! सोमणसे णं वक्खारपव्वए। बहवे देवा य देवीओ अ, सोमा, सुमणा, सोमणसे अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव[2] परिवसइ, से एएणट्ठेणं गोयमा! जाव णिच्चे।

सोमणसे अ वक्खारपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता?

गोयमा! सत्त कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

सिद्धे १ सोमणसे २ वि अ, बोद्धव्वे मंगलावई कूडे ३।
देवकुरु ४ विमल ५ कंचण ६, वसिट्ठकूडे ७ अ बोद्धव्वे ॥१॥

एवं सव्वे पञ्चसइआ कूडा, एएसिं पुच्छा दिसिविदिसाए भाणिअव्वा जहा गन्धमायणस्स, विमलकञ्चणकूडेसु णवरिं देवयाओ सुवच्छा वच्छमित्ता य अवसिट्ठेसु कूडेसु सरिस-णामया देवा रायहाणीओ दक्खिणेणंति।

[१२५] भगवन्! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में सौमनस नामक वक्षस्कार पर्वत कहाँ बतलाया गया है?

गौतम! निषध वर्षधर पर्वत के उत्तर में, मन्दर पर्वत के दक्षिण-पूर्व में—आग्नेय कोण में, मंगलावती विजय के पश्चिम में, देवकुरु के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में सौमनस नामक वक्षस्कार पर्वत बतलाया गया है। वह उत्तर-दक्षिण लम्बा तथा पूर्व-पश्चिम चौड़ा है। जैसा माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत है, वैसा ही वह है। इतनी विशेषता है—वह सर्वथा रजतमय है, उज्ज्वल है, सुन्दर है। वह निषध वर्षधर पर्वत के पास ४०० योजन ऊँचा है। वह ४०० कोश जमीन में गहरा है। बाकी सारा वर्णन माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत की ज्यों है।

गौतम! सौमनस वक्षस्कार पर्वत पर बहुत से सौम्य—सरल-मधुर स्वभावयुक्त, काय-कुचेष्टारहित, सुमनस्क—उत्तम भावना युक्त, मनःकालुष्य रहित देव-देवियां आश्रय लेते हैं, विश्राम करते हैं। तदधिष्ठायक परम ऋद्धिशाली सौमनस नामक देव वहाँ निवास करता है। इस कारण वह सौमनस वक्षस्कार पर्वत कहलाता है। अथवा गौतम! उसका यह नाम नित्य है—सदा से चला आ रहा है।

भगवन्! सौमनस वक्षस्कार पर्वत के कितने कूट बतलाये गये हैं?

गौतम! उसके सात कूट बतलाये गये हैं—१. सिद्धायतन कूट, २. सौमनस कूट, ३. मंगलावती कूट. ४. देवकुरु कूट, ५. विमल कूट, ६. कंचन कूट तथा ७. वशिष्ठ कूट।

ये सब कूट ५०० योजन ऊँचे हैं। इनका वर्णन गन्धमादन के कूटों के सदृश है। इतना अन्तर है—विमल कूट तथा कंचन कूट पर सुवत्सा एवं वत्समित्रा नामक देवियाँ रहती हैं। बाकी के

---

१. देखें सूत्र संख्या ४
२. देखें सूत्र संख्या १४

कूटों पर, कूटों के जो-जो नाम हैं, उन-उन नामों के देव निवास करते हैं। मेरु के दक्षिण में उनकी राजधानियां हैं।

देवकुरु

१२६. कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे देवकुरा णामं कुरा पण्णत्ता ?

गोयमा ! मन्दरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं, णिसहस्स वासहर-पव्वयस्स उत्तरेणं, विज्जुप्पहस्स वक्खार-पव्वयस्स पुरत्थिमेणं, सोमणस-वक्खार-पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं महाविदेहे वासे देवकुरा णामं कुरा पण्णत्ता। पाईण-पडीणायया, उदीण-दाहिण-विच्छिण्णा। इक्कारस जोअण-सहस्साइं अट्ठ य बायाले जोअण-सए दुण्णि अ एगूणवीसइ-भाए जोअणस्स विक्खम्भेणं जहा उत्तरकुराए वत्तव्वया जाव अणुसज्जमाणा पम्हगन्धा, मिअगन्धा, अममा, सहा, तेतली, सणिचारीति ६।

[१२६] भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में देवकुरु नामक कुरु कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! मन्दर पर्वत के दक्षिण में, निषध वर्षधर पर्वत के उत्तर में, विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में, सौमनस वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत देवकुरु नामक कुरु बतलाया गया है। वह पूर्व-पश्चिम लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ा है। वह ११८४२ २/१९ योजन विस्तीर्ण है। उसका और वर्णन उत्तरकुरु सदृश है।

वहाँ पद्मगन्ध—कमलसदृश सुगन्ध युक्त, मृगगन्ध—कस्तूरी मृग सदृश सुगन्धयुक्त, अमम—ममता रहित, सह—कार्यक्षम, तेतली—विशिष्ट पुण्यशाली तथा शनैश्चारी—मन्द गतियुक्त—धीरे-धीरे चलने वाले छह प्रकार के मनुष्य होते हैं, जिनकी वंश-परंपरा—सन्तति-परंपरा उत्तरोत्तर चलती है।

चित्र-विचित्र कूट पर्वत

१२७. कहि णं भन्ते ! देवकुराए चित्तविचित्त-कूडा णामं दुवे पव्वया पण्णत्ता ?

गोयमा ! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरिल्लाओ चरिमंताओ अट्ठचोत्तीसे जोअणसए चत्तारि अ सत्तभाए जोअणस्स अबाहाए सीओआए महाणईए पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं उभओ कूले एत्थ णं चित्त-विचित्त-कूडा णामं दुवे पव्वया पण्णत्ता। एवं जच्चेव जमगपव्वयाणं सच्चेव, एएसिं रायहाणीओ दक्खिणेणंति।

[१२७] भगवन् ! देवकुरु में चित्र-विचित्र कूट नामक दो पर्वत कहाँ बतलाये गये हैं ?

गौतम ! निषध वर्षधर पर्वत के उत्तरी चरमान्त से—अन्तिम छोर से ८३४ ४/७ योजन की दूरी पर शीतोदा महानदी के पूर्व-पश्चिम के अन्तराल में उसके दोनों तटों पर चित्र-विचित्र कूट नामक दो पर्वत बतलाये गये हैं। यमक पर्वतों का जैसा वर्णन है, वैसा ही उनका है। उनके अधिष्ठातृ-देवों की राजधानियां मेरु के दक्षिण में हैं।

निषध द्रह

१२८. कहि णं भन्ते ! देवकुराए २ णिसढद्दहे णामं दहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तेसिं चित्तविचित्तकूडाणं पव्वयाणं उत्तरिल्लाओ चरिमन्ताओ अट्ठचोतीसे जोअणसए चत्तारि अ सत्तभाए जोअणस्स अबाहाए सीओआए महाणईए बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं णिसहद्दहे णामं दहे पण्णत्ते।

एवं जच्चेव नीलवंतउत्तरकुरुचन्देरावयमालवंताणं वत्तव्वया, सच्चेव णिसहदेवकुरुसूरसुलस-विज्जुप्पभाणं णेअव्वा, रायहाणीओ दक्खिणेणंति।

[१२८] भगवन्! देवकुरु में निषध द्रह नामक द्रह कहाँ बतलाया गया है?

गौतम! चित्र-विचित्र कूट नामक पर्वतों के उत्तरी चरमान्त से ८३४$\frac{4}{7}$ योजन की दूरी पर शीतोदा महानदी के ठीक मध्य भाग में निषध द्रह नामक द्रह बतलाया गया है।

नीलवान्, उत्तरकुरु, चन्द्र, ऐरावत तथा माल्यवान्—इन द्रहों की जो वक्तव्यता है, वही निषध, देवकुरु, सूर, सुलस तथा विद्युत्प्रभ नामक द्रहों की समझनी चाहिए। उनके अधिष्ठातृ-देवों की राजधानियां मेरु के दक्षिण में हैं।

कूटशाल्मलीपीठ

१२९. कहि णं भन्ते! देवकुराए २ कूडसामलिपेढे णामं पेढे पण्णत्ते?

गोयमा! मन्दरस्स पव्वयस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं, णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, विज्जुप्पभस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, सीओआए महाणईए पच्चत्थिमेणं देवकुरुपच्चत्थिमद्धस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं देवकुराए कुराए कूडसामलीपेढे णामं पेढे पण्णत्ते।

एवं जच्चेव जम्बूए सुदंसणाए वत्तव्वया सच्चेव सामलीए वि भाणिअव्वा णामविहूणा, गरुलदेवे, रायहाणी दक्खिणेणं, अवसिट्ठं तं चेव जाव देवकुरू अ। इत्थ देवे पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ देवकुरा २, अदुत्तरं च णं देवकुराए०।

[१२९] भगवन्! देवकुरु में कूटशाल्मलीपीठ—शाल्मली या सेमल वृक्ष के आकार में शिखर रूप पीठ कहाँ बतलाया गया है?

गौतम! मन्दर पर्वत के दक्षिण-पश्चिम में—नैर्ऋत्य कोण में, निषध वर्षधर पर्वत के उत्तर में, विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में, शीतोदा महानदी के पश्चिम में देवकुरु के पश्चिमार्द्ध के ठीक बीच में कूटशाल्मलीपीठ नामक पीठ बतलाया गया है।

जम्बू सुदर्शना की जैसी वक्तव्यता है, वैसी ही कूटशाल्मलीपीठ की समझनी चाहिए। जम्बू सुदर्शना के नाम यहाँ नहीं लेने होंगे। गरुड इसका अधिष्ठातृ-देव है। राजधानी मेरु के दक्षिण में है। बाकी का वर्णन जम्बू सुदर्शना जैसा है। यहाँ एक पल्योपमस्थितिक देव निवास करता है। अतः गौतम! यह देवकुरु कहा जाता है। अथवा देवकुरु नाम शाश्वत है।

विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत

१३०. कहि णं भन्ते! जम्बुद्दीवे २ महाविदेहे वासे विज्जुप्पभे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते?

गोयमा! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, मन्दरस्स पव्वयस्स दाहिण-पच्चत्थिमेणं,

देवकुराए पच्चत्थिमेणं, पम्हस्स विजयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे २ महाविदेहे वासे विज्जुप्पभे वक्खारपव्वए पण्णत्ते। उत्तरदाहिणायए एवं जहा मालवन्ते णवरि सव्वतवणिज्जमए अच्छे जाव[1] देवा आसयन्ति।

विज्जुप्पभे णं भन्ते! वक्खारपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता?

गोयमा! नव कूडा पण्णत्ता, तंजहा—सिद्धाययणकूडे १, विज्जुप्पभकूडे २, देवकुरुकूडे ३, पम्हकूडे ४, कणगकूडे ५, सोवत्थिअकूडे ६, सीओआकूडे ७, सयज्जलकूडे ८, हरिकूडे ९।

सिद्धे अ विज्जुणामे, देवकुरू पम्हकणगसोवत्थी।
सीओया य सयज्जलहरिकूडे चेव बोद्धव्वे ॥१॥

एए हरिकूडवज्जा पञ्चसइआ णेअव्वा। एएसिं कूडाणं पुच्छा दिसिविदिसाओ णेअव्वाओ जहा मालवन्तस्स। हरिस्सहकूडे तह चेव हरिकूडे रायहाणी जह चेव दाहिणेणं चमरचंचा रायहाणी तह णेअव्वा, कणगसोवत्थिअकूडेसु वारिसेण-बलाहयाओ दो देवयाओ, अवसिट्ठेसु कूडेसु कूडसरिसणामया देवा रायहाणीओ दाहिणेणं।

से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ—विज्जुप्पभे वक्खारपव्वए २?

गोयमा! विज्जुप्पभे णं वक्खारपव्वए विज्जुमिव सव्वओ समन्ता ओभासेइ, उज्जोवेइ, पभासइ, विज्जुप्पभे य इत्थ देवे पलिओवमट्ठिइए जाव[2] परिवसइ, से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ विज्जुप्पभे २, अदुत्तरं च णं जाव णिच्चे।

[१३०] भगवन्! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में विद्युत्प्रभ नामक वक्षस्कार पर्वत कहाँ बतलाया गया है?

गौतम! निषध वर्षधर पर्वत के उत्तर में, मन्दर पर्वत के दक्षिण-पश्चिम में, देवकुरु के पश्चिम में तथा पद्म विजय के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में विद्युत्प्रभ नामक वक्षस्कार पर्वत बतलाया गया है। वह उत्तर-दक्षिण में लम्बा है। उसका शेष वर्णन माल्यवान् पर्वत जैसा है। इतनी विशेषता है—वह सर्वथा तपनीय-स्वर्णमय है। वह स्वच्छ है—देदीप्यमान है, सुन्दर है। देव-देवियां आश्रय लेते हैं, विश्राम करते हैं।

भगवन्! विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत के कितने कूट बतलाये गये हैं?

गौतम! उसके नौ कूट बतलाये गये हैं—१. सिद्धायतनकूट, २. विद्युत्प्रभकूट, ३. देवकुरुकूट, ४. पक्ष्मकूट, ५. कनककूट, ६. सौवत्सिककूट. ७. शीतोदाकूट, ८. शतज्वलकूट ९. हरिकूट।

हरिकूट के अतिरिक्त सभी कूट पांच-पांच सौ योजन ऊँचे हैं। इनकी दिशा-विदिशाओं में अवस्थिति इत्यादि सारा वर्णन माल्यवान् जैसा है।

---

१. देखें सूत्र संख्या ४
२. देखें सूत्र संख्या १४

हरिकूट हरिस्सहकूट सदृश है। जैसे दक्षिण में चमरचञ्चा राजधानी है, वैसे ही दक्षिण में इसकी राजधानी है।

कनककूट तथा सौवत्सिककूट में वारिषेणा एवं बलाहका नामक दो देवियां—दिक्कुमारिकाएँ निवास करती हैं। बाकी के कूटों में कूट-सदृश नामयुक्त देव निवास करते हैं। उनकी राजधानियां मेरु के दक्षिण में हैं।

भगवन् ! वह विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत क्यों कहा जाता है ?

गौतम ! विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत विद्युत की ज्यों—बिजली की तरह सब ओर से अवभासित होता है, उद्योतित होता है, प्रभासित होता है—वैसी आभा, उद्योत एवं प्रभा लिये हुए है—बिजली की ज्यों चमकता है। वहाँ पल्योपमपरिमित आयुष्य-स्थिति युक्त विद्युत्प्रभ नामक देव निवास करता है, अतः वह पर्वत विद्युत्प्रभ कहलाता है। अथवा गौतम ! उसका यह नाम नित्य—शाश्वत है।

विवेचन—यहाँ प्रयुक्त 'पल्योपम' शब्द एक विशेष, अति दीर्घकाल का द्योतक है। जैन वाङ्मय में इसका बहुलता से प्रयोग हुआ है।

पल्य या पल्ल का अर्थ कुआ या अनाज का बहुत बड़ा गड्ढा है। उसके आधार पर या उसकी उपमा से काल-गणना किये जाने के कारण यह कालावधि 'पल्योपम' कही जाती है।

पल्योपम के तीन भेद हैं—१. उद्धारपल्योपम, २. अद्धापल्योपम तथा ३. क्षेत्रपल्योपम।

उद्धारपल्योपम—कल्पना करें, एक ऐसा अनाज का बड़ा गड्ढा या कुआ हो, जो एक योजन (चार कोश) लम्बा, एक योजन चौड़ा और एक योजन गहरा हो। एक दिन से सात दिन तक की आयुवाले नवजात यौगलिक शिशु के बालों के अत्यन्त छोटे-छोटे टुकड़े किये जाएँ, उनसे ठूंस-ठूंस कर उस गड्ढे या कुए को अच्छी तरह दबा-दबाकर भरा जाए। भराव इतना सघन हो कि अग्नि उन्हें जला न सके, चक्रवर्ती की सेना उन पर से निकल जाए तो एक भी कण इधर से उधर न हो, गंगा का प्रवाह बह जाए तो उन पर कुछ असर न हो। यों भरे हुए कुए में से एक-एक समय में एक-एक बालखण्ड निकाला जाए। यों निकालते-निकालते जितने काल में वह कुआ खाली हो, उस काल-परिमाण को उद्धारपल्योपम कहा जाता है। उद्धार का अर्थ निकालना है। बालों के उद्धार या निकाले जाने के आधार पर इसकी संज्ञा उद्धारपल्योपम है।

उद्धारपल्योपम के दो भेद हैं—सूक्ष्म एवं व्यावहारिक। उपर्युक्त वर्णन व्यावहारिक उद्धारपल्योपम का है।

सूक्ष्म उद्धारपल्योपम इस प्रकार है—

व्यावहारिक उद्धारपल्योपम में कुए को भरने के लिए यौगलिक शिशु के बालों के टुकड़ों की जो चर्चा आई है, उनमें से प्रत्येक टुकड़े के असंख्यात अदृश्य खंड किये जाएं। उन सूक्ष्म खंडों से पूर्ववर्णित कुआ ठूंस-ठूंस कर भरा जाए। वैसा कर लिये जाने पर प्रतिसमय एक-एक केशखण्ड कुए में से निकाला जाए। यों करते-करते जितने काल में वह कुआ बिलकुल खाली हो जाए, उस काल-अवधि को सूक्ष्म उद्धारपल्योपम कहा जाता है। इसमें संख्यात-वर्ष-कोटि-परिमाण काल माना जाता है।

अद्धापल्योपम—अद्धा देशी शब्द है, जिसका अर्थ काल या समय है। आगम के प्रस्तुत प्रसंग में जो पल्योपम का जिक्र आया है, उसका आशय इसी पल्योपम से है। इसकी गणना का क्रम इस प्रकार है—

यौगलिक के बालों के टुकड़ों से भरे हुए कुए में से सौ-सौ वर्ष में एक-एक टुकड़ा निकाला जाए। इस प्रकार निकालते-निकालते जितने में वह कुआ बिलकुल खाली हो जाए, उस कालावधि को अद्धापल्योपम कहा जाता है। इसका परिमाण संख्यात-वर्ष-कोटि है।

अद्धापल्योपम भी दो प्रकार का होता है—सूक्ष्म और व्यावहारिक। यहाँ जो वर्णन किया गया है, वह व्यावहारिक अद्धापल्योपम का है। जिस प्रकार सूक्ष्म उद्धारपल्योपम में यौगलिक शिशु के बालों के टुकड़ों के असंख्यात अदृश्य खंड किये जाने की बात है, तत्सदृश यहाँ भी वैसे ही असंख्यात अदृश्य केश-खंडों से वह कुआ भरा जाए। प्रति सौ वर्ष में एक-एक खंड निकाला जाए। यों निकालते निकालते जब कुआ बिलकुल खाली हो जाए, वैसा होने में जितना काल लगे, वह सूक्ष्म अद्धापल्योपम, कोटि में आता है। इसका काल-परिमाण असंख्यात वर्ष क़ोटि माना जाता है।

क्षेत्रपल्योपम—ऊपर जिस कुए या धान के विशाल गड्ढे की चर्चा की गई है, यौगलिक के बालखंडों से उसे उपर्युक्त रूप में दबा-दबा कर भर दिये जाने पर भी उन खंडों के बीच-बीच में आकाश-प्रदेश—रिक्त स्थान रह जाते हैं। वे खंड चाहे कितने ही छोटे हों, आखिर वे रूपी या मूर्त्त हैं, आकाश अरूपी या अमूर्त्त है। स्थूल रूप में उन खंडों के बीच में रहे आकाश-प्रदेशों की कल्पना नहीं की जा सकती पर सूक्ष्मता से सोचने पर वैसा नहीं है। इसे एक स्थूल उदाहरण से समझा जा सकता है—

कल्पना करें, अनाज के एक बहुत बड़े कोठे को कूष्माण्डों—कुम्हड़ों से भर दिया जाए। सामान्यत: देखने में लगता है, वह कोठा भरा हुआ है, उसमें कोई स्थान खाली नहीं है, पर यदि उसमें नीबू भरे जाएं तो वे अच्छी तरह समा सकते हैं, क्योंकि सटे हुए कुम्हड़ों के बीच-बीच में नीबूओं के समा सकने जितने स्थान खाली रहते ही हैं। यों नीबुओं से भरे जाने पर भी सूक्ष्म रूप में और खाली स्थान रह जाते हैं, यद्यपि बाहर से वैसा लगता नहीं। यदि उस कोठे में सरसों भरना चाहें तो वे भी समा जायेंगे। सरसों भरने पर भी सूक्ष्म रूप में और स्थान खाली रहते हैं। यदि शुष्क नदी के बारीक रज-कण उसमें भरे जाएं, तो वे भी समा सकते हैं।

दूसरा उदाहरण दीवाल का है। चुनी हुई दीवाल में हमें कोई खाली स्थान प्रतीत नहीं होता, पर उसमें हम अनेक खूँटियां, कीलें गाड़ सकते हैं। यदि वास्तव में दीवाल में स्थान खाली नहीं होता तो यह कभी संभव नहीं था। दीवाल में स्थान खाली है, मोटे रूप में हमें यह मालूम नहीं पड़ता।

क्षेत्रपल्योपम की चर्चा के अन्तर्गत यौगलिक के बालों के खण्डों के बीच-बीच में जो आकाश प्रदेश होने की बात है, उसे इसी दृष्टि से समझा जा सकता है। यौगलिक के बालों के खंडों को संस्पृष्ट करने वाले आकाश-प्रदेशों में से प्रत्येक को प्रति समय निकालने की कल्पना की जाए। यों निकालते-निकालते जब सभी आकाश-प्रदेश निकाल लिये जाएं, कुआ बिलकुल खाली हो जाए, वैसा होने में जितना काल लगे, उसे क्षेत्रपल्योपम कहा जाता है। इसका काल-परिमाण असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी है।

क्षेत्रपल्योपम भी दो प्रकार का है—व्यावहारिक एवं सूक्ष्म। उपर्युक्त विवेचन व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम का है।

सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम इस प्रकार है—

कुए में भरे यौगलिक के केश-खंडों से स्पृष्ट तथा अस्पृष्ट सभी आकाश-प्रदेशों में से एक-एक समय में एक-एक प्रदेश निकालने की यदि कल्पना की जाए तथा यों निकालते-निकालते जितने काल में वह कुआ समग्र आकाश-प्रदेशों से रिक्त हो जाए, वह काल-प्रमाण सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम है। इसका भी काल-परिमाण असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी है। व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम से इसका काल असंख्यात गुना अधिक है।

अनुयोगद्वार सूत्र १३८-१४० तथा प्रवचनसारोद्धार १५८ में पल्योपम का विस्तार से विवेचन है।

पक्ष्मादि विजय

१३१. एवं पम्हे विजए, अस्सपुरा रायहाणी, अंकावई वक्खारपव्वए १, सुपम्हे विजए, सीहपुरा रायहाणी, खीरोदा महाणई २, महापम्हे विजए, महापुरा रायहाणी, पम्हावई वक्खार-पव्वए ३, पम्हगावई विजए, विजयपुरा रायहाणी, सीअसोआ महाणई ४, संखे विजए, अवराइआ रायहाणी, आसीविसे वक्खारपव्वए ५, कुमुदे विजए अरजा रायहाणी अंतोवाहिणी महाणई ६, णलिणे विजए, असोगा रायहाणी, सुहावहे वक्खारपव्वए ७, णलिणावई विजए, वीयसोगा रायहाणी ८, दाहिणिल्ले सीओआमुहवणसंडे, उत्तरिल्ले वि एवमेव भाणिअव्वे जहा सीआए।

वप्पे विजए, विजया रायहाणी, चन्दे वक्खारपव्वए १, सुवप्पे विजए, वेजयन्ती रायहाणी ओम्मिमालिणी णई २, महावप्पे विजए, जयन्ती रायहाणी, सूरे वक्खारपव्वए ३, वप्पावई विजए, अपराइआ रायहाणी, फेणमालिणी णई ४, वग्गू विजए चक्कपुरा रायहाणी, णागे वक्खारपव्वए ५, सुवग्गू विजए, खग्गपुरा रायहाणी, गंभीरमालिणी अंतरणई ६, गन्धिले विजए अवज्झा रायहाणी, देवे वक्खारपव्वए ७, गन्धिलावई विजए अओज्झा रायहाणी ८।

एवं मन्दरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लं पासं भाणिअव्वं, तत्थ ताव सीओआए णईए दक्खिणिल्ले णं कूले इमे विजया, तंजहा—

पम्हे सुपम्हे महापम्हे, चउत्थे पम्हगावई।
संखे कुमुए णलिणे, अट्ठमे णलिणावई ॥१॥

इमाओ रायहाणीओ, तंजहा—

आसपुरा सीहपुरा, महापुरा चेव हवइ विजयपुरा।
अवराइआ य अरया, असोग तह वीअसोगा य ॥२॥

इमे वक्खारा, तंजहा—अंके, पम्हे, आसीविसे, सुहावहे, एवं इत्थ परिवाडीए दो दो विजया कूडसरिस-णामया भाणिअव्वा, दिसा विदिसाओ अ भाणिअव्वाओ, सीओआ-मुहवणं च भाणिअव्वं सीओआए दाहिणिल्लं उत्तरिल्लं च। सीओआए उत्तरिल्ले पासे इमे विजया, तं जहा—

वप्पे सुवप्पे महावप्पे, चउत्थे वप्पयावई।
वग्गू अ सुवग्गू अ, गन्धिले गन्धिलावई ॥१॥

रायहाणीओ इमाओ, तं जहा—

विजया वेजयन्ती, जयन्ती अपराजिआ।
चक्कपुरा खग्गपुरा, हवइ अवज्झा अउज्झा य ॥२॥

इमे वक्खारा, तं जहा—चन्दपव्वए १, सूरपव्वए २, नागपव्वए ३, देवपव्वए ४। इमाओ णईओ सीओआए महाणईए दाहिणिल्ले कूले—खीरोआ सीहसोआ अंतरवाहिणीओ णईओ ३, उम्मिमालिणी १, फेणमालिणी २, गंभीरमालिणी ३, उत्तरिल्लविजयाणन्तराउत्ति। इत्थ परिवाडीए दो दो कूडा विजयसरिसणामया भाणिअव्वा, इमे दो दो कूडा अवट्ठिआ, तं जहा—सिद्धाययणकूडे पव्वयसरिसणामकूडे।

[१३१] पक्ष्म विजय है, अश्वपुरी राजधानी है, अंकावती वक्षस्कार पर्वत है। सुपक्ष्म विजय है, सिंहपुरी राजधानी है, क्षीरोदा महानदी है। महापक्ष्म विजय है, महापुरी राजधानी है, पक्ष्मावती वक्षस्कार पर्वत है। पक्ष्मकावती विजय है, विजयपुरी राजधानी है, शीतस्रोता महानदी है। शंख विजय है, अपराजिता राजधानी है, आशीविष वक्षस्कार पर्वत है। कुमुद विजय है, अरजा राजधानी है, अन्तर्वाहिनी महानदी है। नलिन विजय है, अशोका राजधानी है, सुखावह वक्षस्कार पर्वत है। नलिनावती (सलिलावती) विजय है, वीताशोका राजधानी है। दाक्षिणात्य शीतोदामुख वनखण्ड है। इसी की ज्यों उत्तरी शीतोदामुख वनखण्ड है।

उत्तरी शीतोदामुख वनखण्ड में वप्र विजय है, विजया राजधानी है, चन्द्र वक्षस्कार पर्वत है। सुवप्र विजय है, वैजयन्ती राजधानी है, ऊर्मिमालिनी नदी है। महावप्र विजय है, जयन्ती राजधानी है, सूर वक्षस्कार पर्वत है। वप्रावती विजय है, अपराजिता राजधानी है, फेनमालिनी नदी है। वल्गु विजय है, चक्रपुरी राजधानी है, नाग वक्षस्कार पर्वत है। सुवल्गु विजय है, खड्गपुरी राजधानी है, गम्भीरमालिनी अन्तरनदी है। गन्धिल विजय है, अवध्या राजधानी है, देव वक्षस्कार पर्वत है। गन्धिलावती विजय है, अयोध्या राजधानी है।

इसी प्रकार मन्दर पर्वत के दक्षिणी पार्श्व का—भाग का कथन कर लेना चाहिए। वह वैसा ही है। वहाँ शीतोदा नदी के दक्षिणी तट पर ये विजय हैं—

१. पक्ष्म, २. सुपक्ष्म, ३. महापक्ष्म, ४. पक्ष्मकावती, ५. शंख, ६. कुमुद, ७. नलिन तथा ८. नलिनावती।

राजधानियां इस प्रकार हैं—

१. अश्वपुरी, २. सिंहपुरी, ३. महापुरी, ४. विजयपुरी, ५. अपराजिता, ६. अरजा, ७. अशोका तथा ८. वीतशोका।

वक्षस्कार पर्वत इस प्रकार हैं—

१. अंक, २. पक्ष्म, ३. आशीविष तथा ४. सुखावह।

इस क्रमानुरूप कूट सदृश नामयुक्त दो-दो विजय, दिशा-विदिशाएँ, शीतोदा का दक्षिणवर्ती मुखवन तथा उत्तरवर्ती मुखवन—ये सब समझ लिये जाने चाहिए।

शीतोदा के उत्तरी पार्श्व में ये विजय हैं—

१. वप्र, २. सुवप्र, ३. महावप्र, ४. वप्रकावती (वप्रावती), ५. वल्गु, ६. सुवल्गु, ७. गन्धिल तथा ८. गन्धिलावती।

राजधानियां इस प्रकार हैं—

१. विजया, २. वैजयन्ती, ३. जयन्ती, ४. अपराजिता, ५. चक्रपुरी, ६. खड्गपुरी, ७. अवध्या तथा ८. अयोध्या।

वक्षस्कार पर्वत इस प्रकार हैं—

१. चन्द्र पर्वत, २. सूर पर्वत, ३. नाग पर्वत तथा ४. देव पर्वत।

क्षीरोदा तथा शीतस्रोता नामक नदियां शीतोदा महानदी के दक्षिणी तट पर अन्तरवाहिनी नदियां हैं।

ऊर्मिमालिनी, फेनमालिनी तथा गम्भीरमालिनी शीतोदा महानदी के उत्तर दिग्वर्ती विजयों की अन्तरवाहिनी नदियां हैं।

इस क्रम में दो-दो कूट—पर्वत-शिखर अपने-अपने विजय के अनुरूप कथनीय हैं। वे अवस्थित—स्थिर हैं, जैसे—सिद्धायतन कूट तथा वक्षस्कार पर्वत-सदृश नामयुक्त कूट।

मन्दर पर्वत

१३२. कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे २ महाविदेहे वासे मन्दरे णामं पव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! उत्तरकुराए दक्खिणेणं, देवकुराए उत्तरेणं, पुव्वविदेहस्स वासस्स पच्चत्थिमेणं, अवरविदेहस्स वासस्स पुरत्थिमेणं, जम्बुद्दीवस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरे णामं पव्वए पण्णत्ते। णवणउतिजोअणसहस्साइं उद्धं उच्चत्तेणं, एगं जोअणसहस्सं उव्वेहेणं, मूले दसजोअणसहस्साइं णवइं च जोअणाइं दस य एगारसभाए जोअणस्स विक्खम्भेणं, धरणिअले दस जोअणसहस्साइं विक्खम्भेणं, तयणन्तरं च णं मायाए २ परिहायमाणे परिहायमाणे उवरितले एगं जोअणसहस्सं विक्खंभेणं। मूले इक्कत्तीसं जोअणसहस्साइं णव य दसुत्तरे जोअणसए तिण्णि अ एगारसभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं, धरणिअले एकत्तीसं जोअणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोअणसए परिक्खेवेणं, उवरितले तिण्णि जोअणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं। मूले वित्थिण्णे, मज्झे संखित्ते, उवरिं तणुए, गोपुच्छसंठाणसंठिए, सव्वरयणामए, अच्छे, सण्हेत्ति। से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते वण्णओत्ति।

मन्दरे णं भन्ते ! पव्वए कइ वणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि वणा पण्णत्ता, तं जहा—भद्दसालवणे १, णन्दणवणे २, सोमणसवणे ३,

कहि णं भन्ते ! मन्दरे पव्वए भद्दसालवणे णामं वणे पण्णत्ते ?

गोयमा ! धरणिअले एत्थ णं मन्दरे पव्वए भद्दसालवणे णामं वणे पण्णत्ते। पाईणपडीणायए, उदीणदाहिणविच्छिण्णे, सोमणसविज्जुप्पहगंधमायणमालवंतेहिं वक्खारपव्वएहिं सीआसोओआहि अ महाणईहिं अट्ठभागपविभत्ते। मन्दरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं बावीसं बावीसं जोअण-सहस्साइं आयामेणं, उत्तरदाहिणेणं अद्धाइज्जाइं अद्धाइज्जाइं जोअणसयाइं विक्खम्भेणंति। से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते। दुण्हवि वण्णओ भाणिअव्वो, किण्हे किण्होभासे जाव[1] देवा आसयन्ति सयन्ति।

मन्दरस्स णं पव्वयस्स पुरत्थिमेणं भद्दसालवणं पण्णासं जोअणाइं ओगाहित्ता एत्थ णं महं एगे सिद्धायणे पण्णत्ते। पण्णासं जोअणाइं आयामेणं, पणवीसं जोअणाइं विक्खम्भेणं, छत्तीसं जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठे वण्णओ। तस्स णं सिद्धाययणस्स तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता। ते णं दारा अट्ठ जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, चत्तारि जोअणाइं विक्खम्भेणं, तावइयं चेव पवेसेणं, सेआ वरकणगथूभिआगा जाव वणमालाओ भूमिभागो अ भाणिअव्वो।

तस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगा मणिपेढिआ पण्णत्ता। अट्ठजोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं, चत्तारि जोअणाइं बाहल्लेणं, सव्वरयणामई, अच्छा। तीसे णं मणिपेढिआए उवरिं देवच्छन्दए, अट्ठजोअणाइं आयामविक्खम्भेणं, साइरेगाइं अट्ठजोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं जाव जिणपडि-मावण्णओ देवच्छन्दगस्स जाव धूवकडुच्छुआणं इति।

मन्दरस्स णं पव्वयस्स दाहिणेणं भद्दसालवणं पण्णासं एवं चउद्दिसिंपि मन्दरस्स, भद्दसालवणे चत्तारि सिद्धाययणा भाणिअव्वा। मन्दरस्स णं पव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं भद्दसालवणं पण्णासं जोअणाइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि णन्दापुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ तं जहा—पउमा १, पउमप्पभा २, चेव कुमुदा ३, कुमुदप्पभा ४, ताओ णं पुक्खरिणीओ पण्णासं जोअणाइं आयामेणं, पणवीसं जोअणाइं विक्खम्भेणं, दसजोअणाइं उव्वेहेणं, वण्णओ वेइआवणसंडाणं भाणिअव्वो, चउद्दिसिं तोरणा जाव—

तासि णं पुक्खरिणीणं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो पासायवडिंसए पण्णत्ते। पञ्चजोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, अद्धाइज्जाइं जोअणसयाइं विक्खंभेणं, अब्भुग्गयमूसिय एवं सपरिवारो पासायवडिंसओ भाणिअव्वो।

मंदरस्स णं एवं दाहिणपुरत्थिमेणं पुक्खरिणीओ उप्पलगुम्मा, णलिणा, उप्पला, उप्पलुज्जला तं चेव पमाणं, मज्झे पासायवडिंसओ सक्कस्स सपरिवारो। तेणं चेव पमाणेणं दाहिणपच्चत्थिमेणवि पुक्खरिणीओ भिंगा भिंगनिभा चेव, अंजणा अंजणप्पभा। पासायवडिंसओ सक्कस्स सीहासणं सपरिवारं। उत्तरपुरत्थिमेणं पुक्खरिणीओ—सिरिकंता १, सिरिचन्दा २, सिरिमहिआ ३, चेव सिरिणिलया ४। पासायवडिंसओ ईसाणस्स सीहासणं सपरिवारंति।

मन्दरे णं भन्ते ! पव्वए भद्दसालवणे कइ दिसाहत्थिकूडा पण्णत्ता ?

---

१. देखें सूत्र संख्या ६

गोयमा ! अट्ठ दिसाहत्थिकूडा पण्णत्ता, तं जहा—

पउमुत्तरे १, णीलवन्ते २, सुहत्थी ३, अंजणागिरी ४।
कुमुदे अ ५, पलासे अ ६, वडिंसे ७, रोअणागिरी ८ ॥१॥

कहि णं भन्ते ! मन्दरे पव्वए भद्दसालवणे पउमुत्तरे णामं दिसाहत्थिकूडे पण्णत्ते ?

गोयमा ! मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं, पुरत्थिमिल्लाए सीआए उत्तरेणं एत्थ णं पउमुत्तरे णामं दिसाहत्थिकूडे पण्णत्ते। पञ्चजोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, पञ्चगाउसयाइं उव्वेहेणं एवं विक्खम्भपरिक्खेवो भाणिअव्वो चुल्लहिमवन्तसरिसो, पासायाण य तं चेव पउमुत्तरो देवो रायहाणी उत्तरपुरत्थिमेणं १।

एवं णीलवन्तदिसाहत्थिकूडे मन्दरस्स दाहिणपुरत्थिमेणं पुरत्थिमिल्लाए सीआए दक्खिणेणं। एअस्सवि नीलवन्तो देवो, रायहाणी दाहिणपुरत्थिमेणं २।

एवं सुहत्थिदिसाहत्थिकूडे मंदरस्स दाहिणपुरत्थिमेणं दक्खिणिल्लाए सीओआए पुरत्थिमेणं। एअस्सवि सुहत्थी देवो, रायहाणी दाहिणपुरत्थिमेणं ३।

एवं चेव अंजणागिरिदिसाहत्थिकूडे मन्दरस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं, दक्खिणिल्लाए सीओआए पच्चत्थिमेणं, एअस्सवि अंजणगिरी देवो, रायहाणी दाहिणपच्चत्थिमेणं ४।

एवं कुमुदे विदिसाहत्थिकूडे मन्दरस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं० पच्चत्थिमिल्लाए सीओआए दक्खिणेणं, एअस्सवि कुमुदो देवो रायहाणी दाहिणपच्चत्थिमेणं ५।

एवं पलासे विदिसाहत्थिकूडे मन्दरस्स उत्तरपच्चत्थिमिल्लाए सीओआए उत्तरेणं, एअस्सवि पलासो देवो, रायहाणी उत्तरपच्चत्थिमेणं ६।

एवं वडेंसे विदिसाहत्थिकूडे मन्दरस्स उत्तरपच्चत्थिमेणं उत्तरिल्लाए सीआए महाणईए पच्चत्थिमेणं। एअस्सवि वडेंसो देवो, रायहाणी उत्तरपच्चत्थिमेणं।

एवं रोअणागिरी दिसाहत्थिकडे मंदरस्स उत्तरपुरत्थिमेणं, उत्तरिल्लाए सीआए पुरत्थिमेणं। एयस्सवि रोअणागिरी देवो, रायहाणी उत्तरपुरत्थिमेणं।

[१३२] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में मन्दर नामक पर्वत कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! उत्तरकुरु के दक्षिण में, देवकुरु के उत्तर में, पूर्व विदेह के पश्चिम में और पश्चिम विदेह के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत उसके बीचोंबीच मन्दर नामक पर्वत बतलाया गया है। वह ९९००० योजन ऊँचा है, १००० जमीन में गहरा है। वह मूल में १००९० $\frac{१०}{११}$ योजन तथा भूमितल पर १०००० योजन चौड़ा है। उसके बाद वह चौड़ाई की मात्रा में क्रमशः घटता-घटता ऊपर के तल पर १००० योजन चौड़ा रह जाता है। उसकी परिधि मूल में ३१९१० $\frac{३}{११}$ योजन, भूमितल पर ३१६२३ योजन तथा ऊपरी तल पर कुछ अधिक ३१६२ योजन है। वह मूल में विस्तीर्ण—चौड़ा, मध्य में संक्षिप्त—संकड़ा तथा ऊपर तनुक—पतला है। उसका आकार गाय की पूँछ के आकार जैसा

है। वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है, सुकोमल है। वह एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक वनखण्ड द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ है। उसका विस्तृत वर्णन पूर्वानुरूप है।

भगवन्! मन्दर पर्वत पर कितने वन बतलाये गये हैं ?

गौतम! वहाँ चार वन बतलाये गये हैं—१. भद्रशाल वन, २. नन्दन वन, ३. सौमनस वन तथा ४. पंडक वन।

गौतम! मन्दर पर्वत पर भद्रशाल वन नामक वन कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम! मन्दर पर्वत पर उसके भूमिभाग पर भद्रशाल नामक वन बतलाया गया है। वह पूर्व-पश्चिम लम्बा एवं उत्तर-दक्षिण चौड़ा है। वह सौमनस, विद्युत्प्रभ, गन्धमादन तथा माल्यवान् नामक वक्षस्कार पर्वतों द्वारा शीता तथा शीतोदा नामक महानदियों द्वारा आठ भागों में विभक्त है। वह मन्दर पर्वत के पूर्व-पश्चिम बाईस-बाईस हजार योजन लम्बा है, उत्तर-दक्षिण अढ़ाई सौ-अढ़ाई सौ योजन चौड़ा है। वह एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक वन-खण्ड द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ है। दोनों का वर्णन पूर्ववत् हैं। वह काले, नीले पत्तों से आच्छन्न है, वैसी आभा से युक्त है। देव-देवियां वहाँ आश्रय लेते हैं, विश्राम लेते हैं—इत्यादि वर्णन पूर्वानुरूप है।

मन्दर पर्वत के पूर्व में भद्रशाल वन में पचास योजन जाने पर एक विशाल सिद्धायतन आता है। वह पचास योजन लम्बा है, पच्चीस योजन चौड़ा है तथा छत्तीस योजन ऊँचा है। वह सैकड़ों खंभों पर टिका है। उसका वर्णन पूर्ववत् है। उस सिद्धायतन की तीन दिशाओं में तीन द्वार बतलाये गये हैं। वे द्वार आठ योजन ऊँचे तथा चार योजन चौड़े हैं। उनके प्रवेश मार्ग भी उतने ही हैं। उनके शिखर श्वेत हैं—उज्ज्वल हैं, उत्तम स्वर्ण निर्मित हैं। यहाँ से सम्बद्ध वनमाला, भूमिभाग आदि का सारा वर्णन पूर्वानुरूप है।

उसके बीचोंबीच एक विशाल मणिपीठिका है। वह आठ योजन लम्बी-चौड़ी है, चार योजन मोटी है, सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है, उज्ज्वल है। उस मणिपीठिका के ऊपर देवच्छन्दक—देवासन है। वह आठ योजन लम्बा-चौड़ा है। वह कुछ अधिक आठ योजन ऊँचा है।

जिनप्रतिमा, देवच्छन्दक, धूपदान आदि का वर्णन पूर्ववत् है।

मन्दर पर्वत के दक्षिण में भद्रशाल वन में पचास योजन जाने पर वहाँ उस (मन्दर) की चारों दिशाओं में चार सिद्धायतन हैं।

मन्दर पर्वत के उत्तर-पूर्व में—ईशान कोण में भद्रशाल वन में पचास योजन जाने पर पद्मा, पद्मप्रभा, कुमुदा तथा कुमुदप्रभा नामक चार पुष्करिणियां आती हैं। वे पचास योजन लम्बी, पच्चीस योजन चौड़ी तथा दश योजन जमीन में गहरी हैं। वहाँ पद्मवरवेदिका, वन-खण्ड तथा तोरण द्वार आदि का वर्णन पूर्वानुरूप है।

उन पुष्करिणियों के बीच में देवराज ईशानेन्द्र का उत्तम प्रासाद है। वह पाँच सौ योजन ऊँचा और अढ़ाई सौ योजन चौड़ा है। सम्बद्ध सामग्री सहित उस प्रासाद का विस्तृत वर्णन पूर्वानुरूप है।

मन्दर पर्वत के दक्षिण-पूर्व में—आग्नेय कोण में उत्पलगुल्मा, नलिना, उत्पला तथा उत्पलोज्ज्वला नामक पुष्करिणियां हैं, उनका प्रमाण पूर्वानुसार है। उनके बीच में उत्तम प्रासाद हैं। देवराज शक्रेन्द्र वहाँ सपरिवार रहता है।

मन्दर पर्वत के दक्षिण-पश्चिम में—नैर्ऋत्य कोण में भृंगा, भृंगनिभा, अंजना एवं अंजनप्रभा नामक पुष्करिणियां हैं, जिनका प्रमाण, विस्तार पूर्वानुरूप है। शक्रेन्द्र वहाँ का अधिष्ठातृ देव है। सम्बद्ध सामग्री सहित सिंहासन पर्यन्त सारा वर्णन पूर्ववत् है।

मन्दर पर्वत के उत्तर-पूर्व में—ईशान कोण में श्रीकान्ता, श्रीचन्द्रा, श्रीमहिता तथा श्रीनिलया नामक पुष्करिणियां हैं। बीच में उत्तम प्रासाद हैं। वहाँ ईशानेन्द्र देव निवास करता है। सम्बद्ध सामग्री सहित सिंहासन पर्यन्त सारा वर्णन पूर्वानुरूप है।

भगवन्! मन्दर पर्वत पर भद्रशाल वन में दिशाहस्तिकूट—हाथी के आकार के शिखर कितने बतलाये गये हैं?

गौतम! वहाँ आठ दिग्हस्तिकूट बतलाये गये हैं—

१. पद्मोत्तर, २. नीलवान्, ३. सुहस्ती, ४. अंजनगिरि, ५. कुमुद, ६. पलाश, ७. अवतंस तथा ८. रोचनागिरि।

भगवन्! मन्दर पर्वत पर भद्रशाल वन में पद्मोत्तर नामक दिग्हस्तिकूट कहाँ बतलाया गया है?

गौतम! मन्दर पर्वत के उत्तर-पूर्व में—ईशान कोण में तथा पूर्व दिग्गत शीता महानदी के उत्तर में पद्मोत्तर नामक दिग्हस्तिकूट बतलाया गया है। वह ५०० योजन ऊँचा तथा ५०० कोश जमीन में गहरा है। उसकी चौड़ाई तथा परिधि चुल्लहिमवान् पर्वत के समान है। प्रासाद आदि पूर्ववत् हैं। वहाँ पद्मोत्तर नामक देव निवास करता है। उसकी राजधानी उत्तर-पूर्व में—ईशान कोण में है।

नीलवान् नामक दिग्हस्तिकूट मन्दर पर्वत के दक्षिण-पूर्व में—आग्नेय कोण में तथा पूर्व दिशागत शीता महानदी के दक्षिण में है। वहाँ नीलवान् नामक देव निवास करता है। उसकी राजधानी दक्षिण-पूर्व में—आग्नेय कोण में है।

सुहस्ती नामक दिग्हस्तिकूट मन्दर पर्वत के दक्षिण-पूर्व में—आग्नेय कोण में तथा दक्षिण-दिशागत शीतोदा महानदी के पूर्व में है। वहाँ सुहस्ती नामक देव निवास करता है। उसकी राजधानी दक्षिण-पूर्व में—आग्नेय कोण में है।

अंजनगिरि नामक दिग्हस्तिकूट मन्दर पर्वत के दक्षिण-पश्चिम में—नैर्ऋत्य कोण में तथा दक्षिण-दिशागत शीतोदा महानदी के पश्चिम में है। अंजनगिरि नामक उसका अधिष्ठायक देव है। उसकी राजधानी दक्षिण-पश्चिम में—नैर्ऋत्य कोण में है।

कुमुद नामक विदिशागत हस्तिकूट मन्दर पर्वत के दक्षिण-पश्चिम में—नैर्ऋत्य कोण में तथा पश्चिम-दिग्वर्ती शीतोदा महानदी के दक्षिण में है। वहाँ कुमुद नामक देव निवास करता है। उसकी राजधानी दक्षिण-पश्चिम में—नैर्ऋत्य कोण में है।

पलाश नामक विदिग्हस्तिकूट मन्दर पर्वत के उत्तर-पश्चिम में—वायव्य कोण में एवं पश्चिम दिग्वर्ती शीतोदा महानदी के उत्तर में है। वहाँ पलाश नामक देव निवास करता है। उसकी राजधानी उत्तर-पश्चिम में—वायव्य कोण में है।

अवतंस नामक विदिग्हस्तिकूट मन्दर पर्वत के उत्तर-पश्चिम में—वायव्य कोण में तथा उत्तर दिग्गत शीता महानदी के पश्चिम में है। वहाँ अवतंस नामक देव निवास करता है। उसकी राजधानी उत्तर-पश्चिम में—वायव्य कोण में है।

रोचनागिरि नामक दिग्हस्तिकूट मन्दर पर्वत के उत्तर-पूर्व में—ईशान कोण में और उत्तर दिग्गत शीता महानदी के पूर्व में है। रोचनागिरि नामक देव उस पर निवास करता है। उसकी राजधानी उत्तर-पूर्व में—ईशान कोण में है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में मन्दर पर्वत के पद्मोत्तर, नीलवान्, सुहस्ती, अंजनगिरि, कुमुद, पलाश, अवतंस तथा रोचनागिरि—इन आठ दिग्हस्तिकूटों का उल्लेख हुआ है। हाथी के आकार के ये कूट—शिखर भिन्न-भिन्न दिशाओं एवं विदिशाओं में संस्थित हैं। इन कूटों की चर्चा के प्रसंग में पद्मोत्तर, नीलवान्, सुहस्ती तथा अंजनगिरि को दिशा-हस्तिकूट कहा गया है और कुमुद, पलाश एवं अवतंस को विदिशा-हस्तिकूट कहा गया है। आशय स्पष्ट है, पहले चार, जैसा सूत्र में वर्णन है, भिन्न-भिन्न दिशाओं में विद्यमान हैं तथा अगले तीन विदिशाओं में विद्यमान हैं। अन्तिम आठवें कूट रोचनागिरि के लिए दिशाहस्तिकूट शब्द आया है, जो संशय उत्पन्न करता है। आठ कूट अलग-अलग चार दिशाओं में तथा चार विदिशाओं में हों, यह संभाव्य है। रोचनागिरि के दिशा-हस्तिकूट के रूप में लिये जाने से दिशा-हस्तिकूट पांच होंगे तथा विदिशा-हस्तिकूट तीन होंगे। ऐसा संगत प्रतीत नहीं होता।

आगमोदय समिति के, पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज के तथा पूज्य श्री घासीलाल जी महाराज के जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र के संस्करणों के पाठ में तथा अर्थ में रोचनागिरि का दिशा-हस्तिकूट के रूप में ही उल्लेख हुआ है। यह विचारणीय एवं गवेषणीय है।

नन्दन वन

१३३. कहि णं भन्ते ! मन्दरे पव्वए णंदणवणे णामं वणे पण्णत्ते ?

गोयमा ! भद्दसालवणस्स बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ पञ्चजोअणसयाइं उद्धं उप्पइत्ता एत्थ णं मन्दरे पव्वए णन्दणवणे णामं वणे पण्णत्ते। पञ्चजोअणसयाइं चक्कवालविक्खम्भेणं, वट्टे, वलयाकारसंठाणसंठिए, जे णं मन्दरं पव्वयं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ त्ति।

णवजोअणसहस्साइं णव य चउप्पण्णे जोअणसए छच्चेगारसभाए जोअणस्स बाहिं गिरिविक्खम्भो, एगत्तीसं जोअणसहस्साइं चत्तारि अ अउणासीए जोअणसए किंचि विसेसाहिए बाहिं गिरिपरिरएणं, अट्ठ जोअणसहस्साइं णव य चउप्पण्णे जोअणसए छच्चेगारसभाए जोअणस्स अंतो गिरिविक्खम्भो, अट्ठावीसं जोअणसहस्साइं तिण्णि य सोलसुत्तरे जोअणसए अट्ठ य इक्कारसभाए जोअणस्स अंतो गिरिपरिरएणं। से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते वण्णओ जाव आसयन्ति।

मन्दरस्स णं पव्वयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं महं एगे सिद्धायय़णे पण्णत्ते। एवं चउद्दिसिं चत्तारि सिद्धाययणा, विदिसासु पुक्खरिणीओ, तं चेव पमाणं सिद्धाययणाणं पुक्खरिणीणं च पासायवडिंसगा तह चेव सक्केसाणाणं तेणं चेव पमाणेणं।

णंदणवणे णं भन्ते ! कइ कूडा पण्णत्ता ?

गोयमा ! णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—णन्दणवणकूडे १, मन्दरकूडे २, णिसहकूडे ३, हिमवयकूडे ४, रययकूडे ५, रुअगकूडे ६, सागरचित्तकूडे ७, वइरकूडे ८, बलकूडे ९।

कहि णं भन्ते ! णन्दणवणे णंदणवणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

गोयमा ! मन्दरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लसिद्धाययणस्स उत्तरेणं, उत्तरपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसयस्स दक्खिणेणं, एत्थ णं णन्दणवणे णंदणवणे णामं कूडे पण्णत्ते। पञ्चसइआ कूडा पुव्ववण्णिआ भाणिअव्वा। देवी मेहंकरा, रायहाणी विदिसाएत्ति १। एआहिं चेव पुव्वाभिलावेणं णेअव्वा इमे कूडा।

इमाहिं दिसाहिं पुरत्थिमिल्लस्स भवणस्स दाहिणेणं, दाहिणपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स उत्तरेणं, मन्दरे कूडे मेहवई रायहाणी पुव्वेणं २।

दक्खिणिल्लस्स भवणस्स पुरत्थिमेणं, दाहिणपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पच्चत्थिमेणं णिसहे कूडे सुमेहा देवी, रायहाणी दक्खिणेणं ३।

दक्खिणिल्लस्स भवणस्स पच्चत्थिमेणं, दक्खिणपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पुरत्थिमेणं हेमवए कूडे हेममालिनी देवी, रायहाणी दक्खिणेणं ४।

पच्चत्थिमिल्लस्स भवणस्स दक्खिणेणं दाहिण-पच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स उत्तरेणं रययकूडे सुवच्छा देवी, रायहाणी पच्चत्थिमेणं ५।

पच्चत्थिमिल्लस्स भवणस्स उत्तरेणं, उत्तर-पच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स दक्खिणेणं रुअगे कूडे वच्छमित्ता देवी, रायहाणी पच्चत्थिमेणं ६।

उत्तरिल्लस्स भवणस्स पच्चत्थिमेणं, उत्तर-पच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पुरत्थिमेणं सागरचित्ते कूडे वइरसेणा देवी, रायहाणी उत्तरेणं ७।

उत्तरिल्लस्स भवणस्स पुरत्थिमेणं, उत्तर-पुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पच्चत्थिमेणं वइरकूडे बलाहया देवी, रायहाणी उत्तरेणंति ८।

कहि णं भन्ते ! णन्दणवणे बलकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

गोयमा ! मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं णन्दणवणे बलकूडे णामं कूडे पण्णत्ते। एवं जं चेव हरिस्सहकूडस्स पमाणं रायहाणी अ तं चेव बलकूडस्सवि, णवरं बलो देवो, रायहाणी उत्तरपुरत्थिमेणंति।

[१३३] भगवन् ! मन्दर पर्वत पर नन्दनवन नामक वन कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! भद्रशालवन के बहुत समतल एवं रमणीय भूमिभाग से पाँच सौ योजन ऊपर जाने पर मन्दर पर्वत पर नन्दनवन नामक वन आता है। चक्रवालविष्कम्भ—सममण्डलविस्तार—

परिधि के सब ओर से समान विस्तार की अपेक्षा से वह ५०० योजन है, गोल है। उसका आकार वलय—कंकण के सदृश है, सघन नहीं है, मध्य में वलय की ज्यों शुषिर है—रिक्त (खाली) है। वह (नन्दन वन) मन्दर पर्वतों को चारों ओर से परिवेष्टित किये हुए है।

नन्दन वन के बाहर मेरु पर्वत का विस्तार ९९५४ $\frac{६}{११}$ योजन है। नन्दन वन से बाहर उसकी परिधि कुछ अधिक ३१४७९ योजन है। नन्दन वन के भीतर उसका विस्तार ८९५४ $\frac{६}{११}$ योजन है। उसकी परिधि २८३१६ $\frac{८}{११}$ योजन है। वह एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक वन-खण्ड द्वारा चारों ओर से परिवेष्टित है। वहाँ देव-देवियां आश्रय लेते हैं—इत्यादि सारा वर्णन पूर्वानुरूप है।

मन्दर पर्वत के पूर्व में एक विशाल सिद्धायतन है। ऐसे चारों दिशाओं में चार सिद्धायतन हैं। विदिशाओं में—ईशान, आग्नेय आदि कोणों में पुष्करिणियां हैं, सिद्धायतन, पुष्करिणियां तथा उत्तम प्रासाद तथा शक्रेन्द्र, ईशानेन्द्र—संबंधी वर्णन पूर्ववत् है।

भगवन्! नन्दन वन में कितने कूट बतलाये गये हैं?

गौतम! वहाँ नौ कूट बतलाये गये हैं—

१. नन्दनवनकूट, २. मन्दरकूट, ३. निषधकूट, ४. हिमवत्कूट, ५. रजतकूट, ६. रुचककूट, ७. सागरचित्रकूट, ८. वज्रकूट तथा ९. बलकूट।

भगवन्! नन्दन वन में नन्दनवनकूट नामक कूट कहाँ बतलाया गया है?

गौतम! मन्दर पर्वत पर पूर्व दिशावर्ती सिद्धायतन के उत्तर में, उत्तर-पूर्व—ईशान कोणवर्ती उत्तम प्रासाद के दक्षिण में नन्दन वन में नन्दनवनकूट नामक कूट बतलाया गया है। ये सभी कूट ५०० योजन ऊँचे हैं। इनका विस्तृत वर्णन पूर्ववत् है।

नन्दनवनकूट पर मेघंकरा नामक देवी निवास करती है। उसकी राजधानी उत्तर-पूर्व विदिशा में—ईशान कोण में है। और वर्णन पूर्वानुरूप है।

इन दिशाओं के अन्तर्गत पूर्व दिशावर्ती भवन के दक्षिण में, दक्षिण-पूर्व—आग्नेय कोणवर्ती उत्तम प्रासाद के उत्तर में मन्दरकूट पर पूर्व में मेघवती नामक राजधानी है। दक्षिण दिशावर्ती भवन के पूर्व में, दक्षिण-पूर्व—आग्नेय कोणवर्ती उत्तम प्रासाद के पश्चिम में निषधकूट पर सुमेधा नामक देवी है। दक्षिण में उसकी राजधानी है।

दक्षिण दिशावर्ती भवन के पश्चिम में, दक्षिण-पश्चिम—नैर्ऋत्य कोणवर्ती उत्तम प्रासाद के पूर्व में हैमवतकूट पर हेममालिनी नामक देवी है। उसकी राजधानी दक्षिण में है।

पश्चिम दिशावर्ती भवन के दक्षिण में, दक्षिण-पश्चिम—नैर्ऋत्य कोणवर्ती उत्तम प्रासाद के उत्तर में रजतकूट पर सुवत्सा नामक देवी रहती है। पश्चिम में उसकी राजधानी है।

पश्चिमदिग्वर्ती भवन के उत्तर में, उत्तर-पश्चिम—वायव्य कोणवर्ती उत्तम प्रासाद के दक्षिण में रुचक नामक कूट पर वत्समित्रा नामक देवी निवास करती है। पश्चिम में उसकी राजधानी है।

उत्तरदिग्वर्ती भवन के पश्चिम में, उत्तर-पश्चिम—वायव्य कोणवर्ती उत्तम प्रासाद के पूर्व में सागरचित्र नामक कूट पर वज्रसेना नामक देवी निवास करती है। उत्तर में उसकी राजधानी है।

उत्तरदिग्वर्ती भवन के पूर्व में, उत्तर-पूर्व—ईशान कोणवर्ती उत्तम प्रासाद के पश्चिम में वज्रकूट पर बलाहका नामक देवी निवास करती है। उसकी राजधानी उत्तर में है ?

भगवन् ! नन्दन वन में बलकूट नामक कूट कहाँ बतलाया गया है।

गौतम ! मन्दर पर्वत के उत्तर-पूर्व में—ईशान कोण में नन्दन वन के अन्तर्गत बलकूट नामक कूट बतलाया गया है। उसका, उसकी राजधानी का प्रमाण, विस्तार हरिस्सहकूट एवं उसकी राजधानी के सदृश है। इतना अन्तर है—उसका अधिष्ठायक बल नामक देव है। उसकी राजधानी उत्तर-पूर्व में—ईशान कोण में है।

सौमनस वन

१३४. कहि णं भन्ते ! मन्दरए पव्वए सोमणसवणे णामं वणे पण्णत्ते ?

गोयमा ! णन्दणवणस्स बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ अद्धतेवट्ठि जोअणसहस्साइं उद्धं उप्पइत्ता एत्थ णं मन्दरे पव्वए सोमणसवणे णामं वणे पण्णत्ते। पञ्चजोयणसयाइं चक्कवालविक्खम्भेणं, वट्टे, वलयाकारसंठाणसंठिए, जे णं मन्दरं पव्वयं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ। चत्तारि जोअणसहस्साइं दुण्णि य बावत्तरे जोअणसए अट्ठ य इक्कारसभाए जोअणस्स बाहिं गिरिविक्खम्भेणं, तेरस जोअणसहस्साइं पञ्च य एक्कारे जोअणसए छच्च इक्कारसभाए जोअणस्स बाहिं गिरिपरिरएणं, तिण्णि जोअणसहस्साइं दुण्णि अ बावत्तरे जोअण-सए अट्ठ य इक्कारसभाए जोयणस्स अंतो गिरिविक्खम्भेणं, दस जोअणसहस्साइं तिण्णि अ अउणापण्णे जोअणसए तिण्णि अ इक्कारसभाए जोअणस्स अंतो गिरिपरिरएणंति। से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते वण्णओ, किण्हे किण्होभासे जाव[1] आसयन्ति। एवं कूडवज्जा सच्चेव णन्दणवणवत्तव्वया भाणियव्वा, तं चेव ओगाहिऊण जाव पासायवडेंसगा सक्कीसाणाणंति।

[१३४] भगवन् ! मन्दर पर्वत पर सौमनस वन नामक वन कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! नन्दनवन के बहुत समतल एवं रमणीय भूमिभाग से ६२५०० योजन ऊपर जाने पर मन्दर पर्वत पर सौमनस नामक वन आता है। वह चक्रवाल-विष्कम्भ की दृष्टि से पाँच सौ योजन विस्तीर्ण है, गोल है, वलय के आकार का है। वह मन्दर पर्वत को चारों ओर से परिवेष्टित किये हुए है। वह पर्वत से बाहर ४२७२$\frac{८}{११}$ योजन विस्तीर्ण है। पर्वत से बाहर उसकी परिधि १३५११$\frac{६}{११}$ योजन है। वह पर्वत के भीतरी भाग में ३२७२$\frac{८}{११}$ योजन विस्तीर्ण है। पर्वत के भीतरी भाग से संलग्न उसकी परिधि १०३४९$\frac{३}{११}$ योजन है। वह एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखण्ड द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ है। विस्तृत वर्णन पूर्ववत् है।

---

१. देखें सूत्र संख्या ६

वह वन काले, नीले आदि पत्तों से—वैसे वृक्षों से, लताओं से आपूर्ण है। उनकी कृष्ण, नील आभा द्योतित है। वहाँ देव-देवियां आश्रय लेते हैं। कूटों के अतिरिक्त और सारा वर्णन नन्दन वन के सदृश है। उसमें आगे शक्रेन्द्र तथा ईशानेन्द्र के उत्तम प्रासाद हैं।

पण्डक वन

१३५. कहि णं भन्ते ! मन्दरपव्वए पंडगवणे णामं वणे पण्णत्ते ?

गोयमा ! सोमणसवणस्स बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ छत्तीसं जोअणसहस्साइं उद्धं उप्पइत्ता एत्थ णं मन्दरे पव्वए सिहरतले पंडगवणे णामं वणे पण्णत्ते। चत्तारि चउणउए जोयणसए चक्कवालविक्खम्भेणं, वट्टे, वलयाकारसंठाणसंठिए, जे णं मंदरचूलिअं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ। तिण्णि जोअणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं। से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं जाव[1] किण्हे देवा आसयन्ति।

पंडगवणस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं मंदरचूलिआ णामं चूलिआ पण्णत्ता। चत्तालीसं जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, मूले बारस जोअणाइं विक्खम्भेणं, मज्झे अट्ठ जोअणाइं विक्खम्भेणं, उप्पिं चत्तारि जोअणाइं विक्खम्भेणं। मूले साइरेगाइं सत्ततीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं, मज्झे साइरेगाइं पणवीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं, उप्पिं साइरेगाइं बारस जोअणाइं परिक्खेवेणं। मूले वित्थिण्णा, मज्झे संखित्ता, उप्पिं तणुआ, गोपुच्छसंठाणसंठिआ, सव्ववेरुलिआमई, अच्छा। सा णं एगाए पउमवरवेइआए (एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समन्ता) संपरिक्खित्ता इति।

उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे जाव[2] सिद्धायतणं बहुमज्झदेसभाए कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खम्भेणं, देसूणगं कोसं उद्धं उच्चत्तेणं, अणेगखंभसय (-सण्णिविट्ठे), तस्स णं सिद्धायतणस्स तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता। तेणं दारा अट्ठ जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, चत्तारि जोअणाइं विक्खम्भेणं, तावइयं चेव पवेसेणं। सेआ वरकणगथूभिआगा जाव वणमालाओ भूमिभागो अ भाणिअव्वो।

तस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगा मणिपेढिआ पण्णत्ता। अट्ठजोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं, चत्तारि जोअणाइं बाहल्लेणं, सव्वरयणामई अच्छा। तीसे णं मणिपेढिआए उवरिं देवच्छन्दए, अट्ठजोअणाइं आयामविक्खम्भेणं, साइरेगाइं अट्ठजोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं जाव जिणपडिमावण्णओ देवच्छन्दगस्स जाव) धूवकडुच्छुगा।

मन्दरचूलिआए णं पुरत्थिमेणं पंडगवणं पण्णासं जोअणाइं ओगाहित्ता एत्थ णं महं एगे भवणे पण्णत्ते। एवं जच्चेव सोमणसे पुव्ववण्णिओ गमो भवणाणं पुक्खरिणीणं पासायवडेंसगाण य सो चेव णेअव्वो जाव सक्कीसाणवडेंसगा तेणं चेव परिमाणेणं।

[१३५] भगवन् ! मन्दर पर्वत पर पण्डक वन नामक वन कहाँ बतलाया गया है ?

---

१. देखें सूत्र संख्या ६

२. देखें सूत्र संख्या ६

गौतम ! सौमनस वन के बहुत समतल तथा रमणीय भूमिभाग से ३६००० योजन ऊपर जाने पर मन्दर पर्वत के शिखर पर पण्डक वन नामक वन बतलाया गया है। चक्रवाल विष्कम्भ दृष्टि से वह ४९४ योजन विस्तीर्ण है, गोल है, वलय के आकार जैसा उसका आकार है। वह मन्दर पर्वत की चूलिका को चारों ओर से परिवेष्टित कर स्थित है। उसकी परिधि कुछ अधिक ३१६२ योजन है। वह एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक वनखण्ड द्वारा घिरा है। वह काले, नीले आदि पत्तों से युक्त है। देव-देवियां वहाँ आश्रय लेते हैं।

पण्डक वन के बीचों-बीच मन्दर चूलिका नामक चूलिका बतलाई गई है। वह चालीस योजन ऊँची है। वह मूल में बारह योजन, मध्य में आठ योजन तथा ऊपर चार योजन चौड़ी है। मूल में उसकी परिधि कुछ अधिक ३७ योजन, बीच में कुछ अधिक २५ योजन तथा ऊपर कुछ अधिक १२ योजन है। वह मूल में विस्तीर्ण—चौड़ी, मध्य में संक्षिप्त—सँकड़ी तथा ऊपर तनुक—पतली है। उसका आकार गाय के पूंछ के आकार-सदृश है। वह सर्वथा वैडूर्य रत्नमय है—नीलम-निर्मित है, उज्ज्वल है। वह एक पद्मवरवेदिका (तथा एक वनखण्ड) द्वारा चारों ओर से संपरिवृत है।

ऊपर बहुत समतल एवं सुन्दर भूमिभाग है। उसके बीच में सिद्धायतन है। वह एक कोश लम्बा, आधा कोश चौड़ा, कुछ कम एक कोश ऊँचा है, सैकड़ों खंभों पर टिका है। उस सिद्धायतन की तीन दिशाओं में तीन दरवाजे बतलाये गये हैं। वे दरवाजे आठ योजन ऊँचे हैं। वे चार योजन चौड़े हैं। उनके प्रवेश-मार्ग भी उतने ही हैं। उस (सिद्धायतन) के सफेद, उत्तम स्वर्णमय शिखर हैं। आगे वनमालाएँ, भूमिभाग आदि से सम्बद्ध वर्णन पूर्ववत् है।

उसके बीचों-बीच एक विशाल मणिपीठिका बतलाई गई है। वह आठ योजन लम्बी-चौड़ी है, चार योजन मोटी है, सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है। उस मणिपीठिका के ऊपर देवासन है। वह आठ योजन लम्बा-चौड़ा है, कुछ अधिक आठ योजन ऊँचा है। जिन प्रतिमा, देवच्छन्दक, धूपदान आदि का वर्णन पूर्वानुरूप है।

मन्दर पर्वत की चूलिका के पूर्व में पण्डक वन में पचास योजन जाने पर एक विशाल भवन आता है। सौमनस वन के भवन, पुष्करिणियां, प्रासाद आदि के प्रमाण, विस्तार आदि का जैसा वर्णन है, इसके भवन, पुष्करिणियां तथा प्रासाद आदि का वर्णन वैसा ही समझना चाहिए। शक्रेन्द्र एवं ईशानेन्द्र वहाँ के अधिष्ठायक देव है। उनका वर्णन पूर्ववत् है।

अभिषेक-शिलाएँ

१३६. पण्डगवणे णं भन्ते ! वणे कइ अभिसेयसिलाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! चत्तारि अभिसेयसिलाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पंडुसिला १, पण्डुकंबलसिला २, रत्तसिला ३, रत्तकम्बलसिलेति ४।

कहि णं भन्ते ! पण्डगवणे पण्डुसिला णामं सिला पण्णत्ता ?

गोयमा ! मन्दर-चूलिआए पुरत्थिमेणं, पंडगवणपुरत्थिमपेरंते, एत्थ णं पंडगवणे पण्डुसिला णामं सिला पण्णत्ता। उत्तरदाहिणायया, पाईणपडीणविच्छिण्णा, अद्धचंदसंठाणसंठिआ, पञ्च

जोअणसयाइं आयामेणं, अद्धाइज्जाइं जोअणसयाइं विक्खम्भेणं, चत्तारि जोअणाइ बाहल्लेणं, सव्वकणगामई, अच्छा, वेइआवणसंडेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता वण्णओ।

तीसे णं पण्डुसिलाए चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाण-पडिरूवगा पण्णत्ता जाव तोरणा वण्णओ। तीसे णं पण्डुसिलाए उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, (तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे) देवा आसयन्ति। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए उत्तरदाहिणेणं एत्थ णं दुवे सीहासणा पण्णत्ता, पञ्च धणुसयाइं आयामविक्खम्भेणं, अद्धाइज्जाइं धणुसयाइं बाहल्लेणं, सीहासणवण्णओ भाणिअव्वो विजयदूसवज्जोत्ति।

तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले सीहासणे, तत्थ णं बहूहिं भवणवइवाणमन्तरजोइसिअवेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि अ कच्छाइआ तित्थयरा अभिसिच्चन्ति।

तत्थ णं जे से दाहिणिल्ले सीहासणे तत्थ णं बहूहिं भवण-(वइवाणमन्तरजोइसिअ-) वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि अ वच्छाइआ तित्थयरा अभिसिच्चन्ति।

कहि णं भन्ते! पण्डगवणे पण्डुकंवलासिला णामं सिला पण्णत्ता?

गोयमा! मन्दरचूलिआए दक्खिणेणं, पण्डगवणदाहिणपेरंते, एत्थ णं पंडगवणे पंडुकंबलासिला णामं सिला पण्णत्ता। पाईणपडीणायया, उत्तरदाहिण-वित्थिण्णा एवं तं चेव पमाणं वत्तव्वया य भाणिअव्वा जाव तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे सीहासणे पण्णत्ते, तं चेव सीहासणप्पमाणं तत्थ णं बहूहिं भवणवइ-(वाणमन्तरजोइसिअवेमाणिअ-देवेहिं देवीहि अ) भारहगा तित्थयरा अहिसिच्चन्ति।

कहि णं भन्ते! पण्डगवणे रत्तसिला णामं सिला पण्णत्ता?

गोयमा! मन्दरचूलिआए पच्चत्थिमेणं, पण्डगवणपच्चत्थिमपेरंते, एत्थ णं पण्डगवणे रत्तसिला णामं सिला पण्णत्ता। उत्तरदाहिणायया, पाईणपडीणवित्थिण्णा जाव तं चेव पमाणं सव्वतवणिज्जमई अच्छा। उत्तरदाहिणेणं एत्थ णं दुवे सीहासणा पण्णत्ता। तत्थ णं जे से दाहिणिल्ले सीहासणे तत्थ णं बहूहिं भवण० पम्हाइआ तित्थयरा अहिसिच्चन्ति। तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले सीहासणे तत्थ णं बहूहिं भवण० जाव[1] वप्पाइआ तित्थयरा अहिसिच्चंति।

कहि णं भन्ते! पण्डगवणे रत्तकंवलसिला णामं सिला पण्णत्ता?

गोयमा! मन्दरचूलिआए उत्तरेणं, पंडगवणउत्तरचरिमंते एत्थ णं पंडगवणे रत्तकंवलसिला णामं सिला पण्णत्ता। पाईणपडीणायया, उदीणदाहिणवित्थिणा, सव्वतवणिज्जमई अच्छा जाव[2] मज्झदेसभाए सीहासणं, तत्थ णं बहूहिं भवणवइ० जाव[3] देवेहिं देवीहि अ एरावयगा तित्थयरा अहिसिच्चन्ति।

---

१. देखें सूत्र यही
२. देखें सूत्र संख्या ४
३. देखें सूत्र यही

[१३६] भगवन् ! पण्डकवन में कितनी अभिषेक शिलाएँ बतलाई गई हैं ?

गौतम ! वहाँ चार अभिषेक शिलाएँ बतलाई गई हैं—१. पाण्डुशिला, २. पाण्डुकम्बलशिला, ३. रक्तशिला तथा ४. रक्तकम्बलशिला ।

भगवन् ! पण्डक वन में पाण्डुशिला नामक शिला कहाँ बतलाई गई है ?

गौतम ! मन्दर पर्वत की चूलिका के पूर्व में पण्डक वन के पूर्वी छोर पर पाण्डुशिला नामक शिला बतलाई गई है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बी तथा पूर्व-पश्चिम चौड़ी है । उसका आकार अर्ध चन्द्र के आकार-जैसा है । वह ५०० योजन लम्बी, २५० योजन चौड़ी तथा ४ योजन मोटी है । वह सर्वथा स्वर्णमय है, स्वच्छ है, पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड द्वारा चारों ओर से संपरिवृत है । विस्तृत वर्णन पूर्वानुरूप है ।

उस पाण्डुशिला के चारों ओर चारों दिशाओं में तीन तीन सीढ़ियाँ बनी हैं । तोरणपर्यन्त उनका वर्णन पूर्ववत् है । उस पाण्डुशिला पर बहुत समतल एवं सुन्दर भूमिभाग बतलाया गया है । उस पर (जहाँ-तहाँ बहुत से) देव आश्रय लेते हैं । उस बहुत समतल, रमणीय भूमिभाग के बीच में उत्तर तथा दक्षिण में दो सिंहासन बतलाये गये हैं । वे ५०० धनुष लम्बे-चौड़े और २५० धनुष ऊँचे हैं । विजयदूष्यवर्जित—विजय नामक वस्त्र के अतिरिक्त उसका सिंहासन पर्यन्त वर्णन पूर्ववत् है ।

वहाँ जो उत्तर दिग्वर्ती सिंहासन है, वहाँ बहुत से भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देव-देवियां कच्छ आदि विजयों में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं ।

वहाँ जो दक्षिण दिग्वर्ती सिंहासन है, वहाँ बहुत से भवनपति, (वानव्यन्तर, ज्योतिष्क) एवं वैमानिक देव-देवियां वत्स आदि विजयों में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं ।

भगवन् ! पण्डक वन में पाण्डुकम्बलशिला नामक शिला कहाँ बतलाई गई है ?

गौतम ! मन्दर पर्वत की चूलिका के दक्षिण में, पण्डक वन के दक्षिणी छोर पर पाण्डुकम्बलशिला नामक शिला बतलाई गई है । वह पूर्व-पश्चिम लम्बी तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ी है । उसका प्रमाण, विस्तार पूर्ववत् है ।

उसके बहुत समतल एवं रमणीय भूमिभाग के बीचों-बीच एक विशाल सिंहासन बतलाया गया है । उसका वर्णन पूर्ववत् है । वहाँ भवनपति, (वानव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक) देव-देवियों द्वारा भरतक्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरों का अभिषेक किया जाता है ।

भगवन् ! पण्डक वन में रक्तशिला नामक शिला कहाँ बतलाई गई है ?

गौतम ! मन्दर पर्वत की चूलिका के पश्चिम में, पण्डक वन के पश्चिमी छोर पर रक्तशिला नामक शिला बतलाई गई है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बी है, पूर्व-पश्चिम चौड़ी है । उसका प्रमाण, विस्तार पूर्ववत् है । वह सर्वथा तपनीय स्वर्णमय है, स्वच्छ है । उसके उत्तर-दक्षिण दो सिंहासन बतलाये गये हैं । उनमें जो दक्षिणी सिंहासन है, वहाँ बहुत से भवनपति आदि देव-देवियों द्वारा पक्ष्मादिक विजयों में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभिषेक किया जाता है । वहाँ जो उत्तरी सिंहासन है, वहाँ बहुत से भवनपति आदि देवों द्वारा वप्र आदि विजयों में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभिषेक किया जाता है ।

भगवन् ! पण्डक वन में रक्तकम्बलशिला नामक शिला कहाँ बतलाई गई है ?

गौतम ! मन्दर पर्वत की चूलिका के उत्तर में, पण्डक वन के उत्तरी छोर पर रक्तकम्बल-शिला नामक शिला बतलाई गई है। वह पूर्व-पश्चिम लम्बी तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ी है, सम्पूर्णतः तपनीय स्वर्णमय तथा उज्ज्वल है। उसके बीचों-बीच एक सिंहासन है। वहाँ भवनपति आदि बहुत से देव-देवियों द्वारा ऐरावत क्षेत्र में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभिषेक किया जाता है।

मन्दर पर्वत के काण्ड

१३७. मन्दरस्स णं भन्ते ! पव्वयस्स कइ कंडा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तओ कंडा पण्णत्ता, तं जहा—हिट्ठिल्ले कंडे १, मज्झिमिल्ले कंडे २, उवरिल्ले कंडे ३।

मन्दरस्स णं भन्ते ! पव्वयस्स हिट्ठिल्ले कंडे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पुढवी १, उवले २, वइरे ३, सक्करे ४।

मज्झिमिल्ले णं भन्ते ! कंडे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—अंके १, फलिहे २, जायरूवे ३, रयए ४।

उवरिल्ले कंडे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! एगागारे पण्णत्ते, सव्वजम्बूणयामए।

मन्दरस्स णं भन्ते ! पव्वयस्स हेट्ठिल्ले कंडे केवइअं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! एगं जोअणसहस्सं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

मज्झिमिल्ले कंडे पुच्छा, गोयमा ! तेवट्ठिं जोअणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

उवरिल्ले पुच्छा, गोयमा ! छत्तीसं जोअणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। एवामेव सपुव्वावरेणं मन्दरे पव्वए एगं जोअणसयसहस्सं सव्वग्गेणं पण्णत्ते।

[१३७] भगवन् ! मन्दर पर्वत के कितने काण्ड—विशिष्ट परिमाणानुगत विच्छेद—पर्वत-क्षेत्र के विभाग बतलाये हैं ?

गौतम ! उसके तीन विभाग बतलाये गये हैं—१. अधस्तन विभाग—नीचे का विभाग, २. मध्यम विभाग—बीच का विभाग तथा ३. उपरितन विभाग—ऊपर का विभाग।

भगवन् ! मन्दर पर्वत का अधस्तन विभाग कितने प्रकार का बतलाया गया है ?

गौतम ! वह चार प्रकार का बतलाया गया है—१. पृथ्वी—मृत्तिकारूप, २. उपल—पाषाणरूप, ३. वज्र—हीरकमय तथा ४. शर्करा—कंकरमय।

भगवन् ! उसका मध्यम विभाग कितने प्रकार का बतलाया गया है ?

गौतम ! वह चार प्रकार का बतलाया गया है—१. अंकरत्नमय, २. स्फटिकमय, ३. स्वर्णमय तथा ४. रजतमय।

भगवन् ! उसका उपरितन विभाग कितने प्रकार का बतलाया गया है ?

गौतम ! वह एकाकार—एक प्रकार का बतलाया गया है ? वह सर्वथा जम्बूनद-स्वर्णमय है।

भगवन् ! मन्दर पर्वत का अधस्तन विभाग कितना ऊँचा बतलाया गया है ?

गौतम ! वह १००० योजन ऊँचा बतलाया गया है।

भगवन् ! मन्दर पर्वत का मध्यम विभाग कितना ऊँचा बतलाया गया है ?

गौतम ! वह ६३००० योजन ऊँचा बतलाया गया है।

भगवन् ! मन्दर पर्वत का उपरितन विभाग कितना ऊँचा बतलाया गया है ?

गौतम ! वह ३६००० योजन ऊँचा बतलाया गया है। यों उसकी ऊँचाई का कुल परिमाण १०००+६३०००+३६०००=१००००० योजन है।

मन्दर के नामधेय

१३८. मन्दरस्स णं भन्ते ! पव्वयस्स कति णामधेज्जा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सोलस णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

मन्दर १, मेरु २, मणोरम ३, सुदंसण ४, सयंपभे अ ५, गिरिराया ६।
रयणोच्चय ७, सिलोच्चय ८, मज्झे लोगस्स ९, णाभी य १० ॥१॥
अच्छे अ ११, सूरिआवत्ते १२, सूरिआवरणे १३, ति आ।
उत्तमे अ १४, दिसादी अ १५, वडेंसेति अ १६, सोलसे ॥२॥

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ मन्दरे पव्वए २ ?

गोयमा ! मन्दरे पव्वए मन्दरे णामं देवे परिवसइ महिड्ढीए जाव[1] पलिओवमट्ठिइए, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ मन्दरे पव्वए २ अदुत्तरं तं चेवत्ति।

[१३८] भगवन् ! मन्दर पर्वत के कितने नाम बतलाये गये हैं ?

गौतम ! मन्दर पर्वत के १६ नाम बतलाये गये हैं—१. मन्दर, २. मेरु, ३. मनोरम, ४. सुदर्शन, ५. स्वयंप्रभ, ६. गिरिराज, ७. रत्नोच्चय, ८. शिलोच्चय, ९. लोकमध्य, १०. लोकनाभि, ११. अच्छ, १२. सूर्यावर्त, १३. सूर्यावरण, १४. उत्तम या उत्तर, १५. दिगादि तथा १६. अवतंस।

भगवन् ! वह मन्दर पर्वत क्यों कहलाता है ?

गौतम ! मन्दर पर्वत पर मन्दर नामक परम ऋद्धिशाली, पल्योपम के आयुष्य वाला देव निवास करता है, इसलिए वह मन्दर पर्वत कहलाता है। अथवा उसका यह नाम शाश्वत है।

नीलवान् वर्षधर पर्वत

१३९. कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे णीलवन्ते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! महाविदेहस्स वासस्स उत्तरेणं, रम्मगवासस्स दक्खिणेणं, पुरत्थिमिल्ललवण-समुद्दस्स पच्चत्थिमिल्लेणं, पच्चत्थिमिल्ललवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे २ णीलवन्ते

---

१. देखें सूत्र संख्या १४

णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते। पाईणपडीणायए, उदीणदाहिणवित्थिण्णे, णिसहवत्तव्वया णीलवन्तस्स भाणिअव्वा, णवरं जीवा दाहिणेणं, धणुं उत्तरेणं।

एत्थ णं केसरिद्दहो, दाहिणेणं सीआ महाणई पवूढा समाणी उत्तरकुरुं एज्जमाणी २ जमगपव्वए णीलवन्तउत्तरकुरुचन्देरावतमालवन्तद्दहे अ दुहा विभयमाणी २ चउरासीए सलिला-सहस्सेहिं आपूरेमाणी २ भद्दसालवणं एज्जमाणी २ मन्दरं पव्वयं दोहिं जोअणेहिं असंपत्ता पुरत्थाभिमुही आवत्ता समाणी अहे मालवन्तवक्खारपव्वयं दालयित्ता मन्दरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पुव्वविदेहवासं दुहा विभयमाणी २ एगमेगाओ चक्कवट्टिविजयाओ अट्ठावीसाए २ सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी २ पञ्चहिं सलिलासयसहस्सेहिं बत्तीसाए अ सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे विजयस्स दारस्स जगइं दालइत्ता पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ, अवसिट्ठं तं चेवत्ति।

एवं णारिकंतावि उत्तराभिमुही णेअव्वा, णवरमिमं णाणत्तं गन्धावइवट्टवेअद्धपव्वयं जोअणणं असंपत्ता पच्चत्थाभिमुही आवत्ता समाणी अवसिट्ठं तं चेव पवहे अ मुहे अ जहा हरिकन्तसलिला इति।

णीलवन्ते णं भन्ते! वासहरपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता?

गोयमा! नव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—सिद्धायथणकूडे०।

सिद्धे १, णीले २, पुव्वविदेहे ३, सीआ य ४, कित्ति ५, णारी अ ६।
अवरविदेहे ७, रम्मग-कूडे ८, उवदंसणे चेव ९॥१॥

सव्वे एए कूडा पञ्चसइआ रायहाणी उ उत्तरेणं।

से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ—णीलवन्ते वासहरपव्वए २?

गोयमा! णीले णीलोभासे णीलवन्ते अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव[1] परिवसइ सव्ववेरुलि-आमए णीलवन्ते जाव णिच्चेति।

[१३९] भगवन्! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत नीलवान् नामक वर्षधर पर्वत कहाँ बतलाया गया है?

गौतम! महाविदेह क्षेत्र के उत्तर में, रम्यक क्षेत्र के दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत नीलवान् नामक वर्षधर पर्वत बतलाया गया है। वह पूर्व-पश्चिम लम्बा और उत्तर-दक्षिण चौड़ा है। जैसा निषध पर्वत का वर्णन है, वैसा ही नीलवान् वर्षधर पर्वत का वर्णन है। इतना अन्तर है—दक्षिण में इसकी जीवा है, उत्तर में धनुपृष्ठभाग है।

उसमें केसरी नामक द्रह है। दक्षिण में उससे शीता महानदी निकलती है। वह उत्तर-कुरु में बहती है। आगे यमक पर्वत तथा नीलवान्, उत्तरकुरु, चन्द्र, ऐरावत एवं माल्यवान् द्रह को दो भागों में बाँटती हुई आगे बढ़ती है। उसमें ८४००० नदियां मिलती हैं। उनसे आपूर्ण होकर वह भद्रशाल वन में बहती है। जब मन्दर पर्वत दो योजन दूर रहता है, तब वह पूर्व की ओर

---

१. देखें सूत्र संख्या १४

मुड़ती है, नीचे माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत को विदीर्ण—विभाजित कर मन्दर पर्वत के पूर्व में पूर्व विदेह क्षेत्र को दो भागों में बाँटती हुई आगे जाती है। एक-एक चक्रवर्तिविजय में उसमें अट्ठाईस अट्ठाईस हजार नदियां मिलती हैं। यों कुल २८०००×१६+८४०००=५३२००० नदियों से आपूर्ण वह नीचे विजयद्वार की जगती को दीर्ण कर पूर्वी लवणसमुद्र में मिल जाती है। बाकी का वर्णन पूर्वानुरूप है।

नारीकान्ता नदी उत्तराभिमुख होती हुई बहती है। उसका वर्णन इसी के सदृश है। इतना अन्तर है—जब गन्धापाति वृत्तवैताढ्य पर्वत एक योजन दूर रह जाता है, तब वह वहाँ से पश्चिम की ओर मुड़ जाती है। बाकी का वर्णन पूर्वानुरूप है। उद्गम तथा संगम के समय उसके प्रवाह का विस्तार हरिकान्ता नदी के सदृश होता हैं।

भगवन् ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के कितने कूट बतलाये गये हैं ?

गौतम ! उसके नौ कूट बतलाये गये हैं—

१. सिद्धायतनकूट, २. नीलवत्कूट, ३. पूर्वविदेहकूट, ४. शीताकूट, ५. कीर्तिकूट, ६. नारीकान्ताकूट, ७. अपरविदेहकूट, ८. रम्यककूट तथा ९. उपदर्शनकूट।

ये सब कूट पांच सौ योजन ऊँचे हैं। इनके अधिष्ठातृ देवों की राजधानियां मेरु के उत्तर में है।

भगवन् ! नीलवान् वर्षधर पर्वत इस नाम से क्यों पुकारा जाता है ?

गौतम ! वहाँ नीलवर्णयुक्त, नील आभावाला परम ऋद्धिशाली नीलवान् नामक देव निवास करता है। नीलवान् वर्षधर पर्वत सर्वथा वैडूर्यरत्नमय—नीलममय है। इसलिए वह नीलवान् कहा जाता है। अथवा उसका यह नाम नित्य है—सदा से चला आता है।

रम्यक-वर्ष

१४०. कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे २ रम्मए णामं वासे पण्णत्ते ?

गोयमा ! णीलवन्तस्स उत्तरेणं, रुप्पिस्स दक्खिणेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एवं जह चेव हरिवासं तह चेव रम्मयं वासं भाणिअव्वं, णवरं दक्खिणेणं जीवा उत्तरेणं धणुं अवसेसं तं चेव।

कहि णं भन्ते ! रम्मए वासे गन्धावाईणामं वट्टवेअद्धपव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! णरकन्ताए पच्चत्थिमेणं, णारीकन्ताए पुरत्थिमेणं रम्मगवासस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं गन्धावाईणामं वट्टवेअद्धे पव्वए पण्णत्ते, जं चेव विअडावइस्स तं चेव गन्धावइस्सवि वत्तव्वं, अट्ठो बहवे उप्पलाइं जाव[1] गंधावईवण्णाइं गन्धावईप्पभाइं पउमे अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव[2] पलिओवमट्ठिईए परिवसइ, रायहाणी उत्तरेणन्ति।

---

१. देखें सूत्र संख्या १४

२. देखें सूत्र संख्या १४

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ रम्मए वासे २ ?

गोयमा ! रम्मगवासे णं रम्मे रम्मए रमणिज्जे, रम्मए अ इत्थ देवे जाव[1] परिवसइ, से तेणट्ठेणं० ।

[१४०] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तगत रम्यक नामक क्षेत्र कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के उत्तर में, रुक्मी पर्वत के दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में रम्यक नामक क्षेत्र बतलाया गया है। उसका वर्णन हरिवर्ष क्षेत्र जैसा है। इतना अन्तर है—उसकी जीवा दक्षिण में है, धनुपृष्ठभाग उत्तर में है। बाकी का वर्णन उसी (हरिवर्ष) के सदृश है।

भगवन् ! रम्यक क्षेत्र में गन्धापाती नामक वृत्तवैताढच पर्वत कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! नरकान्ता नदी के पश्चिम में, नारीकान्ता नदी के पूर्व में रम्यक क्षेत्र के बीचों बीच गन्धापाती नामक वृत्तवैताढच पर्वत बतलाया गया है। विकटापाती वृत्तवैताढच का जैसा वर्णन है, वैसा ही इसका है। गन्धापाती वृत्तवैताढच पर्वत पर उसी के सदृश वर्णयुक्त, आभायुक्त अनेक उत्पल, पद्म आदि हैं। वहाँ परम ऋद्धिशाली पल्योपम आयुष्य युक्त पद्म नामक देव निवास करता है। उसकी राजधानी उत्तर में है।

भगवन् ! वह (उपर्युक्त) क्षेत्र रम्यकवर्ष नाम से क्यों पुकारा जाता है ?

गौतम ! रम्यकवर्ष सुन्दर, रमणीय है एवं उसमें रम्यक नामक देव निवास करता है, अतः वह रम्यकवर्ष कहा जाता है।

रुक्मी वर्षधर पर्वत

१४१. कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे २ रुप्पी णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! रम्मगवासस्स उत्तरेणं, हेरण्णवयवासस्स दक्खिणेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे रुप्पी णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते। पाईणपडीणायए, उदीणदाहिणवित्थिण्णे, एवं जाव चेव महाहिमवन्तवत्तव्वया सा चेव रुप्पिस्सवि, णवर दाहिणेणं जीवा उत्तरेणं धणुं अवसेसं तं चेव।

महापुण्डरीए दहे, णरकन्ता णदी दक्खिणेणं णेअव्वा जहा रोहिआ पुरत्थिमेणं गच्छइ। रुप्पकूला उत्तरेणं णेअव्वा जहा हरिकन्ता पच्चत्थिमेणं गच्छइ, अवसेसं तं चेवत्ति।

रुप्पिमि णं भन्ते ! वासहरपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

सिद्धे १, रुप्पी २, रम्मग ३, णरकंन्ता ४, बुद्धि ५, रुप्पकूला य ६।
हेरण्णवय ७, मणिकंचण ८, अट्ठ य रुप्पिमि कूडाइं ॥१॥

सव्वेवि एए पंचसइआ रायहाणीओ उत्तरेणं।

१. देखें सूत्र संख्या १४

से केणट्ठेणं भन्ते एवं वुच्चइ रुप्पी वासहरपव्वए २ ?

गोयमा ! रुप्पीणामवासहरपव्वए रुप्पी रुप्पपट्टे, रुप्पोभासे सव्वरुप्पामए, रुप्पी अ इत्थ देवे पलिओवमट्ठिईए परिवसइ, से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइत्ति ।

[१४१] भगवन् ! जम्बूद्वीप में रुक्मी नामक वर्षधर पर्वत कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! रम्यक वर्ष के उत्तर में, हैरण्यवत वर्ष के दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत रुक्मी नामक वर्षधर पर्वत बतलाया गया है । वह पूर्व-पश्चिम लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ा है । वह महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के सदृश है । इतना अन्तर है—उसकी जीवा दक्षिण में है । उसका धनुपृष्ठभाग उत्तर में है । बाकी का सारा वर्णन महाहिमवान् जैसा है ।

वहाँ महापुण्डरीक नामक द्रह है । उसके दक्षिणी तोरण से नरकान्ता नामक नदी निकलती है । वह रोहिता नदी की ज्यों पूर्वी लवणसमुद्र में मिल जाती है । नरकान्ता नदी का और वर्णन रोहिता नदी के सदृश है ।

रूप्यकूला नामक नदी महापुण्डरीक द्रह के उत्तरी तोरण से निकलती है । वह हरिकान्ता नदी की ज्यों पश्चिमी लवणसमुद्र में मिल जाती है । बाकी का वर्णन तदनुरूप है ।

भगवन् ! रुक्मी वर्षधर पर्वत के कितने कूट बतलाये गये हैं ?

गौतम ! उसके आठ कूट बतलाये गये हैं—१. सिद्धायतनकूट, २. रुक्मीकूट, ३. रम्यककूट, ४. नरकान्ताकूट, ५. बुद्धिकूट, ६. रूप्यकूलाकूट, ७. हैरण्यवतकूट तथा ८. मणिकांचनकूट ।

ये सभी कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊँचे हैं । उत्तर में इनकी राजधानियां हैं ।

भगवन् ! वह रुक्मी वर्षधर पर्वत क्यों कहा जाता है ?

गौतम ! रुक्मी वर्षधर पर्वत रजत-निष्पन्न रजत की ज्यों आभामय एवं सर्वथा रजतमय है । वहाँ पल्योपमस्थितिक रुक्मी नामक देव निवास करता है, इसलिए वह रुक्मी वर्षधर पर्वत कहा जाता है ।

हैरण्यवत वर्ष

१४२. कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे २ हेरण्णवए णामं वासे पण्णत्ते ?

गोयमा ! रुप्पिस्स उत्तरेणं, सिहरिस्स दक्खिणेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे हिरण्णवए वासे पण्णत्ते, एवं जह चेव हेमवयं तह चेव हेरण्णवयंपि भाणिअव्वं, णवरं जीवा दाहिणेणं, उत्तरेणं धणु अवसिट्ठं तं चेवत्ति ।

कहि णं भन्ते ! हेरण्णवए वासे मालवन्तपरिआए णामं वट्टवेअद्धपव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! सुवण्णकूलाए पच्चत्थिमेणं, रुप्पकूलाए पुरत्थिमेणं एत्थ णं हेरण्णवयस्स वासस्स बहुमज्झदेसभाए मालवन्तपरिआए णामं वट्टवेअद्धे पण्णत्ते । जह चेव सद्दावई तह चेव मालवन्तपरिआएवि, अट्ठो उप्पलाइं पउमाइं मालवन्तप्पभाइं मालवन्तवण्णाइं मालवन्तवण्णाभाइं पभासे अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठिईए परिवसइ, से एएणट्ठेणं०, रायहाणी उत्तरेणंति ।

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ—हेरण्णवए वासे २ ?

गोयमा ! हेरण्णवए णं वासे रुप्पीसिहरीहिं वासहरपव्वएहिं दुहओ समवगूढे, णिच्चं हिरण्णं दलइ, णिच्चं हिरण्णं मुंचइ, णिच्चं हिरण्णं पगासइ, हेरण्णवए अ इत्थ देवे परिवसइ से एएणट्ठेणंति ।

[१४२] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत हैरण्यवत क्षेत्र कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! रुक्मी नामक वर्षधर पर्वत के उत्तर में, शिखरी नामक वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत हैरण्यवत क्षेत्र बतलाया गया है। जैसा हैमवत का वर्णन है, वैसा ही हैरण्यवत क्षेत्र का समझना चाहिए। इतना अन्तर है—उसकी जीवा दक्षिण में है, धनुपृष्ठभाग उत्तर में है। बाकी का सारा वर्णन हैमवत-सदृश है।

भगवन् ! हैरण्यवत क्षेत्र में माल्यवत्पर्याय नामक वृत्त वैताढच पर्वत कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! सुवर्णकूला महानदी के पश्चिम में, रूप्यकूला महानदी के पूर्व में हैरण्यवत क्षेत्र के बीचोंबीच माल्यवत्पर्याय नामक वृत वैताढय पर्वत बतलाया गया है। जैसा शब्दापाती वृत्त वैताढय पर्वत का वर्णन है, वैसा ही माल्यवत्पर्याय वृत वैताढच पर्वत का है। उस पर उस जैसे प्रभायुक्त, वर्णयुक्त, आभायुक्त उत्पल तथा पद्म आदि हैं। वहाँ परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयुष्ययुक्त प्रभास नामक देव निवास करता है। इन कारणों से वह माल्यवत्पर्याय वृत्त वैताढच कहा जाता है। राजधानी उत्तर में है।

भगवन् ! हैरण्यवत क्षेत्र इस नाम से किस कारण कहा जाता है ?

गौतम ! हैरण्यवत क्षेत्र रुक्मी तथा शिखरी नामक वर्षधर पर्वतों से दो ओर से घिरा हुआ है। वह नित्य हिरण्य—स्वर्ण देता है, नित्य स्वर्ण छोड़ता है, नित्य स्वर्ण प्रकाशित करता है, जो स्वर्णमय शिलापट्टक आदि के रूप में वहाँ यौगलिक मनुष्यों के शय्या, आसन आदि उपकरणों के रूप में उपयोग में आता है, वहाँ हैरण्यवत नामक देव निवास करता है, इसलिए वह हैरण्यवत क्षेत्र कहा जाता है।

शिखरी वर्षधर पर्वत

१४३. कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे सिहरी णामं वासहरपव्वए पण्णत्त ?

गोयमा ! हेरण्णवयस्स उत्तरेणं, एरावयस्स दाहिणेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एवं जह चेव चुल्लहिमवन्तो तह चेव सिहरीवि, णवरं जीवा दाहिणेणं, धणुं उत्तरेणं, अवसिट्ठं तं चेव ।

पुण्डरीए दहे, सुवण्णकूला महाणई दाहिणेणं णेअव्वा जहा रोहिअंसा पुरत्थिमेणं गच्छइ, एवं जह चेव गंगासिन्धूओ तह चेव रत्तारत्तवईओ णेअव्वाओ पुरत्थिमेणं रत्ता पच्चत्थिमेण रत्तवई, अवसिट्ठं तं चेव, [अवसेसं भाणिअव्वंति]।

सिहरिम्मि णं भन्ते ! वासहरपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?

गोयमा ! इक्कारस कूडा पण्णत्ता, तं जहा—सिद्धाययणकूडे १, सिहरिकूडे, २, हेरण्णवय-कूडे ३, सुवण्णकूलाकूडे ४, सुरादेवीकूडे ५, रत्ताकूडे ६, लच्छीकूडे ७, रत्तवईकूडे ८, इलादेवी-कूडे ९, एरवयकूडे १०, तिगिच्छिकूडे ११. । एवं सव्वेवि कूडा पंचसइआ, रायहाणीओ उत्तरेणं ।

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवमुच्चइ सिहरिवासहरपव्वए २ ?

गोयमा ! सिहरिमि वासहरपव्वए बहवे कूडा सिहरिसंठाणसंठिआ सव्वरयणामया सिहरी अ इत्थ देवे जाव[1] परिवसइ, से तेणट्ठे० ।

[१४३] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत शिखरी नामक वर्षधर पर्वत कहाँ बतलाया गया है ?

गौतम ! हैरण्यवत के उत्तर में, ऐरावत के दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में शिखरी नामक वर्षधर पर्वत बतलाया गया है। वह चुल्ल हिमवान् के सदृश है । इतना अन्तर है—उसकी जीवा दक्षिण में है । उसका धनुपृष्ठभाग उत्तर में है । बाकी का वर्णन पूर्ववर्णित चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत के अनुरूप है ।

उस पर पुण्डरीक नामक द्रह है। उसके दक्षिणी तोरण से सुवर्णकूला नामक महानदी निकलती है । वह रोहितांशा की ज्यों पूर्वी लवणसमुद्र में मिलती है । यहाँ रक्ता तथा रक्तवती का वर्णन भी वैसा ही समझना चाहिए जैसा गंगा तथा सिन्धु का है। रक्ता महानदी पूर्व में तथा रक्तवती पश्चिम में बहती है । [अवशिष्ट वर्णन गंगा-सिन्धु की ज्यों है ।]

भगवन् ! शिखरी वर्षधर पर्वत के कितने कूट बतलाये गये हैं ?

गौतम ! उसके ग्यारह कूट बतलाये गये हैं—१. सिद्धायतन कूट, २. शिखरी कूट, ३. हैरण्यवत कूट, ४. सुवर्णकूला कूट, ५. सुरादेवी कूट, ६. रक्ता कूट, ७. लक्ष्मी कूट, ८. रक्तावती कूट, ९. इलादेवी कूट, १०. ऐरावत कूट, ११. तिगिच्छ कूट ।

ये सभी कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊँचे हैं। इनके अधिष्ठातृ देवों की राजधानियां उत्तर में हैं।

भगवन् ! यह पर्वत शिखरी वर्षधर पर्वत क्यों कहा जाता है ?

गौतम ! शिखरी वर्षधर पर्वत पर बहुत से कूट उसी के-से आकार में अवस्थित हैं, सर्व-रत्नमय हैं। वहाँ शिखरी नामक देव निवास करता है, इस कारण वह शिखरी वर्षधर पर्वत कहा जाता है ।

ऐरावत वर्ष

१४४. कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे एरावए णामं वासे पण्णत्ते ?

गोयमा ! सिहरिस्स उत्तरेणं, उत्तरलवणसमुद्दस्स दक्खिणेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे एरावए णामं वासे पण्णत्ते।

१. देखें सूत्र संख्या १४

खाणुबहुले, कंटकबहुले एवं जच्चेव भरहस्स वत्तव्वया सच्चेव सव्वा निरवसेसा णेअव्वा। सओअवणा, सणिक्खिमणा, सपरिनिव्वाणा। णवरं एरावओ चक्कवट्टी, एरावओ देवो, से तेणट्ठेणं एरावए वासे २।

भगवन्! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत ऐरावत नामक क्षेत्र कहाँ बतलाया गया है?

गौतम! शिखरी वर्षधर पर्वत के उत्तर में, उत्तरी लवणसमुद्र के दक्षिण में, पूर्वी लवण समुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत ऐरावत नामक क्षेत्र बतलाया गया है। वह स्थाणु-बहुल है—शुष्क काठ की बहुलता से युक्त है. कंटकबहुल है, इत्यादि उसका सारा वर्णन भरतक्षेत्र की ज्यों है।

वह षट्खण्ड साधन, निष्क्रमण—प्रव्रज्या या दीक्षा तथा परिनिर्वाण—मोक्ष सहित है—ये वहाँ साध्य हैं। इतना अन्तर है—वहाँ ऐरावत नामक चक्रवर्ती होता है, ऐरावत नामक अधिष्ठातृ-देव है, इस कारण वह ऐरावत क्षेत्र कहा जाता है। □□

पञ्चम वक्षस्कार

अधोलोकवासिनी दिक्कुमारिकाओं द्वारा उत्सव

[१४५] जया णं एक्कमेक्के चक्कवट्टिविजए भगवन्तो तित्थयरा समुप्पज्जन्ति, तेणं कालेणं तेणं समएणं अहेलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ महत्तरिआओ सएहिं २ कूडेहिं, सएहिं २ भवणेहिं, सएहिं २ पासायवडेंसएहिं, पत्तेअं २ चउहिं सामाणिअ-साहस्सीहिं, चउहिं महत्तरिआहिं सपरिवाराहिं सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणिआहिवईहिं, सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं, अण्णेहि अ बहूहिं भवणवइ-वाणमन्तरेहिं देवेहिं देवीहि अ सद्धिं संपरिवुडाओ महया हयणट्टगीयवाइअ-(तंतीतलतालतुडियघणमुअंगपडुप्पवाइयरवेणं विउलाइं) भोगभोगाइं भुंजमाणीओ विहरंति, तं जहा—

भोगंकरा १ भोगवई २, सुभोगा ३ भोगमालिनी ४।
तोयधारा ५ विचित्ता य ६, पुप्फमाला ७ अणिदिआ ८ ॥१॥

तए णं तासिं अहेलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारीणं मयहरिआणं पत्तेअं पत्तेअं आसणाइं चलंति। तए णं ताओ अहेलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ महत्तरिआओ पत्तेअं २ आसणाइं चलिआइं पासन्ति २ त्ता ओहिं पउंजंति, पउंजित्ता भगवं तित्थयरं ओहिणा आभोएंति २ त्ता अण्णमण्णं सद्दाविंति २ त्ता एवं वयासी—उप्पण्णे खलु भो! जम्बुद्दीवे दीवे भयवं तित्थयरे तं जीयमेअं तीअपच्चुप्पण्णमणागयाणं अहेलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारीमहत्तरिआणं भगवओ तित्थगरस्स जम्मण-महिमं करेत्तए, तं गच्छामो णं अम्हेवि भगवओ जम्मण-महिमं करेमोत्ति कट्टु एवं वयंति २ त्ता पत्तेअं पत्तेअं आभिओगिए देवे सद्दावेंति २ त्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! अणेग-खम्भ-सय-सण्णिविट्ठे लीलट्ठिअ० एवं विमाण-वण्णओ भाणिअव्वो- जाव जोअण-वित्थिण्णे दिव्वे जाणविमाणे विउव्वित्ता एअमाणत्तियं पच्चपिणहत्ति।'

तए णं ते आभिओगा देवा अणेगखम्भसय जाव[1] पच्चप्पिणंति, तए णं ताओ अहेलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी-महत्तरिआओ हट्ठतुट्ठ० पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणिअसाहस्सीहिं चउहिं महत्तरिआहिं (सपरिवाराहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणिआहिवईहिं सोलसएहिं आयरक्ख-देव-साहस्सीहिं) अण्णेहिं बहूहिं देवेहिं देवीहि अ सद्धिं संपरिवुडाओ ते दिव्वे जाणविमाणे दुरूहंति, दुरूहित्ता सव्विड्ढीए सव्वजुईए घणमुइंग-पणवपवाइअरवेणं ताए उक्किट्ठाए जाव[2] देवगईए जेणेव भगवओ तित्थगरस्स जम्मणणगरे जेणेव तित्थयरस्स जम्मणभवणे तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता भगवओ

---

१. देखें सूत्र संख्या ६८

२. देखें सूत्र संख्या ३४

तित्थयरस्स जम्मणभवणं तेहिं दिव्वेहिं जाणविमाणेहिं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेंति, करित्ता उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए ईसिं चउरंगुलमसंपत्ते धरणिअले ते दिव्वे जाणविमाणे ठविंति, ठवित्ता पत्तेअं २ चउहिं सामाणिअसहस्सीहिं (चउहिं महत्तरिआहिं सपरिवाराहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणिआहिवईहिं सोलसएहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहि अ बहूहिं भगणवइवाणमन्तरेहिं देवेहिं देवीहि अ) सद्धिं संपरिवुडाओ दिव्वेहिंतो जाणविमाणेहिंतो पच्चोरुहंति २ त्ता सव्विड्ढीए जाव[1] णाइएणं जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेंति २ त्ता पत्तेअं २ करयलपरिग्गहिअं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—णमोत्थु ते रयणकुच्छिधारिए ! जगप्पईवदाईए ! सव्वजगमंगलस्स, चक्खुणो अ मुत्तस्स, सव्वजगजीववच्छलस्स, हिअकारगमग्गदेसियवागिद्धिविभुप्पभुस्स, जिणस्स, णाणिस्स, नायगस्स, बुहस्स, बोहगस्स, सव्वलोगनाहस्स, निम्ममस्स, पवरकुलसमुब्भवस्स जाईए खत्तिअस्स जमसि लोगुत्तमस्स जणणी धण्णासि तं पुण्णासि कयत्थासि अम्हे णं देवाणुप्पिए ! अहेलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करिस्सामो, तण्णं तुब्भेहिं ण भाइव्वं; इति कट्टु उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमन्ति २ त्ता वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणंति २ त्ता संखिज्जाइं जोयणाइं दंडं निस्सरंति, तं जहा-रययाणं (वइराणं, वेरुलिआणं, लोहिअक्खाणं, मसारगल्लाणं, हंसगब्भाणं, पुलयाणं, सोगंधियाणं, जोईरसाणं, अंजणाणं, पुलयाणं रयणाणं जायरूवाणं, अंकाणं, फलिहाणं, रिट्ठाणं अहावायरे पुग्गले परिसाडेइ, अहासुहुमे पुग्गले परिआएइ, दुच्चंपि वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणइ २ त्ता) संवट्टगवाए विउव्वंति २ त्ता ते णं सिवेणं, मउएणं, मारुएणं अणुद्धुएणं, भूमितलविमलकरणेणं, मणहरेणं सव्वोउअसुरहिकुसुमगन्धाणुवासिएणं, पिण्डिमणिहारिमेणं गन्धुद्धुएणं तिरिअं पवाइएणं भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणस्स सव्वओ समन्ता जोअणपरिमण्डलं से जहाणामए कम्मगरदारए सिआ (तरुणे, बलवं, जुगवं, जुवाणे, अप्पायंके, थिरग्गहत्थे, दढपाणिपाए, पिट्ठंतरो-रुपरिणए, घणनिचिअवट्टवलिअखंधे, चम्मेट्ठगदुहणमुट्ठिअसमाहयनिचिअगत्ते, उरस्सबलसमण्णागए, तलजमलजुअलपरिघबाहू, लंघणपवणजइणपमद्दणसमत्थे, छेए, दक्खे, पट्ठे कुसले, मेहावी, निउणसिप्पोवगए एगं महंतं सिलागहत्थगं वा दंडसंपुच्छणिं वा वेणुसिलागिगं वा गहाय रायंगणं व रायंतेउरं वा देवकुलं वा सभं वा पवं वा आरामं वा उज्जाणं वा अतुरिअमचवलमसंभंतं निरन्तरं सनिउणं सव्वओ समन्ता संपमज्जति)

तहेव जं तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा कयवरं वा असुइमचोक्खं पूइअं दुब्भिगन्धं तं सव्वं आहुणिअ २ एगन्ते एडेंति २ जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थरमायाए अ अदूरसामन्ते आगायमाणीओ, परिगायमाणीओ चिट्ठंति ।

[१४५] जब एक एक—किसी भी चक्रवर्ति-विजय में तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं, उस काल—तृतीय चतुर्थ आरक में उस समय—अर्ध रात्रि की वेला में भोगंकरा, भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी,

---

१. देखें सूत्र संख्या ५-२

तोयधारा, विचित्रा, पुष्पमाला तथा अनिन्दिता नामक, अधोलोकवास्तव्या—अधोलोक में निवास करनेवाली, महत्तरिका—गौरवशालिनी आठ दिक्कुमारिकाएँ, जो अपने कूटों पर, अपने भवनों में, अपने उत्तम प्रासादों में अपने चार हजार सामानिक देवों, सपरिवार चार महत्तरिकाओं, सात सेनाओं, सात सेनापति देवों, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा अन्य अनेक भवनपति एवं वानव्यन्तर देव-देवियों से संपरिवृत, नृत्य, गीत, पटुता—कलात्मकतापूर्वक बजाये जाते वीणा, झींझ, ढोल एवं मृदंग की बादल जैसी गंभीर तथा मधुर ध्वनि के बीच विपुल सुखोपभोग में अभिरत होती हैं, तब उनके आसन चलित होते हैं—प्रकम्पित होते हैं। जब वे अधोलोकवासिनी आठ दिक्कुमारिकाएँ अपने आसनों को चलित होते देखती हैं, वे अपने अवधिज्ञान का प्रयोग करती हैं। अवधिज्ञान का प्रयोग कर उसके द्वारा भगवान् तीर्थंकर को देखती हैं। देखकर वे परस्पर एक-दूसरे को सम्बोधित कर कहती हैं—

जम्बूद्वीप में भगवान् तीर्थंकर उत्पन्न हुए हैं। अतीत—पहले हुई, प्रत्युत्पन्न—वर्तमान समय में होने वाली-विद्यमान तथा अनागत—भविष्य में होनेवाली, अधोलोकवास्तव्या हम आठ महत्तरिका दिशाकुमारियों का यह परंपरागत आचार है कि हम भगवान् तीर्थंकर का जन्म-महोत्सव मनाएं, अतः हम चलें, भगवान् का जन्मोत्सव आयोजित करें।

यों कहकर उनमें से प्रत्येक अपने आभियोगिक देवों को बुलाती हैं, उनसे कहती हैं—देवानुप्रियो! सैकड़ों खंभों पर अवस्थित सुन्दर यान-विमान की विकुर्वणा करो—वैक्रियलब्धि द्वारा सुन्दर विमान-रचना करो। दिव्य विमान की विकुर्वणा कर हमें सूचित करो। विमान-वर्णन पूर्वानुरूप है।

वे आभियोगिक देव सैकड़ों खंभों पर अवस्थित यान-विमानों की रचना करते हैं और उन्हें सूचित करते हैं कि उनके आदेशानुरूप कार्य संपन्न हो गया है। यह जानकर वे अधोलोकवास्तव्या गौरवशीला दिक्कुमारियाँ हर्षित एवं परितुष्ट होती हैं। उनमें से प्रत्येक अपने-अपने चार हजार सामानिक देवों, सपरिवार चार महत्तरिकाओं, सात सेनाओं, सात सेनापति देवों, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा अन्य अनेक देव-देवियों के साथ दिव्य यान-विमानों पर आरूढ होती हैं। आरूढ होकर सब प्रकार की ऋद्धि एवं द्युति से समायुक्त, बादल की ज्यों घहराते-गूंजते मृदंग, ढोल आदि वाद्यों की ध्वनि के साथ उत्कृष्ट दिव्य गति द्वारा जहाँ तीर्थंकर का जन्मभवन होता है, वहाँ आती हैं। वहाँ आ कर विमानों द्वारा—दिव्य विमानों में अवस्थित वे भगवान् तीर्थंकर के जन्मभवन की तीन बार प्रदक्षिणा करती हैं। वैसा कर उत्तर-पूर्व दिशा में—ईशान कोण में अपने विमानों को, जब वे भूतल से चार अंगुल ऊँचे रह जाते हैं, ठहराती हैं। ठहराकर अपने चार हजार सामानिक देवों (सपरिवार चार महत्तरिकाओं, सात सेनाओं, सात सेनापति देवों, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा बहुत से भवनपति एवं वानव्यन्तर देव-देवियों से संपरिवृत वे दिव्य विमानों से नीचे उतरती हैं।

नीचे उतरकर सब प्रकार की समृद्धि लिये, जहाँ तीर्थंकर तथा उनकी माता होती है, वहाँ आती हैं। वहाँ आकर भगवान् तीर्थंकर की तथा उनकी माता की तीन प्रदक्षिणाएँ करती हैं, वैसा कर हाथ जोड़े, अंजलि बाँधे, उन्हें मस्तक पर घुमा कर तीर्थंकर की माता से कहती हैं—

'रत्नकुक्षिधारिके—अपनी कोख में तीर्थंकर रूप रत्न को धारण करने वाली! जगत्प्रदीपदायिके—जगद्वर्ति-जनों के सर्व-भाव-प्रकाशक तीर्थंकर रूप दीपक प्रदान करने वाली! हम आपको नमस्कार

करती हैं। समस्त जगत् के लिए मंगलमय, नेत्रस्वरूप—सकल जगद्-भाव-दर्शक, मूर्त—चक्षुर्ग्राह्य, समस्त जगत् के प्राणियों के लिए वात्सल्यमय, हितप्रद सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप मार्ग उपदिष्ट करने वाली, विभु—सर्वव्यापक—समस्त श्रोतृवृन्द के हृदयों में तत्तद्भाषानुपरिणत हो अपने तात्पर्य का समावेश करने में समर्थ वाणी की ऋद्धि—वाग्वैभव से युक्त, जिन—राग-द्वेष-विजेता, ज्ञानी—सातिशय ज्ञान युक्त, नायक—धर्मवर चक्रवर्ती—उत्तम धर्म-चक्र का प्रवर्तन करनेवाले, बुद्ध—ज्ञात-तत्त्व, बोधक—दूसरों को तत्त्व-बोध देनेवाले, समस्त लोक के नाथ—समस्त प्राणिवर्ग में ज्ञान-बीज का आधान एवं संरक्षण कर उनके योग-क्षेमकारी, निर्मम—ममता-रहित, उत्तम कुल, क्षत्रिय-जाति में उद्भूत, लोकोत्तम—लोक में सर्वश्रेष्ठ तीर्थंकर भगवान् की आप जननी हैं। आप धन्य, पुण्य एवं कृतार्थ—कृतकृत्य हैं। देवानुप्रिये! अधोलोकनिवासिनी हम आठ प्रमुख दिशाकुमारिकाएँ भगवान् तीर्थंकर का जन्ममहोत्सव मनायेंगी अतः आप भयभीत मत होना।

यों कहकर वे उत्तर-पूर्व दिशाभाग में—ईशान-कोण में जाती हैं। वहाँ जाकर वैक्रिय समुद्घात द्वारा अपने आत्म-प्रदेशों को शरीर से बाहर निकालती हैं। आत्म-प्रदेशों को बाहर निकालकर उन्हें संख्यात योजन तक दण्डाकार परिणत करती हैं। (वज्र—हीरे, वैडूर्य—नीलम, लोहिताक्ष, मसारगल्ल, हंसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, ज्योतिरस, अंजन—एतत्संज्ञक रत्नों के, जातरूप—स्वर्ण के अंक, स्फटिक तथा रिट्ठ रत्नों के पहले बादर—स्थूल पुद्गल छोड़ती हैं, सूक्ष्म पुद्गल ग्रहण करती हैं।) फिर दूसरी वार वैक्रिय समुद्घात करती हैं, संवर्तक वायु की विकुर्वणा करती हैं। संवर्तक वायु की विकुर्वणा कर उस शिव—कल्याणकर, मृदुल—भूमि पर धीरे-धीरे बहते, अनुद्धूत—अनूर्ध्वगामी, भूमितल को निर्मल, स्वच्छ करने वाले, मनोहर—मन को रंजित करने वाले, सब ऋतुओं में विकासमान पुष्पों की सुगन्ध से सुवासित, सुगन्ध को पुञ्जीभूत रूप में दूर तक संप्रसृत करने वाले, तिर्यक्—तिरछे बहते हुए वायु द्वारा भगवान् तीर्थंकर के योजन परिमित परिमण्डल को—भूभाग को—घेरे को चारों ओर से सम्मार्जित करती हैं। जैसे एक तरुण, बलिष्ठ—शक्तिशाली, युगवान्—उत्तम युग में सुषम-दुःषमादि काल में उत्पन्न, युवा—यौवनयुक्त, अल्पातंक—निरातंक—नीरोग, स्थिराग्रहस्त—गृहीत कार्य करने में जिसका अग्रहस्त—हाथ का आगे का भाग काँपता नहीं, सुस्थिर रहता हो, दृढपाणिपाद—सुदृढ़ हाथ-पैरयुक्त, पृष्ठान्तोरुपरिणत—जिसकी पीठ, पार्श्व तथा जंघाएँ आदि अंग परिणत हों—परिनिष्ठित हों, जो अहीनांग हो, जिसके कंधे गठीले, वृत्त—गोल एवं वलित—मुड़े हुए, हृदय की ओर झुके हुए मांसल एवं सुपुष्ट हों, चमड़े के बन्धनों से युक्त मुद्गर आदि उपकरण-विशेष या मुष्टिका द्वारा बार-बार कूट कर जमाई हुई गाँठ की ज्यों जिनके अंग पक्के हों, मजबूत हों, जो छाती के बल से—आन्तरिक बल से युक्त हो, जिसकी दोनों भुजाएँ दो एक-जैसे ताड़ वृक्षों की ज्यों हों, अथवा अर्गला की ज्यों हों, जो गर्त आदि लांघने में, कूदने में, तेज चलने में, प्रमर्दन में—कठिन या कड़ी वस्तु को चूर-चूर कर डालने में सक्षम हो, जो छेक—कार्य करने में निष्णात, दक्ष—निपुण—अविलम्ब कार्य करने वाला हो, प्रष्ठ—वाग्मी, कुशल—क्रिया का सम्यक् परिज्ञाता, मेधावी—बुद्धिशील—एक बार सुन लेने या देख लेने पर कार्य-विधि स्वायत्त करने में समर्थ हो, निपुण-शिल्पोपगत—शिल्प क्रिया में निपुणता लिये हो—ऐसा कर्मकर लड़का खजूर के पत्तों से बनी बड़ी झाड़ू को, दण्डयुक्त—हत्थे युक्त झाड़ू को या बांस की सीकों से बनी झाड़ू को लेकर राजमहल के आंगन, राजान्तःपुर—रनवास, देव-मन्दिर, सभा, प्रपा—प्याऊ—जलस्थान, आराम—दम्पतियों के रमणोपयोगी नगर के समीपवर्ती बगीचे को, उद्यान—खेलकूद या लोगों के मनोरंजन के निमित्त निर्मित

भाग को जल्दी न करते हुए, चपलता न करते हुए, उतावल न करते हुए लगन के साथ, चतुरतापूर्वक सब ओर से झाड़-बुहार कर साफ कर देता है, उसी प्रकार वे दिक्कुमारियाँ संवर्तक वायु द्वारा तिनके, पत्ते, लकड़ियां, कचरा, अशुचि—अपवित्र—गन्दे, अचोक्ष—मलिन, पूतिक—सड़े हुए, दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को उठाकर. परिमण्डल से बाहर एकान्त में—अन्यत्र डाल देती हैं—परिमण्डल को संप्रमार्जित कर स्वच्छ बना देती हैं। फिर वे दिक्कुमारिकाएँ भगवान् तीर्थकर तथा उनकी माता के पास आती हैं। उनसे न अधिक समीप तथा न अधिक दूर अवस्थित हो आगान—मन्द स्वर से गान करती हैं, फिर क्रमशः परिगान—उच्च स्वर से गान करती हैं।

ऊर्ध्वलोकवासिनी दिक्कुमारिकाओं द्वारा उत्सव

[१४६] तेणं कालेणं तेणं समएणं उद्धलोग-वत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी-महत्तरिआओ सएहिं २ कूडेहिं, सएहिं २ भवणेहिं, सएहिं २ पासाय-वडेंसएहिं पत्तेअं २ चउहिं सामाणिअ-साहस्सीहिं एवं तं चेव पुव्व-वण्णिअं (चउहिं महत्तरिआहिं सपरिवाराहिं, सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणिआहिवईहिं, सोलसएहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं, अण्णेहि अ बहूहिं भवणवइवाणमन्तरेहिं देवेहिं, देवीहि अ सद्धिं संपरिवुडाओ महया हयणट्टगीयवाइअ जाव भोगभोगाइं भुंजमाणीओ) विहरंति, तं जहा—

मेहंकरा १ मेहवई २, सुमेहा ३ मेहमालिनी ४।
सुवच्छा ५ वच्छमित्ता य ६, वारिसेणा ७ बलाहगा ॥१॥

तए णं तासिं उद्धलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारीमहत्तरिआणं पत्तेअं २ आसणाइं चलन्ति, एवं तं चेव पुव्ववण्णिअं भाणिअव्वं जाव अम्हे णं देवाणुप्पिए ! उद्धलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ जेणं भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करिस्सामो, तेणं तुब्भेहिं ण भाइअव्वं ति कट्टु उत्तर-पुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमन्ति २ त्ता (वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणंति २ त्ता जाव दोच्चंपि वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणंति २ त्ता) अब्भवद्दलए विउव्वन्ति २ त्ता (से जहाणामए कम्मदारए जाव सिप्पोवगए एगं महंतं दगवारगं वा दगकुंभयं वा दगथालगं वा दगकलसं वा दगभिंगारं वा गहाय रायंगणं वा अतुरियं जाव समन्ता आवरिसिज्जा, एवमेव ताओवि उद्धलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ अब्भवद्दलए विउव्वित्ता खिप्पामेव पतणतणायंति २ त्ता खिप्पामेव विज्जुआयंति २ त्ता भगवओ तित्थगरस्स जम्मण-भवणस्स सव्वओ समन्ता जोअणपरिमंडलं णिच्चोअगं, नाइमट्टिअं, पविरलफुसिअं, रयरेणविणासणं, दिव्वं सुरभिगन्धोदयवासं वासंति २ त्ता) तं निहयरयं, णट्ठरयं, भट्ठरयं, पसंतरयं, उवसंतरयं करेंति २ खिप्पामेव पच्चुवसमन्ति, एवं पुप्फवद्दलंसि पुप्फवासं वासंति, वासित्ता (से जहाणामए मालागारदारए सिआ जाव सिप्पोवगए एगं महं पुप्फछज्जिअं वा पुप्फपडलगं वा पुप्फचंगेरीअं वा गहाय रायंगणं वा जाव समन्ता कयग्गहगहिअकरयल-पब्भट्ठ-विप्पमुक्केणं दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं पुप्फपुंजोवयारकलिअं करेति, एवमेव ताओ वि उद्धलोगवत्थव्वाओ जाव पुप्फवद्दलए विउव्वित्ता खिप्पामेव पतणतणायन्ति जाव जोअणपरिमण्डलं जलय-थलयभासुरप्पभूयस्स बिंटट्ठाइस्स दसद्धवण्णस्स कुसुमस्स जाणुस्सेहपमाणमित्तं

वासं वासंति) कालागुरु पवर-(कुंदरुक्कतुरुक्कडज्झंत धूवमघमघन्तगंधुद्धुआभिरामं सुगंधवरगन्धिअं गंधवट्टिभूअं दिव्वं) सुरवराभिगमणजोग्गं करेंति २ त्ता जेणेव भयवं तित्थयरे तित्थयरमाया य, तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता (भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए य अदूरसामंते) आगायमाणीओ, परिगायमाणीओ चिट्ठंति।

[१४६] उस काल, उस समय मेघंकरा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, सुवत्सा, वत्समित्रा, वारिषेणा तथा बलाहका नामक, ऊर्ध्वलोकवास्तव्या—ऊर्ध्वलोक में निवास करनेवाली, महिमामयी आठ दिक्कुमारिकाओं के, जो अपने कूटों पर, अपने भवनों में, अपने उत्तम प्रासादों में अपने चार हजार सामानिक देवों, सपरिवार चार महत्तरिकाओं, सात सेनाओं, सात सेनापति देवों, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों, अन्य अनेक भवनपति एवं वानव्यन्तर देव-देवियों से संपरिवृत, नृत्य, गीत एवं तुमुल वाद्य-ध्वनि के बीच विपुल सुखोपभोग में अभिरत होती हैं, आसन चलित होते हैं। एतत्सम्बद्ध शेष वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए।

वे दिक्कुमारिकाएँ भगवान् तीर्थंकर की माता से कहती हैं—देवानुप्रिये! हम ऊर्ध्वलोकवासिनी विशिष्ट दिक्कुमारिकाएँ भगवान् तीर्थंकर का जन्म-महोत्सव मनायेंगी। अतः आप भयभीत मत होना। यों कहकर वे उत्तर-पूर्व दिशा-भाग में—ईशान कोण में चली जाती हैं। (वहाँ जाकर वैक्रिय समुद्घात द्वारा अपने आत्मप्रदेशों को शरीर से बाहर निकालती हैं, पुनः वैसा करती हैं, वैसा कर) वे आकाश में बादलों की विकुर्वणा करती हैं, (जैसे कोई क्रिया-कुशल कर्मकर उदक-वारक—मृत्तिकामय जल-भाजन विशेष, उदक-कुंभ—जलघट—पानी का घड़ा, उदक-स्थालक—कांसी आदि से बना जल-पात्र, जल का कलश या झारी लेकर राजप्रासाद के प्रांगण आदि को धीरे-धीरे सिक्त कर देता है—वहाँ पानी का छिड़काव कर देता है, उसी प्रकार, उन ऊर्ध्वलोकवास्तव्या, महिमामयी आठ दिक्कुमारिकाओं ने आकाश में जो बादल विकुर्वित किये, वे (बादल) शीघ्र ही जोर-जोर से गरजते हैं, उनमें बिजलियां चमकती हैं तथा वे भगवान् महावीर के जन्म-भवन के चारों ओर योजन-परिमित परिमंडल पर न अधिक पानी गिराते हुए, न बहुत कम पानी गिराकर मिट्टी को असिक्त, शुष्क रखते हुए मन्द गति से, धूल, मिट्टी जम जाए, इतने से धीमे वेग से उत्तम स्पर्शयुक्त, दिव्यसुगन्धयुक्त झिरमिर-झिरमिर जल बरसाते हैं। उससे रज-धूल-निहत हो जाती है—फिर उठती नहीं, जम जाती है, नष्ट हो जाती है—सर्वथा अदृश्य हो जाती है, भ्रष्ट हो जाती हैं—वर्षा के साथ चलती हवा से उड़कर दूर चली जाती है, प्रशान्त हो जाती है—सर्वथा असत्—अविद्यमान की ज्यों हो जाती है, उपशान्त हो जाती है। ऐसा कर वे बादल शीघ्र ही प्रत्युपशान्त—उपरत हो जाते हैं।

फिर वे ऊर्ध्वलोकवास्तव्या आठ दिक्कुमारिकाएँ पुष्पों के बादलों की विकुर्वणा करती हैं। (जैसे कोई क्रिया-निष्णात माली का लड़का एक बड़ी पुष्प-छाद्यिका—फूलों की बड़ी टोकरी, पुष्प-पटलक—फूल रखने का पात्र-विशेष या पुष्प-चंगेरी—फूलों की डलिया लेकर राजमहल के आंगन आदि में कचग्रह—रति-कलह में प्रेमी द्वारा मृदुतापूर्वक पकड़े जाते प्रेयसी के केशों की ज्यों पंचरंगे फूलों को पकड़-पकड़ कर—ले-लेकर सहज रूप में उन्हें छोड़ता जाता है, बिखेरता जाता है, पुष्पोपचार से, फूलों की सज्जा से उसे कलित—सुन्दर बना देता है,) ऊर्ध्वलोकवास्तव्या आठ

दिक्कुमारिकाओं द्वारा विकुर्वित फूलों के बादल जोर-जोर से गरजते हैं, उसी प्रकार, जल में उत्पन्न होने वाले कमल आदि, भूमि पर उत्पन्न होने वाले वेला, गुलाब आदि देदीप्यमान, पंचरंगे, वृत्तसहित फूलों की इतनी विपुल वृष्टि करते हैं कि उनका घुटने-घुटने तक ऊँचा ढेर हो जाता है।

फिर वे काले अगर, उत्तम कुन्दरुक, लोवान तथा धूप की गमगमाती महक से वहाँ के वातावरण को बड़ा मनोज्ञ, उत्कृष्ट-सुरभिमय बना देती हैं। सुगंधित धुएँ की प्रचुरता से वहाँ गोल-गोल धूममय छल्ले से बनने लगते हैं। यों वे दिक्कुमारिकाएँ उस भूभाग को सुरवर—देवोत्तम देवराज इन्द्र के अभिगमन योग्य बना देती हैं। ऐसा कर वे भगवान् तीर्थंकर एवं उनकी माँ के पास आती हैं। वहाँ आकर (भगवान् तीर्थंकर तथा उनकी मां से न अधिक दूर, न अधिक समीप) आगान, परिगान करती हैं।

रुचकवासिनी दिक्कुमारिकाओं द्वारा उत्सव

१४७. तेणं कालेणं तेणं समएणं पुरत्थिमरुअगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ सएहिं २ कूडेहिं तहेव जाव[1] विहरंति, तं जहा—

णंदुत्तरा य १, णन्दा २, आणन्दा ३, णंदिवद्धणा ४।
विजया य ५, वेजयन्ती ६, जयन्ती ७, अपराजिआ ८ ॥१॥

सेसं तं चेव (सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—णमोत्थु ते रयणकुच्छिधारिए! जगप्पईवदाईए! सव्वजगमंगलस्स, चक्खुणो अ मुत्तस्स, सव्वजगजीववच्छलस्स, हिअकारगमग्ग-देसियवागिद्धिविभुप्पभुस्स, जिणस्स, णाणिस्स, नायगस्स, बुहस्स, बोहगस्स, सव्वलोगनाहस्स, निम्ममस्स, पवरकुलसमुब्भवस्स जाईए खत्तिअस्स जंसि लोगुत्तमस्स जणणी! धण्णासि तं पुण्णासि कयत्थासि अम्हे णं देवाणुप्पिए! पुरत्थिमरुअगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करिस्सामो) तुब्भाहिं ण भाइअव्वंति कट्टु भगवओ तित्थगरस्स तित्थयरमायाए अ पुरत्थिमेणं आयंसहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठन्ति।

तेणं कालेणं तेणं समएणं दाहिणरुअगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ तहेव जाव[2] विहरंति, तं जहा—

समाहारा १, सुप्पइण्णा २, सुप्पबुद्धा ३, जसोहरा ४।
लच्छिमई ५, सेसवई ६, चित्तगुत्ता ७, वसुंधरा ८ ॥१॥

तहेव जाव[3] तुब्भाहिं न भाइअव्वंति कट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए अ दाहिणेणं भिंगारहत्थगयाओ आगायमाणीओ, परिगायमाणीओ चिट्ठन्ति।

---

१. देखें सूत्र संख्या १४६
२. देखें सूत्र संख्या १४६
३. देखें सूत्र यही

तेणं कालेणं तेणं समएणं पच्चत्थिमरुअगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ सएहिं जाव[1] विहरंति, तं जहा—

इलादेवी १, सुरादेवी २, पुहवी ३, पउमावई ४।
एगणासा ५, णवमिआ ६, भद्दा ७, सीआ य अट्ठमा ८ ॥१॥

तहेव जाव[2] तुब्भाहिं ण भाइअव्वंत्ति कट्टु जाव[3] भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए अ पच्चत्थिमेणं तालिअंटहत्थगयाओ आगायमाणीओ, परिगायमाणीओ चिट्ठन्ति।

तेणं कालेणं तेणं समएणं उत्तरिल्लरुअगवत्थव्वाओ जाव[4] विहरंति, तं जहा—

अलंबुसा १, मिस्सकेसी २, पुण्डरीआ य ३, वारुणी ४।
हासा ५, सव्वप्पभा ६, चेव, सिरि ७, हिरि ८, चेव उत्तरओ ॥१॥

तहेव जाव[5] वन्दित्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए अ उत्तरेणं चामरहत्थगयाओ आगायमाणीओ, परिगायमाणीओ चिट्ठन्ति।

तेणं कालेणं तेणं समएणं विदिसरुअगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीमहत्तरिआओ जाव[6] विहरंति, तं जहा—चित्ता य १, चित्तकणगा २, सतेरा य ३, सोदामिणी ४। तहेव जाव[7] ण भाइअव्वंति कट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए अ चउसु विदिसासु दीविआहत्थगयाओ आगायमाणीओ, परिगायमाणीओ चिट्ठन्ति त्ति।

तेणं कालेणं तेणं समएणं मज्झिमरुअगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीमहत्तरिआओ सएहिं २ कूडेहिं तहेव जाव[8] विहरंति, तं जहा—१. रूआ, २. रुआसिआ, ३. सुरूआ, ४. रुअगावई। तहेव जाव[9] तुब्भाहिं ण भाइयव्वंति कट्टु भगवओ तित्थयरस्स चउरंगुलवज्जं णाभिणालं कप्पन्ति, कप्पेत्ता विअरगं खणन्ति, खणित्ता विअरगे णाभिं णिहणंति, णिहणित्ता रयणाण य वइराण य पूरेंति २ त्ता हरिआलिआए पेढं बन्धंति २ त्ता तिदिसिं तओ कयलीहरए विउव्वंति। तए णं तेसिं कयलीहरगाणं बहुमज्झदेसभाए तओ चाउस्सालाए विउव्वन्ति, तए णं तेसिं चाउसालगाणं बहुमज्झदेसभाए तओ सीहासणे विउव्वन्ति, तेसि णं सीहासणाणं अयमेवारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, सव्वो वण्णगो भाणिअव्वो।

---

१. देखें सूत्र संख्या १४६
२. देखें सूत्र यही
३. देखें सूत्र संख्या १४६
४. देखें सूत्र संख्या १४६
५. देखें सूत्र यही
६. देखें सूत्र संख्या १४६
७. देखें सूत्र यही
८. देखें सूत्र संख्या १४६
९. देखें सूत्र यही

तए तं ताओ रुअगमज्झवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीओ महत्तराओ जेणेव भयवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता भगवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं गिण्हन्ति तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हन्ति २ त्ता जेणेव दाहिणिल्ले कयलीहरए जेणेव चाउसालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयावेंति २ त्ता सयपागसहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भंगेंति २ त्ता सुरभिणा गन्धवट्टएणं उव्वट्टेंति २ त्ता भगवं तित्थयरं करयलपुडेण तित्थयरमायरं च बाहासु गिण्हन्ति २ त्ता जेणेव पुरत्थिमिल्ले कयलीहरए, जेणेव चउसालए जेणेव सीहासणे, तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीआवेंति २ त्ता तिहिं उदएहिं मज्जावेंति, तं जहा—गन्धोदएणं १, पुप्फोदएणं २ सुद्धोदएणं मज्जावित्ता सव्वालंकारविभूसिअं करेंति २ त्ता भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हन्ति २ त्ता जेणेव उत्तरिल्ले कयलीहरए जेणेव चउसालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीआविंति २ त्ता आभिओगे देवे सद्दाविन्ति २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चुल्लहिमवन्ताओ वासहरपव्वयाओ गोसीसचंदणकट्ठाइं साहरह ।

तए णं ते आभिओगा देवा ताहिं रुअगमज्झवत्थव्वाहिं चउहिं दिसाकुमारी-महत्तरिआहिं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा जाव[1] विणएणं वयणं पडिच्छन्ति २ त्ता खिप्पामेव चुल्लहिमवन्ताओ वासहरपव्वयाओ सरसाइं गोसीसचन्दणकट्ठाइं साहरन्ति । तए णं ताओ मज्झिमरुअगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीमहत्तरिआओ सरगं करेन्ति २ त्ता अरणिं घडेंति, अरणिं घडित्ता सरएणं अरणिं महिंति २ त्ता अग्गिं पाडेंति २ त्ता अग्गिं संधुक्खंति २ त्ता गोसीसचन्दणकट्ठे पक्खिवन्ति २ त्ता अग्गिं उज्जालंति २ त्ता समिहाकट्ठाइं पक्खिविन्ति २ त्ता अग्गिहोमं करेंति २ त्ता भूतिकम्मं करेंति २ त्ता रक्खापोट्टलिअं बंधन्ति, बन्धेत्ता णाणामणिरयण-भत्तिचित्ते दुविहे पाहाणवट्टगे गहाय भगवओ तित्थयरस्स कण्णमूलंमि टिट्टिआविन्ति भवउ भयवं पव्वयाउए २ ।

तए णं ताओ रुअगमज्झवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीमहत्तरिआओ भयवं तित्थयरं करयलपुडेणं तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हन्ति, गिण्हित्ता जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-भवणे तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता तित्थयरमायरं सयणिज्जंसि णिसीआविंति, णिसीआवित्ता भयवं तित्थयरं माउए पासे ठवेंति, ठवित्ता आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठन्तीति ।

[१४७] उस काल, उस समय पूर्वदिग्वर्ती रुचककूट-निवासिनी आठ महत्तरिका दिक्कु-मारिकाएँ अपने-अपने कूटों पर सुखोपभोग करती हुई विहार करती हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. नन्दोत्तरा, २. नन्दा, ३. आनन्दा, ४. नन्दिवर्धना, ५. विजया, ६. वैजयन्ती, ७. जयन्ती तथा ८. अपराजिता ।

---

१. देखें सूत्र संख्या ४४

अवशिष्ट वर्णन पूर्ववत् है। (वे तीर्थंकर की माता के निकट आती हैं एवं हाथ जोड़े, अंजलि बाँधे, उन्हें मस्तक पर घुमाकर तीर्थंकर की माता से कहती हैं—

'रत्नकुक्षिधारिके—अपनी कोख में तीर्थंकररूप रत्न को धारण करने वाली! जगत्प्रदीप-दायिके—जगद्वर्ती जनों को सर्वभाव प्रकाशक तीर्थंकररूप दीपक प्रदान करने वाली! हम आपको नमस्कार करती हैं। समस्त जगत् के लिए मंगलमय, नेत्रस्वरूप—सकल-जगद्भावदर्शक, मूर्त्त—चक्षुर्ग्राह्य, समस्त जगत् के प्राणियों के लिए वात्सल्यमय, हितप्रद सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप मार्ग उपदिष्ट करने वाली, विभु—सर्वव्यापक—समस्त श्रोतृवृन्द के हृदयों में तत्तद्भापानुपरिणत हो अपने तात्पर्य का समावेश करने में समर्थ वाणी की ऋद्धि—वाग्वैभव से युक्त जिन—राग-द्वेष-विजेता, ज्ञानी—सातिशय ज्ञानयुक्त, नायक, धर्मवरचक्रवर्ती—उत्तम धर्मचक्र का प्रवर्तन करने वाले, बुद्ध—ज्ञाततत्त्व, बोधक—दूसरों को तत्त्वबोध देने वाले, समस्त लोक के नाथ—समस्त प्राणि-वर्ग में ज्ञान-बीज का आधान एवं संरक्षण कर उनके योग-क्षेमकारी, निर्मम—ममतारहित, उत्तम क्षत्रिय-कुल में उद्भूत, लोकोत्तम—लोक में सर्वश्रेष्ठ तीर्थंकर भगवान् की आप जननी हैं। आप धन्य हैं, पुण्यशालिनी हैं एवं कृतार्थ—कृतकृत्य हैं।) देवानुप्रिये! पूर्वदिशावर्ती रुचककूट निवासिनी हम आठ प्रमुख दिशाकुमारिकाएँ भगवान् तीर्थंकर का जन्म-महोत्सव मनायेंगी। अतः आप भयभीत मत होना।' यों कहकर तीर्थंकर तथा उनकी माता के शृंगार, शोभा, सज्जा आदि विलोकन में उपयोगी, प्रयोजनीय दर्पण हाथ में लिये वे भगवान् तीर्थंकर एवं उनकी माता के पूर्व में आगान, परिगान करने लगती हैं।

उस काल, उस समय दक्षिण रुचककूट-निवासिनी आठ दिक्कुमारिकाएँ अपने-अपने कूटों में सुखोपभोग करती हुई विहार करती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. समाहारा, २. सुप्रदत्ता, ३. सुप्रबुद्धा, ४. यशोधरा, ५. लक्ष्मीवती, ६. शेपवती, ७. चित्रगुप्ता तथा ८. वसुन्धरा। आगे का वर्णन पूर्वानुरूप है।

वे भगवान् तीर्थंकर की माता से कहती हैं—'आप भयभीत न हों।' यों कहकर वे भगवान् तीर्थंकर एवं उनकी माता के स्नपन में प्रयोजनीय सजल कलश हाथ में लिये दक्षिण में आगान, परिगान करने लगती है।

उस काल, उस समय पश्चिम रूचक कूट-निवासिनी आठ महत्तरा दिक्कुमारिकाएँ सुखोपभोग करती हुई विहार करती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. इलादेवी, २. सुरादेवी, ३. पृथिवी, ४. पद्मावती, ५. एकनासा, ६. नवमिका, ७. भद्रा तथा ८. सीता।

आगे का वर्णन पूर्ववत् है।

वे भगवान् तीर्थंकर की माता को सम्बोधित कर कहती हैं—'आप भयभीत न हो।' यों कह कर वे हाथों में तालवृन्त—व्यजन—पंखे लिये हुए आगान, परिगान करती हैं।

उस काल, उस समय उत्तर रुचककूट-निवासिनी आठ महत्तरा दिक्कुमारिकाएँ सुखोपभोग करती हुई विहार करती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. अलंबुसा, २. मिश्रकेशी, ३. पुण्डरीका, ४. वारुणी, ५. हासा, ६. सर्वप्रभा, ७. श्री तथा ८. ह्री।

शेष समग्र वर्णन पूर्ववत् है।

वे भगवान् तीर्थंकर तथा उनकी माता को प्रणाम कर उनके उत्तर में चँवर हाथ में लिये आगान-परिगान करती हैं।

उस काल, उस समय रुचककूट के मस्तक पर—शिखर पर चारों विदिशाओं में निवास करने वाली चार महत्तरिका दिक्कुमारिकाएँ सुखोपभोग करती हुई विहार करती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. चित्रा, २. चित्रकनका, ३. शतेरा तथा ४. सौदामिनी।

आगे का वर्णन पूर्वानुरूप है। वे आकर भगवान् तीर्थंकर की माता से कहती हैं—'आप डरें नहीं।' यों कहकर भगवान् तीर्थंकर तथा उनकी माता के चारों विदिशाओं में अपने हाथों में दीपक लिये आगान-परिगान करती हैं।

उस काल, उस समय मध्य रुचककूट पर निवास करनेवाली चार महत्तरिका दिक्कुमारिकाएँ सुखोपभोग करती हुई अपने-अपने कूटों पर विहार करती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. रूपा, २. रूपासिका, ३. सुरूपा तथा ४. रूपकावती।

आगे का वर्णन पूर्ववत् है। वे उपस्थित होकर भगवान् तीर्थंकर की माता को सम्बोधित कर कहती हैं—'आप डरें नहीं।' इस प्रकार कहकर वे भगवान् तीर्थंकर के नाभि-नाल को चार अंगुल छोड़कर काटती हैं। नाभि-नाल को काटकर जमीन में खड्डा खोदती हैं। नाभि-नाल को उसमें गाड़ देती हैं और उस खड्डे को वे रत्नों से, हीरों से भर देती हैं। गड्डा भरकर मिट्टी जमा देती हैं, उस पर हरी-हरी दूब उगा देती हैं। ऐसा करके उसकी तीन दिशाओं में तीन कदलीगृह—केले के वृक्षों से निष्पन्न घरों की विकुर्वणा करती हैं। उन कदली-गृहों के बीच में तीन चतुःशालाओं—जिन में चारों ओर मकान हों, ऐसे भवनों की विकुर्वणा करती हैं। उन भवनों के बीचों बीच तीन सिंहासनों की विकुर्वणा करती हैं। सिंहासनों का वर्णन पूर्ववत् है।

फिर वे मध्यरुचकवासिनी महत्तरा दिक्कुमारिकाएँ भगवान् तीर्थंकर तथा उनकी माता के पास आती हैं। तीर्थंकर को अपनी हथेलियों के संपुट द्वारा उठाती हैं और तीर्थंकर की माता को भुजाओं द्वारा उठाती हैं। ऐसा कर दक्षिणदिग्वर्ती कदलीगृह में, जहाँ चतुःशाल भवन एवं सिंहासन बनाए गए थे, वहाँ आती हैं। भगवान् तीर्थंकर एवं उनकी माता को सिंहासन पर बिठाती हैं। सिंहासन पर बिठाकर उनके शरीर पर शतपाक एवं सहस्रपाक तैल द्वारा अभ्यंगन—मालिश करती हैं। फिर सुगन्धित गन्धाटक से—गेहूँ आदि के आटे के साथ कतिपय सौगन्धिक पदार्थ मिलाकर तैयार किये गये उबटन से—शरीर पर वह उबटन या पीठी मलकर तैल की चिकनाई दूर करती हैं। वैसा कर वे भगवान् तीर्थंकर को हथेलियों के संपुट द्वारा तथा उनकी माता को भुजाओं द्वारा उठाती हैं, जहाँ पूर्वदिशावर्ती कदलीगृह, चतुःशाल भवन तथा सिंहासन थे, वहाँ लाती हैं, वहाँ लाकर भगवान् तीर्थंकर एवं उनकी माता को सिंहासन पर बिठाती हैं। सिंहासन पर बिठाकर गन्धोदक—

केसर आदि सुगन्धित पदार्थ मिले जल, पुष्पोदक—पुष्प मिले जल तथा शुद्ध जल केवल जल—यों तीन प्रकार के जल द्वारा उनको स्नान कराती हैं। स्नान कराकर उन्हें सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित करती हैं। तत्पश्चात् भगवान् तीर्थंकर को हथेलियों के संपुट द्वारा और उनकी माता को भुजाओं द्वारा उठाती हैं। उठाकर, जहाँ उत्तरदिशावर्ती कदलीगृह, चतुःशाल भवन एवं सिंहासन था, वहाँ लाती हैं। वहाँ लाकर भगवान् तीर्थंकर तथा उनकी माता को सिंहासन पर बिठाती हैं। उन्हें सिंहासन पर बिठाकर अपने आभियोगिक देवों को बुलाती हैं। बुलाकर उन्हें कहती हैं—देवानुप्रियो ! चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत से गोशीर्ष-चन्दन-काष्ठ लाओ।'

मध्य रुचक पर निवास करने वाली उन महत्तरा दिक्कुमारिकाओं द्वारा यह आदेश दिये जाने पर वे आभियोगिक देव हर्षित एवं परितुष्ट होते हैं, विनयपूर्वक उनका आदेश स्वीकार करते हैं। वे शीघ्र ही चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत से सरस—ताजा गोशीर्ष चन्दन ले आते हैं। तब वे मध्य रुचकनिवासिनी दिक्कुमारिकाएं शरक—शर या बाण जैसा तीक्ष्ण—नुकीला अग्नि-उत्पादक काष्ठ-विशेष तैयार करती है। उसके साथ अरणि काष्ठ को संयोजित करती हैं। दोनों को परस्पर रगड़ती हैं, अग्नि उत्पन्न करती हैं। अग्नि को उद्दीप्त करती हैं। उद्दीप्त कर उसमें गोशीर्ष चन्दन के टुकड़े डालती हैं। उससे अग्नि प्रज्वलित करती है। अग्नि को प्रज्वलित कर उसमें समिधा-काष्ठ—हवनोपयोगी ईन्धन डालती हैं, हवन करती हैं, भूतिकर्म करती हैं—जिस प्रयोग द्वारा ईन्धन भस्मरूप में परिणत हो जाए, वैसा करती हैं। वैसा कर वे डाकिनी, शाकिनी आदि से, दृष्टिदोष—से—नजर आदि से रक्षा हेतु भगवान् तीर्थंकर तथा उनकी माता के भस्म की पोटलियाँ बाँधती हैं। फिर नानाविध मणि-रत्नांकित दो पाषाण-गोलक लेकर वे भगवान् तीर्थंकर के कर्णमूल में उन्हें परस्पर ताडित कर 'टिट्टी' जैसी ध्वनि उत्पन्न करती हुई बजाती हैं, जिससे बाललीलावश अन्यत्र आसक्त भगवान् तीर्थंकर उन द्वारा वक्ष्यमाण आशीर्वचन सुनने में दत्तावधान हो सकें। वे आशीर्वाद देती हैं—'भगवन् ! आप पर्वत के सदृश दीर्घायु हों।'

फिर मध्य रुचकनिवासिनी वे चार महत्तरा दिक्कुमारिकाएँ भगवान् तीर्थंकर को अपनी हथेलियों के संपुट द्वारा तथा भगवान् की माता को भुजाओं द्वारा उठाती हैं। उठाकर उन्हें भगवान् तीर्थंकर के जन्म-भवन में ले आती हैं। भगवान् की माता को वे शय्या पर सुला देती हैं। शय्या पर सुलाकर भगवान् तीर्थंकर को माता की बगल में रख देती हैं—सुला देती हैं। फिर वे मंगल-गीतों का आगान, परिगान करती हैं।

विवेचन—शतपाक एवं सहस्रपाक तैल आयुर्वेदिक दृष्टि से विशिष्ट लाभप्रद तथा मूल्यवान् तैल होते हैं, जिनमें बहुमूल्य औषधियां पड़ी होती हैं। शान्तिचन्द्रीया वृत्ति में किये गये संकेत के अनुसार शतपाक तैल वह है, जिसमें सौ प्रकार के द्रव्य पड़े हों, जो सौ दफा पकाया गया हो, अथवा जिसका मूल्य सौ कार्षापण हो। उसी प्रकार सहस्रपाक तैल वह है, जिसमें हजार प्रकार के द्रव्य पड़े हों, जो हजार बार पकाया गया हो, अथवा जिसका मूल्य हजार कार्षापण हो। उपासकदशांग-वृत्ति में आचार्य अभयदेवसूरि ने भी ऐसा ही उल्लेख किया है।

कार्षापण प्राचीन भारत में प्रयुक्त एक सिक्का था। वह स्वर्ण, रजत तथा ताम्र अलग-अलग तीन प्रकार का होता था। प्रयुक्त धातु के अनुसार वह स्वर्णकार्षापण, रजतकार्षापण तथा ताम्र-

कार्षापण कहा जाता था। स्वर्णकार्षापण का वजन १६ मासे, रजतकार्षापण का वजन १६ पण (तोल-विशेष) तथा ताम्रकार्षापण का वजन ८० रत्ती होता था।[1]

शक्रेन्द्र द्वारा जन्मोत्सवार्थ तैयारी

१४८. तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के णामं देविंदे, देवराया, वज्जपाणी, पुरंदरे, सयक्कऊ, सहस्सक्खे, मघवं, पागसासणे, दाहिणद्ध-लोगाहिवई, बत्तीसविमाणावाससयसहस्साहिवई, एरावण-वाहणे, सुरिंदे, अरयंबरवत्थधरे, आलइयमालमउडे, नवहेमचारुचित्तचंचलकुण्डलविलिहिज्जमाणगंडे, भासुरबोंदी, पलम्ब-वणमाले, महिड्ढिए, महज्जुईए, महाबले, महायसे महाणुभागे, महासोक्खे, सोहम्मे कप्पे, सोहम्मवडिंसए विमाणे, सभाए सुहम्माए, सक्कंसि सीहासणंसि, से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणावाससयसाहस्सीणं, चउरासीए सामाणिअसाहस्सीणं, तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं, चउण्हं लोगपालाणं, अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणिआणं, सत्तण्हं अणिआहिवईणं, चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं, अन्नेसिं च बहूणं सोहम्मकप्पवासीणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं, पोरेवच्चं, सामित्तं, भट्टित्तं, महत्तरगत्तं, आणाईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहयणट्टगीयवाइयतंतीतलतालतुडिअघणमुइंगपडुपडहवाइअ-रवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणं चलइ। तए णं से सक्के (देविंदे, देवराया) आसणं चलिअं पासइ २ त्ता ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता भगवं तित्थयरं ओहिणा आभोएइ २ त्ता हट्ठतुट्ठचित्ते, आनंदिए पीइमणे, परमसोमणस्सिए, हरिसवसविसप्पमाणहिअए, धाराहयकयंबकुसुम-चंचुमालइअऊसविअरोमकूवे, विअसिअवरकमलनयणवयणे, पचलिअवरकडगतुडिअकेऊरमउडे, कुण्डलहारविरायंतवच्छे, पालम्बपलम्बमाणघोलंतभूसणधरे ससंभमं तुरिअं चवलं सुरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, २ त्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ २ त्ता वेरुलिअ-वरिट्ठरिट्ठअंजणनिउणोविअमिसिमिसिंत-मणिरयणमंडिआओ पाउआओ ओमुअइ २ त्ता एगसाडिअं उत्तरासंगं करेइ २ त्ता अंजलिमउलियग्ग-हत्थे तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ २ त्ता वामं जाणुं अंचेइ २ त्ता दाहिणं जाणुं धरणीअलंसि साहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि निवेसेइ २ त्ता ईसिं पच्चुण्णमइ २ त्ता कडग-तुडिअथंभिआओ भुआओ साहरइ २ त्ता करयलपरिग्गहिअं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—णमोऽत्थु णं अरहंताणं, भगवंताणं, आइगराणं, तित्थयराणं, सयंसंबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवरपुण्डरीआणं, पुरिसवरगन्धहत्थीणं, लोगुत्तमाणं, लोगणाहाणं, लोगहियाणं, लोगपईवाणं, लोगपज्जोअगराणं, अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, जीवदयाणं, बोहिदयाणं, धम्मदयाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मनायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्मवरचाउरन्तचक्कवट्टीणं, दीवो, ताणं, सरणं, गई, पइट्ठा, अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं, विअट्टछउमाणं, जिणाणं, जावयाणं,

---

१. संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी—सर मोनियर विलियम्स, पृष्ठ १७६

तिन्नाणं, तारयाणं, बुद्धाणं, बोहयाणं, मुत्ताणं, मोअगाणं, सव्वन्नूणं, सव्वदरिसीणं, सिवमयलमरुअ-मणन्तमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तिसिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्ताणं णमो जिणाणं, जिअभयाणं।

णमोऽत्थु णं भगवओ तित्थगरस्स आइगरस्स (सिद्धिगइणामधेयं ठाणं) संपाविउकामस्स वंदामि णं भगवन्तं तत्थगयं इहगए, पासउ मे भयवं ! तत्थगए इहगयंति कट्टु वन्दइ णमंसइ २ त्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे।

तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अयमेवारूवे जाव[1] संकप्पे समुप्पज्जित्था—उप्पण्णे खलु भो जम्बुद्दीवे दीवे भगवं तित्थयरे, तं जीअमेयं तीअपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं, देवराईणं तित्थयराणं जम्मणमहिमं करेत्तए, तं गच्छामि णं अहं पि भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करेमि त्ति कट्टु एवं संपेहेइ २ त्ता हरिणेगमेसिं पायत्ताणीयाहिवइं देवं सद्दावेति २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! सभाए सुधम्माए मेघोघरसिअं गंभीरमहुरयरसद्दं जोयणपरिमण्डलं सुघोसं सूसरं घंटं तिक्खुत्तो उल्लालेमाणे २ महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणे २ एवं वयाहि—आणवेइ णं भो सक्के देविंदे देवराया, गच्छइ णं भो सक्के देविंदे देवराया जम्बुद्दीवे २ भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करित्तए, तं तुब्भे वि णं देवाणुप्पिआ ! सव्विद्धीए, सव्वजुईए, सव्वबलेणं, सव्वसमुदएणं, सव्वायरेणं, सव्वविभूईए, सव्वविभूसाए, सव्वसंभमेणं, सव्वणाडएहिं, सव्वोवरोहेहिं, सव्वपुप्फ-गन्धमल्लालंकारविभूसाए, सव्वदिव्वतुडिअसद्दसण्णिणाएणं, महया इड्ढीए, (महया जुईए, महया बलेणं, महया समुदएणं, महया आयरेणं, महया विभूईए, महया विभूसाए, महया संभमेणं, महेहिं णाडएहिं, महेहिं उवरोहेहिं, महया पुप्फ-गन्ध-मल्लालंकार-विभूसाए, महया दिव्व-तुडिअ-सद्द-सण्णिणाएणं) रवेणं णिअयपरिआलसंपरिवुडा सयाइं २ जाणविमाण-वाहणाइं दुरूढा समाणा अकालपरिहीणं चेव सक्कस्स (देविंदस्स देवरण्णो) अंतिअं पाउब्भवह।

तए णं से हरिणेगमेसी देवे पायत्ताणीयाहिवई सक्केणं (देविंदेणं, देवरण्णा) एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ जाव[2] एवं देवोत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ २ त्ता सक्कस्स ३ अंतिआओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव सभाए सुहम्माए, मेघोघरसिअगंभीरमहुरयरसद्दा, जोअणपरिमंडला, सुघोसा घण्टा, तेणेव उवागच्छइ २ त्ता मेघोघरसिअगंभीरमहुरयरसद्दं, जोअण-परिमंडलं, सुघोसं घण्टं तिक्खुत्तो उल्लालेइ। तए णं तीसे मेघोघरसिअगंभीरमहुरयर-सद्दाए, जोअण-परिमंडलाए, सुघोसाए घण्टाए तिक्खुत्तो उल्लालिआए समाणीए सोहम्मे कप्पे अण्णेहिं एगूणेहिं बत्तीसविमाणावास-सयसहस्सेहिं, अण्णाइं एगूणाइं बत्तीसं घण्टासयसहस्साइं जमगसमगं कणकणारावं काउं पयत्ताइं हुत्था इति। तए णं सोहम्मे कप्पे पासायविमाणनिक्खुडावडिअसद्दसमुट्ठिअघण्टापडंसुआसयसहस्स-संकुले जाए आवि होत्था इति।

---

१. देखें सूत्र संख्या ६८

२. देखें सूत्र संख्या ४४

तए णं तेसिं सोहम्मकप्पवासीणं, बहूणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य एगन्तरइपसत्त-णिच्चपमत्तविसयसुहमुच्छिग्राणं, सूसरघण्टारसिग्रविउलबोलपूरिग्र-चवल-पडिबोहणे कए समाणे घोसणकोऊहलदिण्ण-कण्णएगग्गचित्तउवउत्तमाणसाणं से पायत्ताणीग्राहिवई देवे तंसि घण्टारवंसि निसंतपडिसंतंसि समाणंसि तत्थ तत्थ तहिं २ देसे महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणे २ एवं वयासीति—'हन्त ! सुणंतु भवंतो बहवे सोहम्मकप्पवासी वेमाणिग्रदेवा देवीग्रो अ सोहम्मकप्पवइणो इणमो वयणं हिग्रसुहत्थं—ग्रणणवेवइ णं भो (सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो) अंतिअं पाउब्भवहत्ति। तए णं ते देवा देवीग्रो अ एयमट्ठं सोच्चा हट्ठतुट्ठहिअया[1] अप्पेगइआ वन्दणवत्तिअं, एवं पूग्रणवत्तिअं, सक्कारवत्तिअं, सम्माणवत्तिअं दंसणवत्तिअं, जिणभत्तिरागेणं, अप्पेगइआ तं जीग्रमेअं एवमादि त्ति कट्टु जाव[2] पाउब्भवंति त्ति।

तए णं से सक्के देविंदे, देवराया ते वेमाणिए देवे देवीओ अ अकाल-परिहीणं चेव अंतिअं पाउब्भवमाणे पासइ २ त्ता हट्ठे पालयं णामं आभिओगिअं देवं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठं, लीलट्ठिय-सालभंजिआकलिअं, ईहामिअउसभतुरग-णरमगरविहगवालगकिण्णररुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्तं, खंभुग्गयवइरवेइग्रा-परिगयाभिरामं, विज्जाहरजमलजुग्रलजंतजुत्तं पिव, अच्ची-सहस्समालिणीअं, रूवगसहस्सकलिअं, भिसमाणं भिब्भिसमाणं, चक्खुल्लोग्रणलेसं, सुहफासं, सस्सिरीग्ररूवं, घण्टावलिअमहुरमणहरसरं, सुहं, कन्तं, दरिसणिज्जं, णिउणोविअमिसिमिसिंतमणिरयणघंटिग्राजालपरिक्खित्तं, जोयणसहस्स-वित्थिण्णं, पञ्चजोग्रणसयमुव्विद्धं, सिग्घं, तुरिअं जइणणिव्वाहिं, दिव्वं जाणविमाणं विउव्वाहि २ त्ता एग्रमाणत्तिग्रं पच्चप्पिणाहि।

[१४८] उस काल, उस समय शक्र नामक देवेन्द्र—देवों के परम ईश्वर—स्वामी, देवराज—देवों में सुशोभित, वज्रपाणि—हाथ में वज्र धारण किए, पुरन्दर—पुर—असुरों के नगरविशेष के दारक—विध्वंसक, शतक्रतु—पूर्व जन्म में कार्तिक श्रेष्ठी के भव में :सौ वार श्रावक की पंचमी प्रतिमा के परिपालक, सहस्राक्ष—हजार आँखों वाले—अपने पाँच सौ मन्त्रियों की अपेक्षा हजार आँखों वाले, मघवा—मेघों के— वादलों के नियन्ता, पाकशासन—पाक नामक शत्रु के नाशक, दक्षिणार्धलोकाधिपति, वत्तीस लाख विमानों के स्वामी, ऐरावत नामक हाथी पर सवारी करने वाले, सुरेन्द्र—देवताओं के प्रभु, आकाश की तरह निर्मल वस्त्रधारी, मालाओं से युक्त मुकुट धारण किये हुए, उज्ज्वल स्वर्ण के सुन्दर, चित्रित चंचल—हिलते हुए कुण्डलों से जिसके कपोल सुशोभित थे, देदीप्यमान शरीरधारी, लम्बी पुष्पमाला पहने हुए, परम ऋद्धिशाली, परम द्युतिशाली, महान् बली, महान् यशस्वी, परम प्रभावक, अत्यन्त सुखी, सौधर्मकल्प के अन्तर्गत सौधर्मावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में इन्द्रासन पर स्थित होते हुए बत्तीस लाख विमानों, चौरासी हजार सामानिक देवों, तेतीस गुरुस्थानीय त्रायस्त्रिंश देवों, चार लोकपालों, परिवारसहित आठ अग्रमहिषियों—प्रमुख इन्द्राणियों, तीन परिषदों, सात अनीकों—सेनाओं, सात अनीकाधिपतियों—सेनापति देवों, तीन लाख छत्तीस हजार अंगरक्षक देवों

१. देखें सूत्र संख्या ४४

१. देखें सूत्र यही

तथा सौधर्मकल्पवासी अन्य बहुत से देवों तथा देवियों का आधिपत्य, पौरोवृत्य—अग्रेसरता, स्वामित्व, भर्तृत्व—प्रभुत्व, महत्तरत्व—अधिनायकत्व, आज्ञेश्वरत्व-सैनापत्य—जिसे आज्ञा देने का सर्वाधिकार हो, ऐसा सैनापत्य—सेनापतित्व करते हुए, इन सबका पालन करते हुए, नृत्य, गीत, कलाकौशल के साथ बजाये जाते वीणा, झांझ, ढोल एवं मृदंग की बादल जैसी गंभीर तथा मधुर ध्वनि के बीच दिव्य भोगों का आनन्द ले रहा था।

सहसा देवेन्द्र, देवराज शक्र का आसन चलित होता है, काँपता है। शक्र (देवेन्द्र, देवराज) जब अपने आसन को चलित देखता है तो वह अवधि-ज्ञान का प्रयोग करता है। अवधिज्ञान द्वारा भगवान् तीर्थंकर को देखता है। वह हृष्ट तथा परितुष्ट होता है। अपने मन में आनन्द एवं प्रीति—प्रसन्नता का अनुभव करता है। सौम्य मनोभाव और हर्षातिरेक से उसका हृदय खिल उठता है। मेघ द्वारा बरसाई जाती जलधारा से आहत कदम्ब के पुष्पों की ज्यों उसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं—वह रोमांचित हो उठता है। उत्तम कमल के समान उसका मुख तथा नेत्र विकसित हो उठते हैं। हर्षातिरेक-जनित स्फूर्तावेगवश उसके हाथों के उत्तम कटक—कड़े, त्रुटित—बाहुरक्षिका—भुजाओं को सुस्थिर बनाये रखने हेतु परिधीयमान—धारण की गई आभरणात्मक पट्टिका, केयूर—भुजबन्ध एवं मुकुट सहसा कम्पित हो उठते हैं—हिलने लगते हैं। उसके कानों में कुण्डल शोभा पाते हैं। उसका वक्षःस्थल हारों से सुशोभित होता है। उसके गले में लम्बी माला लटकती है, आभूषण झूलते हैं।

(इस प्रकार सुसज्जित) देवराज शक्र आदरपूर्वक शीघ्र सिंहासन से उठता है। पादपीठ—पैर रखने के पीढ़े पर अपने पैर रखकर नीचे उतरता है। नीचे उतरकर वैडूर्य—नीलम, श्रेष्ठ रिष्ठ तथा अंजन नामक रत्नों से निपुणतापूर्वक कलात्मक रूप में निर्मित, देदीप्यमान, मणि-मण्डित पादुकाएँ पैरों से उतारता है। पादुकाएँ उतार कर अखण्ड वस्त्र का उत्तरासंग करता है। हाथ जोड़ता है, अंजलि बाँधता है, जिस ओर तीर्थंकर थे उस दिशा की ओर सात, आठ कदम आगे जाता है। फिर अपने बायें घुटने को आकुंचित करता है—सिकोड़ता है, दाहिने घुटने को भूमि पर टिकाता है, तीन बार अपना मस्तक भूमि से लगाता है। फिर कुछ ऊँचा उठता है, कड़े तथा बाहुरक्षिका से सुस्थिर भुजाओं को उठाता है, हाथ जोड़ता है, अंजलि बाँधे (जुड़े हुए) हाथों को मस्तक के चारों ओर घुमाता है और कहता है—

अर्हत्—इन्द्र आदि द्वारा पूजित अथवा कर्म-शत्रुओं के नाशक, भगवान्—आध्यात्मिक ऐश्वर्य आदि से सम्पन्न, आदिकर—अपने युग में धर्म के आद्य प्रवर्तक, तीर्थंकर—साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध धर्म-तीर्थ प्रवर्त्तक, स्वयंसंबुद्ध—स्वयं बोधप्राप्त, पुरुषोत्तम—पुरुषों में उत्तम, पुरुषसिंह—आत्मशौर्य में पुरुषों में सिंह सदृश, पुरुषवरपुण्डरीक—सर्व प्रकार की मलिनता से रहित होने के कारण पुरुषों में श्रेष्ठ, श्वेत कमल की तरह निर्मल अथवा मनुष्यों में रहते हुए भी कमल की तरह निर्लेप, पुरुषवरगन्धहस्ती—उत्तम गन्धहस्ती के सदृश—जिस प्रकार गन्धहस्ती के पहुँचते ही सामान्य हाथी भाग जाते हैं, उसी प्रकार किसी क्षेत्र में जिनके प्रवेश करते ही दुर्भिक्ष, महामारी आदि अनिष्ट दूर हो जाते हैं अर्थात् अतिशय तथा प्रभावपूर्ण उत्तम व्यक्तित्व के धनी, लोकोत्तम—लोक के सभी प्राणियों में उत्तम, लोकनाथ—लोक के सभी भव्य प्राणियों के स्वामी—उन्हें सम्यग्दर्शन तथा सन्मार्ग प्राप्त कराकर उनका योग-क्षेम[1] साधने वाले, लोकहितकर—लोक का कल्याण करने वाले, लोकप्रदीप—

१. अप्राप्तस्य प्रापणं योगः—जो प्राप्त नहीं है, उसका प्राप्त होना योग कहा जाता है। प्राप्तस्य रक्षणं क्षेमः—प्राप्त की रक्षा करना क्षेम है।

ज्ञान रूपी दीपक द्वारा लोक का अज्ञान दूर करने वाले अथवा लोकप्रतीप—लोक-प्रवाह के प्रतिकूल-गामी—अध्यात्मपथ पर गतिशील, लोकप्रद्योतकर—लोक-अलोक, जीव-अजीव आदि का स्वरूप प्रकाशित करनेवाले अथवा लोक में धर्म का उद्योत फैलाने वाले, अभयदायक—सभी प्राणियों के लिए अभयप्रद—सम्पूर्णत: अहिंसक होने के कारण किसी के लिए भय उत्पन्न नहीं करने वाले, चक्षुदायक—आन्तरिक नेत्र—सद्ज्ञान देनेवाले, मार्गदायक—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र रूप साधनापथ के उद्बोधक, शरणदायक—जिज्ञासु तथा मुमुक्षु जनों के लिए आश्रयभूत, जीवनदायक—आध्यात्मिक जीवन के संबल, बोधिदायक—सम्यक् बोध देनेवाले, धर्मदायक—सम्यक् चारित्ररूप धर्म के दाता, धर्मदेशक—धर्मदेशना देनेवाले, धर्मनायक, धर्मसारथि—धर्मरूपी रथ के चालक, धर्मवर चातुरन्त-चक्रवर्ती—चार अन्त—सीमा युक्त पृथ्वी के अधिपति के समान धार्मिक जगत् के चक्रवर्ती, दीप—दीपक-सदृश समस्त वस्तुओं के प्रकाशक अथवा द्वीप—संसार-समुद्र में डूबते हुए जीवों के लिए द्वीप के समान वचाव के आधार, त्राण—कर्म-कदर्थित भव्य प्राणियों के रक्षक, शरण—आश्रय, गति एवं प्रतिष्ठास्वरूप, प्रतिघात, वाधा या आवरण रहित उत्तम ज्ञान, दर्शन के धारक, व्यावृत्तछद्मा—अज्ञान आदि आवरण रूप छद्म से अतीत, जिन—राग, द्वेष आदि के विजेता, ज्ञायक—राग आदि भावात्मक सम्बन्धों के ज्ञाता अथवा ज्ञापक—राग आदि को जीतने का पथ बताने वाले, तीर्ण—संसार-सागर को पार कर जाने वाले, तारक—दूसरों को संसार-सागर से पार उतारने वाले, बुद्ध—बोद्धव्य का ज्ञान प्राप्त किये हुए, बोधक—औरों के लिए वोधप्रद, मुक्त—कर्मबन्धन से छूटे हुए, मोचक—कर्मवन्धन से छूटने का मार्ग बतानेवाले, वैसी प्रेरणा देनेवाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, शिव—कल्याणमय, अचल—स्थिर, अरुक—निरुपद्रव, अनन्त—अन्तरहित, अक्षय—क्षयरहित, अबाध—बाधारहित, अपुनरावृत्ति—जहाँ से फिर जन्म-मरण रूप संसार में आगम नहीं होता, ऐसी सिद्धि-गति—सिद्धावस्था को प्राप्त, भयातीत जिनेश्वरों को नमस्कार हो ।

आदिकर, सिद्धावस्था पाने के इच्छुक भगवन् तीर्थकर को नमस्कार हो ।

यहाँ स्थित मैं वहाँ—अपने जन्मस्थान में स्थित भगवान् तीर्थकर को वन्दन करता हूँ । वहाँ स्थित भगवान् यहाँ स्थित मुझको देखें ।

ऐसा कहकर वह भगवान् को वन्दन करता है, नमन करता है । वन्दन-नमन कर वह पूर्व की ओर मुँह करके उत्तम सिंहासन पर बैठ जाता है ।

तब देवेन्द्र, देवराज शक्र के मन में ऐसा संकल्प, भाव उत्पन्न होता है—जम्बूद्वीप में भगवान् तीर्थंकर उत्पन्न हुए हैं । भूतकाल में हुए, वर्तमान काल में विद्यमान, भविष्य में होनेवाले देवेन्द्रों, देवराजों शक्रों का यह परंपरागत आचार है कि वे तीर्थकरों का जन्म-महोत्सव मनाएं । इसलिए मैं भी जाऊँ, भगवान् तीर्थंकर का जन्मोत्सव समायोजित करूं ।

देवराज शक्र ऐसा विचार करता है, निश्चय करता है । ऐसा निश्चय कर वह अपनी पदाति-सेना के अधिपति हरिनिगमेषी[1] नामक देव को बुलाता है । बुलाकर उससे कहता है—'देवानुप्रिय !

---

१. हरे:—इन्द्रस्य, निगमम्—आदेशमिच्छतीति हरिनिगमेषी—तम्, अथवा इन्द्रस्य नैगमेषी नामा देव:—तम् ।
(इन्द्र के निगम—आदेश को चाहने वाला अथवा इन्द्र का नैगमेषी नामक देव)

—जम्बूद्वीप. शान्तिचन्द्रीयावृत्ति, पत्र ३९७

शीघ्र ही सुधर्मा सभा में मेघसमूह के गर्जन के सदृश गंभीर तथा अति मधुर शब्दयुक्त, एक योजन वर्तुलाकार, सुन्दर स्वर युक्त सुघोषा नामक घण्टा को तीन वार वजाते हुए, जोर जोर से उद्घोषणा करते हुए कहो—देवेन्द्र, देवराज शक्र का आदेश है—वे जम्बूद्वीप में भगवान् तीर्थंकर का जन्म-महोत्सव मनाने जा रहे हैं। देवानुप्रियो। आप सभी अपनी सर्वविध ऋद्धि, द्युति, बल, समुदय, आदर, विभूति, विभूषा, नाटक-नृत्य-गीतादि के साथ, किसी भी वाधा की पर्वाह न करते हुए सब प्रकार के पुष्पों, सुरभित पदार्थों, मालाओं तथा आभूषणों से विभूषित होकर दिव्य, तुमुल ध्वनि के साथ महती ऋद्धि (महती द्युति, महत् वल, महनीय समुदय, महान् आदर, महती विभूति, महती विभूषा, वहुत वड़े ठाटवाट, वड़े-वड़े नाटकों के साथ, अत्यधिक वाधाओं के वावजूद उत्कृष्ट पुष्प, गन्ध, माला, आभरण-विभूषित) उच्च, दिव्य वाद्यध्वनिपूर्वक अपने-अपने परिवार सहित अपने-अपने विमानों पर सवार होकर विलम्ब न कर शक्र (देवेन्द्र, देवराज) के समक्ष उपस्थित हों।'

देवेन्द्र, देवराज शक्र द्वारा इस प्रकार आदेश दिये जाने पर हरिनिगमेषी देव हर्षित होता है, परितुष्ट होता है, देवराज शक्र का आदेश विनयपूर्वक स्वीकार करता है। आदेश स्वीकार कर शक्र के पास से प्रतिनिष्क्रान्त होता है—निकलता है। निकल कर, जहाँ सुधर्मा सभा है एवं जहाँ मेघसमूह के गर्जन के सदृश गंभीर तथा अति मधुर शब्द युक्त, एक योजन वर्तुलाकार सुघोषा नामक घण्टा है, वहाँ जाता है। वहाँ जाकर वादलों के गर्जन के तुल्य एवं गंभीर एवं मधुरतम शब्द युक्त, एक योजन गोलाकार सुघोषा घण्टा को तीन वार वजाता है।

मेघसमूह के गर्जन की तरह गंभीर तथा अत्यन्त मधुर ध्वनि से युक्त, एक योजन वर्तुलाकार सुघोषा घण्टा के तीन वार वजाये जाने पर सौधर्म कल्प में एक कम वत्तीस लाख विमानों में एक कम वत्तीस लाख घण्टाएँ एक साथ तुमुल शब्द करने लगती हैं, वजने लगती हैं। सौधर्म कल्प के प्रासादों एवं विमानों के निष्कुट—गम्भीर प्रदेशों, कोनों में आपतित—पहुंचे तथा उनसे टकराये हुए शब्द-वर्गणा के पुद्गल लाखों घण्टा-प्रतिध्वनियों के रूप में समुत्थित होने लगते हैं—प्रकट होने लगते हैं।

सौधर्म कल्प सुन्दर स्वरयुक्त घण्टाओं की विपुल ध्वनि से संकुल—आपूर्ण हो जाता है। फलतः वहाँ निवास करने वाले वहुत से वैमानिक देव, देवियाँ जो रतिसुख में प्रसक्त—अत्यन्त आसक्त तथा नित्य प्रमत्त रहते हैं, वैषयिक सुख में मूर्च्छित रहते हैं, शीघ्र प्रतिवुद्ध होते हैं—जागरित होते हैं—भोगमयी मोह-निद्रा से जागते हैं। घोषणा सुनने हेतु उनमें कुतूहल उत्पन्न होता है—वे तदर्थ उत्सुक होते हैं। उसे सुनने में वे कान लगा देते हैं, दत्तचित्त हो जाते हैं। जव घण्टा-ध्वनि निःशान्त—अत्यन्त मन्द, प्रशान्त—सर्वथा शान्त हो जाती है, तव शक्र की पदाति सेना का अधिपति हरिनिगमेषी देव स्थान-स्थान पर जोर-जोर से उद्घोषणा करता हुआ इस प्रकार कहता है—

सौधर्मकल्पवासी वहुत से देवो! देवियो! आप सौधर्मकल्पपति का यह हितकर एवं सुखप्रद वचन सुनें—उनकी आज्ञा है, आप उन (देवेन्द्र, देवराज शक्र) के समक्ष उपस्थित हों। यह सुनकर उन देवों, देवियों के हृदय हर्षित एवं परितुष्ट होते हैं। उनमें से कतिपय भगवान् तीर्थंकर के वन्दन—अभिवादन हेतु, कतिपय पूजन—अर्चन हेतु, कतिपय सत्कार—स्तवनादि द्वारा गुणकीर्तन हेतु, कतिपय सम्मान—समादर-प्रदर्शन द्वारा मनःप्रसाद निवेदित करने हेतु, कतिपय दर्शन की

उत्सुकता से, अनेक जिनेन्द्र भगवान् के प्रति भक्ति-अनुरागवश तथा कतिपय इसे अपना परंपरानुगत आचार मानकर वहाँ उपस्थित हो जाते हैं।

देवेन्द्र, देवराज शक्र उन वैमानिक देव-देवियों को अविलम्ब अपने समक्ष उपस्थित देखता है। देखकर प्रसन्न होता है। वह अपने पालक नामक आभियोगिक देव को बुलाता है। बुलाकर उसे कहता है—

देवानुप्रिय! सैकड़ों खंभों पर अवस्थित, क्रीडोद्यत पुत्तलियों से कलित—शोभित, ईहामृग—वृक, वृषभ, अश्व, मनुष्य, मकर, खग, सर्प, किन्नर, रुरु संज्ञक मृग, शरभ—अष्टापद, चमर—चँवरी गाय, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि के चित्रांकन से युक्त, खंभों पर उत्कीर्ण वज्ररत्नमयी वेदिका द्वारा सुन्दर प्रतीयमान. संचरणशील सहजात पुरुष-युगल की ज्यों प्रतीत होते चित्रांकित विद्याधरों से समायुक्त, अपने पर जड़ी सहस्रों मणियों तथा रत्नों की प्रभा से सुशोभित, हजारों रूपकों—चित्रों से सुहावने, अतीव देदीप्यमान, नेत्रों में समा जाने वाले, सुखमय स्पर्शयुक्त, सश्रीक—शोभामय रूपयुक्त, पवन से आन्दोलित घण्टियों की मधुर, मनोहर ध्वनि से युक्त, सुखमय, कमनीय, दर्शनीय, कलात्मक रूप में सज्जित, देदीप्यमान मणिरत्नमय घण्टिकाओं के समूह से परिव्याप्त, एक हजार योजन विस्तीर्ण, पाँच सौ योजन ऊँचे, शीघ्रगामी, त्वरितगामी, अतिशय वेगयुक्त एवं प्रस्तुत कार्य-निर्वहण में सक्षम दिव्य यान-विमान की विकुर्वणा करो। आज्ञा का परिपालन कर सूचित करो।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में वर्णित शक्रेन्द्र के देव-परिवार तथा विशेषणों आदि का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

सौधर्म देवलोक के अधिपति शक्रेन्द्र के तीन परिषद् होती हैं—शमिता—आभ्यन्तर, चण्डा—मध्यम तथा जाता—बाह्य। आभ्यन्तर परिषद् में बारह हजार देव और सात सौ देवियाँ, मध्यम परिषद् में चौदह हजार देव और छह सौ देवियाँ एवं बाह्य परिषद् में सोलह हजार देव और पाँच सौ देवियाँ होती हैं। आभ्यन्तर परिषद् के देवों की स्थिति पाँच पल्योपम, देवियों की स्थिति तीन पल्योपम, मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति चार पल्योपम, देवियों की स्थिति दो पल्योपम तथा बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति तीन पल्योपम और देवियों की स्थिति एक पल्योपम की होती है।

अग्रमहिषी परिवार—प्रत्येक अग्रमहिषी—पटरानी—प्रमुख इन्द्राणी के परिवार में पाँच हजार देवियाँ होती हैं। यों इन्द्र के अन्तःपुर में चालीस हजार देवियों का परिवार होता है। सेनाएँ—हाथी, घोड़े, बैल, रथ तथा पैदल—ये पाँच सेनाएँ होती हैं तथा दो सेनाएँ—गन्धर्वानीक—गाने-बजाने वालों का दल और नाट्यानीक—नाटक करने वालों का दल—आमोद-प्रमोद पूर्वक रणोत्साह बढ़ाने हेतु होती हैं।

इस सूत्र में शतक्रतु तथा सहस्राक्ष आदि इन्द्र के कुछ ऐसे नाम आये हैं, जो वैदिक परंपरा में भी विशेष प्रसिद्ध हैं। जैन परंपरा के अनुसार इन नामों के कारण एवं इनकी सार्थकता इनके अर्थ में आ चुकी है। वैदिक परंपरा के अनुसार इन नामों के कारण अन्य हैं, जो इस प्रकार हैं—

शतक्रतु—क्रतु का अर्थ यज्ञ है। सौ यज्ञ पूर्णरूपेण संपन्न कर लेने पर इन्द्र-पद प्राप्त होता है, वैदिक परंपरा में ऐसी मान्यता है। अतः शतक्रतु शब्द सौ यज्ञ पूरे कर इन्द्र-पद पाने के अर्थ में प्रचलित है।

सहस्राक्ष—इसका शाब्दिक अर्थ हजार नेत्र वाला है। इन्द्र का यह नाम पड़ने के पीछे एक पौराणिक कथा बहुत प्रसिद्ध है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में उल्लेख है—इन्द्र एक बार मन्दाकिनी के तट पर स्नान करने गया। वहाँ उसने गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या को नहाते देखा। इन्द्र की बुद्धि कामावेश से भ्रष्ट हो गई। उसने देव-माया से गौतम ऋषि का रूप बना लिया और अहल्या का शील-भंग किया। इसी बीच गौतम वहाँ पहुंच गये। वे इन्द्र पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए, उसे फटकारते हुए कहने लगे—तुम तो देवताओं में श्रेष्ठ समझे जाते हो, ज्ञानी कहे जाते हो। पर, वास्तव में तुम नीच, अधम, पतित और पापी हो, योनिलम्पट हो। इन्द्र की निन्दनीय योनिलम्पटता जगत् के समक्ष प्रकट रहे, इसलिए गौतम ने उसकी देह पर सहस्र योनियाँ बन जाने का शाप दे डाला। तत्काल इन्द्र की देह पर हजार योनियाँ उद्भूत हो गईं। इन्द्र घबरा गया, ऋषि के चरणों में गिर पड़ा। बहुत अनुनय-विनय करने पर ऋषि ने इन्द्र से कहा—पूरे एक वर्ष तक तुम्हें इस घृणित रूप का कष्ट झेलना ही होगा। तुम प्रतिक्षण योनि की दुर्गन्ध में रहोगे। तदनन्तर सूर्य की आराधना से ये सहस्र योनियाँ नेत्ररूप में परिणत हो जायेंगी—तुम सहस्राक्ष—हजार नेत्रों वाले बन जाओगे। आगे चलकर वैसा ही हुआ, एक वर्ष तक वैसा जघन्य जीवन बिताने के बाद इन्द्र सूर्य की आराधना से सहस्राक्ष बन गया।[1]

पालकदेव द्वारा विमानविकुर्वणा

१४९. तए णं से पालयदेवे सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ जाव[2] वेउव्विअ-समुग्घाएणं समोहणित्ता तहेव करेइ इति, तस्स णं दिव्वस्स जाणविमाणस्स तिदिसिं तिसोवाणपडिरूवगा, वण्णओ, तेसि णं पडिरूवगाणं पुरओ पत्तेअं २ तोरणा, वण्णओ जाव पडिरूवा।

तस्स णं जाणविमाणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव[3] दीविअचम्मेइ वा अणेगसंकुकीलकसहस्सवितते आवड-पच्चावड-सेढि-पसेढि-सुत्थिअ-सोवत्थिअ वद्धमाणपूसमाणव- मच्छंडग- मगरंडग-जार- मार-फुल्लावली- पउमपत्त-सागर-तरंग-वसंतलयपउमलय-भत्तिचित्तेहिं सच्छाएहिं सप्पभेहिं समरीइएहिं सउज्जोएहिं णाणाविहपञ्चवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए २, तेसि णं मणीणं वण्णे गन्धे फासे अ भाणिअव्वे जहा रायप्पसेणइज्जे।

तस्स णं भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए पिच्छाघरमण्डवे अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठे, वण्णओ जाव पडिरूवे, तस्स उल्लोए पउमलयभत्तिचित्ते जाव[4] सव्वतवणिज्जमए जाव[5] (पासादीए, दरिसणिज्जे, अभिरूवे,) पडिरूवे।

तस्स णं मण्डवस्स बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागंसि महं एगा मणिपेढिआ, अट्ठ जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं, चत्तारि जोअणाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमयी वण्णओ। तीए उवरिं महं एगे सीहासणे वण्णओ, तस्सुवरिं महं एगे विजयदूसे सव्वरयणामए वण्णओ, तस्स मज्झदेसभाए

---

१. ब्रह्मवैवर्त पुराण ४-४७, १९-३२
२. देखें सूत्र संख्या ४४
३. देखें सूत्र संख्या ६
४. देखें सूत्र संख्या ४
५. देखें सूत्र संख्या ४

एगे वइरामए अंकुसे, एत्थ णं महं एगे कुम्भिक्के मुत्तादामे, से णं अन्नेहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमित्तेहिं चउहिं अद्धकुम्भिक्केहिं मुत्तादामेहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते, ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा, सुवण्णपयरगमण्डिआ, णाणामणिरयणविविहहारद्धहारउवसोभिआ, समुदया ईसिं अण्णमण्णमसंपत्ता पुव्वाइएहिं वाएहिं मन्दं एइज्जमाणा २ (उरालेणं, मणुन्नेणं, मणहरेणं, कण्णमण-) निव्वुइकरेणं सद्देणं ते पएसे आपूरेमाणा २ (सिरीए) अईव उवसोभेमाणा २ चिट्ठंति त्ति।

तस्स णं सीहासणस्स अवरुत्तरेणं, उत्तरेणं, उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं सक्कस्स चउरासीए सामाणिअसाहस्सीणं, चउरासीइ भद्दासणसाहस्सीओ, पुरत्थिमेणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं एवं दाहिण-पुरत्थिमेणं अब्भितर-परिसाए दुवालसण्हं देवसाहस्सीणं, दाहिणेणं मज्झिमाए चउदसण्हं देवसाहस्सीणं, दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिरपरिसाए सोलसण्हं देवसाहस्सीणं, पच्चत्थिमेणं सत्तण्हं अणिआहिवईणंति। तए णं तस्स सीहासणस्स चउद्दिसिं चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं एवमाई विभासिअव्वं सूरिआभगमेणं जाव पच्चप्पिणन्ति त्ति।

[१४९] देवेन्द्र, देवराज शक्र द्वारा यों कहे जाने पर—आदेश दिये जाने पर पालक नामक देव हर्षित एवं परितुष्ट होता है। वह वैक्रिय समुद्घात द्वारा यान-विमान की विकुर्वणा करता है। उसकी तीन दिशाओं में तीन-तीन सीढ़ियों की रचना करता है। उनके आगे तोरणद्वारों की रचना करता है। उनका वर्णन पूर्वानुरूप है।

उस यान-विमान के भीतर बहुत समतल एवं रमणीय भूमि-भाग है। वह आलिंग-पुष्कर—मुरज या ढोलक के ऊपरी भाग—चर्मपुट तथा शंकुसदृश बड़े-बड़े कीले ठोक कर, खींचकर समान किये गये चीते आदि के चर्म जैसा समतल और सुन्दर है। वह भूमिभाग आवर्त, प्रत्यावर्त, श्रेणि, प्रश्रेणि, स्वस्तिक, वर्द्धमान, पुष्यमाणव, मत्स्य के अंडे, मगर के अंडे, जार, मार, पुष्पावलि, कमलपत्र, सागर-तरंग, वासन्तीलता एवं पद्मलता के चित्रांकन से युक्त, आभायुक्त, प्रभायुक्त, रश्मियुक्त, उद्योतयुक्त नानाविध पंचरंगी मणियों से सुशोभित है। जैसा कि राजप्रश्नीय सूत्र में वर्णन है[1], उन मणियों के अपने-अपने विशिष्ट वर्ण, गन्ध एवं स्पर्श हैं।

उस भूमिभाग के ठीक बीच में एक प्रेक्षागृह-मण्डप है। वह सैकड़ों खंभों पर टिका है, सुन्दर है। उसका वर्णन पूर्ववत् है। उस प्रेक्षामण्डप के ऊपर का भाग पद्मलता आदि के चित्रण से युक्त है, सर्वथा तपनीय-स्वर्णमय है, चित्त को प्रसन्न करने वाला है, दर्शनीय है, अभिरूप—मन को अपने में रमा लेने वाला है तथा प्रतिरूप—मन में बस जाने वाला है।

उस मण्डप के बहुत समतल एवं रमणीय भूमिभाग के बीचोंबीच एक मणिपीठिका है। वह आठ योजन लम्बी-चौड़ी तथा चार योजन मोटी है, सर्वथा मणिमय है। उसका वर्णन पूर्ववत् है।

उसके ऊपर एक विशाल सिंहासन है। उसका वर्णन भी पूर्वानुरूप है। उसके ऊपर एक सर्वरत्नमय, वृहत् विजयदूष्य—विजय-वस्त्र है। उसका वर्णन पूर्वानुगत है। उसके बीच में एक वज्ररत्नमय—हीरकमय अंकुश है। वहाँ एक कुम्भिका-प्रमाण मोतियों की बृहत् माला है। वह

---

१. देखिए राजप्रश्नीयसूत्र पृ. २६ (आगम प्र. स. ब्यावर)

मुक्तामाला अपने से आधी ऊँची, अर्ध कुम्भिकापरिमित चार मुक्तामालाओं द्वारा चारों ओर से परिवेष्टित है। उन मालाओं में तपनीय-स्वर्णनिर्मित लंबूसक—गेंद के आकार के आभरणविशेष—लूंबे लटकते हैं। वे सोने के पातों से मण्डित हैं। वे नानाविध मणियों एवं रत्नों से निर्मित हारों—अठारह लड़ के हारों, अर्धहारों—नौ लड़ के हारों से उपशोभित हैं, विभूषित हैं, एक दूसरी से थोड़ी-थोड़ी दूरी पर अवस्थित हैं। पूर्वीय—पुरवैया आदि वायु के झोंकों से धीरे-धीरे हिलती हुई, परस्पर टकराने से उत्पन्न (उत्तम, मनोज्ञ, मनोहर) कानों के लिए तथा मन के लिए शान्ति-प्रद शब्द से आस-पास के प्रदेशों—स्थानों को आपूर्ण करती हुई—भरती हुई वे अत्यन्त सुशोभित होती हैं।

उस सिंहासन के पश्चिमोत्तर—वायव्य कोण में, उत्तर में एवं उत्तरपूर्व में—ईशान कोण में शक्र के ८४००० सामानिक देवों के ८४००० उत्तम आसन हैं, पूर्व में आठ प्रधान देवियों के आठ उत्तम आसन हैं, दक्षिण-पूर्व में—आग्नेय कोण में आभ्यन्तर परिषद् के १२००० देवों के १२०००, दक्षिण में मध्यम परिषद् के १४००० देवों के १४००० तथा दक्षिण-पश्चिम में—नैऋंत्य कोण में वाह्य परिषद् के १६००० देवों के १६००० उत्तम आसन हैं। पश्चिम में सात अनीकाधिपतियों—सेनापति-देवों के सात उत्तम आसन हैं। उस सिंहासन की चारों दिशाओं में चौरासी चौरासी हजार आत्मरक्षक—अंगरक्षक देवों के कुल ८४००० × ४ = तीन लाख छत्तीस हजार उत्तम आसन हैं।

एतत्सम्वद्ध और सारा वर्णन (राजप्रश्नीयसूत्र में वर्णित) सूर्याभदेव के विमान के सदृश है।

इन सवकी विकुर्वणा कर पालक देव शक्रेन्द्र को निवेदित करता है—विमान निर्मित होने की सूचना देता है।

शक्रेन्द्र का उत्सवार्थ प्रयाण

१५०. तए णं से सक्के (देविंदे, देवराया) हट्ठहिअए दिव्वं जिणेंदाभिगमणजुग्गं सव्वालंकार-विभूसिअं उत्तरवेउव्विअं रूवं विउव्वइ २ त्ता अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं, णट्टाणीएणं गन्धव्वाणीएण य सद्धिं तं विमाणं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे २ पुव्विल्लेणं तिसोवाणेणं दुरुहइ २ त्ता (जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता) सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णेत्ति, एवं चेव सामाणिआवि उत्तरेणं तिसोवाणेणं दुरूहित्ता पत्तेअं २ पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु णिसीअंति। अवसेसा य देवा देवीओ अ दाहिणिल्लेणं तिसोवाणेणं दुरूहित्ता तहेव (पत्तेअं २ पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु) णिसीअंति। तए णं तस्स सक्कस्स तंसि दुरूढस्स इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ, तयणंतरं च णं पुण्णकलसभिंगारं दिव्वा य छत्तपडागा सचामरा य दंसणरइअ-आलोअ-दरिसणिज्जा वाउद्धुअविजयवेजयन्ती अ समूसिआ गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिआ, तयणन्तरं छत्तभिंगारं तयणंतर च णं वइरामय-वट्ट-लट्ठ-संठिअ-सुसिलिट्ठ-परिघट्ठ-मट्ठ-सुपइट्ठिए विसिट्ठे, अणेगवर-पञ्चवण्णकुडभीसहस्सपरिमण्डिआभिरामे, वाउद्धुअविजयवेजयन्ती-पडागा-छत्ताइच्छत्तकलिए, तुंगे, गयणतलमणुलिहंतसिहरे, जोअणसहस्समूसिए, महइमहालए महिंदज्झए पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थि-एत्ति, तयणन्तरं च णं सरूवनेवत्थपरिअच्छिअसुसज्जा, सव्वालंकारविभूसिआ पञ्च अणिआ पञ्च अणिआहिवइणो (अण्णे देवा य) संपट्ठिआ, तयणन्तरं च णं वहवे आभिओगिआ देवा य देवीओ अ

सएहिं सएहिं रूवेहिं (सयेहिं सयेहिं विहवेहिं सयेहिं सयेहिं) णिओगेहिं सक्कं देविंदं देवरायं पुरओ अ मग्गओ अ अहापुव्वीए, तयणन्तरं च णं बहवे सोहम्मकप्पवासी देवा य देवीओ अ सव्विड्ढीए जाव[1] दुरूढा समाणा मग्गओ अ (पुरओ पासओ अ) सपंट्ठिआ।

तए णं से सक्के तेणं पञ्चाणिअपरिक्खित्तेणं (वइरामयवट्टलट्ठसंठियसुसिलिट्ठपरिघट्ठमट्ठसुपइट्ठिएणं, विसिट्ठेणं, अणेगवरपंचवण्णकुडभीसहस्सपरिमंडियाभिरामेणं, वाउद्धुअविजयवेजयंतीपडागाछत्ताइच्छत्तकलिएणं, तुंगेणं, गयणतलमणुलिहंतसिहरेणं, जोअणसहस्समूसिएणं, महइमहालएणं) महिंदज्झएणं पुरओ पकड्ढिज्जमाणेणं, चउरासीए सामाणिअ-(साहस्सीणं अट्ठण्हि अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, तिहिं परिसाणं, सत्तहिं अणियाणं. सत्तहिं अणियाहिवईणं, चउहिं चउरासीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेहिं च बहूहिं देवेहिं देवीहिं च) परिवुडे सव्विड्ढीए जाव[2] रवेणं सोहम्मस्स कप्पस्स मज्झंमज्झेणं तं दिव्वं देविड्ढि (देवजुइं देवाणुभावं) उवदंसेमाणे २ जेणेव सोहम्मस्स कप्पस्स उत्तरिल्ले निज्जाणमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जोअणसयसाहस्सीएहिं विग्गहेहिं ओवयमाणे २ ताए उक्किट्ठाए जाव[3] देवगईए वीईवयमाणे २ तिरियमसंखिज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं जेणेव णन्दीसरवरे दीवे जेणेव दाहिणपुरत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता एवं जा चेव सूरिआभस्स वत्तव्वया णवरं सक्काहिगारो वत्तव्वो इति जाव तं दिव्वं देविड्ढि जाव[4] दिव्वं जाणविमाणं पडिसाहरमाणे २ (जेणेव जम्बुद्दीवे दीवे जेणेव भरहे वासे) जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणनगरे जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणे तेणेव उवागच्छति २ त्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणं तेणं दिव्वेणं जाणविमाणेणं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ २ त्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणस्स उत्तरत्थिमे दिसीभागे चतुरंगुलमसंपत्तं धरणियले तं दिव्वं जाणविमाणं ठवेइ २ त्ता अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं दोहिं अणीएहिं गन्धव्वाणीएण य णट्टाणीएण य सद्धिं ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहइ, तए णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउरासीइ सामाणिअसाहस्सीओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ उत्तरिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति, अवसेसा देवा य देवीओ अ ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति त्ति।

तए णं से सक्के देविन्दे देवराया चउरासीए सामाणिअसाहस्सीएहिं जाव[5] सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव[6] दुंदुभिणिग्घोसणाइयरवेणं जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आलोए चेव पणामं करइ २ त्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं

१. देखें सूत्र संख्या ५२
२. देखें सूत्र संख्या ५२
३. देखें सूत्र संख्या ३४
४. देखें सूत्र संख्या यही
५. देखें सूत्र संख्या यही
६. देखें सूत्र संख्या ५२

करेइ २ त्ता करयल जाव[1] एवं वयासी—णमोत्थु ते रयणकुच्छिधारए एवं जहा दिसाकुमारीओ (जगप्पईवदाईए सव्वजगमंगलस्स, चक्खुणो अ मुत्तस्स, सव्वजगजीववच्छलस्स, हिअकारगमग्गदेसियवागिद्धिविभुप्पभुस्स, जिणस्स, णाणिस्स, नायगस्स, बुहस्स, बोहगस्स, सव्वलोगनाहस्स, निम्ममस्स, पवरकुलसमुब्भवस्स जाईए खत्तिअस्स जंसि लोगुत्तमस्स जणणी) धण्णासि, पुण्णासि, तं कयत्थाऽसि, अहण्णं देवाणुप्पिए ! सक्के णामं देविन्दे, देवराया भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करिस्सामि, तं णं तुब्भाहिं ण भाइव्वंति कट्टु ओसोवणिं दलयइ २ त्ता तित्थयरपडिरूवगं विउव्वइ, तित्थयरमाउआए पासे ठवइ २ त्ता पञ्च सक्के विउव्वइ विउव्वित्ता एगे सक्के भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं गिण्हइ, एगे सक्के पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ, दुवे सक्का उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेन्ति, एगे सक्के पुरओ वज्जपाणी पकड्ढइत्ति। तए णं से सक्के देविन्दे देवराया अण्णेहिं बहूहिं भवणवइ-वाणमन्तर-जोइस-वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि अ सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव[2] णाइएणं ताए उक्किट्ठाए जाव[3] वीईवयमाणे जेणेव मन्दरे पव्वए, जेणेव पंडगवणे, जेणेव अभिसेअसिला, जेणेव अभिसेअसीहासणे, तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णेत्ति।

[१५०] पालक देव द्वारा दिव्य यान-विमान की रचना संपन्न कर दिये जाने का संवाद सुनकर (देवेन्द्र, देवराज) शक्र मन में हर्षित होता है। जिनेन्द्र भगवान् के सम्मुख जाने योग्य, दिव्य, सर्वालंकारविभूषित, उत्तर वैक्रिय रूप की विकुर्वणा करता है। वैसा कर वह सपरिवार आठ अग्रमहिषियों—प्रधान देवियों, नाट्यानीक—नाट्य-सेना, गन्धर्वानीक—गन्धर्व-सेना के साथ उस यान-विमान की अनुप्रदक्षिणा करता हुआ पूर्वदिशावर्ती त्रिसोपनक से—तीन सीढियों द्वारा विमान पर आरूढ होता है। विमानारूढ होकर (जहाँ सिंहासन है, वहाँ आता है। वहाँ आकर) वह पूर्वाभिमुख हो सिंहासन पर आसीन होता है। उसी प्रकार सामानिक देव उत्तरी त्रिसोपानक से विमान पर आरूढ होकर पूर्व-न्यस्त—पहले से रखे हुए उत्तम आसनों पर बैठ जाते हैं। बाकी के देव-देवियाँ दक्षिणदिग्वर्ती त्रिसोपानक से विमान पर आरूढ होकर (अपने लिए पूर्व-न्यस्त उत्तम आसनों पर) उसी तरह बैठ जाते हैं।

शक्र के यों विमानारूढ होने पर आगे आठ मंगलक—मांगलिक द्रव्य प्रस्थित होते हैं। तत्पश्चात् शुभ शकुन के रूप में समायोजित, प्रयाण-प्रसंग में दर्शनीय जलपूर्ण कलश, जलपूर्ण झारी, चँवर सहित दिव्य छत्र, दिव्य पताका, वायु द्वारा उड़ाई जाती, अत्यन्त ऊँची, मानो आकाश को छूती हुई-सी विजय-वैजयन्ती ये क्रमशः आगे प्रस्थान करते हैं।

तदनन्तर छत्र, विशिष्ट वर्णकों एवं चित्रों द्वारा शोभित निर्जल झारी, फिर वज्ररत्नमय, वर्तुलाकार, लष्ट—मनोज्ञ संस्थानयुक्त, सुश्लिष्ट—मसृण—चिकना, परिघृष्ट—कठोर शाण पर तरासी हुई, रगड़ी हुई पाषाण-प्रतिमा की ज्यों स्वच्छ, स्निग्ध, मृष्ट—सुकोमल शाण पर घिसी हुई

---

१. देखें सूत्र संख्या ४४
२. देखें सूत्र संख्या ५२
३. देखे सूत्र संख्या ३४

पाषाण-प्रतिमा की तरह चिकनाई लिये हुए मृदुल, सुप्रतिष्ठित—सीधा संस्थित, विशिष्ट—अतिशययुक्त, अनेक उत्तम, पंचरंगी हजारों कुडभियों—छोटी पताकाओं से अलंकृत, सुन्दर, वायु द्वारा हिलती विजय-वैजयन्ती, ध्वजा, छत्र एवं अतिछत्र से सुशोभित, तुंग—उन्नत आकाश को छूते हुए से शिखर युक्त, एक हजार योजन ऊँचा, अतिमहत्—विशाल महेन्द्रध्वज यथाक्रम आगे प्रस्थान करता है। उसके बाद अपने कार्यानुरूप वेष से युक्त, सुसज्जित, सर्वविध अलंकारों से विभूषित पाँच सेनाएँ, पाँच सेनापति-देव (तथा अन्य देव) प्रस्थान करते हैं। फिर बहुत से अभियोगिक देव-देवियाँ अपने-अपने रूप, (अपने-अपने वैभव, अपने-अपने) नियोग—उपकरण सहित देवेन्द्र, देवराज शक्र के आगे, पीछे यथाक्रम प्रस्थान करते हैं। तत्पश्चात् सौधर्मकल्पवासी अनेक देव-देवियाँ सब प्रकार की समृद्धि के साथ विमानारूढ होते हैं, देवेन्द्र, देवराज शक्र के आगे पीछे तथा दोनों ओर प्रस्थान करते हैं।

इस प्रकार विमानस्थ देवराज शक्र पाँच सेनाओं से परिवृत (आगे प्रकृष्यमाण—निर्गम्यमान वज्ररत्नमय—हीरकमय, वर्तुलाकार—गोल, लष्ट—मनोज्ञ संस्थान युक्त, सुश्लिष्ट—मसृण, चिकने, परिघृष्ट—कठोर शाण पर तरासी हुई, रगड़ी हुई पाषाण-प्रतिमा की ज्यों स्वच्छ, स्निग्ध, मृष्ट—सुकोमल शाण पर घिसी हुई पाषाण-प्रतिमा की ज्यों चिकनाई लिये हुए मृदुल, सुप्रतिष्ठित—सीधे संस्थित, विशिष्ट—अतिशय युक्त, अनेक, उत्तम, पंचरंगी हजारों कुडभियों—छोटी पताकाओं से अलंकृत, सुन्दर, वायु द्वारा हिलती विजय-वैजयन्ती, ध्वजा, छत्र एवं अतिछत्र से सुशोभित, तुंग—उन्नत, आकाश को छूते हुए शिखर से युक्त, एक हजार योजन ऊँचे, अति महत्—विशाल, महेन्द्रध्वज से युक्त,) चौरासी हजार सामानिक देवों (आठ सपरिवार अग्रमहिषियों, तीन परिषदों, सात सेनाओं, सात सेनापति देवों, चारों ओर चौरासी-चौरासी हजार अंगरक्षक देवों तथा अन्य बहुत से देवों और देवियों) से संपरिवृत, सब प्रकार की ऋद्धि—वैभव के साथ, वाद्य-निनाद के साथ सौधर्मकल्प के बीचोंबीच होता हुआ, दिव्य देव-ऋद्धि (देव-द्युति, देवानुभाव—देव-प्रभाव) उपदर्शित करता हुआ, जहाँ सौधर्मकल्प का उत्तरी निर्याण-मार्ग—बाहर निकलने का रास्ता है, वहाँ आता है। वहाँ आकर एक-एक लाख योजन-प्रमाण विग्रहों-गन्तव्य क्षेत्रातिक्रम रूप गमनक्रम द्वारा चलता हुआ, उत्कृष्ट, तीव्र देव-गति द्वारा आगे बढ़ता तिर्यक्—तिरछे असंख्य द्वीपों एवं समुद्रों के बीच से होता हुआ, जहाँ नन्दीश्वर द्वीप है, दक्षिण-पूर्व-आग्नेय कोणवर्ती रतिकर पर्वत है, वहाँ आता है। जैसा सूर्याभदेव का वर्णन है, आगे वैसा ही शक्रेन्द्र का समझना चाहिए।

फिर शक्रेन्द्र दिव्य देव-ऋद्धि का दिव्य यान-विमान का प्रतिसंहरण-संकोचन करता है—विस्तार को समेटता है। वैसा कर, जहाँ (जम्बूद्वीप, भरत क्षेत्र) भगवान् तीर्थंकर का जन्म-नगर, जन्म-भवन होता है, वहाँ आता है। आकर वह दिव्य यान-विमान द्वारा भगवान् तीर्थंकर के जन्म-भवन की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा करता है। वैसा कर भगवान् तीर्थंकर के जन्म-भवन के उत्तर-पूर्व में—ईशान कोण में अपने दिव्य विमान को भूमितल से चार अंगुल ऊँचा ठहराता है। विमान को ठहराकर अपनी आठ अग्रमहिषियों, गन्धर्वानीक तथा नाट्यानीक नामक दो अनीकों—सेनाओं के साथ उस दिव्य-यान-विमान से पूर्वदिशावर्ती तीन सीढ़ियों द्वारा नीचे उतरता है। फिर देवेन्द्र, देवराज शक्र के चौरासी हजार सामानिक देव उत्तरदिशावर्ती तीन सीढ़ियों द्वारा उस दिव्य यान-विमान से नीचे उतरते हैं। बाकी के देव-देवियाँ दक्षिण-दिशावर्ती तीन सीढ़ियों द्वारा यान-विमान से नीचे उतरते हैं।

तत्पश्चात् देवेन्द्र, देवराज शक्र चौरासी हजार सामानिक आदि अपने सहवर्ती देव-समुदाय से संपरिवृत, सर्व ऋद्धि-वैभव-समायुक्त, नगाड़ों के गूंजते हुए निर्घोष के साथ, जहाँ भगवान् तीर्थंकर थे और उनकी माता थी, वहाँ आता है। आकर उन्हें देखते ही प्रणाम करता है। भगवान् तीर्थंकर एवं उनकी माता की तीन वार आदक्षिण-प्रदक्षिणा करता है। वैसा कर, हाथ जोड़, अंजलि बाँधे उन्हें मस्तक पर घुमाकर भगवान् तीर्थंकर की माता को कहता है—

रत्नकुक्षिधारिके—अपनी कोख में तीर्थंकर रूप रत्न को धारण करनेवाली ! जगत्प्रदीप-दायिके—जगद्वर्ती जनों के सर्व-भाव-प्रकाशक तीर्थंकर रूप दीपक प्रदान करने वाली ! आपको नमस्कार हो। (समस्त जगत् के लिए मंगलमय, नेत्र-स्वरूप—सकल-जगद्-भाव-दर्शक, मूर्त्त—चक्षुर्ग्राह्य, जगत् के समस्त प्राणियों के लिए वात्सल्यमय, हितप्रद सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप मार्ग उपदिष्ट करनेवाली, विभु—सर्वव्यापक—समस्त श्रोतृवृन्द के हृदयों में तत्तद्भाषानु-परिणत हो अपने तात्पर्य का समावेश करने में समर्थ वाणी की ऋद्धि—वाग्वैभव से युक्त, जिन—राग-द्वेष-विजेता, ज्ञानी—सातिशय ज्ञान युक्त, नायक, धर्मवरचक्रवर्ती—उत्तम धर्म-चक्र का प्रवर्तन करनेवाले, बुद्ध—ज्ञात-तत्त्व, बोधक—दूसरों को तत्त्व-बोध देने वाले, सर्व-लोक-नाथ—समस्त प्राणिवर्ग में ज्ञान-बीज का आधान एवं संरक्षण कर उनके योग-क्षेमकारी, निर्मम—ममता रहित, उत्तम कुल, क्षत्रिय जाति में उद्भूत, लोकोत्तम—लोक में सर्वश्रेष्ठ तीर्थंकर भगवान् की आप जननी हैं।) आप धन्य, पुण्य एवं कृतार्थ—कृतकृत्य हैं। देवानुप्रिये ! मैं देवेन्द्र, देवराज शक्र भगवान् तीर्थंकर का जन्म-महोत्सव मनाऊँगा, अतः आप भयभीत मत होना।' यों कहकर वह तीर्थंकर की माता को अवस्वापिनी—दिव्य मायामयी निद्रा में सुला देता है। फिर वह तीर्थंकर-सदृश प्रतिरूपक—शिशु की विकुर्वणा करता है। उसे तीर्थंकर की माता की बगल में रख देता है।[1] शक्र फिर पाँच शक्रों की विकुर्वणा करता है—वैक्रिय लब्धि द्वारा स्वयं पांच शक्रों के रूप में परिणत हो जाता है। एक शक्र भगवान् तीर्थंकर को हथेलियों के संपुट द्वारा उठाता है, एक शक्र पीछे छत्र धारण करता है, दो शक्र दोनों ओर चँवर डुलाते हैं, एक शक्र हाथ में वज्र लिये आगे चलता है।

तत्पश्चात् देवेन्द्र, देवराज शक्र अन्य अनेक भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क, वैमानिक देव-देवियों से घिरा हुआ, सब प्रकार ऋद्धि से शोभित, उत्कृष्ट, त्वरित देव-गति से चलता हुआ, जहाँ मन्दर पर्वत, पण्डक वन, अभिषेक-शिला एवं अभिषेक-सिंहासन है, वहाँ आता है, पूर्वाभिमुख हो सिंहासन पर बैठता है।

ईशान प्रभृति इन्द्रों का आगमन

१५१. तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविन्दे, देवराया, सूलपाणी, वसभवाहणे, सुरिन्दे, उत्तरद्धलोगाहिवई अट्ठावीसविमाणावाससयसहस्साहिवई अरयंबरवत्थधरे एवं जहा सक्के इमं णाणत्तं—महाघोसा घण्टा, लहुपरक्कमो पायत्ताणियाहिवई, पुप्फओ विमाणकारी, दक्खिणे निज्जाण-मग्गे, उत्तरपुरत्थिमिल्लो रइकरपव्वओ मन्दरे समोसरिओ (वंदइ, णमंसइ) पज्जुवासइत्ति। एवं अवसिट्ठावि इन्दा भाणिअव्वा जाव अच्चुओत्ति, इमं णाणत्तं—

---

१. इसका अभिप्राय यह कि यदि कोई निकटवर्ती दुष्ट देव-देवी कुतूहलवश या दुरभिप्रायवश माता की निद्रा तोड़ दे तो माता को पुत्र-विरह का दुःख न हो।

चउरासीइ असीइ, बावत्तरि सत्तरी अ सट्ठी अ।
पण्णा चत्तालीसा, तीसा वीसा दस सहस्सा ॥
एए सामाणिआणं, बत्तीसट्ठावीसा बारसट्ठ चउरो सयसहस्सा।
पण्णा चत्तालीसा छच्च सहस्सारे ॥
आणय-पाणय-कप्पे चत्तारि सयाऽऽरणच्चुए तिण्णि।

एए विमाणाणं इमे जाणविमाणकारी देवा, तं जहा—

पालय १. पुप्फे य २. सोमणसे ३. सिरिवच्छे अ ४. णंदिआवत्ते ५।
कामगमे ६. पीइगमे ७. मणोरमे ८. विमल ९. सव्वओ भद्दे १० ॥

सोहम्मगाणं, सणंकुमारगाणं, बंभलोअगाणं, महासुक्कयाणं, पाणयगाणं इंदाणं सुघोसा घण्टा, हरिणेगमेसी पायत्ताणीआहिवई, उत्तरिल्ला णिज्जाणभूमी, दाहिणपुरत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए।

ईसाणगाणं, माहिंदलंतगसहस्सारअच्चुअगाण य इंदाण महाघोसा घण्टा, लहुपरक्कमो पायत्ताणीआहिवई, दक्खिणिल्ले णिज्जाणमग्गे, उत्तरपुरत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए, परिसा णं जहा जीवाभिगमे। आयरक्खा सामाणिअचउग्गणा सव्वेसिं, जाणविमाणा सव्वेसिं जोअणसयसहस्स-वित्थिण्णा, उच्चत्तेणं सविमाणप्पमाणा, महिंदज्झया सव्वेसिं जोअणसहस्सिआ, सक्कवज्जा मन्दरे समोसरंति (वंदंति, णमंसंति,) पज्जुवासंति त्ति।

[१५१] उस काल, उस समय हाथ में त्रिशूल लिये, वृषभ पर सवार, सुरेन्द्र, उत्तरार्ध-लोकाधिपति, अट्ठाईस लाख विमानों का स्वामी, आकाश की ज्यों निर्मल वस्त्र धारण किये देवेन्द्र, देवराज ईशान मन्दर पर्वत पर समवसृत होता है—आता है। उसका अन्य सारा वर्णन सौधर्मेन्द्र शक्र के सदृश है। अन्तर इतना है—उनकी घण्टा का नाम महाघोषा है। उसके पदातिसेनाधिपति का नाम लघुपराक्रम है, विमानकारी देव का नाम पुष्पक है। उसका निर्याण—निर्गमन मार्ग दक्षिणवर्ती है, उत्तरपूर्ववर्ती रतिकर पर्वत है।

वह भगवान् तीर्थंकर को वन्दन करता है, नमस्कार करता है, उनकी पर्युपासना करता है।

अच्युतेन्द्र पर्यन्त बाकी के इन्द्र भी इसी प्रकार आते हैं, उन सबका वर्णन पूर्वानुरूप है। इतना अन्तर है—

सौधर्मेन्द्र शक्र के चौरासी हजार, ईशानेन्द्र के अस्सी हजार, सनत्कुमारेन्द्र के बहत्तर हजार, माहेन्द्र के सत्तर हजार, ब्रह्मेन्द्र के साठ हजार, लान्तकेन्द्र के पचास हजार, शुक्रेन्द्र के चालीस हजार, सहस्रारेन्द्र के तीस हजार, आनत-प्राणत-कल्प-द्विकेन्द्र के—इन दो कल्पों के इन्द्र के बीस हजार तथा आरण-अच्युत-कल्प-द्विकेन्द्र के—इन दो कल्पों के इन्द्र के दश हजार सामानिक देव हैं।

सौधर्मेन्द्र के बत्तीस लाख, ईशानेन्द्र के अट्ठाईस लाख, सनत्कुमारेन्द्र के बारह लाख, ब्रह्मलोकेन्द्र के चार लाख, लान्तकेन्द्र के पचास हजार, शुक्रेन्द्र के चालीस हजार, सहस्रारेन्द्र के छह हजार, आनत-प्राणत—इन दो कल्पों के चार सौ तथा आरण-अच्युत—इन दो कल्पों के इन्द्र के तीन सौ विमान होते हैं।

पालक, पुष्पक, सौमनस, श्रीवत्स, नन्दावर्त, कामगम, प्रीतिगम, मनोरम, विमल तथा सर्वतोभद्र ये यान-विमानों की विकुर्वणा करनेवाले देवों के अनुक्रम से नाम हैं।

सौधर्मेन्द्र, सनत्कुमारेन्द्र, ब्रह्मलोकेन्द्र, महाशुक्रेन्द्र तथा प्राणतेन्द्र की सुघोषा घण्टा, हरिनिगमेषी पदाति-सेनाधिपति, उत्तरवर्ती निर्याण-मार्ग, दक्षिण-पूर्ववर्ती रतिकर पर्वत है। इन चार बातों में इनकी पारस्परिक समानता है।

ईशानेन्द्र, माहेन्द्र, लान्तकेन्द्र, सहस्रारेन्द्र तथा अच्युतेन्द्र की महाघोषा घण्टा, लघु-पराक्रम पदातिसेनाधिपति, दक्षिणवर्ती निर्याण-मार्ग तथा उत्तर-पूर्ववर्ती रतिकर पर्वत है। इन चार बातों में इनकी पारस्परिक समानता है।

इन इन्द्रों की परिषदों के सम्बन्ध में जैसा जीवाभिगम सूत्र में बतलाया गया है, वैसा ही यहाँ समझना चाहिए।[1]

इन्द्रों के जितने-जितने सामानिक देव होते हैं, अंगरक्षक देव उनसे चार गुने होते हैं। सबके यान-विमान एक-एक लाख योजन विस्तीर्ण होते हैं तथा उनकी ऊँचाई स्व-स्व-विमान-प्रमाण होती है। सबके महेन्द्रध्वज एक-एक हजार योजन विस्तीर्ण होते हैं।

शक्र के अतिरिक्त सब मन्दर पर्वत पर समवसृत होते हैं, भगवान् तीर्थंकर को वन्दन-नमन करते हैं, पर्युपासना करते हैं।

चमरेन्द्र आदि का आगमन

१५२. तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरे असुरिन्दे, असुरराया चमरचञ्चाए रायहाणीए, सभाए सुहम्माए, चमरंसि सीहासणंसि, चउसट्ठीए सामाणिअसाहस्सीहिं, तायत्तीसाए तायत्तीसेहिं, चउहिं लोगपालेहिं, पञ्चहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं, तिहिं परिसाहिं, सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणियाहिवईहिं चउहिं चउसट्ठीहिं आयरक्खसाहस्सीहिं अण्णेहि अ जहा सक्के, णवरं इमं णाणत्तं— दुमो पायत्ताणीआहिवई, ओघस्सरा घण्टा, विमाणं पण्णासं जोअणसहस्साइं, महिन्दज्झओ पञ्चजोअणसयाइं, विमाणकारी आभिओगिओ देवो अवसिट्ठं तं चेव जाव मन्दरे समोसरइ पज्जुवासइत्ति।

तेणं कालेणं तेणं समएणं बली असुरिन्दे, असुरराया एवमेव णवरं सट्ठी सामाणिअसाहस्सीओ, चउग्गुणा आयरक्खा, महादुमो पायत्ताणीआहिवई, महाओहस्सरा घण्टा सेसं तं चेव परिसाओ जहा जीवाभिगमे इति।

तेणं कालेणं तेणं समएणं धरणे तहेव, णाणत्तं छ सामाणिअसाहस्सीओ छ अग्गमहिसीओ, चउग्गुणा आयरक्खा मेघस्सरा घण्टा भद्दसेणो पायत्ताणीयाहिवई, विमाणं पणवीसं जोअणसहस्साइं, महिन्दज्झओ अद्धाइज्जाइं जोअणसयाइं, एवमसुरिन्दवज्जिआणं भवणवासिइंदाणं, णवरं असुराणं ओघस्सरा घण्टा, णागाणं मेघस्सरा, सुवण्णाणं हंसस्सरा, विज्जूणं कोंचस्सरा, अग्गीणं मंजुस्सरा, दिसाणं मंजुघोसा, उदहीणं सुस्सरा, दीवाणं महुरस्सरा, वाऊणं णंदिस्सरा, थणिआणं णंदिघोसा।

---

१. देखिए जीवाभिगमप्रतिपत्ति

चउसट्ठी सट्ठी खलु छच्च, सहस्सा उ असुर-वज्जाणं ।
सामाणिआ उ एए, चउग्गुणा आयरक्खा उ ।। १ ।।

दाहिणिल्लाणं पायत्ताणीआहिवई भद्दसेणो, उत्तरिल्लाणं दक्खोत्ति। वाणमन्तरजोइसिआ णेअव्वा एवं चेव, णवरं चत्तारि सामाणिअसाहस्सीओ चत्तारि अग्गमहिसीओ, सोलस आयरक्ख-सहस्सा, विमाणा सहस्सं, महिन्दज्झया पणवीसं जोअण-सयं, घण्टा दाहिणाणं मंजुस्सरा, उत्तराणं मंजुघोसा, पायत्ताणीआहिवई विमाणकारी अ आभिओगा देवा। जोइसिआणं सुस्सरा सुस्सर-णिग्घोसाओ घण्टाओ मन्दरे समोसरणं जाव[1] पज्जुवासंतित्ति ।

[१५२] उस काल, उस समय चमरचंचा राजधानी में, सुधर्मा सभा में, चमर नामक सिंहासन पर स्थित असुरेन्द्र, असुरराज चमर अपने चौसठ हजार सामानिक देवों, तेतीस त्रायस्त्रिंश देवों. चार लोकपालों, सपरिवार पाँच अग्रमहिषियों, तीन परिषदों, सात सेनाओं, सात सेनापति देवों, चारों ओर चौसठ चौसठ हजार अंगरक्षक देवों तथा अन्य देवों से संपरिवृत होता हुआ सौधर्मेन्द्र शक्र की तरह आता है। इतना अन्तर है—उसके पदातिसेनाधिपति का नाम द्रुम है, उसकी घण्टा ओघस्वरा नामक है, विमान पचास हजार योजन विस्तीर्ण है, महेन्द्रध्वज पांच सौ योजन विस्तीर्ण है, विमानकारी आभियोगिक देव है। विशेष नाम नहीं। वाकी का वर्णन पूर्वानुरूप है। वह मन्दर-पर्वत पर समवसृत होता है......पर्युपासना करता है।

उस काल, उस समय असुरेन्द्र, असुरराज वलि उसी तरह मन्दर पर्वत पर समवसृत होता है। इतना अन्तर है—उसके सामानिक देव साठ हजार हैं, उनसे चार गुने आत्मरक्षक—अंगरक्षक देव हैं, महाद्रुम नामक पदाति-सेनाधिपति है, महौघस्वरा घण्टा है। शेष परिषद् आदि का वर्णन जीवाभिगम के अनुसार समझ लेना चाहिए।

इसी प्रकार धरणेन्द्र के आने का प्रसंग है। इतना अन्तर है—उसके सामानिक देव छह हजार हैं, अग्रमहिषियाँ छह हैं, सामानिक देवों से चार गुने अंगरक्षक देव हैं, मेघस्वरा घण्टा है, भद्रसेन पदाति-सेनाधिपति है। उसका विमान पच्चीस हजार योजन विस्तीर्ण है। उसके महेन्द्रध्वज का विस्तार अढाई सौ योजन है।

असुरेन्द्र वर्जित सभी भवनवासी इन्द्रों का ऐसा ही वर्णन है। इतना अन्तर है—असुरकुमारों के ओघस्वरा, नागकुमारों के मेघस्वरा, सुपर्णकुमारों—गरुडकुमारों के हंसस्वरा, विद्युत्कुमारों के क्रौञ्चस्वरा, अग्निकुमारों के मंजुस्वरा, दिक्कुमारों के मंजुघोपा, उदधिकुमारों के सुस्वरा, द्वीपकुमारों के मधुरस्वरा, वायुकुमारों के नन्दिस्वरा तथा स्तनितकुमारों के नन्दिघोषा नामक घण्टाएँ हैं।

चमरेन्द्र के चौसठ एवं वलीन्द्र के साठ हजार सामानिक देव हैं। असुरेन्द्रों को छोड़कर धरणेन्द्र आदि अठारह भवनवासी इन्द्रों के छह-छह हजार सामानिक देव हैं। सामानिक देवों से चार-चार गुने अंगरक्षक देव हैं।

चमरेन्द्र को छोड़कर दाक्षिणात्य भवनपति इन्द्रों के भद्रसेन नामक पदाति-सेनाधिपति है। वलीन्द्र को छोड़कर उत्तरीय भवनपति इन्द्रों के दक्ष नामक पदाति-सेनाधिपति है। इसी प्रकार

१. देखें सूत्र संख्या १५१

व्यन्तरेन्द्रों तथा ज्योतिष्केन्द्रों का वर्णन है। इतना अन्तर है—उनके चार हजार सामानिक देव, चार अग्रमहिषियाँ तथा सोलह हजार अंगरक्षक देव हैं, विमान एक हजार योजन विस्तीर्ण तथा महेन्द्रध्वज एक सौ पच्चीस योजन विस्तीर्ण है। दाक्षिणात्यों की मंजुस्वरा तथा उत्तरीयों की मंजुघोषा घण्टा है। उनके पदाति-सेनाधिपति तथा विमानकारी—विमानों की विकुर्वणा करने वाले आभियोगिक देव हैं।

ज्योतिष्केन्द्रों की सुस्वरा तथा सुस्वरनिर्घोषा—चन्द्रों की सुस्वरा एवं सूर्यों की सुस्वरनिर्घोषा नामक घण्टाएं हैं।

वे मन्दर पर्वत पर समवसृत होते हैं, पर्युपासना करते हैं।

अभिषेक-द्रव्य : उपस्थापन

१५३. तए णं से अच्चुए देविन्दे देवराया महं देवाहिवे आभिओगे देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! महत्थं, महग्घं, महारिहं, विउलं तित्थयराभिसेअं उवट्ठवेह।

तए णं ते आभिओगा देवा हट्ठतुट्ठ जाव[1] पडिसुणित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमन्ति २ त्ता वेउव्विअसमुग्घाएणं (समोहणंति) समोहणित्ता अट्ठसहस्सं सोवण्णिअकलसाणं एवं रुप्पमयाणं, मणिमयाणं, सुवण्णरुप्पमयाणं, सुवण्णमणिमयाणं, रुप्पमणिमयाणं, सुवण्णरुप्पमणिमयाणं, अट्ठसहस्सं भोमिज्जाणं, अट्ठसहस्सं चन्दणकलसाणं, एवं भिंगाराणं, आयंसाणं, थालाणं, पाईणं, सुपइट्ठगाणं, चित्ताणं रयणकरंडगाणं, वायकरंडगाणं, पुप्फचंगेरीणं, एवं जहा सूरिआभस्स सव्वचंगेरीओ सव्व-पडलगाइं विसेसिअतराइं भाणिअव्वाइं, सीहासणछत्तचामरतेल्लसमुग्ग (कोट्ठसमुग्गे, पत्त-चोएअ-तगरमेलाय-हरिआल-हिंगुलय-मणोसिला) सरिसवसमुग्गा, तालिअंटा अट्ठसहस्सं कडुच्छुगाणं विउव्वंति, विउव्वित्ता साहाविए विउव्विए अ कलसे जाव कडुच्छुए अ गिण्हित्ता जेणेव खीरोदए समुद्दे, तेणेव आगम्म खीरोदगं गिण्हन्ति २ त्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं पउमाइं जाव[2] सहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हन्ति, एवं पुक्खरोदाओ, (समय-खित्ते) भरहेरवयाणं मागहाइतित्थाणं उदगं [मट्टिअं च गिण्हन्ति २ त्ता एवं गंगाईणं महाणईणं (उदगं मट्टिअं च गिण्हन्ति), चुल्लहिमवन्ताओ सव्वतुअरे, सव्वपुप्फे, सव्वगन्धे, सव्वमल्ले, सव्वोसहीओ सिद्धत्थए य गिण्हन्ति २ त्ता पउमद्दहाओ दहोअगं उप्पलादीणि अ। एवं सव्वकुलपव्वएसु, वट्टवेअद्धेसु सव्वमहद्दहेसु, सव्ववासेसु, सव्वचक्कवट्टिविजएसु, वक्खारपव्वएसु, अंतरणईसु विभासिज्जा। (देवकुरुसु) उत्तरकुरुसु जाव सुदंसणभद्दसालवणे सव्वतुअरे (सव्वपुप्फे सव्वगन्धे सव्वमल्ले सव्वोसहीओ) सिद्धत्थए य गिण्हन्ति, एवं णन्दणवणाओ सव्वतुअरे जाव[3] सिद्धत्थए य सरसं च गोसीसचन्दणं दिव्वं च सुमणदामं गेण्हन्ति, एवं सोमणस-पंडगवणाओ अ सव्वतुअरे (सव्वपुप्फे सव्वगन्धे सव्वमल्ले सव्वोसहीओ सरसं च गोसीसचन्दणं दिव्वं च) सुमणदामं

१. देखें सूत्र-संख्या ४४
२. देखें सूत्र संख्या ७५
३. देखें सूत्र यही

दद्दरमलयसुगन्धे य गिण्हन्ति २ त्ता एगओ मिलंति २ त्ता जेणेव सामी तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता महत्थं (महग्घं महारिहं विउलं) तित्थयराभिसेअं उवट्ठवेंतित्ति।

[१५३] देवेन्द्र, देवराज, महान् देवाधिप अच्युत अपने आभियोगिक देवों को बुलाता है, उनसे कहता है—

देवानुप्रियो ! शीघ्र ही महार्थ—जिसमें मणि, स्वर्ण, रत्न आदि का उपयोग हो, महार्घ—जिसमें भक्ति-स्तवनादि का एवं वहुमूल्य सामग्री का प्रयोग हो, महार्ह—विराट् उत्सवमय, विपुल—विशाल तीर्थंकराभिषेक उपस्थापित करो—तदनुकूल सामग्री आदि की व्यवस्था करो।

यह सुनकर वे आभियोगिक देव हर्षित एवं परितुष्ट होते हैं। वे उत्तर-पूर्व दिशाभाग में—ईशान कोण में जाते हैं। वैक्रिय समुद्घात द्वारा अपने शरीर से आत्मप्रदेश बाहर निकालते हैं। आत्मप्रदेश बाहर निकालकर एक हजार आठ स्वर्णकलश, एक हजार आठ रजतकलश—चाँदी के कलश, एक हजार आठ मणिमय कलश, एक हजार आठ स्वर्ण-रजतमय कलश—सोने-चांदी—दोनों से बने कलश, एक हजार आठ स्वर्णमणिमय कलश—सोने और मणियों—दोनों से बने कलश, एक हजार आठ रजत-मणिमय कलश—चाँदी और मणियों से बने कलश, एक हजार आठ स्वर्ण-रजतमणिमय कलश—सोने, और चाँदी और मणियों-तीनों से बने कलश, एक हजार आठ भौमेय—मृत्तिकामय कलश, एक हजार आठ चन्दनकलश—चन्दनर्चित मंगलकलश, एक हजार आठ झारियाँ, एक हजार आठ दर्पण, एक हजार आठ थाल, एक हजार आठ पात्रियाँ—रकाबी जैसे छोटे पात्र, एक हजार आठ सुप्रतिष्ठक—प्रसाधनमंजूषा, एक हजार आठ विविध रत्नकरंडक—रत्न-मंजूषा, एक हजार आठ वातकरंडक—बाहर से चित्रित रिक्त करवे, एक हजार आठ पुष्पचंगेरी—फूलों की टोकरियाँ, राजप्रश्नीय सूत्र में सूर्याभदेव के अभिषेक-प्रसंग में विकुर्वित सर्वविध चंगेरियों, पुष्प-पटलों—फूलों के गुलदस्तों के सदृश चंगेरियाँ, पुष्प-पटल—संख्या में तत्समान, गुण में अतिविशिष्ट, एक हजार आठ सिंहासन, एक हजार आठ छत्र, एक हजार आठ चॅवर, एक हजार आठ तैल-समुद्गक—तैल के भाजन-विशेष—डिब्बे, (एक हजार आठ कोष्ठ-समुद्गक, एक हजार आठ पत्र-समुद्गक, एक हजार आठ चोय—सुगन्धित द्रव्यविशेषसमुद्गक, एक हजार आठ तगरसमुद्गक, एक हजार आठ एला-समुद्गक, एक हजार आठ हरितालसमुद्गक, एक हजार आठ हिंगुलसमुद्गक, एक हजार आठ मैनसिलसमुद्गक,) एक हजार आठ सर्षप—सरसों के समुद्गक, एक हजार आठ तालवृन्त—पंखे तथा एक हजार आठ धूपदान—धूप के कुड़छे—इनकी विकुर्वणा करते हैं। विकुर्वणा करके स्वाभाविक एवं विकुर्वित कलशों से धूपदान पर्यन्त सब वस्तुएँ लेकर, जहाँ क्षीरोद समुद्र है, वहाँ आकर क्षीररूप उदक—जल ग्रहण करते हैं। क्षीरोदक गृहीत कर उत्पल, पद्म, सहस्रपत्र आदि लेते हैं। पुष्करोद समुद्र से जल आदि लेते हैं। समयक्षेत्र—मनुष्यक्षेत्रवर्ती पुष्करवर द्वीपार्ध के भरत, ऐरवत के मागध आदि तीर्थो का जल तथा मृत्तिका लेते हैं। वैसा कर गंगा आदि महानदियों का जल एवं मृतिका ग्रहण करते हैं। फिर क्षुद्र हिमवान् पर्वत से तुबर—आमलक आदि सब कषायद्रव्य—कसैले पदार्थ, सब प्रकार के पुष्प, सब प्रकार के सुगन्धित पदार्थ, सब प्रकार की मालाएँ, सब प्रकार की औषधियाँ तथा सफेद सरसों लेते हैं। उन्हें लेकर पद्मद्रह से उसका जल एवं कमल आदि ग्रहण करते हैं।

इसी प्रकार समस्त कुलपर्वतों—सर्वक्षेत्रों को विभाजित करने वाले हिमवान् आदि पर्वतों, वृत्तवैताढ्य पर्वतों, पद्म आदि सब महाद्रहों, भरत आदि समस्त क्षेत्रों, कच्छ आदि सर्व चक्रवर्ति-

विजयों, माल्यवान्, चित्रकूट आदि वक्षस्कार पर्वतों, ग्राहावती आदि अन्तर-नदियों से जल एवं मृत्तिका लेते हैं। (देवकुरु से) उत्तरकुरु से पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्व भरतार्ध, पश्चिम भरतार्ध आदि स्थानों से सुदर्शन—पूर्वार्धमेरु के भद्रशाल वन पर्यन्त सभी स्थानों से समस्त कषायद्रव्य (सब प्रकार के पुष्प, सब प्रकार के सुगन्धित पदार्थ, सब प्रकार की मालाएँ, सब प्रकार की औषधियाँ) एवं सफेद सरसों लेते हैं। इसी प्रकार नन्दन वन से सर्वविध कषायद्रव्य, सफेद सरसों, सरस—ताजा गोशीर्ष चन्दन तथा दिव्य पुष्पमाला लेते हैं। इसी भाँति सौमनस एवं पण्डक वन से सर्व-कषाय-द्रव्य (सर्व पुष्प, सर्व गन्ध, सर्व माल्य, सर्वोषधि, सरस गोशीर्ष चन्दन तथा दिव्य) पुष्पमाला एवं दर्दर और मलय पर्वत पर उद्भूत चन्दन की सुगन्ध से आपूर्ण सुरभिमय पदार्थ लेते हैं। ये सब वस्तुएँ लेकर एक स्थान पर मिलते हैं। मिलकर, जहाँ स्वामी—भगवान् तीर्थंकर होते हैं, वहाँ आते हैं। वहाँ आकर महार्थ (महार्घ, महार्ह, विपुल) तीर्थंकराभिषेकोपयोगी क्षीरोदक आदि वस्तुएँ उपस्थित करते हैं—अच्युतेन्द्र के समुख रखते हैं।

अच्युतेन्द्र द्वारा अभिषेक : देवोल्लास

१५४. तए णं से अच्चुए देविन्दे दसहिं सामाणिअसाहस्सीहिं, तायत्तीसाए तायत्तीसएहिं, चउहिं लोगपालेहिं, तिहिं परिसाहिं, सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणिआहिवईहिं, चत्तालीसाए आयरक्ख-देवसाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे तेहिं साभाविएहिं विउव्विएहि अ वरकमलपइट्ठाणेहिं, सुरभिवरवारि-पडिपुण्णेहिं, चन्दणकयचच्चाएहिं, आविद्धकण्ठेगुणेहिं, पउमुप्पलपिहाणेहिं, करयलसुकुमारपरिग्ग-हिएहिं अट्ठसहस्सेणं सोवण्णिआणं कलसाणं जाव अट्ठसहस्सेणं भोमेज्जाणं (अट्ठसहस्सेणं चन्दनकलसाणं) सव्वोदएहिं, सव्वमट्टिआहिं, सव्वतुअरेहिं, (सव्वपुप्फेहिं, सव्वगन्धेहिं सव्वमल्लेहिं) सव्वोसहि-सिद्धत्थएहिं, सव्विड्ढीए जाव[1] रवेणं महया २ तित्थयराभिसेएणं अभिसिंचंति, तए णं सामिस्स अभिसेअंसि वट्टमाणंसि इंदाइआ देवा छत्तचामरधूवकडुच्छुअपुप्फगन्ध (मल्लचुण्णाइ) हत्थगया हट्ठतुट्ठ जाव[2] वज्जसूलपाणी पुरओ चिट्ठंति पंजलिउडा इति, एवं विजयाणुसारेण (अप्पेगइआ, देवा पंड-गवणं मंचाइमंचकलिअं करेंति,) अप्पेगइगा देवा आसिअसंमज्जिओवलित्तसित्तसुइसम्मट्ठरत्थंतरावण-वीहिअं करेंति, (कालागुरुपवरकुंदरुक्कतुरुक्क डज्झंतधूवमघमघंतगंधुद्धुआभिरामं सुगंधवरगंधियं) गन्धवट्टिभूअंति, अप्पेगइआ हिरण्णवासं वासिंति एवं सुवण्ण-रयण-वइर-आभरण-पत्त-पुप्फ-फल-बीअ-मल्ल-गन्ध-वण्ण-(वत्थ-) चुण्णवासं वासंति, अप्पेगइआ हिरण्णविहिं भाइंति एवं (सुवण्णविहिं, रयणविहिं, वइरविहिं, आभरणविहिं, पत्तविहिं, पुप्फविहिं, फलविहिं, बीअविहिं, मल्लविहिं, गन्ध-विहिं, वण्णविहिं,) चुण्णविहिं भाइंति, अप्पेगइया चउव्विहं वज्जं वाएन्ति तं जहा—ततं १, विततं २, घणं ३, भुसिरं ४, अप्पेगइआ चउव्विहं गेअं गायन्ति, तं जहा—उक्खित्तं १, पायत्तं २, मन्दायईयं ३, रोइआवसाणं ४, अप्पेगइआ चउव्विहं णट्टं णच्चन्ति, तं जहा—अंचिअं, दुअं, आरभडं, भसोलं, अप्पेगइआ चउव्विहं अभिणयं अभिणेंति, तं जहा—दिट्ठंतिअं, पाडिस्सुइअं, सामण्णोवणिवाइअं,

---

१. देखें सूत्र संख्या ५२
२. देखें सूत्र संख्या ४४

लोगमज्झावसाणिअं, अप्पेगइया बत्तीसइविहं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेन्ति, अप्पेगइआ उप्पयनिवयं, निवयउप्पयं, संकुचिअपसारिअं (रिआरिअं), भन्तसंभन्तणामं दिव्वं नट्टविहिं उवदंसन्तीति, अप्पेगइआ तंडवेंति, अप्पेगइआ लासेन्ति।

अप्पेगइआ पीणेन्ति, एवं बुक्कारेन्ति, अप्फोडेन्ति, वग्गन्ति, सीहणायं णदन्ति, अप्पेगइया सव्वाइं करेन्ति, अप्पेगइआ हयहेसिअं एवं हत्थिगुलुगुलाइअं, रहघणघणाइअं, अप्पेगइआ तिण्णिवि, अप्पेगइआ उच्छोलन्ति, अप्पेगइआ पच्छोलन्ति, अप्पेगइआ तिवइं छिदन्ति, पायदद्दरयं करेन्ति, भूमिचवेडे दलयन्ति, अप्पेगइआ महया सद्देणं रावेंति एवं संजोगा विभासिअव्वा, अप्पेगइआ हक्कारेन्ति, एवं पुक्कारेन्ति, थक्कारेन्ति, ओवयंति, उप्पयंति, परिवयंति, जलन्ति, तवंति, पयवंति, गज्जंति, विज्जुआयंति, वासिंति, अप्पेगइआ देवुक्कलिअं करेंति एवं देवकहकहगं करेंति, अप्पेगइआ दुहुदुहुगं करेंति, अप्पेगइआ विकिअभूयाइं रूवाइं विउव्वित्ता पणच्चंति एवमाइ विभासेज्जा जहा विजयस्स जाव सव्वओ समन्ता आहावेंति परिधावेंतित्ति।

[१५४] जब अभिषेकयोग्य सब सामग्री उपस्थापित की जा चुकी, तब देवेन्द्र अच्युत अपने दश हजार सामानिक देवों, तेतीस त्रायस्त्रिंश देवों, चार लोकपालों, तीन परिषदों, सात सेनाओं, सात सेनापति-देवों तथा चालीस हजार अंगरक्षक देवों से परिवृत होता हुआ स्वाभाविक एवं विकुर्वित उत्तम कमलों पर रखे हुए, सुगन्धित, उत्तम जल से परिपूर्ण, चन्दन से चर्चित, गलवे में मोली बांधे हुए, कमलों एवं उत्पलों से ढँके हुए, सुकोमल हथेलियों पर उठाये हुए एक हजार आठ सोने के कलशों (एक हजार आठ चाँदी के कलशों, एक हजार आठ मणियों के कलशों, एक हजार आठ सोने एवं चाँदी के मिश्रित कलशों, एक हजार आठ स्वर्ण तथा मणियों के मिश्रित कलशों, एक हजार आठ चाँदी और मणियों के मिश्रित कलशों, एक हजार आठ सोने, चाँदी और मणियों के मिश्रित कलशों) एक हजार आठ मृत्तिकामय—मिट्टी के कलशों, (एक हजार आठ चन्दनचर्चित मंगलकलशों) के सब प्रकार के जलों, सब प्रकार की मृत्तिकाओं, सब प्रकार के कषाय—कसैले पदार्थों, (सब प्रकार के पुष्पों, सब प्रकार के सुगन्धित पदार्थों, सब प्रकार की मालाओं,) सब प्रकार की ओषधियों एवं सफेद सरसों द्वारा सब प्रकार की ऋद्धि-वैभव के साथ तुमुल वाद्यध्वनिपूर्वक भगवान् तीर्थंकर का अभिषेक करता है।

अच्युतेन्द्र द्वारा अभिषेक किये जाते समय अत्यन्त हर्षित एवं परितुष्ट अन्य इन्द्र आदि देव छत्र, चँवर, धूपपान, पुष्प, सुगन्धित पदार्थ, (मालाएँ, चूर्ण—सुगन्धित द्रव्यों का बुरादा,) वज्र, त्रिशूल हाथ में लिये, अंजलि बाँधे खड़े रहते हैं। एतत्सम्बद्ध वर्णन जीवाभिगम सूत्र में आये विजयदेव के अभिषेक के प्रकरण के सदृश है।

(कतिपय देव पण्डक वन में मंच, अतिमंच—मंचों के ऊपर मंच बनाते हैं,) कतिपय देव पण्डक वन के मार्गों में, जो स्थान, स्थान से आनीत चन्दन आदि वस्तुओं के अपने बीच यत्रतत्र ढेर लगे होने से बाजार की ज्यों प्रतीत होते हैं, जल का छिड़काव करते हैं, उनका सम्मार्जन करते हैं—सफाई करते हैं, उन्हें उपलिप्त करते हैं—लीपते हैं, ठीक करते हैं। यों उसे शुचि—पवित्र—उत्तम एवं स्वच्छ बनाते हैं, (काले अगर, उत्तम कुन्दरुक, लोबान तथा धूप की गमगमाती महक से उत्कृष्ट सौरभमय,) सुगन्धित धूममय बनाते हैं।

कई एक वहाँ चाँदी बरसाते हैं। कई स्वर्ण, रत्न, हीरे, गहने, पत्ते, फूल, फल, बीज, मालाएँ, गन्ध—सुगन्धित द्रव्य, वर्ण—हिंगुल आदि रंग (वस्त्र) तथा चूर्ण—सौरभमय पदार्थों का बुरादा बरसाते हैं। कई एक मांगलिक प्रतीक के रूप में अन्य देवों को रजत भेंट करते हैं, (कई एक स्वर्ण, कई एक रत्न, कई एक हीरे, कई एक आभूषण, कई एक पत्र, कई एक पुष्प, कई एक फल, कई एक बीज, कई एक मालाएँ, कई एक गन्ध, कई एक वर्ण तथा) कई एक चूर्ण भेंट करते हैं।

कई एक तत्—वीणा आदि, कई एक वितत—ढोल आदि, कई एक घन—ताल आदि तथा कई एक शुषिर—वांसुरी आदि चार प्रकार के वाद्य बजाते हैं।

कई एक उत्क्षिप्त—प्रथमत: समारभ्यमाण—पहले शुरू किये गये, पादात्त—पादबद्ध—छन्द के चार भागरूप पादों में बँधे हुए, मंदाय—बीच-बीच में मूर्च्छना आदि के प्रयोग द्वारा धीरे-धीरे गाये जाते तथा रोचितावसान—यथोचित लक्षणयुक्त होने से अवसान पर्यन्त समुचित निर्वाहयुक्त—ये चार प्रकार के गेय—संगीतमय रचनाएँ गाते हैं।

कई एक अञ्चित, द्रुत, आरभट तथा भसोल नामक चार प्रकार का नृत्य करते हैं। कई दार्ष्टान्तिक, प्रातिश्रुतिक, सामान्यतोविनिपातिक एवं लोकमध्यावसानिक—चार प्रकार का अभिनय करते हैं। कई बत्तीस प्रकार की नाटच-विधि उपदर्शित करते हैं। कई उत्पात-निपात—आकाश में ऊँचा उछलना—नीचे गिरना—उत्पातपूर्वक निपातयुक्त, निपातोत्पात—निपातपूर्वक उत्पातयुक्त, संकुचित-प्रसारित—नृत्यक्रिया में पहले अपने आपको संकुचित करना—सिकोड़ना, फिर प्रसृत करना—फैलाना, (रिआरिय—रंगमंच से नृत्य-मुद्रा में पहले निकलना, फिर वहाँ आना) तथा भ्रान्त-संभ्रान्त—जिसमें प्रदर्शित अद्‌भुत चरित्र देखकर परिषद्वर्ती लोग—प्रेक्षकवृन्द भ्रमयुक्त हो जाएँ, आश्चर्ययुक्त हो जाएँ, वैसी अभिनयशून्य, गात्रविक्षेपमात्र नाटचविधि उपदर्शित करते हैं। कई ताण्डव—प्रोद्धत-प्रबल नृत्य करते हैं, कई लास्य—सुकोमल नृत्य करते हैं।

कई एक अपने को पीन—स्थूल बनाते हैं, प्रदर्शित करते हैं, कई एक बूत्कार····आस्फालन करते हैं—बैठते हुए पुतों द्वारा भूमि आदि का आहनन करते हैं, कई एक वल्गन करते हैं—पहलवानों की ज्यों परस्पर बाहुओं द्वारा भिड़ जाते हैं, कई सिंहनाद करते हैं, कई पीनत्व, बूत्कार—आस्फालन, वल्गन एवं सिंहनाद क्रमश: तीनों करते हैं, कई घोड़ों की ज्यों हिनहिनाते हैं, कई हाथियों की ज्यों गुलगुलाते हैं—मन्द-मन्द चिंघाड़ते हैं, कई रथों की ज्यों घनघनाते हैं, कई घोड़ों की ज्यों हिनहिनाहट, हाथियों की ज्यों गुलगुलाहट तथा रथों की ज्यों घनघनाहट—क्रमश: तीनों करते हैं, कई एक आगे से मुख पर चपत लगाते हैं, कई एक पीछे से मुख पर चपत लगाते हैं, कई एक अखाड़े में पहलवान की ज्यों पैंतरे बदलते हैं, कई एक पैर से भूमि का आस्फोटन करते हैं—जमीन पर पैर पटकते हैं, कई हाथ से भूमि का आहनन करते हैं—जमीन पर थाप मारते हैं, कई जोर-जोर से आवाज लगाते हैं। कई इन क्रिया-कलापों को—करतवों को दो-दो के रूप में, तीन-तीन के रूप में मिलाकर प्रदर्शित करते हैं। कई हुंकार करते हैं। कई पूत्कार करते हैं। कई थक्कार करते हैं—थक्-थक् शब्द उच्चारित करते हैं। कई अवपतित होते हैं—नीचे गिरते हैं। कई उत्पतित होते हैं—ऊँचे उछलते हैं। कई परिपतित होते है—तिरछे गिरते हैं। कई ज्वलित होते हैं—अपने को ज्वालारूप में प्रदर्शित करते हैं। कई तप्त होते हैं—मन्द अंगारों का रूप धारण करते हैं। कई प्रतप्त होते हैं—दीप्त अंगारों का रूप धारण करते हैं। कई गर्जन करते हैं। कई बिजली की ज्यों चमकते हैं। कई वर्षा के रूप के

परिणत होते हैं। कई वातूल की ज्यों चक्कर लगाते हैं। कई अत्यन्त प्रमोदपूर्वक कहकहाहट करते हैं। कई 'दुहु-दुहु' करते हैं—उल्लासवश वैसी ध्वनि करते हैं। कई लटकते होठ, मुँह बाये, आँखे फाड़े—ऐसे विकृत—भयानक भूत-प्रेतादि जैसे रूप विकुर्वित कर वेतहाशा नाचते हैं। कई चारों ओर कभी धीरे-धीरे, कभी जोर-जोर से दौड़ लगाते हैं। जैसा विजयदेव का वर्णन है, वैसा ही यहाँ कथन करना चाहिए—समझना चाहिए।

अभिषेकोपक्रम

१५५. तए णं से अच्चुइंदे सपरिवारे सामिं तेणं महया महया अभिसेएणं अभिसिंचइ २ त्ता करयलपरिग्गहिअं जाव[1] मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ २ त्ता ताहिं इट्ठाहिं जाव[2] जयजयसद्दं पउंजति, पउंजित्ता जाव[3] पम्हलसुकुमालाए सुरभीए, गन्धकासाईए गायाइं लूहेइ २ त्ता एवं (लूहित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपइ २ त्ता नासानीसासवायवोज्झं, चक्खुहरं, वण्णफरिसजुत्तं, हयलालापेलवाइरेगधवलं कणगखचिअंतकम्मं देवदूसजुअलं निअंसावेइ २ त्ता) कप्परुक्खगंपिव अलंकियविभूसिअं करेइ २ त्ता (सुमिणदामं पिणद्धावेइ) णट्टविहिं उवदंसेइ २ त्ता अच्छेहिं, सण्हेहिं, रययामएहिं अच्छरसातण्डुलेहिं भगवओ सामिस्स पुरओ अट्ठट्ठमंगलगे आलिहइ, तं जहा—

दप्पण १, भद्दासणं २, वद्धमाण ३, वरकलस ४, मच्छ ५, सिरिवच्छा ६।
सोत्थिय ७, णन्दावत्ता ८, लिहिआ अट्ठट्ठमंगलगा ॥१॥

लिहिऊण करेइ उवयारं, किं ते? पाडल-मल्लिअ-चंपगऽ-सोग-पुन्नाग-चूअमंजरि-णवमालिअ-बउल- तिलय-कणवीर-कुंद-कुज्जग-कोरंट-पत्त - दमणग-वरसुरभि-गन्धगन्धिअस्स, कयग्गहगहिअकर-यलपब्भट्ठविप्पमुक्कस्स, दसद्धवण्णस्स, कुसुमणिअरस्स तत्थ चित्तं जण्णुस्सेहप्पमाणमित्तं ओहिनिकरं करेत्ता चन्दप्पभरयणवइरवेरुलिअविमलदण्डं, कंचणमणिरयणभत्तिचित्तं, कालागुरुपवर-कुंदुरुक्कतुरुक्कधूवगंधुत्तमाणुविद्धं च धूमवट्टिं विणिम्मुअंतं, वेरुलिअमयं कडुच्छुअं पग्गहित्तु पयएणं धूवं दाऊण जिणवरिंदस्स सत्तट्ठ पयाइं ओसरित्ता दसंगुलिअं अंजलिं करिअ मत्थयंमि पयओ अट्ठसयविसुद्धगन्धजुत्तेहिं, महावित्तेहिं अपुणरुत्तेहिं, अत्थजुत्तेहिं संथुणइ २ त्ता वामं जाणुं अंचेइ २ त्ता (दाहिणं जाणुं धरणिअलंसि निवाडेइ) करयलपरिग्गहिअं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—णमोऽत्थु ते सिद्ध-बुद्ध-णीरय-समण-सामाहिअ-समत्त-समजोगि-सल्लगत्तण-णिब्भय-णीरागदोस-णिम्मम-णिस्संग-णीसल्ल-माणमूरण-गुणरयण-सीलसागर-मणंत-मप्पमेयभविअधम्मवरचाउ-रंतचक्कवट्टी, णमोऽत्थु ते अरहओत्ति कट्टु एवं वन्दइ णमंसइ २ त्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे

---

१. देखें सूत्र संख्या ४४
२. देखें सूत्र संख्या ६८
३. देखें सूत्र संख्या ६८

जाव[1] पज्जुवासइ। एवं जहा अच्चुअस्स तहा जाव ईसाणस्स भाणिअव्वं, एवं भवणवइवाणमन्तर-जोइसिआ य सूरपज्जवसाणा सएणं परिवारेणं पत्तेअं २ अभिसिंचंति।

तए णं से ईसाणे देविन्दे देवराया पञ्च ईसाणे विउव्वइ २ त्ता एगे ईसाणे भगवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं गिण्हइ २ त्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे, एगे ईसाणे पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ, दुवे ईसाणा उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेन्ति, एगे ईसाणे पुरओ सूलपाणी चिट्ठइ।

तए णं से सक्के देविन्दे, देवराया आभिओगे देवे सद्दावेइ २ त्ता एसोवि तह चेव अभिसेआणत्तिं देइ तेऽवि तह चेव उवणेन्ति। तए णं से सक्के देविन्दे, देवराया भगवओ तित्थयरस्स चउद्दिसिं चत्तारि धवलवसभे विउव्वेइ। सेए संखदलविमल-निम्मलदधिघणगोखीरफेणरयणिगरप्पगासे पासाईए दरसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे। तए णं तेसिं चउण्हं धवलवसभाणं अट्ठहिं सिंगेहिंतो अट्ठ तोअधाराओ णिग्गच्छन्ति, तए णं ताओ अट्ठ तोअधाराओ उद्धं वेहासं उप्पयन्ति २ त्ता एगओ मिलायन्ति २ त्ता भगवओ तित्थयरस्स मुद्धाणंसि निवयंति। तए णं सक्के देविन्दे, देवराया चउरासीईए सामाणिअ-साहस्सीहिं एअस्सवि तहेव अभिसेओ भाणिअव्वो जाव णमोऽत्थु ते अरहओत्ति कट्टु वन्दइ णमंसइ जाव[2] पज्जुवासइ।

[१५५] सपरिवार अच्युतेन्द्र विपुल, वृहत् अभिषेक-सामग्री द्वारा स्वामी का—भगवान् तीर्थंकर का अभिषेक करता है।

अभिषेक कर वह हाथ जोड़ता है, अंजलि बाँधे मस्तक से लगाता है, 'जय-विजय' शब्दों द्वारा भगवान् की वर्धापना करता है, इष्ट—प्रिय वाणी द्वारा 'जय-जय' शब्द उच्चारित करता है। वैसा कर वह रोएँदार, सुकोमल, सुरभित, काषायित—हरीतकी, विभीतक, आमलक आदि कसैली वनौषधियों से रंगे हुए अथवा कषाय—लाल या गेरुए रंग के वस्त्र—तौलिये द्वारा भगवान् का शरीर पोंछता है। शरीर पोंछकर वह उनके अंगों पर ताजे गोशीर्ष चन्दन का लेप करता है। वैसा कर नाक से निकलने वाली हवा से भी जो उड़ने लगें, इतने बारीक और हलके, नेत्रों को आकृष्ट करने वाले, उत्तम वर्ण एवं स्पर्शयुक्त, घोड़े के मुख की लार के समान कोमल, अत्यन्त स्वच्छ, श्वेत, स्वर्णमय तारों से अन्तःखचित दो दिव्य वस्त्र—परिधान एवं उत्तरीय उन्हें धारण कराता है। वैसा कर वह उन्हें कल्पवृक्ष की ज्यों अलंकृत करता है। (पुष्प-माला पहनाता है), नाट्य-विधि प्रदर्शित करता है, उजले, चिकने, रजतमय, उत्तम रसपूर्ण चावलों से भगवान् के आगे आठ-आठ मंगल-प्रतीक आलिखित करता है, जैसे—१. दर्पण, २. भद्रासन, ३. वर्धमान, ४. वर कलश, ५. मत्स्य, ६. श्रीवत्स, ७. स्वस्तिक तथा ८. नन्द्यावर्त।

उनका आलेखन कर वह पूजोपचार करता है। गुलाब, मल्लिका, चम्पा, अशोक, पुन्नाग, आम्र-मंजरी, नवमल्लिका, वकुल, तिलक, कनेर, कुन्द, कुब्जक, कोरण्ट, मरुवक तथा दमनक के उत्तम सुगन्धयुक्त फूलों को कचग्रह—रति-कलह में प्रेमी द्वारा प्रेयसी के केशों को गृहीत किये जाने की ज्यों गृहीत करता है—कोमलता से हाथ में लेता है। वे सहज रूप में उसकी हथेलियों से गिरते हैं,

१. देखें सूत्र संख्या ६८
२. देखें सूत्र संख्या ६८

छूटते हैं, इतने गिरते हैं कि उन पँचरंगे पुष्पों का घुटने-घुटने जितना ऊँचा एक विचित्र ढेर लग जाता है। चन्द्रकान्त आदि रत्न, हीरे तथा नीलम से बने उज्ज्वल दंडयुक्त, स्वर्ण मणि एवं रत्नों से चित्रांकित, काले अगर, उत्तम कुन्दरुक्क, लोबान एवं धूप से निकलती श्रेष्ठ सुगन्ध से परिव्याप्त, धूम-श्रेणी—धूएँ की लहर छोड़ते हुए नीलम-निर्मित धूपदान को प्रगृहीत कर—पकड़ कर प्रयत्न-पूर्वक—सावधानी से, अभिरुचि से धूप देता है। धूप देकर जिनवरेन्द्र के सम्मुख सात-आठ कदम चलकर, हाथ जोड़कर अंजलि बाँधे उन्हें मस्तक से लगाकर उदात्त, अनुदात्त आदि स्वरोच्चारण में जागरूक शुद्ध पाठयुक्त, अपुनरुक्त अर्थयुक्त एक सौ आठ महावृत्तों—महाचरित्रों—महिमामय काव्यों—कविताओं द्वारा उनकी स्तुति करता है। वैसा कर वह अपना बायां घुटना ऊँचा उठाता है, दाहिना घुटना भूमितल पर रखता है, हाथ जोड़ता है, अंजलि बांधे उन्हें मस्तक से लगाता है, कहता है—हे सिद्ध—मोक्षोद्यत! बुद्ध—ज्ञात-तत्त्व! नीरज—कर्मरजोरहित! श्रमण—तपस्विन्! समाहित—अनाकुल-चित्त! समाप्त—कृत-कृत्य! समयोगिन्—कुशल-मनोवाक्काययुक्त! शल्य-कर्तन—कर्म-शल्य को विध्वस्त करने वाले! निर्भय—भीतिरहित! नीरागदोष—राग-द्वेषरहित! निर्मम—निःसंग, निर्लेप! निःशल्य—शल्यरहित! मान-मूरण—मान-मर्दन—अहंकार का नाश करने वाले! गुण-रत्न-शील-सागर—गुणों में रत्नस्वरूप—अति उत्कृष्ट शील—ब्रह्मचर्य के सागर! अनन्त—अन्तरहित! अप्रमेय—अपरिमित ज्ञान तथा गुणयुक्त, धर्म-साम्राज्य के भावी उत्तम चातुरन्त-चक्रवर्ती—चारों गतियों—देवगति, मनुष्यगति, तिर्यञ्चगति एवं नरकगति का अन्त करने वाले धर्मचक्र के प्रवर्तक! अर्हत्—जगत्पूज्य अथवा कर्म-रिपुओं का नाश करने वाले! आपको नमस्कार हो। इन शब्दों में वह भगवान् को वन्दन करता है, नमन करता है। उनके न अधिक दूर, न अधिक समीप अवस्थित होता हुआ शुश्रूषा करता है, पर्युपासना करता है।

अच्युतेन्द्र की ज्यों प्राणतेन्द्र यावत् ईशानेन्द्र द्वारा सम्पादित अभिषेक-कृत्य का भी वर्णन करना चाहिए। भवनपति, वानव्यन्तर एवं ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र, सूर्य—सभी इसी प्रकार अपने-अपने देव-परिवार सहित अभिषेक-कृत्य करते हैं।

देवेन्द्र, देवराज ईशान पांच ईशानेन्द्रों की विकुर्वणा करता है—पांच ईशानेन्द्रों के रूप में परिवर्तित हो जाता है। एक ईशानेन्द्र भगवान् तीर्थंकर को अपनी हथेलियों में संपुट द्वारा उठाता है। उठाकर पूर्वाभिमुख होकर सिंहासन पर बैठता है। एक ईशानेन्द्र पीछे छत्र धारण करता है। दो ईशानेन्द्र दोनों ओर चँवर डुलाते हैं। एक ईशानेन्द्र हाथ में त्रिशूल लिये आगे खड़ा रहता है।

तब देवेन्द्र देवराज शक्र अपने आभियोगिक देवों को बुलाता है। बुलाकर उन्हें अच्युतेन्द्र की ज्यों अभिषेक-सामग्री लाने की आज्ञा देता है। वह अभिषेक-सामग्री लाते हैं। फिर देवेन्द्र, देवराज शक्र भगवान् तीर्थंकर की चारों दिशाओं में शंख के चूर्ण की ज्यों विमल-निर्मल—अत्यन्त निर्मल, गहरे जमे हुए, बँधे हुए दधि-पिण्ड, गो-दुग्ध के झाग एवं चन्द्र-ज्योत्स्ना की ज्यों सफेद, चित्त को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय—देखने योग्य, अभिरूप—मनोज्ञ—मन को अपने में रमा लेने वाले, प्रतिरूप—मन में बस जाने वाले चार धवल वृषभों—बैलों की विकुर्वणा करता है। उन चारों बैलों के आठ सींगों में से आठ जलधाराएँ निकलती हैं, वे जलधाराएँ ऊपर आकाश में जाती हैं। ऊपर जाकर, आपस में मिलकर वे एक हो जाती हैं। एक होकर भगवान् तीर्थंकर के मस्तक पर निपतित होती हैं। अपने चौरासी हजार सामानिक आदि देव-परिवार से परिवृत देवेन्द्र, देवराज शक्र भगवान्

तीर्थंकर का अभिषेक करता है ! अर्हत् । आपको नमस्कार हो, यों कहकर वह भगवान् को वन्दन, नमन करता है, उनकी पर्युपासना करता है। यहां तक अभिषेक का सारा वर्णन अच्युतेन्द्र द्वारा संपादित अभिषेक के सदृश है।

अभिषेक-समापन

१५६. तए णं से सक्के देविंदे, देवराया पंच सक्के विउव्वइ २ त्ता एगे सक्के भयवं तित्थयरं करयलपुडेणं गिण्हइ, एगे सक्के पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ, दुवे सक्का उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेंति, एगे सक्के वज्जपाणी पुरओ पगड्ढइ। तए णं से सक्के चउरासीईए सामाणिअसाहस्सीहिं जाव अण्णेहि अ भवणवइवाणमंतरजोइसवेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि अ सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव[1] णाइअरवेणं ताए उक्किट्ठाए जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणयरे जेणेव जम्मणभवणे जेणेव तित्थयरमाया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता भगवं तित्थयरं माऊए पासे ठवइ २ त्ता तित्थयरपडिरूवगं पडिसाहरइ २ त्ता ओसोवणिं पडिसाहरइ २ त्ता एगं महं खोमजुअलं कुंडलजुअलं च भगवओ तित्थयरस्स उस्सीसगमूले ठवेइ २ त्ता एगं महं सिरिदामगंडं तवणिज्जलंबूसगं, सुवण्णपयरगमंडिअं, णाणामणि-रयणविविहहारद्धहारउवसोहिअसमुदयं, भगवओ तित्थयरस्स उल्लोअंसि निक्खिवइ तण्णं भगवं तित्थयरे अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणे २ सुहंसुहेणं अभिरममाणे चिट्ठइ।

तए णं से सक्के देविंदे, देवराया वेसमणं देवं सद्दावेइ २ त्ता एवं वदासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! वत्तीसं हिरण्णकोडीओ, वत्तीसं सुवण्णकोडीओ, वत्तीसं णंदाइं, वत्तीसं भद्दाइं, सुभगे, सुभगरूवजुव्वणलावण्णे अ भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहराहि २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणाहि।

तए णं से वेसमणे देवे सक्केणं (देविंदेण देवरण्णा आणत्तियं) विणएणं वयणं पडिसुणेइ २ त्ता जंभए देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! वत्तीसं हिरण्णकोडीओ (वत्तीसं सुवण्णकोडीओ, वत्तीसं णंदाइं, वत्तीसं भद्दाइं, सुभगे, सुभगरूवजुव्वणलावण्णे अ) भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहरह साहरित्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणह।

तए णं ते जंभगा देवा वेसमणेणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव[2] खिप्पामेव वत्तीसं हिरण्णकोडीओ जाव[3] च भगवओ तित्थगरस्स जम्मणभवणंसि साहरंति २ त्ता जेणेव वेसमणे देवे तेणेव (एअमाणत्तियं) पच्चप्पिणंति। तए णं से वेसमणे देवे जेणेव सक्के देविंदे, देवराया (तेणेव उवागच्छइ २ त्ता) पच्चप्पिणइ।

---

१. देखें सूत्र संख्या ५२
२. देखें सूत्र संख्या ४४
३. देखें सूत्र यही

तए णं से सक्के देविंदे देवराया ३ आभिओगे देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणयरंसि सिंघाडग जाव[1] महापहपहेसु महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणा २ एवं वदह—'हंदि सुणंतु भवंतो बहवे भवणवइवाणमंतरजोइसवेमाणिया देवा य देवीओ अ जे णं देवाणुप्पिआ ! तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए वा असुभं मणं पधारेइ, तस्स णं अज्जगमंजरिआ इव सयधा मुद्धाणं फुट्टउत्ति' कट्टु घोसेणं घोसेह २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणहत्ति।

तए णं ते आभिओगा देवा (सक्केणं देविंदेण देवरण्णा एवं वुत्ता समाणा) एवं देवोत्ति आणाए पडिसुणंति २ त्ता सक्कस्स देविंदस्स, देवरण्णो अंतिआओ पडिणिक्खमंति २ त्ता खिप्पामेव भगवओ तित्थगरस्स जम्मणणगरंसि सिंघाडग जाव[1] एवं वयासी—हंदि सुणंतु भवंतो बहवे भवणवइ (वाणमंतरजोइसवेमाणिया देवा य देवीओ अ) जे णं देवाणुप्पिआ ! तित्थयरस्स (तित्थयरमाऊए वा असुभं मणं पधारेइ, तस्स अज्जगमंजरिआ इव सयधा मुद्धाणं) फुट्टिहीतित्ति कट्टु घोसणगं घोसंति २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणंति।

तए णं ते बहवे भवणवइवाणमंतरजोइसवेमाणिआ देवा भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करेंति २ त्ता जेणेव णंदीसरदीवे, तेणेव उवागच्छंति २ त्ता अट्ठाहियाओ महामहिमाओ करेंति २ त्ता जामेव दिसिं पाउब्भूआ तामेव दिसिं पडिगया।

[१५६] तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज शक्र पांच शक्रों की विकुर्वणा करता है। एक शक्र भगवान् तीर्थंकर को अपनी हथेलियों के संपुट द्वारा ग्रहण करता है। एक शक्र भगवान् के पीछे उन पर छत्र धारण करता है—छत्र ताने रहता है। दो शक्र दोनों ओर चँवर डुलाते हैं। एक शक्र वज्र हाथ में लिये आगे खड़ा होता है।

फिर शक्र अपने चौरासी हजार सामानिक देवों, अन्य—भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों, देवियों से परिवृत, सब प्रकार की ऋद्धि से युक्त, वाद्य-ध्वनि के बीच उत्कृष्ट त्वरित दिव्य गति द्वारा, जहाँ भगवान् तीर्थंकर का जन्म-नगर, जन्म-भवन तथा उनकी माता थी वहाँ आता है। भगवान् तीर्थंकर को उनकी माता की बगल में स्थापित करता है। वैसा कर तीर्थंकर के प्रतिरूपक को, जो माता की बगल में रखा था, प्रतिसंहृत करता है- समेट लेता है। भगवान् तीर्थंकर की माता की अवस्वापिनी निद्रा को, जिसमें वह सोई होती है, प्रतिसंहृत कर लेता है। वैसा कर वह भगवान् तीर्थंकर के उच्छीर्षक मूल में—सिरहाने दो बड़े वस्त्र तथा दो कुण्डल रखता है। फिर वह तपनीय-स्वर्ण-निर्मित झुम्बनक—झुनझुने से युक्त, सोने के पातों से परिमण्डित—सुशोभित, नाना प्रकार की मणियों तथा रत्नों से बने तरह-तरह के हारों—अठारह लड़े हारों, अर्धहारों—नौ लड़े हारों से उपशोभित श्रीदामगण्ड—सुन्दर मालाओं को परस्पर ग्रथित कर बनाया हुआ बड़ा गोलक भगवान् के ऊपर तनी चाँदनी में लटकाता है, जिसे भगवान् तीर्थंकर निर्निमेष दृष्टि से—विना पलकें झपकाए उसे देखते हुए सुखपूर्वक अभिरमण करते हैं—क्रीडा करते हैं।

---

१. देखें सूत्र संख्या ६७

२. देखें सूत्र संख्या ६७

तदनन्तर देवेन्द्र देवराज शक्र वैश्रमण देव को बुलाता है। बुलाकर उसे कहता है—देवानुप्रिय ! शीघ्र ही बत्तीस करोड़ रौप्य-मुद्राएँ, बत्तीस करोड़ स्वर्ण-मुद्राएं, सुभग आकार, शोभा एवं सौन्दर्ययुक्त बत्तीस वर्तुलाकार लोहासन, बत्तीस भद्रासन भगवान् तीर्थंकर के जन्म-भवन में लाओ। लाकर मुझे सूचित करो।

वैश्रमण देव (देवेन्द्र देवराज) शक्र के आदेश को विनयपूर्वक स्वीकार करता है। स्वीकार कर वह जृम्भक देवों को बुलाता है। बुलाकर उन्हें कहता है—देवानुप्रियो ! शीघ्र ही बत्तीस करोड़ रौप्य-मुद्राएँ (बत्तीस करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ, सुभग आकार, शोभा एवं सौन्दर्ययुक्त बत्तीस वर्तुलाकार लोहासन, बत्तीस भद्रासन) भगवान् तीर्थंकर के जन्म-भवन में लाओ। लाकर मुझे अवगत कराओ।

वैश्रमण देव द्वारा यों कहे गये जृम्भक देव हर्षित एवं परितुष्ट होते हैं। वे शीघ्र ही बत्तीस करोड़ रौप्य-मुद्राएँ आदि भगवान् तीर्थंकर के जन्म-भवन में ले आते हैं। लाकर वैश्रमण देव को सूचित करते हैं कि उनके आदेश के अनुसार वे कर चुके हैं। तब वैश्रमण देव जहाँ देवेन्द्र देवराज शक्र होता है, वहाँ आता है, कृत कार्य से उन्हें अवगत कराता है।

तत्पश्चात् देवेन्द्र, देवराज शक्र अपने आभियोगिक देवों को बुलाता है और उन्हें कहता है—देवानुप्रियो ! शीघ्र ही भगवान् तीर्थंकर के जन्म-नगर के तिकोने स्थानों, तिराहों, चौराहों एवं विशाल मार्गों में जोर-जोर से उद्घोषित करते हुए कहो—'बहुत से भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा वैमानिक देव-देवियो ! आप सुनें—आप में से जो कोई तीर्थंकर या उनकी माता के प्रति अपने मन में अशुभ भाव लायेगा—दुष्ट संकल्प करेगा, आर्यक—वनस्पति-विशेष—'आजओ' की मंजरी की ज्यों उसके मस्तक के सौ टुकड़े हो जायेंगे।'

यह घोषित कर अवगत कराओ कि वैसा कर चुके हैं।

(देवेन्द्र देवराज शक्र द्वारा यों कहे जाने पर) वे आभियोगिक देव 'जो आज्ञा' यों कहकर देवेन्द्र देवराज शक्र का आदेश स्वीकार करते हैं। स्वीकार कर वहाँ से प्रतिनिष्क्रान्त होते हैं—चले जाते हैं। वे शीघ्र ही भगवान् तीर्थंकर के जन्म-नगर में आते हैं। वहाँ तिकोने स्थानों, तिराहों, चौराहों और विशाल मार्गों में यों बोलते हैं—घोषित करते हैं—बहुत से भवनपति (वानव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक) देवो ! देवियो ! आप में से जो कोई तीर्थंकर या उनकी माता के प्रति अपने मन में अशुभ भाव लायेगा—दुष्ट संकल्प करेगा, आर्यक-मंजरी की ज्यों उसके मस्तक के सौ टुकड़े हो जायेंगे।

ऐसी घोषणा कर वे आभियोगिक देव देवराज शक्र को, उनके आदेश का पालन किया जा चुका है, ऐसा अवगत कराते हैं।

तदनन्तर बहुत से भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा वैमानिक देव भगवान् तीर्थंकर का जन्मोत्सव मनाते हैं। तत्पश्चात् जहाँ नन्दीश्वर द्वीप है, वहाँ आते हैं। वहाँ आकर अष्टदिवसीय विराट् जन्म-महोत्सव आयोजित करते हैं। वैसा करके जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा में चले जाते हैं।

□□

षष्ठ वक्षस्कार

स्पर्श एवं जीवोत्पाद

१७५. जंबुद्दीवस्स णं भंते ! दीवस्स पदेसा लवणसमुद्दं पुट्ठा ?

हंता पुट्ठा।

ते णं भंते ! किं जंबुद्दीवे दीवे, लवणसमुद्दे ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे, णो खलु लवणसमुद्दे। एवं लवणसमुद्दस्स वि पएसा जंबुद्दीवे पुट्ठा भाणिअव्वा इति।

जंबुद्दीवे णं भंते ! जीवा उद्दाइत्ता २ लवणसमुद्दं पच्चायंति ?

अत्थेगइआ पच्चायंति, अत्थेगइआ नो पच्चायंति। एवं लवणस्स वि जंबुद्दीवे दीवे णेअव्वमिति।

[१५७] भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप के चरम प्रदेश लवणसमुद्र का स्पर्श करते हैं ?

हाँ, गौतम ! वे लवणसमुद्र का स्पर्श करते हैं।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के जो प्रदेश लवणसमुद्र का स्पर्श करते हैं, क्या वे जम्बूद्वीप (के ही प्रदेश) कहलाते हैं या (लवणसमुद्र का स्पर्श करने के कारण) लवणसमुद्र (के प्रदेश) कहलाते हैं ?

गौतम ! वे जम्बूद्वीप (के ही प्रदेश) कहलाते हैं, लवणसमुद्र (के) नहीं कहलाते।

इसी प्रकार लवणसमुद्र के प्रदेशों की बात है, जो जम्बूद्वीप का स्पर्श करते हैं।

भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप के जीव मरकर लवणसमुद्र में उत्पन्न होते हैं ?

गौतम ! कतिपय उत्पन्न होते हैं, कतिपय उत्पन्न नहीं होते।

इसी प्रकार लवणसमुद्र के जीवों के जम्बूद्वीप में उत्पन्न होने के विषय में जानना चाहिए।

जम्बूद्वीप के खण्ड, योजन, वर्ष, पर्वत, कूट, नदियाँ आदि

१५८. खंडा १, जोअण २, वासा ३, पव्वय ४, कूडा ५ य तित्थ ६, सेढीओ ७।
विजय ८, द्दह ९, सलिलाओ १०, पिंडए होइ संगहणी ॥१॥

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे भरहप्पमाणमेत्तेहिं खंडेहिं केवइअं खंडगणिएणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! णउअं खंडसयं खंडगणिएणं पण्णत्ते।

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइअं जोअणगणिएणं पण्णत्ते ?

गोयमा !

सत्तेव य कोडिसया, णउआ छप्पण्ण सय-सहस्साइं।
चउणवइं च सहस्सा, सयं दिवड्ढं च गणिअ-पयं ॥२॥

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे कति वासा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सत्त वासा, तं जहा—भरहे, एरवए, हेमवए, हिरण्णवए, हरिवासे, रम्मगवासे, महाविदेहे।

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ वासहरा पण्णत्ता, केवइआ मंदरा पव्वया पण्णत्ता, केवइआ चित्तकूडा, केवइआ विचित्तकूडा, केवइआ जमग-पव्वया, केवइआ कंचण-पव्वया, केवइआ वक्खारा, केवइआ दीहवेअद्धा, केवइआ वट्टवेअद्धा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे छ वासहर-पव्वया, एगे मंदरे पव्वए, एगे चित्तकूडे, एगे विचित्तकूडे, दो जमग-पव्वया, दो कंचणग-पव्वयसया, वीसं वक्खार-पव्वया, चोत्तीसं दीहवेअद्धा, चत्तारि वट्टवेअद्धा, एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे दुण्णि अउणत्तरा पव्वय-सया भवंतीतिमक्खायंति।

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ वासहर-कूडा, केवइआ वक्खार-कूड, केवइआ वेअद्धकूडा, केवइआ मंदर-कूडा पण्णत्ता ?

गोयमा ! छप्पण्णं वासहर-कूडा, छण्णउइं वक्खार-कूडा, तिण्णि छलुत्तरा वेअद्ध-कूड-सया, नव मंदर-कूडा पण्णत्ता, एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे चत्तारि सत्तट्ठा कूड-सया भवन्तीतिमक्खायं।

जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे कति तित्था पण्णत्ता ?

गोयमा ! तओ तित्था पण्णत्ता, तं जहा—मागहे, वरदामे, पभासे।

जंबुद्दीवे दीवे एरवए वासे कति तित्था पण्णत्ता ?

गोयमा ! तओ तित्था पण्णत्ता, तं जहा—मागहे, वरदामे, पभासे।

एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे एगमेगे चक्कवट्टिविजए कति तित्था पण्णत्ता ?

गोयमा ! तओ तित्था पण्णत्ता, तं जहा—मागहे, वरदामे, पभासे, एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे एगे विउत्तरे तित्थ-सए भवतीतिमक्खायंति।

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ विज्जाहर-सेढीओ, केवइआ आभिओग-सेढीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे अट्ठसट्ठी विज्जाहर-सेढीओ, अट्ठसट्ठी आभिओग-सेढीओ पण्णत्ताओ, एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे छत्तीसे सेढि-सए भवतीतिमक्खायं।

जंबुद्दीवे दीवे केवइआ चक्कवट्टिविजया, केवइआओ रायहाणीओ, केवइआओ तिमिसगुहाओ, केवइआओ खंडप्पवायगुहाओ, केवइआ कयमालया देवा, केवइआ णट्टमालया देवा, केवइआ उसभ-कूडा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे चोत्तीसं चक्कवट्टि-विजया, चोत्तीसं रायहाणीओ, चोत्तीसं तिमिस-गुहाओ, चोत्तीसं खंडप्पवाय-गुहाओ, चोत्तीसं कयमालया देवा, चोत्तीसं णट्टमालया देवा, चोत्तीसं उसभ-कूडा पव्वया पण्णत्ता।

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ महद्दहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सोलस महद्दहा पण्णत्ता ।

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइयाओ महाणईओ वासहरप्पवहाओ, केवइयाओ महाणईओ कुंडप्पवाहाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे चोद्दस महाणईओ वासहरप्पवहाओ, छावत्तरिं महाणईओ कुंडप्पवहाओ, एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे णउतिं महाणईओ भवंतीतिमक्खायं ।

जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु कइ महाणईओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! चत्तारि महाणईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—गंगा, सिंधू, रत्ता, रत्तवई । तत्थ णं एगमेगा महाणई चउद्दसहिं सलिला-सहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ, एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे भरह-एरवएसु वासेसु छप्पण्णं सलिला-सहस्सा भवंतीतिमक्खायंति ।

जंबुद्दीवे णं भंते ! हेमवय-हेरण्णवएसु वासेसु कति महाणईओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! चत्तारि महाणईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रोहिता, रोहिअंसा, सुवण्णकूला, रुप्पकूला । तत्थ णं एगमेगा महाणई अट्ठावीसाए अट्ठावीसाए सलिला-सहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ, एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे हेमवय-हेरण्णवएसु वासेसु बारसुत्तरे सलिला-सय-सहस्से भवंतीतिभक्खायं इति ।

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे हरिवास-रम्मगवासेसु कइ महाणईओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! चत्तारि महाणईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—हरी, हरिकंता, णरकंता, णारिकंता । तत्थ णं एगमेगा महाणई छप्पणाए २ सलिला-सहस्सेहिं समग्गा-पुरत्थिम पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ । एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे हरिवास-रम्मगवासेसु दो चउवीसा सलिला-सय-सहस्सा भवंतीतिमक्खायं ।

जंबुद्दीवे णं भंते ! महाविदेहे वासे कइ महाणईओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! दो महाणईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—सीआ य सीओआ य । तत्थ णं एगमेगा महाणई पंचहिं २ सलिला-सय-सहस्सेहिं बत्तीसाए अ सलिला-सहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ । एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे दस सलिला-सय-सहस्सा चउसट्ठिं च सलिसा-सहस्सा भवन्तीतिमक्खायं ।

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं केवइया सलिला-सय-सहस्सा पुरत्थिम-पच्चत्थिमाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति ?

गोयमा ! एगे छण्णउए सलिला-सय-सहस्से पुरत्थिम-पच्चत्थिमाभिमुहे लवणसमुद्दं समप्पेंतित्ति ।

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं केवइया सलिला-सय-सहस्सा पुरत्थिम-पच्चत्थिमाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति ?

गोयमा ! एगे छण्णउए सलिला-सय-सहस्से पुरत्थिम-पच्चत्थिमाभिमुहे (लवणसमुद्दं) समप्पेइ ।

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ सलिला-सय-सहस्सा पुरत्थाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति ?

गोयमा ! सत्त सलिला-सय-सहस्सा अट्ठावीसं च सहस्सा (लवणसमुद्दं) समप्पेंति ।

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ सलिला-सय-सहस्सा पच्चत्थिमाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति ?

गोयमा ! सत्त सलिला-सय-सहस्सा अट्ठावीसं च सहस्सा (लवणसमुद्दं) समप्पेंति ।

एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे चोद्दस सलिला-सय-सहस्सा छप्पण्णं च सहस्सा भवंतीतिमक्खायं इति ।

[१५८] खण्ड, योजन, वर्ष, पर्वत, कूट, तीर्थ, श्रेणियां, विजय, द्रह तथा नदियां—इनका प्रस्तुत सूत्र में वर्णन है, जिनकी यह संग्राहिका गाथा है ।

१. भगवन् ! (एक लाख योजन विस्तार वाले) जम्बूद्वीप के (५२६ $\frac{6}{19}$ योजन विस्तृत) भरतक्षेत्र के प्रमाण जितने—भरतक्षेत्र के बराबर खण्ड किये जाएं तो वे कितने होते हैं ?

गौतम ! खण्डगणित के अनुसार वे एक सौ नब्वे होते हैं ।

२. भगवन् ! योजनगणित के अनुसार जम्बूद्वीप का कितना प्रमाण कहा गया है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल-प्रमाण (७९०५६९४१५०) सात अरव नब्वे करोड़ छप्पन लाख चौरानवें हजार एक सौ पचास योजन कहा गया है ।

३. भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने वर्ष—क्षेत्र बतलाये गये हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप में सात वर्ष—क्षेत्र बतलाये गये हैं—१—भरत, २—ऐरावत, ३—हैमवत, ४—हैरण्यवत, ५—हरिवर्ष, ६—रम्यकवर्ष तथा ७—महाविदेह ।

४. भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत कितने वर्षधर पर्वत, कितने मन्दर पर्वत, कितने चित्रकूट पर्वत, कितने विचित्रकूट पर्वत, कितने यमक पर्वत, कितने काञ्चन पर्वत, कितने वक्षस्कार पर्वत, कितने दीर्घ वैताढ्य पर्वत तथा कितने वृत्त वैताढ्य पर्वत बतलाये गये हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत छह वर्षधर पर्वत, एक मन्दर पर्वत, एक चित्रकूट पर्वत, एक विचित्रकूट पर्वत, दो यमक पर्वत, दो सौ काञ्चन पर्वत, बीस वक्षस्कार पर्वत, चौतीस दीर्घ वैताढ्य पर्वत तथा चार वृत्त वैताढ्य पर्वत बतलाये गये हैं । यों जम्बूद्वीप में पर्वतों की कुल संख्या ६+१+१+१+२+२००+२०+३४+४=२६९ (दो सौ उनहत्तर) है ।

५. भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने वर्षधरकूट, कितने वक्षस्कारकूट, कितने वैताढ्यकूट तथा कितने मन्दरकूट कहे गये हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप में छप्पन वर्षधरकूट, छियानवे वक्षस्कारकूट, तीन सौ छह वैताढ्यकूट तथा नौ मन्दरकूट बतलाये गये हैं । इस प्रकार ये सब मिलाकर कुल ५६+९६+३०६+९=४६७ कूट होते हैं ।

६. भगवन् । जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरत क्षेत्र में कितने तीर्थ वतलाये गये हैं ?

गौतम जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरत क्षेत्र में तीन तीर्थ वतलाये गये हैं—

१—मागध तीर्थ, २—वरदाम तीर्थ तथा ३—प्रभास तीर्थ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत ऐरावत क्षेत्र में कितने तीर्थ बतलाये गये हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत ऐरावत क्षेत्र में तीन तीर्थ बतलाये गये हैं—

१—मागध तीर्थ, २—वरदाम तीर्थ तथा ३—प्रभास तीर्थ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में एक-एक चक्रवर्तिविजय में कितने-कितने तीर्थ बतलाये गये हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में एक-एक चक्रवर्तिविजय में तीन-तीन तीर्थ बतलाये गये हैं—

१. मागध तीर्थ, २. वरदाम तीर्थ तथा ३. प्रभास तीर्थ।

यों जम्बूद्वीप के चौंतीस विजयों में कुल मिलाकर ३४×३=१०२ (एक सौ दो) तीर्थ हैं।

७. भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत विद्याधर-श्रेणियाँ तथा आभियोगिक-श्रेणियां कितनी-कितनी बतलाई गई हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप में अड़सठ विद्याधर-श्रेणियाँ तथा अड़सठ आभियोगिक-श्रेणियाँ बतलाई गई हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर जम्बूद्वीप में ६८+६८=१३६ एक सौ छत्तीस श्रेणियाँ हैं, ऐसा कहा गया है।

८. भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत चक्रवर्ति-विजय, राजधानियाँ, तिमिस गुफाएँ, खण्ड-प्रपात गुफ़ाएँ, कृत्तमालक देव, नृत्तमालक देव तथा ऋषभकूट कितने-कितने बतलाये गये हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत चौतीस चक्रवर्तिविजय, चौतीस राजधानियाँ, चौतीस तिमिस गुफाएँ, चौतीस खण्डप्रपात गुफाएँ, चौतीस कृत्तमालक देव, चौतीस नृत्तमालक देव तथा चौतीस ऋषभकूट बतलाये गये हैं।

९. भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाद्रह कितने बतलाये गये हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत सोलह महाद्रह वतलाये गये हैं।

१०. भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत वर्षधर पर्वतों से कितनी महानदियाँ निकलती हैं और कुण्डों से कितनी महानदियाँ निकलती हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत चौदह महानदियाँ वर्षधर पर्वतों से निकलती हैं तथा छियत्तर महानदियाँ कुण्डों से निकलती हैं।

कुल मिलाकर जम्बूद्वीप में १४+७६=९० नब्बे महानदियाँ हैं, ऐसा कहा गया है।

११. भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरत क्षेत्र तथा ऐरावत क्षेत्र में कितनी महानदियाँ बतलाई गई हैं ?

गौतम ! चार महानदियाँ बतलाई गई हैं—१. गंगा, २. सिन्धु, ३. रक्ता तथा ४. रक्तवती।

एक एक महानदी में चौदह-चौदह हजार नदियाँ मिलती हैं। उनसे आपूर्ण होकर वे पूर्वी एवं पश्चिमी लवण समुद्र में मिलती हैं। भरत क्षेत्र में गंगा महानदी पूर्वी लवण समुद्र में तथा सिन्धु

महानदी पश्चिमी लवण समुद्र में मिलती है। ऐरावत क्षेत्र में रक्ता महानदी पूर्वी लवण समुद्र में तथा रक्तवती महानदी पश्चिमी लवण समुद्र में मिलती है।

यों जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरत तथा ऐरावत क्षेत्र में कुल १४०००×४=५६००० छप्पन हजार नदियाँ होती हैं।

१२. भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत हैमवत एवं हैरण्यवत क्षेत्र में कितनी महानदियाँ वतलाई गई हैं ?

गौतम ! चार महानदियाँ वतलाई गई हैं—

१. रोहिता, २. रोहितांशा, ३. सुवर्णकूला तथा ४. रूप्यकूला।

वहाँ इनमें से प्रत्येक महानदी में अट्ठाईस-अट्ठाईस हजार नदियाँ मिलती हैं। वे उनसे आपूर्ण होकर पूर्वी एवं पश्चिमी लवण समुद्र में मिलती हैं।

हैमवत में रोहिता पूर्वी लवण समुद्र में तथा रोहितांशा पश्चिमी लवण समुद्र में मिलती है। हैरण्यवत में सुवर्णकूला पूर्वी लवण समुद्र में तथा रूप्यकूला पश्चिमी लवण समुद्र में मिलती है।

इस प्रकार जम्बूद्वीप के अन्तर्गत हैमवत तथा हैरण्यवत क्षेत्र में कुल २८०००×४=११२००० एक लाख वारह हजार नदियाँ हैं, ऐसा वतलाया गया है।

१३. भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत हरिवर्ष तथा रम्यकवर्ष में कितनी महानदियाँ वतलाई गई हैं ?

गौतम ! चार महानदियाँ वतलाई गई हैं—

१. हरि या हरिसलिला, २. हरिकान्ता, ३. नरकान्ता तथा ४. नारीकान्ता।

वहाँ इनमें से प्रत्येक महानदी में छप्पन-छप्पन हजार नदियाँ मिलती हैं। उनसे आपूर्ण होकर वे पूर्वी तथा पश्चिमी लवण समुद्र में मिल जाती हैं।

हरिवर्ष में हरिसलिला पूर्वी लवण समुद्र में तथा हरिकान्ता पश्चिमी लवण समुद्र में मिलती है। रम्यकवर्ष में नरकान्ता पूर्वी लवण समुद्र में तथा नारीकान्ता पश्चिमी लवण समुद्र में मिलती है।

यों जम्बूद्वीप के अन्तर्गत हरिवर्ष तथा रम्यकवर्ष में कुल ५६०००×४=२२४००० दो लाख चौवीस हजार नदियाँ हैं, ऐसा वतलाया गया है।

१४. भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में कितनी महानदियाँ वतलाई गई हैं ?

गौतम ! दो महानदियाँ वतलाई गई हैं—

१. शीता एवं २. शीतोदा।

वहाँ उनमें से प्रत्येक महानदी में पाँच लाख वत्तीस हजार नदियाँ मिलती हैं। उनसे आपूर्ण होकर वे पूर्वी तथा पश्चिमी लवण समुद्र में मिल जाती हैं। शीता पूर्वी लवण समुद्र में तथा शीतोदा पश्चिमी लवण समुद्र में मिलती है।

इस प्रकार जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में कुल ५३२००० × २ = १०६४००० दश लाख चौसठ हजार नदियाँ हैं, ऐसा बतलाया गया है।

१५. भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत मन्दर पर्वत के दक्षिण में कितने लाख नदियाँ पूर्वाभिमुख एवं पश्चिमाभिमुख होती हुई लवण समुद्र में मिलती हैं ?

गौतम ! १९६००० एक लाख छियानवै हजार नदियाँ पूर्वाभिमुख एवं पश्चिमाभिमुख होती हुई लवण समुद्र में मिलती हैं।

१६. भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत मन्दर पर्वत के उत्तर में कितने लाख नदियाँ पूर्वाभिमुख एवं पश्चिमाभिमुख होती हुई लवण समुद्र में मिलती हैं ?

गौतम ! १९६००० एक लाख छियानवै हजार नदियाँ पूर्वाभिमुख एवं पश्चिमाभिमुख होती हुई लवण समुद्र में मिलती हैं।

१७. भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत कितने लाख नदियाँ पूर्वाभिमुख होती हुई लवण समुद्र में मिलती हैं ?

गौतम ! ७२८००० सात लाख अट्ठाईस हजार नदियाँ पूर्वाभिमुख होती हुई लवण समुद्र में मिलती हैं।

१८. भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने लाख नदियाँ पश्चिमाभिमुख होती हुई लवण समुद्र में मिलती हैं ?

गौतम ! ७२८००० सात लाख अट्ठाईस हजार नदियाँ पश्चिमाभिमुख होती हुई लवण समुद्र में मिलती हैं।

इस प्रकार जम्बूद्वीप के अन्तर्गत कुल ७२८०००+७२८०००=१४५६००० चौदह लाख छप्पन हजार नदियाँ हैं, ऐसा बतलाया गया है। □□

सप्तम वक्षस्कार

चन्द्रादिसंख्या

१५९. जंम्बुद्दीवे णं भंते ! दीवे कइ चंदा पभासिंसु, प्रभासंति पभासिस्संति ? कइ सूरिआ तवइंसु, तवेंति, तविस्संति ? केवइआ णक्खत्ता जोगं जोइंसु, जोअंति, जोइस्संति ? केवइआ महग्गहा चारं चारिंसु, चरंति, चरिस्संति ? केवइआओ तारागण-कोडाकोडीओ सोभिंसु, सोभंति, सोभिस्संति ?

गोयमा ! दो चंदा पभासिंसु ३, दो सूरिआ तवइंसु ३, छप्पण्णं णक्खत्ता जोगं जोइंसु ३, छावत्तरं महग्गह-सयं चारं चरिंसु ३, ।

एगं च सय-सहस्सं, तेत्तीसं खलु भवे सहस्साइं ।
णव य सया पण्णासा, तारागणकोडिकोडीणं ।।१।।

[१५९] भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने चन्द्रमा उद्योत करते रहे हैं, उद्योत करते हैं एवं उद्योत करते रहेंगे ? कितने सूर्य तपते रहे हैं, तपते हैं और तपते रहेंगे ? कितने नक्षत्र अन्य नक्षत्रों से योग करते रहे हैं, योग करते हैं तथा योग करते रहेंगे ? कितने महाग्रह चाल चलते रहे हैं—मण्डल क्षेत्र पर परिभ्रमण करते रहे हैं, परिभ्रमण करते हैं एवं परिभ्रमण करते रहेंगे ? कितने कोड़ाकोड़ तारे शोभित होते रहे हैं, शोभित होते हैं और शोभित होते रहेंगे ?

गौतम ! जम्बूद्वीप में दो चन्द्र उद्योत करते रहे हैं, उद्योत करते हैं तथा उद्योत करते रहेंगे । दो सूर्य तपते रहे हैं, तपते हैं और तपते रहेंगे । ५६ नक्षत्र अन्य नक्षत्रों के साथ योग करते रहे हैं, योग करते हैं एवं योग करते रहेंगे । १७६ महाग्रह मण्डल क्षेत्र पर परिभ्रमण करते रहे हैं, परिभ्रमण करते हैं तथा परिभ्रमण करते रहेंगे ।

गाथार्थ—१३३९५० कोडाकोड तारे शोभित होते रहे हैं, शोभित होते हैं और शोभित होते रहेंगे ।

सूर्य-मण्डल-संख्या आदि

१६०. कइ णं भंते ! सूरमंडला पण्णत्ता ?

गोयमा ! एगे चउरासीए मंडलसए पण्णत्ते इति ।

जंम्बुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइअं ओगाहित्ता केवइआ सूरमंडला पण्णत्ता ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे असीअं जोअण-सयं ओगाहित्ता एत्थ णं पण्णट्ठी सूरमंडला पण्णत्ता ।

लवणे णं भंते ! समुद्दे केवइअं ओगाहित्ता केवइआ सूरमंडला पण्णत्ता ?

गोयमा ! लवणे समुद्दे तिण्णि तीसे जोअणसए ओगाहित्ता एत्थ णं एगूणवीसे सूरमंडलसए.

पण्णत्ते। एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे लवणे अ समुद्दे एगे चुलसीए सूरमंडलसए भवंतीति-मक्खायं।

[१६०] भगवन् ! सूर्य-मण्डल कितने वतलाये गये हैं ?

गौतम ! १८४ सूर्य-मण्डल वतलाये गये हैं।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने क्षेत्र का अवगाहन कर आगत क्षेत्र में कितने सूर्य-मण्डल वतलाये गये हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप में १८० योजन क्षेत्र का अवगाहन कर आगत क्षेत्र में ६५ सूर्य-मण्डल वतलाये गये हैं।

भगवन् ! लवण समुद्र में कितने क्षेत्र का अवगाहन कर कितने सूर्य-मण्डल वतलाये गये हैं ?

गौतम ! लवण समुद्र में ३३० योजन[1] क्षेत्र का अवगाहन कर आगत क्षेत्र में ११९ सूर्य-मण्डल बतलाये गये हैं ?

इस प्रकार जम्बूद्वीप तथा लवण समुद्र दोनों के मिलाने से १८४ सूर्य-मण्डल होते हैं, ऐसा वतलाया गया है।

१६१. सव्वब्भंतराओ णं भंते ! सूर-मंडलाओ केवइआए अबाहाए सव्वबाहिरए सूर-मंडले पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंच दसुत्तरे जोअण-सए अबाहाए सव्व-बाहिरए सूरमंडले पण्णत्ते २।

[१६१] भगवन् ! सर्वाभ्यन्तर सूर्य-मण्डल से सर्ववाह्य सूर्य-मण्डल कितने अन्तर पर बतलाया गया है ?

गौतम ! सर्वाभ्यन्तर सूर्य-मण्डल से सर्व वाह्य सूर्य-मण्डल ५१० योजन के अन्तर पर बतलाया गया है।

१६२. सूर-मंडलस्स णं भंते ! सूर-मंडलस्स य केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दो जोअणाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ३।

[१६२] भगवन् ! एक सूर्य-मण्डल से दूसरे सूर्य-मण्डल का अबाधित—व्यवधानरहित कितना अन्तर बतलाया गया है ?

गौतम ! एक सूर्य-मण्डल से दूसरे सूर्य-मण्डल का दो योजन का अव्यवहित अन्तर बतलाया गया है।

---

१. श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र की शान्तिचन्द्रीया वृत्ति के अनुसार यहाँ ठीक परिमाण ३३०$\frac{४८}{६१}$ योजन है।
वृत्ति में कहा गया है—
गौतम ! लवणे समुद्रे त्रिंशदधिकानि त्रीणि योजनशतानि सूत्रेऽल्पत्वादविवक्षितानप्यष्ट चत्वारिंशदेकषष्टि-भागान् अवगाह्य........।

—श्री जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र, शान्तिचन्द्रीया वृत्ति, पत्रांक ४८४

१६३. सूर-मंडले णं भंते ! केवइअं आयाम-विक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं केवइअं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! अडयालीसं एगसट्ठिभाए जोअणस्स आयाम-विक्खंभेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं चउवीसं एगसट्ठिभाए जोअणस्स वाहल्लेणं पण्णत्ते इति ।

[१६३] भगवन् ! सूर्य-मण्डल का आयाम—लम्बाई, विस्तार—चौड़ाई, परिक्षेप—परिधि तथा वाहल्य—मोटापन—मोटाई कितनी वतलाई गई है ?

गौतम ! सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई $\frac{४८}{६१}$ योजन, परिधि उससे कुछ अधिक तीन गुणी—२$\frac{३२}{६१}$ योजन तथा मोटाई $\frac{२४}{६१}$ योजन वतलाई गई है ।

मेरु से सूर्यमण्डल का अन्तर

१६४. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए सव्वब्भंतरे सूर-मंडले पण्णत्ते ?

गोयमा ! चोआलीसं जोअण-सहस्साइं अट्ठ य वीसे जोअण-सए अबाहाए सव्वब्भंतरे सूर-मंडले पण्णत्ते ।

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए सव्वब्भंतराणंतरे सूर-मंडले पण्णत्ते ?

गोयमा ! चोआलीसं जोअण-सहस्साइं अट्ठ य बावीसे जोअण-सए अडयालीसं च एगसट्ठि-भागे जोअणस्स अबाहाए अब्भंतराणंतरे सूर-मंडले पण्णत्ते ।

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए अब्भंतरतच्चे सूर-मंडले पण्णत्ते ?

गोयमा चोआलीसं जोअण-सहस्साइं अट्ठ य पणवीसे जोअण-सए पणतीसं च एकसट्ठि-भागे जोअणस्स अबाहाए अब्भंतरतच्चे सूर-मंडले पण्णत्ते इति ।

एवं खलु एतेणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तयणंतराओ मंडलाओ तयणंतरं मंडलं संकममाणे २ दो दो जोअणाइं अडयालीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगे मंडले अबाहावुड्ढि अभिवद्धेमाणे २ सव्व-बाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ त्ति ।

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए सव्व-बाहिरे सूर-मंडले पण्णत्ते ?

गोयमा ! पणयालीसं जोअण-सहस्साइं तिण्णि अ तीसे जोअण-सए अबाहाए सव्व-बाहिरे सूर-मंडले पण्णत्ते ।

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए सव्व-बाहिराणंतरे सूर-मंडले पण्णत्ते ?

गोयमा ! पणयालीसं जोग्रण-सहस्साइं तिण्णि ग्र सत्तावीसे जोग्रण-सए तेरस य एगसट्ठि-भाए जोग्रणस्स ग्रबाहाए बाहिराणंतरे सूर-मंडले पण्णत्ते।

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइग्राए अबाहाए बाहिरतच्चे सूर-मंडले पण्णत्त ?

गोयमा ! पणयालीसं जोअण-सहस्साइं तिण्णि ग्र चउवीसे जोग्रण-सए छव्वीसं च एगसट्ठि-भाए जोग्रणस्स अबाहाए बाहिरतच्चे सूर-मंडले पण्णत्ते।

एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराग्रो मंडलाओ तयाणंतरं मंडल संकममाणे संकममाणे दो दो जोअणाइं ग्रडयालीसं च एगसट्ठि-भाए जोग्रणस्स एगमेगे मंडले ग्रबाहाबुड्ढि णिवुड्ढेमाणे णिवुड्ढेमाणे सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

[१६४] भगवन् ! सर्वाभ्यन्तर सूर्य-मण्डल जम्बूद्वीप-स्थित मन्दर पर्वत से कितनी दूरी पर वतलाया गया है ?

गौतम ! सर्वाभ्यन्तर सूर्य-मण्डल मन्दर पर्वत से ४४८२० योजन की दूरी पर वतलाया गया है।

भगवन् ! जम्बूद्वीप-स्थित मन्दर पर्वत के सर्वाभ्यन्तर सूर्य-मण्डल से दूसरा सूर्य-मण्डल कितनी दूरी पर वतलाया गया है ?

गौतम ! सर्वाभ्यन्तर सूर्य-मण्डल से दूसरा सूर्य-मण्डल ४४८२२ ४८/६१ योजन की दूरी पर वतलाया गया है।

भगवन् ! जम्बूद्वीप-स्थित मन्दर पर्वत के सर्वाभ्यन्तर सूर्य-मण्डल से तीसरा सूर्य-मण्डल कितनी दूरी पर वतलाया गया है ?

गौतम ! सर्वाभ्यन्तर सूर्य-मण्डल से तीसरा सूर्य-मण्डल ४४८२५ ३५/६१ योजन की दूरी पर वतलाया गया है।

यों प्रति दिन रात एक-एक मण्डल के परित्यागरूप क्रम से निष्क्रमण करता हुग्रा—लवण समुद्र की ग्रोर जाता हुग्रा-सूर्य तदनन्तर मण्डल से तदनन्तर मण्डल—पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल पर संक्रमण करता हुग्रा एक-एक मण्डल पर २ ४८/६१ योजन दूरी की ग्रभिवृद्धि करता हुग्रा सर्ववाह्य मण्डल पर पहुँच कर गति करता है।

भगवन् ! सर्ववाह्य सूर्य-मण्डल जम्वूद्वीप-स्थित मन्दर पर्वत से कितनी दूरी पर वतलाया गया है ?

गौतम ! सर्ववाह्य सूर्य-मण्डल जम्वूद्वीप-स्थित मन्दर पर्वत से ४५३३० योजन की दूरी पर वतलाया गया है।

भगवन् ! जम्वूद्वीप-स्थित मन्दर पर्वत के सर्ववाह्य सूर्य-मण्डल से दूसरा वाह्य सूर्य-मण्डल कितनी दूरी पर वतलाया गया है ?

गौतम ! सर्ववाह्य सूर्य-मण्डल से दूसरा वाह्य सूर्य-मण्डल ४५३२७ १३/६१ योजन की दूरी पर वतलाया गया है।

भगवन् ! जम्बूद्वीप-स्थित मन्दर पर्वत के सर्वबाह्य सूर्य-मण्डल से तोसरा बाह्य सूर्य-मण्डल कितनी दूरी पर बतलाया गया है ?

गौतम ! सर्वबाह्य सूर्य-मण्डल से तीसरा बाह्य सूर्य-मण्डल ४५३२४ $\frac{२६}{६१}$ योजन की दूरी पर बतलाया गया है।

इस प्रकार अहोरात्र-मण्डल के परित्यागरूप क्रम से जम्बूद्वीप में प्रविष्ट होता हुआ सूर्य तदनन्तर मण्डल से तदनन्तर मण्डल पर संक्रमण करता हुआ—पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल पर जाता हुआ, एक-एक मण्डल पर २ $\frac{४८}{६१}$ योजन की अन्तर-वृद्धि कम करता हुआ सर्वाभ्यन्तर-मण्डल पर पहुँच कर गति करता है—आगे बढ़ता है।

सूर्यमण्डल का आयाम-विस्तार आदि

१६५. जंबुद्दीवे दीवे सव्वब्भंतरे णं भंते ! सूरमंडले केवइअं आयामविक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! णवणउइं जोअणसहस्साइं छच्च चत्ताले जोअणसए आयामविक्खंभेणं तिण्णि य जोअणसयसहस्साइं पण्णरस य जोअणसहस्साइं एगूणणउइं च जोअणाइं किंचिविसेसाहिआइं परिक्खेवेणं।

अब्भंतराणंतरे णं भंते ! सूरमंडले केवइअं आयामविक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! णवणउइं जोअणसहस्साइं छच्च पणयाले जोअणसए पणतीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोअणसयसहस्साइं पण्णरस य जोअण-सहस्साइं एगं सत्तुत्तरं जोअणसयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

अब्भंतरतच्चे णं भंते ! सूरमंडले केवइअं आयामविक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! णवणउइं जोअणसहस्साइं छच्च एकावण्णे जोअणसए णव य एगसट्ठिभाए जोअणस्स आयामविक्खंभेणं तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं पण्णरस जोअणसहस्साइं एगं च पणवीसं जोअणसयं परिक्खेवेणं।

एवं खलु एतेणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं उवसंकममाणे २ पंच २ जोअणाइं पणतीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगे मंडले विक्खंभवुड्ढि अभिवद्धेमाणे २ अट्ठारस २ जोअणाइं परिरयवुड्ढि अभिवद्धेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चारइ।

सव्वबाहिरए णं भंते ! सूरमंडले केवइअं आयामविक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! एगं जोयणसयसहस्सं छच्च सट्ठे जोअणसए आयामविक्खंभेणं तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं अट्ठारस य सहस्साइं तिण्णि अ पण्णरसुत्तरे जोअणसए परिक्खेवेणं।

बाहिराणंतरे णं भंते ! सूरमंडले केवइअं आयामविक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! एगं जोअणसयसहस्सं छच्च चउपण्णे जोअणसए छव्वीसं च एगसट्ठिभागे जोअणस्स आयामविक्खंभेणं तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं अट्ठारस य सहस्साइं दोण्णि य सत्ताणउए जोअणसए परिक्खेवेणंति ।

बाहिरतच्चे णं भंते ! सूरमंडले केवइअं आयामविक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! एगं जोअणसयसहस्सं छच्च अडयाले जोअणसए बावण्णं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोअणसयसहस्साइं अट्ठारस य सहस्साइं दोण्णि अ अउणासीए जोअणसए परिक्खेवेणं ।

एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे २ पंच पंच जोअणाइं पणतीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगे मंडले विक्खंभवुड्ढि णिवुड्ढेमाणे २ अट्ठारस २ जोअणाइं परिरयवुड्ढि णिव्वुड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ६ ।

[१६५] भगवन् ! जम्बूद्वीप में सर्वाभ्यन्तर सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी बतलाई गई है ?

गौतम ! उसकी लम्बाई-चौड़ाई ९९६४० योजन तथा परिधि कुछ अधिक ३१५०८९ योजन बतलाई गई है ।

भगवन् ! द्वितीय आभ्यन्तर सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी बतलाई गई है ?

गौतम ! द्वितीय आभ्यन्तर सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई ९९६४५ $\frac{३५}{६१}$ योजन तथा परिधि ३१५१०७ योजन बतलाई गई है ।

भगवन् ! तृतीय आभ्यन्तर सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी बतलाई गई है ?

गौतम ! तृतीय आभ्यन्तर सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई ९९६५१ $\frac{९}{६१}$ योजन तथा परिधि ३१५१२५ योजन बतलाई गई है ।

यों उक्त क्रम से निष्क्रमण करता हुआ सूर्य पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल पर उपसंक्रान्त होता हुआ—पहुँचता हुआ—एक-एक मण्डल पर ५ $\frac{३५}{६१}$ योजन की विस्तार-वृद्धि करता हुआ तथा अठारह योजन की परिक्षेप-वृद्धि करता हुआ—परिधि बढ़ाता हुआ सर्वबाह्य मण्डल पर पहुँच कर आगे गति करता है ।

भगवन् ! सर्वबाह्य सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी बतलाई गई है ?

गौतम ! सर्वबाह्य सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई १००६६० योजन तथा परिधि ३१८३१५ योजन बतलाई गई है ।

भगवन् ! द्वितीय बाह्य सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी बतलाई गई है ?

गौतम ! द्वितीय वाह्य सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई १००६५४ $\frac{२६}{६१}$ योजन एवं परिधि ३१८२९७ योजन वतलाई गई है।

भगवन् ! तृतीय वाह्य सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई और परिधि कितनी वतलाई गई है ?

गौतम ! तृतीय वाह्य सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई १००६४८ $\frac{५२}{६१}$ योजन तथा परिधि ३१८२७९ योजन वतलाई गई है।

यों पूर्वोक्त क्रम के अनुसार प्रवेश करता हुआ सूर्य पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल पर जाता हुआ एक-एक मण्डल पर ५$\frac{३५}{६१}$ योजन की विस्तार-वृद्धि कम करता हुआ, अठारह-अठारह योजन की परिधि-वृद्धि कम करता हुआ.सर्वाभ्यन्तर-मण्डल पर पहुँच कर आगे गति करता है।

मुहूर्त-गति

१६६. जया णं भंते ! सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?

गोयमा ! पंच पंच जोअणसहस्साइं दोण्णि अ एगावण्णे जोअणसए एगुणतीसं च सट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ। तया णं इहगयस्स मणूसस्स सीआलीसाए जोअणसहस्सेहिं दोहि अ तेवट्ठेहिं जोअणसएहिं एगवीसाए अ जोअणस्स सट्ठिभाएहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ त्ति। से णिक्खममाणे सूरिए नवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि सव्वब्भंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ त्ति।

जया णं भंते ! सूरिए अब्भंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?

गोयमा ! पंच पंच जोअणसहस्साइं दोण्णि अ एगावण्णे जोअणसए सेआलीसं च सट्ठिभागे जोअणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ। तया णं इहगयस्स मणुसस्स सीआलीसाए जोअणसहस्सेहिं एगूणासीए जोअणसए सत्तावण्णाए अ सट्ठिभाएहिं जोअणस्स सट्ठिभागं च एगसट्ठिधा छेत्ता एगूणवीसाए चुण्णिआभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ। से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भंतरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

जया णं भंते ! सूरिए अब्भंतरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?

गोयमा ! पंच पंच जोअणसहस्साइं दोण्णि अ बावण्णे जोअणसए पंच य सट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ। तया णं इहगयस्स मणुसस्स सीआलीसाए जोअणसहस्सेहिं छण्णउइए जोअणेहिं तेत्तीसाए सट्ठिभागेहिं जोअणस्स सट्ठिभागं च एगसट्ठिधा छेत्ता दोहिं चुण्णिआभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति।

एवं खलु एतेणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे संकमाणे अट्ठारस २ सट्ठिभागे जोअणस्स एगमेगे मंडले मुहुत्तगइं अभिवुड्ढेमाणे

अभिवुड्ढेमाणे चुलसीइं २ सोग्राइं जोग्रणाइं पुरिसच्छायं णिव्वुड्ढेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

जया णं भंते ! सूरिए सव्वबाहिरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइग्रं खेत्तं गच्छइ ?

गोयमा ! पंच पंच जोग्रणसहस्साइं तिण्णि ग्र पंचुत्तरे जोग्रणसए पण्णरस य सट्ठिभाए जोग्रणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ। तया णं इहगयस्स मणुसस्स एगतीसाए जोग्रणसहस्सेहिं ग्रट्ठहि अ एगत्तीसेहिं जोग्रणसएहिं तीसाए ग्र सट्ठिभाएहिं जोग्रणस्स सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ त्ति एस णं पढमे छम्मासे। एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे। से सूरिए दोच्चे छम्मासे ग्रयमाणे पढमंसि ग्रहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

जया णं भंते ! सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?

गोयमा ! पंच पंच जोअणसहस्साइं तिण्णि अ चउरुत्तरे जोग्रणसए सत्तावण्णं च सट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ। तया णं इहगयस्स मणुसस्स एगत्तीसाए जोअणसहस्सेहिं णवहि ग्र सोलसुत्तरेहिं जोअणसएहिं इगुणालीसाए ग्र सट्ठिभाएहिं जोग्रणस्स सट्ठिभागं च एगसट्ठिधा छेत्ता सट्ठिए चुण्णिआभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ त्ति। से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

जया णं भंते ! सूरिए बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइग्रं खेत्तं गच्छइ ?

गोयमा ! पंच पंच जोग्रणसहस्साइं तिण्णि ग्र चउरुत्तरे जोग्रणसए इगुणालीसं च सट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ। तया णं इहगयस्स मणुयस्स एगाहिएहिं बत्तीसाए जोग्रणसहस्सेहिं एगूणपण्णाए ग्र सट्ठिभाएहिं जोग्रणस्स सट्ठिभागं च एगसट्ठिधा छेत्ता तेवीसाए चुण्णिआभाएहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ त्ति।

एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराग्रो मंडलाग्रो तयाणंतरं मंडलं संकममाणे २ ग्रट्ठारस २ सट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगे मंडले मुहुत्तगइं निवेड्ढेमाणे २ सातिरेगाइं पंचासीतिं २ जोग्रणाइं पुरिसच्छायं ग्रभिवद्धेमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। एस णं दोच्चे छम्मासे। एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे। एस णं ग्राइच्चे संवच्छरे। एस णं ग्राइच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे पण्णत्ते।

[१६६] भगवन् ! जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर—सबसे भीतर के मण्डल का उपसंक्रमण कर चाल चलता है—गति करता है, तो वह एक-एक मुहूर्त में कितने क्षेत्र को पार करता है—गमन करता है ?

गौतम ! वह एक-एक मुहूर्त में ५२५१ $\frac{२९}{६०}$ योजन को पार करता है। उस समय सूर्य यहाँ भरतक्षेत्र-स्थित मनुष्यों को ४७२६३ $\frac{२१}{६०}$ योजन की दूरी से दृष्टिगोचर होता है। वहाँ से निकलता

हुआ सूर्य नव संवत्सर का प्रथम अयन बनाता हुआ प्रथम अहोरात्र में सर्वाभ्यन्तर मण्डल से दूसरे मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

भगवन् ! जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल से दूसरे मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है, तब वह एक-एक मुहूर्त में कितने क्षेत्र को पार करता है ?

गौतम ! तब वह प्रत्येक मुहूर्त में ५२५१$\frac{२९}{६०}$ योजन क्षेत्र को पार करता है। तब यहाँ स्थित मनुष्यों को ४७१७९$\frac{५७}{६०}$ योजन तथा ६० भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ६१ भागों में से १९ भाग योजनांश की दूरी से सूर्य दृष्टिगोचर होता है। वहाँ से निष्क्रमण करता हुआ सूर्य दूसरे अहोरात्र में तीसरे आभ्यन्तर मण्डल को उपसंक्रान्त कर गति करता है।

भगवन् ! जब सूर्य तीसरे आभ्यन्तर मण्डल को उपसंक्रान्त कर गति करता है, तो वह प्रत्येक मुहूर्त में कितना क्षेत्र पार करता है—गमन करता है ?

गौतम ! वह ५२५२$\frac{५}{६०}$ योजन प्रति मुहूर्त गमन करता है। तब यहाँ स्थित मनुष्यों को वह (सूर्य) ४७०९६$\frac{३३}{६०}$ योजन तथा ६० भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ६१ भागों में २ भाग योजनांश की दूरी से दृष्टिगोचर होता है।

इस क्रम से निष्क्रमण करता हुआ सूर्य पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल को संक्रान्त करता हुआ $\frac{१८}{६०}$ योजन मुहूर्त-गति बढ़ाता हुआ, ८४ योजन न्यून पुरुषछायापरिमित कम करता हुआ सर्वबाह्य मण्डल को उपसंक्रान्त कर गति करता है।

भगवन् ! जब सूर्य सर्वबाह्य मण्डल को उपसंक्रान्त कर गति करता है, तब वह प्रति मुहूर्त कितना क्षेत्र पार करता है—गमन करता है ?

गौतम ! वह प्रति मुहूर्त ५३०५$\frac{१५}{६०}$ योजन गमन करता है—इतना क्षेत्र पार करता है। तब यहाँ स्थित मनुष्यों को वह (सूर्य) ३१८३१$\frac{३०}{६०}$ योजन की दूरी से दृष्टिगोचर होता है। ये प्रथम छह मास हैं। यों प्रथम छह मास का पर्यवसान करता हुआ वह सूर्य दूसरे छह मास के प्रथम अहोरात्र में सर्वबाह्य मण्डल से दूसरे बाह्य मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

भगवन् ! जब सूर्य दूसरे बाह्य मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तो वह प्रति-मुहूर्त कितना क्षेत्र पार करता है—गमन करता है ?

गौतम ! वह ५३०४$\frac{५७}{६०}$ योजन प्रति मुहूर्त गमन करता है। तब यहाँ स्थित मनुष्यों को वह (सूर्य) ३१९१६$\frac{३९}{६०}$ योजन तथा ६० भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ६१ भागों में से ६० भाग योजनांश की दूरी से दृष्टिगोचर होता है। वहाँ से प्रवेश करता हुआ—जम्बूद्वीप के सम्मुख अग्रसर होता हुआ सूर्य दूसरे अहोरात्र में तृतीय बाह्य मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

भगवन् ! जब सूर्य तृतीय बाह्य मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है, तब वह प्रति-मुहूर्त कितना क्षेत्र पार करता है—गमन करता है ?

गौतम ! वह ५३०४$\frac{३९}{६०}$ योजन प्रतिमुहूर्त गमन करता है। तब यहाँ स्थित मनुष्यों को ३२००१$\frac{४९}{६०}$ योजन तथा ६० भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ६१ भागों में से २३ भाग योजनांश की दूरी से वह (सूर्य) दृष्टिगोचर होता है।

यों पूर्वोक्त क्रम से प्रवेश करता हुआ सूर्य पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल पर संक्रमण करता हुआ, प्रतिमण्डल पर मुहूर्त-गति को १८/६० योजन कम करता हुआ, कुछ अधिक ८५ योजन पुरुषछायापरिमित अभिवृद्धि करता हुआ सर्वाभ्यन्तर मण्डल को उपसंक्रान्त कर गति करता है। ये दूसरा छह मास है। इस प्रकार दूसरे छह मास का पर्यवसान होता है। यह आदित्य-संवत्सर है। यों आदित्य-संवत्सर का पर्यवसान बतलाया गया है।

दिन-रात्रि-मान

१६७. जया णं भंते ! सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं केमहालए दिवसे केमहालिया राई भवइ ?

गोयमा ! तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिआ दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। से णिक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

जया णं भंते ! सूरिए अब्भंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं केमहालए दिवसे केमहालिया राई भवइ ?

गोयमा ! तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ दोहि अ एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिअत्ति।

से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं केमहालए दिवसे केमहालिया राई भवइ ?

गोयमा ! तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिअत्ति। एवं खलु एएणं उवाएणं निक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे दो दो एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं मंडले दिवसखित्तस्स निव्वुड्ढेमाणे २ रयणिखित्तस्स अभिवद्धेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ त्ति।

जया णं सूरिए सव्वब्भंतराओ मंडलाओ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं सव्वब्भंतरमंडलं पणिहाय एगेणं तेसीएणं राइंदिअसएणं तिण्णि छावट्ठे एगसट्ठिभागमुहुत्तसए दिवसखेत्तस्स निव्वुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिवुड्ढेत्ता चारं चरइ त्ति।

जया णं भंते ! सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं केमहालए दिवसे केमहालिया राई भवइ ?

गोयमा ! तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिआ अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ त्ति। एस णं पढमे छम्मासे, एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे। से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

जया णं भंते ! सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं केमहालए दिवसे भवइ केमहालिया राई भवइ ?

गोयमा ! अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे

भवइ, दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए। से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

जया णं भंते ! सूरिए बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं केमहालए दिवसे भवइ केमहालिया राई भवइ ?

गोयमा ! तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए इति। एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे संकममाणे दो दो एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं एगमेगे मंडले रयणिखेत्तस्स निवुड्ढेमाणे २ दिवसखेत्तस्स अभिवुड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ त्ति।

जया णं भंते ! सूरिए सव्वबाहिराओ मंडलाओ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं सव्वबाहिरं मंडलं पणिहाय एगेणं तेसीएणं राइंदिअसएणं तिण्णि छावट्ठे एगसट्ठिभागमुहुत्तसए रयणिखेत्तस्स णिव्वुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिवड्ढेत्ता चारं चरइ। एस णं दोच्चे छम्मासे। एस णं दुच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे। एस णं आइच्चे संवच्छरे। एस णं आइच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे पण्णत्ते ८।

[१६७] भगवन् ! जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल को उपसंक्रान्त कर गति करता है, तब—उस समय दिन कितना बड़ा होता है, रात कितनी बड़ी होती है ?

गौतम ! उत्तमावस्थाप्राप्त, उत्कृष्ट—अधिक से अधिक १८ मुहूर्त का दिन होता है, जघन्य—कम से कम १२ मुहूर्त की रात होती है।

वहाँ से निष्क्रमण करता हुआ सूर्य नये संवत्सर में प्रथम अहोरात्र में दूसरे आभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है।

भगवन् ! जब सूर्य दूसरे आभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब दिन कितना बड़ा होता है, रात कितनी बड़ी होती है ?

गौतम ! तब २/६१ मुहूर्तांश कम १८ मुहूर्त का दिन होता है, २/६१ मुहूर्तांश अधिक १२ मुहूर्त की रात होती है।

वहाँ से निष्क्रमण करता हुआ सूर्य दूसरे अहोरात्र में (दूसरे आभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर) गति करता है, तब दिन कितना बड़ा होता है, रात कितनी बड़ी होती है ?

गौतम ! तब ४/६१ मुहूर्तांश कम १८ मुहूर्त का दिन होता है, ४/६१ मुहूर्तांश अधिक १२ मुहूर्त की रात होती है।

इस क्रम से निष्क्रमण करता हुआ, पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल का संक्रमण करता हुआ सूर्य प्रत्येक मण्डल में दिवस-क्षेत्र—दिवस-परिमाण को २/६१ मुहूर्तांश कम करता हुआ तथा रात्रि-परिमाण को २/६१ मुहूर्तांश बढ़ाता हुआ सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है।

जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल से सर्ववाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब सर्वाभ्यन्तर मण्डल का परित्याग कर १८३ अहोरात्र में दिवस-क्षेत्र में ३६६ संख्या-परिमित $\frac{१}{६१}$ मुहूर्तांश कम कर तथा रात्रि-क्षेत्र में इतने ही मुहूर्तांश बढ़ाकर गति करता है।

भगवन् ! जब सूर्य सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब दिन कितना बड़ा होता है, रात कितनी बड़ी होती है ?

गौतम ! तब रात उत्तमावस्थाप्राप्त, उत्कृष्ट—अधिक के अधिक १८ मुहूर्त की होती है, दिन जघन्य—कम से कम १२ मुहूर्त का होता है। ये प्रथम छः मास हैं। यह प्रथम छः मास का पर्यवसान है—समापन है। वहाँ से प्रवेश करता हुआ सूर्य दूसरे छः मास के प्रथम अहोरात्र में दूसरे बाह्य मण्डल को उपसंक्रान्त कर गति करता है।

भगवन् ! जब सूर्य दूसरे बाह्य मण्डल को उपसंक्रान्त कर गति करता है, तब दिन कितना बड़ा होता है, रात कितनी बड़ी होती है ?

गौतम ! तब $\frac{२}{६१}$ मुहूर्तांश कम १८ मुहूर्त की रात होती है, $\frac{२}{६१}$ मुहूर्तांश अधिक १२ मुहूर्त का दिन होता है। वहाँ से प्रवेश करता हुआ सूर्य दूसरे अहोरात्र में तीसरे बाह्य मण्डल को उपसंक्रान्त कर गति करता है।

भगवन् ! जब सूर्य तीसरे बाह्य मण्डल को उपसंक्रान्त कर गति करता है, तब दिन कितना बड़ा होता है, रात कितनी बड़ी होती है ?

गौतम ! तब $\frac{४}{६१}$ मुहूर्तांश कम १८ मुहूर्त की रात होती है, $\frac{४}{६१}$ मुहूर्तांश अधिक १२ मुहूर्त का दिन होता है। इस प्रकार पूर्वोक्त क्रम से प्रवेश करता हुआ सूर्य पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल का संक्रमण करता हुआ रात्रि-क्षेत्र में एक-एक मण्डल में $\frac{२}{६१}$ मुहूर्तांश कम करता हुआ तथा दिवस-क्षेत्र में $\frac{२}{६१}$ मुहूर्तांश बढ़ाता हुआ सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है।

भगवन् ! जब सूर्य सर्वबाह्य मण्डल से सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब वह सर्वबाह्य मण्डल का परित्याग कर १८३ अहोरात्र में रात्रि-क्षेत्र में ३६६ संख्या-परिमित $\frac{१}{६१}$ मुहूर्तांश कम कर तथा दिवस-क्षेत्र में उतने ही मुहूर्तांश अधिक कर गति करता है। ये द्वितीय छह मास हैं। यह द्वितीय छह मास का पर्यवसान है। यह आदित्य-संवत्सर है। यह आदित्य-संवत्सर का पर्यवसान बतलाया गया है।

ताप-क्षेत्र

१६८. जया णं भंते ! सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं किंसंठिआ तावखित्तसंठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! उद्धीमुहकलंबुआपुप्फसंठाणसंठिआ तावखेत्तसंठिई पण्णत्ता। अंतो संकुडआ बाहिं वित्थडा, अंतो वट्टा वाहिं विहुला, अंतो अंकमुहसंठिआ बाहिं सगडुद्धीमुहसंठिआ, उभओपासे णं तीसे दो बाहाओ अवट्ठिआओ हवंति पणयालीसं २ जोअणसहस्साइं आयामेणं। दुवे अ णं तीसे बाहाओ अणवट्ठिआओ हवंति, तं जहा—सव्वब्भंतरिआ चेव बाहा सव्वबाहिरिआ चेव बाहा। तीसे णं

सव्वब्भंतरिआ बाहा मंदरपव्वयंतेणं णवजोअणसहस्साइं चत्तारि छलसीए जोअणसए णव य दसभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं।

एस णं भंते! परिक्खेवविसेसे कओ आहिएत्ति वएज्जा?

गोयमा! जे णं मंदरस्स परिक्खेवे, तं परिक्खेवं तिहिं गुणेत्ता दसहिं छेत्ता दसहिं भागे हीरमाणे एस परिक्खेवविसेसे आहिएत्ति वदेज्जा।

तीसे णं सव्वबाहिरिआ बाहा लवणसमुद्दंतेणं चउणवई जोअणसहस्साइं अट्ठ य अट्ठसट्ठे जोअणसए चत्तारि अ दसभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं।

से णं भंते! परिक्खेवविसेसे कओ आहिएत्ति वएज्जा?

गोयमा! जे णं जंबुद्दीवस्स परिक्खेवे, तं परिक्खेवं तिहिं गुणेत्ता दसहिं छेत्ता दसभागे हीरमाणे एस णं परिक्खेवविसेसे आहिएत्ति वएज्जा इति।

तया णं भंते! तावखित्ते केवइअं आयामेणं पण्णत्ते?

गोयमा! अट्ठहत्तरिं जोअणसहस्साइं तिण्णि अ तेत्तीसे जोअणसए जोअणस्स तिभागं च आयामेणं पण्णत्ते।

मेरुस्स मज्झयारे जाव य लवणस्य रुंदछब्भागो।
तावायामो एसो सगडुद्धीसंठिओ नियमा॥ १॥

तया णं भंते! किंसंठिआ अंधकारसंठिई पण्णत्ता?

गोयमा! उद्धीमुहकलंबुआपुप्फसंठाणसंठिआ अंधकारसंठिई पण्णत्ता, अंतो संकुआ, बाहिं वित्थडा तं चेव (अंतो वट्टा, बाहिं विउला, अंतो अंकमुहसंठिआ, बाहिं सगडुद्धीमुहसंठिआ।)

तीसे णं सव्वब्भंतरिआ बाहा मंदरपव्वयंतेणं छज्जोअणसहस्साइं तिण्णि अ चउवीसे जोअणसए छच्च दसभाए जोअणस्स परिक्खेवेणंति।

से णं भंते! परिक्खेवविसेसे कओ आहिएत्तिवएज्जा?

गोयमा! जे णं मंदरस्स पव्वयस्स परिक्खेवे तं परिक्खेवं, दोहिं गुणेत्ता दसहिं छेत्ता दसहिं भागे हीरमाणे एस णं परिक्खेवविसेसे आहिएत्ति वएज्जा।

तीसे णं सव्वबाहिरिआ बाहा लवणसमुद्दंतेणं तेसट्ठी जोअणसहस्साइं दोण्णि य पणयाले जोअणसए छच्च दसभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं।

से णं भंते! परिक्खेवविसेसे कओ आहिएत्ति वएज्जा?

गोयमा! जे णं जम्बुद्दीवस्स परिक्खेवे तं परिक्खेवं दोहिं गुणेत्ता (दसहिं छेत्ता दसहिं भागे हीरमाणे एस णं परिक्खेवविसेसे आहिएत्ति वएज्जा) तं चेव।

तया णं भंते! अंधयारे केवइए आयामेणं पण्णत्ते?

गोयमा! अट्ठहत्तरिं जोअणसहस्साइं तिण्णि अ तेत्तीसे जोअणसए तिभागं च आयामेणं पण्णत्ते।

जया णं भंते ! सूरिए सव्वबाहिरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं किंसंठिआ तावक्खित्तसंठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! उद्धीमुहकलंबुआपुप्फसंठाणसंठिआ पण्णत्ता । तं चेव सव्वं णेअव्वं णवरं णाणत्तं जं अंधयारसंठिइए पुव्ववण्णिअं पमाणं तं तावखित्तसंठिईए णेअव्वं, तं ताव खित्तसंठिईए पुव्ववण्णिअं पमाणं तं अंधयारसंठिईए णेअव्वंति ।

[१६८] भगवन् ! जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तो उसके ताप-क्षेत्र की स्थिति—सूर्य के आतप से परिव्याप्त आकाश-खण्ड की स्थिति—उसका संस्थान किस प्रकार का बतलाया गया है ?

गौतम ! तब ताप-क्षेत्र की स्थिति ऊर्ध्वमुखी कदम्ब-पुष्प के संस्थान जैसी होती है—उसकी ज्यों संस्थित होती है । वह भीतर—मेरु पर्वत की दिशा में संकीर्ण—संकड़ी तथा बाहर—लवण समुद्र की दिशा में विस्तीर्ण—चौड़ी, भीतर से वृत्त—अर्ध वलयाकार तथा बाहर से पृथुल-पृथुलतापूर्ण विस्तृत, भीतर अंकमुख—पद्मासन में अवस्थित पुरुष के उत्संग—गोद रूप आसनबन्ध में मुख—अग्रभाग जैसी तथा बाहर गाड़ी की धुरी के अग्रभाग जैसी होती है ।

मेरु के दोनों ओर उसकी दो बाहाएँ—भुजाएँ—पार्श्व में अवस्थित हैं—नियत परिमाण हैं—उनमें वृद्धि-हानि नहीं होती । उनकी—उनमें से प्रत्येक की लम्बाई ४५००० योजन है । उसकी दो बाहाएँ अनवस्थित—अनियत परिमाणयुक्त हैं । वे सर्वाभ्यन्तर तथा सर्वबाह्य के रूप में अभिहित हैं । उनमें सर्वाभ्यन्तर बाहा की परिधि मेरु पर्वत के अन्त में ९४८६ $\frac{९}{१०}$ योजन है ।

भगवन् ! यह परिक्षेपविशेष—परिधि का परिमाण किस आधार पर कहा गया है ?

गौतम ! जो मेरु पर्वत की परिधि है, उसे ३ से गुणित किया जाए । गुणनफल को दस का भाग दिया जाए । उसका भागफल (मेरु पर्वत की परिधि ३१६२३ योजन × ३ = ९४८६९ ÷ १० = ९४८६ $\frac{९}{१०}$) इस परिधि का परिमाण है ।

उसकी सर्वबाह्य बाहा की परिधि लवण समुद्र के अन्त में ९४८६८ $\frac{४}{१०}$ योजन-परिमित है ।

भगवन् ! इस परिधि का यह परिमाण कैसे बतलाया गया है ?

गौतम ! जो जम्बूद्वीप की परिधि है, उसे ३ से गुणित किया जाए, गुणनफल को १० से विभक्त किया जाए । वह भागफल (जम्बूद्वीप की परिधि ३१६२२८ × ३ = ९४८६८४ ÷ १० = ९४८६८ $\frac{४}{१०}$) इस परिधि का परिमाण है ।

भगवन् ! उस समय ताप-क्षेत्र की लम्बाई कितनी होती है ?

गौतम ! उस समय ताप-क्षेत्र की लम्बाई ७८३३३ $\frac{१}{३}$ योजन होती है, ऐसा बतलाया गया है ।

मेरु से लेकर जम्बूद्वीप पर्यन्त ४५००० योजन तथा लवण समुद्र के विस्तार २००००० योजन के $\frac{१}{६}$ भाग ३३३३३ $\frac{१}{३}$ योजन का जोड़ ताप-क्षेत्र की लम्बाई है । उसका संस्थान गाड़ी की धुरी के अग्रभाग जैसा होता है ।

भगवन् ! तब अन्धकार-स्थिति कैसा संस्थान—आकार लिये होती है ?

गौतम ! अन्धकार-स्थिति तब ऊर्ध्वमुखी कदम्ब पुष्प का संस्थान लिये होती है, वैसे आकार की होती है। वह भीतर संकीर्ण-सँकड़ी, वाहर विस्तीर्ण—चौड़ी (भीतर से वृत्त—अर्ध वलयाकार, बाहर से पृथुलता लिये विस्तृत, भीतर से अंकमुख—पद्मासन में अवस्थित पुरुष के उत्संग—गोदरूप आसन-बन्ध के मुख—अग्रभाग की ज्यों तथा बाहर से गाड़ी की धुरी के अग्रभाग की ज्यों होती है।

उसकी सर्वाभ्यन्तर बाहा की परिधि मेरु पर्वत के अन्त में ६३२४$\frac{६}{१०}$ योजन-प्रमाण है।

भगवन् ! यह परिधि का परिमाण कैसे है ?

गौतम ! जो मेरु पर्वत की परिधि है, उसे दो से गुणित किया जाए, गुणनफल को दस से विभक्त किया जाए, उसका भागफल(मेरु-परिधि ३१६२३ योजन × २ = ६३२४६ ÷ १० = ६३२४$\frac{६}{१०}$) इस परिधि का परिमाण है।

उसकी सर्वबाह्य बाहा की परिधि लवण-समुद्र के अन्त में ६३२४५$\frac{६}{१०}$ योजन-परिमित है।

भगवन् यह परिधि-परिमाण किस प्रकार है ?

गौतम ! जो जम्बूद्वीप की परिधि है, उसे दो से गुणित किया जाए, गुणनफल को दस से विभक्त किया जाए, उसका भागफल (जम्बूद्वीप की परिधि ३१६२२८ योजन × २ = ६३२४५६ ÷ १० = ६३२४५$\frac{६}{१०}$ योजन) इस परिधि का परिमाण है।

भगवन् ! तब अन्धकार क्षेत्र का आयाम—लम्बाई कितनी बतलाई गई है ?

गौतम ! उसकी लम्बाई ७८३३३ $\frac{१}{३}$ योजन बतलाई गई है।

भगवन् ! जब सूर्य सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है तो ताप-क्षेत्र का संस्थान कैसा बतलाया गया है ?

गौतम ! ऊर्ध्वमुखी कदम्ब-पुष्प संस्थान जैसा उसका संस्थान बतलाया गया है।

अन्य वर्णन पूर्वानुरूप है। इतना अन्तर है—पूर्वानुपूर्वी के अनुसार जो अन्धकार-संस्थिति का प्रमाण है, वह इस पश्चानुपूर्वी के अनुसार ताप-संस्थिति का जानना चाहिए। सर्वाभ्यन्तर मण्डल के सन्दर्भ में जो ताप-क्षेत्र-संस्थिति का प्रमाण है, वह अन्धकार-संस्थिति में समझ लेना चाहिए।

सूर्य-परिदर्शन

१६९. जम्बुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिआ उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे अ मूले अ दीसंति, मज्झंतिअमुहुत्तंसि मूले अ दूरे अ दीसंति, अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे अ मूले अ दीसंति ?

हंता गोयमा ! तं चेव (मूले अ दूरे अ दीसंति।)

जम्बुद्दीवे णं भंते ! सूरिआ उग्गमणमुहुत्तंसि अ मज्झंतिअ-मुहुत्तंसि अ अत्थमणमुहुत्तंसि अ सव्वत्थ समा उच्चत्तेणं ?

हंता तं चेव (सव्वत्थ समा) उच्चत्तेणं। जइ णं भंते ! जम्बुद्दीवे दीवे सूरिआ उग्गमण-मुहुत्तंसि अ मज्झंतिअ-मुहुत्तंसि अ अत्थमणमुहुत्तंसि अ सव्वत्थ समा उच्चत्तेणं, कम्हा णं भंते !

जम्बुद्दीवे दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे अ मूले अ दीसंति, मज्झंतिअ-मुहुत्तंसि मूले अ दूरे अ दीसंति, अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे अ मूले अ दीसंति ?

गोयमा ! लेसा-पडिघाएणं उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे अ मूले अ दीसंति इति। लेसाहितावेणं मज्झंतिअ-मुहुत्तंसि मूले अ दूरे अ दीसंति। लेसा-पडिघाएणं अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे अ मूले अ दीसंति। एवं खलु गोयमा ! तं चेव (दूरे अ मूले अ) दीसंति।

[१६९] ! क्या जम्बूद्वीप में सूर्य (दो) उद्गमन-मुहूर्त में—उदयकाल में स्थानापेक्षया दूर होते हुए भी द्रष्टा की प्रतीति की अपेक्षा से मूल—आसन्न या समीप दिखाई देते हैं ? मध्याह्न-काल में स्थानापेक्षया समीप होते हुए भी क्या वे दूर दिखाई देते हैं ? अस्तमन-वेला में—अस्त होने के समय क्या वे दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं ?

हाँ गौतम ! वे वैसे ही (निकट एवं दूर) दिखाई देते हैं।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में सूर्य उदयकाल, मध्याह्न-काल तथा अस्तमन-काल में क्या सर्वत्र एक सरीखी ऊँचाई लिये होते हैं ?

हाँ, गौतम ! ऐसा ही है। वे सर्वत्र एक सरीखी ऊँचाई लिये होते हैं।

भगवन् ! यदि जम्बूद्वीप में सूर्य उदय-काल, मध्याह्न-काल तथा अस्तमन-काल में सर्वत्र एक-सरीखी ऊँचाई लिये होते हैं तो उदय-काल में वे दूर होते हुए भी निकट क्यों दिखाई देते हैं, मध्याह्न-काल में निकट होते हुए भी दूर क्यों दिखाई देते हैं तथा अस्तमन-काल में दूर होते हुए भी निकट क्यों दिखाई देते हैं ?

गौतम ! लेश्या के प्रतिघात से—सूर्यमण्डलगत तेज के प्रतिघात से—अत्यधिक दूर होने के कारण उदयस्थान से आगे प्रसृत न हो पाने से, यों तेज या ताप के प्रतिहत होने के कारण सुखदृश्य—सुखपूर्वक देखे जा सकने योग्य होने के कारण दूर होते हुए भी सूर्य उदय-काल में निकट दिखाई देते हैं।

मध्याह्नकाल में लेश्या के अभिताप से—सूर्यमण्डलगत तेज के अभिताप से—प्रताप से—विशिष्ट ताप से निकट होते हुए भी सूर्य के तीव्र तेज की दुर्दृश्यता के कारण—कष्टपूर्वक देखे जा सकने योग्य होने के कारण दूर दिखाई देते हैं।

अस्तमन-काल में लेश्या के प्रतिघात के कारण उदय-काल की ज्यों दूर होते हुए भी सूर्य निकट दिखाई पड़ते हैं।

गौतम दूर तथा निकट दिखाई पड़ने के यही कारण हैं।

क्षेत्रगमन

१७०. जम्बुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिआ किं तीअं खेत्तं गच्छंति, पडुप्पण्णं खेत्तं गच्छन्ति, अणागयं खेत्तं गच्छन्ति ?

गोयमा ! णो तीअं खेत्तं गच्छन्ति, पडुप्पण्णं खेत्तं गच्छन्ति, णो अणागयं खेत्तं गच्छन्ति त्ति।

तं भंते ! किं पुट्ठं गच्छन्ति (णो अपुट्ठं गच्छन्ति, तं भंते ! किं ओगाढं गच्छन्ति अणोगाढं गच्छन्ति ? गोयमा ! ओगाढं गच्छन्ति, णो अणोगाढं गच्छन्ति। तं भंते ! किं अणंतरोगाढं गच्छन्ति, परंपरोगाढं गच्छन्ति ? गोयमा ! अणंतरोगाढं गच्छन्ति णो परंपरोगाढं गच्छन्ति। तं भंते ! किं अणुं गच्छन्ति बायरं गच्छन्ति ? गोयमा ! अणुंपि गच्छन्ति बायरंपि गच्छन्ति, तं भंते ! किं उद्धं गच्छन्ति अहे गच्छन्ति तिरियं गच्छन्ति ? गोयमा ! उद्धंपि गच्छन्ति, तिरिअंपि गच्छन्ति, अहेवि गच्छन्ति। तं भंते ! किं आइं गच्छन्ति, मज्झे गच्छन्ति, पज्जवसाणे गच्छन्ति ? गोयमा ! आइंपि गच्छन्ति मज्झेवि गच्छन्ति पज्जवसाणेवि गच्छन्ति। तं भंते ! किं सविसयं गच्छन्ति, अविसयं गच्छन्ति ? गोयमा ! सविसयं गच्छन्ति, णो अविसयं गच्छन्ति। तं भंते ! किं आणुपुव्वि गच्छन्ति अणाणुपुव्वि गच्छन्ति ? गोयमा ! आणुपुव्वि गच्छन्ति णो अणाणुपुव्वि गच्छन्ति, तं भंते ! किं एगदिसिं गच्छन्ति छद्दिसिं गच्छन्ति ? गोयमा !) नियमा छद्दिसिति, एवं ओभासेंति, तं भंते ! किं पुट्ठं ओभासेंति ?

एवं आहारपयाइं णेअव्वाइं पुट्ठोगाढमणंतरअणुमहआदिविसयाणुपुव्वी अ जाव णिअमा छद्दिसिं, एवं उज्जोवेंति, तवेंति, पभासेंति ११।

[१७०] भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप में सूर्य अतीत—गतिविषयीकृत—पहले चले हुए क्षेत्र का—अपने तेज से व्याप्त क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं अथवा प्रत्युत्पन्न—वर्तमान क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं या अनागत—भविष्यवर्ती—जिसमें गति की जाएगी उस—क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं ?

गौतम ! वे अतीत क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं करते, वे वर्तमान क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं। वे अनागत क्षेत्र का भी अतिक्रमण नहीं करते।

भगवन् ! क्या वे गम्यमान क्षेत्र का स्पर्श करते हुए अतिक्रमण करते हैं या अस्पर्श पूर्वक—स्पर्श नहीं करते हुए—अतिक्रमण करते हैं ?

(गौतम ! वे गम्यमान क्षेत्र का स्पर्श करते हुए अतिक्रमण करते हैं, स्पर्श नहीं करते हुए अतिक्रमण नहीं करते।

भगवन् ! क्या वे गम्यमान क्षेत्र को अवगाढ कर—अधिष्ठित कर अतिक्रमण करते हैं या अनवगाढ कर—अनाश्रित कर अतिक्रमण करते हैं ?

गौतम ! वे गम्यमान क्षेत्र को अवगाढ कर अतिक्रमण करते हैं, अनवगाढ कर अतिक्रमण नहीं करते।

भगवन् ! क्या वे गम्यमान क्षेत्र का अनन्तरावगाढ—अव्यवधानाश्रित—व्यवधानरहित—अव्यवहित रूप में अतिक्रमण करते हैं या परम्परावगाढ—व्यवधानयुक्त—व्यवहित रूप में अतिक्रमण करते हैं ?

गौतम ! वे उस क्षेत्र का अव्यवहित रूप में अवगाहन करके अतिक्रमण करते हैं, व्यवहित रूप में अवगाहन करके अतिक्रमण नहीं करते।

भगवन् ! क्या वे अणुरूप—सूक्ष्म अनन्तरावगाढ क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं या बादररूप—स्थूल अनन्तरावगाढ क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं ?

गौतम ! वे अणुरूप—सूक्ष्म अनन्तरावगाढ क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं तथा बादररूप—स्थूल अनन्तरावगाढ क्षेत्र का भी अतिक्रमण करते हैं।

भगवन् ! क्या वे अणुबादररूप ऊर्ध्व क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं या अधःक्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं या तिर्यक् क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं ?

गौतम ! वे अणुबादररूप ऊर्ध्व क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं, अधःक्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं और तिर्यक् क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं—तीनों क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं।

भगवन् ! क्या वे साठ मुहूर्तप्रमाण मण्डलसंक्रमणकाल के आदि में गमन करते हैं या मध्य में गमन करते हैं या अन्त में गमन करते हैं ?

गौतम ! वे आदि में भी गमन करते हैं, मध्य में भी गमन करते हैं तथा अन्त में भी गमन करते हैं।

भगवन् ! क्या वे स्वविषय में—अपने उचित—स्पृष्ट-अवगाढ-अनन्तरावगाढ रूप क्षेत्र में गमन करते हैं या अविषय में—अनुचित विषय में—अस्पृष्ट-अनवगाढ-परम्परावगाढ क्षेत्र में गमन करते हैं ?

गौतम ! वे स्पृष्ट-अवगाढ-अनन्तरावगाढ रूप उचित क्षेत्र में गमन करते हैं, अस्पृष्ट-अनवगाढ-परम्परावगाढ रूप अनुचित क्षेत्र में गमन नहीं करते।

भगवन् ! क्या वे आनुपूर्वीपूर्वक—क्रमशः आसन्न क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं या अनानुपूर्वीपूर्वक—क्रमशः अनासन्न क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं ?

गौतम ! वे आनुपूर्वीपूर्वक—क्रमशः आसन्न क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं, अनानुपूर्वीपूर्वक-क्रमशः अनासन्न क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं करते।

भगवन् ! क्या वे एक दिशा का—एक दिशाविषयक क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं या छह दिशाओं का—छह दिशाविषयक क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं ?

गौतम ! वे नियमतः छह दिशाविषयक क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं।

इस प्रकार वे अवभासित होते हैं—ईषत्—थोड़ा—किञ्चित् प्रकाश करते हैं, जिसमें स्थूलतर वस्तुएँ दीख पाती हैं।

भगवन् ! क्या वे सूर्य उस क्षेत्र रूप वस्तु को स्पर्श कर प्रकाशित करते हैं या उसका स्पर्श किये बिना ही प्रकाशित करते हैं ?

प्रस्तुत प्रसंग चौथे उपांग प्रज्ञापनासूत्र के २८ वें आहारपद से स्पृष्टसूत्र, अवगाढसूत्र, अनन्तर-सूत्र, अणु-बादर-सूत्र, ऊर्ध्व-अधःप्रभृतिसूत्र, आदि-मध्यावसानसूत्र, विषयसूत्र, आनुपूर्वीसूत्र, षड्दिश् सूत्र आदि के रूप में विस्तार से ज्ञातव्य है।

इस प्रकार दोनों सूर्य छहों दिशाओं में उद्योत करते हैं, तपते हैं, प्रभासित होते हैं—प्रकाश करते हैं।

१७१. जम्बुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिआणं किं तीते खित्ते किरिआ कज्जइ, पडुप्पण्णे किरिआ कज्जइ, अणागए किरिआ कज्जइ ?

गोयमा ! णो तीए खित्ते किरिआ कज्जइ, पडुप्पण्णे कज्जइ, णो अणागए।

सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ० ?

गोयमा ! पुट्ठा, णो अणापुट्ठा कज्जइ। (....सा णं भंते ! कि आइं किज्जइ, मज्झे किज्जइ, पज्जवसाणे किज्जइ ? गोयमा ! आइंपि किज्जइ मज्झेवि किज्जइ पज्जवसाणेवि किज्जइ त्ति) णिअया छद्दिसिं।

[१७१] भगवन् ! जम्बूद्वीप में दो सूर्यों द्वारा अवभासन आदि क्रिया क्या अतीत क्षेत्र में की जाती है या प्रत्युत्पन्न—वर्तमान क्षेत्र में की जाती है अथवा अनागत क्षेत्र में की जाती है ?

गौतम ! अवभासन आदि क्रिया अतीत क्षेत्र में नहीं की जाती, प्रत्युत्पन्न—वर्तमान क्षेत्र में की जाती है। अनागत क्षेत्र में भी क्रिया नहीं की जाती।

भगवन् ! क्या सूर्य अपने तेज द्वारा क्षेत्र-स्पर्शन पूर्वक—क्षेत्र का स्पर्श करते हुए अवभासन आदि क्रिया करते हैं या स्पर्श नहीं करते हुए अवभासन आदि क्रिया करते हैं ?

(गौतम ! वे क्षेत्र-स्पर्शनपूर्वक अवभासन आदि क्रिया करते हैं क्षेत्र का स्पर्श नहीं करते हुए अवभासन आदि क्रिया नहीं करते।

भगवन् ! वह अवभासन आदि क्रिया साठ मुहूर्तप्रमाण मण्डलसंक्रमणकाल के आदि में की जाती है या मध्य में की जाती है या अन्त में की जाती है ?

गौतम ! वह आदि में भी की जाती है, मध्य में भी की जाती है और अन्त में भी की जाती है।)

वह नियमतः छहों दिशाओं में की जाती है।

ऊर्ध्वादि ताप

१७२. जम्बुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिआ केवइअं खेत्तं उद्धं तवयन्ति अहे तिरिअं च ?

गोयमा ! एगं जोअणसयं उद्धं तवयन्ति, अट्ठारससयजोअणाइं अहे तवयन्ति, सीआलीसं जोअणसहस्साइं दोण्णि अ तेवट्ठे जोअणसए एगवीसं च सट्ठिभाए जोअणस्स तिरिअं तवयन्तित्ति १३।

[१७२] भगवन् ! जम्बूद्वीप में सूर्य कितने क्षेत्र को ऊर्ध्वभाग में अपने तेज से तपाते हैं—व्याप्त करते हैं ? अधोभाग में—नीचे के भाग में तथा तिर्यक् भाग में तपाते हैं ?

गौतम ! ऊर्ध्वभाग में १०० योजन क्षेत्र को, अधोभाग में १८०० योजन क्षेत्र को तथा तिर्यक् भाग में ४७२६३ $\frac{२१}{६०}$ योजन क्षेत्र को अपने तेज से तपाते हैं—व्याप्त करते हैं।

ऊर्ध्वोपपन्नादि

१७३. अंतो णं भंते ! माणुसुत्तरस्स पव्वयस्स जे चंदिमसूरिअगहगणणक्खत्ततारारूवा णं भन्ते ! देवा किं उद्धोववण्णगा कप्पोववण्णगा, विमाणोववण्णगा, चारोववण्णगा, चारट्ठिईआ, गइरइआ, गइसमावण्णगा ?

गोयमा ! अंतो णं माणुसुत्तरस्स पव्वयस्स जे चन्दिमसूरिअ-(गहगणणक्खत्त)-तारारूवे ते णं देवा णो उद्धोववण्णगा णो कप्पोववण्णगा, विमाणोववण्णगा, चारोववण्णगा, णो चारट्ठिईआ, गइरइआ गइसमावण्णगा।

उद्धीमुहकलंबुआपुप्फसंठाणसंठिएहिं, जोअणसाहस्सिएहिं तावखेत्तेहिं साहस्सिआहिं वेउव्विआहिं बाहिराहिं परिसाहिं महयाहयणट्टगीयवाइअतंतीतलतालतुडिअघणमुइंगपडुप्पवाइअरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा महया उक्किट्ठसीहणायबोलकलकलरवेणं अच्छं पव्वयरायं पयाहिणावत्तमण्डलचारं मेरुं अणुपरिअट्टंति १४।

[१७३] भगवन् ! मानुषोत्तर पर्वतवर्ती चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र एवं तारे—ये ज्योतिष्क देव क्या ऊर्ध्वोपपन्न हैं—सौधर्म आदि बारह कल्पों से ऊपर ग्रैवेयक तथा अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हैं—क्या कल्पातीत हैं ? क्या वे कल्पोपपन्न हैं—ज्योष्तिक देव-सम्बद्ध विमानों में उत्पन्न हैं ? क्या वे चारोपपन्न हैं—मण्डल गतिपूर्वक परिभ्रमण से युक्त हैं ? क्या वे चारस्थितिक गत्यभावयुक्त हैं—परिभ्रमण-रहित हैं ? क्या वे गतिरतिक हैं—गति में रति—आसक्ति या प्रीति लिये हैं ? क्या गति समापन्न हैं—गतियुक्त हैं ?

गौतम ! मानुषोत्तर पर्वतवर्ती चन्द्र, सूर्य, (ग्रह, नक्षत्र) तारे—ज्योतिष्क देव ऊर्ध्वोपपन्न नहीं हैं, कल्पोपपन्न नहीं हैं। वे विमानोत्पन्न हैं, चारोपपन्न हैं, चारस्थितिक नहीं हैं, गतिरतिक हैं, गतिसमापन्न हैं।

ऊर्ध्वमुखी कदम्ब पुष्प के आकार में संस्थित सहस्रों योजनपर्यन्त चन्द्रसूर्यपेक्षया तापक्षेत्र युक्त, वैक्रियलब्धियुक्त—नाना प्रकार के विकुर्वितरूप धारण करने में सक्षम, नाट्य, गीत, वादन आदि में निपुणता के कारण आभियोगिक कर्म करने में तत्पर, सहस्रों बाह्य परिषदों से संपरिवृत वे ज्योतिष्क देव नाट्य-गीत-वादन रूप त्रिविध संगीतोपक्रम में जोर जोर से बजाये जाते तन्त्री-तल-ताल-त्रुटित-घन-मृदंग—इन वाद्यों से उत्पन्न मधुर ध्वनि के साथ दिव्य भोग भोगते हुए, उच्च स्वर से सिंहनाद करते हुए, मुँह पर हाथ लगाकर जोर से पूत्कार करते हुए—सीटी की ज्यों ध्वनि करते हुए, कलकल शब्द करते हुए अच्छ—जाम्बूनद जातीय स्वर्णयुक्त तथा रत्नबहुल होने से अतीव निर्मल, उज्ज्वल मेरु पर्वत की प्रदक्षिणावर्त मण्डल गति द्वारा प्रदक्षिणा करते रहते हैं।

विवेचन—मानुषोत्तर पर्वत—मनुष्यों की उत्पत्ति, स्थिति तथा मरण आदि मानुषोत्तर पर्वत से पहले पहले होते हैं, आगे नहीं होते, इसलिए उसे मानुषोत्तर कहा जाता है।

विद्या आदि विशिष्ट शक्ति के अभाव में मनुष्य उसे लांघ नहीं सकते, इसलिए भी वह मानुषोत्तर कहा जाता है।

प्रदक्षिणावर्त मण्डल

सब दिशाओं तथा विदिशाओं में परिभ्रमण करते हुए चन्द्र आदि के जिस मण्डलपरिभ्रमण रूप आवर्तन में मेरु दक्षिण में रहता है, वह प्रदक्षिणावर्त मण्डल कहा जाता है।

इन्द्रच्यवन : अन्तरिम व्यवस्था

१७४. तेसि णं भंते ! देवाणं जाहे इंदे चुए भवइ, से कहमियाणिं पकरेंति ?

गोयमा ! ताहे चत्तारि पंच वा सामाणिआ देवा तं ठाणं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति जाव तत्थ अण्णे इंदे उववण्णे भवइ ।

इंदट्ठाणे णं भंते ! केवइअं कालं उववाएणं विरहिए ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं छम्मासे उववाएणं विरहिए ।

बहिआ णं भंते ! माणुसुत्तरस्स पव्वयस्स जे चंदिम-(सूरिअ-गहगण-णक्खत्त-) तारारूवा तं चेव णेअव्वं णाणत्तं विमाणोववण्णगा णो चारोववण्णगा, चारठिईआ णो गइरइआ णो गइसमावण्णगा ।

पक्किट्ठग-संठाण-संठिएहिं जोअण-सय-साहस्सिएहिं तावखित्तेहिं सय-साहस्सिआहिं वेउव्विआहिं बाहिराहिं परिसाहिं महया हयणट्ट (गीअवाइअतंतीतलतालतुडिअघणमुइंगपडुप्पवाइअरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं) भुंजमाणा सुहलेसा मंदलेसा मंदातवलेसा चित्तंतरलेसा अण्णोण्णसमोगाढाहिं लेसाहिं कूडाविव ठाणठिआ सव्वओ समन्ता ते पएसे ओभासंति उज्जोवेंति पभासेंतित्ति ।

तेसि णं भंते ! देवाणं जाहे इंदे चुए से कहमियाणिं पकरेन्ति (गोयमा ! ताहे चत्तारि पंच वा सामाणिआ देवा तं ठाणं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति जाव तत्थ अण्णे इंदे उववण्णे भवइ ।

इंदट्ठाणे णं भंते ! केवइअं कालं उववाएणं विरहिए ? गोयमा !) जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासा इति ।

[१७४] भगवन् ! उन ज्योतिष्क देवों का इन्द्र जब च्युत (मृत) हो जाता है, तब इन्द्रविरह-काल में देव कैसा करते हैं—किस प्रकार काम चलाते हैं ?

गौतम ! जब तक दूसरा इन्द्र उत्पन्न नहीं होता, तब तक चार या पांच सामानिक देव मिल कर इन्द्र-स्थान का परिपालन करते हैं—स्थानापन्न के रूप में कार्य-संचालन करते हैं ।

भगवन् ! इन्द्र का स्थान कितने समय तक नये इन्द्र की उत्पत्ति से विरहित रहता है ?

गौतम ! वह कम से कम एक समय तथा अधिक से अधिक छह मास तक इन्द्रोत्पत्ति से विरहित रहता है ।

भगवन् ! मानुषोत्तर पर्वत के बहिर्वर्ती चन्द्र (सूर्य, ग्रह, नक्षत्र एवं) तारे रूप ज्योतिष्क देवों का वर्णन पूर्वानुरूप जानना चाहिए । इतना अन्तर है—वे विमानोत्पन्न हैं, किन्तु चारोपपन्न नहीं है । वे चारस्थितिक हैं, गतिरतिक नहीं हैं, गति-समापन्न नहीं हैं ।

पकी ईंट के आकार में संस्थित, चन्द्रसूर्यापेक्षया लाखों योजन विस्तीर्ण तापक्षेत्रयुक्त, नानाविध विकुर्वित रूप धारण करने में सक्षम, लाखों बाह्य परिषदों से संपरिवृत ज्योतिष्क देव (नाट्य-गीत-वादन रूप त्रिविध संगीतोपक्रम में जोर जोर से बजाये जाते (तन्त्री-तल-ताल-त्रुटित-घन-मृदंग इन) वाद्यों से उत्पन्न मधुर ध्वनि के आनन्द के साथ दिव्य भोग भोगने में अनुरत, सुखलेश्यायुक्त-[1] शीतकाल की सी कड़ी शीतलता से रहित, प्रियकर, सुहावनी शीतलता से युक्त, मन्दलेश्यायुक्त[2]—

१. चन्द्रों के लिए ।

२. सूर्यों के लिए ।

ग्रीष्मकाल की तीव्र उष्णता से रहित, मन्द आतप रूप लेश्या से युक्त, विचित्र-विविधलेश्यायुक्त, परस्पर अपनी अपनी लेश्याओं द्वारा अवगाढ—मिलित, पर्वत की चोटियों की ज्यों अपने अपने स्थान में स्थित, सब ओर के अपने प्रत्यासन्न—समीपवर्ती प्रदेशों को अवभासित करते हैं—आलोकित करते हैं, उद्योतित करते हैं, प्रभासित करते हैं।

भगवन् ! जब मानुषोत्तर पर्वत के बहिर्वर्ती इन ज्योतिष्क देवों का इन्द्र च्युत होता है तो वे अपने यहाँ कैसी व्यवस्था करते हैं ?

गौतम ! जब तक नया इन्द्र उत्पन्न नहीं होता तब तक चार या पांच सामानिक देव परस्पर एकमत होकर, मिलकर इन्द्र-स्थान का परिपालन करते हैं—स्थानापन्न के रूप में कार्य-संचालन करते हैं—व्यवस्था करते हैं।

भगवन् ! इन्द्र-स्थान कितने समय तक इन्द्रोत्पत्ति से विरहित रहता है ?

गौतम ! वह कम से कम एक समय पर्यन्त तथा अधिक से अधिक छः मास पर्यन्त इन्द्रोत्पत्ति से विरहित रहता है।

चन्द्र-मण्डल : संख्या : अबाधा आदि

१७५. कइ णं भंते ! चंद-मण्डला पण्णत्ता ?

गोयमा ! पण्णरस चंद-मण्डला पण्णत्ता।

जम्बुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइअं ओगाहित्ता केवइआ चन्द-मण्डला पण्णत्ता ?

गोयमा ! जम्बुद्दीवे २ असीयं जोअण-सयं ओगाहित्ता पंच चन्द-मण्डला पण्णत्ता।

लवणे णं भंते पुच्छा ?

गोयमा ! लवणे णं समुद्दे तिण्णि तीसे जोअण-सए ओगाहित्ता एत्थ णं दस चन्द-मण्डला पण्णत्ता। एवामेव सपुव्वावरेणं जम्बुद्दीवे दीवे लवणे य समुद्दे पण्णरस चन्द-मण्डला भवन्तीति-मक्खायं।

[१७५] भगवन् ! चन्द्र-मण्डल कितने बतलाये गये हैं ?

गौतम ! चन्द्र-मण्डल १५ बतलाये गये हैं।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने क्षेत्र का अवगाहन कर कितने चन्द्र-मण्डल हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप में १८० योजन क्षेत्र का अवगाहन कर पांच चन्द्र-मण्डल हैं, ऐसा बतलाया गया है।

भगवन् ! लवण समुद्र में कितने क्षेत्र का अवगाहन कर कितने चन्द्र-मण्डल हैं ?

गौतम ! लवण समुद्र में ३३० योजन क्षेत्र का अवगाहन कर दस चन्द्र-मण्डल हैं।

यों जम्बूद्वीप तथा लवण समुद्र के चन्द्र-मण्डलों को मिलाने से कुल १५ चन्द्र-मण्डल होते हैं। ऐसा बतलाया गया है।

१७६. सव्वब्भंतराम्रो णं भंते ! चंद-मण्डलाओ णं केवइआए अबाहाए सव्व-बाहिरए चंद-मंडले पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचदसुत्तरे जोअण-सए अबाहाए सव्व-बाहिरए चंद-मंडले पण्णत्ते ।

[१७६] भगवन् ! सर्वाभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल से सर्वबाह्य चन्द्र-मण्डल अबाधित रूप में कितनी दूरी पर बतलाया गया है ?

गौतम ! सर्वाभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल से सर्वबाह्य चन्द्र-मण्डल अबाधित रूप में ५१० योजन की दूरी पर बतलाया गया है ।

१७७. चंद-मंडलस्स णं भंते ! चंद-मंडलस्स केवइआए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पणतीसं २ जोअणाइं तीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता चत्तारि चुण्णिआभाए चंद-मंडलस्स चंद-मंडलस्स अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।

[१७७] भगवन् ! एक चन्द्र-मण्डल का दूसरे चन्द्र-मण्डल से कितना अन्तर है—कितनी दूरी है ?

गौतम ! एक चन्द्र-मण्डल का दूसरे चन्द्र-मण्डल से ३५$\frac{३०}{६१}$ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के सात भागों में चार भाग योजनांश परिमित अन्तर है ।

१७८. चंद-मंडले णं भंते ! केवइअं आयामविक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! छप्पण्णं एगसट्ठिभाए जोअणस्स आयाम-विक्खम्भेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, अट्ठावीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स बाहल्लेणं ।

[१७८] भगवन् ! चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई, परिधि तथा ऊँचाई कितनी बतलाई गई है ?

गौतम ! चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई $\frac{५६}{६१}$ योजन, परिधि उससे कुछ अधिक तीन गुनी तथा ऊँचाई $\frac{२८}{६१}$ योजन बतलाई गई है ।

१७९. जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए सव्वब्भंतरए चन्द-मण्डले पण्णत्ते ?

गोयमा ! चोआलीसं जोअण-सहस्साइं अट्ठ य वीसे जोअण-सए अबाहाए सव्वब्भन्तरे चन्द-मण्डले पण्णत्ते ।

जम्बुद्दीवे २ मन्दरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए अब्भंतराणन्तरे चन्द-मण्डले पण्णत्ते ?

गोयमा ! चोआलीसं जोअण-सहस्साइं अट्ठ य छप्पण्णे जोअण-सए पणवीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता चत्तारि चुण्णिआभाए अबाहाए अब्भंतराणन्तरे चन्द-मण्डले पण्णत्ते ।

जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए अब्भंतरतच्चे मण्डले पण्णत्ते ?

गोयमा ! चोआलीसं जोअण-सहस्साइं अट्ठ य बाणउए जोअण-सए एगावण्णं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता एगं चुण्णिआभागं अबाहाए अब्भंतरतच्चे मण्डले पण्णत्ते।

एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे चंदे तयाणन्तराओ मण्डलाओ तयाणन्तरं मण्डलं संकममाणे २ छत्तीसं छत्तीसं जोअणाइं पणवीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता चत्तारि चुण्णिआभाए एगमेगे मण्डले अबाहाए वुढि्ढ अभिवढे्ढमाणे २ सव्वबाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए सव्वबाहिरे चंद-मण्डले पण्णत्ते ?

पणयालीसं जोअण-सहस्साइं तिण्णि अ तीसे जोअण-सए अबाहाए सव्वबाहिरए चंद-मण्डले पण्णत्ते।

जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए बाहिराणन्तरे चंद-मण्डले पण्णत्ते ?

गोयमा ! पणयालीसं जोअण-सहस्साइं दोण्णि अ तेणउए जोअण-सए पणतीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता तिण्णि चुण्णिआभाए अबाहाए बाहिराणन्तरे चंदमण्डले पण्णत्ते।

जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए बाहिरतच्चे चंदमण्डले पण्णत्ते ?

गोयमा ! पणयालीसं जोअण-सहस्साइं दोण्णि अ सत्तावण्णे जोअण-सए णव य एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता छ चुण्णिआभाए अबाहाए बाहिरतच्चे चंदमण्डले पण्णत्ते।

एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे चंदे तयाणन्तराओ मण्डलाओ तयाणन्तरं मण्डलं संकममाणे २ छत्तीसं २ जोअणाइं पणवीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता चत्तारि चुण्णिआभाए एगमेगे मण्डले अबाहाए वुढि्ढ णिव्वुढे्ढमाणे २ सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

[१७९] भगवन् ! जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से सर्वाभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल कितनी दूरी पर बतलाया गया है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से सर्वाभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल ४४८२० योजन की दूरी पर बतलाया गया है।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से दूसरा आभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल कितनी दूरी पर बतलाया गया है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से दूसरा आभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल ४४८५६ $\frac{२५}{६१}$ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से ४ भाग योजनांश की दूरी पर बतलाया गया है।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से तीसरा आभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल कितनी दूरी पर बतलाया गया है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से तीसरा आभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल ४४८९२$\frac{५}{६१}\frac{१}{७}$ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से १ भाग योजनांश की दूरी पर बतलाया गया है।

इस क्रम से निष्क्रमण करता हुआ चन्द्र पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल का संक्रमण करता हुआ एक-एक मण्डल पर ३६$\frac{२५}{६१}\frac{४}{७}$ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के ७ भागों में से ४ भाग योजनांश की अभिवृद्धि करता हुआ सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से सर्वबाह्य चन्द्र-मण्डल कितनी दूरी पर बतलाया गया है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से सर्ववाह्य चन्द्र-मण्डल ४५३३० योजन की दूरी पर वतलाया गया है।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से दूसरा बाह्य चन्द्र-मण्डल कितनी दूरी पर बलताया गया है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से दूसरा बाह्य चन्द्र-मण्डल ४५२९३$\frac{३}{६१}\frac{५}{७}$ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से ३ भाग योजनांश की दूरी पर बतलाया गया है।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से तीसरा बाह्य चन्द्र-मण्डल कितनी दूरी पर बतालाया गया है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से तीसरा बाह्य चन्द्र-मण्डल ४५२५७$\frac{६}{६१}$ योजन तथा ६१ भागों से विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से ६ भाग योजनांश की दूरी पर बतलाया गया है।

इस क्रम से प्रवेश करता हुआ चन्द्र पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल का संक्रमण करता हुआ एक-एक मण्डल पर ३६$\frac{२५}{६१}\frac{४}{७}$ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से ४ भाग योजनांश की वृद्धि में कमी करता हुआ सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है।

चन्द्र-मण्डलों का विस्तार

१८०. सव्वब्भंतरे णं भन्ते ! चंदमंडले केवइअं आयामविक्खम्भेणं, केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! णवणउइं जोअणसहस्साइं छच्चचत्ताले जोअणसए आयामविक्खम्भेणं, तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं पण्णरस जोअणसहस्साइं अउणाणउतिं च जोअणाइं किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

अब्भन्तराणंतरे सा चेव पुच्छा।

गोयमा! णवणउइं जोअणसहस्साइं सत्त य बारसुत्तरे जोअणसए एगावण्णं च एगसट्ठिभागे जोअणस्स एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता एगं चुण्णिआभागं आयामविक्खम्भेणं, तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं पन्नरसहस्साइं तिण्णि अ एगूणवीसे जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं।

अब्भन्तरतच्चे णं (चन्दमण्डले केवइअं आयामविक्खम्भेणं केवइअं परिक्खेवेणं) पण्णत्ते।

गोयमा! णवणउइं जोअणसहस्साइं सत्त य पञ्चासीए जोअणसए इगतालीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता दोण्णि अ चुण्णिआभाए आयामविक्खम्भेणं, तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं पण्णरस जोअणसहस्साइं पंच य इगुणापण्णे जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणंति।

एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे चंदे (तयाणन्तराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं) संकममाणे २ बावत्तरिं २ जोअणाइं एगावण्णं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता एगं च चुण्णिआभागं एगमेगे मंडले विक्खम्भवुद्धिं अभिवद्धेमाणे २ दो दो तीसाइं जोअणसयाइं परिरयवुद्धिं अभिवद्धेमाणे २ सव्वबाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

सव्वबाहिरए णं भन्ते! चन्दमण्डले केवइअं आयामविक्खम्भेणं, केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?

गोयमा! एगं जोअणसयसहस्सं छच्च सट्ठे जोअणसए आयामविक्खम्भेणं, तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं अट्ठारस सहस्साइं तिण्णि अ पण्णरसुत्तरे जोअणसए परिक्खेवेणं।

बाहिराणन्तरे णं पुच्छा?

गोयमा! एगं जोअणसयसहस्सं पञ्च सत्तासीए जोअणसए णव य एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता छ चुण्णिआभाए आयामविक्खम्भेणं, तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं अट्ठारस सहस्साइं पंचासीइं च जोअणाइं परिक्खेवेणं।

बाहिरतच्चे णं भन्ते! चन्दमण्डले केवइअं आयामविक्खम्भेणं, केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?

गोयमा? एगं जोअणसयसहस्सं पंच य चउदसुत्तरे जोअणसए एगूणवीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता पंच चुण्णिआभाए आयामविक्खम्भेणं, तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं सत्तरस सहस्साइं अट्ठ य पणपण्णे जोअणसए परिक्खेवेणं।

एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे चन्दे जाव[1] संकममाणे २ बावत्तरिं २ जोअणाइं एगावण्णं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता एगं चुण्णिआभागं एगमेगे मण्डले विक्खम्भवुद्धिं णिव्वुद्धेमाणे २ दो दो तीसाइं जोअणसयाइं परिरयवुद्धिं णिवुद्धेमाणे २ सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

---

१. देखें सूत्र यही।

[१८०] भगवन् ! सर्वाभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी बतलाई गई है ?

गौतम ! सर्वाभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई ९९६४० योजन तथा उसकी परिधि कुछ अधिक ३१५०८९ योजन बतलाई गई है ।

भगवन् ! द्वितीय आभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी बतलाई गई है ?

गौतम ! द्वितीय आभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई ९९७१२$\frac{५१}{६१}$ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से १ भाग योजनांश तथा उसकी परिधि कुछ अधिक ३१५३१९ योजन बतलाई गई है ।

भगवन् ! तृतीय आभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी बतलाई गई है ?

गौतम ! तृतीय आभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई ९९७८५$\frac{४१}{६१}$ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भाग में से २ भाग योजनांश एवं उसकी परिधि कुछ अधिक ३१५५४९ योजन बतलाई गई है ।

इस क्रम से निष्क्रमण करता हुआ चन्द्र (एक मण्डल से दूसरे मण्डल पर संक्रमण करता हुआ) प्रत्येक मण्डल पर ७२ $\frac{५१}{६१}$ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से १ भाग योजनांश विस्तारवृद्धि करता हुआ तथा २३० योजन परिधिवृद्धि करता हुआ सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है ।

भगवन् ! सर्वबाह्य चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी बतलाई गई है ?

गौतम ! सर्वबाह्य चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई १००६६० योजन तथा उसकी परिधि ३१८३१५ योजन बतलाई गई है ।

भगवन् ! द्वितीय बाह्य चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी बतलाई गई है ?

गौतम ! द्वितीय बाह्य चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई १००५८७$\frac{९}{६१}$ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से ६ भाग योजनांश तथा उसकी परिधि ३१८०८५ योजन बतलाई गई है ।

भगवन् ! तृतीय बाह्य चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी बतलाई गई है ?

गौतम ! तृतीय बाह्य चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई १००५१४$\frac{१९}{६१}$ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से ५ भाग योजनांश तथा उसकी परिधि ३१७८५५ योजन बतलाई गई है ।

इस क्रम से प्रवेश करता हुआ चन्द्र पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल का संक्रमण करता हुआ प्रत्येक मण्डल पर ७२$\frac{५१}{६१}$ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में

से १ भाग योजनांश विस्तारवृद्धि कम करता हुआ तथा २३० योजन परिधिवृद्धि कम करता हुआ सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है।

चन्द्रमुहूर्तगति

१८१. जया णं भन्ते ! चन्दे सव्वब्भन्तरमण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?

गोयमा ! पंच जोअणसहस्साइं तेवत्तरिं च जोअणाइं सत्तत्तरिं च चोआले भागसए गच्छइ, मण्डलं तेरसहिं सहस्सेहिं सत्तहि अ पणवीसेहिं सएहिं छेत्ता इति। तया णं इहगयस्स मणूसस्स सीआलीसाए जोअणसहस्सेहिं दोहि अ तेवट्ठेहिं जोअणएहिं एगवीसाए अ सट्ठिभाएहिं जोअणस्स चन्दे चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ।

जया णं भन्ते ! चन्दे अब्भन्तराणन्तरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ (तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं) केवइअं खेत्तं गच्छइ ?

गोयमा ! पंच जोअणसहस्साइं सत्तत्तरिं च जोअणाइं छत्तीसं च चोअत्तरे भागसए गच्छइ मण्डलं तेरसहिं सहस्सेहिं (सत्तहि अ पणवीसेहिं सएहिं) छेत्ता।

जया णं भन्ते ! चन्दे अब्भंतरतच्चं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?

गोयमा ! पंच जोअणसहस्साइं असीइं च जोअणाइं तेरस य भागसहस्साइं तिण्णि अ एगूणवीसे भागसए गच्छइ, मण्डलं तेरसहिं (सहस्सेहिं सत्तहि अ पणवीसेहिं सएहिं) छेत्ता इति।

एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे चन्दे तयाणन्तराओ (मण्डलाओ तयाणन्तरं मण्डलं) संकममाणे २ तिण्णि २ जोअणाइं छण्णउइं च पंचावण्णे भागसए एगमेगे मण्डले मुहुत्तगइं अभिवद्धेमाणे २ सव्वबाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

जया णं भन्ते ! चन्दे सव्वबाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?

गोयमा ! पंच जोअणसहस्साइं एगं च पणवीसं जोअणसयं अउणत्तरिं च णउए भागसए गच्छइ मण्डलं तेरसहिं भागसहस्सेहिं सत्तहि अ (पणवीसेहिं सएहिं) छेत्ता इति।

तया णं इहगयस्स मणूसस्स एक्कतीसाए जोअणसहस्सेहिं अट्ठहि अ एगत्तीसेहिं जोअणसएहिं चन्दे चक्खुप्फासं हव्वामागच्छइ।

जया णं भन्ते ! बाहिराणन्तरं पुच्छा ?

गोयमा ! पंच जोअणसहस्साइं एक्कं च एक्कवीसं जोअणसयं एक्कारस य सट्ठे भागसहस्से गच्छइ मण्डलं तेरसहिं जाव[1] छेत्ता।

---

१. देखें सूत्र यही।

जया णं भन्ते ! बाहिरतच्चं पुच्छा ?

गोयमा ! पंच जोअणसहस्साइं एगं च अट्ठारसुत्तरं जोअणसयं चोद्दस य पंचत्तुरे भागसए गच्छइ मण्डलं तेरसहिं सहस्सेहिं सत्तहिं पणवीसेहिं सएहिं छेत्ता।

एवं खलु एएणं उवाएणं (णिक्खममाणे चन्दे तयाणन्तराओ मण्डलाओ तयाणन्तरं मण्डलं) संकममाणे २ तिण्णि २ जोअणाइं छण्णउतिं च पंचावण्णे भागसए एगमेगे मण्डले मुहुत्तगइं णिवुड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

[१८१] भगवन् ! जब चन्द्र सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब वह प्रतिमुहूर्त कितना क्षेत्र पार करता है ?

गौतम ! वह प्रतिमुहूर्त ५०७३ ७७४४/१३७२५ योजन क्षेत्र पार करता है।

तब वह (चन्द्र) यहाँ—भरतार्ध क्षेत्र में स्थित मनुष्यों को ४७२६३ २१/६० योजन की दूरी से दृष्टिगोचर होता है।

भगवन् ! जब चन्द्र दूसरे आभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब (प्रतिमुहूर्त) कितना क्षेत्र पार करता है ?

गौतम ! तब वह प्रतिमुहूर्त ५०७७ ३६७४/१३७२५ योजन क्षेत्र पार करता है।

भगवन् ! जब चन्द्र तीसरे आभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब वह प्रतिमुहूर्त कितना क्षेत्र पार करता है ?

गौतम ! तब वह प्रतिमुहूर्त ५०८० १३३२९/१३७२५ योजन क्षेत्र पार करता है।

इस क्रम से निष्क्रमण करता हुआ चन्द्र (पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल का संक्रमण करता हुआ) प्रत्येक मण्डल पर ३ ९६५५/१३७२५ मुहूर्त-गति बढ़ाता हुआ सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है।

भगवन् ! जब चन्द्र सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब वह प्रतिमुहूर्त कितना क्षेत्र पार करता है ?

गौतम ! वह ५१२५ ६९९०/१३७२५ योजन क्षेत्र पार करता है।

तब यहाँ स्थित मनुष्यों को वह (चन्द्र) ३१८३१ योजन की दूरी से दृष्टिगोचर होता है।

भगवन् ! जब चन्द्र दूसरे बाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब वह प्रतिमुहूर्त कितना क्षेत्र पार करता है ?

गौतम! वह प्रतिमुहूर्त ५१२१ १०३७०/१३७२५ योजन क्षेत्र पार करता है।

भगवन् ! जब चन्द्र तीसरे बाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब प्रतिमुहूर्त कितना क्षेत्र पार करता है ?

गौतम ! तब वह प्रतिमुहूर्त ५११८ १४०५/१३७२५ योजन क्षेत्र पार करता है।

इस क्रम से (निष्क्रमण करता हुआ, पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल पर) संक्रमण करता हुआ चन्द्र एक-एक मण्डल पर $३\frac{६६५५}{१३७२५}$ योजन मुहूर्त-गति कम करता हुआ सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है।

नक्षत्र-मण्डलादि

१८२. कइ णं भन्ते ! णक्खत्तमण्डला पण्णत्ता ?

गोयमा ! अट्ठ णक्खत्तमण्डला पण्णत्ता।

जम्बुद्दीवे दीवे केवइअं ओगाहित्ता केवइआ णक्खत्तमण्डला पण्णत्ता ?

गोयमा ! जम्बुद्दीवे दीवे असीअं जोअणसयं ओगाहेत्ता एत्थ णं दो णक्खत्तमण्डला पण्णत्ता।

लवणे णं समुद्दे केवइअं ओगाहेत्ता केवइआ णक्खत्तमण्डला पण्णत्ता ?

गोयमा ! लवणे णं समुद्दे तिण्णि तीसे जोअणसए ओगाहित्ता एत्थ णं छ णक्खत्तमण्डला पण्णत्ता। एवामेव सपुव्वावरेणं जम्बुद्दीवे दीवे लवणसमुद्दे अट्ठ णक्खत्तमण्डला भवंतीतिमक्खायमिति।

सव्वब्भंतराओ णं भन्ते ! णक्खत्तमण्डलाओ केवइआए अबाहाए सव्वबाहिरए णक्खत्तमण्डले पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचदसुत्तरे जोअणसए अबाहाए सव्वबाहिरए णक्खत्तमण्डले पण्णत्ते इति।

णक्खत्तमण्डलस्स णं भन्ते ! णक्खत्तमण्डलस्स य एस णं केवइआए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दो जोअणाइं णक्खत्तमण्डलस्स य णक्खत्तमण्डलस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

णक्खत्तमण्डले णं भन्ते ! केवइअं आयामविक्खम्भेणं केवइअं परिक्खेवेणं केवइअं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! गाउअं आयामविक्खम्भेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, अद्धगाउअं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए सव्वब्भंतरे णक्खत्तमण्डले पण्णत्ते ?

गोयमा ! चोयालीसं जोअणसहस्साइं अट्ठ य वीसे जोअणसए अबाहाए सव्वब्भंतरे णक्खत्तमण्डले पण्णत्ते इति।

जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए सव्वबाहिरए णक्खत्तमण्डले पण्णत्ते ?

गोयमा ! पणयालीसं जोअणसहस्साइं तिण्णि अ तीसे जोअणसए अबाहाए सव्वबाहिरए णक्खत्तमण्डले पण्णत्ते इति।

सव्वब्भंतरे णक्खत्तमण्डले केवइअं आयामविक्खम्भेणं, केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! णवणउतिं जोअणसहस्साइं छच्चचत्ताले जोअणसए आयामविक्खम्भेणं, तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं पण्णरस सहस्साइं एगूणणवतिं च जोअणाइं किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

सव्वबाहिरए णं भंते ! णक्खत्तमण्डले केवइअं आयामविक्खम्भेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! एगं जोअणसयसहस्सं छच्च सट्ठे जोअणसए आयामविक्खम्भेणं तिण्णि अ जोअण-सयसहस्साइं अट्ठारस य सहस्साइं तिण्णि अ पण्णरसुत्तरे जोअणसए परिक्खेवेणं।

जया णं भन्ते ! णक्खत्ते सव्वब्भंतरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?

गोयमा ! पंच जोअणसहस्साइं दोण्णि य पण्णट्ठे जोअणसए अट्ठारस य भागसहस्से दोण्णि अ तेवट्ठे भागसए गच्छइ मण्डलं एक्कवीसाए भागसहस्सेहिं णवहि अ सट्ठेहिं सएहिं छेत्ता।

जया णं भन्ते ! णक्खत्ते सव्वबाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?

गोयमा ! पंच जोअणसहस्साइं तिण्णि अ एगूणवीसे जोअणसए सोलस य भागसहस्सेहिं तिण्णि अ पण्णट्ठे भागसए गच्छइ, मण्डलं एगवीसाए भागसहस्सेहिं णवहि अ सट्ठेहिं सएहिं छेत्ता।

एते णं भन्ते ! अट्ठ णक्खत्तमण्डला कतिहिं चंदमण्डलेहिं समोअरंति ?

गोयमा ! अट्ठहिं चंदमण्डलेहिं समोअरंति, तंजहा—पढमे चंदमण्डले, ततिए, छट्ठे, सत्तमे, अट्ठमे, दसमे, इक्कारसमे, पण्णरसमे चंदमण्डले।

एगमेगेणं भन्ते ! मुहुत्तेणं केवइआइं भागसयाइं गच्छइ ?

गोयमा ! जं जं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तस्स २ मण्डलपरिक्खेवस्स सत्तरस अट्ठसट्ठे भागसए गच्छइ, मण्डलं सयसहस्सेणं अट्ठाणउइए अ सएहिं छेत्ता इति।

एगमेगेणं भन्ते ! मुहुत्तेणं सूरिए केवइआइं भागसयाइं गच्छइ ?

गोयमा ! जं जं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तस्स २ मण्डलपरिक्खेवस्स अट्ठारसतीसे भागसए गच्छइ, मण्डलं सयसहस्सेहिं अट्ठाणउतीए अ सएहिं छेत्ता।

एगमेगेणं भन्ते ! मुहुत्तेणं णक्खत्ते केवइआइं भागसयाइं गच्छइ ?

गोयमा ! जं जं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तस्स तस्स मण्डलपरिक्खेवस्स अट्ठारस पणतीसे भागसए गच्छइ मण्डलं सयसहस्सेणं अट्ठाणउईए अ सएहिं छेत्ता।

[१८२] भगवन् ! नक्षत्रमण्डल कितने बतलाये गये हैं ?

गौतम ! नक्षत्रमण्डल आठ[1] बतलाये गये हैं।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में कियत्प्रमाण क्षेत्र का अवगाहन कर कितने नक्षत्रमण्डल हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप में १८० योजन क्षेत्र का अवगाहन कर दो नक्षत्रमण्डल हैं।

---

१. नक्षत्र २८ हैं। प्रत्येक का एक एक मण्डल होने से नक्षत्रमण्डल भी २८ कहे जाने चाहिए, किन्तु यहाँ आठ नक्षत्रमण्डल के रूप में कथन उनके सचरण के आधार पर है, जो उनके प्रतिनियत मण्डलों के माध्यम से आठ ही मण्डलो मे सन्निविष्ट होता है।

भगवन् ! लवणसमुद्र में कितने क्षेत्र का अवगाहन कर कितने नक्षत्रमण्डल हैं ?

गौतम ! लवणसमुद्र में ३३० योजन क्षेत्र का अवगाहन कर छह नक्षत्रमण्डल हैं ।

यों जम्बूद्वीप तथा लवण समुद्र के नक्षत्रमण्डलों को मिलाने से आठ नक्षत्रमण्डल होते हैं ।

भगवन् ! सर्वाभ्यन्तर नक्षत्रमण्डल से सर्वबाह्य नक्षत्रमण्डल कितनी अव्यवहित दूरी पर बतलाया गया है ?

गौतम ! सर्वाभ्यन्तर नक्षत्रमण्डल से सर्वबाह्य नक्षत्रमण्डल ५१० योजन की अव्यवहित दूरी पर बतलाया गया है ।

भगवन् ! एक नक्षत्रमण्डल से दूसरे नक्षत्रमण्डल का अन्तर—दूरी अव्यवहित रूप में कितनी वतलाई गई है ?

गौतम ! एक नक्षत्रमण्डल से दूसरे नक्षत्रमण्डल की दूरी अव्यवहित रूप में दो योजन बतलाई गई है ।

भगवन् ! नक्षत्रमण्डल की लम्बाई-चौड़ाई, परिधि तथा ऊँचाई कितनी बतलाई गई है ?

गौतम ! नक्षत्रमण्डल की लम्बाई-चौड़ाई दो कोस, उसकी परिधि लम्बाई-चौड़ाई से कुछ अधिक तीन गुनी तथा ऊँचाई एक कोस वतलाई गई है ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से सर्वाभ्यन्तर नक्षत्रमण्डल अव्यवहित रूप में कितनी दूरी पर बतलाया गया है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से सर्वाभ्यन्तर नक्षत्रमण्डल अव्यवहित रूप में ४४८२० योजन की दूरी पर बतलाया गया है ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से सर्वबाह्य नक्षत्रमण्डल अव्यवहित रूप में कितनी दूरी पर वतलाया गया है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से सर्वबाह्य नक्षत्रमण्डल अव्यवहित रूप में ४५३३० योजन की दूरी पर वतलाया गया है ।

भगवन् ! सर्वाभ्यन्तर नक्षत्रमण्डल की लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी बतलाई गई है ?

गौतम ! सर्वाभ्यन्तर नक्षत्रमण्डल की लम्बाई-चौड़ाई ९९६४० योजन तथा परिधि कुछ अधिक ३१५०८९ योजन बतलाई गई है ।

भगवन् ! सर्वबाह्य नक्षत्रमण्डल की लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी बतलाई गई है ?

गौतम ! सर्वबाह्य नक्षत्रमण्डल की लम्बाई-चौड़ाई १००६६० योजन तथा ३१८३१५ योजन बतलाई गई है ।

भगवन् ! जब नक्षत्र सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करते हैं तो एक मुहूर्त में कितना क्षेत्र पार करते हैं ?

गौतम ! वे ५२६५$\frac{१८२६३}{२१९६०}$ योजन क्षेत्र पार करते हैं ।

भगवन् ! जब नक्षत्र सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करते हैं तो वे प्रतिमुहूर्त कितना क्षेत्र पार करते हैं ?

गौतम ! वे प्रतिमुहूर्त ५३१९$\frac{१६३६५}{२१९६०}$ योजन क्षेत्र पार करते हैं ।

भगवन् ! वे आठ नक्षत्रमण्डल कितने चन्द्रमण्डलों में समवसृत—अन्तर्भूत होते हैं ?

गौतम ! वे पहले, तीसरे, छठे, सातवें, आठवें, दसवें, ग्यारहवें तथा पन्द्रहवें चन्द्र-मण्डल में—यों आठ चन्द्र-मण्डलों में समवसृत होते हैं।

भगवन् ! चन्द्रमा एक मुहूर्त में मण्डल-परिधि का कितना भाग अतिक्रान्त करता है ?

गौतम ! चन्द्रमा जिस जिस मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, उस उस मण्डल की परिधि का $\frac{१७६८}{१०९८००}$ भाग अतिक्रान्त करता है।

भगवन् ! सूर्य प्रतिमुहूर्त मण्डल-परिधि का कितना भाग अतिक्रान्त करता है ?

गौतम ! सूर्य जिस जिस मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, उस उस मण्डल की परिधि के $\frac{१८३०}{१०९८००}$ भाग अतिक्रान्त करता है।

भगवन् ! नक्षत्र प्रतिमुहूर्त मण्डल-परिधि का कितना भाग अतिक्रान्त करते हैं ?

गौतम ! नक्षत्र जिस जिस मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करते हैं, उस उस मण्डल की परिधि का $\frac{१८३५}{१०९८००}$ भाग अतिक्रान्त करते हैं।

सूर्यादि-उद्गम

१८३. जम्बुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिआ उदीणपाईणमुग्गच्छ पाईणदाहिणमागच्छंति १, पाईणदाहिणमुग्गच्छ दाहिणपडीणमागच्छंति २, दाहिणपडीणमुग्गच्छ पडीणउदीणमागच्छंति ३, पडीणउदीणमुग्गच्छ उदीण-पाईणमागच्छंति ४ ?

हंता गोयमा ! जहा पंचमसए पढमे उद्देसे णेवऽत्थि ओसप्पिणी अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो !

इच्चेसा जम्बुदीवपण्णत्ती सूरपण्णत्ती वत्थुसमासेणं सम्मता भवई।

जम्बुद्दीवे णं भंते ! दीवे चंदिमा उदीणपाईणमुग्गच्छ पाईणदाहिणमागच्छंति जहा सूर-वत्तव्वया जहा पंचमसयस्स दसमे उद्देसे जाव 'अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो !' इच्चेसा जम्बुद्दीवपण्णत्ती वत्थुसमासेण समत्ता भवइ।

[१८३] भगवन् ! जम्बूद्वीप में दो सूर्य उदीचीन-प्राचीन—उत्तर-पूर्व—ईशान कोण में उदित होकर क्या प्राचीन-दक्षिण—पूर्व-दक्षिण—आग्नेय कोण में आते हैं, अस्त होते हैं, क्या आग्नेय कोण में उदित होकरदक्षिण-प्रतीचीन—दक्षिण-पश्चिम—नैर्ऋत्य कोण में आते हैं,अस्त होते हैं,क्या नैर्ऋत्य कोण में उदित होकर प्रतीचीन-उदीचीन पश्चिमोत्तर—वायव्य कोण में आते हैं, अस्त होते हैं, क्या वायव्य कोण में उदित होकर उदीचीन-प्राचीन-उत्तरपूर्व-ईशान कोण में आते हैं, अस्त होते हैं ?

हाँ, गौतम ! ऐसा ही होता है। भगवतीसूत्र के पंचम शतक के प्रथम उद्देशक में 'णेव अत्थि ओसप्पिणी, अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते' पर्यन्त जो वर्णन आया है, उसे इस सन्दर्भ में समझ लेना चाहिए।

आयुष्मन् श्रमण गौतम ! जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति उपांग के अन्तर्गत प्रस्तुत सूर्य सम्बन्धी वर्णन यहाँ संक्षेप में समाप्त होता है।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में दो चन्द्रमा उदीचीन-प्राचीन—उत्तर-पूर्व—ईशान कोण में उदित

होकर प्राचीन-दक्षिण—पूर्व-दक्षिण—आग्नेय कोण में आते हैं, अस्त होते हैं—इत्यादि वर्णन भगवती-सूत्र के पंचम शतक के दशम उद्देशक के 'अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते' तक से जान लेना चाहिए।

आयुष्मन् गौतम! जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति उपांग के अन्तर्गत प्रस्तुत चन्द्र सम्बन्धी वर्णन यहाँ संक्षेप में समाप्त होता है।

संवत्सर-भेद

१८४. कति णं भन्ते! संवच्छरा पण्णत्ता?

गोयमा! पंच संवच्छरा पण्णत्ता, तं जहा—णक्खत्तसंवच्छरे, जुगसंवच्छरे, पमाणसंवच्छरे, लक्खणसंवच्छरे, सणिच्छरसंवच्छरे।

णक्खत्तसंवच्छरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुवालसविहे पण्णत्ते, तं जहा—सावणे, भद्दवए, आसोए (कत्तिए, मियसिरे, पोसे, माहे, फग्गुणे, चइत्ते, वेसाहे, जेट्ठे,) आसाढे। जं वा विहप्फई महग्गहे दुवालसेहिं संवच्छरेहिं सव्वणक्खत्तमंडलं समाणेइ, सेत्तं णक्खत्तसंवच्छरे।

जुगसंवच्छरे णं भन्ते! कतिविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—चंदे, चंदे, अभिवड्ढिए, चंदे, अभिवड्ढिए चेवेति।

पढमस्स णं भन्ते चन्द-संवच्छरस्स कइ पव्वा पण्णत्ता?

गोयमा! चोव्वीसं पव्वा पण्णत्ता।

बितिअस्स णं भन्ते! चंद-संवच्छरस्स कइ पव्वा पण्णत्ता?

गोयमा! चउव्वीसं पव्वा पण्णत्ता।

एवं पुच्छा तत्तिअस्स।

गोयमा! छव्वीसं पव्वा पण्णत्ता।

चउत्थस्स चन्द-संवच्छरस्स चोव्वीसं पव्वा, पंचमस्स णं अहिवड्ढिअस्स छव्वीसं पव्वा य पण्णत्ता। एवामेव सपुव्वावरेणं पंचम-संवच्छरिए जुए एगे चउव्वीसे पव्वसए पण्णत्ते। सेत्तं जुगसंवच्छरे।

पमाणसंवच्छरे णं भन्ते! कतिविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—णक्खत्ते, चन्दे, उऊ, आइच्चे, अभिवड्ढिए, सेत्तं पमाण-संवच्छरे इति।

लक्खणसंवच्छरे णं भन्ते! कतिविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

समयं नक्खत्ता जोगं, जोअंति समयं उउं परिणामंति।
णच्चुण्ह णाइसीओ, बहूदओ होइ णक्खत्ते ॥१॥

ससि समग-पुण्णमासिं, जोएंति विसमचारि-णक्खत्ता।
कडुओ वहूदओ आ, तमाहु संवच्छरं चन्दं ॥२॥

विसमं पवालिणो, परिणमन्ति अणुऊसु दिंति पुप्फफलं।
वासं न सम्म वासइ, तमाहु संवच्छरं कम्मं ॥३॥

पुढवि-दगाणं च रसं, पुप्फ-फलाणं च देइ आइच्चो।
अप्पेण वि वासेणं, सम्मं निप्फज्जए सस्सं ॥४॥

आइच्च-तेअ-तविआ, खणलवदिवसा उऊ परिणमन्ति।
पूरेइ अ णिण्णथले, तमाहु अभिवद्धिअं जाण ॥५॥

सणिच्छर-संवच्छरे णं भन्ते कतिविहे पण्णत्ते?

गोयमा! अट्ठाविसइविहे पण्णत्ते, तं जहा—

अभिई सवणे धणिट्ठा, सयभिसया दो अ होंति भद्दवया।
रेवइ अस्सिणि भरणी, कत्तिअ तह रोहिणी चेव ॥१॥

(मिगसिरं, अद्दा, पुण्णवसू, पुस्सो, असिलेसा, मघा, पुव्वाफग्गुणी, उत्तराफग्गुणी, हत्थो, चित्ता, साती, विसाहा, अणुराहा, जेट्ठा, मूलो, पुव्वाआसाढा) उत्तराओ आसाढाओ। जं वा सणिच्चरे महग्गहे तीसाए संवच्छरेहिं सव्वं णक्खत्तमण्डलं समाणेइ सेत्तं सणिच्छर-संवच्छरे॥

[१८४] भगवन्! संवत्सर कितने बतलाये गये हैं?

गौतम! संवत्सर पांच बतलाये गये हैं— १. नक्षत्र-संवत्सर, २. युग-संवत्सर, ३. प्रमाण-संवत्सर, ४. लक्षण-संवत्सर तथा ५. शनैश्चर-संवत्सर।

भगवन्! नक्षत्र-संवत्सर कितने प्रकार का बतलाया गया है?

गौतम! नक्षत्र-संवत्सर बारह प्रकार का बतलाया गया है—श्रावण, भाद्रपद, आसोज, (कार्तिक, मिगसर, पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, जेठ तथा) आषाढ।

अथवा वृहस्पति महाग्रह बारह वर्षों की अवधि में जो सर्व नक्षत्रमण्डल का परिसमापन करता है—उन्हें पार कर जाता है, वह कालविशेष भी नक्षत्र-संवत्सर कहा जाता है।

भगवन्! युग-संवत्सर कितने प्रकार का बतलाया गया है?

गौतम! युग-संवत्सर पांच प्रकार का बतलाया गया है—१. चन्द्र-संवत्सर, २. चन्द्र-संवत्सर, ३. अभिवर्द्धित-संवत्सर, ४. चन्द्र-संवत्सर तथा ५. अभिवर्द्धित-संवत्सर।

भगवन्! प्रथम चन्द्र-संवत्सर के कितने पर्व—पक्ष बतलाये गये हैं?

गौतम! प्रथम चन्द्र-संवत्सर के चौवीस पर्व बतलाये गये हैं।

भगवन्! द्वितीय चन्द्र-संवत्सर के कितने पर्व बतलाये गये हैं?

गौतम! द्वितीय चन्द्र-संवत्सर के चौवीस पर्व बतलाये गये हैं।

भगवन् ! तृतीय अभिवर्द्धित-संवत्सर के कितने पर्व बतलाये गये हैं ?

गौतम ! तृतीय अभिवर्द्धित-संवत्सर के छब्बीस[1] पर्व बतलाये गये हैं ।

चौथे चन्द्र-संवत्सर के चौबीस तथा पांचवें अभिवर्द्धित-संवत्सर के छब्बीस पर्व बतलाये गये हैं।

पांच भेदों में विभक्त युग-संवत्सर के, सारे पर्व जोड़ने पर १२४ होते हैं ।

भगवन् ! प्रमाण-संवत्सर कितने प्रकार का बतलाया गया है ?

गौतम ! प्रमाण-संवत्सर पाँच प्रकार का बतलाया गया है—१. नक्षत्र-संवत्सर, २. चन्द्र-संवत्सर, ३. ऋतु-संवत्सर, ४. आदित्य-संवत्सर तथा ५. अभिवर्द्धित-संवत्सर ।

भगवन् ! लक्षण-संवत्सर कितने प्रकार का बतलाया गया है ?

गौतम ! लक्षण-संवत्सर पांच प्रकार का बतलाया गया है—

१. समक संवत्सर—जिसमें कृत्तिका आदि नक्षत्र समरूप में—जो नक्षत्र जिन तिथियों में स्वभावतः होते हैं, तदनुरूप कार्तिकी पूर्णिमा आदि तिथियों से—मासान्तिक तिथियों से योग—संबन्ध करते हैं, जिसमें ऋतुएँ समरूप में—न अधिक उष्ण, न अधिक शीतल रूप में परिणत होती हैं, जो प्रचुर जलयुक्त—वर्षायुक्त होता है, वह समक-संवत्सर कहा जाता है ।

२. चन्द्र-संवत्सर—जब चन्द्र के साथ पूर्णमासी में विषम—विसदृश—मासविसदृशनामोपेत नक्षत्र का योग होता है, जो कटुक होता है—गर्मी, सर्दी, बीमारी आदि की बहुलता के कारण कटुक—कष्टकर होता है, विपुल वर्षायुक्त होता है, वह चन्द्र-संवत्सर कहा जाता है ।

३. कर्म-संवत्सर—जिसमें विषम काल में—जो वनस्पतिअंकुरण का समय नहीं है, वैसे कालमें वनस्पति अंकुरित होती है, अन्-ऋतु में—जिस ऋतु में पुष्प एवं फल नहीं फूलते, नहीं फलते, उसमें पुष्प एवं फल आते हैं, जिसमें सम्यक्—यथोचित, वर्षा नहीं होती, उसे कर्म-संवत्सर कहा जाता है ।

४. आदित्य-संवत्सर—जिसमें सूर्य पृथ्वी, जल, पुष्प एवं फल—इन सबको रस प्रदान करता है, जिसमें थोड़ी वर्षा से ही धान्य सम्यक् रूप में निष्पन्न होता है—पर्याप्त मात्रा में निपजता है—अच्छी फसल होती है, वह आदित्य-संवत्सर कहा जाता है ।

५. अभिवर्द्धित-संवत्सर—जिसमें क्षण, लव, दिन, ऋतु, सूर्य के तेज से तप्त—तपे रहते हैं, जिसमें निम्न स्थल—नीचे के स्थान जल-पूरित रहते हैं, उसे अभिवर्द्धित संवत्सर समझें ।

भगवन् ! शनैश्चर संवत्सर कितने प्रकार का बतलाया गया है ?

गौतम ! शनैश्चर-संवत्सर अट्ठाईस प्रकार का बतलाया गया है—

१. अभिजित्, २. श्रवण, ३. धनिष्ठा, ४. शतभिषक्, ५. पूर्वा भाद्रपद, ६. उत्तरा भाद्रपद, ७. रेवती, ८. अश्विनी, ९. भरिणी, १०. कृत्तिका, ११. रोहिणी, (१२. मृगशिर, १३. आर्द्रा, १४. पूनर्वसु, १५. पुष्य, १६. अश्लेषा, १७. मघा, १८. पूर्वा फाल्गुनी, १९. उत्तरा फाल्गुनी, २०. हस्त, २१. चित्रा, २२. स्वाति, २३. विशाखा, २४. अनुराधा, २५. ज्येष्ठा, २६. मूल, २७. पूर्वाषाढा तथा २८. उत्तराषाढा ।

अथवा शनैश्चर महाग्रह तीस संवत्सरों में समस्त नक्षत्र-मण्डल का समापन करता है—उन्हें पार कर जाता है, वह काल शनैश्चर-संवत्सर कहा जाता है ।

---

१. अधिक मास होने के कारण दो पर्व—पक्ष अधिक होते हैं ।

मास, पक्ष आदि

१८५. एगमेगस्स णं भन्ते संवच्छरस्स कइ मासा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुवालस मासा पण्णत्ता। तेसिं णं दुविहा णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—लोइआ लोउत्तरिआ य। तत्थ लोइआ णामा इमे, तं जहा—सावणे, भद्दवए (आसोए, कत्तिए, मियसिरे, पोसे, माहे, फग्गुणे, चइत्ते, वेसाहे, जेट्ठे) आसाढे। लोउत्तरिआ णामा इमे, तं जहा—

अभिणंदिए पइट्ठे अ, विजए पीइवद्धणे।
सेअंसे य सिवे चेव, सिसिरे अ सहेमवं ॥ १ ॥
णवमे वसंतमासे, दसमे कुसुमसंभवे।
एक्कारसे निदाहे अ, वणविरोहे अ वारसमे ॥ २ ॥

एगमेगस्स णं भन्ते ! मासस्स कति पक्खा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दो पक्खा पण्णत्ता, तं जहा—बहुल-पक्खे अ सुक्क-पक्खे अ।

एगमेगस्स णं भन्ते ! पक्खस्स कइ दिवसा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पण्णरस दिवसा पण्णत्ता, तं जहा—पडिवादिवसे बितिआदिवसे (ततिआदिवसे, चउत्थीदिवसे, पंचमीदिवसे, छट्ठीदिवसे, सत्तमीदिवसे, अट्ठमीदिवसे, णवमीदिवसे, दसमीदिवसे, एगारसीदिवसे बारसीदिवसे तेरसीदिवसे, चउद्दसीदिवसे) पण्णरसीदिवसे।

एतेसि णं भंते ! पण्णरसण्हं दिवसाणं कइ णामधेज्जा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पण्णरस णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

पुव्वंगे सिद्धमणोरमे अ तत्तो मणोरहे चेव।
जसभद्दे अ जसधरे छट्ठे सव्वकामसमिद्धे अ ॥ १ ॥
इंदमुद्धाभिसित्ते अ सोमणस-धणंजए अ बोद्धव्वे।
अत्थसिद्धे अभिजाए अच्चसणे सयंजए चेव ॥ २ ॥
अग्गिवेसे उवसमे दिवसाणं होंति णामधेज्जा।

एतेसि णं भंते ! पण्णरसण्हं दिवसाणं कति तिही पण्णत्ता ?

गोयमा ! पण्णरस तिही पण्णत्ता, तं जहा—

णंदे भद्दे जए तुच्छे पुण्णे पक्खस्स पंचमी। पुणरवि—णंदे भद्दे जए तुच्छे पुण्णे पक्खस्स दसमी। पुणरवि—णंदे भद्दे जए तुच्छे पुण्णे पक्खस्स पण्णरसी, एवं ते तिगुणा तिहीओ सव्वेसिं दिवसाणंति।

एगमेगस्स णं भंते ! पक्खस्स कइ राईओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! पण्णरस राईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पडिवाराई, (बितिआराई, ततिआराई, चउत्थीराई, पंचमीराई, छट्ठीराई, सत्तमीराई, अट्ठमीराई, णवमीराई, दसमीराई, एगारसीराई, बारसी-राई, तेरसी-राई, चउद्दसी-राई) पण्णरसी-राई।

एआसि णं भंते पण्णरसण्हं राईणं कइ णामधेज्जा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पण्णरस णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

उत्तमा य सुणक्खत्ता, एलावच्चा जसोहरा।
सोमणसा चेव तहा, सिरिसंभूआ य बोद्धव्वा ॥ १ ॥
विजया य वेजयन्ति, जयन्ति अपराजिआ य इच्छा य।
समाहारा चेव तहा, तेआ य तहा अईतेआ ॥ २ ॥
देवाणंदा णिरई, रयणीणं णामधिज्जाइं।

एयासि णं भंते ! पण्णरसण्हं राईणं कइ तिही पण्णत्ता ?

गोयमा ! पण्णरस तिही पण्णत्ता, तं जहा—उग्गवई, भोगवई, जसवई, सव्वसिद्धा, सुहणामा, पुणरवि—उग्गवई भोगवई जसवई सव्वसिद्धा सुहणामा; पुणरवि उग्गवई भोगवई जसवई सव्वसिद्धा सुहणामा। एवं तिगुणा एते तिहीओ सव्वेसिं राईणं।

एगमेगस्स णं भंते ! अहोरत्तस्स कइ मुहुत्ता पण्णत्ता ?

गोयमा ! तीसं मुहुत्ता पण्णत्ता, तं जहा—

रुद्दे सेए मित्ते, वाउ सुवीए तहेव अभिचंदे।
माहिंद-बलव-बंभे, बहुसच्चे चेव ईसाणे ॥ १ ॥
तट्ठे अ भाविअप्पा, वेसमणे वारुणे अ आणंदे।
विजए अ वीससेणे, पायावच्चे उवसमे अ ॥ २ ॥
गंधव्व-अग्गिवेसे, सयवसहे आयवे य अममे अ।
अणवं भोमे वसहे सव्वट्ठे रक्खसे चेव ॥ ३ ॥

[१८५] भगवन् ! प्रत्येक संवत्सर के कितने महीने बतलाये गये हैं ?

गौतम ! प्रत्येक संवत्सर के बारह महीने बतलाये गये हैं। उनके लौकिक एवं लोकोत्तर दो प्रकार के नाम कहे गये हैं।

लौकिक नाम इस प्रकार हैं—१. श्रावण, २. भाद्रपद, (३. आसोज, ४. कार्तिक, ५. मिगसर, ६. पौष, ७. माघ, ८. फाल्गुन, ९. चैत्र १०. वैशाख, ११. जेठ तथा) १२. आषाढ।

लोकोत्तर नाम इस प्रकार हैं—१. अभिनन्दित, २. प्रतिष्ठित, ३. विजय, ४. प्रीतिवर्द्धन, ५. श्रेयान्, ६. शिव, ७. शिशिर, ८. हिमवान्, ९. वसन्तमास, १०. कुसुमसम्भव, ११. निदाघ तथा १२. वनविरोह।

भगवन् ! प्रत्येक महीने के कितने पक्ष बतलाये गये हैं ?

गौतम ! प्रत्येक महीने के दो पक्ष बतलाये गये हैं—१. कृष्ण तथा २. शुक्ल।

भगवन् ! प्रत्येक पक्ष के कितने दिन बतलाये गये हैं ?

गौतम ! प्रत्येक पक्ष के पन्द्रह दिन बतलाये गये हैं, जैसे—१. प्रतिपदा-दिवस, २. द्वितीया-दिवस, ३. तृतीया-दिवस, ४. चतुर्थी-दिवस. ५. पंचमी-दिवस, ६. षष्ठी-दिवस, ७. सप्तमी-दिवस,

८. अष्टमी-दिवस, ९. नवमी-दिवस, १०. दशमी-दिवस, ११. एकादशी-दिवस, १२. द्वादशी-दिवस, १३. त्रयोदशी-दिवस, १४. चतुर्दशी-दिवस, १५. पंचदशी-दिवस—अमावस्या या पूर्णमासी का दिन।

भगवन् ! इन पन्द्रह दिनों के कितने नाम वतलाये गये है ?

गौतम ! पन्द्रह दिनों के पन्द्रह नाम वतलाये गये हैं, जैसे—१. पूर्वाङ्ग, २. सिद्धमनोरम, ३. मनोहर, ४. यशोभद्र, ५. यशोधर, ६. सर्वकाम-समृद्ध, ७. इन्द्रमूर्द्धाभिषिक्त, ८. सौमनस, ९. धनञ्जय, १०. अर्थसिद्ध, ११. अभिजात, १२. अत्यशन, १३. शतञ्जय, १४. अग्निवेश्म तथा १५. उपशम।

भगवन् ! इन पन्द्रह दिनों की कितनी तिथियां वतलाई गई हैं ?

गौतम ! इनकी पन्द्रह तिथियाँ वतलाई गई हैं, जैसे—१. नन्दा, २. भद्रा, ३. जया, ४. तुच्छा-रिक्ता, ५. पूर्णा-पञ्चमी। फिर ६. नन्दा, ७. भद्रा, ८. जया, ९. तुच्छा, १०. पूर्णा—दशमी। फिर ११. नन्दा, १२. भद्रा, १३. जया, १४. तुच्छा, १५. पूर्णा—पञ्चदशी।

यों तीन आवृत्तियों में ये पन्द्रह तिथियां होती हैं।

भगवन् ! प्रत्येक पक्ष में कितनी रातें वतलाई गई हैं ?

गौतम ! प्रत्येक पक्ष में पन्द्रह रातें वतलाई गई हैं, जैसे—

१. प्रतिपदारात्रि—एकम की रात, २. द्वितीयारात्रि, ३. तृतीयारात्रि, ४. चतुर्थीरात्रि, ५. पंचमीरात्रि, ६. षष्ठीरात्रि, ७. सप्तमीरात्रि, ८. अष्टमीरात्रि, ९. नवमीरात्रि, १०. दशमीरात्रि, ११. एकादशीरात्रि, १२. द्वादशीरात्रि, १३. त्रयोदशीरात्रि, १४. चतुर्दशीरात्रि-चौदस की रात तथा १५. पञ्चदशी—अमावस या पूनम की रात।

भगवन् ! इन पन्द्रह रातों के कितने नाम वतलाये गये हैं ?

गौतम ! इनके पन्द्रह नाम वतलाये गये हैं, जैसे—१. उत्तमा, २. सुनक्षत्रा, ३. एलापत्या, ४. यशोधरा, ५. सौमनसा, ६. श्रीसम्भूता, ७. विजया, ८. वैजयन्ती, ९. जयन्ती, १०. अपराजिता, ११. इच्छा, १२. समाहारा, १३. तेजा, १४. अतितेजा तथा १५. देवानन्दा या निरति।

भगवन् ! इन पन्द्रह रातों की कितनी तिथियाँ बतलाई गई हैं ?

गौतम ! इनकी पन्द्रह तिथियाँ वतलाई गई हैं, जैसे—

१. उग्रवती, २. भोगवती, ३. यशोमती, ४. सर्वसिद्धा, ५. शुभनामा, फिर ६. उग्रवती, ७. भोगवती, ८. यशोमती, ९. सर्वसिद्धा, १०. शुभनामा, फिर ११. उग्रवती, १२. भोगवती, १३. यशोमती, १४. सर्वसिद्धा, १५. शुभनामा।

इस प्रकार तीन आवृत्तियों में सव रातों की तिथियाँ आती हैं।

भगवन् ! प्रत्येक अहोरात्र के कितने मुहूर्त वतलाये गये हैं ?

गौतम ! तीस मुहूर्त वतलाये गये हैं, जैसे—

१. रुद्र, २. श्रेयान्, ३. मित्र, ४. वायु, ५. सुपीत, ६. अभिचन्द्र, ७. माहेन्द्र, ८. बलवान्, ९. ब्रह्म, १०. बहुसत्य, ११. ऐशान, १२. त्वष्टा, १३. भावितात्मा, १४. वैश्रमण, १५. वारुण, १६. आनन्द, १७. विजय, १८. विश्वसेन, १९. प्राजापत्य, २०. उपशम, २१. गन्धर्व, २२. अग्निवेश्म,

२३. शतवृषभ, २४. आतपवान्, २५. अमम, २६. ऋणवान्, २७. भौम, २८. वृषभ, २९. सर्वार्थ तथा ३०, राक्षस।

करणाधिकार

१८६. कति णं भंते ! करणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! एक्कारस करणा पण्णत्ता, तं जहा—बवं, बालवं, कोलवं, थीविलोअणं, गराइ, वणिज्जं, विट्ठी, सउणी, चउप्पयं, नागं, किंत्थुग्घं।

एतेसि णं भंते ! एक्कारसण्हं करणाणं कति करणा चरा, कति करणा थिरा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सत्त करणा चरा, चत्तारि करणा थिरा पण्णत्ता। तं जहा—बवं, बालवं, कोलवं, थीविलोअणं, गरादि, वणिजं, विट्ठी, एते णं सत्त करणा चरा, चत्तारि करणा थिरा पण्णत्ता तंजहा—सउणी, चउप्पयं, णागं, किंत्थुग्घं, एते णं चत्तारि करणा थिरा पण्णत्ता।

एते णं भंते ! चरा थिरा वा कया भवन्ति ?

गोयमा ! सुक्कपक्खस्स पडिवाए राम्रो बवे करणे भवइ, बितियाए दिवा बालवे करणे भवइ, राम्रो कोलवे करणे भवइ, ततिम्राए दिवा थीविलोम्रणं करणं भवइ, राम्रो गराइ करणं भवइ, चउत्थीए दिवा वणिजं राम्रो विट्ठी, पंचमीए दिवा बवं राओ बालवं, छट्ठीए दिवा कोलवं राओ थीविलोम्रणं, सत्तमीए दिवा गराइ राम्रो वणिज्जं, अट्ठमीए दिवा विट्ठी राम्रो बवं, नवमीए दिवा बालवं राम्रो कोलवं, दसमीए दिवा थीविलोम्रणं राम्रो गराइं, एक्कारसीए दिवा वणिज्जं राम्रो विट्ठी, बारसीए दिवा बवं राओ बालवं, तेरसीए दिवा कोलवं राम्रो थीविलोम्रणं, चउद्दसीए दिवा गरादि करणं राओ वणिज्जं, पुण्णिमाए दिवा विट्ठीकरणं राम्रो बवं करणं भवइ।

बहुलपक्खस्स पडिवाए दिवा बालवं राम्रो कोलवं, बितिम्राए दिवा थीविलोअणं राम्रो गरादिं, ततिम्राए दिवा वणिज्जं राम्रो विट्ठी, चउत्थीए दिवा बवं राम्रो बालवं, पंचमीए दिवा कोलवं राम्रो थीविलोम्रणं, छट्ठीए दिवा गराइं राम्रो वणिज्जं, सत्तमीए दिवा विट्ठी राम्रो बवं, अट्ठमीए दिवा बालवं राम्रो कोलवं, णवमीए दिवा थीविलोअणं राम्रो गराइं, दसमीए दिवा वणिज्जं राम्रो विट्ठी, एक्कारसीए दिवा बवं राओ बालवं, बारसीए दिवा कोलवं राम्रो थीविलोम्रणं, तेरसीए दिवा गराइं राम्रो वणिज्जं, चउद्दसीए दिवा विट्ठी राओ सउणी, अमावासाए दिवा चउप्पयं राम्रो णागं।

सुक्कपक्खस्स पाडिवए दिवा किंत्थुग्घं करणं भवइ।

[१८६] भगवन् ! करण कितने बतलाये गये हैं ?

गौतम ! ग्यारह करण बतलाये गये हैं, जैसे—१. बव, २. बालव, ३. कौलव, ४. स्त्रीविलोचन—तैतिल, ५. गरादि—गर, ६. वणिज, ७. विष्टि, ८. शकुनि, ९. चतुष्पद, १०. नाग तथा ११. किंस्तुघ्न।

भगवन् ! इन ग्यारह करणों में कितने करण चर तथा कितने स्थिर बतलाये गये हैं ?

गौतम ! इनमें सात करण चर तथा चार करण स्थिर बतलाये गये हैं।

बव, बालव, कौलव, स्त्रीविलोचन, गरादि, वणिज तथा विष्टि—ये सात करण चर बतलाये गये हैं एवं शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न—ये चार करण स्थिर बतलाये गये हैं।

भगवन् ! ये चर तथा स्थिर करण कब होते हैं ?

गौतम ! शुक्ल पक्ष की एकम की रात में, एकम के दिन में बवकरण होता है। दूज को दिन में बालवकरण होता है, रात में कौलवकरण होता है। तीज को दिन में स्त्री विलोचनकरण होता है, रात में गरादिकरण होता है। चौथ को दिन में वणिजकरण होता है, रात में विष्टिकरण होता है। पाँचम को दिन में बवकरण होता है, रात में बालवकरण होता है। छठ को दिन में कौलवकरण होता है, रात में स्त्रीविलोचनकरण होता है। सातम को दिन में गरादिकरण होता है, रात में वणिजकरण होता है। आठम को दिन में विष्टिकरण होता है, रात में बवकरण होता है। नवम को दिन में बालवकरण होता है, रात में कौलवकरण होता है। दसम को दिन में स्त्री-विलोचन करण होता है, रात में गरादि करण होता है। ग्यारस को दिन में वणिजकरण होता है, रात में विष्टिकरण होता है। बारस को दिन में बवकरण होता है, रात में बालवकरण होता है। तेरस को दिन में कौलवकरण होता है, रात में स्त्रीविलोचन करण होता है। चौदस को दिन में गरादिकरण होता है, रात में वणिजकरण होता है। पूनम को दिन में विष्टिकरण होता है, रात में बवकरण होता है।

कृष्ण पक्ष की एकम को दिन में बालवकरण होता है, रात में कौलवकरण होता है। दूज को दिन में स्त्रीविलोचनकरण होता है, रात में गरादिकरण होता है। तीज को दिन में वणिज-करण होता है, रात में विष्टिकरण होता है। चौथ को दिन में बवकरण होता है, रात में बालव करण होता है। पाँचम को दिन में कौलवकरण होता है, रात में स्त्रीविलोचनकरण होता है। छठ को दिन में गरादिकरण होता है, रात में वणिजकरण होता है। सातम को दिन में विष्टि-करण होता है, रात को बवकरण होता है। आठम को दिन में बालवकरण होता है, रात में कौलव-करण होता है। नवम को दिन में स्त्रीविलोचनकरण होता है, रात में गरादिकरण होता है। दसम को दिन को में वणिजकरण होता है, रात में विष्टिकरण होता है। ग्यारस को दिन में बवकरण होता है, रात में बालवकरण होता है। बारस को दिन में कौलवकरण होता है, रात में स्त्रीविलोचनकरण होता है। तेरस को दिन में गरादिकरण होता है, रात में वणिजकरण होता है। चौदस को दिन में विष्टिकरण होता है, रात में शकुनिकरण होता है। अमावस को दिन में चतुष्पदकरण होता है, रात में नागकरण होता है।

शुक्ल पक्ष की एकम को दिन में किंस्तुघ्नकरण होता है।

संवत्सर, अयन, ऋतु आदि

१८७. किमाइआ णं भंते ! संवच्छरा, किमाइआ अयणा, किमाइआ उऊ, किमाइआ मासा, किमाइआ पक्खा, किमाइआ अहोरत्ता, किमाइआ मुहुत्ता, किमाइआ करणा, किमाइआ णक्खत्ता पण्णत्ता ?

गोयमा ! चंदाइआ संवच्छरा, दक्खिणाइया अयणा, पाउसाइआ उऊ, सावणाइआ मासा, बहुलाइआ पक्खा, दिवसाइआ अहोरत्ता, रोद्दाइआ मुहुत्ता, बालवाइआ करणा, अभिजिआइआ णक्खत्ता पण्णत्ता समणाउसो ! इति।

पंचसंवच्छरिए णं भंते ! जुगे केवइआ अयणा, केवइआ उऊ, एवं मासा, पक्खा, अहोरत्ता, केवइआ मुहुत्ता पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचसंवच्छरिए णं जुगे दस अयणा, तीसं उऊ, सट्ठी मासा, एगे वीसुत्तरे पक्खसए, अट्ठारसतीसा अहोरत्तसया, चउप्पण्णं मुहुत्तसहस्सा णव सया पण्णत्ता ।

नक्षत्र

[१८७] भगवन् ! संवत्सरों में आदि—प्रथम संवत्सर कौनसा[1] है ? अयनों में प्रथम अयन कौनसा है ? ऋतुओं में प्रथम ऋतु कौनसी है ? महीनों में प्रथम महीना कौनसा है ? पक्षों में प्रथम पक्ष कौनसा है ? अहोरात्र—दिवस-रात में आदि—प्रथम कौन है ? मुहूर्तों में प्रथम मुहूर्त कौनसा है ? करणों में प्रथम करण कौनसा है ? नक्षत्रों में प्रथम नक्षत्र कौनसा है ?

आयुष्मन् श्रमण गौतम ! संवत्सरों में आदि—प्रथम चन्द्र-संवत्सर है। अयनों में प्रथम दक्षिणायन है। ऋतुओं में प्रथम प्रावृट्—आषाढ-श्रावणरूप पावस ऋतु है। महीनों में प्रथम श्रावण है। पक्षों में प्रथम कृष्ण पक्ष है। अहोरात्र में—दिवस-रात में प्रथम दिवस है। मुहूर्तों में प्रथम रुद्र मुहूर्त है। करणों में प्रथम बालवकरण है। नक्षत्रों में प्रथम अभिजित् नक्षत्र है। ऐसा बतलाया गया है।

भगवन् ! पञ्च संवत्सरिक युग में अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र तथा मुहूर्त कितने कितने बतलाये गये हैं ?

गौतम ! पञ्च संवत्सरिक युग में अयन १०, ऋतुएँ ३०, मास ६०, पक्ष १२०, अहोरात्र १८३० तथा मुहूर्त ५४९०० बतलाये गये हैं।

१८८. जोगो १ देव य २ तारग्ग ३ गोत्त ४ संठाण ५ चंद-रवि-जोगा ६ ।
कुल ७ पुण्णिम अवमंसा य ८ सण्णिवाए ९ अ णेता य १० ॥१॥

कति णं भंते ! णक्खत्ता पण्णत्ता ?

गोयमा ! अट्ठावीसं णक्खत्ता पण्णत्ता, तं जहा-अभिई १ सवणो २ धणिट्ठा ३ सयभिसया ४ पुव्वभद्दवया ५ उत्तरभद्दवया ६ रेवई ७ अस्सिणी ८ भरणी ९ कत्तिआ १० रोहिणी ११ मिअसिर १२ अद्दा १३ पुणव्वसू १४ पूसो १५ अस्सेसा १६ मघा १७ पुव्वफग्गुणी १८ उत्तरफग्गुणी १९ हत्थो २० चित्ता २१ साई २२ विसाहा २३ अणुराहा २४ जिट्ठा २५ मूलं २६ पुव्वासाढा २७ उत्तरासाढा २८ इति ।

[१८८] योग—अट्ठाईस नक्षत्रों में कौनसा नक्षत्र चन्द्रमा के साथ दक्षिणयोगी है, कौनसा नक्षत्र उत्तरयोगी है इत्यादि दिशायोग, देवता—नक्षत्रदेवता, ताराग्र—नक्षत्रों का तारा-परिमाण, गोत्र—नक्षत्रों के गोत्र, संस्थान—नक्षत्रों के आकार, चन्द्र-रवि-योग—नक्षत्रों का चन्द्रमा और सूर्य के साथ योग, कुल—कुलसंज्ञक नक्षत्र, उपलक्षण से उपकुलसंज्ञक तथा कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्र,

---

१. ज्ञातव्य है कि यह प्रश्नोत्तरक्रम चन्द्रादि संवत्सरापेक्षा से है।

पूर्णिमा-अमावस्या—कितनी पूर्णिमाएँ-कितनी अमावस्याएँ, सन्निपात—पूर्णिमाओं तथा अमावस्याओं की अपेक्षा से नक्षत्रों का सम्बन्ध तथा नेता—मास का परिसमापक नक्षत्रगण—ये यहाँ विवक्षित हैं।

भगवन् ! नक्षत्र कितने वतलाये गये हैं ?

गौतम ! नक्षत्र अट्ठाईस वतलाये गये हैं, जैसे—१. अभिजित्, २. श्रवण, ३. धनिष्ठा, ४. शतभिषक्, ५. पूर्वभाद्रपदा, ६. उत्तरभाद्रपदा, ७. रेवती, ८. अश्विनी, ९. भरणी, १०. कृत्तिका, ११. रोहिणी, १२. मृगशिर, १३. आर्द्रा, १४. पुनर्वसु, १५. पुष्य, १६. अश्लेषा, १७. मघा, १८. पूर्वाफाल्गुनी, १९. उत्तराफाल्गुनी. २०. हस्त, २१. चित्रा, २२. स्वाति, २३. विशाखा, २४. अनुराधा, २५. ज्येष्ठा, २६. मूल, २७. पूर्वाषाढा तथा २८. उत्तराषाढा।

नक्षत्रयोग

१८६. एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं कयरे णक्खत्ता जे णं सया चन्दस्स दाहिणेणं जोअं जोएंति ?

कयरे णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स उत्तरेणं जोअं जोएंति ?

कयरे णक्खत्ता जे णं चंदस्स दाहिणेणवि उत्तरेणवि पमद्दंपि जोगं जोएंति ?

कयरे णक्खत्ता जे णं चंदस्स दाहिणेणंपि उत्तरेणवि पमद्दंपि जोअं जोएंति ?

कयरे णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स पमद्दं जोअं जोएंति ?

गोयमा ! एतेसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स दाहिणेणं जोअं जोएंति ते णं छ, तं जहा—

मियसिरं १ अद्द २ पुस्सो ३ ऽसिलेस ४ हत्थो ५ तहेव मूलो अ ६।
वाहिरओ वाहिरमंडलस्स छप्पेते णक्खत्ता ॥१॥

तत्थ णं जे ते णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स उत्तरेणं जोगं जोएंति ते णं वारस, तं जहा—अभिई, सवणो, धणिट्ठा, सयभिसया, पुव्वभद्दवया, उत्तरभद्दवया, रेवई, अस्सिणी, भरणी, पुव्वाफग्गुणी, उत्तराफग्गुणी साई।

तत्थ णं जे ते नक्खत्ता जे णं सया चंदस्स दाहिणओवि उत्तरओवि पमद्दंपि जोगं जोएंति ते णं सत्त, तं जहा—कत्तिआ, रोहिणी, पुणव्वसू, मघा, चित्ता, विसाहा, अणुराहा।

तत्थ णं जे ते णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स दाहिणओवि पमद्दंपि जोगं जोएंति, ताओ णं दुवे आसाढाओ। सव्वबाहिरए मंडले जोगं जोअंसु वा ३।

तत्थ णं जे से णक्खत्ते जे णं सया चंदस्स पमद्दं जोएइ, सा णं एगा जेट्ठा इति।

[१८६] भगवन् ! इन अट्ठाईस नक्षत्रों में कितने नक्षत्र ऐसे हैं, जो सदा चन्द्र के दक्षिण में—दक्षिण दिशा में अवस्थित होते हुए योग करते हैं—चन्द्रमा के साथ सम्बन्ध करते हैं ?

कितने नक्षत्र ऐसे हैं, जो सदा चन्द्रमा के उत्तर में अवस्थित होते हुए योग करते हैं ?

कितने नक्षत्र ऐसे हैं, जो चन्द्रमा के दक्षिण में भी, उत्तर में भी, नक्षत्र-विमानों को चीरकर भी योग करते हैं ?

कितने नक्षत्र ऐसे हैं, जो चन्द्रमा के दक्षिण में भी नक्षत्र-विमानों को चीरकर भी योग करते हैं ?

कितने नक्षत्र ऐसे हैं, जो सदा नक्षत्र-विमानों को चीरकर चन्द्रमा से योग करते हैं ?

गौतम ! इन अट्ठाईस नक्षत्रों में जो नक्षत्र सदा चन्द्र के दक्षिण में अवस्थित होते हुए योग करते हैं, वे छह हैं—१. मृगशिर, २. आर्द्रा, ३. पुष्य, ४. अश्लेषा, ५. हस्त तथा ६. मूल।

ये छहों नक्षत्र चन्द्रसम्बन्धी पन्द्रह मण्डलों के बाहर से ही योग करते हैं।

अट्ठाईस नक्षत्रों में जो नक्षत्र सदा चन्द्रमा के उत्तर में अवस्थित होते हुए योग करते हैं, वे बारह हैं—

१. अभिजित्, २. श्रवण, ३. धनिष्ठा, ४. शतभिषक्, ५. पूर्वभाद्रपदा, ६. उत्तरभाद्रपदा, ७. रेवती, ८. अश्विनी, ९. भरणी, १०. पूर्वाफाल्गुनी ११. उत्तराफाल्गुनी तथा १२. स्वाति।

अट्ठाईस नक्षत्रों में जो नक्षत्र सदा चन्द्रमा के दक्षिण में भी, उत्तर में भी, नक्षत्र-विमानों को चीरकर भी योग करते हैं, वे सात हैं—

१. कृत्तिका, २. रोहिणी, ३. पुनर्वसु, ४. मघा, ५. चित्रा, ६. विशाखा तथा ७. अनुराधा।

अट्ठाईस नक्षत्रों में जो नक्षत्र सदा चन्द्रमा के दक्षिण में भी, नक्षत्र-विमानों को चीरकर भी योग करते हैं, वे दो हैं—

१. पूर्वाषाढा तथा २. उत्तराषाढा।

ये दोनों नक्षत्र सदा सर्वबाह्य मण्डल में अवस्थित होते हुए चन्द्रमा के साथ योग करते हैं।

अट्ठाईस नक्षत्रों में जो सदा नक्षत्र-विमानों को चीरकर चन्द्रमा के साथ योग करता है, ऐसा एक ज्येष्ठा नक्षत्र है।

नक्षत्रदेवता

१९०. एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिई णक्खत्ते किंदेवयाए पण्णत्ते ?

गोयमा ! बम्हदेवया पण्णत्ते, सवणे णक्खत्ते विण्हुदेवयाए पण्णत्ते, धणिट्ठा वसुदेवया पण्णत्ता, एए णं कमेणं णेअव्वा अणुपरिवाडी इमाओ देवयाओ—बम्हा विण्हु, वसू, वरुणे, अय, अभिवद्धी, पूसे, आसे, जमे, अग्गी, पयावई, सोमे, रुद्दे, अदिती, वहस्सई, सप्पे, पिउ, भगे, अज्जम, सविआ, तट्ठा, वाउ, इंदग्गी, मित्तो, इंदे, निरई, आउ, विस्सा य, एवं णक्खत्ताणं एआ परिवाडी णेअव्वा जाव उत्तरासाढा किंदेवया पण्णत्ता ? गोयमा ! विस्सदेवया पण्णत्ता।

[१९०] भगवन् ! इन अट्ठाईस नक्षत्रों में अभिजित् आदि नक्षत्रों के कौन कौन देवता बतलाये गये हैं ?

गौतम ! अभिजित् नक्षत्र का देवता ब्रह्मा बतलाया गया है। श्रवण नक्षत्र का देवता विष्णु बतलाया गया है। धनिष्ठा का देवता वसु बतलाया गया है।

पहले नक्षत्र से अट्ठावीसवें नक्षत्र तक के देवता यथाक्रम इस प्रकार हैं:—

१. ब्रह्मा, २. विष्णु, ३. वसु, ४. वरुण, ५. अज, ६. अभिवृद्धि, ७. पूषा, ८. अश्व, ९. यम, १०. अग्नि, ११. प्रजापति, १२. सोम, १३. रुद्र, १४. अदिति, १५. बृहस्पति, १६. सर्प्प, १७. पितृ, १८. भग, १९. अर्यमा, २०. सविता, २१. त्वष्टा, २२ वायु, २३. इन्द्राग्नी, २४. मित्र, २५. इन्द्र, २६. नैर्ऋत, २७. आप तथा २८. तेरह विश्वेदेव।

उत्तराषाढा—अन्तिम नक्षत्र तक यह क्रम गृहीत है।

अन्त में जब प्रश्न होगा—उत्तराषाढा के कौन देवता हैं तो उसका उत्तर है—गौतम! विश्वेदेवा उसके देवता बतलाये गये हैं।

नक्षत्र-तारे

१९१. एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिईणक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते?

गोयमा ! तितारे पण्णत्ते। एवं णेअव्वा जस्स जइआओ ताराओ, इमं च तं तारग्गं—

तिगतिगपंचगसयदुग-दुगबत्तीसगतिगं तह तिगं च।
छप्पंचगतिगएक्कगपंचगतिग-छक्कगं चेव ॥१॥
सत्तगदुगदुग-पंचग-एक्केक्कग-पंच-चउतिगं चेव।
एक्कारसग-चउक्कं चउक्कगं चेव तारग्गं ॥२॥

[१९१] भगवन्! इन अट्ठाईस नक्षत्रों में अभिजित् नक्षत्र के कितने तारे बतलाये गये हैं?
गौतम! अभिजित् नक्षत्र के तीन तारे बतलाये गये हैं।

जिन नक्षत्रों के जितने जितने तारे हैं, वे प्रथम से अन्तिम तक इस प्रकार हैं—

१. अभिजित् नक्षत्र के तीन तारे, २. श्रवण नक्षत्र के तीन तारे, ३. धनिष्ठा नक्षत्र के पांच तारे, ४. शतभिषक् नक्षत्र के सौ तारे, ५. पूर्वभाद्रपदा नक्षत्र के दो तारे, ६. उत्तरभाद्रपदा नक्षत्र के दो तारे, ७. रेवती नक्षत्र के बत्तीस तारे, ८. अश्विनी नक्षत्र के तीन तारे, ९. भरणी नक्षत्र के तीन तारे, १०. कृत्तिका नक्षत्र के छः तारे, ११. रोहिणी नक्षत्र के पांच तारे, १२. मृगशिर नक्षत्र के तीन तारे, १३. आर्द्रा नक्षत्र का एक तारा, १४. पुनर्वसु नक्षत्र के पांच तारे, १५. पुष्य नक्षत्र के तीन तारे, १६. अश्लेषा नक्षत्र के छः तारे, १७. मघा नक्षत्र के सात तारे, १८. पूर्वफाल्गुनी नक्षत्र के दो तारे, १९. उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र के दो तारे, २०. हस्त नक्षत्र के पांच तारे, २१. चित्रा नक्षत्र का एक तारा, २२. स्वाति नक्षत्र का एक तारा, २३. विशाखा नक्षत्र के पांच तारे, २४. अनुराधा नक्षत्र के चार तारे, २५. ज्येष्ठा नक्षत्र के तीन तारे, २६. मूल नक्षत्र के ग्यारह तारे, २७. पूर्वाषाढा नक्षत्र के चार तारे तथा २८. उत्तराषाढा नक्षत्र के चार तारे हैं।

नक्षत्रों के गोत्र एवं संस्थान

१९२. एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिई णक्खत्ते किंगोत्ते पण्णत्ते?

गोयमा ! मोग्गलायणसगोत्ते, गाहा—

मोग्गल्लायण १ संखायणे २ अ तह अग्गभाव ३ कण्णिल्ले ४।
तत्तो अ जाउकण्णे ५ धणंजए ६ चेव बोद्धव्वे ॥१॥

पुस्सायणे ७ अं अस्सायणे ८ अ भग्गवेसे ९ अ अग्गिवेसे १० अ।
गोअम ११ भारद्दाए १२ लोहिच्चे १३ चेव वासिट्ठे १४ ॥२॥

ओमज्जायण १५ मंडव्वायणे १६ अ पिंगायणे १७ अ गोवल्ले १८।
कासव १९ कोसिय २० दब्भा २१ य चामरच्छाया २२ सुंगा २३ य ॥३॥

गोवल्लायण २४ तेगिच्छायणे २५ अ कच्चायणे २६ हवइ मूले।
ततो अ बज्झिआयण २७ वग्घावच्चे अ गोत्ताइं २८ ॥४॥

एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिई णक्खत्ते किंसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! गोसीसावलिसंठिए पण्णत्ते, गाहा—

गोसीसावलि १ काहार २ सउणि ३ पुप्फोवयार ४ वावी य ५-६।
णावा ७ आसक्खंधग ८ भग ९ छुरघरए १० अ सगडुद्धी ११ ॥१॥

मिगसीसावलि १२ रुहिरबिंदु १३ तुल्ल १४ वद्धमाणग १५ पडागा १६।
पागारे १७ पलिअंके १८-१९ हत्थे २० मुहफुल्लए २१ चेव ॥२॥

खीलग २२ दामणि २३ एगावली २४ अ गयदंत २५ विच्छुअअले य २६।
गयविक्कमे २७ अ तत्तो सीहनिसीही अ २८ संठाणा ॥३॥

[१९२] भगवन् ! इन अट्ठाईस नक्षत्रों में अभिजित् नक्षत्र का क्या गोत्र बतलाया गया है ?

गौतम ! अभिजित् नक्षत्र का मौद्‌गलायन गोत्र बतलाया गया है।

गाथार्थ—प्रथम से अन्तिम नक्षत्र तक सब नक्षत्रों के गोत्र इस प्रकार हैं—१. अभिजित् नक्षत्र का मौद्‌गलायन, २. श्रवण नक्षत्र का सांख्यायन, ३. धनिष्ठा नक्षत्र का अग्रभाव, ४. शतभिषक् नक्षत्र का कण्णिलायन, ५. पूर्वभाद्रपदा नक्षत्र का जातुकर्ण्ण, ६. उत्तरभाद्रपदा नक्षत्र का धनञ्जय, ७. रेवती नक्षत्र का पुष्यायन, ८. अश्विनी नक्षत्र का अश्वायन, ९. भरणी नक्षत्र का भार्गवेश, १०. कृत्तिका नक्षत्र का अग्निवेश्य, ११. रोहिणी नक्षत्र का गौतम, १२. मृगशिर नक्षत्र का भारद्वाज, १३. आर्द्रा नक्षत्र का लोहित्यायन, १४. पुनर्वसु नक्षत्र का वासिष्ठ, १५. पुष्य नक्षत्र का अवमज्जायन, १६ अश्लेषा नक्षत्र का माण्डव्यायन, १७. मघा नक्षत्र का पिङ्गायन, १८. पूर्वफाल्गुनी नक्षत्र का गोवल्लायन, १९. उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र का काश्यप, २०. हस्त नक्षत्र का कौशिक, २१. चित्रा नक्षत्र का दार्भायन, २२. स्वाति नक्षत्र का चामरच्छायन, २३. विशाखा नक्षत्र का शुङ्गायन, २४. अनुराधा नक्षत्र का गोलव्यायन, २५. ज्येष्ठा नक्षत्र का चिकित्सायन, २६. मूल नक्षत्र का कात्यायन, २७. पूर्वाषाढा नक्षत्र का बाभ्रव्यायन तथा २८. उत्तराषाढा नक्षत्र का व्याघ्रापत्य गोत्र बतलाया गया है।

भगवन् ! इन अट्ठाईस नक्षत्रों में अभिजित् नक्षत्र का कैसा संस्थान—आकार है ?

गौतम ! अभिजित् नक्षत्र का संस्थान गोशीर्षावलि—गाय के मस्तक के पुद्‌गलों की दीर्घ-रूप—लम्बी श्रेणी जैसा है।

गाथार्थ—प्रथम से अन्तिम तक सब नक्षत्रों के संस्थान इस प्रकार हैं—

१. अभिजित् नक्षत्र का गोशीर्षावलि के सदृश, २. श्रवण नक्षत्र का कासार—तालाब के समान, ३. धनिष्ठा नक्षत्र का पक्षी के कलेवर के सदृश, ४. शतभिषक् नक्षत्र का पुष्प-राशि के समान, ५. पूर्वभाद्रपदा नक्षत्र का अर्धवापी—आधी बावड़ी के तुल्य, ६. उत्तरभाद्रपदा नक्षत्र का भी अर्धवापी के सदृश, ७. रेवती नक्षत्र का नौका के सदृश, ८. अश्विनी नक्षत्र का अश्व के—घोड़े के-स्कन्ध के समान, ९. भरणी नक्षत्र का भग के समान, १०. कृत्तिका नक्षत्र का क्षुरगृह—नाई की पेटी के समान, ११. रोहिणी नक्षत्र का गाड़ी की धुरी के समान, १२. मृगशिर नक्षत्र का मृग के मस्तक के समान, १३. आर्द्रा नक्षत्र का रुधिर की बूंद के समान, १४. पुनर्वसु नक्षत्र का तराजू के सदृश, १५. पुष्य नक्षत्र का सुप्रतिष्ठित वर्द्धमानक—एक विशेष आकार-प्रकार की सुनिर्मित तश्तरी के समान, १६. अश्लेषा नक्षत्र का ध्वजा के सदृश, १७. मघा नक्षत्र का प्राकार—प्राचीर या परकोटे के सदृश, १८. पूर्वफाल्गुनी नक्षत्र का आधे पलंग के समान, १९. उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र का भी आधे पलंग के सदृश, २०. हस्त नक्षत्र का हाथ के समान, २१. चित्रा नक्षत्र का मुख पर सुशोभित पीली जूही के पुष्प के सदृश, २२, स्वाति नक्षत्र का कीलक के तुल्य, २३. विशाखा नक्षत्र का दामनि—पशुओं को बांधने की रस्सी के सदृश, २४. अनुराधा नक्षत्र का एकावली—इकलड़े हार के समान, २५. ज्येष्ठा नक्षत्र का हाथी-दांत के समान, २६. मूल नक्षत्र का बिच्छू की पूँछ के सदृश, २७. पूर्वाषाढा नक्षत्र का हाथी के पैर के सदृश तथा २८. उत्तराषाढा नक्षत्र का बैठे हुए सिंह के सदृश संस्थान—आकार बतलाया गया है।

नक्षत्रचन्द्रसूर्ययोग काल

१९३. एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिई णक्खत्ते कतिमुहुत्ते चन्देण सद्धिं जोगं जोएइ ?

गोयमा ! णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभाए मुहुत्तस्स चन्देण सद्धिं जोगं जोएइ। एवं इमाहिं गाहाहिं अणुगन्तव्वं—

अभिइस्स चन्द-जोगो, सत्तट्ठिं खंडिओ अहोरत्तो।
ते हुंति णवमुहुत्ता, सत्तावीसं कलाओ अ ॥१॥

सयभिसया भरणीओ, अद्दा अस्सेस साइ जेट्ठा य।
एते छण्णक्खत्ता, पण्णरस-मुहुत्त-संजोगा ॥२॥

तिण्णेव उत्तराइं, पुणव्वसू रोहिणी विसाहा य।
एए छण्णक्खत्ता, पणयाल-मुहुत्त-संजोगा ॥३॥

अवसेसा णक्खत्ता, पण्णरस वि हुंति तीसइमुहुत्ता।
चन्दंमि एस जोगो, णक्खत्ताणं मुणेअव्वो ॥४॥

एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिई णक्खत्ते कतिअहोरत्ते सूरेण सद्धिं जोगं जोएइ।

गोयमा ! चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोगं जोएइ, एवं इमाहिं गाहाहिं णेअव्वं—

अभिई छच्च मुहुत्ते, चत्तारि अ केवले अहोरत्ते।
सूरेण समं गच्छइ, एत्तो सेसाण वोच्छामि ॥१॥

सयभिसया भरणीओ, अद्दा, अस्सेस साइ जेट्ठा य।
वच्चंति मुहुत्ते, इक्कवीस छच्चेवऽहोरत्ते ॥२॥

तिण्णेव उत्तराइं, पुणव्वसू रोहिणी विसाहा य।
वच्चंति मुहुत्ते, तिण्णि चेव वीसं अहोरत्ते ॥३॥

अवसेसा णक्खत्ता, पण्णरस वि सूरसहगया जंति।
बारस चेव मुहुत्ते, तेरस य समे अहोरत्ते ॥४॥

[१९३] भगवन् ! अट्ठाईस नक्षत्रों में अभिजित् नक्षत्र कितने मुहूर्त पर्यन्त चन्द्रमा के साथ योगयुक्त रहता है ?

गौतम ! अभिजित् नक्षत्र चन्द्रमा के साथ $९\frac{२७}{६७}$ मुहूर्त पर्यन्त योगयुक्त रहता है।

इन निम्नांकित गाथाओं द्वारा नक्षत्रों का चन्द्र के साथ योग ज्ञातव्य है—

गाथार्थ—अभिजित् नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ एक अहोरात्र में—३० मुहूर्त में उनके $\frac{२१}{६७}$ भाग परिमित योग रहता है। इससे अभिजित् चन्द्रयोग काल $\frac{३०}{१} \times \frac{२१}{६७} = \frac{६३०}{६७} = ९\frac{२७}{६७}$ मुहूर्त फलित होता है।

शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति एवं ज्येष्ठा—इन छह नक्षत्रों का चन्द्रमा के साथ १५ मुहूर्त पर्यन्त योग रहता है।

तीनों उत्तरा—उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाढा तथा उत्तरभाद्रपदा, पुनर्वसु, रोहिणी तथा विशाखा—इन छह नक्षत्रों का चन्द्रमा के साथ ४५ मुहूर्त योग रहता है।

बाकी पन्द्रह नक्षत्रों का चन्द्रमा के साथ ३० मुहूर्त पर्यन्त योग रहता है।

यह नक्षत्र-चन्द्र-योग-क्रम है।

भगवन् ! इन अट्ठाईस नक्षत्रों में अभिजित् नक्षत्र सूर्य के साथ कितने अहोरात्र पर्यन्त योगयुक्त रहता है ?

गौतम ! अभिजित् नक्षत्र सूर्य के साथ ४ अहोरात्र एवं ६ मुहूर्त पर्यन्त योगयुक्त रहता है।

इन निम्नांकित गाथाओं द्वारा नक्षत्र-सूर्ययोग ज्ञातव्य है।

गाथार्थ—अभिजित् नक्षत्र का सूर्य के साथ ४ अहोरात्र तथा ६ मुहूर्त पर्यन्त योग रहता है।

शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति तथा ज्येष्ठा—इन नक्षत्रों का सूर्य के साथ ६ अहोरात्र तथा २१ मुहूर्त पर्यन्त योग रहता है।

तीनों उत्तरा—उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाढा तथा उत्तरभाद्रपदा, पुनर्वसु, रोहिणी एवं विशाखा—इन नक्षत्रों का सूर्य के साथ २० अहोरात्र और ३ मुहूर्त पर्यन्त योग रहता है।

बाकी के पन्द्रह नक्षत्रों का सूर्य के साथ १३ अहोरात्र तथा १२ मुहूर्त पर्यन्त योग रहता है।

कुल-उपकुल-कुलोपकुल : पूर्णिमा, अमावस्या

१६४. कति णं भंते ! कुला, कति उवकुला, कति कुलोवकुला पण्णत्ता ?

गोयमा ! बारस कुला, बारस उवकुला, चत्तारि कुलोवकुला पण्णत्ता।

बारस कुला, तं जहा—धणिट्ठाकुलं १, उत्तरभद्दवयाकुलं २, अस्सिणीकुलं ३, कत्तिआकुलं ४, मिगसिरकुलं ५, पुस्सोकुलं ६, मघाकुलं ७, उत्तरफग्गुणीकुलं ८, चित्ताकुलं ९, विसाहाकुलं १०, मूलोकलं ११, उत्तरासाढाकुलं १२।

मासाणं परिणामा होंति कुला उवकुला उ हेट्ठिमगा।
होंति पुण कुलोवकुला अभीभिसय अद्द अणुराहा ॥१॥

बारस उवकुला तं जहा—सवणो-उवकुलं, पुव्वभद्दवया-उवकुलं, रेवई-उवकुलं, भरणी-उवकुलं. रोहिणी-उवकुलं, पुणव्वसू-उवकुलं, अस्सेसा-उवकुलं, पुव्वफग्गुणी-उवकुलं, हत्थो-उवकुलं, साई-उवकुलं, जेट्ठा-उवकुलं, पुव्वासाढा-उवकुलं।

चत्तारि कुलोवकुला, तं जहा—अभिई कुलोवकुला, सयभिसया कुलोवकुला, अद्दा कुलोवकुला, अणुराहा कुलोवकुला।

कति णं भन्ते ! पुण्णिमाओ, कति अमावासाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! बारस पुण्णिमाओ, बारस अमावासाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—साविट्ठी, पोट्ठवई, आसोई, कत्तिगी, मग्गसिरी, पोसी, माही, फग्गुणी, चेत्ती, वइसाही, जेट्ठामूली, आसाढी।

साविट्ठिण्णि भन्ते ! पुण्णिमासिं कति णक्खत्ता जोगं जोएंति ?

गोयमा ! तिण्णि णक्खत्ता जोगं जोएंति, तं जहा—अभिई, सवणो, धणिट्ठा ३।

पोट्ठवईणिं भन्ते ! पुण्णिमं कइ णक्खत्ता जोगं जोएंति ?

गोयमा ! तिण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं जहा—सयभिसया पुव्वभद्दवया उत्तरभद्दवया।

अस्सोइण्णि भन्ते ! पुण्णिमं कति णक्खत्ता जोगं जोएंति ?

गोयमा ! दो जोएंति, तं जहा—रेवई अस्सिणी अ, कत्तिइण्णं दो—भरणी कत्तिआ य, मग्गसिरिण्णं दो—रोहिणी मग्गसिरं च, पोसिं तिण्णि—अद्दा, पुणव्वसू, पुस्सो, माघिण्णं दो—अस्सेसा मघा य, फग्गुणिं णं दो—पुव्वाफग्गुणी य, उत्तराफग्गुणी य, चेत्तिण्णं दो—हत्थो चित्ता य, विसाहिण्णं दो— साई विसाहा य, जेट्ठामूलिण्णं तिण्णि—अनुराहा, जेट्ठा, मूलो, आसाढिण्णं दो—पुव्वासाढा, उत्तरासाढा।

साविट्ठिण्णं भन्ते ! पुण्णिमं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

गोयमा ! कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ।

कुलं जोएमाणे धणिट्ठा णक्खत्ते जोएइ, उवकुलं जोएमाणे सवणे णक्खत्ते जोएइ, कुलोवकुलं जोएमाणे अभिई णक्खत्ते जोएइ।

साविट्ठीण्णं पुण्णिमासिं णं कुलं वा जोएइ (उवकुलं वा जोएइ) कुलोवकुलं वा जोएइ, कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता कुलोवकुलेण वा जुत्ता साविट्ठी पुण्णिमा जुत्तत्ति वत्तव्वं सिआ।

पोट्ठवदिण्णं भंते! पुण्णिमं किं कुलं जोएइ ३ पुच्छा?

गोयमा! कुलं वा उवकुलं वा कुलोवकुलं वा जोएइ, कुलं जोएमाणे उत्तरभद्दवया णक्खत्ते जोएइ, उवकुलं जोएमाणे पुव्वभद्दवया णक्खत्ते जोएइ, कुलोवकुलं जोएमाणे सयभिसया णक्खत्ते जोएइ। पोट्ठवइण्णं पुण्णिमं कुलं वा जोएइ (उवकुलं वा जोएइ), कुलोवकुलं वा जोएइ। कुलेण वा जुत्ता (उवकुलेण वा जुत्ता), कुलोवकुलेण वा जुत्ता पोट्ठवई पुण्णमासी जुत्तत्ति वत्तव्वयं सिया।

अस्सोइण्णं भन्ते! पुच्छा?

गोयमा! कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, णो लब्भइ कुलोवकुलं, कुलं जोएमाणे अस्सिणीणक्खत्ते जोएइ, उवकुलं जोएमाणे रेवइणक्खत्ते जोएइ, अस्सोइण्णं पुण्णिमं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलेण वा जुत्ता, उवकुलेण वा जुत्ता अस्सोई पुण्णिमा जुत्तत्ति वत्तव्वं सिआ।

कत्तिइण्णं भन्ते! पुण्णिमं किं कुलं ३ पुच्छा?

गोयमा! कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, णो कुलोवकुलं जोएइ, कुलं जोएमाणे कत्तिआणक्खत्ते जोएइ, उवकुलं जोएमाणे भरणीणक्खत्ते जोएइ। कत्तिइण्णं (पुण्णिमं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ। कुलेण वा जुत्ता, उवकुलेण वा जुत्ता कत्तिगी पुण्णिमा जुत्तत्ति) वत्तव्वं सिआ।

मग्गसिरिण्णं भंते! पुण्णिमं किं कुलं तं चेव दो जोएइ, णो भवइ कुलोवकुलं। कुलं जोएमाणे मग्गसिर-णक्खत्ते जोएइ उवकुलं जोएमाणे रोहिणी णक्खत्ते जोएइ। मग्गसिरण्णं पुण्णिमं जाव[1] वत्तव्वं सिया इति। एवं सेसिआओऽवि जाव आसाढि। पोसिं, जेट्ठामूलिं च कुलं वा उवकुलं वा कुलोवकुलं वा, सेसिआणं कुलं वा उवकुलं वा, कुलोवकुलं ण भण्णइ।

साविट्ठिण्णं भंते! अमावासं कति णक्खत्ता जोएंति?

गोयमा! दो णक्खत्ता जोएंति, तं जहा—अस्सेसा य महा य।

पोट्ठवइण्णं भंते! अमावासं कति णक्खत्ता जोएंति?

गोयमा! दो—पुव्वा फग्गुणी उत्तरा फग्गुणी, अस्सोइण्णं भन्ते! दो—हत्थे चित्ता य, कत्तिइण्णं दो—साई विसाहा य, मग्गसिरिण्णं तिण्णि—अणुराहा, जेट्ठा, मूलो अ, पोसिण्णि दो—पुव्वासाढा, उत्तरासाढा, माहिण्णि तिण्णि—अभिई, सवणो, धणिट्ठा, फग्गुणि तिण्णि—सयभिसया, पुव्वभद्दवया, उत्तरभद्दवया, चेत्तिण्णं दो—रेवई अस्सिणी अ, वइसाहिण्णं दो—भरणी, कत्तिआ य, जेट्ठामूलिण्णं दो—रोहिणी-मग्गसिरं च, आसाढिण्णं तिण्णि—अद्दा, पुणव्वसू, पुस्सो इति।

साविट्ठिण्णं भंते! अमावासं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ?

---

१. देखें सूत्र यही (कत्तिगी पुण्णिमा के स्थान पर मग्गसिरी पुण्णिमा)

गोयमा ! कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, णो लब्भइ कुलोवकुलं। कुलं जोएमाणे महाणक्खत्ते जोएइ, उवकुलं जोएमाणे अस्सेसाणक्खत्ते जोएइ।

साविट्ठिण्णं अमावासं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता साविट्ठी अमावासा जुत्तत्ति वत्तव्वं सिआ।

पोट्ठवईण्णं भंते ! अमावासं तं चेव दो जोएइ कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलं जोएमाणे उत्तरा-फग्गुणी-णक्खत्ते जोएइ, उवकुलं जोएमाणे पुव्वा-फग्गुणी, पोट्ठवईण्णं अमावासं (कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलेण वा जुत्ता, उवकुलेण वा जुत्ता पोट्ठवई अमावासा) वत्तव्वं सिआ।

मग्गसिरिण्णं तं चेव कुलं मूले णक्खत्ते जोएइ उवकुले जेट्ठा, कुलोवकुले अणुराहा जाव[1] जुत्तत्तिवत्तव्वं सिया। एवं माहीए फग्गुणीए आसाढीए कुलं वा उवकुलं वा कुलोवकुलं वा, अवसेसिआणं कुलं वा उवकुलं वा जोएइ।

जया णं भंते ! साविट्ठी पुण्णिमा भवइ तया णं माही अमावासा भवइ ?

जया णं भंते ! माही पुण्णिमा भवइ तया णं साविट्ठी अमावासा भवइ ?

हंता गोयमा ! जया णं साविट्ठी तं चेव वत्तव्वं।

जया णं भन्ते ! पोट्ठवई पुण्णिमा भवइ तया णं फग्गुणी अमावासा भवइ, जया णं फग्गुणी पुण्णिमा भवइ तया णं पोट्ठवई अमावासा भवइ ?

हंता गोयमा ! तं चेव, एवं एतेणं अभिलावेणं इमाओ पुण्णिमाओ अमावासाओ णेअव्वाओ—अस्सिणी पुण्णिमा चेत्ती अमावासा, कत्तिगी पुण्णिमा वइसाही अमावासा, मग्गसिरी पुण्णिमा जेट्ठा-मूली अमावासा, पोसी पुण्णिमा आसाढी अमावासा।

[१९४] भगवन् ! कुल, उपकुल तथा कुलोपकुल कितने बतलाये गये हैं ?

गौतम ! कुल बारह, उपकुल बारह तथा कुलोपकुल चार बतलाये गये हैं।

बारह कुल—१. धनिष्ठा कुल, २. उत्तरभाद्रपदा कुल, ३. अश्विनी कुल, ४. कृत्तिका कुल, ५. मृगशिर कुल, ६. पुष्य कुल, ७. मघा कुल, ८. उत्तरफाल्गुनी कुल, ९. चित्रा कुल, १०. विशाखा कुल, ११. मूल कुल तथा १२. उत्तराषाढा कुल।

जिन नक्षत्रों द्वारा महीनों की परिसमाप्ति होती है, वे माससदृश नाम वाले नक्षत्र कुल कहे जाते हैं। जो कुलों के अधस्तन होते हैं, कुलों के समीप होते हैं, वे उपकुल कहे जाते हैं। वे भी मास-समापक होते हैं। जो कुलों तथा उपकुलों के अधस्तन होते हैं, वे कुलोपकुल कहे जाते हैं।

बारह उपकुल—१. श्रवण उपकुल, २. पूर्वभाद्रपदा उपकुल, ३. रेवती उपकुल, ४. भरणी उपकुल, ५. रोहिणी उपकुल, ६. पुनर्वसु उपकुल, ७. अश्लेषा उपकुल, ८. पूर्वफाल्गुनी उपकुल, ९. हस्त उपकुल, १०. स्वाति उपकुल, ११. ज्येष्ठा उपकुल तथा १२. पूर्वाषाढा उपकुल।

---

१. देखें सूत्र यही (पोट्ठवई अमावासा के स्थान पर मग्गसिरी अमावासा)

चार कुलोपकुल—१. अभिजित् कुलोपकुल, २. शतभिषक् कुलोपकुल, ३. आर्द्रा कुलोपकुल तथा ४. अनुराधा कुलोपकुल।

भगवन् ! पूर्णिमाएँ तथा अमावस्याएँ कितनी बतलाई गई हैं २

गौतम ! गारह पुणिमाएँ तथा बारह अमावस्याएँ बतलाई गई हैं, जैसे—

१. श्राविष्ठी—श्रावणी, २. प्रौष्ठपदी—भाद्रपदी, ३. आश्वयुजी—आसोजी, ४. कार्तिकी, ५. मार्गशीर्षी, ६. पौषी, ७. माघी, ८. फाल्गुनी, ९. चैत्री, १०. वैशाखी, ११ ज्येष्ठामूली तथा १२. आषाढी।

भगवन् ! श्रावणी पूर्णमासी के साथ कितने नक्षत्रों का योग होता है ?

गौतम ! श्रावणी पूर्णमासी के साथ अभिजित्, श्रवण तथा धनिष्ठा—इन तीन नक्षत्रों का योग होता है।

भगवन् ! भाद्रपदी पूर्णिमा के साथ कितने नक्षत्रों का योग होता है ?

गौतम ! भाद्रपदी पूर्णिमा के साथ शतभिषक्, पूर्वभाद्रपदा तथा उत्तरभाद्रपदा—इन तीन नक्षत्रों का योग होता हैं।

भगवन् ! आसौजी पूर्णिमा के साथ कितने नक्षत्रों का योग होता है ?

गौतम ! आसौजी पूर्णिमा के साथ रेवती तथा अश्विनी—इन दो नक्षत्रों का योग होता है।

कार्तिक पूर्णिमा के साथ भरणी तथा कृत्तिका—इन दो नक्षत्रों का, मार्गशीर्षी पूर्णिमा के साथ रोहिणी तथा मृगशिर—दो नक्षत्रों का, पौषी पूर्णिमा के साथ आर्द्रा, पुनर्वसु तथा पुष्य—इन तीन नक्षत्रों का, माघी पूर्णिमा के साथ अश्लेषा और मघा—दो नक्षत्रों का, फाल्गुनी पूर्णिमा के साथ पूर्वाफाल्गुनी तथा उत्तराफाल्गुनी—दो नक्षत्रों का, चैत्री पूर्णिमा के साथ हस्त एवं चित्र—दो नक्षत्रों का, वैशाखी पूर्णिमा के साथ स्वाति और विशाखा—दो नक्षत्रों का, ज्येष्ठामूली पूर्णिमा के साथ अनुराधा, ज्येष्ठा एवं मूल—इन तीन नक्षत्रों का तथा आषाढी पूर्णिमा के साथ पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा—दो नक्षत्रों का योग होता है।

भगवन् ! श्रावणी पूर्णिमा के साथ क्या कुल का—कुलसंज्ञक नक्षत्रों का योग होता है ? क्या उपकुल का—उपकुलसंज्ञक नक्षत्रों का योग होता है ? क्या कुलोपकुल का—कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्रों का योग होता ?

गौतम ! कुल का योग होता है, उपकुल का योग होता है और कुलोपकुल का योग होता है।

कुलयोग के अन्तर्गत धनिष्ठा नक्षत्र का योग होता है, उपकुलयोग के अन्तर्गत श्रवण नक्षत्र का योग होता है तथा कुलोपकुलयोग के अन्तर्गत अभिजित् नक्षत्र का योग होता है।

उपसंहार-रूप में विवक्षित है—श्रावणी पूर्णमासी के साथ कुल, (उपकुल) तथा कुलोपकुल का योग होता है यों श्रावणी पूर्णमासी कुलयोगयुक्त, उपकुलयोगयुक्त तथा कुलोपकुलयोगयुक्त होती है।

भगवन् ! भाद्रपदी पूर्णिमा के साथ क्या कुल का योग होता है ? क्या उपकुल का योग होता है ? क्या कुलोपकुल का योग होता है ?

गौतम ! कुल, उपकुल तथा कुलोपकुल—तीनों का योग होता है।

कुलयोग के अन्तर्गत उत्तरभाद्रपदा नक्षत्र का योग होता है। उपकुलयोग के अन्तर्गत पूर्व-भाद्रपदा नक्षत्र का योग होता है। कुलोपकुलयोग के अन्तर्गत शतभिषक् नक्षत्र का योग होता है।

उपसंहार-रूप में विवक्षित है—भाद्रपदी पूर्णिमा के साथ कुल का योग होता है। (उपकुल का योग होता है), कुलोपकुल का योग होता है। यों भाद्रपदी पूर्णिमा कुलयोगयुक्त उपकुलयोगयुक्त तथा कुलोपकुलयोगयुक्त होती है।

भगवन् ! आसोजी पूर्णिमा के साथ क्या कुल का योग होता है ? उपकुल का योग होता है ? कुलोपकुल का योग होता है ?

गौतम ! कुल का योग होता है, उपकुल का योग होता है, कुलोपकुल का योग नहीं होता। कुलयोग के अन्तर्गत अश्विनी नक्षत्र का योग होता है, उपकुलयोग के अन्तर्गत रेवती नक्षत्र का योग होता है।

उपसंहार-रूप में विवक्षित है—आसोजी पूर्णिमा के साथ कुल का योग होता है, उपकुल का योग होता है। यों आसोजी पूर्णिमा कुलयोगयुक्त, उपकुलयोगयुक्त होती है।

भगवन् ! कार्तिकी पूर्णिमा के साथ क्या कुल का योग होता है, उपकुल का योग होता है, कुलोपकुल का योग होता है ?

गौतम ! कुल का योग होता है, उपकुल का योग होता है, कुलोपकुल का योग नहीं होता। कुलयोग के अन्तर्गन्त कृत्तिका नक्षत्र का योग होता है, उपकुलयोग के अन्तर्गत भरणी नक्षत्र का योग होता है।

उपसंहार—कार्तिका पूर्णिमा के साथ कुल का एवं उपकुल का योग होता है। यों वह कुल-योगयुक्त तथा उपकुलयोगयुक्त होती है।

भगवन् ! मार्गशीर्षी पूर्णिमा के साथ क्या कुल का योग होता है, उपकुल का योग होता है, कुलोपकुल का योग होता है ?

गौतम ! दो का—कुल का एवं उपकुल का योग होता है, कुलोपकुल का योग नहीं होता। कुलयोग के अन्तर्गत मृगशिर नक्षत्र का योग होता है, उपकुलयोग के अन्तर्गत रोहिणी नक्षत्र का योग होता है।

मार्गशीर्षी पूर्णिमा के सम्बन्ध में आगे वक्तव्यता पूर्वानुरूप है। आषाढी पूर्णिमा तक का वर्णन वैसा ही है। इतना अन्तर है—पौषी तथा ज्येष्ठामूली पूर्णिमा के साथ कुल, उपकुल तथा कुलोपकुल का योग होता है। बाकी की पूर्णिमाओं के साथ कुल एवं उपकुल का योग होता है, कुलो-पकुल का योग नहीं होता।

भगवन् ! श्रावणी अमावस्या के साथ कितने नक्षत्रों का योग होता है ?

गौतम ! श्रावणी अमावस्या के साथ अश्लेषा तथा मघा—इन दो नक्षत्रों का योग होता है।

भगवन् ! भाद्रपदी अमास्या के साथ कितने नक्षत्रों का योग होता है ?

गौतम ! भाद्रपदी अमावस्या के साथ पूर्वाफाल्गुनी तथा उत्तराफाल्गुनी—इन दो नक्षत्रों का योग होता है ।

भगवन् ! आसौजी अमावस्या के साथ कितने नक्षत्रों का योग होता है ?

गौतम ! आसौजी अमावस्या के साथ हस्त एवं चित्रा—इन दो नक्षत्रों का, कार्तिकी अमावस्या के साथ स्वाति और विशाखा—दो नक्षत्रों का, मार्गशीर्षी अमावस्या के साथ अनुराधा, ज्येष्ठा तथा मूल—इन तीन नक्षत्रों का, पौषी अमावस्या के साथ पूर्वाषाढा तथा उत्तराषाढा—इन दो नक्षत्रों का, माघी अमावस्या के साथ अभिजित्, श्रवण और धनिष्ठा—इन तीन नक्षत्रों का, फाल्गुनी अमावस्या के साथ शतभिषक्, पूर्वभाद्रपदा एवं उत्तरभाद्रपदा—इन तीन नक्षत्रों का, चैत्री अमावस्या के साथ रेवती और अश्विनी—इन दो नक्षत्रों का, वैशाखी अमावस्या के साथ भरणी तथा कृत्तिका—इन दो नक्षत्रों का, ज्येष्ठामूला अमावस्या के साथ रोहिणी एवं मृगशिर—इन दो नक्षत्रों का और आषाढी अमावस्या को साथ आर्द्रा, पुनर्वसु तथा पुष्य—इन तीन नक्षत्रों का योग होता है ।

भगवन् ! श्रावणी अमावस्या के साथ क्या कुल का योग होता है ? क्या उपकुल का योग होता है? क्या कुलोपकुल का योग होता है ?

गौतम ! श्रावणी अमावस्या के साथ कुल का योग होता है, उपकुल का योग होता है, कुलोपकुल का योग नहीं होता । कुलयोग के अन्तर्गत मघा नक्षत्र का योग होता है, उपकुलयोग के अन्तर्गत अश्लेषा नक्षत्र का योग होता है ।

उपसंहार-रूप में विवक्षित है—श्रावणी अमावस्या के साथ कुल का योग होता है, उपकुल का योग होता है । यों वह कुलयोगयुक्त एवं उपकुलयोगयुक्त होती है ।

भगवन् ! क्या भाद्रपदी अमास्या के साथ कुल, उपकुल और कुलोपकुल का योग होता है ?

गौतम ! भाद्रपदी अमावस्या के साथ कुल एवं उपकुल—इन दो का योग होता है । कुलयोग के अन्तर्गत उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का योग होता है । उपकुलयोग के अन्तर्गत पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र का योग होता है । (उपसंहार-रूप में विवक्षित है—भाद्रपदी अमावस्या के साथ कुल का योग होता है, उपकुल का योग होता है । यों वह कुलयोगयुक्त होती है, उपकुलयोगयुक्त होती है ।)

मार्गशीर्षी अमावस्या के साथ कुलयोग के अन्तर्गत मूल नक्षत्र का योग होता है, उपकुल-योग के अन्तर्गत ज्येष्ठा नक्षत्र का योग होता है तथा कुलोपकुलयोग के अन्तर्गत अनुराधा नक्षत्र का योग होता है । आगे की वक्तव्यता पूर्वानुरूप है ।

माघी, फाल्गुनी तथा आषाढी अमावस्या के साथ कुल, उपकुल एवं कुलोपकुल का योग होता है, बाकी की अमावस्याओं के साथ कुल एवं उपकुल का योग होता है ।

भगवन् ! क्या जब श्रवण नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा होती है, तब क्या तत्पूर्ववर्तिनी अमावस्या मघा नक्षत्रयुक्त होती है ?

भगवन् ! जब पूर्णिमा मघा नक्षत्रयुक्त होती है तब क्या तत्पश्चाद्भाविनी अमावस्या श्रवण नक्षत्र युक्त होती है ?

गौतम ! ऐसा ही होता है। जब पूर्णिमा श्रवण नक्षत्रयुक्त होती है तो उससे पूर्व अमावस्या मघा नक्षत्रयुक्त होती है।

जब पूर्णिमा मघा नक्षत्रयुक्त होती है तो उसके पश्चात् आनेवाली अमावस्या श्रवण नक्षत्र-युक्त होती है।

भगवन् ! जब पूर्णिमा उत्तरभाद्रपदा नक्षत्रयुक्त होती है, तब क्या तत्पश्चाद्भाविनी अमावस्या उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र युक्त होती है ?

जब पूर्णिमा उत्तरफाल्गुनी नक्षत्रयुक्त होती है, तब क्या अमावस्या उत्तरभाद्रपदा नक्षत्र युक्त होती है ?

हाँ, गौतम ! ऐसा ही होता है।

इस अभिलाप—कथन-पद्धति के अनुरूप पूर्णिमाओं तथा अमावस्याओं की संगति निम्नांकित रूप में जाननी चाहिए—

जब पूर्णिमा अश्विनी नक्षत्रयुक्त होती है, तब पश्चाद्वर्तिनी अमावस्या चित्रा नक्षत्रयुक्त होती है। जब पूर्णिमा चित्रा नक्षत्र युक्त होती है, तो अमावस्या अश्विनी नक्षत्रयुक्त होती है।

जब पूर्णिमा कृत्तिका नक्षत्रयुक्त होती है, तब अमावस्या विशाखा नक्षत्र युक्त होती है। जब पूर्णिमा विशाखा नक्षत्रयुक्त होती है। तब अमावस्या कृत्तिका नक्षत्रयुक्त होती है।

जब पूर्णिमा मृगशिर नक्षत्र युक्त होती है, तब अमावस्या ज्येष्ठामूल नक्षत्रयुक्त होती है। जब पूर्णिमा ज्येष्ठामूल नक्षत्रयुक्त होती है, तो अमावस्या मृगशिर नक्षत्रयुक्त होती है।

जब पूर्णिमा पुष्य नक्षत्रयुक्त होती है, तब अमावस्या पूर्वाषाढा नक्षत्रयुक्त होती है। जब पूर्णिमा पूर्वाषाढा नक्षत्रयुक्त होती है, तो अमावस्या पुष्य नक्षत्रयुक्त होती है।

मास-समापक नक्षत्र

१९५. वासाणं पढमं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

गोयमा ! चत्तारि णक्खत्ता णेंति, तं जहा— उत्तरासाढा, अभिई, सवणो, धणिट्ठा।

उत्तरासाढा चउद्दस अहोरत्ते णेइ, अभिई सत्त अहोरत्ते णेई, सवणो अट्ठऽहोरत्ते णेइ, धणिट्ठा एगं अहोरत्तं णेइ। तंसि च णं मासंसि चउरंगुलपोरसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ।

तस्स मासस्स चरिमदिवसे दो पदा चत्तारि अ अंगुला पोरिसी भवइ।

वासाणं भन्ते ! दोच्चं मासं कइ णक्खत्ता णेंति ?

गोयमा ! चत्तारि—धणिट्ठा, सयभिसया, पुव्वभद्दवया, उत्तराभद्दवया।

धणिट्ठा णं चउद्दस अहोरत्ते णेइ, सयभिसया सत्त अहोरत्ते णेइ, पुव्वाभद्दवया अट्ठ अहोरत्ते णेइ, उत्तराभद्दवया एगं।

तंसि च णं मासंसि अट्ठंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ। तस्स मासस्स चरिमे दिवसे दो पया अट्ठ य अंगुला पोरिसी भवइ।

वासाणं भन्ते ! तइअं मासं कइ णक्खत्ता णेंति ?

गोयमा ! तिण्णि णक्खत्ता णेंति तं जहा—उत्तरभद्दवया, रेवई, अस्सिणी।

उत्तरभद्दवया चउद्दस राइंदिए णेइ, रेवई पण्णरस, अस्सिणी एगं ।

तंसि च णं मासंसि दुवालसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ ।

तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे लेहट्ठाइं तिण्णि पयाइं पोरिसी भवइ ।

वासाणं भन्ते ! चउत्थं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

गोयमा ! तिण्णि—अस्सिणी, भरणी कत्तिआ ।

अस्सिणी चउद्दस, भरणी पन्नरस, कत्तिआ एगं ।

तंसि च णं मासंसि सोलसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ ।

तस्स णं मासस्स चरमे दिवसे तिण्णि पयाइं चत्तारि अंगुलाइं पोरिसी भवइ ।

हेमन्ताणं भन्ते ! पढमं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

गोयमा ! तिण्णि—कत्तिआ, रोहिणी मिगसिरं ।

कत्तिआ चउद्दस, रोहिणी पण्णरस, मिगसिरं एगं अहोरत्तं णेइ ।

तंसि च णं मासंसि वीसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ ।

तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि तिण्णि पयाइं अट्ठ य अंगुलाइं पोरिसी भवइ ।

हेमन्ताणं भन्ते ! दोच्चं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

गोयमा ! चत्तारि णक्खत्ता णेंति, तं जहा—मिअसिरं, अद्दा, पुणव्वसू, पुस्सो । मिअसिरं चउद्दस राइंदिआइं णेइ, अद्दा अट्ठ णेइ, पुणव्वसू सत्त राइंदिआइं, पुस्सो एगं राइंदिअं णेइ ।

तया णं चउव्वीसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ ।

तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि लेहट्ठाइं चत्तारि पयाइं पोरिसी भवइ ।

हेमन्ताणं भन्ते ! तच्चं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

गोयमा ! तिण्णि—पुस्सो, असिलेसा, महा । पुस्सो चोद्दस राइंदिआइं णेइ, असिलेसा पण्णरस, महा एक्कं ।

तया णं वीसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ ।

तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि तिण्णि पयाइं अट्ठंगुलाइं पोरिसी भवइ ।

हेमन्ताणं भन्ते ! चउत्थं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

गोयमा ! तिण्णि णक्खत्ता, तं जहा—महा, पुव्वाफग्गुणी, उत्तराफग्गुणी । महा चउद्दस राइंदिआइं णेइ, पुव्वाफग्गुणी पण्णरस राइंदिआइं णेइ, उत्तराफग्गुणी एगं राइंदिअं णेइ ।

तया णं सोलसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ ।

तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि तिण्णि पयाइं चत्तारि अंगुलाइं पोरिसी भवइ ।

गिम्हाणं भन्ते ! पढमं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

गोयमा ! तिण्णि णक्खत्ता णेंति—उत्तराफग्गुणी, हत्थो, चित्ता।

उत्तराफग्गुणी चउद्दस राइंदिआइं णेइ, हत्थो पण्णरस राइंदिआइं णेइ, चित्ता एगं राइंदिअं णेइ।

तया णं दुवालसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ।

तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि लेहट्ठाइं तिण्णि पयाइं पोरिसी भवइ।

गिम्हाणं भन्ते ! दोच्चं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

गोयमा ! तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं जहा—चित्ता, साई, विसाहा।

चित्ता चउद्दस राइंदिआइं णेइ, साई पण्णरस राइंदिआइं णेइ, विसाहा एगं राइंदिअं णेइ।

तया णं अट्ठंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ।

तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि दो पयाइं अट्ठंगुलाइं पोरिसी भवइ।

गिम्हाणं भन्ते ! तच्चं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

गोयमा ! चत्तारि णक्खत्ता णेंति तं जहा—विसाहाऽणुराहा, जेट्ठा, मूलो। विसाहा चउद्दस राइंदिआइं णेइ, अणुराहा अट्ठ राइंदिआइं णेइ, जेट्ठा सत्त राइंदिआइं णेइ, मूलो एक्क राइंदिअं।

तया णं चउरंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ।

तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि दो पयाइं चत्तारि अ अंगुलाइं पोरिसी भवइ।

गिम्हाणं भन्ते ! चउत्थं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

गोयमा ! तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं जहा—मूलो, पुव्वासाढा, उत्तरासाढा। मूलो चउद्दस राइंदिआइं णेइ, पुव्वासाढा पण्णरस राइंदिआइं णेइ, उत्तरासाढा एगं राइंदिअं णेइ, तया णं वट्टाए समचउरंससंठाणसंठिआए णग्गोहपरिमण्डलाए सकायमणुरंगिआए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ।

तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि लेहट्ठाइं दो पयाइं पोरिसी भवइ।

एतेसि णं पुव्ववण्णिआणं पयाणं इमा संगहणी तं जहा—

जोगो देवयतारग्गगोत्तसंठाण-चन्दरविजोगो।
कुलपुण्णिमअवमंसा णेआ छाया य बोद्धव्वा ॥१॥

[१९५] भगवन् ! चातुर्मासिक वर्षाकाल के प्रथम—श्रावण मास को कितने नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं ?

गौतम ! उसे चार नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं—

१. उत्तराषाढा, २. अभिजित्, ३. श्रवण तथा ४. धनिष्ठा।

उत्तराषाढा नक्षत्र श्रावण मास के १४ अहोरात्र—दिनरात परिसमाप्त करता है, अभिजित् नक्षत्र ७ अहोरात्र परिसमाप्त करता है, श्रवण नक्षत्र ८ अहोरात्र परिसमाप्त करता है तथा धनिष्ठा नक्षत्र १ अहोरात्र परिसमाप्त करता है। (१४+७+८+१=३० दिनरात=१ मास)

उस मास में सूर्य चार अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण परिभ्रमण करता है।

उस मास के अन्तिम दिन चार अंगुल अधिक दो पद पुरुषछायाप्रमाण पौरुषी होती है, अर्थात् सूरज के ताप में इतनी छाया पड़ती है—पौरुषी या प्रहर-प्रमाण दिन चढ़ता है।

भगवन् ! वर्षाकाल के दूसरे—भाद्रपद मास को कितने नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं ?

गौतम ! उसे चार नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं—१. धनिष्ठा, २. शतभिषक्, ३. पूर्वभाद्रपदा तथा ४. उत्तरभाद्रपदा।

धनिष्ठा नक्षत्र १४ अहोरात्र परिसमाप्त करता है, शतभिषक् नक्षत्र ७ अहोरात्र परिसमाप्त करता है, पूर्वभाद्रपदा नक्षत्र ८ अहोरात्र परिसमाप्त करता है तथा उत्तरभाद्रपदा नक्षत्र १ अहोरात्र परिसमाप्त करता है। (१४+७+८+१=३० दिनरात=१ मास)

उस महीने में सूर्य आठ अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है।

उस महीने के अन्तिम दिन आठ अंगुल अधिक दो पद पुरुषछायाप्रमाण पौरुषी होती है।

भगवन् ! वर्षाकाल के तीसरे आश्विन—आसौज मास को कितने नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं ?

गौतम ! उसे तीन नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं—१. उत्तरभाद्रपदा, २. रेवती तथा ३. अश्विनी।

उत्तरभाद्रपदा नक्षत्र १४ रातदिन परिसमाप्त करता है, रेवती नक्षत्र १५ रातदिन परिसमाप्त करता है तथा अश्विनी नक्षत्र एक रातदिन परिसमाप्त करता है। (१४+१५+१=३० रातदिन=१ मास)

उस मास में सूर्य १२ अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है।

उस मास के अन्तिम दिन परिपूर्ण तीन पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है।

भगवन् ! वर्षाकाल के चौथे—कार्तिक मास को कितने नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं ?

गौतम ! उसे तीन नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं—१. अश्विनी, २. भरणी तथा ३. कृत्तिका।

अश्विनी नक्षत्र १४ रातदिन परिसमाप्त करता है, भरणी नक्षत्र १५ रातदिन परिसमाप्त करता है तथा कृत्तिका नक्षत्र १ रातदिन परिसमाप्त करता है। (१४+१५+१=३० रातदिन=१मास)

उस महीने में सूर्य १६ अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है।

उस महीने के अंतिम दिन ४ अंगुल अधिक तीन पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है।

चातुर्मासिक हेमन्तकाल के प्रथम—मार्गशीर्ष मास को कितने नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं ?

गौतम ! उसे तीन नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं—१. कृतिका, २. रोहिणी तथा ३. मृगशिर।

कृत्तिका नक्षत्र १४ अहोरात्र, रोहिणी नक्षत्र १५ अहोरात्र तथा मृगशिर नक्षत्र १ अहोरात्र परिसमाप्त करता है। (१४+१५+१=३० दिनरात=१ मास)

उस महीने में सूर्य २० अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है।

उस महीने के अन्तिम दिन ८ अंगुल अधिक तीन पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है।

भगवन् ! हेमन्तकाल के दूसरे—पौष मास को कितने नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं ?

गौतम ! उसे चार नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं—१. मृगशिर, २. आर्द्रा, ३. पुनर्वसु तथा ४. पुष्य ।

मृगशिर नक्षत्र १४ रातदिन परिसमाप्त करता है, आर्द्रा नक्षत्र ८ रातदिन परिसमाप्त करता है, पुनर्वसु नक्षत्र ७ रातदिन परिसमाप्त करता है तथा पुष्य नक्षत्र १ रातदिन परिसमाप्त करता है। (१४+८+७+१=३०रातदिन=१ मास)

तब सूर्य २४ अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है।

उस महीने के अन्तिम दिन परिपूर्ण चार पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है।

भगवन् ! हेमन्तकाल के तीसरे—माघ मास को कितने नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं ?

गौतम ! उसे तीन नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं—१. पुष्य, २. अश्लेषा तथा ३. मघा।

पुष्य नक्षत्र १४ रातदिन परिसमाप्त करता है, अश्लेषा नक्षत्र १५ रातदिन परिसमाप्त करता है तथा मघा नक्षत्र १ रातदिन परिसमाप्त करता है। (१४+१५+१=३० रातदिन= १ मास)

तब सूर्य २० अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है।

उस महीने के अंतिम दिन आठ अंगुल अधिक तीन पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है।

भगवन् ! हेमन्तकाल के चौथे—फाल्गुन मास को कितने नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं ?

गौतम ! उसे तीन नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं—१. मघा, २. पूर्वाफाल्गुनी तथा ३. उत्तराफाल्गुनी।

मघा नक्षत्र १४ रातदिन, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र १५ रातदिन तथा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र १ रातदिन परिसमाप्त करता है। (१४+१५+१=३० रातदिन=१ मास)

तब सूर्य सोलह अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है।

उस महीने के अन्तिम दिन चार अंगुल अधिक तीन पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है।

भगवन् ! चातुर्मासिक ग्रीष्मकाल के प्रथम—चैत्र मास को कितने नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं ?

गौतम ! उसे तीन नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं—१. उत्तराफाल्गुनी, २. हस्त तथा ३. चित्रा।

उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र १४ रातदिन परिसमाप्त करता है, हस्त नक्षत्र १५ रातदिन परिसमाप्त करता है तथा चित्रा नक्षत्र १ रातदिन परिसमाप्त करता है। (१४+१५+१=३० रातदिन=१ मास)

तब सूर्य १२ अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है।

उस महीने के अन्तिम दिन परिपूर्ण तीन पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है।

भगवन् ! ग्रीष्मकाल के दूसरे—वैशाख मास को कितने नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं ?

गौतम ! उसे तीन नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं—१. चित्रा, २. स्वाति तथा ३. विशाखा।

चित्रा नक्षत्र १४ रातदिन परिसमाप्त करता है, स्वाति नक्षत्र १५ रातदिन परिसमाप्त करता है तथा विशाखा नक्षत्र १ रातदिन परिसमाप्त करता है। (१४+१५+१=३० रातदिन= १ मास)

तब सूर्य आठ अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है ।

उस महीने के अन्तिम दिन आठ अंगुल अधिक दो पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है ।

भगवन् ! ग्रीष्मकाल के तीसरे—ज्येष्ठ मास को कितने नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं ?

गौतम ! उसे चार नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं—१. विशाखा, २. अनुराधा, ३. ज्येष्ठा तथा ४. मूल ।

विशाखा नक्षत्र १४ रातदिन परिसमाप्त करता है, अनुराधा नक्षत्र ८ रातदिन परिसमाप्त करता है, ज्येष्ठा नक्षत्र ७ रातदिन परिसमाप्त करता है तथा मूल नक्षत्र १ रातदिन परिसमाप्त करता है । (१४+८+७+१=३० रातदिन=१ मास)

तब सूर्य चार अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है ।

उस महीने के अन्तिम दिन चार अंगुल अधिक दो पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है ।

भगवन् ! ग्रीष्मकाल के चौथे—आषाढ मास को कितने नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं ?

गौतम ! उसे तीन नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं—१. मूल, २. पूर्वाषाढा तथा ३. उत्तराषाढा ।

मूल नक्षत्र १४ रातदिन परिसमाप्त करता है, पूर्वाषाढा नक्षत्र १५ रातदिन परिसमाप्त करता है तथा उत्तराषाढा नक्षत्र १ रातदिन परिसमाप्त करता है । (१४+१५+१=३० रात-दिन=१ मास)

सूर्य तब वृत्त—वर्तुल—गोलाकार, समचौरस संस्थानयुक्त, न्यग्रोधपरिमण्डल—बरगद के वृक्ष की ज्यों ऊपर से संपूर्णतः विस्तीर्ण, नीचे से संकीर्ण, प्रकाश्य वस्तु के कलेवर के सदृश आकृतिमय छाया से युक्त अनुपर्यटन करता है ।

उस महीने के अन्तिम दिन परिपूर्ण दो पद पुरुषछायायुक्त पोरसी होती है ।

इन पूर्ववर्णित पदों की संग्राहिका गाथा इस प्रकार है—

योग, देवता, तारे, गोत्र, संस्थान, चन्द्र-सूर्य-योग, कुल, पूर्णिमा, अमावस्या, छाया—इनका वर्णन, जो उपर्युक्त है, समझ लेना चाहिए ।

अणुत्वादि-परिवार

१९६. हिट्ठि ससि-परिवारो, मन्दरऽबाधा तहेव लोगंते ।
धरणितलाओ अबाधा, अंतो बाहिं च उद्धमुहे ॥१॥

संठाणं च पमाणं, वहंति सीहगई इद्धिमन्ता य ।
तारंतरऽग्गमहिसी, तुडिअ पहु ठिई अ अप्पबहू ॥२॥

अत्थि णं भन्ते ! चंदिम-सूरिआणं हिट्ठिं पि तारारूवा अणुं पि तुल्लावि, समेवि तारारूवा अणुं पि तुल्लावि, उप्पिंपि तारारूवा अणुं पि तुल्लावि ?

हंता गोयमा ! तं चेव उच्चारेअव्वं ।

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ—अत्थि णं० जहा जहा णं तेसिं देवाणं तव-नियम-बंभचेराणि ऊसिआइं भवंति तहा तहा णं तेसि णं देवाणं एवं पण्णायए, तं जहा—अणुत्ते वा तुल्लत्ते वा, जहा जहा

णं तेसिं देवाणं तव-नियम-बंभचेराणि णो ऊसिआइं भवंति तहा तहा णं तेसिं देवाणं एवं (णो) पण्णायए, तं जहा—अणुत्ते वा तुल्लत्ते वा।

[१९६] सोलह द्वार

पहला द्वार—इसमें चन्द्र तथा सूर्य के अधस्तनप्रदेशवर्ती, समपंक्तिवर्ती तथा उपरितनप्रदेश-वर्ती तारकमण्डल के—तारा विमानों के अधिष्ठातृ-देवों का वर्णन है।

दूसरा द्वार—इसमें चन्द्र-परिवार का वर्णन है।

तीसरा द्वार—इसमें मेरु से ज्योतिश्चक्र के अन्तर—दूरी का वर्णन है।

चौथा द्वार—इसमें लोकान्त से ज्योतिश्चक्र के अन्तर का वर्णन है।

पांचवां द्वार—इसमें भूतल से ज्योतिश्चक्र के अन्तर का वर्णन है।

छठा द्वार—क्या नक्षत्र अपने चार क्षेत्र के भीतर चलते हैं, बाहर चलते हैं या ऊपर चलते हैं? इस सम्बन्ध में इस द्वार में वर्णन है।

सातवां द्वार—इसमें ज्योतिष्क देवों के विमानों के संस्थान—आकार का वर्णन है।

आठवां द्वार—इसमें ज्योतिष्क देवों की संख्या का वर्णन है।

नौवां द्वार—इसमें चन्द्र आदि देवों के विमानों को कितने देव वहन करते हैं, इस सम्बन्ध में वर्णन है।

दसवां द्वार—कौन कौन देव शीघ्रगतियुक्त हैं, कौन मन्दगतियुक्त हैं, इस सम्बन्ध में इसमें वर्णन है।

ग्यारहवां द्वार—कौन देव अल्प ऋद्धिवैभवयुक्त हैं, कौन विपुल वैभवयुक्त हैं, इस सम्बन्ध में इसमें वर्णन है।

बारहवां द्वार—इसमें ताराओं के पारस्परिक अन्तर—दूरी का वर्णन है।

तेरहवां द्वार—इसमें चन्द्र आदि देवों की अग्रमहिषियों—प्रधान देवियों का वर्णन है।

चौदहवां द्वार—इसमें आभ्यन्तर परिषत् एवं देवियों के साथ भोग-सामर्थ्य आदि का वर्णन है।

पन्द्रहवां द्वार—इसमें ज्योतिष्क देवों के आयुष्य का वर्णन है।

सोलहवां द्वार—इसमें ज्योतिष्क देवों के अल्पबहुत्व का वर्णन है।

भगवन्! क्षेत्र की अपेक्षा से चन्द्र तथा सूर्य के अधस्तन प्रदेशवर्ती तारा विमानों के अधिष्ठातृ देवों में से कतिपय क्या द्युति, वैभव आदि की दृष्टि से चन्द्र एवं सूर्य से अणु-हीन हैं? क्या कतिपय उनके समान हैं?

क्षेत्र की अपेक्षा से चन्द्र आदि के विमानों के समश्रेणीवर्ती ताराविमानों के अधिष्ठातृ देवों में से कतिपय क्या द्युति, वैभव आदि में उनसे न्यून हैं? क्या कतिपय उनके समान हैं?

क्षेत्र की अपेक्षा से चन्द्र आदि के विमानों के उपरितनप्रदेशवर्ती ताराविमानों के अधिष्ठातृ देवों में से कतिपय क्या द्युति, वैभव आदि में उनसे अणु—न्यून हैं? क्या कतिपय उनके समान हैं?

हां, गौतम! ऐसा ही है। चन्द्र आदि के अधस्तन प्रदेशवर्ती, समश्रेणीवर्ती तथा उपरितन-प्रदेशवर्ती ताराविमानों के अधिष्ठातृ देवों में कतिपय ऐसे हैं जो चन्द्र आदि से द्युति, वैभव आदि में हीन या न्यून हैं, कतिपय ऐसे हैं जो उनके समान हैं।

भगवन् ! ऐसा किस कारण से है ?

गौतम ! पूर्व भव में उन ताराविमानों के अधिष्ठातृ देवों का अनशन आदि तप आचरण, शौच आदि नियमानुपालन तथा ब्रह्मचर्य-सेवन जैसा-जैसा उच्च या अनुच्च होता है, तदनुरूप—उस तारतम्य के अनुसार उनमें द्युति, वैभव आदि की दृष्टि से चन्द्र आदि से हीनता—न्यूनता या तुल्यता होती है।

पूर्व भव में उन देवों का तप आचरण नियमानुपालन, ब्रह्मचर्य-सेवन जैसे-जैसे उच्च या अनुच्च नहीं होता, तदनुसार उनमें द्युति, वैभव आदि की दृष्टि से चन्द्र आदि से न हीनता होती है, न तुल्यता होती है।

१९७. एगमेगस्स णं भन्ते ! चन्दस्स केवइआ महग्गहा परिवारो, केवइआ णक्खत्ता परिवारो, केवइआ तारागणकोडाकोडीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठासीइ महग्गहा परिवारो, अट्ठावीसं णक्खत्ता परिवारो, छावट्ठि-सहस्साइं णव सया पण्णत्तरा तारागणकोडाकोडीओ पण्णत्ताओ।

[१९७] भगवन् ! एक एक चन्द्र का महाग्रह-परिवार कितना है, नक्षत्र-परिवार कितना है तथा तारागण-परिवार कितना कोड़ाकोड़ी है ?

गौतम ! प्रत्येक चन्द्र का परिवार ८८ महाग्रह हैं, २८ नक्षत्र हैं तथा ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारागण हैं, ऐसा बतलाया गया है।

गति-क्रम

१९८. मन्दरस्स णं भन्ते ! पव्वयस्स केवइआए अबाहाए जोइसं चारं चरइ।

गोयमा ! इक्कारसहिं इक्कवीसेहिं जोअण-सएहिं अबाहाए जोइसं चारं चरइ।

लोगंताओ णं भन्ते ! केवइआए अबाहाए जोइसे पण्णत्ते ?

गोयमा ! एक्कारस एक्कारसेहिं जोअण-सएहिं अबाहाए जोइसे पण्णत्ते।

धरणितलाओ णं भन्ते[1] ! सत्तहिं णउएहिं जोअण-सएहिं जोइसे चारं चरइत्ति, एवं सूर-विमाणे अट्ठहिं सएहिं, चंद-विमाणे अट्ठहिं असीएहिं, उवरिल्ले तारारूवे नवहिं जोअण-सएहिं चारं चरइ।

जोइसस्स णं भन्ते ! हेट्ठिल्लाओ तलाओ केवइआए अबाहाए सूर-विमाणे चारं चरइ ?

गोयमा ! दसहिं जोअणेहिं अबाहाए चारं चरइ, एवं चन्द-विमाणे णउईए जोअणेहिं चारं चरइ, उवरिल्ले तारारूवे दसुत्तरे जोअण-सए चारं चरइ, सूर-विमाणाओ चन्द-विमाणे असीईए जोअणेहिं चारं चरइ, सूर-विमाणाओ जोअण-सए उवरिल्ले तारारूवे चारं चरइ, चन्द-विमाणाओ वीसाए जोअणेहिं उवरिल्ले णं तारारूवे चारं चरइ।

१. यहाँ इतना योजनीय है—'उद्धं उप्पइत्ता केवइआए अबाहाए हिट्ठिल्ले जोइसे चारं चरइ ?'

[१९८] भगवन् ! ज्योतिष्क देव मेरु पर्वत से कितने अन्तर पर गति करते हैं ?

गौतम ! ज्योतिष्क देव मेरु पर्वत से ११२१ योजन की दूरी पर गति करते हैं—गतिशील रहते हैं।

भगवन् ज्योतिश्चक्र—तारापटल लोकान्त से—लोक के अन्त से, अलोक से पूर्व कितने अन्तर पर स्थिर—स्थित बतलाया गया है ?

गौतम ! वहाँ से ज्योतिश्चक्र ११११ योजन के अन्तर पर स्थित बतलाया गया है।

भगवन् ! अधस्तन—नीचे का ज्योतिश्चक्र धरणितल से—समतल भूमि से कितनी ऊँचाई पर गति करता है ?

गौतम ! अधस्तन ज्योतिश्चक्र धरणितल से ७९० योजन की ऊँचाई पर गति करता है।

इसी प्रकार सूर्यविमान धरणितल से ८०० योजन की ऊँचाई पर, चन्द्रविमान ८८० योजन की ऊँचाई पर तथा उपरितन—ऊपर के तारारूप—नक्षत्र-ग्रह-प्रकीर्ण तारे ९०० योजन की ऊँचाई पर गति करते हैं।

भगवन् ! ज्योतिश्चक्र के अधस्तनतल से सूर्यविमान कितने अन्तर पर, कितनी ऊँचाई पर गमन करता है ?

गौतम ! वह १० योजन के अन्तर पर, ऊँचाई पर गति करता है।

चन्द्र-विमान ९० योजन के अन्तर पर, ऊँचाई पर गति करता है।

उपरितन—ऊपर के तारारूप—प्रकीर्ण तारे ११० योजन के अन्तर पर, ऊँचाई पर गति करते हैं।

सूर्य के विमान से चन्द्रमा का विमान ८० योजन के अन्तर पर, ऊँचाई पर गति करता है।

उपरितन तारारूप ज्योतिश्चक्र सूर्यविमान से १०० योजन के अन्तर पर, ऊँचाई पर गति करता है।

वह चन्द्रविमान से २० योजन दूरी पर, ऊँचाई पर गति करता है।

१९९. जम्बुद्दीवे णं दीवे अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं कयरे णक्खत्ते सव्वब्भंरिल्लं चारं चरइ ? कयरे णक्खत्ते सव्वबाहिरं चारं चरइ ? कयरे सव्वहिट्ठिल्लं चारं चरइ, कयरे सव्वउवरिल्लं चारं चरइ ?

गोयमा ! अभिई णक्खत्ते सव्वब्भंतरं चारं चरइ, मूलो सव्वबाहिरं चारं चरइ, भरणी सव्वहिट्ठिल्लगं, साई सव्वुवरिल्लगं चारं चरइ।

चन्दविमाणे णं भन्ते ! किंसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! अद्धकविट्ठसंठाणसंठिए, सव्वफालिआमए अब्भुग्गयमूसिए, एवं सव्वाइं णेअव्वाइं।

चन्दविमाणे णं भन्ते ! केवइयं आयाम-विक्खभेणं, केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! **छप्पण्णं खलु भाए विच्छिण्णं चन्दमंडलं होइ।**
अट्ठावीसं भाए बाहल्लं तस्स बोद्धव्वं ॥१॥

अडयालीसं भाए विच्छिण्णं सूरमंडलं होइ।
चउवीसं खलु भाए बाहल्लं तस्स बोद्धव्वं ॥२॥

दो कोसे अ गहाणं णक्खत्ताणं तु हवइ तस्सद्धं।
तस्सद्धं ताराणं तस्सद्धं चेव बाहल्लं ॥३॥

[१९९] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत अट्ठाईस नक्षत्रों में कौनसा नक्षत्र सर्व मण्डलों के भीतर—भीतर के मण्डल से होता हुआ गति करता है ? कौनसा नक्षत्र समस्त मण्डलों के बाहर होता हुआ गति करता है ? कौनसा नक्षत्र सब मण्डलों के नीचे होता हुआ गति करता है ? कौनसा नक्षत्र सब मण्डलों के ऊपर होता हुआ गति करता है ?

गौतम ! अभिजित् नक्षत्र सर्वाभ्यन्तर-मण्डल में से होता हुआ गति करता है। मूल नक्षत्र सब मण्डलों के बाहर होता हुआ गति करता है। भरणी नक्षत्र सब मण्डलों के नीचे होता हुआ गति करता है। स्वाति नक्षत्र सब मण्डलों के ऊपर होता हुआ गति करता है।

भगवन् ! चन्द्रविमान का संस्थान—आकार कैसा बतलाया गया है ?

गौतम ! चन्द्रविमान ऊपर की ओर मुँह कर रखे हुए आधे कपित्थ के फल के आकार का बतलाया गया है। वह संपूर्णतः स्फटिकमय है। अति उन्नत है, इत्यादि। सूर्य आदि सर्व ज्योतिष्क देवों के विमान इसी प्रकार के समझने चाहिए।

भगवन् ! चन्द्रविमान कितना लम्बा-चौड़ा तथा ऊँचा बतलाया गया है ?

गौतम ! चन्द्रविमान $\frac{५६}{६१}$ योजन चौड़ा, वृत्ताकार होने से उतना ही लम्बा[१] तथा $\frac{२८}{६१}$ योजन ऊँचा है।

सूर्यविमान $\frac{४८}{६१}$ योजन चौड़ा, उतना ही लम्बा तथा $\frac{२४}{६१}$ योजन ऊँचा है।

ग्रहों, नक्षत्रों तथा ताराओं के विमान क्रमशः २ कोश, १ कोश तथा $\frac{१}{२}$ कोश विस्तीर्ण हैं। ग्रह आदि के विमानों की ऊँचाई उनके विस्तार से आधी होती है, तदनुसार ग्रहविमानों की ऊँचाई २ कोश से आधी १ कोश, नक्षत्रविमानों की ऊँचाई १ कोश से आधी $\frac{१}{२}$ कोश तथा ताराविमानों की ऊँचाई $\frac{१}{२}$ कोश से आधी $\frac{१}{४}$ कोश है।[२]

विमान-वाहक देव

२००. चन्दविमाणे णं भन्ते ! कति देवसाहस्सीओ परिवहंति ?

गोयमा ! सोलस देवसाहस्सीओ परिवहंतित्ति। चन्दविमाणस्स णं पुरत्थिमे णं सेआणं सुभगाणं सुप्पभाणं संखतलविमलनिम्मलदधिघणगोखीरफेणरयणिगरप्पगासाणं थिरलट्ठपउट्ठवट्टपीवर-सुसिलिट्ठविसिट्ठतिक्खदाढाविडंबिअमुहाणं रत्तुप्पलपत्तमउयसूमालतालुजीहाणं महुगुलिअपिंगलक्खाणं पीवरवरोरुपडिपुण्णविउलखंधाणं मिउविसयसुहुमलक्खणपसत्थवरवण्णकेसरसडोवसोहिआणं ऊसिअ-सुनमियसुजायअप्फोडिअलंगूलाणं वइरामयणक्खाणं वइरामयदाढाणं वइरामयदन्ताणं तवणिज्जजीहाणं

१. वृत्ताकार वस्तु का आयाम-विस्तार समान होता है।
२. यह उत्कृष्टस्थितिक वर्णन है।

तवणिज्जतालुआणं तवणिज्जजोत्तगसुजाइआणं कामगमाणं पीइगमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं अमिअगईणं अमिअबलवीरिअपुरिसक्कारपरक्कमाणं महया अप्फोडिअसीहणायबोलकलकलरवेणं महुरेणं मणहरेणं पूरेंता अंबरं, दिसाओ अ सोभयंता, चत्तारि देवसाहस्सीओ सीहरूवधारी पुरत्थिमिल्लं बाहं वहंति ।

चंदविमाणस्स णं दाहिणेणं सेआणं सुभगाणं सुप्पभाणं संखतलविमलनिम्मलदधिघणगोखीर-फेणरययणिगरप्पगासाणं वइरामयकुंभजुअलसुट्ठिअपीवरवरवइरसोंढवट्टिअदित्तसुरत्तपउमप्पगासाणं अब्भुण्णयमुहाणं तवणिज्जविसालकणगचंचलचलंतविमलुज्जलाणं महुवण्णभिसंतणिद्धपत्तलनिम्मल-तिवण्णमणिरयणलोअणाणं अब्भुग्गयमउलमल्लिआधवलसरिससंठिअणिव्वणदढकसिणफालिआमय-सुजायदन्तमुसलोवसोभिआणं कंचणकोसीपविट्ठदन्तग्गविमलमणिरयणरुइलपेरंतचित्तरूवगविराइआणं तवणिज्जविसालतिलगप्पमुहपरिमण्डिआणं नानामणिरयणमुद्धगेविज्जबद्धगलयवरभूसणाणं वेरुलिअ-विचित्तदण्डनिम्मलवइरामयतिक्खलट्ठअंकुसकुंभजुअलयंतरोडिआणं तवणिज्जसुबद्धकच्छदप्पि-अबलुद्धराणं विमलघणमण्डलवइरामयलालाललियतालगाणं णाणामणिरयणघण्टपासगरजतामयबद्ध-लज्जुलंबिअघंटाजुअलमहुरसरमणहराणं अल्लीणपमाणजुत्तवट्टिअसुजायलक्खणपसत्थरमणिज्जवालग-त्तपरिपुंछणाणं उवचिअपडिपुण्णकुम्मचलणलहुविक्कमाणं अंकमयणक्खाणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्ज-तालुआणं तवणिज्जजोत्तगसुजोइआणं कामगमाणं पीइगमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं अमिअगईणं अमिअबलवीरिअपुरिसक्कारपरक्कमाणं महयागंभीरगुलुगुलाइतरवेणं महुरेणं मणहरेणं पूरेंता अंबरं दिसाओ अ सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ गयरूवधारीणं देवाणं दक्खिणिल्लं बाहं परिवहंतित्ति ।

चन्दविमाणस्स णं पच्चत्थिमेणं सेआणं सुभगाणं सुप्पभाणं चलचवलककुहसालीणं घणनिचि-असुबद्धलक्खणुण्णयईसिआणयवसयोट्ठाणं चंकमिअललिअपुलिअचलचवलगव्विअगईणं सन्नतपासाणं संगतपासाणं सुजायपासाणं पीवरवट्टिअसुसंठिअकडीणं ओलंबपलंबलक्खणपमाणजुत्तरमणिज्जवाल-गण्डाणं समखुरवालिधाणाणं समलिहिअसिंगतिक्खग्गसंगयाणं तणुसुहुमसुजायणिद्धलोमच्छविधराणं उवचिअमंसलविसालपडिपुण्णखंधपएससुंदराणं वेरुलिअभिसंतकडक्खसुनिरिक्खणाणं जुत्तपमाणपहाण-लक्खणपसत्थरमणिज्जगग्गरगल्लसोभिआणं घरघरगसुसद्दबद्धकंठपरिमण्डिआणं णाणामणिकणगरयण-घण्टिआवेगच्छिगसुकयमालिआणं वरघण्टागलयमालुज्जलसिरिधराणं पउमुप्पलसगलसुरभिमाला-विभूसिआणं वइरखुराणं विविहविक्खुराणं फालिआमयदन्ताणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्जतालुआणं तवणिज्जजोत्तगसुजोइआणं कामगमाणं पीइगमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं अमिअगईणं अमिअबल-वीरिअपुरिसक्कारपरक्कमाणं महयागज्जिअगंभीररवेणं महुरेणं मणहरेणं पूरेंता अंबरं दिसाओ अ सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ वसहरूवधारीणं देवाणं पच्चत्थिमिल्लं बाहं परिवहंतित्ति ।

चन्दविमाणस्स णं उत्तरेणं सेआणं सुभगाणं सुप्पभाणं तरमल्लिहायणाणं हरिमेलमउलमल्लि-अच्छाणं चंचुच्चिअललिअपुलिअचलचवलचंचलगईणं लंघणवग्गणधावणधोरणतिवइजइणसिक्खिअ-गईणं ललंतलामगललायवरभूसणाणं सन्नयपासाणं संगयपासाणं सुजायपासाणं पीवरवट्टिअसुसंठिअकडीणं ओलम्बपलंबलक्खणपमाणजुत्तरमणिज्जवालपुच्छाणं तणुसुहुमसुजायणिद्धलोमच्छविहराणं मिउविसय-

सुहुमलक्खणपसत्थविच्छिण्णकेसरवालिहराणं ललंतथासगललाडवरभूसणाणं मुहमण्डगग्रोचूलगचामर-थासगपरिमण्डिग्रकडीणं तवणिज्जखुराणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्जतालुग्राणं तवणिज्जजोत्तगसुजोइ-आणं कामगमाणं (पीइगमाणं मणोगमाणं) मणोरमाणं ग्रमिग्रगईणं अमिअबलवीरिग्रपुरिसक्कार-परक्कमाणं महयाहयहेसिग्रकिलकिलाइग्ररवेणं मणहरेणं पूरेंता अंवरं दिसाग्रो ग्र सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीग्रो हयरूवधारीणं देवाणं उत्तरिल्लं वाहं परिवहंतित्ति। गाहा—

सोलसदेवसहस्सा, हवंति चंदेसु चेव सूरेसु।
अट्ठेव सहस्साइं, एक्केक्कंमी गहविमाणे ॥१॥
चत्तारि सहस्साइं, णक्खत्तंमि ग्र हवंति इक्किक्के।
दो चेव सहस्साइं, ताराख्वेक्कमेक्कंमि ॥२॥

एवं सूरविमाणाणं (गहविमाणाणं णक्खत्तविमाणाणं) तारारूवविमाणाणं णवरं एस देवसंघाएत्ति।

[२००] भगवन्! चन्द्रविमान को कितने हजार देव परिवहन करते हैं?

गौतम! सोलह हजार देव परिवहन करते हैं।

चन्द्रविमान के पूर्व में श्वेत—सफेद वर्णयुक्त, सुभग—सौभाग्ययुक्त, जन-जन को प्रिय लगने वाले, सुप्रभ—सुष्ठु प्रभायुक्त, शंख के मध्यभाग, जमे हुए ठोस ग्रत्यन्त निर्मल दही, गाय के दूध के झाग तथा रजतनिकर—रजत-राशि या चाँदी के ढेर के सदृश विमल, उज्ज्वल दीप्तियुक्त, स्थिर—सुदृढ़, लष्ट—कान्त, प्रकोष्ठक—कलाइयों से युक्त, वृत्त—गोल, पीवर—पुष्ट, सुश्लिष्ट—परस्पर मिले हुए, विशिष्ट, तीक्ष्ण—तेज—तीखी दंष्ट्राग्रों—डाढों से प्रकटित मुखयुक्त, रक्तोत्पल—लाल कमल के सदृश मृदु सुकुमाल—ग्रत्यन्त कोमल तालु-जिह्वायुक्त, घनीभूत—ग्रत्यन्त गाढ़े या जमे हुए शहद की गुटिका—गोली सदृश पिंगल वर्ण के—लालिमा-मिश्रित भूरे रंग के नेत्रयुक्त, पीवर—उप-चित—मांसल, उत्तम जंघायुक्त, परिपूर्ण, विपुल—विस्तीर्ण—चौड़े कन्धों से युक्त, मृदु-मुलायम, विशद—उज्ज्वल, सूक्ष्म, प्रशस्त लक्षणयुक्त, उत्तम वर्णमय, कन्धों पर उगे ग्रयालों से शोभित उच्छ्रित—ऊपर किये हुए, सुनमित—ऊपर से सुन्दर रूप में झुके हुए, सुजात—सहज रूप में सुन्दर, ग्रास्फोटित—कभी-कभी भूमि पर फटकारी गई पूँछ से युक्त, वज्रमय नखयुक्त, वज्रमय दंष्ट्रायुक्त, वज्रमय दाँतों वाले, ग्रग्नि में तपाये हुए स्वर्णमय जिह्वा तथा तालु से युक्त, तपनीय स्वर्णनिर्मित योक्त्रक—रज्जू द्वारा विमान के साथ सुयोजित—भलीभाँति जुड़े हुए, कामगम—स्वेच्छापूर्वक गमन करने वाले, प्रीतिगम—उल्लास के साथ चलने वाले, मनोगम—मन की गति की ज्यों सत्वर गमन-शील, मनोरम—मन को प्रिय लगनेवाले, ग्रमितगति—ग्रत्यधिक तेज गतियुक्त, ग्रपरिमित बल, वीर्य, पुरुषार्थ तथा पराक्रम से युक्त, उच्च गम्भीर स्वर से सिंहनाद करते हुए, ग्रपनी मधुर, मनोहर ध्वनि द्वारा गगन-मण्डल को ग्रापूर्ण करते हुए, दिशाग्रों को सुशोभित करते हुए चार हजार सिंहरूपधारी देव विमान के पूर्वी पार्श्व को परिवहन किये चलते हैं।

चन्द्रविमान के दक्षिण में सफेद वर्णयुक्त, सौभाग्ययुक्त—जन-जन को प्रिय लगनेवाले, सुष्ठु प्रभायुक्त, शंख के मध्य भाग, जमे हुए ठोस ग्रत्यन्त निर्मल दही, गोदुग्ध के झाग तथा रजतराशि की

ज्यों विमल, उज्ज्वल दीप्तियुक्त, वज्रमय कुंभस्थल से युक्त, सुस्थित—सुन्दर संस्थानयुक्त, पीवर—परिपुष्ट, उत्तम, हीरों की ज्यों देदीप्यमान, वृत्त—गोल सूँड, उस पर उभरे हुए दीप्त, रक्त-कमल से प्रतीत होते बिन्दुओं से सुशोभित, उन्नत मुखयुक्त, तपनीय-स्वर्ण सदृश, विशाल, चंचल—सहज चपलतामय, इधर-उधर डोलते, निर्मल, उज्ज्वल कानों से युक्त, मधुवर्ण-शहद सदृश वर्णमय, भासमान—देदीप्यमान, स्निग्ध—चिकने, सुकोमल पलकयुक्त, निर्मल, त्रिवर्ण—लाल, पीले तथा सफेद रत्नों जैसे लोचनयुक्त, अभ्युद्गत—अति उन्नत, मल्लिका—चमेली के पुष्प की कली के समान धवल, सदृश-संस्थित— सम संस्थानमय, निर्व्रण—व्रणवर्जित, घाव से रहित, दृढ़, संपूर्णतः स्फटिकमय, सुजात—जन्मजात दोषरहित, मूसलवत्, पर्यन्त भागों पर उज्ज्वल मणिरत्न-निष्पन्न रुचिर चित्रांकनमय स्वर्ण-निर्मित कोशिकाओं में—खोलों में सन्निवेशित अग्रभागयुक्त दाँतों से सुशोभित, तपनीय स्वर्ण-सदृश, विशाल—बड़े-बड़े तिलक आदि पुष्पों से परिमण्डित, विविध मणिरत्न-सज्जित मूर्धायुक्त, गले में प्रस्थापित श्रेष्ठ भूषणों से विभूषित, कुंभस्थल द्विभाग-स्थित नीलमनिर्मित विचित्र दण्डान्वित, निर्मल वज्रमय, तीक्ष्ण, कान्त अंकुशयुक्त, तपनीय-स्वर्ण-निर्मित, सुबद्ध—सुन्दर रूप में बंधी कक्षा—हृदय-रज्जू—छाती पर, पेट पर बांधी जाने वाली रस्सी से युक्त, दर्प से—गर्व से उद्धत, उत्कट बलयुक्त, निर्मल, सघन मण्डलयुक्त, हीरकमय अंकुश द्वारा दी जाती ताड़ना से उत्पन्न ललित—श्रुतिसुखद शब्दयुक्त, विविध मणियों एवं रत्नों से सज्जित, दोनों ओर विद्यमान छोटी छोटी घण्टियों से समायुक्त, रजत-निर्मित, तिरछी बँधी रस्सी से लटकते घण्टायुगल—दो घण्टाओं के मधुर स्वर से मनोहर प्रतीत होते, सुन्दर, समुचित प्रमाणोपेत, वर्तुलाकार, सुनिष्पन्न, उत्तम लक्षणमय प्रशस्त, रमणीय बालों से शोभित पूँछ वाले, उपचित—मांसल, परिपूर्ण—पूर्ण अवयवमय, कच्छप की ज्यों उन्नत चरणों द्वारा लाघव-पूर्वक—द्रुतगति से कदम रखते, अंकरत्नमय नखों वाले, तपनीय-स्वर्णमय जिह्वा तथा तालुयुक्त, तपनीय-स्वर्ण-निर्मित रस्सी द्वारा विमान के साथ सुन्दर रूप में जुड़े हुए, यथेच्छ गमन करने वाले, उल्लास के साथ चलने वाले, मन की गति की ज्यों सत्वर गमनशील, मन को रमणीय लगने वाले, अत्यधिक तेज गतियुक्त, अपरिमित बल, वीर्य, पुरुषार्थ एवं पराक्रमयुक्त, उच्च, गम्भीर स्वर से गर्जना करते हुए, अपनी मधुर, मनोहर ध्वनि द्वारा आकाश को आपूर्ण करते हुए, दिशाओं को सुशोभित करते हुए चार हजार गजरूपधारी देव विमान के दक्षिणी पार्श्व को परिवहन करते हैं।

चन्द्र-विमान के पश्चिम में सफेद वर्णयुक्त, सौभाग्ययुक्त—जन-जन-प्रिय, सुन्दर प्रभायुक्त, चलचपल—इधर-उधर हिलते रहने के कारण अति चपल ककुद्—थूही से शोभित, घन—लोहमयी गदा की ज्यों निचित—ठोस, सुगठित, सुबद्ध—शिथिलतारहित, प्रशस्तलक्षणयुक्त, किञ्चित् झुके हुए होठों वाले. चंक्रमित—कुटिल गमन, टेढ़ी चाल, ललित—सविलास गति—सुन्दर, शानदार चाल, पुलित गति—आकाश को लांघ जाने जैसी उछाल पूर्ण चाल इत्यादि अत्यन्त चपल—त्वरापूर्ण, गर्वपूर्ण गति से शोभित, सन्नत-पार्श्व—नीचे की ओर सम्यक् रूप में नत हुए—झुके हुए देह के पार्श्व-भागों से युक्त, संगत-पार्श्व—देह-प्रमाण के अनुरूप पार्श्व-भागयुक्त, सुजात-पार्श्व—सुनिष्पन्न—सहजतया सुगठित पार्श्वयुक्त, पीवर—परिपुष्ट, वर्तित—गोल, सुसंस्थित—सुन्दर आकारमय कमर वाले, अवलम्ब-प्रालम्ब—लटकते हुए लम्बे, उत्तम लक्षणमय, प्रमाणयुक्त—समुचित प्रमाणोपेत, रमणीय, चामर—पूँछ के सघन, धवल केशों से शोभित, परस्पर समान खुरों से युक्त, सुन्दर पूँछ युक्त, समलिखित—समान-रूप में उत्कीर्ण किये गये से—कोरे गये से, तीक्ष्ण अग्रभाग मय, संगत—यथोचित मानोपेत सींगों से युक्त, तनुसूक्ष्म—अत्यन्त सूक्ष्म, सुनिष्पन्न, स्निग्ध—चिकने, मुलायम, लोम—देह के बालों की छवि से—

शोभा से युक्त, उपचित—पुष्ट, मांसल, विशाल, परिपूर्ण स्कन्ध-प्रदेश—कन्धों से सुन्दर प्रतीयमान, नीलम की ज्यों भासमान कटाक्ष —अर्धप्रेक्षित—आधी निगाह या तिरछी निगाह युक्त नेत्रों से शोभित, युक्तप्रमाण—यथोचित प्रमाणोपेत, विशिष्ट, प्रशस्त, रमणीय, गग्गरक नामक परिधान-विशेष—विशिष्ट वस्त्र से विभूषित, हिलने-डुलने से वजने जैसी ध्वनि से समवेत (गले में धारण किये) घरघरक संज्ञक आभरण-विशेष से परिमण्डित—सुशोभित गले से युक्त, वक्षःस्थल पर वैकक्षिक—तिर्यक् या तिरछे रूप में प्रस्थापित, विविध प्रकार की मणियों, रत्नों तथा स्वर्ण द्वारा निर्मित घण्टियों की श्रेणियों—कतारों से सुशोभित, वरघण्टा—उपर्युक्त घण्टियों से विशिष्टतर घण्टाओं की माला से उज्जवल श्री—शोभा धारण किये हुए, पद्म—सूर्यविकासी कमल, उत्पल—चन्द्रविकासी कमल तथा अखण्डित, सुरभित पुष्पों की मालाओं से विभूषित, वज्रमय खुरयुक्त, मणि-स्वर्ण आदि द्वारा विविध प्रकार से सुसज्ज, उक्त खुरों से ऊर्ध्ववर्ती विखुर युक्त, स्फटिकमय दाँत युक्त, तपनीय स्वर्णमय जिह्वायुक्त, तालुयुक्त, तपनीय स्वर्ण-निर्मित योत्रक—रस्सी द्वारा विमान में सुयोजित, यथेच्छ गमनशील, प्रीति या चैतसिक उल्लास के साथ चलनेवाले, मन की गति की ज्यों सत्वर गमन करने वाले, मन को प्रिय लगनेवाले, अत्यधिक तेजगति युक्त, उच्च, गंभीर स्वर से गर्जना करते हुए, अपनी मधुर मनोहर ध्वनि द्वारा आकाश को आपूर्ण करते हुए, दिशाओं को सुशोभित करते हुए चार हजार वृषभ-रूपधारी देव विमान के पश्चिमी पार्श्व का परिवहन करते हैं।

चन्द्र-विमान के उत्तर में श्वेतवर्णयुक्त, सौभाग्ययुक्त—जन-जन को प्रिय लगनेवाले, सुन्दर प्रभा युक्त, वेग एवं बल से आपूर्ण संवत्सर—समय—युवावस्था से युक्त, हरिमेलक तथा मल्लिका—चमेली की कलियों जैसी आँखों से युक्त, चंचुरित—कुटिल गमन—तिरछी चाल या तोते की चोंच की ज्यों वक्रता के साथ अपने पैर का उच्चताकरण—ऊर्ध्वीकरण, ललित—विलासपूर्ण गति, पुलित—एक विशिष्ट गति, चल—वायु के तुल्य अतीव चपल गतियुक्त, लंघन—गर्त आदि का अतिक्रमण—खड्डे आदि फांद जाना, वल्गन—उत्कूर्दन—ऊँचा कूदना, उछलना, धावन—शीघ्रतापूर्वक सीधा दौड़ना, धोरण—गति-चातुर्य—चतुराई से दौड़ना, त्रिपदी—भूमि पर तीन पैर रखना, जयिनी—गमनानन्तर जयवती—विजयशीला, जविनी—वेगवती—इन गतिक्रमों में शिक्षित, अभ्यस्त, गले में प्रस्थापित हिलते हुए रम्य, उत्तम आभूषणों से युक्त, नीचे की ओर सम्यक्तया नत हुए—झुके हुए देह के पार्श्व-भागों से युक्त, देह के अनुरूप प्रमाणोपेत पार्श्वभागयुक्त, सहजतया सुनिष्पन्न—सुगठित पार्श्वभागयुक्त, परिपुष्ट, गोल तथा सुन्दर संस्थानमय कमरयुक्त, लटकते हुए, लम्बे, उत्तम लक्षणमय, समुचित प्रमाणोपेत, रमणीय चामर—पूँछ के बालों से युक्त, अत्यन्त सूक्ष्म, सुनिष्पन्न, स्निग्ध—चिकने, मुलायम देह के रोमों की छवि से युक्त, मृदु—कोमल, विशद उज्ज्वल अथवा प्रत्येक रोम-कूप में एक-एक होने से परस्पर असम्मिलित—नहीं मिले हुए, पृथक्-पृथक् परिदृश्यमान, सूक्ष्म, उत्तम लक्षणयुक्त, विस्तीर्ण, केसरपालि—स्कन्धकेशश्रेणी—कन्धों पर उगे बालों की पंक्तियों से सुशोभित, ललाट पर धारण कराये हुए दर्पणाकार आभूषणों से युक्त, मुखमण्डक—मुखाभरण, अवचूल—लटकते लूँबे, चँवर एवं दर्पण के आकार के विशिष्ट आभूषणों से शोभित, परिमण्डित—सुसज्जित कटि—कमर युक्त, तपनीय—स्वर्णमय खुर, जिह्वा तथा तालुयुक्त, तपनीय-स्वर्णनिर्मित रस्सी द्वारा विमान से सुयोजित—सुन्दररूप में जुड़े हुए, इच्छानुरूप गतियुक्त (प्रीति तथा उल्लास पूर्वक चलनेवाले, मन के वेग की ज्यों चलने वाले), मन को रमणीय प्रतीत होने वाले, अत्यधिक तेज गतियुक्त, अपरिमित बल, वीर्य, पुरुषार्थ तथा पराक्रमयुक्त, उच्च स्वर से हिनहिनाहट करते हुए, अपनी मनोहर ध्वनि द्वारा गगन-मण्डल को आपूर्ण

करते हुए, दिशाओं को सुशोभित करते हुए चार हजार अश्वरूपधारी देव विमान के उत्तरी पार्श्व को परिवहन करते हैं।

चार-चार हजार सिंहरूपधारी देव, चार-चार हजार गजरूपधारी देव, चार-चार हजार वृषभरूपधारी देव तथा चार-चार हजार अश्वरूपधारी देव—कुल सोलह-सोलह हजार देव चन्द्र और सूर्य विमानों का परिवहन करते हैं।

ग्रहों के विमानों का दो-दो हजार सिंहरूपधारी देव, दो-दो हजार गजरूपधारी देव, दो-दो हजार वृषभरूपधारी देव और दो-दो हजार अश्वरूपधारी देव—कुल आठ-आठ हजार देव परिवहन करते हैं।

नक्षत्रों के विमानों का एक-एक हजार सिंहरूपधारी देव, एक-एक हजार गजरूपधारी देव, एक-एक हजार वृषभरूपधारी देव एवं एक-एक हजार अश्वरूपधारी देव—कुल चार-चार हजार देव परिवहन करते हैं।

तारों के विमानों का पाँच-पाँच सौ सिंहरूपधारी देव, पाँच-पाँच सौ गजरूपधारी देव, पाँच-पाँच सौ वृषभरूपधारी देव तथा पाँच-पाँच सौ अश्वरूपधारी देव—कुल दो-दो हजार देव परिवहन करते हैं।

उपर्युक्त चन्द्र-विमानों के वर्णन के अनुरूप सूर्य-विमान (ग्रह-विमानों, नक्षत्र-विमानों) और तारा-विमानों का वर्णन है। केवल देव-समूह में—परिवाहक देवों की संख्या में अंतर है।

विवेचन—चन्द्र आदि देवों के विमान किसी अवलम्बन के बिना स्वयं गतिशील होते हैं। किसी द्वारा परिवहन कर उन्हें चलाया जाना अपेक्षित नहीं है। देवों द्वारा सिंहरूप, गजरूप, वृषभरूप तथा अश्वरूप में उनका परिवहन किये जाने का जो यहाँ उल्लेख है, उस सन्दर्भ में ज्ञातव्य है—आभियोगिक देव तथाविध आभियोग्य नामकर्म के उदय से अपने समजातीय या हीनजातीय देवों के समक्ष अपना वैशिष्टय, सामर्थ्य, अतिशय ख्यापित करने हेतु सिंहरूप में, गजरूप में, वृषभरूप में तथा अश्वरूप में विमानों का परिवहन करते हैं।

यों वे चन्द्र, सूर्य आदि विशिष्ट, प्रभावक देवों के विमानों को लिये चलना प्रदर्शित कर अपने अहं की तुष्टि मानते हैं।

ज्योतिष्क देवों की गति : ऋद्धि

२०१. एतेसि णं भन्ते ! चंदिम-सूरिअ-गहगण-नक्खत्त-ताराख्वाणं कयरे सव्वसिग्घगई कयरे सव्वसिग्घतराए चेव ?

गोयमा ! चंदेहिंतो सूरा सव्वसिग्घगई, सूरेहिंतो गहा सिग्घगई, गहेहिंतो णक्खत्ता सिग्घगई, णक्खत्तेहिंतो ताराख्वा सिग्घगई, सव्वप्पगई चंदा, सव्वसिग्घगई ताराख्वा इति।

[२०१] भगवन् ! इन चन्द्रों, सूर्यों, ग्रहों, नक्षत्रों तथा तारों में कौन सर्वशीघ्रगति हैं—चन्द्र आदि सर्व ज्योतिष्क देवों की अपेक्षा शीघ्र गतियुक्त हैं ? कौन सर्वशीघ्रतर गतियुक्त हैं ?

गौतम ! चन्द्रों की अपेक्षा सूर्य शीघ्रगतियुक्त हैं, सूर्यों की अपेक्षा ग्रह शीघ्रगतियुक्त हैं, ग्रहों की अपेक्षा नक्षत्र शीघ्रगतियुक्त हैं तथा नक्षत्रों की अपेक्षा तारे शीघ्र गतियुक्त हैं।

इनमें चन्द्र सबसे अल्प या मन्द गतियुक्त हैं तथा तारे सबसे अधिक शीघ्र गतियुक्त हैं।

२०२. एतेसि णं भन्ते ! चंदिम-सूरिअ-गह-णक्खत्त-तारारूवाणं कयरे सव्वमहिड्डिआ कयरे सव्वप्पिड्डिआ ?

गोयमा ! तारारूवेहिंतो णक्खत्ता महिड्डिआ, णक्खत्तेहिंतो गहा महिड्डिआ, गहेहिंतो सूरिआ महिड्डिआ, सूरेहिंतो चंदा महिड्डिआ।

सव्वपिड्डिआ तारारूवा सव्वमहिड्डिआ चंदा।

[२०२] गौतम ! इन चन्द्रों, सूर्यों, ग्रहों, नक्षत्रों तथा तारों में कौन सर्वमहर्द्धिक हैं—सबसे अधिक ऋद्धिशाली हैं ? कौन सबसे अल्प—कम ऋद्धिशाली हैं ?

गौतम ! तारों से नक्षत्र अधिक ऋद्धिशाली हैं, नक्षत्रों से ग्रह अधिक ऋद्धिशाली हैं, ग्रहों से सूर्य अधिक ऋद्धिशाली हैं तथा सूर्यों से चन्द्र अधिक ऋद्धिशाली हैं।

तारे सबसे कम ऋद्धिशाली तथा चन्द्र सबसे अधिक ऋद्धिशाली हैं।

एक तारे से दूसरे तारे का अन्तर

२०३. जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे ताराए अ ताराए अ केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे—वाघाइए अ निव्वाघाइए अ।

निव्वाघाइए जहण्णेणं पंचधणुसयाइं उक्कोसेणं दो गाऊआइं। वाघाइए जहण्णेणं दोण्णि छावट्ठे जोअणसए, उक्कोसेणं बारस जोअणसहस्साइं दोण्णि अ बायाले जोअणसए तारारूवस्स २ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

[२०३] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत एक तारे से दूसरे तारे का कितना अन्तर—फासला बतलाया गया है ?

गौतम ! अन्तर दो प्रकार का है—१. व्याघातिक—जहाँ बीच में पर्वत आदि के रूप में व्याघात हो। २. निर्व्याघातिक—जहाँ बीच में कोई व्याघात न हो।

एक तारे से दूसरे तारे का निर्व्याघातिक अन्तर जघन्य ५०० धनुष तथा उत्कृष्ट २ गव्यूत बतलाया गया है।

एक तारे से दूसरे तारे का व्याघातिक अन्तर जघन्य २६६ योजन तथा उत्कृष्ट १२२४२ योजन बतलाया गया है।

ज्योतिष्क देवों की अग्रमहिषियाँ

२०४. चन्दस्स णं भंते ! जोइसिंदस्स जोइसरण्णो कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा—चन्दप्पभा, दोसिणाभा, अच्चिमाली, पभंकरा। तओ णं एगमेगाए देवीए चत्तारि २ देवीसहस्साइं परिवारो पण्णत्तो। पभू णं ताओ एगमेगा देवी अन्नं देवीसहस्सं विउव्वित्तए, एवामेव सपुव्ववरेणं सोलस देवीसहस्सा, सेत्तं तुडिए।

पहू णं भंते ! चंदे जोइसिंदे जोइसराया चंदवडेंसए विमाणे चन्दाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए तुडिएणं सद्धिं महयाहयणट्टगीअवाइअ जाव[1] दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

से केणट्ठेणं जाव[2] विहरित्तए ?

गोयमा ! चंदस्स णं जोइसिदस्स जोइसरण्णो चंदवडेंसए विमाणे चंदाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए माणवए चेइअखंभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूईओ जिणसकहाओ सन्निखित्ताओ चिट्ठंति ताओ णं चंदस्स अण्णेसिं च बहूणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ पज्जुवासणिज्जाओ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! णो पभुत्ति, पभू णं चंदे सभाए सुहम्माए चउहिं सामाणिअसाहस्सीहिं एवं जाव[3] दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए केवलं परिआरिद्धीए, णो चेव णं मेहुणवत्तिअं।

विजया १, वेजयंती २, जयंती ३, अपराजिआ ४—सव्वेहिं गहाईणं एआओ अग्गमहिसीओ, छावत्तरस्सवि गहसयस्स एआओ अग्गमहिसीओ वत्तव्वओ, इमाहि गाहाहिंति—

इंगालए विआलए लोहिअंके सणिच्छरे चेव।
आहुणिए पाहुणिए कणगसणामा य पंचेव ॥१॥
सोमे सहिए आसणे य कज्जोवए अ कव्वुरए।
अयकरए दुंदुभए संखसनामेवि तिण्णेव ॥२॥

एवं भाणियव्वं जाव[4] भावकेउस्स अग्गमहिसीओ त्ति।

---

१. देखें सूत्र संख्या १४२

२. देखें सूत्र संख्या १४२

३. देखें सूत्र संख्या ८९

४. तिण्णेव कंसनामा णीले रुप्पि अ हवंति चत्तारि।
भावतिलपुप्फवण्णे दग दगवण्णे य कायवधे य ॥३॥
इंदग्गिधूमकेऊ हरिपिंगलए बुहे अ सुक्के अ।
वहस्सइराहु अगत्थी माणवगे कामफासे अ ॥४॥
धुरए पमुहे वियडे विसंधि कप्पे तहा पयल्ले य।
जडियालए य अरुणे अग्गिलकाले महाकाले ॥५॥
सोत्थिअ सोवत्थिअए वद्धमाणग तहा पलंवे अ।
णिच्चालोए णिच्चुज्जोए सयंपभे चेव ओभासे ॥६॥
सेयंकर-खेमंकर-आभंकर-पभंकरे अ णायव्वो।
अरए विरए अ तहा असोग तह वीतसोगे य ॥७॥
विमल-वितत्थ-विवत्थे विसाल तह साल सुव्वए चेव।
अनियट्टी एगजडी अ होइ विजडी य बोधव्वे ॥८॥
कर-करिअ-राय-अग्गल बोधव्वे पुप्फ भावकेऊअ।
अट्ठासीई गहा खलु णायव्वा आणुपुव्वीए ॥९॥

— श्री जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र, शान्तिचन्द्रीया वृत्ति, पत्रांक ५३४-३५

[२०४] भगवन् ! ज्योतिष्क देवों के इन्द्र, ज्योतिष्क देवों के राजा चन्द्र के कितनी अग्रमहिषियाँ—प्रधान देवियाँ बतलाई गई हैं ?

गौतम ! चार अग्रमहिषियाँ बतलाई गई हैं—१. चन्द्रप्रभा, २. ज्योत्स्नाभा, ३. अर्चिमाली तथा ४. प्रभंकरा।

उनमें से एक-एक अग्रमहिषी का चार-चार हजार देवी-परिवार बतलाया गया है। एक-एक अग्रमहिषी अन्य सहस्र देवियों की विकुर्वणा करने में समर्थ होती है। यों विकुर्वणा द्वारा सोलह हजार देवियाँ निष्पन्न होती हैं। वह ज्योतिष्कराज चन्द्र का अन्तःपुर है।

भगवन् ! क्या ज्योतिष्केन्द्र, ज्योतिष्कराज चन्द्र चन्द्रावतंसक विमान में चन्द्रा राजधानी में सुधर्मा सभा में अपने अन्तःपुर के साथ—देवियों के साथ नाट्य, गीत, वाद्य आदि का आनन्द लेता हुआ दिव्य भोग भोगने में समर्थ होता है ?

गौतम ! ऐसा नहीं होता—ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र सुधर्मा सभा में अपने अन्तःपुर के साथ दिव्य भोग नहीं भोगता।

भगवन् ! वह दिव्य भोग क्यों—किस कारण नहीं भोगता ?

गौतम ! ज्योतिष्केन्द्र, ज्योतिष्कराज चन्द्र के चन्द्रावतंसक विमान में चन्द्रा राजधानी में सुधर्मा सभा में माणवक नामक चैत्यस्तंभ है। उस पर वज्रमय—हीरक-निर्मित गोलाकार सम्पुटरूप पात्रों में बहुत सी जिन-सक्थियाँ—जिनेन्द्रों की अस्थियाँ स्थापित हैं। वे चन्द्र तथा अन्य बहुत से देवों एवं देवियों के लिए अर्चनीय—पूजनीय तथा पर्युपासनीय हैं। इसलिए—उनके प्रति बहुमान के कारण आशातना के भय से अपने चार हजार सामानिक देवों से संपरिवृत चन्द्र सुधर्मा सभा में अपने अन्तःपुर के साथ दिव्य भोग नहीं भोगता। वह वहाँ केवल अपनी परिवार-ऋद्धि—यह मेरा अन्तःपुर है, परिचर है, मैं इनका स्वामी हूं—यों अपने वैभव तथा प्रभुत्व की सुखानुभूति कर सकता है, मैथुन-सेवन नहीं करता।

सब ग्रहों आदि[1] की १. विजया, २. वैजयन्ती, ३. जयन्ती तथा ४. अपराजिता नामक चार-चार अग्रमहिषियाँ हैं। यों १७६ ग्रहों की इन्हीं नामों की अग्रमहिषियाँ हैं।

गाथाएँ—ग्रह

१. अङ्गारक, २. विकालक, ३. लोहिताङ्क, ४. शनैश्चर, ५. आधुनिक, ६. प्राधुनिक, ७.कण, ८. कणक, ९. कणकणक, १०. कणवितानक, ११. कणसन्तानक, १२. सोम, १३. सहित, १४. आश्वासन, १५. कार्योपग, १६. कुर्बुरक, १७. अजकरक, १८. दुन्दुभक, १९. शंख, २०. शंखनाभ, २१. शंखवर्णाभ—यों भावकेतु[2] पर्यन्त ग्रहों का उच्चारण करना चाहिए। उन सबकी अग्रमहिषियाँ उपर्युक्त नामों की हैं।

---

१. यहाँ नक्षत्रों एवं तारों का भी ग्रहण है।

२. २२. कंस, २३. कंसनाभ, २४. कंसवर्णाभ, २५. नील, २६. नीलावभास, २७. रुप्पी, २८. रुप्यवभास, २९. भस्म, ३०. भस्मराशि, ३१. तिल, ३२. तिलपुष्पवर्ण, ३३, दक, ३४. दकवर्ण, ३५. काय, ३६. वन्ध्य, ३७. इन्द्राग्नि, ३८. धूमकेतु, ३९. हरि, ४०. पिङ्गलक, ४१. बुध, ४२. शुक्र, ४३. बृहस्पति, ४४. राहु,

देवों की काल-स्थिति

२०५. चंदविमाणे णं भंते ! देवाणं केवइअं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं पलिग्रोवमं वाससयसहस्समब्भहिअं। चंदविमाणे णं देवीणं जहण्णेणं चउभागपलिग्रोवमं उक्कोसेण ग्रद्धपलियोवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिमब्भहिअं।

सूरविमाणे देवाणं जहण्णेणं चउब्भागपलिओवमं उक्कोसेणं पलिग्रोवमं वाससहस्समब्भहियं। सूरविमाणे देवीणं जहण्णेणं चउब्भागपलिग्रोवमं उक्कोसेणं ग्रद्धपलिओमं पंचहिं वाससवएहिं ग्रब्भहियं।

गहविमाणे देवाणं जहण्णेणं चउब्भागपलिग्रोवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं। गहविमाणे देवीणं जहण्णेणं चउब्भागपलिग्रोवमं उक्कोसेणं ग्रद्धपलिग्रोवमं।

णक्खत्तविमाणे देवाणं जहण्णेणं चउब्भागपलिग्रोवमं उक्कोसेणं ग्रद्धपलिग्रोवमं। णक्खत्तविमाणे देवीणं जहण्णेणं चउब्भागपलिग्रोवमं उक्कोसेणं साहिअं चउब्भागपलिओवमं।

ताराविमाणे देवाणं जहण्णेणं ग्रट्ठभागपलिग्रोवमं उक्कोसेणं चउब्भागपलिओवमं। ताराविमाणे देवीणं जहण्णेणं अट्ठभागपलिग्रोवमं उक्कोसेणं साइरेगं ग्रट्ठभागपलिओवमं।

[२०५] भगवन् ! चन्द्र-विमान में देवों की स्थिति कितने काल की होती है ?

गौतम ! चन्द्र-विमान में देवों की स्थिति जघन्य—कमसे कम ¼ पल्योपम तथा उत्कृष्ट—अधिक से अधिक एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम होती है। चन्द्र-विमान में देवियों की स्थिति जघन्य ¼ पल्योपम तथा उत्कृष्ट—पचास हजार वर्ष अधिक अर्ध पल्योपम होती है।

सूर्य-विमान में देवों की स्थिति जघन्य ¼ पल्योपम तथा उत्कृष्ट एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम होती है। सूर्य-विमान में देवियों की स्थिति जघन्य ¼ पल्योपम तथा उत्कृष्ट पाँच सौ वर्ष अधिक अर्ध पल्योपम होती है।

ग्रह-विमान में देवों की स्थिति जघन्य ¼ पल्योपम तथा उत्कृष्ट एक पल्योपम होती है। ग्रह-विमान में देवियों की स्थिति जघन्य ¼ पल्योपम तथा उत्कृष्ट अर्ध पल्योपम होती है।

नक्षत्र-विमान में देवों की स्थिति जघन्य ¼ पल्योपम तथा उत्कृष्ट अर्ध पल्योपम होती है। नक्षत्र-विमान में देवियों की स्थिति जघन्य ¼ पल्योपम तथा उत्कृष्ट कुछ अधिक ¼ पल्योपम होती है।

---

४५. अगस्ति, ४६. माणवक, ४७. कामस्पर्श, ४८. धुरक, ४९. प्रमुख, ५०. विकट, ५१. विसन्धिकल्प, ५२. तथाप्रकल्प, ५३. जटाल, ५४. अरुण, ५५. अग्नि, ५६. काल, ५७. महाकाल, ५८. स्वस्तिक, ५९. सौवस्तिक ६०. वर्धमानक, ६१. तथाप्रलम्ब, ६२. नित्यालोक, ६३. नित्योद्योत, ६४. स्वयंप्रभ, ६५. अवभास, ६६. श्रेयस्कर, ६७. क्षेमङ्कर, ६८. आभङ्कर, ६९. प्रभङ्कर, ७०. बोद्धव्यअरजा, ७१. विरजा, ७२. तथा-अशोक, ७३. तथावीतशोक, ७४. विमल, ७५. वितत, ७६. विवस्त्र, ७७. विशाल, ७८. शाल, ७९. सुव्रत, ८०. अनिवृत्ति, ८१. एकजटी, ८२. द्विजटी, ८३. बोद्धव्यकर, ८४. करिक, ८५. राजा, ८६. अर्गल, ८७. बोद्धव्य पुष्पकेतु, ८८. भावकेतु। द्विगुणित करने पर ये १७६ होते हैं।

तारा-विमान में देवों की स्थिति जघन्य $\frac{1}{8}$ पल्योपम तथा उत्कृष्ट $\frac{1}{4}$ पल्योपम होती है। तारा-विमान में देवियों की स्थिति जघन्य $\frac{1}{8}$ पल्योपम तथा उत्कृष्ट कुछ अधिक $\frac{1}{8}$ पल्योपम होती है।

नक्षत्रों के अधिष्ठातृ-देवता

२०६. बह्मा विण्हू अ वसू, वरुणे अय वुड्ढी पूस आस जमे।
अग्गि पयावइ सोमे, सद्दे अदिती वहस्सई सप्पे ॥१॥
पिउ भगअज्जमसविआ, तट्ठा वाऊ तहेव इंदग्गी।
मित्ते इंदे निरुई, आऊ विस्सा य बोद्धव्वे ॥२॥

[२०६] नक्षत्रों के अधिदेवता—अधिष्ठातृ-देवता इस प्रकार हैं—

	नक्षत्र	अधिदेवता
१.	अभिजित्	ब्रह्मा
२.	श्रवण	विष्णु
३.	धनिष्ठा	वसु
४.	शतभिषक्	वरुण
५.	पूर्वभाद्रपदा	अज
६.	उत्तरभाद्रपदा	वृद्धि (अभिवृद्धि)
७.	रेवती	पूषा
८.	अश्विनी	अश्व
९.	भरणी	यम
१०.	कृत्तिका	अग्नि
११.	रोहिणी	प्रजापति
१२.	मृगशिर	सोम
१३.	आर्द्रा	रुद्र
१४.	पुनर्वसु	अदिति
१५.	पुष्य	बृहस्पति
१६.	अश्लेषा	सर्प
१७.	मघा	पिता
१८.	पूर्वफाल्गुनी	भग
१९.	उत्तरफाल्गुनी	अर्यमा
२०.	हस्त	सविता
२१.	चित्रा	त्वष्टा
२२.	स्वाति	वायु
२३.	विशाखा	इन्द्राग्नी
२४.	अनुराधा	मित्र

	नक्षत्र	अधिदेवता
२५.	ज्येष्ठा	इन्द्र
२६.	मूल	निर्ऋति
२७.	पूर्वाषाढा	आप
२८.	उत्तराषाढा	विश्वे (विश्वेदेव)

अल्प, बहु, तुल्य

२०७. एतेसि णं भन्ते ! चंदिमसूरिअगहणक्खत्ततारारूवाणं कयरे कयरे हिंतो अप्पा वा बहुआ वा तुल्ला वा विसेसाहिआ वा ?

गोयमा ! चंदिमसूरिआ दुवे तुल्ला सव्वत्थोवा, णक्खत्ता संखेज्जगुणा, गहा संखेज्जगुणा, तारारूवा संखेज्जगुणा इति ।

[२०७] भगवन् ! चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तथा ताराओं में कौन किनसे अल्प—कम, कौन किनसे बहुत, कौन किनके तुल्य—समान तथा कौन किनसे विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! चन्द्र और सूर्य तुल्य—समान हैं। वे सबसे स्तोक—कम हैं। उनकी अपेक्षा नक्षत्र संख्येय गुने—२८ गुने अधिक हैं। नक्षत्रों की अपेक्षा ग्रह संख्येय गुने—कुछ अधिक तीन गुने[1]—८८ गुने अधिक हैं। ग्रहों की अपेक्षा तारे संख्येय गुने—६६९७५ कोडाकोड[2] गुने अधिक हैं।

तीर्थंकरादि-संख्या

२०८. जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे जहण्णपए वा उक्कोसपए वा केवइआ तित्थयरा सव्वग्गेणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णपए चत्तारि उक्कोसपए चोत्तीसं तित्थयरा सव्वग्गेणं पण्णत्ता ।

जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे केवइआ जहण्णपए वा उक्कोसपए वा चक्कवट्टी सव्वग्गेणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णपदे चत्तारि उक्कोसपदे तीसं चक्कवट्टी सव्वग्गेणं पण्णत्ता इति, बलदेवा तत्तिआ चेव जत्तिआ चक्कवट्टी, वासुदेवावि तत्तिया चेवत्ति ।

जम्बुद्दीवे दीवे केवइआ णिहिरयणा सव्वग्गेणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिण्णि छलुत्तरा णिहिरयणसया सव्वग्गेणं पण्णत्ता,

जम्बुद्दीवे दीवे केवइआ णिहिरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ?

गोयमा ! जहण्णपए छत्तीसं उक्कोसपए दोण्णि सत्तरा णिहिरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ।

जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे केवइआ पंचिंदिअरयणसया सव्वग्गेणं पण्णत्ता ?

---

१. श्री जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र, शान्तिचन्द्रीया वृत्ति, पत्रांक ५३६

२. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र हिन्दी अनुवाद, श्री अमोलकऋषि, पृष्ठ ६१७

गोयमा ! दो दसुत्तरा पंचिदिग्ररयणसया सव्वग्गेणं पण्णत्ता।

जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे जहण्णपदे वा उक्कोसपदे वा केवइग्रा पंचिदिग्ररयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ?

गोयमा ! जहण्णपए अट्ठावीसं उक्कोसपए दोण्णि दसुत्तरा पंचिदिग्ररयणसया परिभोगत्ताए व्वमागच्छंति।

जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे केवइग्रा एगिंदिग्ररयणसया सव्वग्गेणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! दो दसुत्तरा एगिंदिग्ररयणसया सव्वग्गेणं पण्णत्ता।

जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे केवइग्रा एगिंदिग्ररयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छन्ति ?

गोयमा ! जहण्णपए अट्ठावीसं उक्कोसपए दोण्णि दसुत्तरा एगिंदिग्ररयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छन्ति।

[२०८] भगवन् ! जम्बूद्वीप में जघन्य—कम से कम तथा उत्कृष्ट—अधिक से अधिक समग्रतया कितने तीर्थंकर होते हैं ?

गौतम ! कम से कम चार तथा अधिक से अधिक चौतीस तीर्थंकर होते हैं।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में कम से कम तथा अधिक से अधिक कितने चक्रवर्ती होते हैं ?

गौतम ! कम से कम चार तथा अधिक से अधिक तीस चक्रवर्ती होते हैं।

जितने चक्रवर्ती होते हैं, उतने ही बलदेव होते हैं, वासुदेव भी उतने ही होते हैं।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में निधि-रत्न—उत्कृष्ट निधान कितने होते हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप में निधि-रत्न ३०६ होते हैं।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने सौ निधि-रत्न यथाशीघ्र परिभोग-उपयोग में आते हैं ?

गौतम ! कम से कम ३६ तथा अधिक से अधिक २७० निधि-रत्न यथाशीघ्र परिभोग-उपयोग में आते हैं।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने सौ पञ्चेन्द्रिय-रत्न होते हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप में पञ्चेन्द्रिय-रत्न २१० होते हैं।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में कम से कम और अधिक से अधिक कितने पञ्चेन्द्रिय-रत्न यथाशीघ्र परिभोग-उपयोग में आते हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप में कम से कम २८ और अधिक से अधिक २१० पञ्चेन्द्रिय-रत्न यथाशीघ्र परिभोग-उपयोग में आते हैं।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने सौ एकेन्द्रिय रत्न होते हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप में २१० एकेन्द्रिय-रत्न होते हैं।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने सौ एकेन्द्रिय-रत्न यथाशीघ्र परिभोग—उपयोग में आते हैं ?

गौतम ! कम से कम २८ तथा अधिक से अधिक २१० एकेन्द्रिय-रत्न यथाशीघ्र परिभोग—उपयोग में आते हैं।

विवेचन—ज्ञाप्य है कि यहाँ निधि-रत्नों, पञ्चेन्द्रिय-रत्नों तथा एकेन्द्रिय-रत्नों का वर्णन चक्रवर्तियों की अपेक्षा से है।

जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र के बत्तीस विजयों में बत्तीस तथा भरतक्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र में एक-एक तीर्थंकर जब होते हैं तब तीर्थंकरों की उत्कृष्ट संख्या ३४ होती है।

जब जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में शीता महानदी के दक्षिण और उत्तर भाग में एक-एक और शीतोदा महानदी के दक्षिण और उत्तर भाग में एक-एक चक्रवर्ती होता है, तब जघन्य चार चक्रवर्ती होते हैं।

जब महाविदेह के ३२ विजयों में से अट्ठाईस विजयों में २८ चक्रवर्ती और भरत में एक एवं ऐरवत में एक चक्रवर्ती होता है तब समग्र जम्बूद्वीप में उनकी उत्कृष्ट संख्या तीस होती है।

स्मरण रहे कि जिस समय २८ चक्रवर्ती २८ विजयों में होते हैं उस समय शेष चार विजयों में चार वासुदेव होते हैं और जहाँ वासुदेव होते हैं वहाँ चक्रवर्ती नहीं होते। अतएव चक्रवर्तियों की उत्कृष्ट संख्या जम्बूद्वीप में तीस ही बतलाई गई है।

चक्रवर्तियों की जघन्य संख्या की संगति तीर्थंकरों की संख्या के समान जान लेना चाहिए।

जब चक्रवर्तियों की उत्कृष्ट संख्या तीस होती है तब वासुदेवों की जघन्य संख्या चार होती है और जब वासुदेवों की उत्कृष्ट संख्या ३० होती है तब चक्रवर्ती की संख्या ४ होती है।

बलदेवों की संख्या की संगति वासुदेवों के समान जान लेना चाहिए क्योंकि ये दोनों सहचर होते हैं।

प्रत्येक चक्रवर्ती के नौ-नौ निधान होते हैं। उनके उपयोग में आने की जघन्य और उत्कृष्ट संख्या चक्रवर्तियों की जघन्य और उत्कृष्ट संख्या पर आधृत है। निधानों और रत्नों की संख्या के सम्बन्ध में भी यही जानना चाहिए।

प्रत्येक चक्रवर्ती के नौ निधान होते हैं। नौ को चौतीस से गुणित करने पर ३०६ संख्या आती है। किन्तु उनमें से चक्रवर्तियोंके उपयोग में आने वाले निधान जघन्य छत्तीस और अधिक से अधिक २७० हैं।

चक्रवर्ती के सात पंचेन्द्रियरत्न इस प्रकार हैं—१. सेनापति, २. गाथापति, ३. वर्द्धकी, ४. पुरोहित, ५. गज, ६. अश्व, ७. स्त्रीरत्न।

एकेन्द्रिय रत्न—१. चक्ररत्न, २. छत्ररत्न, ३. चर्मरत्न, ४. दण्डरत्न, ५. असिरत्न, ६. मणि-रत्न, ७. काकणीरत्न।

जम्बूद्वीप का विस्तार

२०६. जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे केवइअं आयाम-विक्खंभेणं, केवइअं परिक्खेवेणं, केवइअं उव्वेहेणं, केवइअं उद्धं उच्चत्तेणं, केवइअं सव्वग्गेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! जम्बुद्दीवे दीवे एगं जोअण-सयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि जोयण-सय-सहस्साइं सोलस य सहस्साइं दोण्णि अ सत्तावीसे जोअणसए तिण्णि अ कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं

तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहिअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते। एगं जोअण-सहस्सं उव्वेहेणं, णवणउतिं जोअण-सहस्साइं साइरेगाइं उद्धं उच्चत्तेणं, साइरेगं जोअण-सय-सहस्सं सव्वग्गेणं पण्णत्ते।

[२०९] भगवन् ! जम्बूद्वीप की लम्बाई-चौड़ाई, परिधि, भूमिगत गहराई, ऊँचाई तथा भूमिगत गहराई और ऊँचाई—दोनों समग्रतया कितनी बतलाई गई है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप की लम्बाई-चौड़ाई १,००,००० योजन तथा परिधि ३,१६,२२७ योजन ३ कोश १२८ धनुष कुछ अधिक १३½ अंगुल बतलाई गई है। इसकी भूमिगत गहराई १००० योजन, ऊँचाई कुछ अधिक ९९,००० योजन तथा भूमिगत गहराई और ऊँचाई दोनों मिलाकर कुछ अधिक १,००,००० योजन है।

जम्बूद्वीप : शाश्वत : अशाश्वत

२१०. जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे किं सासए असासए ?

गोयमा ! सिअ सासए, सिअ असासए।

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ—सिअ सासए, सिअ असासए ?

गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासए, वण्ण-पज्जवेहिं, गंध-पज्जवेहिं, रस-पज्जवेहिं फास-पज्जवेहिं असासए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ सिअ सासए, सिअ असासए।

जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! ण कयावि णासि, ण कयावि णत्थि, ण कयावि ण भविस्सइ। भुविं च, भवइ अ, भविस्सइ अ। धुवे, णिअए, सासए, अव्वए, अवट्ठिए, णिच्चे जम्बुद्दीवे दीवे पण्णत्ते।

[२१०] भगवन् ! जम्बूद्वीप शाश्वत है या अशाश्वत है ?

गौतम ! स्यात्—कथंचित् शाश्वत है, स्यात्—कथंचित् अशाश्वत है।

भगवन् ! वह स्यात् शाश्वत है, स्यात् अशाश्वत है—ऐसा क्यों कहा जाता है ?

गौतम ! द्रव्य रूप से—द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से वह शाश्वत है, वर्णपर्याय, गन्धपर्याय, रसपर्याय एवं स्पर्शपर्याय की दृष्टि से—पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से वह अशाश्वत है।

गौतम ! इसी कारण कहा जाता है—वह स्यात् शाश्वत है, स्यात् अशाश्वत है।

भगवन् ! जम्बूद्वीप काल की दृष्टि से कब तक रहता है ?

गौतम ! यह कभी—भूतकाल में नहीं था, कभी—वर्तमान काल में नहीं है, कभी—भविष्यकाल में नहीं होगा—ऐसी बात नहीं है। यह भूतकाल में था, वर्तमान काल में है और भविष्यकाल में रहेगा।

जम्बूद्वीप ध्रुव, नियत, शाश्वत, अव्यय, अवस्थित तथा नित्य कहा गया है।

जम्बूद्वीप का स्वरूप

२११. जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे किं पुढवि-परिणामे, आउ-परिणामे, जीव-परिणामे, पोग्गल-परिणामे ?

गोयमा ! पुढवि-परिणामेवि, आउ-परिणामेवि, जीव-परिणामेवि, पोग्गल-परिणामेवि ।

जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे सव्व-पाणा, सव्व-जीवा, सव्व-भूआ, सव्व-सत्ता, पुढविकाइअत्ताए, आउकाइअत्ताए, तेउकाइअत्ताए, वाउकाइअत्ताए, वणस्सइकाइअत्ताए उववण्णपुव्वा ?

हंता गोयमा ! असइं अहवा अणंतखुत्तो ।

[२११] भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप पृथ्वी-परिणाम—पृथ्वीपिण्डमय है, क्या अप्-परिणाम—जलपिण्डमय है, क्या जीव-परिणाम—जीवमय है, क्या पुद्गलपरिणाम—पुद्गल-स्कन्धमय है ?

गौतम ! पर्वतादियुक्त होने से पृथ्वीपिण्डमय भी है, नदी, झील आदि युक्त होने से जलपिण्डमय भी है, वनस्पति आदि युक्त होने से जीवमय भी हैं, मूर्त होने से पुद्गलपिण्डमय भी है ।

भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप में सर्वप्राण—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय जीव, सर्वजीव—पञ्चेन्द्रिय जीव, सर्वभूत—वृक्ष (वनस्पति जीव), सर्वसत्त्व—पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु के जीव—ये सब पृथ्वीकायिक के रूप में, अप्कायिक के रूप में, तेजस्कायिक के रूप में, वायुकायिक के रूप में तथा वनस्पतिकायिक के रूप में पूर्वकाल में उत्पन्न हुए हैं ?

हाँ, गौतम ! वे असंकृत्—अनेक वार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं ।

जम्बूद्वीप : नाम का कारण

२१२. से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ जम्बुद्दीवे दीवे ?

गोयमा ! जम्बुद्दीवे णं दीवे तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे जम्बू-रुक्खा, जम्बू-वणा, जम्बू-वणसंडा, णिच्चं कुसुमिआ (णिच्चं माइआ, णिच्चं लवइआ, णिच्चं थवइआ, णिच्चं गुलइआ, णिच्चं गोच्छिआ, णिच्चं जमलिआ, णिच्चं जुवलिया, णिच्चं विणमिआ, णिच्चं पणमिआ, णिच्चं कुसुमिअ-माइअ-लवइअ-थवइअ-गुलइअ-गोच्छिअ-जमलिअ-जुवलिअ-विणमिअ-पणमिअ-सुविभत्त-) पिंडिम-मंजरि-वडेंसगधरा सिरीए अईव उवसोभेमाणा चिट्ठंति ।

जम्बूए सुदंसणाए अणाढिए णामं देवे महिड्ढिए जाव[1] पलिओवमट्ठिइए परिवसइ । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ जम्बुद्दीवे दीवे इति ।

[२१२] भगवन् ! जम्बूद्वीप 'जम्बूद्वीप' क्यों कहलाता है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में स्थान-स्थान पर बहुत से जम्बू वृक्ष हैं, जम्बू वृक्षों से आपूर्ण वन हैं, वन-खण्ड हैं—जहाँ प्रमुखतया जम्बू वृक्ष हैं, कुछ और भी तरु मिले-जुले हैं । वहाँ वनों तथा वन-खण्डों में वृक्ष सदा—सब ऋतुओं में फूलों से लदे रहते हैं । (वे मंजरियों, पत्तों, फूलों के

---

१. देखें सूत्र-संख्या १४

गुच्छों, गुल्मों—लता-कुंजों तथा पत्तों के गुच्छों से युक्त रहते हैं। कई ऐसे हैं, जो सदा समश्रेणिक रूप में—एक पंक्ति में स्थित हैं। कई ऐसे हैं, जो सदा युगल रूप में—दो-दो की जोड़ी के रूप में विद्यमान हैं। कई ऐसे हैं, जो पुष्पों एवं फलों के भार से नित्य विनमित—बहुत झुके हुए हैं, प्रणमित—विशेष रूप से अभिनमित—नमे हुए हैं। कई ऐसे हैं, जो ये सभी विशेषताएँ लिये हैं।) वे अपनी सुन्दर लुम्बियों तथा मञ्जरियों के रूप में मानो शिरोभूषण—कलंगियाँ धारण किये रहते हैं। वे अपनी श्री—कान्ति द्वारा अत्यन्त शोभित होते हुए स्थित हैं।

जम्बू सुदर्शना पर परम ऋद्धिशाली, पल्योपम-आयुष्ययुक्त अनाहत नामक देव निवास करता है।

गौतम ! इसी कारण वह (द्वीप) जम्बूद्वीप कहा जाता है।

उपसंहार : समापन

२१३. तए णं समणे भगवं महावीरे मिहिलाए णयरीए माणिभद्दे चेइए बहूणं समणाणं, बहूणं समणीणं, बहूणं सावयाणं, बहूणं सावियाणं, बहूणं देवाणं, बहूणं देवीणं मज्झगए एवमाइक्खइ, एवं भासइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ जम्बूदीवपण्णत्ती णामत्ति अज्जो ! अज्झयणे अट्ठं च हेउं च पसिणं च कारणं च वागरणं च भुज्जो २ उवदंसेइ त्ति बेमि।

॥ जंबुद्दीवपण्णत्ती समत्ता ॥

[२१३] सुधर्मा स्वामी ने अपने अन्तेवासी जम्बू को सम्बोधित कर कहा—आर्य जम्बू ! मिथिला नगरी के अन्तर्गत मणिभद्र चैत्य में बहुत-से श्रमणों, बहुत-सी श्रमणियों, बहुत-से श्रावकों, बहुत-सी श्राविकाओं, बहुत-से देवों, बहुत-सी देवियों की परिषद् के बीच श्रमण भगवान् महावीर ने शस्त्रपरिज्ञादि की ज्यों श्रुतस्कन्धादि के अन्तर्गत जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति नामक स्वतन्त्र अध्ययन का आख्यान किया—वाच्यमात्र-कथन पूर्वक वर्णन किया, भाषण किया—विशेष-वचन-कथन पूर्वक प्रतिपादन किया—व्यक्त पर्याय-वचन द्वारा निरूपण किया, प्ररूपण किया—उपपत्ति या युक्तिपूर्वक व्याख्यात किया। विस्मरणशील श्रोतृवृन्द पर अनुग्रह कर अर्थ—अभिप्राय, तात्पर्य, हेतु—निमित्त, प्रश्न—शिष्य द्वारा जिज्ञासित, पृष्ट अर्थ के प्रतिपादन, कारण तथा व्याकरण—अपृष्टोत्तर—नहीं पूछे गये विषय में उत्तर, स्पष्टीकरण द्वारा प्रस्तुत शास्त्र का बार बार उपदेश किया—विवेचन किया।

॥ सप्तम वक्षस्कार समाप्त ॥

॥ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति समाप्त ॥

परिशिष्ट—१

गाथाओं के अक्षरानुक्रमी संकेत

□

परिशिष्ट—२

स्थलानुक्रम

□

व्यक्तिनामानुक्रम

□

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमों में जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल में स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियों में भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायों का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थों का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या संयुक्त होने के कारण, इनका भी आगमों में अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अंतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, तं जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, विज्जुते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, तं जहा—अट्ठी, मंसं, सोणिते, असुतिसामंते, सुसाणसामंते, चंदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्गसूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झायं करित्तए, तं जहा—आसाढपाडिवए, इंदमहपाडिवए, कत्तिअपाडिवए सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, चउहिं संझाहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पडिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीण वा, चाउक्कालं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पुव्वण्हे अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्गसूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्रपाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए हैं, जिनका संक्षेप में निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. उल्कापात-तारापतन—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

२. दिग्दाह—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा में आग सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

३. गर्जित—बादलों के गर्जन पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४. विद्युत—बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

किन्तु गर्जन और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास में नहीं मानना चाहिए। क्योंकि वह

गर्जन और विद्युत् प्राय: ऋतु-स्वभाव से ही होता है। अतः आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नहीं माना जाता।

५. **निर्घात**—बिना बादल के आकाश में व्यन्तरादिकृत घोर गर्जना होने पर, या बादलों सहित आकाश में कड़कने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६. **यूपक**—शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनों प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

७. **यक्षादीप्त**—कभी किसी दिशा में बिजली चमकने जैसा, थोड़े थोड़े समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत: आकाश में जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

८. **धूमिका-कृष्ण**—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघों का गर्भमास होता है। इसमें धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पड़ती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुंध पड़ती रहे, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

९. **मिहिकाश्वेत**—शीतकाल में श्वेत वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१०. **रज-उद्घात**—वायु के कारण आकाश में चारों ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के हैं।

औदारिक शरीर सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३ **हड्डी, मांस और रुधिर**—पंचेन्द्रिय तिर्यंच की हड्डी, मांस और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ, तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस-पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओं के होने पर अस्वाध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि, मांस और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन-रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एवं बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमश: सात एवं आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. **अशुचि**—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. **श्मशान**—श्मशानभूमि के चारों ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. **चन्द्रग्रहण**—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

१७. **सूर्यग्रहण**—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश: आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन—किसी बड़े मान्य राजा अथवा राष्ट्रपुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसंस्कार न हो, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो, तब तक शनैः शनैः स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओं में परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक और उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नहीं करें।

२०. औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पंचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पड़ा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पड़ा हो तो स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये हैं।

२१-२८. चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा—आषाढ-पूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओं के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं। इनमें स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२. प्रातः, सायं, मध्याह्न और अर्धरात्रि—प्रातः सूर्य उगने से एक घड़ी पहिले तथा एक घड़ी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घड़ी पहले तथा एक घड़ी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर में एक घड़ी आगे और एक घड़ी पीछे एवं अर्धरात्रि में भी एक घड़ी आगे तथा एक घड़ी पीछे स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

□□

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१. श्री सेठ मोहनमलजी चोरड़िया, मद्रास
२. श्री गुलाबचन्दजी मांगीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
३. श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
४. श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरड़िया, बैंगलोर
५. श्री प्रेमराजजी भंवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
६. श्री एस. किशनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
७. श्री कंवरलालजी बैताला, गोहाटी
८. श्री सेठ खींवराजजी चोरड़िया, मद्रास
९. श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास
१०. श्री एस. बादलचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
११. श्री जे. दुलीचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१२. श्री एस. रतनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१३. श्री जे. अन्नराजजी चोरड़िया, मद्रास
१४. श्री एस. सायरचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१५. श्री आर. शान्तिलालजी उत्तमचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१६. श्री सिरेमलजी हीराचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१७. श्री जे. हुक्मीचन्दजी चोरड़िया, मद्रास

स्तम्भ सदस्य

१. श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
२. श्री जसराजजी गणेशमलजी संचेती, जोधपुर
३. श्री तिलोकचंदजी सागरमलजी संचेती, मद्रास
४. श्री पूसालालजी किस्तूरचंदजी सुराणा, कटंगी
५. श्री आर. प्रसन्नचन्दजी चोरड़िया मद्रास
६. श्री दीपचन्दजी बोकड़िया, मद्रास
७. श्री मूलचन्दजी चोरड़िया, कटंगी
८. श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
९. श्री मांगीलालजी मिश्रीलालजी संचेती, दुर्ग

संरक्षक

१. श्री बिरदीचंदजी प्रकाशचंदजी तलेसरा, पाली
२. श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा, पाली
३. श्री प्रेमराजजी जतनराजजी महता, मेड़ता सिटी
४. श्री श० जड़ावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
५. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपड़ा, ब्यावर
६. श्री मोहनलालजी नेमीचंदजी ललवाणी, चांगाटोला
७. श्री दीपचंदजी चन्दनमलजी चोरड़िया, मद्रास
८. श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चांगाटोला
९. श्रीमती सिरेकुँवर बाई धर्मपत्नी स्व. श्री सुगनचंदजी झामड़, मदुरान्तकम्
१०. श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (K.G.F.) जाड़न
११. श्री थानचंदजी मेहता, जोधपुर
१२. श्री भैरुदानजी लाभचंदजी सुराणा, नागौर
१३. श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
१४. श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया, ब्यावर
१५. श्री इन्द्रचंदजी बैद, राजनांदगांव
१६. श्री रावतमलजी भीकमचंदजी पगारिया, बालाघाट
१७. श्री गणेशमलजी धर्मीचन्दजी कांकरिया, टंगला
१८. श्री सुगनचन्दजी बोकड़िया, इन्दौर
१९. श्री हरकचंदजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२०. श्री रघुनाथमलजी लिखमीचंदजी लोढ़ा, चांगाटोला
२१. श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चांगाटोला

२२. श्री सागरमलजी नोरतमलजी पींचा, मद्रास
२३. श्री मोहनराजजी मुकनचन्दजी बालिया, अहमदाबाद
२४. श्री केशरीमलजी जंवरीलालजी तलेसरा, पाली
२५. श्री रतनचंदजी उत्तमचंदजी मोदी, ब्यावर
२६. श्री धर्मीचंदजी भागचंदजी बोहरा, झूंठा
२७. श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढ़ा, डोंडीलोहारा
२८. श्री गुणचंदजी दलीचंदजी कटारिया, बेल्लारी
२९. श्री मूलचंदजी सुजानमलजी संचेती, जोधपुर
३०. श्री सी० अमरचंदजी बोथरा, मद्रास
३१. श्री भंवरीलालजी मूलचंदजी सुराणा, मद्रास
३२. श्री बादलचंदजी जुगराजजी मेहता, इन्दौर
३३. श्री लालचंदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
३४. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपड़ा, अजमेर
३५. श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बैंगलोर
३६. श्री भंवरीमलजी चोरड़िया, मद्रास
३७. श्री भंवरलालजी गोठी, मद्रास
३८. श्री जालमचंदजी रिखबचंदजी बाफना, आगरा
३९. श्री घेवरचंदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
४०. श्री जबरचंदजी गेलड़ा, मद्रास
४१. श्री जड़ावमलजी सुगनचंदजी, मद्रास
४२. श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४३. श्री चेनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
४४. श्री लूणकरणजी रिखबचंदजी लोढ़ा, मद्रास
४५. श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कोप्पल

सहयोगी सदस्य

१. श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेड़ता सिटी
२. श्रीमती छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
३. श्री पूनमचंदजी नाहटा, जोधपुर
४. श्री भंवरलालजी विजयराजजी कांकरिया, विल्लीपुरम्
५. श्री भंवरलालजी चौपड़ा, ब्यावर
६. श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर
७. श्री बी. गजराजजी बोकड़िया, सेलम
८. श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी कांठेड, पाली
९. श्री के. पुखराजजी बाफणा, मद्रास
१०. श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
११. श्री मोहनलालजी मंगलचंदजी पगारिया, रायपुर
१२. श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१३. श्री भंवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१४. श्री उत्तमचंदजी मांगीलालजी, जोधपुर
१५. श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१६. श्री सुमेरमलजी मेड़तिया, जोधपुर
१७. श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टांटिया, जोधपुर
१८. श्री उदयराजजी पुखराजजी संचेती, जोधपुर
१९. श्री बादरमलजी पुखराजजी बंट, कानपुर
२०. श्रीमती सुन्दरबाई गोठी W/o श्री ताराचन्दजी गोठी, जोधपुर
२१. श्री रायचंदजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२. श्री घेवरचंदजी रूपराजजी, जोधपुर
२३. श्री भंवरलालजी माणकचंदजी सुराणा, मद्रास
२४. श्री जंवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
२५. श्री माणकचन्दजी किशनलालजी, मेड़तासिटी
२६. श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
२७. श्री जसराजजी जंवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
२८. श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
२९. श्री नेमीचंदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
३०. श्री ताराचंदजी केवलचंदजी कर्णावट, जोधपुर
३१. श्री आसूमल एण्ड कं०, जोधपुर
३२. श्री पुखराजजी लोढ़ा, जोधपुर
३३. श्रीमती सुगनीबाई W/o श्री मिश्रीलालजी सांड, जोधपुर
३४. श्री बच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
३५. श्री हरकचन्दजी मेहता, जोधपुर
३६. श्री देवराजजी लाभचंदजी मेड़तिया, जोधपुर
३७. श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
३८. श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टांटिया जोधपुर
३९. श्री मांगीलालजी चोरड़िया, कुचेरा

४०. श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४१. श्री ओकचंदजी हेमराज जी सोनी, दुर्ग
४२. श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
४३. श्री घीसूलालजी लालचंदजी पारख, दुर्ग
४४. श्री पुखराजजी बोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट कं.) जोधपुर
४५. श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
४६. श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, बैंगलोर
४७. श्री भंवरलालजी मूथा एण्ड सन्स, जयपुर
४८. श्री लालचंदजी मोतीलालजी गादिया, बैंगलोर
४९. श्री भंवरलालजी नवरत्नमलजी सांखला, मेट्टूपालियम
५०. श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
५१. श्री आसकरणजी जसराज जी पारख, दुर्ग
५२. श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
५३. श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेड़तासिटी
५४. श्री घेवरचंदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
५५. श्री मांगीलालजी रेखचंदजी पारख, जोधपुर
५६. श्री मुन्नीलालजी मूलचंदजी गुलेच्छा, जोधपुर
५७. श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५८. श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेड़ता सिटी
५९. श्री भंवरलालजी रिखबचंदजी नाहटा, नागौर
६०. श्री मांगीलालजी प्रकाशचन्दजी रूणवाल, मैसूर
६१. श्री पुखराजजी बोहरा, पीपलिया कलां
६२. श्री हरकचंदजी जुगराजजी बाफना, बैंगलोर
६३. श्री चन्दनमलजी प्रेमचंदजी मोदी, भिलाई
६४. श्री भींवराजजी बाघमार, कुचेरा
६५. श्री तिलोकचंदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
६६. श्री विजयलालजी प्रेमचंदजी गुलेच्छा, राजनांदगाँव
६७. श्री रावतमलजी छाजेड़, भिलाई
६८. श्री भंवरलालजी डूंगरमलजी कांकरिया, भिलाई
६९. श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
७०. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसंघ, दल्ली-राजहरा
७१. श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी बाफणा, ब्यावर
७२. श्री गंगारामजी इन्द्रचंदजी बोहरा, कुचेरा
७३. श्री फतेहराजजी नेमीचंदजी कर्णावट, कलकत्ता
७४. श्री बालचंदजी थानचन्दजी भुरट, कलकत्ता
७५. श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७६. श्री जंवरीलालजी शांतिलालजी सुराणा, बोलाराम
७७. श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
७८. श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
७९. श्री माणकचंदजी रतनलालजी मुणोत, टंगला
८०. श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढ़ा, ब्यावर
८१. श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गौहाटी
८२. श्री पारसमलजी महावीरचंदजी बाफना, गोठन
८३. श्री फकीरचंदजी कमलचंदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
८४. श्री माँगीलालजी मदनलालजी चोरड़िया, भैरूंदा
८५. श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
८६. श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जंवरीलालजी कोठारी, गोठन
८७. श्री सरदारमलजी एण्ड कम्पनी, जोधपुर
८८. श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
८९. श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९०. श्री इन्द्रचन्दजी मुकनचन्दजी, इन्दौर
९१. श्री भंवरलालजी बाफणा, इन्दौर
९२. श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
९३. श्री बालचन्दजी अमरचन्दजी मोदी, ब्यावर
९४. श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भंडारी
९५. श्रीमती कमलाकंवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व. पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६. श्री अखेचंदजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
९७. श्री सुगनचन्दजी संचेती, राजनांदगाँव

९८. श्री प्रकाशचंदजी जैन, नागौर
९९. श्री कुशालचंदजी रिखबचंदजी सुराणा, बोलारम
१००. श्री लक्ष्मीचंदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
१०१. श्री गूदड़मलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२. श्री तेजराज जी कोठारी, मांगलियावास
१०३. श्री सम्पतराजजी चोरड़िया, मद्रास
१०४. श्री अमरचंदजी छाजेड़, पादु बड़ी
१०५. श्री जुगराजजी धनराजजी बरमेचा, मद्रास
१०६. श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७. श्रीमती कंचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
१०८. श्री दुलेराजजी भंवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१०९. श्री भंवरलालजी मांगीलालजी बेताला, डेह
११०. श्री जीवराजजी भंवरलालजी, चोरड़िया भैंरूंदा
१११. श्री माँगीलालजी शांतिलालजी रूणवाल, हरसोलाव
११२. श्री चांदमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३. श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४. श्री भूरमलजी दुल्लीचंदजी बोकड़िया, मेड़ता सिटी
११५. श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
११६. श्रीमती रामकुंवरबाई धर्मपत्नी श्री चांदमलजी लोढ़ा, बम्बई
११७. श्री माँगीलालजी उत्तमचंदजी बाफणा, बैंगलोर
११८. श्री सांचालालजी बाफणा, औरंगाबाद
११९. श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर) मद्रास
१२०. श्रीमती अनोपकुंवर धर्मपत्नी श्री चम्पालालजी संघवी, कुचेरा
१२१. श्री सोहनलालजी सोजतिया, थांवला
१२२. श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३. श्री भीकमचंदजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
१२४. श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड़, सिकन्दराबाद
१२५. श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया, सिकन्दराबाद
१२६. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, बगड़ीनगर
१२७. श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, बिलाड़ा
१२८. श्री टी. पारसमलजी चोरड़िया, मद्रास
१२९. श्री मोतीलालजी आसूलालजी बोहरा एण्ड कं., बैंगलोर
१३०. श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड़ □□

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

कार्यकारिणी समिति

आगमप्रकाशन समिति द्वारा

अद्यावधि प्रकाशित आगम

ग्रन्थांक	नाम	पृष्ठ	अनुवादक-सम्पादक	मूल्य
१.	आचारांगसूत्र [प्र. भाग]	४२६	श्रीचन्द सुराना 'सरस'	३०)
२.	आचारांगसूत्र [द्वि. भाग]	५०८	श्रीचन्द सुराना 'सरस'	३५)
३.	उपासकदशांगसूत्र	२५०	डॉ. छगनलाल शास्त्री	२५)
४.	ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र	६४०	पं० शोभाचन्द्र भारिल्ल	४५)
५.	अन्तकृद्दशांगसूत्र	२४८	साध्वी दिव्यप्रभा	२५)
६.	अनुत्तरोपपातिकसूत्र	१२०	साध्वी मुक्तिप्रभा	१६)
७.	स्थानांगसूत्र	८२४	पं० हीरालाल शास्त्री	५०)
८.	समवायांगसूत्र	३६४	पं० हीरालाल शास्त्री	३०)
९.	सूत्रकृतांगसूत्र [प्र. भाग]	५६२	श्रीचन्द सुराना 'सरस'	४५)
१०.	सूत्रकृतांगसूत्र [द्वि. भाग]	२८०	श्रीचन्द सुराना 'सरस'	२५)
११.	विपाकसूत्र	२०८	अनु. पं. रोशनलाल शास्त्री सम्पा. पं. शोभाचन्द्र भारिल्ल	२५)
१२.	नन्दीसूत्र	२५२	अनु. साध्वी उमरावकुंवर 'अर्चना' सम्पा. कमला जैन 'जीजी' एम. ए.	२८)
१३.	औपपातिकसूत्र	२४२	डॉ. छगनलाल शास्त्री	२५)
१४.	व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र [प्र. भाग]	५६८	अमरमुनि	५०)
१५.	राजप्रश्नीयसूत्र	२८४	वाणीभूषण रतनमुनि	३०)
१६.	प्रज्ञापनासूत्र [प्र. भाग]	५६८	जैनभूषण ज्ञानमुनि	४५)
१७.	प्रश्नव्याकरणसूत्र	३५६	अनु. मुनि प्रवीणऋषि सम्पा. पं. शोभाचन्द्र भारिल्ल	३५)
१८.	व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र [द्वि. भाग]	६६६	अमरमुनि	४५)
१९.	उत्तराध्ययनसूत्र	८४२	राजेन्द्रमुनि शास्त्री	६५)
२०.	प्रज्ञापनासूत्र [द्वि. भाग]	५४२	जैनभूषण ज्ञानमुनि	४५)
२१.	निरयावलिकासूत्र	१७६	देवकुमार जैन	२०)
२२.	व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र [तृ. भाग]	८३६	अमरमुनि	६१)
२३.	दशवैकालिकसूत्र	५३२	महासती पुष्पवती	४५)
२४.	आवश्यकसूत्र	१८८	महासती सुप्रभा एम. ए., शास्त्री	२५)
२५.	व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र [चतुर्थ भाग]	९०८	अमरमुनि	६५)
२६.	जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र	४७८	डॉ. छगनलाल शास्त्री	४५)
२७.	प्रज्ञापनासूत्र [तृ. भाग]	३६८	जैनभूषण ज्ञानमुनि	४०)

शीघ्र छपकर तैयार होने वाले सूत्र—
अनुयोगद्वारसूत्र आदि